(आचार्यश्री जिनउदयसागर जी महाराज की
आज्ञानुवर्ती प्रवर्तिनी सज्जनश्री जी महाराज की
स्वर्ण-जयन्ती के उपलक्ष्य पर अभिनन्दन-ग्रन्थ)

*

■ निर्देशन
गणि मणिप्रभसागर जी

■ प्रधान सम्पादिका
साध्वी श्री शशिप्रभा श्री जी

■ प्रकाशन
श्री जैन श्वेताम्बर खरतरगच्छ संघ
जयपुर (राजस्थान)

लूनिया परिवार की ओर से सप्रेम भेंट

सम्पादक मण्डल :

☐ प्रबन्ध सम्पादक :

श्रीचन्द सुराना "सरस"
सुरेन्द्र बोथरा

☐ सह सम्पादक :

मदनलाल शर्मा

सदस्य :

१ साध्वी प्रियदर्शनाश्री
२ साध्वी सम्यग्दर्शनाश्री
३ श्री भवरलाल नाहटा
४ म० विनयसागर
५ डा० नरेन्द्र भानावत
६ श्री राजेन्द्रकुमार श्रीमाल
७. डा० महेन्द्रसागर प्रचन्डिया
८ श्री ज्योतिकुमार कोठारी
९ श्रीमती रत्ना लूनिया

☐ अर्थ सौजन्य :

स्व० श्री केसरीचन्दजी लूनिया परिवार के सौजन्य से।

☐ प्राप्ति स्थान :

श्री जैन श्वेताम्बर खरतरगच्छ संघ
मोतीसिंह भोमियों का रास्ता,
जोहरी बाजार
जयपुर—३०२००३
दूरभाष . ४३८८४

☐ विजयकुमार पुखराज लूनिया
मोतीसिंह भोमियो का रास्ता,
जोहरी बाजार
जयपुर—३०२००३
दूरभाष . ४४६७१

☐ मुद्रण :

श्रीचन्द सुराना के निर्देशन मे दिवाकर-प्रकाशन, ए-७, अवागढ हाउस, एम० जी० रोड, अजना सिनेमा के सामने, आगरा–२८२००२ के लिए कामधेनु प्रिंटर्स एण्ड पब्लिसर्स आगरा।

वि० स० २०४६ वैशाख पूर्णिमा
ईस्वी सन् १९८९ २० मई

कलिकाल-कल्पतरु-प्रत्यक्षप्रभावी श्री जिन कुशलसूरिजी
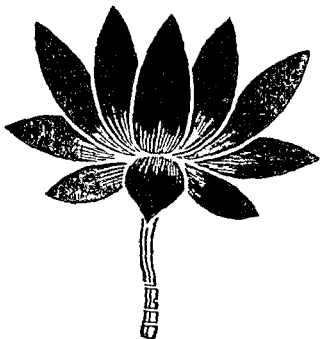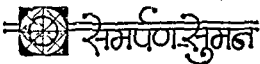
जिनका जीवन कमल पत्र सम निर्लेप
शुभ्र चन्द्रिका सा शुभ्र शीतल
संयम-समता शुचिता का सम्पुट है,
सेवा स्वाध्याय सरलता ही जिनका पर्याय है,
भक्ति-विनम्रता-मृदुता जिनकी पहचान है
उन
ज्ञानयोगिनी आगमज्योति, श्रमणीरत्न गुरुवर्य्या

पूज्य प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी महाराज

के
दीक्षा पर्याय के अर्धशतक के शुभारम्भ पर
सविनय-सभक्ति समर्पित

विनेय

—साध्वी शशिप्रभाश्री

—साध्वी प्रियदर्शनाश्री

स्वागत समिति

१. श्री मोहनचन्द ढढ्ढा (स्वागताध्यक्ष)

२. श्री विमलचन्द सुराना
३. श्री पुखराजचन्द लूनिया
४ श्री डी० आर० मेहता
५ श्रीमती जतनकवर गोलेच्छा
६. श्री उत्तमचन्द वडेर
७ श्री कपिलभाई शाह
८ श्री नरेन्द्रकुमार लूणावत
९ श्री उमरावमल चोरडिया
१०. श्री सरदारमल चोपड़ा
११ श्री उत्तमचन्द सेठिया
१२. श्री राजकुमार वरडिया
१३. श्री राजकुमार काला
१४ श्री रतनलाल छाबडा
१५. श्री दौलतसिह जैन
१६. श्री रणजीतसिंह कुम्भट
१७. श्री हीराचन्द वैद
१८. श्री दुलीचन्द टॉक
१९. श्री बुधसिंह बाफना
२०. श्री तिलोकचन्द सिंघी
२१ श्री लालचन्द वैराठी
२२. श्री हस्तीमल मेहता
२३ श्री शिखरचन्द पुगलिया
२४. श्री कपूरचन्द कुलिन
२५. श्री हरिश्चन्द्र वडेर
२६ श्री हीराभाई चौधरी
२७ डा० नरेन्द्रकुमार भानावत
२८. श्री मेहरचन्द धांधिया
२९. डा० हुकुमचन्द भारिल्ल
३०. श्री अभयमल शाह
३१. श्री विजयकुमार गोलेच्छा
३२. डा० ताराचन्द बख्शी
३३ श्री निर्मलकुमार सुराना
३४ श्री तिलकराज जैन
३५. श्री सुभाष कांकरिया
३६. श्रीमती मीना सुराना
३७ श्रीमती सरोजनी बोथरा
३८. श्री माणकचन्द लूनिया
३९ श्री कन्हैयालाल जैन
४० श्री नरेन्द्रकुमार गोलेच्छा
४१. श्रीमती कमला वरडिया

आशीर्वचन

नाणेण दसणेण च,
चरित्तेण तहेव य।
खतीय मुत्तीए,
वड्ढमाणो भवाहि य ॥

तुम ज्ञान, दर्शन, चारित्र, शान्ति क्षमा और मुक्ति निर्लोभता के पथ पर सतत आगे बढो।

—उत्तराध्ययन सूत्र २२/२६

ससार सागर घोर तर कन्ने ! लहु लहु।

हे पुण्य शालिनी कन्ये ! तुम ससार सागर को अतिशीघ्र पार करो। —उत्त० २२/३१

भद्द ते ! भद्द ते !
अभग्गेहिं नाण—दसणचरित्तेहिं
अजियाइ जिणाहि इदियाइ
जिय च पालेहि समणधम्म ॥

तुम्हारा भद्र (कल्याण) हो। तुम निरतिचार ज्ञान दर्शन और चारित्र से नहीं जीती हुई इन्द्रियों को जीतो, विजयी बनकर श्रमण धर्म का पालन करो।

—कल्पसूत्र ११२

भारतीय धर्म परम्परा में जैनधर्म ही एक ऐसा धर्म है, एक ऐसी उदात्त परम्परा है, जिसमे साधना-उपासना के क्षेत्र में, स्त्री-पुरुष का समान महत्व है, समान ही अधिकार है। और समान गरिमा प्राप्त है। यहाँ सिर्फ मधुर प्रिय और उदार शब्दो के पुष्प अर्पित कर नारी की पूजा ही नही की गई है, बल्कि प्रत्येक क्षेत्र में आत्मविश्वास के सर्वोच्च स्वरूप मे उसकी समान स्थिति को स्वीकार कर उसका समान महत्व प्रतिष्ठित किया गया है।

आज तक के जैन इतिहास को उठाकर देखने से यह बात दिन के उजाले की तरह उद्भासित है कि इस पवित्र परम्परा में आदिकाल से जगन्माता भगवती मरुदेवा, ब्राह्मी-सुन्दरी, तीर्थंकर भगवती मल्ली, महासती सीता, अञ्जना साध्वी तीर्थ प्रमुखा चन्दनबाला आदि की एक ऐसी अखण्ड उज्ज्वल परम्परा रही है, जो गगा की तरह पवित्र है ही, इस धर्मधरा को सदा अभिसिंचित और संवर्धित भी करती रही है। इसी पुण्य परम्परा के पावन सम्पोष से भारतीय धर्म, संस्कृति-सभ्यता सदा पुष्पित-फलित होती रही है।

नारी न केवल नारी है, किन्तु वह "न-अरि" के रूप में विश्वमैत्री व विश्व-वात्सल्य की प्रतीक है। सस्कृति की सरक्षिका है।

जैन परम्परा की इसी पुण्य कडी में आज श्वेताम्बर खरतरगच्छ परम्परा में आर्या प्रवर्तिनी श्रीसज्जन श्रीजी महाराज एक ऐसा ही उदात्त व्यक्तित्व है, जो भारतीय नारी और साध्वी परम्परा का गौरव कही जा सकती है। आपश्री के चतुर्मुखी व्यक्तित्व का दिग्दर्शन प्रस्तुत ग्रन्थ में अकित है, अत. यहाँ पुनरुक्ति न करके हम इतना ही कहना चाहते है कि प्रवर्तिनी सज्जन श्रीजी का जीवन साधना की एक अखण्ड ज्योति है, जिसका प्रकाश अतीत को भी आलोकित करता है, वर्तमान दीपित है ही, और आने वाला कल भी उद्दीपित रहेगा।

ऐसी पुण्यशालिनी सयम साधिका का दर्शन वन्दन एक महान पुण्य का प्रसग है, इसका अभिनन्दन सत्य-शील-साधुता का अभिनन्दन है। आपश्री की दीक्षा के ४७ वर्ष सम्पन्न हो गये है, यह पाँचवा दशक पूर्ण होते ही अर्धशतक पूर्ण हो जायेगा। इसी शुभ अवसर को लक्ष्य मे लेकर हमारे जैन श्वेताम्बर खरतरगच्छ श्री सघ ने आपश्री का अभिनन्दन करने का शुभ निश्चय किया है जो अवसर आज प्राप्त हो रहा है। हमे अत्यधिक आनन्दानुभूति हो रही है।

सन्तों का अभिनन्दन किसी भौतिक उपहार से नही किया जाता, वे तो ज्ञान, संयम एव तपस्या के जीवन्त रूप होते हैं, अत. उनका अभिनन्दन भी उसी के अनुरूप होना चाहिए। हमारी इस परिकल्पना को साकाररूप प्रदान किया है गुरुवर्याश्रीजी की प्रधानशिष्या विदुषी साध्वी श्री शशिप्रभा श्री, प्रियदर्शनाश्रीजी आदि साध्वी मंडल ने। उनकी उदात्त कल्पना

एव सृजन धार्मिता का ही यह सुपरिणाम है कि एक श्रमणी के गौरव रूप म इतना श्रेष्ठ अभिनन्दन ग्रन्थ तयार हो सका।

इस महान काय म गणीप्रवर श्रीमणिप्रभसागरजी महाराज का मागदशन, सम्प्रेरणा तो उसी प्रकार रही है, जिस प्रकार ज्योति को प्रज्ज्वलित होने मे तेल और बाती का सयोग-सुयोग।

हमे अत्यधिक प्रसन्नता और गौरव है कि इस महान ग्रन्थ के प्रकाशन मे पूज्य प्रवर्तिनी श्रीजी के ससारपक्षीय परिवार ने महत्वपूण आधारभूत भूमिका निबाही है। पूज्य प्रवर्तिनी श्रीजी का जन्म जयपुर मे लूनिया परिवार म हुआ। आज आपके परिवार म सभी प्रकार की समृद्धि, सम्पन्नता और सुसस्कारिता दखी जाती है। आपके परिवार के प्रमुख सदस्य, श्रीविजयकुमार जी, श्री पुखराजजी, माणकचन्द जी सुरेशकुमारजी, श्रीमती रत्नाजी, सायरजी, पन्ना मकलचा आदि समस्त परिवार ने इस अभिनन्दन ग्रन्थ को सम्पन्न कराने मे न केवल आर्थिक किंतु सम्पूर्ण भावनात्मक सहयोग भी प्रदान किया है।

श्रीपुखराज जी लूनिया अत्यन्त उत्साही, मृदुभाषी, मिलनसार एव धार्मिकवृत्ति के धनी है। क्रियात्मकता आपका विशिष्टगुण है। इसी विशिष्ट गुण के कारण आपने रत्न व्यवसाय मे देश और विदेश म अपना विशिष्ट स्थान बनाया है। सन १९६० म ये तेरापथ युवक परिषद जयपुर के मन्त्री पद पर आसीन हुए थे तथा सन् १९६७ म आयोजित सभी जन सम्प्रदायो की अखिल भारतीय कान्फ्रेंस के सह सयोजन का दायित्व आपने कुशलता से निभाया। युवावस्था ही म आपने आचाय श्री तुलसी की प्रेरणा से "अणुव्रत" आचारनिष्ठा को अपना लिया था। धम प्रचार का काय आप अनवरत चलाते आ रहे हैं। न्यूयार्क शहर म स्थापित "जैन सेन्टर" के आप जन्मदाता सदस्य एव उपसभापति रह चुके हैं। यह श्री पुखराज जी की ही प्रेरणा एव अनवरत परिश्रम का फल है कि प्रवर्तिनी श्रीसज्जनश्री जी का "अभिनन्दन ग्रन्थ" प्रकाशित हो रहा है। साधुजनो का साधुत्व, उनका व्यक्तित्व एव कृतित्व प्रचारित प्रकाशित करना भी निसदेह साधुवाद की ही पात्रता रखता है।

श्री पुखराजजी के छोटे भाई माणकचन्दजी लूनिया भी अत्यन्त क्रियाशील, अनुभवी व्यापारी एव धार्मिकवृत्ति के हैं। रत्नव्यवसाय मे आपने भी अपने कीर्तिमान स्थापित किये हैं। अल्पभाषी किन्तु चिंतनशील माणकचन्दजी एव उनकी सुशीला पत्नी सायरजी लूनिया ने भी ग्रन्थ सम्पादन म अपना पूरा-पूरा योगदान दिया। निस्सदेह आप धन्यवाद के पात्र हैं। एक अत्यन्त प्राचीन (अनुमानत २५०० वर्ष) जैन मन्दिर के जीर्णोद्धार मे भी सघ के साथ आप पूर्ण प्रयत्नशील है। दोनो ही भाइयो ने अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशन म अपना पूरा पूरा सहयोग दिया है।

श्रीपुखराज चन्दजी लूनिया एव उनकी धमपत्नी श्रीमती रत्ना लूनिया ने तो रात दिन का अथक श्रम करके अतीव सुरुचिपूवक इस काय को सम्पन्न कराया है। अत हम आपके तथा समस्त लूनिया परिवार जयपुर के विशेष आभारी है।

साथ ही विद्वद्सपादक मडल एव सभी सहयोगी सज्जनों के प्रति भी हम कृतज्ञ हैं। हमे अत्यन्त गौरव व प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है, कि पूज्य प्रवर्तिनी सज्जनश्री जी महाराज का अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित करवाने का सहज श्रेय हमारे खरतरगच्छ श्री सघ को प्राप्त हो रहा है। हम श्री सघ की ओर से पूज्य प्रवर्तिनी जी म का पुन पुन वन्दन अभिनन्दन करते हैं।

उत्तमचन्द बडेर (मन्त्री) | ज्ञानेश्वर गोलेछा (अध्यक्ष)

श्री जैन श्वेताम्बर खरतरगच्छ श्री सघ जयपुर।

आदिवचन

जैन धर्म मे रत्नत्रय का सर्वाधिक महत्व है। रत्नत्रय के क्रम मे एक ओर सम्यग्ज्ञान, दर्शन चारित्र है, तो दूसरी ओर देव-गुरु-धर्म है। जिसप्रकार दर्शन (सम्यक्त्व) ज्ञान एव चारित्र को संतुलित और मोक्ष-अभिमुख रखता है, उसी प्रकार गुरु भी देव और धर्म के वीच का सन्तुलन है। गुरु ही देव का स्वरूप समझाता है, धर्म का मार्ग वताता है, इस कारण 'गुरु' की अपरम्पार महिमा है। भारतीय मनीषियो ने 'गुरुरेव परब्रह्म" कहकर गुरु को अत्यन्त श्रद्धा और आदर्श का केन्द्र वना दिया है।

गुरु वह अद्भुत कलाकार है, जो मृत्पिण्ड समान शिष्य को महामानव के रूप में प्रतिष्ठित कर सकता है। पत्थर को भगवान और कण को सुमेरु वना सकता है, इसलिए शिष्य के लिए गुरु-पूजा, गुरु-भक्ति न केवल एक आवश्यक, अनिवार्य कर्त्तव्य है, किन्तु यह एक आत्मसन्तोष और मानसिक प्रफुल्लता का विषय भी वन जाता है। गुरु-पूजा करके ही शिष्य अपनी साधना, उपासना, ज्ञानार्जना को कृतकृत्य व सार्थक/सफल समझता है। भारतीय सस्कृति में इसे ही "गुरु-दक्षिणा" की गरिमा से मडित किया गया है।

श्रद्धेया पूज्य प्रवर्तिनीश्री सज्जनश्रीजी महाराज हम सव के लिए "गुरु" के सर्वोच्च सिंहासन पर विराजित श्रद्धा का वह जीवन्त रूप है, जिसके प्रति हमारे अन्त करण के महासागर मे श्रद्धा-विनय-भक्ति-वहुमान-कृतज्ञता की भाव ऊर्मियां उछल रही है। भावोर्मियो का यह ज्वार कभी-कभी इतना प्रखर हो जाता है कि हम जीवन को उनके चरणो मे समर्पित करके भी स्वय को ऋणमुक्त नही समझ सकती, उनका उपकार शब्दातीत है, कालातीत है। आगम की भाषा में दुष्प्रतिकार-दुप्पडियारे है।

श्रद्धेया गुरुणीश्री का जीवन साधुता का जीवन्तस्वरूप है। इस विषय में अधिक चर्चा यहाँ नही करुंगी, चूकि इस विषय में सैकड़ो विचारको ने जो कहा है, अनुभव किया है, यह सव प्रस्तुत ग्रन्थ में है ही, पाठक पढेगे ही। मै तो सिर्फ अपनी उमड़ती, उछाल मारती श्रद्धा की अभिव्यक्ति मात्र करके मन को हल्का करना चाहती हूँ।

लगभग सात वर्ष पूर्व जव प्रवर्तिनीश्रीजी महाराज सयम-साधना के ४० वर्ष पूर्ण कर पाँचवे दशक मे प्रवेश कर रही थी तव से मेरी व मेरी अन्य श्रमणी वहनो की भावना जगी थी, कि हम पूज्य प्रवर्तिनीश्रीजी के दीक्षा के ५० वर्ष की सम्पन्नता (स्वर्ण जयन्ती प्रसग) के अवसर पर एक अभिनन्दन ग्रन्थ का आयोजन करे। हम सव की भावना एक दिन पूज्य मणिप्रभसागरजी महाराज के समक्ष चर्चा का विषय वनी तो उन्होने हमे न केवल उत्साहित किया, वल्कि सम्पूर्ण मार्ग-दर्शन करने तथा हर प्रकार का सहयोग करने का आश्वासन भी प्रदान किया। उनके उत्साहसंवर्धन से प्रेरित होकर धीरे-धीरे हमने अभिनन्दन-ग्रन्थ की परिकल्पना को एक आकार दिया, एक योजना का स्वरूप प्रदान किया।

अभिनन्दन ग्रंथ सकल्पना की लम्बी कहानी है, किन्तु यहां उसकी चर्चा न करके, सिर्फ मुख्य बिन्दु पर ही आती हूँ। इस आयोजन के लिए सर्वप्रथम सहयोगी मिले—भाई पुखराजचन्द जी लूनिया। प्रवर्तिनीश्रीजी के ससार पक्षीय सहोदर श्री केसरीचन्दजी लूणिया के सुपुत्र—पुखराजजी प्रतिभाशाली उत्साही युवक हैं। देश विदेश मे व्यापार कार्य का विस्तार होने से उनको समय बहुत कम मिलता है, फिर भी हमारी भावना जानकर के एकदम भाव विभोर हो उठे, और हर प्रकार के सम्पूर्ण सहयोग के लिए सकल्पबद्ध हुए। उनकी धर्मपत्नी श्रीमती रत्ना लूणिया तो और भी अधिक उत्साहित और भावना शील थी। दोनो ही पति-पत्नी समान विचार व समान रुचिसम्पन्न होने के कारण उनका सर्वथा प्रकारेण सहयोग सहज ही प्राप्त हो गया और हम योजना को मूर्तरूप देने मे सलग्न हुए। पुखराजजी की भावना को उनकी माता तथा भाइयो ने पुष्ट किया तथा ग्रंथ प्रकाशन के कार्य मे सहयोग प्रदान किया, विशेषकर माणक लूणिया तथा सायर लूनिया ने।

मेरी सहयोगिनी साध्वी प्रियदर्शनाश्री जी, साध्वी सम्यग्दर्शनाश्रीजी इस कार्य मे जुट गई और साथ ही जैन साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान, अनेक अभिनन्दन-ग्रथो के अनुभवी सपादक आत्मबन्धु श्री श्रीचन्द जी सुराना "सरस" का भी सहयोग प्राप्त किया। इसी के साथ श्री सुरेन्द्रकुमारजी बोथरा, ज्योतिकुमार कोठारी, मदनलालजी शर्मा महेन्द्र जैन, श्रीविनयसागर जी व श्रीमती शान्ता भानावत पवन सुराणा आदि अनेक विद्वान, कार्यकर्ताओ का सहकार प्राप्त होता गया और यह योजना मूर्त रूप लेने लगी।

खरतरगच्छ सघ, जयपुर के मन्त्री श्री उत्तमचन्दजी बडेर तथा सघ के मान्य श्रेष्ठी सौजन्य मूर्ति श्रीविमलचन्दजी सुराणा आदि सभी कार्यकर्त्ताओ का अनुकूल सहयोग इस "श्रमणी" ग्रंथ की सफलता का मूलाधार हैं।

हाँ, अब प्रस्तुत ग्रन्थ के विषय मे दो शब्द कहना चाहूँगी।

पूज्य प्रवर्तिनी श्रीजी का जीवन धर्म-समन्वय का एक दुर्लभ किन्तु प्रकृति प्रदत्त सयोग ही है कि आपश्री का जन्म-जयपुर के एक सम्पन्न, प्रतिष्ठित तेरापथी परिवार मे हुआ, आपका पाणिग्रहण स्थानकवासी समाज के प्रमुख गोलेच्छा परिवार मे हुआ, और फिर एक शुभ सयोग मिला, कोटा के भारत प्रसिद्ध बाफना परिवार मे आपश्री का विवाहोपरान्त निकट सम्बन्ध रहा। सेठानी साहिबा गुलाब सुन्दरीजी बाफना की देखरेख मे एक प्रकार से आपके धार्मिक सस्कारो को जल सिंचन व नया सम्पोषण मिला, जो श्वेताम्बर मूर्तिपूजक आम्नाय से आपको सम्बद्ध कर सका, इस प्रकार प्रकृति ने ही आपके जीवन मे धार्मिक सद्भाव, समन्वय का ऐसा सगम बनाया है, जो आज भी 'त्रिवेणी सगम" की भांति सपूर्ण जैन समाज मे आदरास्पद है, यही कारण है कि आपश्री के अभिनन्दन उपलक्ष्य मे सम्पूर्ण जन समाज के श्वेताम्बर, स्थानकवासी, तेरापथी समाज के श्रद्धेय आचार्यों, विद्वान, मुनियो तथा प्रमुख श्रावको की तरफ से आशीवचनात्मक सन्देश व शुभकामनाएँ प्राप्त हुई हैं इस प्रकार का समन्वय जन एकता की दिशा मे "मील का पत्थर" कहला सकता है। हम इस विषय का गौरव है कि एक आम्नाय विशेष की प्रवर्तिनी श्रमणी के लिए सम्पूर्ण जन सघ अपनी शुभकामनाएँ प्रेषित करता है।

नामकरण—प्रस्तुत ग्रन्थ के नामकरण के विषय मे भी बहुत गभीर चिन्तन के पश्चात "श्रमणी" नाम का चयन किया गया है। "श्रमणी" शील-साधना-सयम शुचिता की प्रतीक है। पवित्रता और परम वत्सलता की प्रतिनिधि है श्रमण सस्कृति की गगोत्री है। मेरे विचार मे पूज्य प्रवर्तिनी श्रीजी के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का अभिवचन यही एक शब्द कर सकता है। "श्रमणी" से अधिक अभ्युत्थान और परम्परा

का प्रतिनिधि अन्य शब्द शायद हो नही सकता था। मुझे विश्वास है यह शब्द ग्रन्थ की सम्पूर्ण गरिमा को स्वयं अभिव्यक्ति दे रहा है।

ग्रन्थ के पांच खण्ड—'गुरु' जिस प्रकार रत्नत्रय का मध्यविन्दु है, उसी प्रकार पाँच-परमेष्ठी का भी—अरिहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु पद में केन्द्रीय शक्ति है। पाँच पदो का प्रतिनिधित्व गुरु में मूर्तिमन्त है, इस कारण इस ग्रथ को पांच खडों मे विभक्त करने का निश्चय किया गया। पाँचो ही खण्ड अपने-अपने विषय की सुन्दर, सारपूर्ण तथा मौलिक सामग्री से युक्त है। यह सामग्री इतनी गहन भी नही है, कि आम आदमी इसे पढकर समझ न सके और इतनी सामान्य भी नहीं है कि ग्रथ की गुरुता का अहसास न हो। मेरे विचार मे सपादक मंडल ने काफी सन्तुलित दृष्टि मे सामग्री का चयन किया है, जिसका सामयिक महत्व तो है ही, स्थायी और सार्वदेशिक मूल्य भी है, और युग-युग तक एक मापदड वनकर रहेगा।

क्षमा याचना एव आभार-दर्शन

ग्रन्थ के लिये निवन्ध आदि सामग्री भी विपुल मात्रा में आई जिसमे श्रेष्ठता के आधार पर चयन करना पड़ा। जिन मान्य लेखको ने हमारे आग्रह को स्वीकार कर लेख भेजने का सौजन्य पूर्ण श्रम किया, मैं उनके प्रति भी आभारी हूँ तथा जिनके लेख उत्तमकोटि के होते हुए भी ग्रन्थ की पृष्ठ संख्या, समय सीमा आदि को ध्यान मे रखकर, हम छाप नही सके, उन मान्य लेखको के प्रति भी आभार व्यक्त करते हुए उनसे क्षमा भी चाहती हूँ कि उनके श्रद्धा-सौजन्यपूर्ण श्रम का यथोचित सम्मान नही कर सके। अस्तु, श्रद्धार्चना, सस्मरण भेजने वाले वन्धुओ से तो विशेष रूप मे क्षमा चाहती हूँ कि उनकी भक्तिपूर्ण विस्तृत शब्दावली को वहुत ही सक्षेप देना पडा।

यदि प्राप्त सामग्री को उसी रूप मे प्रकाशित की जाती तो संभव है यह ग्रन्थ एक हजार पृष्ठ का वन जाता। यद्यपि श्रद्धा-सुमन प्रेपित करने वाले सभी श्रद्धालुजनो का नामोल्लेख यथास्थान अवश्य हुआ है, अतिविलम्व से प्राप्त होने वाले कुछ अनेक वरिष्ठ नाम सवसे अन्त मे देने पड़े, फिर भी सामग्री कम करने या भूल से कोई नाम रह जाने के कारण किसी के श्रद्धासुमन को आघात लगा हो, तो वे भी सम्पादन-मर्यादा को समझकर क्षमा करेगे।

इस ग्रन्थ के मुद्रण प्रकाशन के समय हमारे श्रद्धेय गणी श्री मणिप्रभसागरजी म की जयपुर मे उपस्थिति तथा उनका सूझवूझ पूर्ण मार्गदर्शन, कुशल सयोजन हमे प्राप्त हो सका यह भी हमारे लिए श्रेयस्कर सिद्ध हुआ, मै आपश्री के प्रति किन शब्दो मे कृतज्ञता व्यक्त करूँ।

आज इस ग्रथ की सम्पन्नता पर आत्म-विभोर हू, अपनी उत्कृष्ट हार्दिक इच्छा को साकार होते देखकर पूर्ण सन्तुष्ट भी, पुन. सभी सहयोगी सज्जनो का व विशेषकर विद्वद्रत्न वधु श्रीचन्दजी सुराना व भाई पुखराज जी लूणिया का हृदय से आभार मानती हूँ, कि मुझ जैसी सपादन कला मे अनुभव रहित साध्वी के सत्सकल्पो को उन्होने अपने ज्ञान-अनुभव व साधनो का वल देकर एक सुन्दर भव्य रमणीय ग्रन्थ का स्वरूप प्रदान कर दिया।

पुन पूज्य गुरुवर्या के चरणो मे वन्दना के साथ उनके आरोग्यमय दीर्घजीवन की मगलकामना।

आगम-ज्योति प्रवर्तिनी सज्जनश्री जी महाराज

एक धन्य अवसर की प्राप्ति

स्वनामधन्या आगमवेत्ता प्रवर्तिनी महाराज सा० सज्जनश्रीजी का अभिनन्दन करते हुए आज कौन धन्य नही हो रहा है ? फिर मैं अकिंचन भी इस पावन गंगा मे अवगाहन का लाभ प्राप्त करने मे क्यो पीछे रहूँ ? यह एक ऐसा पुनीत अवसर अनायास ही हमारे हाथ आ गया है कि हमे अपने जीवन की कुछ तो सार्थकता दृष्टिगत होने लगी है। अन्यथा सांसारिक जीवन मे ऐसे पुण्य अवसर प्राय दुर्लभ ही होते हैं।

भुआसा महाराज विदुषीवर्या सज्जनश्रीजी का जीवन प्रारम्भ से ही सयम और सात्विक भावो से ओत प्रोत रहा है। बाल्यकाल से ही आपश्री ससार से उदासीन तथा अन्तर्मुखी रही। आपने तप सयम, अध्ययन, एव ज्ञान-दर्शन-चारित्र के क्षेत्र में जो उपलब्धियाँ अर्जित की हैं उनका वर्णन करने मे हम अक्षम हैं। काव्य का क्षेत्र हो या कि दर्शन का, साधना का क्षेत्र हो या कि सामाजिक चेतना का कर्मक्षेत्र, सघ सचालन का कार्य हो या एकातिक तपस्या का प्रवर्तिनीश्रीजी ने सभी दिशाओ मे अपने अलौकिक अद्वितीय व्यक्तित्व और कृतित्व की अमिट छाप अंकित की है। आज खरतरगच्छ धर्म सघ की प्रतिष्ठा, धर्मचेतना एव प्रभावना की आप प्रकाश स्तम्भ बनी हुयी है। प्रवर्तिनी पद पर आसीन होकर आप अपनी गुरुवर्याश्री ज्ञानश्रीजी के बताये मार्ग को आलोकित एव प्रसारित कर रही है। क्या श्रद्धालु श्रावक-श्राविका, क्या अनुगामिनी साध्वी-साध्विकाएँ और क्या जन साधारण सभी आपके विनम्र सरल व सहज व्यक्तित्व की छाया के नीचे अध्यात्म-अमृत का पानकर कृतार्थ हो रहे है।

मेरे दादाजी सेठ श्री गुलाबचन्दजी लूणिया जीवनपर्यन्त जैन शासन के निष्ठावान श्रावक रहे हैं। वे काव्यमर्मज्ञ, धर्ममर्मज्ञ एव तत्त्वमर्मज्ञ श्रावकरत्न थे। उन्ही की महान आत्मजा श्री सज्जनश्रीजी म सा आज उस गुलाब के सौरभ का अध्यात्मरस से परिपूर्ण मकरन्द की भाँति जन-

जन के मानस को आप्लावित कर रही है। पूज्य दादा-सा एक श्रावक थे, गृहस्थ थे, किन्तु आपश्री तो अनिकेत आर्यारत्न है, वीतराग भगवान के अनुशासन से आवद्ध, आगमज्ञा, शास्त्रमर्मज्ञा, योगसाधिका, विदुपीवर्या आदि अनेकानेक शुभ सम्बोधन आपके लिए अक्षरश. उचित प्रतीत होते है।

अस्सी वर्प से अधिक आयु मे भी प्रवर्तिनी म सा. के मुख-मण्डल पर जिस आभा और चैतन्य के दर्शन होते है वह एक सवल प्रेरणास्रोत है । दर्शन से स्वत' ही धार्मिक वृत्ति जागृत हो उठती है, आध्यात्मिक भाव विकसित होते है तथा विकार स्वत. ही तिरोहित होने लगते है। प्राय हम सोचते है। कि, यह कैसा प्रभाव है ? तो उत्तर मिलता है यह प्रभाव है सतत साधनारत ज्ञानार्थ, सत्यार्थ, मोक्षार्थ समर्पित उस शुचि भावो की दिव्यमूर्ति का। कहते भी तो है, जहाँ धर्ममंगल की स्थापवा होती हे, अहिसा, सयम, तप की त्रिवेणी वहती है, वहां देव भी आकर नमन करते है। यह भी सच है कि सच्चे साधको का जहाँ वास होता है, वहाँ स्वर्ग स्वत' ही निर्मित हो जाता है। वहाँ न रोग रहता है न शोक, न जरा न मृत्यु, न दुख न विषाद। वहाँ तो रहते है—सत, चित् और आनन्द ।और, ऐसा ही आनन्द मिलता है हमे प्रवर्तिनी श्रीजी के सामिप्य—सान्निध्य मे।

हमारे पिताश्री की महती उत्कंठा थी कि पूजनीय वावा सा. सेठ गुलावचन्द जी लूणिया की कृतियो को सग्रहीत कर प्रकाशित कराया जावे। पिताजी के दिवगत हो जाने के वाद मेरे मन मे महत्वपूर्ण ग्रन्थ के प्रकाशन की योजना प्रस्फुटित हुई। हमने भुआ सा महाराज के सान्निध्य मे योजना रखी तथा निवेदन किया—वावा मा और पिताश्री की भावनाओ के अनुरूप आपने धर्म-दर्शन एवं आध्यात्म के क्षेत्र मे अनेक गौरवपूर्ण कीर्तिमान स्थापित किये है। आपकी उज्ज्वलता के प्रकाश मे हमारे जीवन मे परिवर्तन घटित हुए है। हमे स्वत' प्रेरणा हुई है कि समस्त जैन समाज द्वारा आपका अभिनन्दन किया जावे तथा एक अभिनन्दन ग्रन्थ का प्रकाशन हो। किन्तु अपना ही अभिनन्दन जान हमारे आग्रहपूर्ण निवेदन को आपने सरलता के साथ अस्वीकार कर दिया। और कहा—मेरा अभिनन्दन करने की क्या आवश्यकता है ? मैने कौन सा ऐसा महान कार्य किया है ? इस प्रकार कई वार कहा और वोले—दादा सा की रचना अवश्य ही प्रकाशित होनी चाहिए। परन्तु हमारा विचार दृढ रहा और मैने उनकी प्रमुख शिष्या शशिप्रभा श्रीजी म. के सन्मुख विचार रखे, उन्होने हमें स्वीकृति दी। जिससे हमे हार्दिक प्रसन्नता हुई।

हमे यह भी प्रसन्नता है कि मेरे प्रस्ताव को खरतरगच्छ सघ के धर्मप्राण श्रावक महानुभावो ने सहमति प्रदान की तथा पूर्ण सहयोग का आश्वासन दिया। हम पू. प्रमुखा श्री शशिप्रभा श्रीजी म सा व श्रावकवृन्द के प्रति आभारी है।

हमारी इच्छा है कि प्रवर्तिनी श्रीजी का अभिनन्दन समारोह सम्पूर्ण जैन समाज के लिए एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक अवसर वने। आपकी प्रेरणा पाकर जैन समाज एकता की दिशा मे चरणन्यास करे तो यह अवसर सार्थक हो उठेगा।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन में सहयोगी एवं सम्पादक मण्डल के सदस्य श्री सुरेन्द्र वोथरा, श्री भँवर लालजी नाहटा, म. श्री विनयसागरजी, डॉ. नरेन्द्र भानावत श्री मदनलाल शर्मा, श्री महेन्द्र जैन का मै हृदय से आभार प्रकट करता हूँ जिन्होने विभिन्न खण्डो के निवन्धो के सग्रह, संशोधन एवं कार्य को तत्परता से पूर्ण करवाने मे अथक परिश्रम किया।

वीर शासन सेविका साध्वी शशिप्रभा श्री को धन्यवाद देना उनके परिश्रम और कार्य सम्पादन की महत्ता को घटाना ही होगा क्योंकि जितना कुछ इन्होंने परिश्रम किया है उसका आभार शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता ? आप तो इस ग्रन्थ प्रकाशन की प्रारम्भ से ही प्रेरणा स्रोत रही हैं। सम्पूर्ण सम्पादक मण्डल की केन्द्र बनकर आपने ग्रन्थ सम्पादन में अत्यन्त ही सराहनीय कार्य किया है।

भाई श्रीचन्द जी सुराणा 'सरस' ने ग्रन्थ के सम्पादन एवं मुद्रण भार को स्वीकार कर मुझे एक गुरुतर उत्तरदायित्व से मुक्त कर दिया। ऐसे व्यक्ति विरले ही होते हैं जो मुद्रक भी हो, सम्पादक भी हो कला ममज्ञ भी, प्रकाण्ड विद्वान भी हो तथा साथ ही समर्पित धार्मिक श्रावक भी हो। आपके अथक परिश्रम ने ही जीवन दर्शन शुभकामना, चिंतन, शोध, प्रशस्ति, इतिहास आदि विभिन्न पुष्पों को एक सूत्र में पिरोकर एक सुन्दर सी माला बनाई है जो अब आपके हाथ में है। तेरापन्थ संघ प्रमुख आचार्य तुलसी का हम कोटिश: वन्दन करते हुए अन्तःकरण से आभारी हैं जिन्होंने हमारे अवचेतन मस्तिष्क की अमूर्त कल्पना को मूर्त रूप देने के लिए निरन्तर प्रेरित किया और इस कार्य के साफल्यमंडित होने का महान् आशीर्वाद प्रदान किया।

जैन धर्म, महावीर वाणी और प्रवर्तिनी सज्जनश्रीजी म. सा. का सन्देश दिग् दिगन्त में फैले यही मेरी उत्कट अभिलाषा है।

पुखराज लुनिया एवं समस्त परिवार

卐
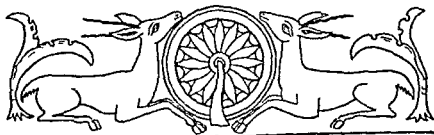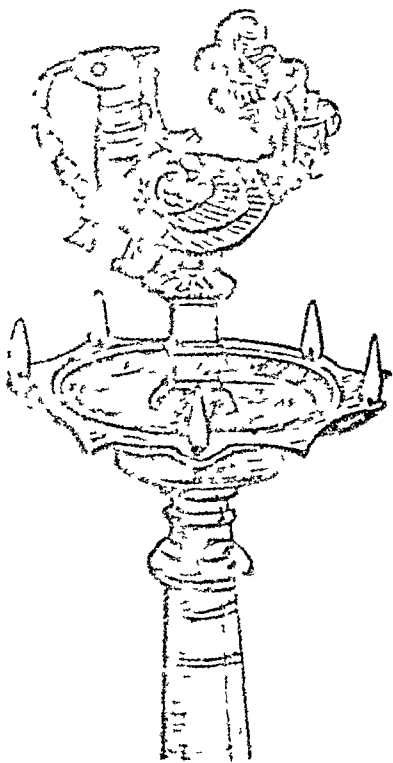
अनुक्रमणिका

प्रथम खण्ड : जीवन ज्योति — १-१७८

व्यक्तित्व परिमल संस्मरण एवं प्रेरक प्रसंग

कृतित्व दर्शन साहित्य-समीक्षा

द्वितीय खण्ड : आशीर्वचन : शुभकामनाएँ, अभिनन्दन १ ३०

६, साध्वी निर्मलाश्रीजी १०, साध्वी मणिप्रभाश्रीजी १०, श्री अविचल श्रीजी म. ११, साध्वी श्री ज्योतिष्प्रभाजी ११, विचक्षणज्योति साध्वी चन्द्रप्रभाश्री ११, साध्वी मुक्तिप्रभाश्री ११ साध्वी मधु स्मिताश्री १२, श्री विमलचन्दजी सुराना १३, श्री हरिश्चन्द्रजी वडेर १३, श्री उमराव मलजी चौरडिया १३, श्री जवाहरलालजी मुणोत १३, जी. आर भण्डारी १४, श्री हजारीमलजी वाठिया १४ श्री राजेन्द्र कुमारजी श्रीमाल १४ डॉ महेन्द्र सागर प्रचडिया १५, श्री चन्दन मल 'चाँद' १५, डॉ महावीरसरन जैन १५, श्री दौलतसिह जैन १५, श्री इन्द्रचन्दजी मालू १३, अमृत राजमी वागरेचा १६ सेठ आनदजी कल्याणजी पेढी (अहमदावाद) १६, जीवाणा खरतर गच्छ संघ १६, श्री सघ, झझनू १६, मीसरीलालजी लोढा १७, जवाहर लालजी राक्यात १७, हस्ती-मलजी मुणोत (सिकन्दराबाद) १७ कालूरामजी वाफना १८, सोहन लालजी पारसान १८, लाल चन्दजी वैराठी १८, शिखर चन्दजी पालावत १६, श्री गुमानमलजी चौरडिया १६, डॉ उम्मेदमल मुनोत १६, सुशील कुमारजी छजलानी २०, श्रीसंघ व्यावर २०, त्रिलोक चन्दजी गोलेच्छा २० श्वे जैन श्रीसघ, टाटोटी २०, सरदार मलजी चौपडा २१, यशपालजी नाहटा २१, विनय कुमार लूनिया २२, निहालचन्दजी सोनी २२, श्री सुरेश लूनिया २२, श्रीमती रेखा लूनिया २२, चिरजी लालजी रेड २३, श्रीमती पन्ना सुकलेचा २३, सुश्री शालिनी लूनिया २३, सुश्री सायर लूनिया २२, श्री मानक चन्दजी लूनिथा २४, श्रीमती प्रेमलता गोलेच्छा २५, श्रीमती कमला देवी लूनिया २५, श्रीमती कमल साँड २५, सुशीलकुमारजी वाठिया २६, हेमराजजी ललवानी २६, श्री प्रकाश वाठिया एव परिवार २६ प्रेमचन्दजी धाधिया २६ जोगराज भेरूलाल भसाली २६, श्री भवरलाल पुखराज २७, श्रीमती निर्मला सखवाल २७, श्रीराकेश जैन २७ श्रीमोहन चंदजी गोलेछा २८, भगवान चन्दजी छाजेड २८, श्रीमती इन्दुवाला सखवाल २८, श्री हुकमी चंदजी लूनिया २६, श्री राजेन्द्र नाहटा २६, प कन्हैयालालजी दक २६, सुश्री सुरजी २६, श्रीमती मेमबाई सुराणा ३०, विजय कुमारजी ववकड ३०, भीखमचन्दजी कोचर ३०, श्री सिरहमलजी नवलखा ३१, श्रीमती प्रेमलता नवलखा ३१, श्री दुलीचन्दजी टोक ३१, बलवन्तराजजी भसाली ३१, गजेन्द्रकुमारजी भसाली ३१, श्री मान-मलजी सुराणा ३१, श्री कन्हैया लालजी लोढा ३२, डॉ. सू. प्र. वर्मा ३२, श्री मोहनजी सोनी ३२, प० चण्डीप्रसादाचार्य ३३, श्री कुमारपाल वि. शाह ३३, मोतीलालजी ललवाणी ३३। जवाहर लालजी लोढा ३४, सौभागमलजी विजयकुमारजी ३४, श्रीमती शकुन्तला सुराणा ३४, श्रीमती निर्मला कडावत ३४, श्रीमती अनिता भडारी ३४, श्रीमती ताराकुमारी झाडचूर ३५, श्रीमती रत्ना ओसवाल ३५, श्रीमती भवरदेवी गोलेच्छा ३५, उत्तमचन्द डागा ३६, राजेश महमवाल ३६, मानमल कोठारी ३६, श्री लहरसिंह बाफना ३६, एस. मोहनचन्दजी ढड्ढा ३६, साध्वी रणभाश्रीजी ३७, श्री ज्ञानचन्दजी लूनावत ३७, महतावचन्दजी वाठिया ३७, श्री हेम चन्दजी चौरडिया ३७, श्रीमती प्रेमदेवी झाडचूर ३७, विमला झाडचूर ३७, कमलेश भडारी ३८।

श्रद्धार्चन काव्यांजलियाँ

पंचम खण्ड : नारी : त्याग, तपस्या एवं सेवा की सुरसरि ११६-१८०

卐

शुभकामना : सन्देश

राज भवन, जयपुर

दिनांक अप्रैल २२, १९८९

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि जैन श्वेताम्बर खरतरगच्छ संघ, जयपुर की ओर से आर्यारत्न प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी महाराज के अभिनन्दन अवसर पर २० मई, १९८९ को अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है।

आशा है धर्मावलम्बियों एवं श्री सज्जनश्रीजी के अनुयायियों के लिए अभिनन्दन ग्रन्थ प्रेरणाप्रद और उपयोगी रहेगा।

मैं अभिनन्दन ग्रन्थ के प्रकाशन की सफलता की कामना करता हूँ।

सुखदेव प्रसाद
(राज्यपाल राजस्थान)

RAJ BHAWAN,

Hyderabad 500041

March 25, 1989

India has been the birth place of many a faith spreading the message of love, tolerance, peace and brotherhood for centuries. Jainism is one such religion reflecting the philosophy of non violence and peaceful co-existence. The Jain Munis are a living symbol of these divine qualities which are so essential for human existence. It is in this context the felicitations organised by the Jain community to honour the Jain Sadhvi Shri Sajjan Shreeji Maharaj at Jaipur on the 20th May, 1989 assume a special significance to the Jain fraternity.

I have great pleasure in sending my cordial greetings and good wishes for the Abhinandan Granth being brought out in this connection and in offering my felicitations to the Jain Sadhvi. I wish the function every success.

KUMUD JOSHI
Governor Andhra Pradesh

शुभकामना : संदेश

मुख्य मन्त्री
राजस्थान
जयपुर
दिनाक २६ मार्च, १६८६

भारतीय सन्तो ने अपने आध्यात्मिक चिन्तन और ज्ञानामृत से न केवल हमारे देश वरन् विश्व के जन-मन को आलोकित किया है। आज के युग मे जब आदर्श और आचरण के बीच खाई गहरी होती जा रही है, तब हमारे सन्तो के निर्मल उपदेश और अधिक प्रासंगिक होगये हैं। इसलिए सन्तो और महात्माओ के प्रति हम अपनी श्रद्धा व्यक्त करे, यह एक शुभ लक्षण है।

मुझे प्रसन्नता है कि इस अनुकरणीय परम्परा मे जैन श्वेताम्बर खरतरगच्छ सघ, जयपुर द्वारा प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी महाराज का अभिनन्दन किया जा रहा है और इस अवसर पर एक ग्रन्थ का प्रकाशन भी किया जा रहा है। मुझे आशा है, इस ग्रन्थ मे ऐसी सामग्री का समावेश किया जायगा जो उदात्त जीवन मूल्यो के प्रसार मे सहायक होगी।

मै प्रकाश्य ग्रन्थ एवं अभिनन्दन समारोह की सफलता के लिए अपनी हार्दिक शुभ-कामनाएँ देता हूँ।

शिवचरण माथुर
(मुख्यमन्त्री राजस्थान)

New Delhi-110 001
March 31, 1989

I am extremely happy to know that Sadhvi Sajjan Shreeji being felicitated and honoured with an Abhinandan Granth Sadhvi Sajjan Shreeji has been undoubtedly a great source of moral and spiritual inspiration and guidance to the Jain community and her literary and spiritual writings and speeches have indeed been monumental I wish the felicitation function all success and pray to Almighty to give Sadhvi Sajjan Shreeji many more purposive years of life, to pursue her chosen path

MAHAVIR PRASAD
(Deputy Minister For Railways)
India

□ □

शुभकामना सदेश

राज्य मन्त्री भारत सरकार

विदेश मन्त्रालय, नई दिल्ली ११००११

१६ मार्च, १६८६

मुझे यह जानकर खुशी हो रही है कि आर्यारत्न प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी महाराज अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशन समिति एक अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित कर रही है।

अभिनन्दन-ग्रन्थ के सफल प्रकाशन की कामना करता हूँ।

कमलाकान्त तिवारी
(विदेश राज्यमन्त्री)

● ●

विजयसिंह नाहर सदस्य (भूतपूर्व)
(भूतपूर्व उपमुख्यमन्त्री पश्चिम बंगाल
कलकत्ता)

श्रीमती १०८ आर्या शशिप्रभाजी महाराज जोग विजयसिंह नाहर का सविनय वन्दन बहुत बहुत कर अवधारियेगा। यहाँ कुशल है, आप महाराजों का सदा सुख साता चाहता हूँ। मैं अस्वस्थ था इसलिए लेख व पत्रोत्तर नहीं भेज सका, कृपया क्षमा करें।

आर्यारत्न प्रवर्तिनीश्री सज्जनश्रीजी महाराज का अभिनन्दन एवं ग्रन्थ प्रकाशन होरहा है जानकर खुशी हुई। सदा स्वाध्यायरत प्रवर्तिनी महाराज ने धर्म ज्ञान प्रसार में जो कार्य किया है वह समाज को अहिंसा एवं अपरिग्रह के रास्ते में आगे बढ़ाने में शक्तिशाली प्रेरणा है। आशा है आज के वैज्ञानिक युग में महाराजश्री द्वारा जन विज्ञान का बराबर प्रसार होता रहेगा। जन विज्ञान ऊपर के मशीनों का विज्ञान नहीं है, यह तो अन्दर में मनुष्य देह के अन्तरात्म विकास का विज्ञान है। जन सन्त इस प्रगति को नये रूप में विश्व के सामने प्रकाशित करें यही कामना रखता हूँ।

अभिनन्दन समारोह की पूर्ण सफलता चाहता हूँ।

विजयसिंह नाहर

शुभकामना : संदेश

२५-३-१९८९

आर्या साध्वी श्री शशिप्रभाश्रीजी

सेवा मे नतमस्तक वन्दन स्वीकृत हो। यह जानकर अत्यन्त हर्ष हुआ कि आर्यारत्न प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी महाराज अभिनन्दन ग्रन्थ का प्रकाशन हो रहा है और यह समारोह दिनांक २० मई १९८९ को जयपुर मे होगा।

प्रवर्तिनीजी ने अपने दीक्षित जीवन के गत ४७ वर्षो में जैन समाज की अटूट सेवा की है। आप अपने मे, आज भारत की समस्त जैन समाज की साध्वी समुदाय मे अपना एक अनूठा स्थान रखती है। आपका व्यक्तित्व व कृतित्व बेजोड़ है।

आप जैन साहित्य के सृजन, भगवान महावीर की वाणी के प्रचार व आत्मकल्याण मे सर्वोपरि है।

जिनेश्वर देव से प्रार्थना है आप शतायु हो। आपकी वाणी व कार्यो से निरन्तर समाज सेवा व धर्म सेवा होती रहे। अभिनन्दन समारोह की सफलता की कामना करता हूँ।

आपका

—*एस० मोहनचन्द ढढ्ढा (मद्रास)*

श्री जैन श्वेताम्बर खरतरगच्छ संघ की कार्यसमिति (१९८८—९१)

१. श्रीमती जतन कवरजी गोलेच्छा — अध्यक्ष

२. श्री उमरावचन्दजी डागा — उपाध्यक्ष	१७ श्री त्रिलोकचन्द गोलेछा — सदस्य
३. श्री शेरसिंहजी जिन्दाणी — उपाध्यक्ष	१८ श्री नेमीचन्द भमाली — सदस्य
४. श्री उत्तमचन्दजी वडेर — सघ मत्री	१९ श्री नथमलजी लोढा — सदस्य
५ तिलकराजजी जैन — सह मत्री	२० श्री प्रकाशचन्दजी खवाड — सदस्य
६. श्री राजेन्द्रकुमारजी जैन — कोपाध्याक्ष	२१. श्री प्रकाशचन्दजी बांठीया — सदस्य
७ श्री सुभाषचन्दजी कास्टीया — सांस्कृतिक मत्री	२२ श्री पदमचन्दजी पुगलिया — सदस्य
८ श्री सातोषचन्दजी डागा — भडारक	२३. श्री प्रतापचन्दजी महता — सदस्य
९. श्री पदमचन्दजी गोलेछा मत्री मंदिर व दादावाडी	२४. श्री प्रतापचन्दजी लूनावत — सदस्य
१० श्रीमती मोनादेवीवैद — मन्त्री—महिला विभाग	२५ श्री प्रेमचन्दजी श्री श्रीमाल — सदस्य
११. श्री जतनमलजी सुराना — मन्त्री—वर्तन वि०	२६ श्री मोहनलालजी डागा — सदस्य
१२ श्री अशोककुमार जी वोहरा — सदस्य	२७. श्री माणकचन्दजी गोलेच्छा — सदस्य
१३ श्री इन्दुमलजी भडारी — सदस्य	२८ विजयकुमारजी सचेती — सदस्य
१४ गिरधारीलालजी टाक — सदस्य	२९ श्री विमलचन्दजी सुराणा — सदस्य
१५ श्री गुमानमलजी लूनिया — सदस्य	३०. श्री हेमचन्दजी चौरडीया — सदस्य
१६ श्री चन्द्रप्रकाशजी वैगानी — सदस्य	३१. श्री हीरालालजी पारख — सदस्य

□□

खण्ड १
जीवन ज्योति

१. जीवन-ज्योति

ग्रन्थनायिका परमविदुषी सयम-तपोमूर्ति प्रवर्तिनी सज्जनश्री जी महाराज की

जीवन ज्योति

"बापूसा ! मैं दीक्षा लूँगी।" नववर्षीय पुत्री ने अपने पिता से बाल सुलभ बोली में कहा।

पुत्री के शब्द सुनकर पिता चकित रह गये। मानस में गम्भीर विचारों की तरगें उठने लगी। किन्तु पुत्री को किसी प्रकार समझाना तो था ही। अत विचारों के उद्वेलन को कुछ क्षण के लिए रोककर, सिर पर हाथ फिराते हुए बोले—

"बेटी ! तुम अभी नादान हो। दीक्षा ग्रहण करना और दीक्षित जीवन व्यतीत करने में कितने कष्ट हैं तुम क्या जानो ? तुम अभी तक सुख-सुविधाओं में पली हो। फूल सी कोमल नाजुक उमर है तुम्हारी। केश लोच करना, सर्दी गर्मी में नगे पैरों चलना जैसा मिले रूखा सूखा, उनका कष्ट है बेटी ! इसलिए दीक्षा का विचार कोई हँसी-खेल नहीं है। साधु-जीवन खाडे की धार है।"

पुत्री चुप हो गयी लेकिन उसके चेहरे पर आते-जाते भावों से पिता ने अनुभव किया कि पुत्री ने दीक्षा का विचार पक्का कर लिया है। इसकी छोटी उम्र है किन्तु समझ और सकल्प बहुत गहरा है। इसके मन में दीक्षित होने के सस्कार जग चुके हैं।

प्रसिद्ध शिक्षा मनोवैज्ञानिक ड्यूई (John Dewey) ने कहा है—'बच्चा कोरी स्लेट नहीं है जिस पर हम मनचाही इबारत लिख दें। वह निश्चित सस्कार लेकर आता है और अनुकूल वातावरण (परिस्थिति) मिलते ही वे सस्कार प्रबल हो उठते हैं तथा उसी के अनुरूप बच्चे का चरित्र निर्माण होता है, उसका भावी जीवन बनता है।' ⁶

इसी को अध्यात्मवादी जैन धर्म-दर्शन में पूर्व-जन्मों के सस्कार कहा गया है और इन शुभाशुभ सस्कारों के बीज पूर्व-जन्मोपार्जित शुभाशुभ कर्मों में निहित रहते हैं।

जिन्होंने पूर्वजन्मों में शुभ कर्मों का उपार्जन किया होता है उन बच्चों के बाल्यावस्था में ही धर्मानुरागी सस्कार सजग होकर जीवन धारा बदल देते हैं

□ साध्वी शशिप्रभाश्री जी
[दानाराय प्रस्तुत ग्रंथ की प्रधान संपादिका तथा बहुश्रुत श्रमणी]
□ प्रियदर्शनाश्री जी (साहित्यरत्न)

इच्छा करते है। और उनके सकल्पो मे फूलो-सी नाजुकता भले ही हो, मगर रेशम-सी दृढता भी होती है।

हमारी चरितनायिका सज्जनकुमारी जी ऐसे ही शुभ-सस्कारो से सम्पन्न महान आत्मा है, तभी तो उन्होने ६ वर्ष की अल्पायु मे ही अपने पिता श्री गुलाबचन्द जी सा· लूणिया के सम्मुख दीक्षा लेने की इच्छा प्रगट की थी।

श्रीमान गुलाबचन्दजी लूणिया धर्मनिष्ठ और श्रेष्ठ विवेकवान थे। वे जैन तत्त्व ज्ञान के गम्भीर ज्ञाता भी थे और कवि मानस भी थे। इसलिए उनके हृदय मे गम्भीरता के साथ सुकुमारता और कल्पनाशीलता भी थी। वे एक सवेदनशील पिता ही नही भावुक कवि और सगीतकार भी थे। इस कन्या को वे लक्ष्मी सरस्वती का सयुक्त अवतार समझते थे। इसलिए एक खास मानसिक सम्मान था उनका सज्जन के प्रति। साथ ही अपनी इकलौती पुत्री के प्रति उन्हे विशेष मोह था। फिर इस मोह का एक विशेष कारण भी था कि अनेक मनौतियो और कई वर्षो की प्रतीक्षा के बाद उन्हे इस कन्या-रत्न की उपलब्धि हुई थी और इसी के कारण उनके जीवन की सूखी बगिया में बहार आई थी, खुशी के फूल खिले थे। ऐसी प्रिय कलेजे की कोर पुत्री के मुख से दीक्षा की बात सुनकर उनका मुख-कमल मुरझा गया, मानस उद्वेलित हो गया, उनके स्मृति-पट पर विगत-जीवन धारावाहिक चलचित्र के समान नाचने लगा।

गुलाब-सा सुरभित जीवन · श्री गुलाबचद जी लूनिया

निवास-नगर—राजस्थान का गुलाबी नगर जयपुर जिसका देश के इतिहास मे विशिष्ट स्थान है। मुगल बादशाहो ने भी इस नगर के शासको और व्यापारियो को विशेष सम्मान दिया, प्रामाणिक माना तथा ब्रिटिश शासको के समय भी व्यापारियो ने अपनी प्रामाणिकता को अक्षुण्ण रखा।

इसी नगर को जवाहरात के व्यापार मे विशिष्ट गौरव प्राप्त था। यहाँ के जौहरी प्रामाणिक, रत्नो के सच्चे पारखी और व्यवहारकुशल माने जाते रहे। बोली के मीठे, स्वभाव के मधुर व चतुर कुशल व्यापारी गुलाबी नगरी के गौरव थे।

इन जौहरियो मे जैन धर्मानुयायिको की सख्या अधिक थी। वैसे भी जयपुर नगर में जैनो का निवास विशेष रूप से रहा है।

इन्ही मे जैन श्रावक गुलाबचन्द जी लूनिया[1] भी थे। आप जवाहरात के व्यापारी थे। आप अपने व्यापार मे तो दक्ष थे ही, बहुत धर्मनिष्ठ, सच्चरित्र, सदाचारी भी थे। अपनी गुलाबी मुस्कराहट से आपने जन-जन के हृदय मे अपना स्थान बना लिया था। अपने हसमुख स्वभाव और व्युत्पन्नमति के कारण आप लोकप्रिय हो गये थे, सभी आपको सम्मान देते थे। वैभव के बीच आपका जीवन सदाचारपूर्ण और धर्मनिष्ठ था। आप बारह व्रतधारी श्रावक थे।

स्वाध्यायनिष्ठा—स्वाध्याय आपके जीवन का अग था। अनेक ग्रन्थो के गभीर अध्ययन के परिणामस्वरूप साम्प्रदायिकता की भावना आपके हृदय से निकल गयी थी। यद्यपि आप तेरापंथी समाज के प्रमुख श्रावक थे, फिर भी धार्मिक मामलो मे उदार और व्यापक दृष्टि रखते थे।

---

[1] परिचय के लिए लूनिया वंशावलि देखें।

स्वर विशेषता—प्रकृति ने आपको भले ही 'लूनिया' गोत्र में अवतरित किया किंतु आपका हृदय तो मिश्री सा मीठा, और स्वर तो शहद से भी अधिक मधुर रसवाही था। प्रभुभक्ति के गीतों में आपको विशेष रस आता था। स्वर भी महीन था। इन गुणों के कारण समाज में आपका अग्रगण्य स्थान था। धार्मिक उदारता के कारण जयपुर, अजमेर, सागानेर आदि में जब भी पूजा (भगवद्पूजा) होती आपको बुलाया जाता, आप भी सहर्ष और सोत्साह सम्मिलित होते और पूजा-गायन करते। गायकों में आपका अग्रगण्य स्थान था।

रचनायें—आपकी कवित्वशक्ति अद्भुत थी। आपने प्रभुस्तवन, उपदेशी पद, गुरुभक्ति पद-आदि सैकड़ों की संख्या में रचे। जो प्रायः सभी प्रकाशित हो चुके हैं। इनमें से जानपन के पच्चीस बोल तेरहद्वार प्रश्नोत्तर, तत्वबोध, श्रावक आराधना (पद्यमय), अर्थसहित प्रतिक्रमण आदि अब भी उपलब्ध हैं।

धार्मिक शिक्षा प्रसार—आप भलीभांति जानते थे कि बाल्यावस्था में दिये गये संस्कार जीवन भर स्थायी रहते हैं। बच्चों को धार्मिक संस्कार बचपन में ही मिलें इस दृष्टिकोण से आपने 'तेरापथ स्कूल' की स्थापना अपने सदप्रयासों से करवाई। राजस्थान में बच्चों की शिक्षा के लिए इस प्रकार का प्रयास आपके विद्या प्रेम और उर्वर कल्पनाशील मानस का प्रतीक है। उस समय यह 'प्राइमरी स्कूल' था जो प्रगति करता हुआ अब 'हाईस्कूल' बन गया है।

जैसे आप धर्मनिष्ठ और सदाचारी थे वैसी ही धर्मनिष्ठा सुशीला जीवन-संगिनी की आपको प्राप्ति हुई थी। यह भी एक महान पुण्य संयोग ही समझना चाहिए। आपकी धर्मपत्नी का नाम मेहताब देवी था। मेहताब कहते हैं— चन्द्रमा को। चन्द्रमा के समान ही आपका स्वभाव शीतल और सभी जनों के लिए सुखद था।

मेहताबदेवी व्रत नियम-त्याग-तप आदि का दृढ़तापूर्वक पालन करती थी। रात्रि भोजन एवं जमीकन्द का सर्वथा त्याग था। यावज्जीवन के लिए सिर्फ २५ प्रकार के फल और सब्जियों का नियम था। शेष का त्याग था। विभिन्न प्रकार के तप करती रहती थी।

आपका धार्मिक ज्ञान भी प्रशंसनीय था। जानपने के २५ बोल, चर्चा के १३ द्वार, बावन बोल, गत्यागति, अल्पबहुत्व, पाचसौ तेतीसा का स्तोक, छह लेश्या, नियण्ठा खण्डाजोणि (क्षेत्र समास) इत्यादि कई स्तोक (थोकड़े) तथा दण्डक संग्रहणी आदि के कई बड़े बड़े स्तवन, नव बाड़ व आराधना की ढाल आपको कण्ठस्थ थी तथा साथ ही इनका विशिष्ट ज्ञान भी था, जिसका चिंतन-मनन-पारायण आप सामायिक साधना के दौरान किया करती थी।

किन्तु जिस प्रकार चम्पा बेल इतनी सुन्दर, सुगंधित होते हुए भी फलहीन होती है। यह प्रकृति का एक क्रूर मजाक ही समझना चाहिए। उसी प्रकार मेहताब देवी की जीवन बेल में भी एक सन्तान-फल का अभाव खटकता था। इस अभाव की पूर्ति के लिए दोनों पति-पत्नी चिन्तित रहते थे, किन्तु वह अभाव, अभाव ही बना रहता।

ऐसा भी नहीं था कि मेहताबदेवी बांझ हो, उनके सन्तान होती ही न हो। सन्तान तो होती थी किन्तु एक वर्ष की होते होते काल के गाल में समा जाती। भरी गोद फिर सूनी हो जाती। खिला फूल फिर मुर्झा जाता, बसन्त आने से पहले काल का प्रहार हो जाता। माता पिता के हृदय में विषाद की गहरी रेखा खिंच जाती। जिस मातृत्व की कामना प्रत्येक स्त्री संजोती है, वह साकार होना और काल के प्रहार से कल्पना महल के समान बिखर जाता।

वाँझपन ही नारी-जीवन का अभिशाप है। वांझ स्त्री को लौकिक जन अमगल मानते है। फिर भी वाँझपन को पूर्वकृत कर्मो का दोप मानकर स्त्री सह भी जाये, लेकिन सन्तान होकर चल वसे तो दारुण दुःख होता है। रत्न हाथ मे आकर लुट जाये तो वह कैसे धीरज धारण करे ?

जैसे अच्छा-सा सुन्दर फल कोई किसी को दे और फिर कुछ क्षण वाद ही उसे छीन ले, पाने वाला अतृप्त ही रह जाय, उसका आनन्द न ले सके तो अतृप्तिजन्य दारुण वेदना होती है, हृदय मे शूल से चुभते है, वैसी ही वेदना मेहतावदेवी को भी होती थी, पर धर्मनिष्ठ और विवेकवती होने के कारण वह यह वेदना भी समता से सह जाती थी।

इतने पर भी उसका मातृत्व तो अतृप्त ही रह जाता था। अपने वच्चे की तुतली भाषा मे 'माँ' शब्द सुनने को उसने कान तरसते रह जाते। मन मे हूक उठती—जव मेरे भाग्य मे पुत्र-सुख है ही नहीं तो दैव मुझे पुत्र देता ही क्यो है ? इधर दिया और उधर छीन लिया, हे दैव ! एक अवला के साथ तू इतना क्रूर मजाक करता ही क्यो है ?

· · · और फिर अपने मन को समझा लेती—मेरे पूर्वजन्म के कर्म ही ऐसे है। अवश्य ही मैंने पूर्वजन्मो में किसी की इष्ट वस्तु चुरायी होगी। किसी को इसी प्रकार पीडित किया होगा, उन कर्मों का यह दुष्फल मेरे सामने आ रहा है। और वह सन्तोष कर आशावान हो जाती। किन्तु दीर्घायु पुत्र-प्राप्ति के लिए तथा उसके जीवन की रक्षा के लिए किसी भी देवी-देवता की मनौती नहीं करती थी।

लेकिन अन्य सभी पारिवारिकजनो की इच्छा यही थी कि 'मेहताव देवी की सन्तान जीवित रहे।' और इस इच्छा की पूर्ति के लिए मनौतियाँ करते रहते थे।

शुभ-स्वप्न सकेत—एक रात्रि ! मेहतावदेवी अपनी सुख-शैय्या पर निद्राधीन थी। वन्द आँखो मे सपने तैरने लगे—सत्सग हो रहा है। सन्तो का प्रवचन चल रहा है। उसमे मै वैठी प्रवचन सुन रही हूँ। मेरे समीप ही एक दिव्य देवागना वैठी है। प्रवचन समाप्त हुआ। देवागना जैसे मेरे शरीर मे समा गई। सन्तो की और धर्म की जय-जयकार होने लगी, श्रोताओ, भक्तजनो का हर्षनाद तुमुल स्वर मे व्याप्त हो गया। अचानक ही आँख खुल गई। देखा तो वही कक्ष।

मेहतावदेवी का चिन्तन उभरा—कितना मधुर और सुहावना स्वप्न था। काश ! आँख न खुलती। प्रवचन चलता ही रहता। यह जागृति तो वैरिन वन गई। सुख की घडियाँ लूट ले गई।

चिन्तन आगे वढा—और सव लोग तो जाते दिखाई दिये लेकिन वह देवागना कहाँ चली गई ? कितनी सुन्दर थी। कैसी मनोहारी मूरत ' ··· अरे वह तो मेरे शरीर मे ही समा गई।

पुलक उठा मेहतावदेवी का तन-मन ! हर्ष से हिया छलक उठा। सोचा—अपनी खुशी मे पति-देव को भी साझीदार वनाऊँ। उठी, पति को जगाया और पूरा स्वप्न सुना दिया।

गुलावचन्द जी का मन मोद से भर गया, शब्द निकले गुलावी हँसी के साथ—उत्तम स्वप्न है। तुम माता वनोगी। तुम्हारी कन्या साधारण नही, कन्या-रत्न होगी, जिसके उजास से हमारा हृदय-घट तो प्रकाशित होगा, पूरा समाज उससे उजाला पाकर धन्य अनुभव करेगा अपने आपको।

और मेहतावदेवी अभी से अपने को धन्य अनुभव करने लगी। ज्यो-ज्यो गर्भ मे वृद्धि हुई, माता की धर्म प्रवृत्तियाँ दिनोदिन प्रवर्द्धित होती चली गई। अव उन्हे सुपात्रदान, गुरु-दर्शन-वन्दन, प्रवचन श्रवण आदि मे अधिक आनन्द आता। सभी व्यवहारो मे विनय विशेष रूप से समाहित हो गई।

जन्म एव शैशव

जन्म—गर्भकाल पूरा होने पर श्रीमती मेहतावदेवी ने एक बालिका को इसी प्रकार जन्म दिया, जैसे प्राची दिशा सूर्य को जन्म देती है, जिसके प्रकाश से जन जन चेतनाशील हो जाता है। वह दिन था विक्रम सवत् १९६५ की वैशाखी पूर्णिमा।

भारत के धार्मिक इतिहास मे इस पूर्णिमा का भी विशेष महत्व है। करुणा के प्रसारक तथागतबुद्ध का जन्म भी वैशाखी पूर्णिमा को हुआ, उन्हे बोधि भी इसी दिन प्राप्त हुई और इसी दिन उनका शरीर भी छूटा। इसी कारण यह पूर्णिमा बुद्ध जयन्ती के नाम से भारत, चीन, जापान आदि एशिया खण्ड के अनेक देशो म प्रसिद्ध है।

नवजात पुत्री जिसका नाम माता पिता ने सज्जनकुमारी रखा और आज सज्जनश्री म० के रूप म हैं, उनमे भी करुणा, क्षमा, आदि अनेक सद्गुण साकार रूप मे परिलक्षित होते हैं।

पुत्री के जन्म से माता पिता के हृदय मे जो अधकार था वह मिट गया, उसका स्थान प्रकाश ने ले लिया, उनके मन मे मोद भर गया। सारे परिवार मे खुशियाँ छा गईं।

लेकिन मानव मन शकालु भी तो है। आप से पहले जितनी भी सन्तानें हुईं वे सभी एक वर्ष की ही मेहमान रही अत पारिवारिक जनो, विशेष रूप से परिवार की बुजुर्ग स्त्रियो के मन मे इस नवजात पुत्री के अमगल की आशका भी उठ खडी हुईं उन्हे इसके जीवन की चिन्ता लग गई।

यद्यपि यह अकाट्य सत्य है कि कोई भी अन्य व्यक्ति किसी भी व्यक्ति के आयुष्य को एक क्षण भी नही बढा सकता और न स्वय व्यक्ति यहाँ तक कि तीर्थंकर भी नही।

भगवान महावीर का अन्त समय समीप था। उस समय शक्र देवराज उनके चरणो म उपस्थित हुआ, करबद्ध होकर प्रार्थना की उसने—भगवन्! आपकी जन्म राशि पर भस्मक ग्रह चल रहा है। यदि इसी समय आपने शरीर त्याग दिया तो आपके शासन की बहुत अवनति होगी। दो हजार वर्ष तक इसका प्रभाव रहेगा। अत आप आयुष्य के कुछ क्षण बढा लें तब तक यह भस्मक ग्रह उतर जायेगा, आप सर्वसमर्थ हैं, आयु के कुछ क्षण बढा सकते हैं।

इस पर भगवान महावीर ने फरमाया—हे इन्द्र! ऐसा न कभी हुआ है और न होगा ही, आयुष्य का एक क्षण भी बढाया नही जा सकता।

इस तथ्य को जानते-समझते हुए भी मानव यही सोचता है कि कुछ टोटके करके नवजात बालक बालिकाओ को दीर्घायुष्य बनाया जा सकता है। विपाक सूत्र मे ऐसे टोटको का उल्लेख मिलता है। यथा—शकट को शकट (गाडी) के नीचे से निकाला गया था।

घर की बुजुर्ग स्त्रियो ने भी ऐसा ही एक टोटका किया। सोचा—इस बार पुत्री को नमक से तोलकर लिया जाय। ऐसा ही किया भी गया। भावना यही रही कि इस प्रकार करने पुत्री दीर्घायु वाली होगी।

शैशव क्रीडाएं—बालिका माता पिता तथा परिवारीजनो को हर्षित करती हुई दिनोदिन बढने लगी। उसकी शिशु क्रीडाओ को देख देखकर सभी हर्षित होते।

मिल्टन (Milton) ने अपनी एक रचना मे लिखा है—

Crawling of child shows its future

(शिशु की क्रीडाएँ उसके भावीजीवन की सकेत होती है।)

एसी ही एक लोकोक्ति है—पूत के पाँव पालने मे दिखाई देते हैं।

इसी वात से यह स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि सामान्य वालको की शिशु-क्रीडाएँ सामान्य होती है और विशिष्टो की विशिष्ट। उस युग मे सामान्य वालिकाओ की सामान्य-क्रीड़ा थी—गुड़ियो से खेलना, उनका व्याह रचाना आदि।

किन्तु हमारी चरित नायिका तो विशिष्ट थी, विशिष्ट सस्कार लेकर उन्होने यह जन्म ग्रहण किया था। अत उनकी शिशु-क्रीडाएँ भी विशिष्ट थी।

जिस आयु मे लडकियाँ गुड्डा-गुडियो के व्याह रचाया करती है, उस वचपन की आयु में आप कभी गणेशजी का चित्र लेकर उसकी पूजा करती तो कभी राम-लक्ष्मण-सीता का अभिनय करती।

आपकी सर्वाधिक प्रिय क्रीडाएँ थी—मुख पर मुहपत्ति वाँधकर साध्वी का रूप रखना और छोटी-छोटी कटोरियो के पात्रे वना रूमाल की झोली वनाकर वहरने जाना। कभी आप साधु के समान परदा लगाकर भोजन करने का अभिनय करती तो कभी ऊँचे आसन पर वैठकर अन्य वालिकाओ को धर्मोपदेश देती—वैसा ही जैसे तीर्थंकर भगवान समवसरण मे विराजमान होकर वारह प्रकार की धर्म-परिषदा को धर्म का उपदेश प्रदान करते है।

इन क्रीडाओ मे आपको वहुत रस आता।

वाल-सुलभ क्रीडाओ के साथ ही सत्य को जानने की आपकी जिज्ञासा प्रवल थी। विनय-विवेक और तर्कवुद्धि का भी आप मे निरन्तर विकास हो रहा था।

माता अपनी पुत्री की इन क्रीडाओ को देखकर फूली न समाती, अपने मातृत्व को सफल-सार्थक हुआ समझती।

माता जैसे गौरवपूर्ण शव्द के लिए अँग्रेजी मे 'मम्मी' शव्द है। अँग्रेजियत के रग में रगे वच्चे अपनी माता को मम्मी कहने लगे है, माताएँ भी इस सम्वोधन से वहुत खुश होती है और वच्चो को ऐसे वोलने के लिए प्रोत्साहित भी करती है। लेकिन वे नही जानती कि 'मम्मी' शव्द का वास्तविक अर्थ क्या है।

'मम्मी' शव्द का वास्तविक अर्थ है 'शव' (डैड वोडी)। मिस्र के पिरामिडो मे हजारो साल पुराने जो मसाला लगे हुए शव रखे है, उन्हे मम्मी (mummy) कहते है। ऐसी ही एक मम्मी जयपुर के अजायवघर मे भी रखी हुई है।

साथ ही अव पिता को 'डैडी' कहने का भी फैशन चल पडा है। कुछ वच्चे तो डैडी को भी शोर्ट करके डैड कहते है। डैड का अर्थ होता है—मरा हुआ व्यक्ति।

भारतीय जनजीवन मे पश्चिम की सस्कृति की मूर्खतापूर्ण नकल की जाती है और ये नकलची अपने को 'मॉडर्न' या आधुनिक भाषा मे 'सभ्य' सुसस्कृत (कल्चर्ड) समझते है। वे नही जानते कि सभ्यता और सस्कृति अपने उच्च आदर्श और उदात्त विचार-सस्कारो की पोषक होनी चाहिए शोषक नही अस्तु—

धार्मिक सस्कार—यद्यपि आधुनिक माता-पिता इस प्रवाह मे वहे जा रहे है। लेकिन हमारी चरितनायिका की माता मेहतावदेवी अलग ही प्रकार की थी। असली भारतीय नारी थी, उनके सस्कारो मे उच्च धार्मिकता थी, विचारशीलता भी महक थी। वह वच्चे को—अपनी पुत्री को धार्मिक सस्कार देने मे अपने मातृत्व का गौरव मानती थी। वह पुत्री को अतिशय लाड-प्यार करती थी, वात्सल्य लुटाती थी किन्तु साथ ही अपने कर्तव्य का उन्हे भान भी था। जानती थी—माता हजार शिक्षको के वरावर होती है। और वच्चे की प्राथमिक शिक्षिका माँ ही होती है। जैसे सस्कार माता अपनी सन्तान

मे भर देती है, वे जीवन भर स्थायी रहते हैं। इसी कारण वे अपनी पुत्री (सज्जनकुमारी को धर्म-सम्बन्धी शुभ संस्कार देने मे सदा सजग—सावधान रहती।

जब सज्जनकुमारी की अवस्था मात्र ३ वर्ष की ही थी, तभी से माता अपनी प्रिय पुत्री को ब्राह्ममुहूर्त मे अपने साथ ही उठाती और मुहपत्ति लगाकर सामायिक करवाती। सामायिक के दौरान ही माला, धार्मिक पाठ और थोकडे याद करवाती। वे स्वय भी दिन मे तीन सामायिक करती थी। सामायिक के बाद नगर मे विराजमान सत सतियो के दर्शन-वन्दन को जाती तो साथ मे अपनी पुत्री को भी ले जाती। जयपुर मे सदा से ही साधु-साध्वियो का निवास और आवागमन बराबर बना रहता है, वर्तमान मे वही स्थिति है। अत उन्हे सहज ही सत सतियो के दर्शन-वन्दन का लाभ प्रतिदिन ही मिल जाता था।

इस प्रकार माता अपनी पुत्री (चरितनायिका) के हृदय मे धार्मिक संस्कारो की जड जमा रही थी। उन्ही संस्कारो का परिणाम सुदृढ चारित्र सम्पन्न सज्जनश्रीजी म० के रूप मे आज हमारे सामने हैं।

व्यावहारिक शिक्षा—आपकी व्यावहारिक शिक्षा का प्रारम्भ आपश्री के पिता श्रीगुलाबचन्दजी सा० द्वारा हुआ।

उन दिनो जयपुर मे जवाहरात के चार पाँच ही शोरूम थे। उनमे श्रीगुलाबचन्दजी का शोरूम अधिक प्रसिद्ध था। प्रसिद्धि का कारण था आपकी प्रामाणिकता नैतिकता और शालीनतापूर्ण शिष्ट-मिष्ट व्यवहार। उनके व्यवहार और वाणी मे अभिजात्यता थी। उनका सपर्क अनेक राजपरिवारो व बडे ब्रिटिश अधिकारियो के साथ भी था। इसी कारण विदेशी लोग भी खिंचे चले आते थे। साथ ही व्यापार भी दिनोदिन प्रगति पथ पर बढ रहा था, लाभ भी हो रहा था।

सज्जनकुमारी पिता की लाडली तो थी ही। अभी उसकी चार वर्ष की आयु ही थी किन्तु पिताश्री उसे अपने साथ दूकान पर ले जाते। वहा वह पिताश्री और फोरेनर्स (विदेशी व्यक्ति) के मध्य हुआ वार्तालाप सुनती। विदेशी तो अंग्रेजी ही बोलते थे और गुलाबचन्दजी भी उनसे अंग्रेजी मे ही बात करते थे। बालसुलभ जिज्ञासावश सज्जनकुमारी उस वार्तालाप को ध्यान से सुनती, समझने का प्रयास करती और फोरेनर्स के जाने के बाद पिताश्री से पूछकर उन शब्दो का ज्ञान प्राप्त करती। इस प्रकार अंग्रेजी शब्दो का ज्ञान भी सज्जनकुमारी का बढने लगा। कभी अपने मुनीमजी से भी जिज्ञासा शात करती। मुनीमजी की इगलिश काफी अच्छी थी। जब वे सज्जनकुमारी के मुख से इगलिश शब्दो का स्पष्ट और शुद्ध उच्चारण सुनते तो बहुत प्रसन्न होते और उन शब्दो का भाव (sense) बडे प्रेम से समझा देते।

सज्जनकुमारी की तीव्र बुद्धि से पिता श्री गुलाबचन्दजी सा बहुत प्रभावित हुए। यद्यपि उस समय लडकियो की उचित शिक्षा का विशेष प्रचलन नही था, किन्तु पिता ने अपनी पुत्री को शिक्षा दिलाने का निर्णय कर लिया।

उस समय स्थिति यह थी कि लडको के लिए तो हाईस्कूल थे, किन्तु लडकियो के लिए राजकीय प्राइमरी और मिडिल स्कूल ही थे। और जो स्कूल थे भी उनमे उच्चकुलीन लोग अपनी पुत्रियो को भेजना उचित नही समझते थे।

कई प्राइवेट सामाजिक स्कूल भी थे—

(१) लीलाधरजी के उपाश्रय मे जैन श्वेताम्बर मिडिल स्कूल—इसमे ओसवाल समाज तथा अन्य समाजो के लडके पढते थे। यह वर्तमान मे हाईस्कूल है।

(२) स्थानकवासी समाज द्वारा सचालित कन्या पाठशाला। इसका वर्तमान नाम सुबोध हायर सैकेन्डी स्कूल है। इसमें कन्याओ के शिक्षण की व्यवस्था है। यह प्रगति पथ पर है।

(३) वीर बालिका उच्च माध्यमिक विद्यालय व कॉलेज भी वर्तमान में है। इसका श्रीगणेश ५० वर्ष पहले पूज्या श्री स्वर्णश्री जी म. सा की प्रवचन-प्रेरणा से हुआ था।

किन्तु जब चरितनायिका ५ वर्ष की थी, उस समय ये स्कूल नहीं थे। तेरापंथ समाज की ओर से भी कोई स्कूल नही था।

लेकिन तेरापंथ समाज मे एक ऐसे स्कूल की आवश्यकता अवश्य अनुभव की जा रही थी जहाँ (पुत्री) कन्याओ को व्यावहारिक शिक्षण के साथ-साथ धार्मिक-सस्कार भी मिले। इस दृष्टिकोण से तेरापथ समाज की ओर से एक पाठशाला स्थापित की गई, जिसकी स्थापना में श्री गुलाबचन्दजी लूनिया (चरितनायिका के पिता) अग्रणी थे।

इसी पाठशाला मे चरितनायिका जी को प्रवेश कराया गया। इसके अतिरिक्त घर पर भी शिक्षण शुरू किया गया। पडित मीठालालजी सा हिन्दी, गणित तथा अन्य विषयो का ज्ञान प्रदान करते थे तो पडित श्री मदनमोहन जी शास्त्री सस्कृत का शिक्षण देते थे। विद्यालय मे भी ये ही पढाते थे। छोटे-छोटे लड़के-लडकी साथ ही पढते थे।

हमारी चरितनायिका धार्मिक क्रिया, सामायिक-प्रतिक्रमण आदि सीखने के लिए तत्रस्थ विराजित साधु-साध्वीजी म तथा समीपस्थ धार्मिक पाठशाला मे जाती थी। यह पाठशाला सेठ श्री फूलचन्द जी सा. द्वारा सचालित थी और यहाँ मेहताब जी यतिनी[1] तथा भवरबाई (अध्यापिका) धार्मिक तथा सामान्य ज्ञान देती थी। यहाँ विशेषरूप से उच्चारण की शुद्धता और अर्थ के चिन्तन पर विशेष ध्यान दिया जाता था।

ये दोनो गुण तो आप मे प्रारम्भ से ही विकसित थे, साथ ही आपकी बुद्धि भी कुशाग्र थी, अतः थोड़े समय मे आपने काफी ज्ञान उपार्जित कर लिया। आठ वर्ष की आयु तक तो आपने पच्चीस बोल, चर्चा के तेरह द्वार, बावन बोल, दण्डक हुन्डी, अनुकम्पा की ढाले आदि कई छोटे-बड़े थोकडे कण्ठस्थ कर लिए थे।

महान् आत्माओ के उद्गार—धार्मिक पाठशाला की सहपाठिनियो चाँदबाई, सरदारबाई, मिश्रीबाई, उमरावबाई आदि (ये सब मन्दिरमार्गी थी) के साथ एक बार आप इमलीवाले उपाश्रय मे (यह वर्तमान में विचक्षण भवन के नाम से प्रसिद्ध है) जहाँ स्वनामधन्या पुण्यश्री जी म. अपने शिष्या समुदाय के साथ विराजते थे, उनके दर्शन-वन्दन हेतु गयी। उनकी तेजस्वी, शांत मुखमुद्रा को देखकर आप बहुत प्रभावित हुई। फिर तो आप नित्य ही जाने लगी।

इसी प्रकार एक बार, जब आप ५ वर्ष की ही थी, अपने पिताजी के साथ, जयपुर मे ही विराजित खरतरगच्छीय परम आगमज्ञ योगिराज शिवजीरामजी म. के दर्शनार्थ गयी। आपको देखकर योगिराज के मुख से उद्गार निकले—

---

[1] यति के समान स्त्री यतिनी होती थी। अब तो नामशेष हो चुकी है।

'सेठ सा० आपकी यह कन्या तो बड़ी भाग्यशालिनी है। इसकी शालीनता और शुभलक्षणा को देखकर ऐसा अनुभव होता है कि आगे चलकर यह कुलदीपिका धुरंधर विदुषी साध्वी बनेगी और शास्त्रज्ञा बनकर ख्याति प्राप्त करती हुई उच्च पद पर प्रतिष्ठित होगी।"

योगिराज के ये उद्गार आज अक्षरश: सत्य सिद्ध हो रहे हैं।

ओत प्रोत धार्मिकता—यद्यपि चरितनायिका सज्जनकुमारी का बचपन वैभव मे व्यतीत हो रहा था, घर मे सभी प्रकार की सुविधाएँ थी, माता पिता का अत्यधिक वात्सल्य था, फिर भी सज्जनकुमारी का जीवन धार्मिकता से ओत प्रोत था। वह अपने स्वीकृत व्रत नियमो का दृढता से पालन करती थी। धर्म का जीवन मे प्रमुख स्थान था। इसीलिए ६ वर्ष की आयु मे ही उसने दीक्षा लेने की भावना प्रगट की थी, जिसे सुनकर पिताश्री गुलाबचन्द जी सा० गहरे विचारो मे डूब गये थे।

विवाह—मोह की बडी विचित्र विडम्बना है। यद्यपि गुलाबचन्दजी धार्मिक थे, धर्म के मर्म को जानते थे, बारहव्रती श्रावक थे, फिर भी पुत्री के प्रति अत्यधिक प्रेम था। वे पुत्री को दीक्षित होते देखना नही चाहते थे। पुत्री प्रेम के प्रवाह मे उनका चिन्तन दूसरी ओर मुड गया। सोचा—इसका विवाह कर देना चाहिए। गृहस्थी मे फँसकर यह साध्वी बनने की बात भूल जायेगी। घर मे रहकर ही जितनी सभव होगी, धार्मिक साधना करती रहेगी।

आज के युग मे ९ वर्ष की कन्या के विवाह के बारे मे कोई सोच भी नही सकता। ऐसी बात कहने वाले को भी आज के युग मे दकियानूसी और पुराणपंथी कहा जायगा। बहुत से लोग उसका मजाक भी बना सकते हैं, लेकिन उस युग मे यह आम प्रथा थी। मान यहा तक कि पाँच वर्ष तक की कन्याओ के विवाह कर दिये जाते थे। मनु के ये शब्द जन मानस मे गहरे पैठ चुके थे—

नव वर्षा भवेद् गौरी दश वर्षा च रोहिणी

सभी उच्चकुलीन व्यक्ति अपनी नववर्षीया पुत्री को विवाह-बंधन मे बाँध देना अपना कुल गौरव समझते थे।

इसके विपरीत आज के युग मे विवाहयोग्य आयु २० वर्ष से ऊपर मानी जाती है। स्त्री शिक्षा के प्रसार के कारण कन्या की शैक्षिक योग्यता कम-से-कम बी० ए० है। उससे पहले माता पिता उसके विवाह की बात भी नही सोचते, उसे स्वय विवाहयोग्य ही नही समझते। स्वय कन्याओ की भी ऐसी ही विचारधारा है।

लेकिन श्री गुलाबचन्दजी जिस युग मे जी रहे थे, उसी युग से प्रभावित थे। अत वे भी अपनी पुत्री सज्जनकुमारी, जो अभी नौ वर्ष की ही थी, उसका विवाह करना अपने कुल-गौरव के अनुरूप ही समझते थे।

इसके अतिरिक्त सज्जनकुमारी की दीक्षा लेने की भावना ने उन्हे और भी उत्प्रेरित कर दिया। उन्होंने अपनी पुत्री का विवाह शीघ्र कर देने का निर्णय कर लिया।

निर्णय के अनुसार पण्डितजी को सज्जनकुमारी की जन्म-पत्रिका दिखाई गई।

एक प्रसिद्ध पंडित द्वारा बताया गया जन्म कुण्डली का फलादेश

शुभ स० १९६५ वैक्रमीये वैशाख शुक्ला १४ शुक्रवासरे सूर्य स्पष्ट १-२ इष्ट घटी ५३/२३ समये मीन लग्ने विशाखा नक्षत्रे तृ० चरणे जन्म।

दीक्षा योग—गुरु शनि का त्रिकोण योग—त्यागवृत्ति वैचारिक शक्ति अर्थात् सोचने-समझने की विशेष शक्ति।

बुध शुक्र स्थान परिवर्तन योग—तीव्रज्ञान, सीलीसीटर जैसा बुद्धिमान। सूर्य आत्मबल का प्रतिनिधि है उस पर शनि की पूर्ण दृष्टि होने से सर्वत्याग की भावना तथा सोचने समझने की बुद्धि होती है। दशमेश उच्च का है। उस पर शनि की त्रिकोण दृष्टि है तथा दशम भाव पर पूर्ण दृष्टि है यह योग भी वैराग्यकारक है।

चन्द्रमा से दशम स्थान में उच्च राशि का गुरु है इससे उच्च श्रेणी का आत्मिक कार्य करने वाला होता है।

लेखन कला योग—तीसरा स्थान लग्न में स्थित शनि से दृष्ट है तथा उसमें 'बुध' बैठा है अत. वह लेखनकला में कुशल बनाता है।

शासन-सत्ता योग—चन्द्रमा लग्नेश को देखता है तथा तृतीयेश पर भी दृष्टि है। तृतीयेश मगल गृह के साथ है तथा तीसरे चौथे स्थान के स्वामियो का परस्पर परिवर्तन योग है अत. शासन सत्ता योग बनता है। शनि गुरु की राशि मे व गुरु की ही दृष्टि मे होने से महान् तीव्र अध्यात्मज्ञान और कलाओ पर स्वामित्व प्राप्त कराता है। शासन सत्ता का भी महान् योग करता है।

शिष्यादि का योग—गुरु शनि का त्रिकोण योग, व्ययेश पर गुरु की दृष्टि होने से शिष्यादि का योग तथा शास्त्रवेत्ता योग करता है। तृतीयेश का केन्द्र मे और चतुर्थेश का पराक्रम मे परिवर्तन योग होने से महान् धैर्य और समाधि योग होता है।

आगम ज्ञान—लाभेश पर गुरु की दृष्टि और लाभेश शनि तथा लग्नेश गुरु का त्रिकोण योग। सुखेश पर मोक्षेश की दृष्टि महान् उपदेशक व महान् ज्ञानी बनाती है तथा ब्रह्मचर्य मन का धैर्य महान् समाधिधारक दृढश्रद्धाशील तथा उद्यमी बनाती है।

आत्मबल योग—मगल धनेश और भाग्येश होकर केन्द्र मे तृतीयेश के साथ बैठा है यह योग आत्मबली मनोभिष्ट कार्य सिद्ध करने वाला तथा महान् आत्मबली बनाता है।

उच्चपद तथा दीर्घायु योग—शंख योग—लग्नेश और दशमेश त्रिकोण मे दीर्घायु और उच्चपद कारक है।
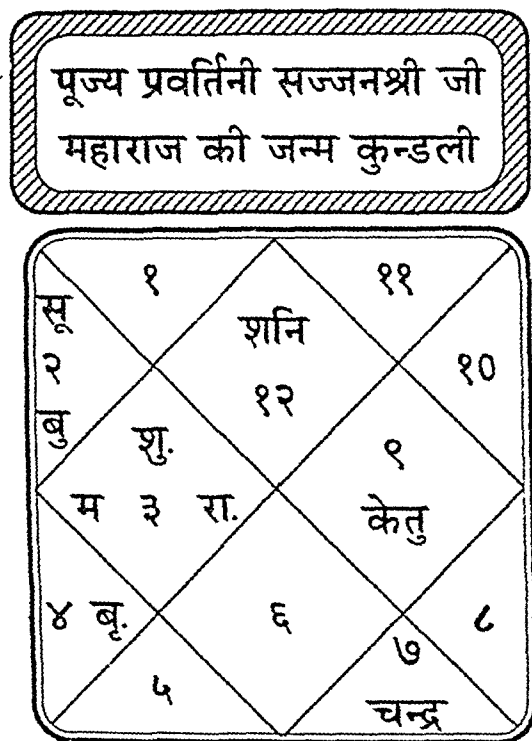
साहित्यिक अनुसंधान करने वाला, वाक्चातुर्य, न्यायज्ञाता बनाता है।

गुरु की दृष्टि शनि पर होने से आगमों को जानने वाला, न्यायशास्त्र का ज्ञाता और सीसरो सिटर जैसा प्रभावशाली व वाक्चातुर्य से युक्त बनाता है।

इस प्रकार ज्योतिषी द्वारा बताये गये सभी फलादेश गुरुवर्याश्री के जीवन में फलीभूत होते हुए देखे जा रहे हैं।

× × × ×

पंडितजी ने उक्त जन्म पत्रिका पढी, ग्रह-गोचर लग्न आदि देखे, जन्म कुण्डली पर गौर किया और गम्भीर चिन्तन में डूब गये। उनके मस्तक पर गम्भीरता की रेखाएँ उभर आईं।

पंडितजी की गम्भीर मुखमुद्रा को देखकर श्री गुलाबचन्दजी चिन्तित हो गये, उनका उद्विग्न स्वर निकला—

"क्या बात है पंडितजी ! आप गम्भीर कैसे हो गये ? पुत्री की जन्म-कुण्डली में कुछ अशुभ है क्या ?

पंडितजी ने गम्भीर स्वर में कहा—

"अशुभ तो कुछ भी नहीं, सब शुभ ही शुभ है। ग्रह तो सभी उत्तम हैं, ऐसी जन्म-पत्री तो विरलों की ही होती है। आपकी पुत्री अवश्य ही तेजस्वी, यशस्वी बनेगी।"

"फिर आपकी गम्भीरता का क्या कारण है ?" गुलाबचन्दजी की उद्विग्नता अब भी कम नहीं हुई थी।

"गम्भीरता का कारण है।" पंडितजी ने कहा—"आपने जिस इच्छा से मुझे यह जन्म-पत्रिका दिखाई है, उसमें मुझे कुछ बाधा दिखाई दे रही है।"

"तो क्या पुत्री का विवाह नहीं होगा ?" गुलाबचन्दजी के मुख से अनायास ही ये शब्द निकल गये क्योंकि उनके मस्तिष्क में सज्जनकुमारी की दीक्षा भावना तैर गई थी।

"स्पष्ट ही सुनना चाहते हो तो सुनो।" पंडितजी ने कहा— 'तुम्हारी पुत्री मंगलीक है। इसलिए इसका विवाह मंगलीक लड़के के साथ करना उचित रहेगा। किन्तु फिर भी मंगल दाम्पत्य-सुख में बाधा तो देगा ही। फिर भी घबराने की बात नहीं है, आप मंगलीक लड़के की ही खोज करें। सब कुछ मंगल होगा।"

पंडितजी इतना कहकर चले गये और श्री गुलाबचन्दजी मंगलीक लड़के की खोज में जुट गये।

२ वर्ष के अनवरत प्रयास के बाद जयपुर में ही स्व० दीवान श्री नथमलजी सा गोलेच्छा[1] के पौत्र एवं श्री सौभागमलजी के सुपुत्र श्रीमान् कल्याणमलजी की जन्म पत्री सज्जनकुमारी की जन्म-पत्री से अच्छी मिली।

निराशा हताशा की घड़ियाँ समाप्त हुईं। प्रसन्नता का वातावरण बन गया। यथेष्ट दान दहेज, स्वागत-सत्कार के साथ १२ वर्षीय सज्जनकुमारी का विवाह श्री कल्याणमलजी के साथ कर दिया गया। सज्जनकुमारी वहू बनकर ससुराल में पहुँच गई गृहलक्ष्मी के रूप में।

नया घर, नया वातावरण, अपरिचित लोग—यही सब कुछ मिलता है नववधू को ससुराल में। उन्हीं लोगों और वातावरण के साथ उसे पुनः मिल जाना पड़ता है जिस व्यक्ति को पहले कभी देखा तक नहीं उसे सर्वस्व समर्पण करके उसके व्यक्तित्व के साथ एकाकार होने में ही नववधू की सार्थकता है।

---

१ गोलेच्छा परिवार का परिचय जीवन-वृत्त के परिशिष्ट में देखें।

इस समामेलन, समायोजन और समर्पण में ससुराली जनों का सहयोग अपेक्षित होता है। वे यदि प्रेम से, वात्सल्य और प्यार से नववधू को अपनावें, सास बहू को पुत्री से बढ़कर माने, ननद उसे अपनी बहन जैसा प्यार दे, ससुर अपनी पुत्री माने तभी सुखद वातावरण बनता है। साथ ही नववधू भी अपनी विनय, शालीनता, कर्तव्यपरायणता, शिष्ट-मिष्ट वाणी से ससुरालीजनों के हृदय में अपना स्थान बनाती है।

ये सब गुण सज्जनकुमारी को माता की जन्म घूटी के साथ ही मिल गये थे और १२ वर्ष तक उनका सिंचन-सवर्धन होता रहा था। अत. वह शीघ्र ही ससुराल के परिवारी जनो मे घुल-मिल गयी। सभी उसकी प्रशसा करते थे।

पारिवारिक कर्तव्यो के साथ-साथ सज्जनकुमारी अपने स्वीकृत व्रत-नियमो का दृढ़ता से पालन करती थी, किन्तु उसका व्रत-नियम-पालन उसके पतिदेव को अच्छा नही लगता था। वे व्रत-नियम छोडने के लिए कहते, पर सज्जनकुमारी यद्यपि जवाब तो न देती, पर टाल जाती, धर्माचरण न छोड़ती। इस पर पतिदेव जब उग्र हो जाते तो सज्जनकुमारी का हृदय व्यग्र हो जाता, मन मे वैराग्य-भावना भर जाती, पर अपनी भावना को प्रगट न करती क्योंकि इससे परिवार मे संक्लेश का वातावरण बन सकता था, जिसे सज्जनकुमारी नही चाहती थी।

कोटा मे निवास और विचार-परिवर्तन—विवाह के एक वर्ष पश्चात् आप किसी कार्यवश अपने सपूर्ण परिवार के साथ अपनी भूआसासुजी के घर कोटा गये। भूआसासुजी सेठानी श्री उमराव कुँवरवाई सा० थी। ये सेठ श्रीनथमलजी की पुत्री और कोटा के प्रसिद्ध रायबहादुर की पदवी से विभूषित माननीय सेठ केसरीसिह जी बाफना[1] की धर्मपत्नी थी। ये मदिरमार्गी आम्नाय को मानती थी।

भूआसा० ने कल्याणमलजी को काम सीखने के लिए अपने पास रख लिया, फलत सज्जन-कुमारी को भी भूआसा० के पास रहने का अवसर प्राप्त हो गया।

भूआसा० अपने धर्म क्रियाओ में बहुत ही चुस्त और दृढ थी। उनके घर का खान-पान, रहन-सहन सात्विक था, वातावरण भी धर्ममय था। भूआसा० का व्यक्तित्व काफी प्रभावशाली था। घर मे तो उनका प्रभाव था ही, समाज में भी काफी प्रभाव था, उनकी इच्छा को ही आज्ञा मानकर शिरो-धार्य किया जाता था।

चरितनायिका को वहाँ का वातावरण और भूआसा० का स्वभाव बहुत पसद आया। इसके अतिरिक्त चरितनायिका सज्जनकुमारी की रुचि जमने का एक और भी कारण था, वह था नदकुँवर वाई सा०।

नंदकुँवरवाई सा० श्री सज्जनकुमारीजी की हमउम्र (समवयस्क) थी। उनका विवाह सज्जनकुमारीजी के विवाह के दो महीने बाद हुआ था। ये सेठ केसरीसिहजी की द्वितीय पत्नी थी। यह विवाह स्वयं उमरावकुँवरजी ने आग्रह करके कराया था। कारण यह था कि उमरावकुँवरजी के दो पुत्र हुए किन्तु उनमे से जीवित कोई न बचा। तदुपरान्त दीर्घकाल तक कोई सन्तान नही हुई। संतान-प्राप्ति के लिए स्वय उमरावकुँवरजी ने आग्रह करके नदकुँवर का विवाह अपने पति सेठ केसरीसिहजी के साथ कराया।

समवयस्क होने के कारण सज्जनकुमारीजी और नंदकुँवरजी मे पारस्परिक प्रेम हो गया।

---

[1] बाफना परिवार का परिचय परिशिष्ट मे दिया गया है।

माओ, मेरु पर्वतो आदि का ज्ञान प्राप्त किया। परिणामत मन्दिर, जिनदर्शन-वन्दन, प्रतिमा-पूजन आदि के प्रति आपकी दृढ श्रद्धा बन गई।

गुरुवर्याश्री से आपने स्वत प्रेरित होकर मंदिर-मार्गी सामायिक-प्रतिक्रमण तथा जिन-प्रतिमा-दर्शन-वन्दन-पूजन विधि विस्तार से सीखी और उसी के अनुसार सामायिक आदि करने लगी। जिन-प्रतिमा-दर्शन-वन्दन-पूजन आपके जीवन के नित्य-नियम बन गये।

आपने गुरुवर्याश्री से सप्तस्मरण, गौतमरास, शत्रुजयरास आदि भी सीखे और इन्हे जब आप प्रात सेठानी उमरावकुँवर बाईसा० को सुनाती तो वे हर्ष-विभोर हो जाती।

इस प्रकार धार्मिक क्रियाओ और पारिवारिक सुमेल में दो-ढाई साल कब बीत गये, पता ही नही चला।

किन्तु अचानक इस व्यवस्था मे परिवर्तन आया। हुआ यह कि उमरावकुँवरबाईजी एकाएक ही अस्वस्थ हो गईं, चिकित्सा के लिए जयपुर लाना पडा। आप भी इनके साथ जयपुर आ गईं। चिकित्सा प्रारभ हो गई।

उन दिनो (वि० स० १९८० मे) जयपुर पूज्याश्री हुलासश्री जी म० सा० तथा पूज्या श्री चम्पाश्री जी म० सा० (महत्तरा पद पर इनका इसी वर्ष स० २०४५ मे स्वर्गवास हो गया है) इमली वाले उपाश्रय मे विराज रहे थे। सेठानीजी की अस्वस्थता के बारे मे सुनकर दर्शन देने पहुँचे। सेठानी जी की भावना को मान देकर प्रतिदिन दोनो साध्वीश्री दर्शन देने आती और मागलिक सुनाती।

कुछ तो श्रद्धापूर्वक मागलिक श्रवण का प्रभाव और कुछ समुचित चिकित्सा का असर सेठानी जी के स्वास्थ्य मे दिनोदिन सुधार आने लगा। स्वास्थ्य सुधर जाने पर भी चिकित्सको ने कुछ दिन और आराम करने का सुझाव दिया।

भूआसा० की प्रेरणा से आप इमली वाले उपाश्रय मे जाने लगी तथा प्रतिक्रमण आदि सीखने लगी। आठ दिन मे राइ देवसी प्रतिक्रमण सीख लिया, एक दिन मे ही भक्तामर स्तोत्र, २ दिन में अजित शान्ति, डेढ (१-१/२) दिन मे बड़ी शान्ति सीख ली। इनके अतिरिक्त जो भी पाठ शेष थे, वे भी अत्यन्त अल्प समय मे सीख लिए।

आपकी तीव्र स्मरण शक्ति, शालीन स्वभाव, शिष्ट व्यवहार आदि से गुरुवर्या पू० श्री हुलासश्री जी म० सा० तथा पूज्य श्री चम्पाश्री जी म० सा० बहुत प्रभावित हुई। वे परस्पर विचार करती-सज्जनकुमारी दीक्षा लेने योग्य है। इस जैसी बुद्धिशालिनी और प्रतिभाशालिनी दीक्षा ले ले तो जैन शासन मे चार चाँद लग जाये।

यदा-कदा ये शब्द सज्जनकुमारीजी के कानो मे भी पड जाते। उनकी सुप्त वैराग्य-भावना पुन अंगडाई लेने लगी। मात्र सोलह वर्ष की अवस्था में ही दीक्षा लेने को आप आतुर हो गईं।

किन्तु अभी समय परिपक्व नही हुआ था, काललब्धि नही आई थी, प्रत्याख्यानीकषाय का क्षयोपशम नही हुआ था, अत दीक्षा की बात तो दूर, धार्मिक क्रियाओ मे भी अन्तराय आ गया।

हुआ यह कि भूआसा० तो स्वस्थ होकर कोटा लौट गईं और आप जयपुर मे ही रह गईं। आपके सास-ससुर और पतिदेव ने मन्दिर आना-जाना तो बन्द किया, धार्मिक क्रियाओ पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया। आपका मन्दिर, उपाश्रय जाना बन्द हो गया।

इस स्थिति से आपश्री को दुःख तो हुआ पर मन मे यह सोचकर कि अभी निकाचित चारित्र-मोहनीय का उदय चल रहा है—मन मे समता धारण कर ली। परिवार की शान्ति के लिए आपने मौन का आश्रय लिया।

समता का अभिप्राय निष्क्रियता नही है। आप निष्क्रिय होकर नही बैठ गयी अपितु अपनी दीक्षा ग्रहण की भावना को साकार रूप देने का हर सभव प्रयास करती रही। इन प्रयासो से यद्यपि आपका पारिवारिक जीवन सघर्षमय बन गया, परन्तु आपने बुद्धि सतुलन नही खोया, सक्लेश की स्थिति उत्पन्न नही होने दी। इस विषम परिस्थिति मे भी ज्ञानार्जन एव तपस्या आदि करती रही।

दीक्षा पूर्व के प्रयास—ज्ञानाभ्यास—घर का कार्य निबटाकर आप एकात मे बैठ जाती और प्रभु स्तुति मे लीन हो जाती। आपने इसी समय मे अपनी कवित्व शक्ति का प्रयोग कर अनेक भजन, वैराग्योत्पादक सज्झाय, स्तुति, चैत्यवन्दना की रचना की। कवित्व-कला आपको जन्मजात सस्कारो मे पिताश्री से मिली थी। आपकी दीक्षा के बाद इन रचनाओ के सकलन 'सज्जन विनोद', 'कुसमाजलि', 'जनगीताजलि' नाम से प्रकाशित हुए हैं जिन्हे पढ-सुनकर श्रोता आज भी भक्ति रस से सराबोर हो जाते हैं। और लघुवय मे रची उन रचनाओ से आपश्री की सहज प्रतिभा का अनुमान लगा सकते हैं।

इसी समय का उपयोग आपने विभिन्न प्रकार की अच्छी-अच्छी पुस्तकें पढने मे किया। आपके पिताजी के यहा सभी प्रकार की पुस्तको का सग्रह था, जिनमे उपन्यास, कहानी, चरित्र, पत्र-पत्रिकाएँ आदि थी जो आपकी अध्ययन रुचि के कारण अछूती नही रही होगी। इन पुस्तको को पढने से आपके व्यावहारिक ज्ञान मे भी वृद्धि हुई।

जब आपने पजाब मैट्रीक्यूलेशन की मैन्युअल ग्रामर आफ सस्कृत पढी तो आप सस्कृत के काव्य महाकाव्य आदि पढने/समझने लगी। रुचि और बढी तो अमरकोश का एक काण्ड भी कण्ठस्थ कर लिया। (अमरकोश पूर्णरूप से सस्कृत भाषा मे रचा गया है। इसके तीन काण्ड हैं और इसमे एक एक शब्द के अनेक पर्यायवाची शब्द दिये गये हैं।) इस प्रकार आपका अध्ययन बराबर चलता रहा।

मन्दिर उपाश्रय जाने का सिलसिला कभी चलने लगता और कभी टूट जाता। किन्तु साधु साध्वियो के दर्शन होते ही रहते थे।

कारण यह था कि आपके निवास-स्थान कटले मे काफी लम्बी-चौडी जमीन पडी थी (उस जमीन पर वर्तमान मे अग्रवाल कालेज है) अत साधु साध्वी स्थडिल के लिए वही पधारते थे, अत आपश्री को आते-जाते अनायास ही उनके दर्शन का लाभ प्राप्त हो जाता था। साथ ही सीखने की—ज्ञानाभ्यास की प्रेरणाएँ भी मिल जाती थी। कौमुदी सीखने की प्रेरणा पूज्याश्री सत्यश्रीजी म सा से मिली। पूज्याश्री पधारती तो पाठ ले लेती और मौका देखकर सुना भी देते।

सूत्राध्ययन की रुचि आपको प्रारम्भ से ही थी। क्योकि आप जानती थी कि ज्ञान ही प्रकाश है, मिथ्यात्व का अधकार ज्ञान से ही दूर होना है श्रद्धा भी ज्ञान से पुष्ट होती है और ज्ञान-ज्योति से कर्मों का भी क्षय होता है, ज्ञान से मुक्ति प्राप्त होती है। जैसा कि एक कवि ने कहा है—

> कोटि जन्म तप तपें, ज्ञानबिन कर्म झरें जे।
> ज्ञानी के छिन माहि त्रिगुप्ति तैं सहज टरैं ते॥
> ज्ञान समान न आन जगत मे सुख को कारन।
> इहि परमामृत जन्म जरा मृति रोग निवारन॥

ज्ञान का महत्व तो गीता मे भी स्वीकार किया गया है—

> ज्ञानाग्नि सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते तथा॥

अत गृहकार्य से निवृत्त होकर आप भी सूत्र स्वाध्याय में प्रवृत्त हो जाती। आपके पिताजी के यहाँ अमोलकऋषिजी महाराजकृत सूत्रों के हिन्दी अनुवाद की प्रतियाँ थी, वे सब भी आपने पढीं। इनसे आपका ज्ञान और गम्भीर हुआ।

तप-अभ्यास—ज्ञानाभ्यास से आप तप की महिमा से भी परिचित हो गई थी। दशवैकालिक मे तो धर्म को अहिसा, सयम और तप रूप ही बताया है। आप जानती थी कि कर्मो की निर्जरा मे तप बहुत सहायक होता है, इसी से कर्मो की निर्जरा होती है। तप से ही आध्यात्मिक परिपूर्णता की सिद्धि होती है।

आपके मानस मे विचार उभरे—मेरा अन्तराय कर्म चल रहा है, चारित्रमोहनीय प्रबल है, तभी तो मेरी दीक्षा-भावना सफल नही हो रही है, अत तप करना चाहिए जिससे कर्मो के बन्धन शिथिल हो और दीक्षा के भाव सफल हो।

अत आपश्री ने कई प्रकार की तपाराधना की। यथा—उपधान तप, नवपद ओली, विशति स्थानक तप, पक्खवासा, सोलिया, मासक्षमण, कल्याणक एवं वर्षीतप।

आप नवपद ओली की महिमा से तो परिचित थी ही। अत इस तप की आराधना प्रारम्भिक आयु मे ही शुरू कर दी थी। शहर मे साध्वीजी महाराज होते तो उनके पास चली जाती अन्यथा मदिर मे ही अन्य साधर्मी बहनो के साथ नवपद ओली की साधना शुरू कर देती। इस प्रकार १८-१९ ओलियाँ हो चुकी थी।

वि. सं १९९४ मे पूज्या प्रवर्तिनी श्रीज्ञानश्रीजी म० सा० उपयोगश्रीजी म० सा० का अपनी शिष्या समुदाय के साथ जयपुर चातुर्मास हुआ। उनकी निश्रा में नवपद की ओलियाँ आपने बडी धूमधाम से सपन्न की।

वि० स० १९९६ मे पुन तपस्याओ की लहर आई। कारण था—पूज्या प्रवर्तिनी श्री ज्ञानश्रीजी म० सा०, उपयोगश्रीजी म० सा० अपनी गुरुबहिनो के साथ जयपुर मे विराज रही थी। वे धार्मिक क्रियाओ—तपस्या आदि के लिए प्रेरणा देती रहती थी।

फाल्गुन चौमासी का प्रतिक्रमण चल रहा था। अन्तिम कायोत्सर्ग के पश्चात् साध्वीजी ने वर्षी तप की प्रेरणा दी। भावना ने साकार रूप लिया। बहनों की प्रार्थना पर वहाँ विराजित ८ साध्वीजी (पू. श्री समर्थश्री जी म सा, श्री चरणश्री जी म सा, श्री इन्द्रश्री जी म सा, सत्प्रेरिका श्री उपयोगश्री म सा, श्री सुमनश्रीजी म सा, श्री जीवनश्रीजी म. सा., श्री विचित्रश्रीजी म सा एवं वीरश्रीजी म. सा) ने भी वर्षी तप करने का निश्चय किया। सोने मे सुहागा हो गया। साथ ही लगभग ४०-४५ श्राविकाएँ भी तैयार हो गई।

चरितनायिका श्री सज्जनकुमारीजी भी उपाश्रय जाती रहती थी। आपको वर्षी तप की बात ज्ञात हुई तो आपने भी वर्षी तप करने की भावना पतिदेव और सासूजी के समक्ष रखी। सौभाग्य ही था कि आपको अनुमति मिल गई। प्रसन्नतापूर्वक आप भी वर्षी तप की साधना मे सम्मिलित हो गईं। सभी तपस्वी बहनो की तपाराधना निर्विघ्नतापूर्वक चल रही थी। छह महीने व्यतीत हो चुके थे।

एक बार सभी की भावना बरखेडा तीर्थ के दर्शनो की हुई। यह तीर्थ जयपुर से १० कोस दूरी पर है और यहाँ विराजित ऋषभदेव भगवान् की प्रतिमा तालाब से निकली है। इस भावना को मण्डल की प्रमुखा पूज्या श्री उपयोगश्रीजी के अपनी सहमति प्रदान कर दी। परमभक्त श्राविका श्रेष्ठा अखण्ड सौभाग्यवती सखाणी बाई ने अपने उद्गार व्यक्त किये—बरखेडे का तो छ री पालित सघ निकालना चाहिए। इस पर शिखरु बाई सा० तुरन्त बोल उठी—सघ तो आप जैसी भाग्यशाली ही ले जा सकती है।

मखाणीबाई के बात छू गई। उन्होंने घर आकर अपने पति (धर्मनिष्ठ श्रावक श्रेष्ठ मागीलालजी सा गोलेच्छा) के समक्ष बरखेडे संघ में ले जाने की बात रखी तो प्रसन्न होकर बोले—भावना बहुत शुभ है, अवश्य संघ ले जाओ। अभी तो मुनिराजा (दर्शनविजयजी आदि जो त्रिपुटी के नाम प्रसिद्ध थे) का भी संयोग है। ऐसा स्वर्ण अवसर सौभाग्य से ही मिलता है। इस अवसर को चूकना नहीं चाहिए।

मागीलाल जी की स्वीकृति से सभी ओर हर्ष की लहर फैल गई। ३४ श्रावकों को साथ लेकर मागीलालजी ने श्री दर्शनविजय जी म सा के समक्ष संघ निकालने और उसमें उनके सम्मिलित होने की प्रार्थना की तो म सा ने भी सहमति दे दी। फाल्गुन शुक्ला द्वितीया के दिन, जब बरखेडा तीर्थ का वार्षिक उत्सव मनाया जाता है, उस अवसर पर संघ ले जाने का निश्चय हो गया।

मागीलाल जी गोलेच्छा से चरितनायिका जी के परिवार का गोत्रीय सम्बन्ध तो था ही निकट का कौटुम्बिक पारिवारिक सम्बन्ध भी था। अतः इनके परिवार से भी इस संघ में सम्मिलित होने का आग्रह किया गया।

फाल्गुन कृष्णा १४ संध्या के शुभ मुहूर्त में खूब धूमधाम से हर्षोत्सव के साथ चतुर्विध संघ ने जयपुर से प्रस्थान किया। इस संघ में लगभग १२०० श्रावक श्राविका पू दर्शनविजय जी आदि ३ मुनिराज और प्र प्र श्री ज्ञानश्री जी म सा, श्री उपयोगश्री जी म सा तथा ८ साध्वियां भी थीं। सज्जनकुमारी तो साथ थी ही।

बरखेडा तीर्थ छ'री पालित संघ—संघ बडे हर्षोल्लास और बडबाजे के साथ बरखेडा तीर्थ फाल्गुन शुक्ला २ के दिन पहुँचा। वहाँ बडे ठाठ-बाट के साथ स्नात्र पूजा हुई। संघपति मागीलालजी गोलेच्छा को माला पहनाई गई, मध्याह्न में बडी पूजा (सत्तरहभेदी पूजा) तथा उसके उपरान्त स्वामी वात्सल्य का कार्यक्रम रखा गया। सभी कार्यक्रम सानन्द सम्पन्न हुए। पूज्य गुरुदेव और साध्वी जी म सा के सान्निध्य में सब संघ ने संघपति श्री मागीलालजी गोलेच्छा का अभिनन्दन कर सम्मान किया। वस्तुतः ७ दिन का यह स्वीट एण्ड शोर्ट (छोटा और मधुर) संघ जयपुर के इतिहास में अपनी अमर छाप छोड गया।

ऐसे आयोजन पुण्यानुबन्धी पुण्य के कारण बनते हैं साथ ही जैन शासन की प्रभावना में भी वृद्धि होती है।

वहां से गुरुदेव (तीनों मुनिराज) तो आगे की ओर विहार कर गये किन्तु साध्वी समुदाय वापिस जयपुर आया। उसके दो कारण थे—प्रथम, जयपुर संघ का अत्याग्रह और द्वितीय वर्षीतप की साधना और इस तप का पारणा जयपुर में ही करना उचित समझा गया।

वर्षीतप का पारणा अक्षय तृतीया के दिन जयपुर रेलवे स्टेशन के समीप पुगलिया के मन्दिर (जहाँ ऋषभदेव भगवान की प्रतिमा विराजमान है और उसी से जुडी हुई धर्मशाला है) में बडी धूमधाम से अठाई महोत्सवपूर्वक स्वयं श्रीमान् गोकुलचन्दजी पुगलिया की धर्मपत्नी की ओर से हुए। इसका कारण पारणा करवाने की उनकी उत्कृष्ट भावना थी, इसीलिए संघ की अनुमति से उन्हें यह लाभ प्रदान किया गया।

धर्माराधना का प्रभाव—वर्षीतप तथा त्याग-संयम तप की रुचि से चरितनायिकाजी के वैराग्य संस्कार दिनादिन दृढ होते जा रहे थे। इन सबका प्रभाव आपके परिवारीजनों पर भी पडना शुरू हो गया। आपकी संगति का असर होने लगा। सत्संगति तो पापी को भी धर्मात्मा बना देती है, धर्म-विरोधी को धर्मानुरागी बना देती है।

"मेरी ओर से आज्ञा है। ये (पत्नी सज्जनकुमारीजी) अपनी वैराग्य भावना पूर्ण करे, दीक्षा ले और साध्वी वनकर ज्ञान-दर्शन-चारित्र मे निरन्तर प्रगति करे।"

दीक्षा की अनुमति से सज्जनकुमारी को अत्यधिक हर्प हुआ, आत्मिक सुखानुभूति हुई। उनकी भावना पूर्ण होने जा रही थी।

मुहूर्त निकलवाया गया दीक्षा का। पडित ने पचाग देखकर आषाढ शुक्ला २ का दिन शुभ वताया। दीक्षा-तिथि का निर्णय हो गया।

तिथि का निर्णय होते ही पूज्यवर्या श्री उपयोगश्रीजी म० सा० ने वैराग्यवती सज्जनकुमारी को साधु प्रतिक्रमण प्रारम्भ करवा दिया, जिसे अपनी कुशाग्रवुद्धि से चरितनायिका ने ५-६ दिन में ही पूर्ण कर लिया और ३६० गाथाओ का पाक्षिक सूत्र केवल २ ही दिन मे पूर्ण कर लिया।

अव आपके पितगृह तथा ससुराल मे दीक्षा की तैयारियाँ होने लगी। आपके साथ ही वैरागिन चौथीवाई कोचर की भी दीक्षा थी।

आखिर दीक्षा दिवस आ ही पहुँचा। सज्जनकुमारी के लिए आज सोने का सूरज उगा था। उनके हृदय मे ऐसी खुशी थी जैसे अमूल्य मणि मिल गई है। उनकी रोम राजि विकसित थी। रग-रग से वैराग्य का दिव्य रस छलक रहा था।

प्रात'कालीन नित्य नैमित्तिक क्रियाएँ, यथा—सामायिक, प्रतिक्रमण, माला, पाठ-सप्तस्मरण, भक्तामर आदि करके तथा सासारिक रीति-रिवाजो से निवृत हो, स्नान आदि से स्वच्छ वन, अपने निवास स्थान पर ही दीक्षोपलक्ष्य मे स्वय अपने द्वारा वनवाये हुए लघु देरासरवत् नूतन जिनमन्दिर में पूजा हेतु पधारी। आज द्रव्य-पूजा का आखिरी दिन था। अत वहुत ही भक्तिभाव और उल्लास के साथ स्नात्र पूजा सहित अप्ट प्रकारी पूजा की। उसके पश्चात् चैत्यवन्दनादि भाव-पूजा से भी निवृत्त हुई।

वरघोडे की तैयारियाँ हो रही थी। हाथी, घोडे, वैडवाजो व गीतो की मधुर ध्वनियो व मंडल आदि से वरघोडे की शोभा मे चार चाँद लग रहे थे। धर्मशाला मे वरघोडा प्रारम्भ हुआ।

वैरागिन सज्जनकुमारी तथा चौथीवाई शिविकाओ मे विराजमान थी। दोनो ओर चमर ढुलाए जा रहे थे। उदार हृदय से वर्षीदान देती हुई आगे वढती जा रही थी। हजारो लोग आकर्पित और चकित थे। जैनेतर लोग तो वहुत ही आश्चर्य कर रहे थे। सभी ओर से अहोधन्य, अहोधन्यं की गूँज हर्षित हृदय से निकल रही थी। लोग मुक्तकण्ठ से जैनशासन की अनुमोदना करके पुण्य लाभ ले रहे थे।

जुलूस जौहरी वाजार से होकर नथमलजी (नथमलजी सज्जनकुमारी के दादा ससुर साहव का नाम था) के कटले मे पहुँचा। हजारो लोग इकट्ठे हो गये, क्योकि लोगो के लिए दीक्षा का प्रसंग नया ही था। सभी लोग देखने के लिए लालायित थे। कटले का विशाल प्रांगण जनमेदिनी से खचाखच भर गया। जयपुर के आस-पास के लोग भी आये थे। शामियाना खचाखच भर जाने से लोग वृक्षो पर वैठे थे, इस आशा के कि सम्पूर्ण दृश्य दिखाई दे।

पूर्व दिशा में लगभग दो फुट ऊँचा, लम्वा-चौडा, स्टेज बना हुआ था। उसके ठीक वीचोवीच भगवान का समोसरण था। ठीक उसके सामने पूज्य गुरुदेव मणिसागरजी म० सा० एक ऊँचे पट्ट पर विराजित थे। उसी ओर एक पड़े पट्टे पर प्र० श्री ज्ञानश्रीजी म० सा०, श्री उपयोगश्रीजी म० सा० आदि अपने साध्वीमडल के साथ विराज रही थी। पूज्य गुरुदेव ने भ० महावीर की जयकार से जन कोलाहल

को शांत करके क्रिया प्रारम्भ करवाई तथा सेठ सा० कल्याणमलजी एवं सब संघ की सहमति से वैरागिन सज्जनकुमारी को उपस्थित जनसमूह के समक्ष चारित्रोपकरण शिरोमणि चारित्रालंकार रजोहरण प्रदान किया। दीक्षोपकरणों के साथ आप साध्वी वेश धारण करने के लिए चली गई।

अब गुरुदेवश्री ने अपनी मधुर वाणी में त्याग-तप संयम दीक्षा के महत्व पर ओजस्वी प्रवचन दिया, जिसका संक्षिप्त सार इस प्रकार है—

बंधुओ!

जैन धर्म-संस्कृति में श्रमण-जीवन आदर्श माना गया है। यद्यपि श्रावक और श्रमण दोनों के ही जीवन का लक्ष्य त्याग है तथापि श्रेष्ठता और ज्येष्ठता में श्रमण अग्रणी है। श्रावक को श्रमणोपासक कहा गया है, उसका कारण यह है कि श्रावक श्रमणों के त्याग-तपस्यामय जीवन का अनुकरण करने वाला होता है, उसका आदर्श भी श्रमण-जीवन होता है।

श्रमणपरम्परा में स्वाध्याय, ध्यान, त्याग व तप ये चार चरण हैं। इन चारों का संगम ही श्रमण होता है।

श्रमण दीक्षा ग्रहण करना कोई सरल कार्य नहीं है। श्रमणव्रतों का पालन खांडे की धार पर चलना है। जिसका चित्त समाहित है, परित्यक्त भोगों को पुनः भोगने की जिसमें इच्छा भी नहीं जो षट्काय (प्राणीमात्र) का प्रतिपालक है और पंचास्रवों से पूर्णतया विरक्त है, सम्यग्दर्शन, ज्ञान चारित्र में जिसकी दृढ़रुचि, प्रतीति है वही श्रमणदीक्षा ग्रहण करता है और साधुत्व का पालन कर सकता है।

इस प्रकार लम्बी देशना चलती रही।

इसी प्रकार पू० साध्वीजी म० सा० ने भी अपने उद्गार व्यक्त किये।

सज्जनकुमारीजी श्वेत वस्त्रों में ओघा डांडा पात्रों से सुसज्जित मण्डप में पधारी। उस समय वे सरस्वती के समान प्रतिभासित हो रही थीं। सभी की दृष्टि उनकी ओर उठ गई।

शेष क्रिया प्रारंभ हुई। पूज्य गुरुदेव ने सज्जनकुमारीजी को प्रवर्तिनीवर्या श्रद्धेया श्री ज्ञानश्रीजी की शिष्या घोषित किया और नाम दिया—सज्जनश्रीजी।[1]

दीक्षोपरान्त आपने थोड़े ही शब्दों में अपने दीक्षित होने की खुशी प्रगट की।

इसके बाद दीक्षा कार्यक्रम सम्पूर्ण हुआ।

इसके साथ ही चौथीबाई कोचर की भी दीक्षा संपन्न हुई। उनका नाम विबुधश्री रखा गया और आपको वसंतश्रीजी म० सा० की शिष्या घोषित किया गया।

सभी ने नूतन साध्वीजी को वंदना की तथा पूज्य गुरुदेवश्री से मांगलिक और मोदक की प्रभावना लेकर अपने-अपने स्थान को प्रस्थान किया।

श्रावक-श्राविकाओं तथा साध्वीजी म० के साथ नूतन साध्वी सज्जनश्रीजी दादावाड़ी पधारीं। उस दिन आपके चौविहार उपवास था। आप जैसी विदुषी साध्वी को पाकर गुरुवर्याजी को तो हर्ष था ही, समस्त साध्वीमंडल भी हर्षित था।

---

1 इस नाम का कारण यह था कि आपका द्वारा रचित २५० ३०० स्तवन सज्झाय आदि 'सज्जन' नाम से प्रसिद्ध थे। और इन स्तवनों की रचना आपश्री ने १५ १६ वर्ष की आयु से शुरू कर दी थी। नाम के अनुरूप आपका जीवन भी था।

सं. १९९९ का प्रथम वर्षावास—जयपुर

यद्यपि शास्त्रीय विधान के अनुसार दीक्षा के बाद ही विहार कर देना चाहिए। किन्तु आप विहार न कर सकी। उसका कारण यह था कि आषाढ शुक्ला २ स० १९९९ को आपकी दीक्षा हुई और वर्षावास से पहले ही बरसात प्रारम्भ हो गई।

इसी कारण आपका प्रथम स० १९९९ का प्रथम वर्षावास जयपुर मे ही गुरुवर्या पू. प्र. श्री ज्ञानश्रीजी म सा की छत्रछाया मे हुआ।

इसी वर्षावास मे आपका शास्त्रीय अध्ययन प्रारम्भ हुआ। साधु-प्रतिक्रमण आदि तो आप पहले ही सीख चुकी थी। इस वर्षावास मे शेष साधुक्रियाएँ सीखीं और दशवैकालिक सूत्र का अध्ययन किया। प मागीलालजी से अवशिष्ट कौमुदी, अमरकोश तथा रघुवश आदि भी सपूर्ण कर लिए।

दीक्षा ग्रहण करने के ९ दिन उपरान्त ही आषाढ शुक्ला ११ को बड़े दादा जिनदत्तसूरिजी म. के जयन्ती समारोह के शुभ अवसर पर आपने सार्वजनिक प्रवचन दिया। यद्यपि सार्वजनिक प्रवचन का आपका पहला ही मौका था, लेकिन प्रवचन इतना प्रभावशाली रहा कि श्रोतागण झूम उठे। साध्वी-वृन्द भी चकित रह गये।

पू प्रवर्तिनी श्री ज्ञानश्रीजी म सा का जयपुर मे ठाणापति वास—पू प्र जी म सा. की शारीरिक अस्वस्थता पिछले दो-तीन वर्ष से ही चल रही थी, इसी कारण वे जयपुर ही विराज रही थी।

अस्वस्थता इतनी अधिक थी कि वे एक-दो मजिल ही जाती तो ३-४ डिग्री ज्वर हो जाता और उन्हे वापिस लौटना पडता। साधु-साध्वी के लिए भगवान की आज्ञा है—'विहार चरिया मुणीण पसत्था' —मुनियो (साध्वियो) के लिए सतत् विहार करना ही प्रशस्त है। एक दोहा भी इस विषय मे प्रसिद्ध है—

> बहता पानी निर्मला, बँधा गँदेला होय।
> साधु तो रमता भला, दोष न लागे कोय॥

इसी भावना से पू प्र जी म सा शरीरबल क्षीण होते हुए भी आत्म-बल के सहारे से विहार करती, लेकिन १-२ मजिल चलते ही शरीर जवाब दे जाता और वापिस लौटना पडता।

इस बार भी उन्होने विहार का प्रयास किया, किन्तु वही स्थिति सामने आ गई। बुखार चार-पाँच डिग्री हो गया। चलने की—आगे बढने की सामर्थ्य न रही।

यद्यपि जयपुरसघ आपश्री से पहले ही कई बार ठाणापति विराजने की प्रार्थना करता रहा लेकिन इस बार तो श्रावकसघ का आग्रह बहुत बढ गया। प्रमुख श्रावक-श्राविकाओ ने यहाँ तक कह दिया कि आपश्रीजी जब तक ठाणापति विराजने की स्वीकृति नही देगी, तब तक हम लोग मुँह मे पानी भी नही लेगे। आखिर अपनी शारीरिक अस्वस्थता और श्रावक-सघ की आग्रहभरी विनय को सम्मान देकर उन्हे ठाणापति विराजने की स्वीकृति देनी ही पडी।

इस प्रकार पू प्र जी म सा के लगभग ३० वर्षावास जयपुर मे ही ठाणापति के रूप मे हुए।

ठाणापति रहने पर भी उनका किसी के प्रति कोई लगाव नही था, यहाँ तक कि अपनी शिष्याओ के प्रति भी नही। उनकी इतनी इच्छा अवश्य थी कि जहाँ भी मै रहूँ वहाँ व्यवस्थित रूप से व्याख्यान चौपी आदि होते रहने चाहिए। इस दृष्टि से योग्य साध्वीजी को अपने पास अवश्य रखती थी।

प्रवर्तिनी गुरुवर्या ज्ञानश्री जी महाराज

पू प्र श्री मानश्रीजी म सा की चारित्र के प्रति अनुपम निष्ठा थी। नित्य प्रति आप प्रात दा-ढाई बजे उठकर माला ध्यान जप-स्वाध्याय आदि धमप्रवृत्तियो मे लग जाती। नवकार-मत्र अथवा अजापजप तो सतत चलता ही रहता था। आपकी अप्रमत्त दशा अनुकरणीय थी।

आपकी सरलता, सौम्यता तो देखते ही बनती थी। प्रवर्तिनी पद (सर्वोच्च पद) पाकर भी कभी आदेश की भाषा का प्रयोग नही करती थी। आपको वचनसिद्धि भी प्राप्त थी। जो उनके मुख मे निकल जाता, अवश्य पूरा होता।

आपकी निर्दोष जीवनचर्या को देखकर चौथे आरे की साध्वियो का स्मरण हो आता था।

ऐसी महान् गुरुवर्या की निश्रा म चरितनायिका सज्जनश्रीजी का प्रथम वर्षावास हुआ।

वर्षावास पूर्ण होते ही पूज्या प्रवर्तिनी ने आपश्री (सज्जनश्रीजी) की बडी दीक्षा कराने हेतु आपका आपकी परमोपकारिणीश्री उपयोगश्रीजी म० सा०, श्री वसन्तश्रीजी म० सा०, तथा सज्जनश्रीजी म० के साथ ही दीक्षिता श्रीविबुधश्रीजी म० आदि ७ साध्वीजी का लोहावट फलोदी की ओर प्रस्थान करवाया।

सभी साध्वीजी म० की हार्दिक इच्छा प्रत्यक्ष प्रभावी दादा श्री जिनकुशल गुरुदेव के दर्शनार्थ मालपुरा जाने की थी। अत मालपुरा की ओर विहार किया। सातवें दिन पूज्य गुरुदेव के चरणो म पहुँचे, दर्शन किये, चित्त की प्रसन्नता के साथ हार्दिक शांति की अनुभूति हुई।

दादावाडी से कुछ ही दूरी पर मालपुरा गाव था, वहा के श्रावक भी दर्शन वन्दन हेतु आ जाते रात्रि म कथा कहानी तथा प्रात प्रवचन होते। इस प्रकार धर्म-जागरणा करते हुए वहा एक मास तक रहे। वहा से आप सबने टाडा केकडी की ओर प्रस्थान किया।

मार्ग के कई ग्रामो को आपश्री ने फरसा। आपकी मधुरवाणी से जनता प्रभावित होती, व्याख्यान-सज्झाय आदि के सुन्दर माहौल से जनता की धर्म की ओर रुचि होती। कई लोगो न तो चलते-फिरते (त्रस जीव) जीवो की सकल्पपूर्वक हिंसा और मद्य मासादि अभक्ष्य वस्तुओ का जीवन भर के लिए त्याग कर दिया, कई बहनो न जूए मारने तथा गाली-गलौच अपशब्दो के बोलने का त्याग कर दिया। पौष मास तो टोडा केकडी म ही पूर्ण हो गया।

माघ मास म सरवाड सराणा, ठाँठोगी मसूदा आदि छोटे छोटे ग्रामो म विचरण किया।

यद्यपि इन क्षेत्रो मे जैनो की सख्या काफी थी पर बहुत दिनो से साधु साध्वियो का विचरण न होने से इनके धार्मिक सस्कार लुप्त से हो गये थे। कुछ क्षेत्रो मे साधुमार्गी आम्नाय का प्रभाव अवश्य दृष्टिगोचर हुआ।

परिणाम यह हुआ कि मदिर के प्रति लोगो को अश्रद्धा हो गई। दर्शन, पूजन की बात तो बहुत दूर, लोगो ने मन्दिर जाना ही छोड दिया। मन्दिरो के कपाट ही बन्द हो गये। इतना अवश्य था कि कोई मन्दिरमार्गी साधु साध्वी आ जाते तो किवाड खोलकर उन्हे दर्शन करा देते थे, लेकिन वे यदा-कदा ही आते अत मन्दिरों के किवाड अधिकाशत बन्द ही रहते। स्थिति यहा तक आ गई थी कि मदिर जीर्ण शीर्ण हो गये, धूल जम गई, अन्दर मकडियो न जाले बुन दिये चमगादडो ने निवास बना लिये, बिच्छू आदि उत्पन्न हो गये सूक्ष्म जीवो की भरमार हो गई।

सज्जनश्री आदि साध्वी मडल का जब इन क्षेत्रो म विचरण हुआ तो लोग काना फूसी आपस म करने लगे—बिना मुँहपत्ति वाले साधु-साध्वीजी महाराज भी होते है क्या? वन्दन करने का तो प्रश्न ही नही, कई लोग तो खिल्लियाँ भी उडाते।

ऐसी विषम परिस्थितियो मे साध्वियो ने उन ग्रामो मे विचरण किया। प्यार से समझाया, ओजस्वी प्रवचन दिये, रुचिकर कहानियाँ और मधुर कण्ठ से राग-रागिनियाँ, स्तवन, सज्झाय, चौपी आदि सुनाये। इन प्रयासो से वहाँ की जनता का भ्रम दूर किया। वे लोग यथार्थता से परिचित हुए।

मन्दिरो के दरवाजे खुले तो वहाँ की दशा देखकर हृदय दुख से भर गया। सफाई आदि के वाद लोग मदिर आने लगे, मन्दिरो की रौनक पुन लौटी। प्रतिदिन प्रातःकाल भक्तामर, मागलिक आदि का कार्यक्रम चलने लगा। लोग दर्शन विधि भी भूल गये थे। इन्हे विधिपूर्वक दर्शन की विधि सिखाई और कइयो को तो कण्ठस्थ भी कराई। इनकी रुचि बढी तो वहुत लोग पूजन-सेवा भी करने लगे। वहुत लोगो ने पुन मन्दिरमार्गी आम्नाय को स्वीकार कर लिया और दादा गुरुदेव जिनकुशल सूरि के स्वर्ण जयन्ति वार्षिक महोत्सव पर मालपुरा भी जाने लगे।

जनता यहाँ तक प्रभावित हुई कि चातुर्मास के लिए विनती करने लगी किन्तु आपश्री को वडी दीक्षा के लिए लोहावट फलोदी पहुँचना था, इसलिए धर्म-जागरणा और धर्म की जाहो जलाली करते हुए आगे वढते गये।

मार्गस्थ ग्रामो मे शासन प्रभावना करते हुए व्यावर, जैतारण विलाड़ा, आदि मे सात-सात, आठ-आठ दिन रुककर कापरडा तीर्थ पहुँचे। वहाँ की यात्रा करके फाल्गुन सुदी ११ को जोधपुर (सूर्यनगरी) पहुँचे।

जोधपुर में साध्वी सज्जनश्रीजी की नानीसुसराल है। मूथाजी, जो इनके नानी ससुर थे, नगर के वाहर इनके द्वारा बनवाया हुआ एक मदिर है जो मूथाजी के मन्दिर नाम से प्रसिद्ध है, साध्वी-मंडल उस मदिर में ही कुछ दिन के लिए ठहरा, प्रवचन आदि का खूब प्रभाव रहा। मूथा परिवार ने भरपूर लाभ लिया।

वहाँ से आप सभी शहर में केशरियानाथजी की धर्मशाला मे विराजित पूज्यवर्या श्री लालश्री जी म० सा०, श्री धर्मश्री जी म० सा०, आदि जो वहाँ ठाणापति के रूप मे विराज रही थी और श्री फूलश्री जी म० सा० के दर्शन हेतु पधारी। मधुर मिलन हुआ। उन्होने आप लोगो का हर्षपूर्वक स्वागत किया। यद्यपि वहाँ आपका ३-४ दिन रुकने का विचार था किन्तु पूज्या साध्वियो के आग्रह, श्रावको की भावभरी विनती ने नवपद ओली तक रुकने को विवश कर दिया।

आपकी प्रेरणा से कई श्रावको ने नव पद ओली तप की आराधना शुरू की। प्रात श्रीपाल चरित्र श्री सज्जनश्रीजी सुनाती और मध्यान्ह मे ओली की क्रिया आप तथा पूज्या उपयोगश्रीजी विभिन्न राग-रागनियों से करवाती। वातावरण वहुत ही आनन्दमय वन जाता, सभी अध्यात्मरस मे डूव जाते।

धर्म का रग ऐसा जमा कि जोधपुर के श्रावक-श्राविकाओ ने चातुर्मास के लिए पुरजोर विनती की, किन्तु आपश्री पहले ही फलोदी चातुर्मास की स्वीकृति दे चुके थे अत जोधपुर का चातुर्मास स्वीकृत न हो सका।

लगभग सवा महीना जोधपुर रुककर तिवरी-ओसिया तीर्थ की यात्रा करते हुए आपश्री तपस्वी वापजी की पुण्यभूमि लोहावट पधारे। पू० प्रेमश्रीजी म० सा०, पूज्य पवित्रश्रीजी म० सा० आदि वहाँ विराजित थे। मधुर मिलन हुए। कुछ दिन वहाँ रुककर आपश्री ने फलोदी की ओर अपने कदम वढाए। मार्ग मे पलाना स्टेशन, जो फलोदी से मात्र २ मजिल ही दूर था, वहाँ धर्मशाला मे ठहरी।

फलोदी संघ को ज्यों ही मालूम हुआ कि आप लोग पलाना पधार गयी हैं तो श्री गुलाबराय जी सा० ढरडिया (प पू० श्री उपयोगश्रीजी के सांसारिक जीवन म (पति) जीवन साथी थे) ने वहाँ स्वामि वात्सल्य रखा, फलोदी से आपश्री के दर्शनार्थ उमड आई जनता का हार्दिक स्वागत-सत्कार किया, भोजन आदि से तृप्त किया। पलाना स्टेशन पर लगभग ५०० व्यक्तियो का स्वामी-वात्सल्य था।

सं० २००० का फलोदी चातुर्मास

सद्ज्ञान गोष्ठी करते हुए साध्वी मडल फलोदी की सीमा मे पधारे। जय-जयनादो से हर्षोल्लासपूर्वक आपश्री का नगर प्रवेश कराया गया। बैण्ड बाजा की मधुर ध्वनियो के साथ आप सब लोग धर्मशाला म पहुँची। वहा मांगलिक प्रवचन हुआ जो बहुत प्रभावशाली रहा। संघ के आग्रह पर प्रतिदिन व्याख्यान देना स्वीकार किया।

वहाँ स आप सभी शीतलपुरा क उपाश्रय मे पधारी। वहाँ विराजित पू० श्री ताराश्री जी म० सा०, हितश्री जी म० सा० आदि के दर्शन तथा विधिपूर्वक वन्दन करके आशीर्वाद प्राप्त किया।

उन दिनो फलोदी एक प्रकार से धर्मक्षेत्र बना हुआ था। वहा लगभग १२०० परिवार थे और सभी धार्मिक थे। ६ अत्यन्त सुन्दर विशाल जिनमन्दिर, ४ विशाल दादावाडिया—जिनमे भक्तजनो की भीड रहती, उपाश्रय भी अनेक थे जिनमे साधु साध्वी विराजते और श्रावक श्राविकाओ की धर्मक्रियाओ से गूँजते रहते। यहाँ अनेक भव्यात्माओ ने चारित्रधर्म स्वीकार किया और आत्म-कल्याण के साथ-साथ पर कल्याण करके जिनशासन को दिपाया है।

उन्ही मे मण्डलाधिनायिका परम श्रद्धेया पुण्यशालिनी पुण्यश्रीजी म सा, जापपरायणा ध्यानध्याननिमग्ना पूज्या श्री ज्ञानश्रीजी म सा (चरित्रनायिका सज्जनश्री जी की गुरुवर्या) पू श्री उपयोगश्रीजी म सा भी हैं।

पूज्यवर्याओ की तप पूत पावन जन्मभूमि फलोदी (फलवर्द्धि) नगरी म आकर हमारी चरित नायिका ने भी स्वय को धन्य माना।

बडी धर्मशाला म प्रात साढे आठ स साढे नौ बजे तक चरित्रनायिका जी प्रवचन फरमाती और मध्याह्न म पू उपयोगश्री जी म सा महाबल मलया की चौपी मधुर स्वर म सुनाती। प्रवचन और चौपी सुनकर श्रोतागण बहुत प्रभावित होते। प्रवचन प्रभा की रश्मियाँ विकीर्ण होने लगी। जो एक बार सुन लेता, बार-बार आता, भीड बढने लगी, बडी धर्मशाला का विशाल हाल भी श्रोताओ से खचाखच भर जाता।

आपकी प्रवचन कला की विशेषता थी कि आपश्री शास्त्रीय तत्व—अपने वर्ण्य विषय को उदाहरणो से—पटकथाओ स पुष्ट करती, भाषा प्राजल और प्रवाहमय थी वाणी म ओज तेज-सम्प्रेषणीयता तथा भावो का वहन करने की क्षमता थी। इसी कारण लोग आपका व्याख्यान सुनने उमडे चले आते थे।

फलोदी म उस समय कई तत्वरसिक, आगमज्ञ श्रावक भी थ उनम पूनमचदजी गोलेछा, मेघराजजी मुणोत रतनचदजी लूँकड कँवरलालजी गोलेछा आदि मुख्य थे। ये लोग प्रवचन तो सुनते ही थे अतिरिक्त समय मे तत्व चर्चा भी करते और अपने प्रश्नो का शास्त्रीय समाधान पाकर और भी प्रभावित होते तथा आपश्री क उज्ज्वल भविष्य की कामनाएँ करते।

अनेक कन्याएँ आपश्री के पास प्रतिक्रमण सीखने आती और रात्रि समय भी वहाँ रहना।

इन सब धार्मिक प्रवृत्तियो और वातावरण का ऐसा प्रभाव हुआ कि दो बहनो मे वैराग्य का अकुर उदित हुआ।

उनमे से एक थी सुखलालजी गोलेच्छा की सुपुत्री एवं श्री''' ललवानी की पुत्रवधू इन्द्रादेवी। थे सद्य परिणीता थी और १५ वर्ष की आयु मे सासारिक भोगो को त्यागकर सयमी जीवन ग्रहण करने के लिए उद्यत हो गई थी।

दूसरी थी—श्रीमान मोहनराजजी सा श्रावक की सुपुत्री पुष्पाकुमारी। ये समुदायाध्यक्ष पू. श्री चम्पाश्रीजी की शिष्या घोषित हुई और इनका दीक्षोपरान्त नाम दिया गया—जितेन्द्रश्रीजी। विनय-वैयावृत्य करते हुए आप अपना जीवन सफल बना रही हैं।

इसी चातुर्मास में अभिवृद्धिरूप पचरगी तप, सामूहिक आयम्बिल, एकासने, अठाई ११-१५, क्षीरसागर गौतम पात्र आदि अनेक प्रकार की तपस्याओ की झडी लग गई।

इस प्रकार फलौदी का चातुर्मास व्याख्यान, तपस्या, प्रत्याख्यानादि की अधिकता से पूर्ण सफल रहा।

उसी समय (वि स २००० मे) आचार्य सम्राट श्रीमज्जिनहरिसागर सूरीश्वर जी म सा का चातुर्मास प्रसिद्ध तीर्थ जैसलमेर में था। चातुर्मास पूर्णकर आपश्री फलौदी पधारे। श्रीसघ ने बहुत ही उत्साहपूर्वक पूज्येश्वर का नगर-प्रवेश कराया। यद्यपि गुरुदेव का लक्ष्य ज्ञान भण्डार को सुव्यवस्थित कराने के लिए लोहावट पधारना था किन्तु भक्तो के अत्याग्रह के कारण कुछ दिन फलौदी ठहरे। व्याख्यान का क्रम चालू किया। प्रवचन का लाभ सज्जनश्रीजी आदि साध्वी मडल ने भी लिया।

सघ''' पू गुरुदेव से होली चातुर्मास वही फलौदी में करने की भावभरी विनय की किन्तु पू. गुरुदेव को लोहावट जाना था और चरितनायिका जी की बडी दीक्षा भी करवानी थी। अत बडी दीक्षा के लिए फाल्गुन शुक्ला ५ का दिन निर्णीत कर लोहावट पधार गये।

पू. उपयोगश्रीजी म सा. को चरितनायिका जी की बडी दीक्षा करवाने हेतु लोहावट जाना था। किन्तु अभी २ महीने बाकी थे, फिर चरितनायिका जी पं. श्री ब्रह्मदत्त से तिलकमजरी महाकाव्य का अध्ययन कर रही थी और जनता का भी अत्यधिक आग्रह था, इन्ही सब कारणो से साध्वी मडल फलौदी में ही विराजता रहा।

इसी बीच एक वय स्थविरा साध्वीजी असाध्य रुग्ण हो गई। और हमारी चरितनायिका सज्जनश्रीजी मे सेवा-वैयावृत्य की भावना अत्यधिक है, ग्लान-रुग्ण की सेवा वे अपना पुनीत कर्तव्य मानती है। अत वय स्थविरा रुग्ण साध्वी जी की सेवा में तन-मन से लग गई।

फाल्गुन मास शुरू हो गया था तथा अध्ययन भी सम्पूर्ण हो गया था। अत. तत्र विराजित साध्वियो से आज्ञा लेकर आपश्री ने लोहावट की ओर प्रस्थान किया। आपश्री के साथ ही दीक्षित विबुधश्रीजी की बडी दीक्षा होनी थी, साथ ही अन्य सात साध्वियो की भी बड़ी दीक्षा का कार्यक्रम था। वीरश्रीजी म सा व हेमश्रीजी को दशवैकालिक के योगोद्वहन करने थे। इस प्रकार १० साध्वीजी म. योगोद्वहन करने वाले थे।

शुभ दिन से योगोद्वहन प्रारम्भ हो गये। इस उपलक्ष्य मे दो अष्टान्हिका महोत्सव हुए अर्थात् योगोद्वहन के साथ ही पूजाओ का क्रम भी प्रारम्भ हो गया। प्रभु भक्ति का सुन्दर रसप्रद वातावरण बन गया। सज्जनश्रीजी व उपयोगश्रीजी म सा को पूजाओ का बहुत शौक था। जब आपश्री वीणा-जैसे मधुर स्वर मे पूजा गाती तो जनसमूह भक्ति रस मे निमग्न होकर झूम उठता।

जिस उपलक्ष्य मे यह महोत्सव हो रहा था, प्रतीक्षित वडी दीक्षा का वह शुभ दिन फाल्गुन शुक्ला ४ आ पहुँचा। सभी योगोद्वाहिका साध्वीजी केशर के छपे हुए कपडे पहनकर गुरुवर्या और गुरु बहनो के वडी दीक्षा के स्थान चम्पावाडी म पहुँचे। यह स्थान लोहावट ग्राम के बाहर है तथा यहा पूज्य गुरुवरा एव तपस्वीवर पूज्य छगनसागर म सा के चरण पादुकाएँ और मूर्तियाँ हैं। इस पावन स्थल म लोगो की भीड पहले स ही मौजूद थी। जयपुर, जोधपुर, फलौदी आदि से वडी दीक्षा वाले साध्वीजी के परिवारीजन व अन्य श्रावक श्राविका भी वडी सख्या मे आये।

लोहावट श्रीसघ ने मुक्तहस्त से इस विशाल समारोह म द्रव्य का सदुपयोग कर पुण्यानुबधी पुण्य का उपार्जन किया।

इस प्रकार वि० स० २००० फाल्गुन शुक्ला ८ का परम श्रद्धेय शासन सम्राट श्रीमज्जिनहरि सागरसूरीश्वरजी के वरद हस्त स वडी दीक्षा का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

वडी दीक्षा के उपरान्त साध्वी मडल ने पू गुरुवर्या के चरणो म पहुँचने के लिए जयपुर की ओर कदम बढाये। मार्ग म ओसिया तीर्थ के दर्शन किये और सीधे मडता रोड, पुष्कर होते हुए अजमेर पहुँचे। इधर पू चम्पाश्रीजी म सा, श्री धर्मश्रीजी म सा आदि जयपुर चातुर्मास करके दूदू दांतरी होते हुए किशनगढ पहुँच चुके थे। पू उत्तमश्रीजी म सा का वार्षिक तप चल रहा था। तप का पारणा वही हो, किशनगढ श्रीसघ का ऐसा आग्रह था अत वही विराज रही थी। सज्जनश्रीजी आदि साध्वियाँ भी किशनगढ श्री सघ के अत्यधिक आग्रह से पारणा तक वही रुकी रही। सानन्द पारणा होने के बाद जयपुर की ओर प्रस्थान किया।

दांतरी ग्राम मे सुखलालजी गोलेच्छा की पुत्री इन्द्रकुमारीजी की दीक्षा स० २००१ की वैशाख शुक्ला ६ को सानन्द सम्पन्न हुई तथा उन्हे राजेन्द्रश्रीजी नाम देकर पू उपयोगश्रीजी म सा की शिष्या घोषित किया गया।

वहा से नूतन दीक्षित साध्वीश्री राजेन्द्रश्रीजी म को साथ लेकर जयपुर पधारी।

वि० स० २००१ का जयपुर चातुर्मास

चरितनायिकाजी का यह चातुर्मास पूज्या गुरुणीजी की निश्रा म हुआ। इसी चातुर्मास म कोटा के सेठ श्री केसरीसिहजी ने अगला चातुर्मास कोटा करने की विनती की। सेठ केसरीसिहजी हमारी चरितनायिकाजी के फूफी श्वसुर हैं और विवाह होने के पश्चात् वही आपको सवेगीधर्म की प्राप्ति तथा आत्म-कल्याण का मार्ग प्रशस्त हुआ था। अत होली चातुर्मास म कोटा चातुर्मास की स्वीकृति दे दी गई।

वि० स० २००२ का कोटा चातुर्मास

पू प्रवर्तिनीजी म सा की आज्ञा से मण्डल सचालिका उपयोगश्रीजी म सा सज्जनश्रीजी म सा सुमनश्रीजी म सा राजेन्द्रश्रीजी म सा आदि ४ ठाणा के अनेक स्थानो को फरसते हुए कोटा पहुँचे तो कोटा श्री सघ एव सेठ केसरीसिह जी ने आपश्री का भावभरा स्वागत किया हर्षोल्लास एव शाही बड बाजा के साथ आपका नगर प्रवेश कराया गया। व्याख्यान एव तपस्याओ की झडी लग गई। अठाई महोत्सव, साधर्मीवात्सल्य आदि भी खूब हुए। सेठ साहब ने बहुत पुण्यलाभ लिया। कुल मिलाकर चातुर्मास सफल रहा।

चातुर्मास समाप्ति के पश्चात नूतन दीक्षिता राजेन्द्रश्रीजी की बडी दीक्षा के लिए मनासा पहुँचना था। अत कोटा से प्रस्थान करके मालपुर मन्दसौर-जावरा होते हुए नागेश्वर पहुँचे।

नागेश्वर मे तीर्थमण्डन प्रभु पार्श्वनाथ की मूर्ति थी। उसकी पूजा एक सन्यासी सिन्दूर और तेल के विलेपन से करता था। यह जैन पूजा पद्धति नही अपितु तीर्थंकर प्रभु की प्रतिमा की घोर आशातना है। इस आशातना को देखकर गुरुवर्या श्री आदि को घोर दुःख हुआ। दो-तीन दिन वही रुके, श्रावको को बुलाकर जानकारी ली। उन्होने बताया—यह करतूत एक सन्यासी की है, वही ऐसी पूजा करता है, किसी की भी नही सुनता है मन्दिर की ७०० बीघा जमीन का मालिक भी वही बना हुआ है।

यह सब जानकर चित्त और भी खिन्न हो गया—साध्वीजी का। आस-पास के ग्राम निवासियो को बुलवाकर स्थिति समझाई। आपकी प्रेरणा से उनमे धार्मिक उत्साह जागा और सभी ने शीघ्र ही उद्धार करने का संकल्प किया।

उनके प्रयास सफल हुए। तीर्थ का उद्धार शुरु हो गया। आज तो वहाँ भव्य जिनालय, विशाल दादावाड़ी और सुन्दर सुव्यवस्थित धर्मशाला है। और मुख्य तीर्थ के रूप मे प्रसिद्ध है।

यह सब चरित्रनायिकाजी की सद्प्रेरणा का फल है।

यहा से मन्दसौर, जावरा होते हुए रतलाम पधारे। सेठ केशरीसिंह जी बाफना द्वारा बनवाई हुई कोठी में विराजे। दूसरे दिन पौष वदी १० (भ. पार्श्वनाथ का जन्म दिवस) थी। समीप स्थित बिबडोद तीर्थ के दर्शनार्थ पधारे। वहाँ पूजा तथा सार्धर्मी वात्सल्य भी था। संध्या को साध्वी-समुदाय पुनः रतलाम पधार गया। वहाँ से पूज्येश्वर वीर-पुत्र श्री आनन्दसागरजी म. सा. की निश्रा मे बडी दीक्षा कराने हेतु सैलाना पधारे।

उस समय सैलाना के राजा 'महाराज दिलीपसिंह शासन की रजत जयन्ती' मना रहे थे। महाराज दिलीपसिंह पूज्य गुरुदेव वीरपुत्र म. सा. के सहपाठी भी रह चुके थे। एक दिन वे गुरुदेव के दर्शनार्थ पधारे। उस समय पू चरित्रनायिकादि भी वहाँ विराज रही थी। गुरुदेव ने एक भजन सुनाने को कहा। गुरुवर्य्याश्री के मधुर वीणा समान गायन को सुनकर राजा दिलीपसिंह भावविभोर हो गये और जैन साध्वाचार की बहुत-बहुत प्रशंसा की।

नूतन दीक्षिता राजेन्द्रश्री म. की बड़ी दीक्षा के योगोद्वहन शुरु हो चुके थे और पू. सज्जनश्रीजी म. सा. ने दशवैकालिक के अवशिष्ट योगोद्वहन भी शुरु कर दिये थे। बडी दीक्षा के दिन गुरुदेव की चरण-पादुका स्थापन का भी समारोह था अतः अठाई महोत्सव, पूजन भक्ति रात्रि जागरणादि प्रारम्भ हो गये। राजेन्द्रश्रीजी म. के पारिवारिक सदस्य तथा आस-पास के अन्य लोग भी बड़ी संख्या मे आ गये थे। इन सबकी उपस्थिति मे पूज्य गुरुदेव के कर-कमलो से श्री राजेन्द्रश्रीजी म. की बडी दीक्षा का कार्यक्रम सानन्द सम्पन्न हुआ।

आप लोग (साध्वीजी) वहाँ से विहार करती हुई पू. गुरुवर्य्याश्री के पास जयपुर पधारीं।

सज्जनश्रीजी म. सा. के २००३, २००४ व २००५ के चातुर्मास गुरुणीजी श्री ज्ञानश्रीजी म. सा. के सान्निध्य मे जयपुर में ही हुए। व्याख्यान का कार्य आप स्वयं सँभालती थी।

वि. सं. २००५ मे पू. आचार्यदेव श्री रत्नसूरीश्वरजी म. सा, उपाध्याय श्री लब्धिमुनिजी म सा, प्रेममुनिजी म. सा., मेघमुनिजी म. सा. व मुक्तिमुनिजी म. सा का जयपुर मे पदार्पण हुआ। आपके प्रवचनो से प्रभावित हो जयपुर संघ ने चातुर्मास की विनती की जिसे आपश्री ने स्वीकार कर लिया।

इस चातुर्मास मे व्याख्यान आचार्यदेव फरमाते थे, अतः व्याख्यान भार से मुक्त होकर आपने अपनी गुरुवर्य्याश्री प्रवर्तिनी महोदया एव परमोपकारिणी पू. श्री उपयोगश्री जी म. सा से तपस्या की

आज्ञा मागी और इनकी आज्ञा प्राप्त कर आपने व पू जिनेन्द्रश्रीजी म ने श्रावण वदी ७ से मास-क्षमण की तपस्या प्रारम्भ कर दी। आपके साथ कमलादेवी ने भी तपस्या शुरू कर दी। (कमलादेवी सेठ हजारीमलजी बाँठिया की सुपुत्री थी, युवावस्था आने से पहले ही विधवा हो चुकी थी और चरितनायिकाजी के गृहस्थ जीवन की सखी थी तथा जयपुर की एक मुखिया श्राविका के रूप मे प्रसिद्ध थी।)

तेले के दिन से ही शासनदेवी के गीत प्रारम्भ हो गये और निरतर एक महीने तक चलते रहे। नित्य प्रभावनाएँ होती, कभी-कभी दो दो, तीन-तीन भी हो जाती। पूर्णाहुति पर राजेन्द्रश्रीजी म सा त अठाई और बहुत से लोगो ने अटठम तप किये। अठाई महोत्सव, महापूजन, वरघोडा, रात्रि जागरण आदि सभी धर्मानुष्ठान अभूतपूर्व कार्यक्रम के साथ सानन्द पूर्ण हुए।

पारणे के पश्चात आपको टाइफाइड हो गया जो उचित औषधोपचार से ठीक हो गया।

अध्ययन का आपको बचपन से शौक था और आज भी है। चातुर्मास के बाद शीतकाल मे आपने पण्डित प्रवर वीरभद्रजी से प्रमाणनयतत्वालोक का तलस्पर्शी अध्ययन किया।

वि स २००६ मे पू गणिवर्यश्री बुद्धिमुनिजी म सा, तथा साम्यानन्दजी म सा सघ की विनती को स्वीकार करके चातुर्मास हेतु जयपुर पधार गये थे।

अत प्रवचन कार्य से आप मुक्त हो गई थी किन्तु मध्याह्न मे चौपी आप ही बाँचती थी जिसमे जैन कवि केशराज रचित रामयश रसायन के साथ तुलसीकृत रामचरितमानस और मैथिलीशरण गुप्त के साकेत के सम्बन्धित अश भी सुनाती। जैन-अजन सभी श्रोता मुग्ध हो जाते, प्राचीन उपाश्रय (जहाँ अभी विचक्षण भवन बना हुआ है) का हाल खचाखच भर जाता। श्रोतागण राम के पवित्र चरित्र मे इतने रसमग्न हो जाते, मानो सब कुछ उनके सामने ही घटित हो रहा हो।

ऐसी अनुपम थी आपकी वक्तृत्व कला। आज तो इसमे और भी निखार आ चुका है।

झुझनु चातुर्मास वि स २००६

झुझनु धार्मिक क्षेत्र के साथ साथ ऐतिहासिक क्षेत्र भी है। यह क्षेत्र बहुत अनूठा है। यहा अनेक सतिया हुई हैं। कुछ महान सतियो के तो मन्दिर भी बने हुए है। इनमे राणीसती का मन्दिर तो विशेष प्रसिद्ध है।

ग्यारहवी शताब्दी मे परमश्रद्धेय गुरुदेव दादा सा श्री जिनदत्तसूरि जी म सा भी इस क्षेत्र मे विचरण हुआ था, ऐसा उनके स्वय के लिये हुए 'चचरी' ग्रन्थ मे वर्णन आता है। यहाँ की दादाबाडी की ऊँचाई अन्य दादावाडियो की तुलना मे काफी अच्छी है।

उस समय यहाँ पर ६० घर श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय के थे, सभी खरतरगच्छीय श्रीमाल गोत्र के और प्राय सभी उच्च शिक्षा प्राप्त—कोई वकील तो कोई जज। श्री पूनमचन्दजी तो झुझनु जिले के प्रसिद्ध वकील थे। धार्मिक क्षेत्र मे भी झुझनु सघ अग्रणी था, विद्वान साधु-साध्वियो के चातुर्मास होते ही रहते थे। लेकिन वर्तमान मे तो २५ २७ घर ही रह गये हैं। प्राय सभी बम्बई, जयपुर आदि नगरो मे जाकर बस गये है।

इसी झुन्झनु सघ ने प्रवर्तिनी महोदया के समक्ष चातुर्मास हेतु विनती की। उनकी विनती का सम्मान देकर प्रवर्तिनीजी म सा ने निर्णीत शुभ दिवस मे पू चरितनायिका, मडल-सचालिका पू श्री उपयोगश्रीजी म सा पू श्री शीतलश्रीजी म सा तथा राजेन्द्रश्रीजी म सा को झुन्झनु चातुर्मासार्थ विहार करवाया। मार्गस्थ ग्रामो मे वीरवाणी सुनाते, धर्म की वशी बजाते जनता को मांस मद्य आदि

अभक्ष्यभक्षण का त्याग कराते हुए झुन्झनु सीमा मे पहुँचे। श्रद्धालु सघ ने वडी धूम-धाम से नगर-प्रवेश कराया।

प्रतिदिन के व्याख्यान मे श्रीचन्द केवली चरित्र का प्रारम्भ किया। आपकी रोचक शैली को आज भी लोग याद करते है। पूजा, तपस्या आदि का ठाठ लगा रहा। पूजा-प्रभावनाएँ भी खूब हुई। तव से आज तक वहाँ के निवासी प्रति पूनम को रात्रि-जागरण व प्रभावना आदि करते आ रहे है।

श्री राजेन्द्रश्रीजी म को वाराणसीय सस्कृत विश्वविद्यालय की ज्ञानप्रभा परीक्षा मे सम्मिलित होना था और उनका परीक्षा केन्द्र फतेहपुर था, अत झुन्झनु चातुर्मास सानन्द पूर्णकर आपने फतेहपुर की ओर कदम वढाये। चिडावा, पिलानी होते हुए फतेहपुर पहुँचे।

फतेहपुर मे भी जैन घर काफी है, व्याख्यान आदि का क्रम चलने लगा। लोग प्रभावित हुए। कुछ दिन रुकने का आग्रह किया। लेकिन आपको गुरुणीजी की सेवा मे पहुँचना था अत परीक्षा दिलवाकर जयपुर की ओर प्रस्थान किया।

श्री राजेन्द्रश्री जी म० सा० का स्वास्थ्य झुन्झनु चातुर्मास मे रुग्ण रहने लगा। कभी सर्दी जुकाम खाँसी वढ जाते तो कभी कम हो जाते, साधारण घरेलू उपचार चलते रहे पर कोई विशेष लाभ न हुआ। जयपुर आने पर तो खाँसी-जुकाम और वढ गये। कई वैद्यो का उपचार कराया गया पर सव व्यर्थ। आखिर स्पेशलिस्ट डाक्टर को दिखाया गया। उसने फुल टेस्ट की सलाह दी। टेस्ट हुए। एक्स रे रिपोर्ट से ज्ञात हुआ कि साध्वीजी को राजयक्ष्मा ने गम्भीर रूप मे जकड़ लिया है।

उस युग मे टी० वी० की कोई अक्सीर दवा भी न थी। इस रोग का नाम ही भयकर था। सुनते ही चरितनायिका जी चिन्तित हो गई, तन-मन से श्री राजेन्द्रश्री जी म० सा० की सेवा मे जुट गई। किन्तु उनका स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन गिरता ही गया, शारीरिक शक्ति क्षीण होती ही चली गयी। डाक्टर की चिकित्सा और चरितनायिका जी की सेवा कोई काम न आई। आखिर वि० सं० २०१२ विजयादशमी के दिन २६ वर्ष की अल्पायु मे ही श्री राजेन्द्रश्रीजी म० सा० की आत्मा स्वर्ग को प्रयाण कर गई।

सर्व साध्वी मडल और श्री सघ को हार्दिक दुख हुआ, पर काल-वली के सामने किसी का वश नही चलता।

श्री राजेन्द्रश्री जी म सा ने १२ वर्ष की अल्प सयम पर्याय मे वैयावच्च, अध्ययन, शासन सेवा के साथ-साथ विभिन्न तप पचमी पखवासा, सोलिया, नवपद ओलीतप, दश पच्चक्खाणा, वेला, तेला, अठाई आदि किये तथा अन्तिम समय मे गुरुमुख से निर्यामना स्वस्थचित्त से सुनती हुई, सर्व प्रत्याख्यान करती हुई नश्वर देह का त्याग किया, अपना श्रमणी-जीवन सफल वनाया।

श्री राजेन्द्रश्रीजी म० की अस्वस्थता के कारण वि० स० २००७ से २०१३ तक के ७ चातुर्मास चरितनायिकाजी के जयपुर मे ही हुए। ये चातुर्मास आपने गुरुवर्याश्री के दर्शनार्थ आने वाले पूज्य श्रमण-श्रमणी के आदर-सत्कार और ज्ञानार्जन मे व्यतीत किये।

वि० स० २०१२ मे पूज्य प्रवर उपाध्याय महोदय श्री सुखसागरजी म० सा०, पूज्य श्री मगल सागरजी म० तथा उद्भट विद्वान श्री कान्तिसागरजी म सा. का चातुर्मास हेतु गुलावी नगरी जयपुर

आचार्यश्री के यह उद्गार कुछ ही समय मे सत्य मे प्रमाणित होने लगे ।

संघ के आग्रह से आचार्यश्री ने चातुर्मास मे भगवती सूत्र का वाचन शुरु किया । अचानक ही वे अस्वस्थ हो गये । उन्होंने आपको बुलाया और व्याख्यान देने का आदेश फरमा दिया । आप विचार में पड गईं—'भगवती सूत्र तो मैंने कभी उठाकर देखा भी नही, कैसे व्याख्यान दे सकूँगी ।' आपको विचारमग्न देखकर आचार्यश्री ने फरमाया—'विचार में क्यो पड गईं ? तुम तो हमसे भी विदुषी और प्रतिभाशालिनी हो ।'

बस, आपश्री ने आचार्यदेव की आज्ञा शिरोधार्य की और इष्टदेव का स्मरण कर पाट पर बैठ गईं । फिर एक सूत्र को लेकर आपने उसकी जो व्याख्या की, तर्क दिये और दृष्टान्तपूर्वक समझाया तो सभी आश्चर्यचकित हो गये । आचार्यश्री स्वय भी सुन रहे थे वे दग रह गये । मन ही मन मे सोचने लगे—क्या गजब की बुद्धि है, क्या प्रतिभा है ? भगवती जो सबसे गूढ़ और कठिन अग है, जिसकी व्याख्या करने मे बडे-बडे धुरन्धर चकरा जाते है, उसके सूत्र की एक-एक कली खोलकर रख दी है । अनुपम मेधा है इन साध्वीजी की ।

व्याख्यान के बाद जब आचार्यश्री के समक्ष आप पधारी तो उन्होने हर्षित होकर आपकी प्रशंसा की और साधु-साध्वी तथा श्रावक-श्राविका सभी के समक्ष कहा – तुम तो व्याख्यात्री हो । भविष्य मे इससे भी बढकर आगमो का ज्ञान प्राप्त करोगी । ऐसा मेरा विश्वास है ।

आचार्यश्री का यह विश्वास आज साकार हो रहा है ।

आचार्यश्री के इस आशीर्वाद को सुनकर सभी उपस्थित जन प्रसन्न हो गये ।

वि स २०१३ का आचार्यश्री का चातुर्मास सानन्द सम्पूर्ण हुआ ।

इस चातुर्मास के उपरान्त वैराग्याकुर धारिणी किरण (जो अब १२ वर्ष की हो चुकी थी) ने अपनी भूआ (ज्ञानमडल की सचालिका उपयोगश्रीजी म सा) से अपनी दीक्षा शीघ्र करवाने की विनती की, क्योकि उसका वैराग्य पूर्ण पल्लवित हो चुका था । पूज्याश्री ने कुछ समय बाद भावना को साकार रूप देने का सुझाव दिया ।

किरण का अध्ययन सुचारु रूप से चल रहा था । पचप्रतिक्रमण कुछ ही समय मे पूर्ण हो गया । तदुपरान्त सस्कृत चैत्यवन्दन स्तुति, जीवविचार, नव तत्वादि चारों प्रकरण, तीन भाष्य, कर्मग्रन्थ आदि भी कुछ ही समय मे कठस्थ कर लिया । प्रतिक्रमण आदि क्रियाएँ जो सामूहिक होती उनमे वन्दित्तु सूत्रादि बोलने का आदेश प्राय किरण ही लेती और उसकी बोली मधुर, स्पष्ट व वजनी होने के कारण बहने भी उसका ही बोलना पसन्द करती । वैरागिन किरण ने अपनी योग्यता, नम्रता और मधुर वाणी से सभी के मन-मस्तिष्क पर अपना अधिकार कर लिया । पू उपयोगश्रीजी भी वैरागिन किरण से सन्तुष्ट थी और उसे दीक्षा योग्य समझने लगी ।

जयपुर श्रीसंघ को वैरागिन किरण की इतनी जल्दी दीक्षा का अनुमान नही था । जब दीक्षा महोत्सव का मुहूर्त निकल गया और तैयारियाँ होने लगी तब कुछ प्रमुख श्रावकों ने इसे बाल-दीक्षा कहकर कठोर विरोध किया । यहाँ तक निश्चय कर लिया कि वैरागिन किरण की दीक्षा नही होने देगे । इस विरोध के कारण पूज्य गुरुदेव और पू प्रवर्तिनी महोदया ने वैराग्यवती किरण की दीक्षा उस वर्ष स्थगित कर दी । इसे अन्तराय कर्म का ही प्रभाव माना जाना चाहिए कि दीक्षा मे अवरोध खडा हो गया ।

पू० चरितनायिकाजी का स० २०१८ का चातुर्मास टोंक था और परम श्रद्धेय कवि सम्राट श्रीकवीन्द्रसागरजी म० सा० का जयपुर मे था। वैराग्यवती किरण की दीक्षा की बातें चल ही रही थी, जयपुर वालो के विरोध का भी वे जानते थे और विश्वास था ये लोग दीक्षा होने नही देंगे पू० प्रवर्तिनी जी म०सा० की भी यही धारणा थी। फिर भी किसी प्रकार दीक्षा हो जाये, ऐसी इनकी हार्दिक इच्छा थी।

वैराग्यवती किरण की अन्तराय टूटी, पुण्य का उदय हुआ। कुछ लोग विघ्नसंतोषी होते हैं तो कुछ विघ्ननिवारक भी। ऐसा ही हुआ। व्यावर के अग्रगण्य श्रावक उदयचन्दजी कास्टिया जयपुर पधारे, म०सा० के दर्शन किये। चर्चा के दौरान सम्पूर्ण स्थिति से अवगत हुए तो बोले—यह सौभाग्य व्यावर संघ को मिलना चाहिए। महाराज साहब! आप वैरागिन किरण और इसके परिवारीजनो को इस तरह व्यावर भेज दीजिए कि विघ्नसंतोषी जयपुर वालो को मालूम न पडे। वहा दीक्षा सानन्द हो जाएगी।

सर्वसम्मति से दीक्षा का निर्णय ले लिया गया। उदयचन्दजी व्यावर चले गये। व्यावर संघ के श्रावक भी दीक्षा की बात सुनकर सहमत हो गये।

पू० प्रवर्तिनी महोदया ने प्रसिद्ध पण्डित श्रीभगवानदासजी से दीक्षा का मुहूर्त निकलवाया तो मिगसिर वदी ६ का मुहूर्त निकला। जयपुर वालो ने फोन से यह समाचार व्यावर दे दिये। दो दिन पहले वैरागिन किरण को व्यावर के लिए रवाना कर दिया गया, उसके परिवार वाले भी पहुँच गये। जयपुर के मुख्य मुख्य श्रावक श्रीमान हमीरमलजी सा० गोलेच्छा सिरेहमलजी सा० सचेती, प्रेमचन्दजी सा० बाठिया आदि भी दीक्षा मे सम्मिलित होने व्यावर रवाना हो गये।

वि० स० २०१४ मिगसिर वदी ६ के शुभ दिन शुभ मुहूर्त मे पूज्या विज्ञानश्रीजी म० की निश्रा मे व्यावर स्थित दादावाडी के विशाल प्रांगण मे वैराग्यवती किरण की दीक्षा सानन्द सपन्न हुई। उन्हे 'शशिप्रभाजी' नाम दिया गया और सज्जनश्रीजी म०सा० (चरितनायिकाजी) की शिष्या घोषित किया गया।

श्रद्धेय कवि सम्राट नूतन साध्वी शशिप्रभाजी की बडी दीक्षा कराने हेतु अजमेर पधारे। व्यावर मे पूज्या विज्ञानश्रीजी म०सा० आदि भी नूतन साध्वीजी को साथ लेकर अजमेर पधारे और टोंक से चरितनायिकाजी भी चातुर्मास सानन्द पूर्णकर जयपुर जाते हुए अजमेर पधारी। इधर मणिप्रभाजी, जो जयपुर की ही लडकी हैं और जिनकी दीक्षा टोंक मे हुई तथा पूज्या जैन कोकिला की शिष्या बनी उनकी भी बडी दीक्षा अजमेर मे करने का विचार हुआ। अत शशिप्रभाजी के साथ ही मणिप्रभाजी की भी बडी दीक्षा अजमेर मे ही कवि सम्राट के कर कमलो से स० २०१८, मिगसिर सुदी ११ को सानन्द सपन्न हुई।

बडी दीक्षा के पश्चात् पू० चरितनायिकाजी नूतन साध्वी श्रीशशिप्रभाजी आदि के साथ प्र महोदया के चरणो मे जयपुर पधारी। वही नूतन साध्वीजी के अध्ययन की व्यवस्था हुई और छोटी मोटी अनेक परीक्षाएँ उत्तीर्ण करके उन्होने अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली।

अजमेर मे चैत्र मास की ओली आराधना करवाकर पू विचक्षणश्रीजी म सा भी अपनी शिष्या मडली सहित पू प्रवर्तिनीजी के दर्शनार्थ जयपुर पधारी। यद्यपि आप सिर्फ दर्शनार्थ ही आई थी लेकिन

प्रवर्तिनीजी के वात्सल्य और आत्मीयता भरे आदेश को स्वीकार करके चातुर्मास हेतु वही रह गई। इसमें संघ का आग्रह भरी विनती भी एक कारण रहा।

चरितनायिकाजी व्याख्यान-भार से मुक्त थी। अतः पू. प्रवर्तिनीजी, श्री उपयोगश्रीजी और जैन कोकिलाजी की सत्प्रेरणा से 'पुण्य जीवन ज्योति' का लेखन कार्य आपने प्रारम्भ किया। आपका यह लेखन कार्य ५०० पृष्ठों के एक अनूठे वृहत् सचित्र ग्रन्थ के रूप में जनता के समक्ष आया जो अपने आप में एक इतिहास संजोए हुए है। इस ऐतिहासिक ग्रन्थ में श्रमणी वृन्द की गौरवपूर्ण गाथा के साथ-साथ नारी जीवन का महत्व भी वर्णित हुआ है।

आपकी परिष्कृत और परिमार्जित लेखनी से समुद्भूत यह एक ऐसी पुष्प मंजूषा है जिसमें विभिन्न आकृतियो के सुरभित स्वर-सुमन अपनी सुगन्धि विकीर्ण कर रहे है।

वस्तुत यह ग्रन्थरत्न आपके गम्भीर और तलस्पर्शी अध्ययन तथा प्रत्युत्पन्न मेधा का परिचायक है।

सवत् २०१५ का चातुर्मास सानन्द सम्पूर्ण हुआ।

पूज्या विचक्षणश्रीजी म. सा. का स २०१६ का चातुर्मास जयपुर मे था और टोक संघ के आग्रह के कारण आपश्री का चातुर्मास टोक निश्चित हो चुका था। टोक के लिए चातुर्मासार्थ आपने जयपुर से विहार भी किया, प्रथम मजिल सागानेर तक पधार भी गये लेकिन मन उखड़ रहा था, पाँव आगे जाने को तैयार न थे, कुछ अनहोनी घटित होने की आशका बार-बार चित्त को उद्विग्न बना रही थी। अत वापिस जयपुर लौट आई, टोक सघ को ना करवादी।

वज्रपात—अप्रत्याशित विरह परमोपकारिणी उपयोगश्रीजी का

जयपुर में चातुर्मास सुन्दर ढग मे चल रहा था। कार्तिक माह मे पू. प्रवर्तिनी ज्ञानश्रीजी म.सा. के स्वास्थ्य मे कुछ गडबडी हुई। आयुर्वेदिक औषधियाँ चल रही थी पर कोई विशेष लाभ नही हो रहा था, स्वास्थ्य गिरता ही जा रहा था। गुरुवर्या की अस्वस्थ दशा से आप चिन्तित थी।

इधर उपयोगश्रीजी म सा. के पाँव के अँगूठे मे ठोकर लग जाने से अँगूठा पक गया, दर्द होने लगा, उपचार से भी कोई लाभ न हुआ, पीव पड गई और रिसने लगी। तब जयपुर की प्रसिद्ध लेडी डाक्टर चन्द्रकाता को बुलाया गया।

कार्तिक कृष्णा ३ का दिन था। सन्ध्या का समय था। सभी का चौविहार का समय था। पू. विचक्षणश्रीजी प्रतिदिन की भाँति गोचरी करके दादावाडी पधार गये थे।

डाक्टर आई। पू प्रवर्तिनी महोदया को देखकर लौट रही थी कि उपयोगश्रीजी म सा, ने आवाज देकर बुलाया और कहा—डाक्टर साहब देखिए। मेरा अँगूठा पक गया है। १५-२० दिन हो गये, पीव रिसती रहती है, बन्द होती ही नही।

पूज्यवर्या ने पट्टी खोली तो डाक्टर साहब ने देखकर कहा—केस सीरियस हो गया है, इजैक्शन के बिना ठीक नही होगा। आपको पेनिसिलिन का इजैक्शन लगा दूँ, जल्दी आराम आ जायेगा।

पूज्यावर्या ने चरितनायिका जी से इजैक्शन लगवाने के बारे में पूछा तो उन्होने सहमति व्यक्ति कर दी, भावना यही थी शीघ्र आराम हो गया। लेकिन कौन जानता था कि ऐसा आराम हो जायेगा कि यह शरीर ही छूट जायेगा, जब हस ही चला जायेगा। तो बीमारी किसे होगी? और कौन दुख का वेदन करेगा।

डाक्टर ने इंजक्शन लगाया और नीचे उतरने लगी। अभी वह जा भी नहीं पाई थी कि पूज्यवर्या ने चरितनायिका जी से कहा—सज्जनश्रीजी ! मेरी तो छाती में जलन हो रही है।

चरितनायिका ने तुरंत डाक्टर को आवाज दी। डाक्टर लौटी। पू० वर्या की दशा देखकर चकित रह गई। अचानक यह क्या हो गया ? क्षण भर में समझ गई इंजक्शन रीएक्शन कर गया। अपना बैग टटोला लेकिन पेनिसिलिन के रिएक्शन को समाप्त कर दे, ऐसा कोई इन्जेक्शन, टेबलेट या कैप्सूल नहीं मिला। तुरंत एक इन्जेक्शन लेने के लिए दौड़ाया।

तब तक पू० वर्या बेहोश हो चुकी थी। इंजक्शन आने पर लगाया भी, परन्तु पेनिसिलिन का शाक अपना काम पूरा कर चुका था, नया इंजेक्शन बेअसर साबित हुआ।

पू० श्री की जिह्वा बाहर निकल आई। चरितनायिका जी ने उनका सिर अपनी गोद में ले लिया। नब्ज टटोली तो गायब ! सारा शरीर ठंडा पड़ चुका था। दूसरा डाक्टर बुलवाया। वह आया तब तक तो खेल खतम हो चुका था, हंस उड़ चुका था। चरितनायिका की गोद में गुरुवर्या की आत्मा ने स्वर्ग प्रयाण कर दिया था, नश्वर देह ही वहाँ पड़ी थी।

सभी को घोर दुःख हुआ। पू० प्रवर्तिनी जी भी इस वज्रपात से विह्वल हो गई थी। संध्या समय श्राविकाएँ प्रतिक्रमण के लिए आती थी, वे भी इस अघटित से घोर दुखी हुई।

तथ्य यह है कि मौत बहाने ढूँढती है। उपयोगश्री जी म० सा० के लिए पेनिसिलिन का इंजक्शन ही काल का पैगाम बन गया। प्राणी हारता है और काल जीतता है। यहाँ भी काल विजयी हुआ।

उपयोगश्रीजी म० सा० विशिष्ट व्यक्तित्व वाली आर्यारत्न थी। वे गुरुसेवा में सदा तत्पर रहती थी। उत्तम संयमी जीवन, मधुर-गम्भीर वाणी, विशाल सहृदयता, उदारता, सुन्दर व्यवहार कुशलता, अनुपम मेधा सभी कुछ था पूज्या उपयोगश्रीजी म। गुरुवर्या की सेवा में इतनी तत्पर कि मात्र तीन चातुर्मासों के अतिरिक्त अपनी गुरुवर्या से कभी अलग नहीं रही। निस्पृहता इतनी कि अपने उपदेशों से प्रभावित होकर जिन्होंने दीक्षा लेने की भावना व्यक्त की उन सबको अपनी शिष्या न बनाकर गुरुवर्या की शिष्या घोषित किया। चरितनायिकाजी की दीक्षा में भी आपकी ही प्रेरणा और सद्प्रयत्न थे, किन्तु इन्हें भी गुरुवर्या पूज्य प्रवर्तिनी ज्ञानश्रीजी म० सा० की शिष्या ही घोषित करवाया।

ऐसी निस्पृह सेवाभावी साध्वीरत्न के स्वर्गवास से पूरा समाज ही शोक सागर में निमग्न हो गया, शवयात्रा में हजारों की जनमेदिनी थी। सभी अपनी शोक श्रद्धांजलि समर्पित कर रहे थे।

दुःख तो साध्वी मंडल को भी बहुत हुआ, किन्तु जैन साधना का प्रथम सोपान ही समता है अतः समतापूर्वक इस वज्र प्रहार को साध्वी मंडल ने सहन किया।

पूज्याश्री के देवलोक के पश्चात् पू० प्रवर्तिनीजी के मंडल की सम्पूर्ण जिम्मेदारी चरितनायिका जी पर आ गई। अतः चातुर्मास तथा शेष काल में कहीं जाने का प्रश्न ही समाप्त हो गया और पू० प्र० वर्या की सेवा शुश्रूषा में संलग्न हो गई हैं।

चरितनायिका का विशिष्ट गुण, सेवा

चरितनायिका जी में सेवा का विशिष्ट गुण है। यद्यपि आपका बचपन लाड़-प्यार में बीता, कभी काम करने का अवसर ही न आया, शादी भी बड़े घर में हुई, फिर भी सेवा के लिए सदा तत्पर

रहती। बड़ा या छोटा कैसा भी काम हो, लगन से करती। काम को इतने सुचारु रूप से करती कि देखने वाले यह समझते कि आप इस कार्य में निष्णात हैं।

जयपुर में पहले आयम्बिल खाता नही था। अत कभी-कभी दो-दो मटकियां (घड़े) पानी की आप घरो से ले आती। गोचरी आदि कार्यो मे भी आप निष्णात थी। कई बार व्याख्यान में सीधी उठकर गोचरी हेतु चली जाती। आपके मन में तनिक भी विचार नही आता कि मैं इतने बड़े घर की वहू हूँ, गोचरी के लिए कैसे जाऊँ।

आपका तो सीधा सिद्धान्त है कि इस नश्वर शरीर से जितनी भी दूसरो की सेवा की जा सके, करनी चाहिए अन्यथा एक दिन तो यह मिट्टी मे मिलना है। सेवा से ही मानव शरीर की सार्थकता है।

किसी ने कहा है—

तन मे सेवा कीजिए, मन से भले विचार।
धन से इस ससार मे, करिए पर उपकार॥

सज्जनो का तो कार्य ही पर-उपकार करना है और इस रूप मे आपश्री ने अपने सज्जनश्री नाम को सदा सार्थक किया है।

चातुर्मास के पश्चात पू० श्री विलक्षणश्री म सा का विचार मालपुरा की ओर विहार करने का था। किन्तु जयपुर के जौहरी अध्यात्मयोगी श्रीमान् अमरचन्दजी नाहर ने मालपुरा का छ री पालित सघ ले जाने की भावना व्यक्त की। आपश्री ने उनकी भावना को स्वीकृति प्रदान कर दी।

प्रस्थान का समय निकट आ रहा था। चरितनायिका जी ने सोचा, प्रस्थान-विदाई समारोह-पूर्वक होना चाहिए। ऐसा विचार करके आपने जयपुर के अग्रगण्य श्रावको को बुलवाया और उन्हे प्रेरणा दी कि जैन कोकिला पूज्या श्री विचक्षणश्रीजी म. सा. को 'व्याख्यान भारती' पदवी से विभूषित किया जाय।

प्रस्थान के दिन रामनिवास बाग मे स्थित म्यूजियम के विशाल प्रांगण मे जयपुर श्री संघ ने आपका अभिनन्दन करते हुए अभिनन्दन पत्र भेंट किया तथा चरितनायिकाजी द्वारा रचित एक गीतिका को स्थानीय जैन नवयुवक मडल ने गायी। जिसके भावो मे अवगाहन कर सभी के नेत्र सजल हो गये। तदुपरान्त सर्व सघ के समक्ष जयपुर खरतरगच्छ सघ ने पू० जैन कोकिला जी को 'व्याख्यान भारती' की पदवी से विभूषित किया।

इसके उपरान्त सर्व सघ के साथ आपने मालपुरा प्रस्थान किया। नाहर सा० ने संघ भक्ति का अपूर्व लाभ लिया।

आचार्यश्री का अप्रत्याशित वियोग

स. २०१७ के चातुर्मास के पश्चात् पालीताना में विराजित आचार्य सम्राट वीरपुत्र श्री आनन्द सागरजी म. सा का पौष सुदी १० को हृदयगति रुक जाने से अचानक ही स्वर्गवास हो गया। आपश्री के पाट पर कविकुलकिरीट श्रद्धेय गुरुदेव कवीन्द्रसागरजी म सा को विराजमान किया गया किन्तु दुर्भाग्य यह रहा कि सिर्फ ११ महीने की अवधि में ही स० २०१८ की फाल्गुन शुक्ला ५ को आप भी देवलोक प्रयाण कर गये।

श्रद्धेय गुरुदेव वहुमुखी प्रतिभा के धनी थे, आशुकवि थे। संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी मे रचित आप की रचनाएँ बेजोड़ है, गायको व श्रोताओ को मन्त्रमुग्ध बना देती है।

आपका देहावसान संघ की अपूरणीय क्षति है।

वि० स २०१६ म पण्डित प्रवर श्री दयारामजी से श्री शशिप्रभाजी ने सस्कृत का अध्ययन प्रारम्भ किया और अल्प समय मे ही अच्छी गति करली फिर पण्डितजी की प्रेरणा से वाराणसी विश्वविद्यालय की प्रथमा परीक्षा का फार्म भर दिया और पण्डितजी की प्रेरणा से ही चरित्रनायिकाजी ने मध्यमा का फार्म भर दिया।

लेकिन परीक्षा के समय समस्या यह आई कि परीक्षा केन्द्र ब्यावर मे था, पूज्या प्रवर्तिनीवर्या को छोडकर कसे जायें ? यद्यपि शीतलश्रीजी म सा, रमणीकश्रीजी म सा जिनेन्द्रश्रीजी म सा आदि साध्वियां सेवा म थीं पर व्याख्यान का भार कौन सँभाले ? यह सबसे बडी समस्या थी। किन्तु गुरुदेव की कृपा और पूज्य प्रवर्तिनीजी के आशीर्वाद से टोक विराजित कल्याणश्रीजी म सा आदि जयपुर पधार गये। समस्या हल हो गइ।

पू प्रवर्तिनीजी के आदेश से आप (चरितनायिका) शशिप्रभाजी के साथ ब्यावर पधारे और परीक्षा दी। वापिस जयपुर लौटते समय मार्गस्थ अजमेर म निर्मलाश्रीजी की बडी दीक्षा हेतु अनुयोगाचार्य श्रद्धेय कान्तिसागरजी म सा और पूज्य श्री दर्शनसागरजी म सा पधारे हुए थे। बडी दीक्षा का दिन समीप ही था अत पूज्यवर के आदेश और विजयेन्द्रश्रीजी म सा के आग्रह के कारण बडी दीक्षा तक आपको अजमेर रुकना पडा।

इसी दौरान पू प्रवर्तिनीजी की प्रेरणा से जयपुरश्री सघ के अग्रणी श्रावक पू अनुयोगाचार्य के पास चातुर्मास की विनती लेकर गये, जिस उन्होने स्वीकृति प्रदान कर दी।

बडी दीक्षा सानन्द सम्पन्न हुई। तदुपरान्त चरितनायिकाजी शशिप्रभाजी को साथ लेकर उसी सध्या को रवाना हुई और उग्र विहार करके पू प्रवर्तिनीजी के चरणो म जयपुर पधार गइ।

अनुयोगाचार्य का जयपुर चातुर्मास

कुछ दिन बाद पू अनुयोगाचार्यजी ने भी जयपुर के लिए विहार कर दिया। कुशल गुरुदेव की पुण्यभूमि मालपुरा के दर्शन करते हुए जयपुर पधारे। जयपुर सघ ने बडी धूम धाम बड बाजा के साथ नगर प्रवेश कराया। व्याख्यान क्रम चालू हो गया। आप इतनी ओजस्वी, मधुरवाणी मे प्रवचन फरमाते कि श्रोता मन्त्रमुग्ध हो जाते।

मध्याह्न म चरित्रनायिकाजी जयानन्द केवलीरास अपनी सुरीली वाणी मे फरमाती।

अनुयोगाचार्य के पधारने से धर्म की लहर सी आ गई। बाल साध्वी शशिप्रभाजी ने अठाई की तपस्याएँ की। फिर तो झडी ही लग गई। पचरगी, मास क्षमण आदि तप खूब हुए। अठाई महोत्सव, वरघोडा, पूजा प्रभावना आदि से चातुर्मास सफल रहा।

आगे भी पू चरित्रनायिकाजी के स २०, २१, २२, २३, २४ मे चातुर्मास गुरुवर्या पू प्रवर्तिनीजी की सेवा म जयपुर म ही हुए। आपश्री ने ज्ञान ध्यान और सेवा का खूब लाभ लिया।

जयपुर में सामूहिक व्याख्यानों की लहर

जयपुर मे स० २०२२ म व्याख्यानो की लहर आई। उस समय दिगम्बर सम्प्रदाय देशभूषणजी म तपागच्छ के विद्यानन्दविजयजी म सा, तेरापथी श्री नगराजजी म, खरतरगच्छ की चरित्रनायिका श्री सज्जनश्रीजी म सा और स्थानकवासी किसी विद्वान आचार्य का चातुर्मास था। प्रति रविवार को एक ही मच से सभी का व्याख्यान होता। पन्द्रह-बीस हजार श्रोताओ की उपस्थिति हो जाती। साम्प्रदायिक सुमेल और सद्भाव की छटा देखते ही बनती।

यद्यपि सभी पूज्यवरों की अपनी-अपनी प्रवचन शैली, भाषा प्रवाह और रसमयता थी किन्तु सज्जनश्री जी म. सा की शैली मे कुछ ऐसा अद्भुत आकर्षण था, भाषा मे कुछ ऐसा रग था, बोली-वाणी मे कुछ ऐसी मिश्री सी मिठास थी कि तालियो की गडगडाहट मे सारा पांडाल गूँज उठता, श्रोताओं पर आपकी भाषा का रग चढ जाता, आपकी सुरीली शब्दावली उनके कानो से होकर हृदय तक पहुँच जाती, तन-मन सब सराबोर हो जाता। जयपुर सघ आपश्री को अमूल्य दिव्यमणि के समान मानने लगा था।

चरितनायिका जी के प्रवचनो का मुख्य विषय सेवा होता। आप विभिन्न तर्कों और उदाहरणो से सेवा का महत्व प्रतिपादित करती और सेवाधर्म को जीवन मे उतारने की प्रेरणा देती।

आपकी कथनी-करनी मे एकता है, उनके जीवन मे भी सेवाधर्म साकार है। यद्यपि भर्तृहरि ने सेवाधर्म को अत्यन्त कठिन और योगियो के लिए भी अगम्य कहा है तथापि उसी अति कठिन सेवाधर्म को आपने अपना सहज स्वभाव बना लिया है।

पू० प्रवर्तिनी श्रीज्ञानश्रीजी म. सा. का महाप्रयाण

सवत् २०२३—पू प्रवर्तिनीजी म सा की वार्धक्यावस्था पूर्णता पर थी किन्तु उनकी ज्ञान-ध्यान-साधना यथावत् चल रही थी। शरीर सामान्यत स्वस्थ ही था। स्फूर्ति और अप्रमत्तता थी। यद्यपि सेवा मे साध्वियाँ तत्पर रहती थी, पर वे अपना सब काम स्वय ही करती थी। आलस्य का नाम भी नही था। चैत्र कृष्णा ४ को चरितनायिका जी से केश लोच भी करवाया। स्थण्डिल के लिए २ मंजिल नीचे पधारती थी।

चैत्र कृष्णा ७ का दिन, प्रात का समय, पूज्या प्रवर्तिनीश्री जी म० सा० स्थडिल के लिए २ मजिल नीचे उतरी। सदा की भाँति चरितनायिका जी साथ ही थी। पूज्या प्रवर्तिनी जी तिरपनी में पानी भर रही थी कि सहसा ही बोल उठी—सज्जनश्रीजो ! मेरा हाथ नही उठता।

चरितनायिकाजी एकदम घबडा गई, अन्य साध्वियो को बुलाया, सभी मिलकर पूज्याश्री को पाट पर ले आई। उस समय तक प्रवर्तिनी जी को कुछ होश था, बोलना चाहा पर न जबान हिली और न ही आवाज निकली, बेसुध हो गयी।

प्रात पूजा आदि के उपरान्त श्रावक-श्राविका प्रवर्तिनी जी से मांगलिक सुनने आते थे, वे आये और आपकी यह दशा देखकर चिन्तित हो गये। तुरन्त डाक्टर बुलवाया। उसने दशा का निरीक्षण करके बताया—आपको हेमरेज (दिमाग की नस फट जाना) हो गया है, साथ ही पक्षाघात (पेरेलिसिस) का भी हल्का सा असर है। इसकी मियाद ७२ घण्टे है। बचना तो बहुत ही मुश्किल है। फिर भी हॉस्पीटल ले चलिए। हम अपना पूरा प्रयास करेगे कि जीवन लौट आये।

इतना कहकर डाक्टर चला गया। सभी साध्वी और श्रावक-श्राविकाओ ने मिलकर सलाह की और इस निर्णय पर पहुँचे कि हॉस्पीटल नही ले जाना।

इस निर्णय का एक आधार पू प्रवर्तिनीजी की इच्छा भी थी। उन्होने साध्वियों से कह रखा था—यदि मैं बेहोश हो जाऊँ तो न कभी हॉस्पीटल ले जाना और न डाक्टरो का हाथ मेरे शरीर से लगवाना।

स्थिति यह थी कि पू प्रवर्तिनीजी की ७० वर्ष की लम्बी सयम पर्याय मे न कभी पुरुष का स्पर्श हुआ था और न डोली मे ही बिठाने का प्रसग उपस्थित हुआ। अत सम्पूर्ण साध्वी मडल और प्रमुख श्राविका शिखरबाई सा. आदि द्वारा हॉस्पीटल न ले जाने का निर्णय किया गया।

परन्तु फिर भी जैसी कि लोकोक्ति है—जब तक साँस, तब तक आस। जीवन बचाने का मनुष्य हर सम्भव प्रयास करता ही है। पू. प्रवर्तिनीजी की साँस भी चल रही थी। अतः लेडी डाक्टर को बुलाकर इंजक्शन भी लगवाया गया पर कोई परिणाम न निकला।

पू. प्रवर्तिनी जब से बेहोश हुई तभी से नवकार मन्त्र की धुन, औपदेशिक भजन, सज्झाय, स्तवन आदि होते रहे।

आखिर चैत्र कृष्णा १० का दुर्भाग्यपूर्ण दिन आया। साँस धीमी होते-होते संध्या के ६.५० पर बन्द हो गई। हल्की सी फट की आवाज हुई, जिसे समीप बैठी चरित्रनायिकाजी ने सुना और पू. प्रवर्तिनी जी का आत्मा सहस्रार केन्द्र से निकलकर, अपने ऊर्ध्वगमन स्वभाव के कारण स्वर्ग की ओर प्रयाण कर गया।

गुरुवर्याजी का जीवन जल में कमलवत् सर्वथा निर्लेप था। ज्ञान-दर्शन-चारित्र की ज्योति, सरलता, कोमलता की साक्षात् प्रतिमा, तात्विक ज्ञान की प्रज्वलित प्रभा, अप्रमत्त साधिका, ज्ञानध्यान उपयोगिनी, सर्वथा निश्छल स्वभाव, दुराव छिपाव रहित सर्वथा सरल-सहज जीवन था आपश्री का।

उज्ज्वल गहुआ रंग, स्मितमयी तेजस्वी मुखाकृति, तपःस्तेज से दीप्त भाल, परमशांत अधखुले नयन, सरल किन्तु तीक्ष्ण नासिका, मध्यम कद, सुन्दर देहयष्टि, अत्यन्त कोमल करतल, शश्वत जाप की अभ्यस्त अँगुलियाँ, तर्जनी आदि पर घूमता अँगूठा—ऐसा आकर्षक और प्रभावशाली बाह्य व्यक्तित्व था आपश्रीजी का। जिन्होंने उनके इस रूप को देखा है, आज भी वह उनके नेत्रों में चलचित्र की तरह घूमता रहता है।

संसारी जीवन में भी आप सिर्फ बैलगाड़ी और ऊँट गाड़ी में ही बैठीं। अन्य किसी वाहन का उपयोग ही नहीं किया।

किन्तु संसारी जीवन रहा ही कितना! ६ वर्ष की आयु में माता पिता ने विवाह के बंधन में बाँध दिया। लेकिन भावी को तो उनका उत्तम संयमी जीवन मंजूर था। विवाह के छह महीने बाद ही पतिदेव का स्वर्गवास हो गया। ससुर गृह जाने का प्रश्न ही उपस्थित नहीं हुआ। १३ वर्ष की किशोर वय में ही स्वनाम धन्या पू. पुण्यश्रीजी म. सा. के सान्निध्य में भागवती दीक्षा स्वीकार करके संयम के कंटकीय मार्ग पर चल पड़ीं। ७० वर्ष तक निर्दोष संयम का पालन किया और ८३ वर्ष की आयु में इस नश्वर शरीर का त्याग कर दिया।

आपश्री की अन्तिम यात्रा में हजारों व्यक्ति सम्मिलित हुए और सश्रद्धा अश्रु-श्रद्धांजलि समर्पित करके अपने-अपने गन्तव्य स्थानों की ओर चले गये।

एक चमत्कार : आँखों देखा

पूज्या प्रवर्तिनीजी के प्रति अनन्य श्रद्धा थी मद्रास निवासी श्रीमान मिश्रीमलजी और उनकी पत्नी की। वे परिवार सहित पूज्याश्री के अन्तिम दर्शनों के लिए जयपुर आये, लेकिन गाड़ी के लेट होने से अन्तिम दर्शन न हो सके। संध्या हो चुकी थी। सीधे मोहनबाड़ी पहुँचे। देखा तो सिर की ओर दिव्य आभा बिकीर्ण ज्योति अभी भी प्रज्वलित है जो चारों ओर सुगन्धमय प्रकाश बिकीर्ण कर रही है।

इस चमत्कार को देखकर वे अभिभूत हो गये। साध्वियों को जब सुनाया तो सभी श्रद्धावनत हो गईं।

पू. प्रवर्तिनीजी के वियोग में संपूर्ण साध्वीमण्डल स्वयं को अनाथ सा अनुभव कर रहा था सभी को गहरा शोक था। ऐसे समय में पू. श्रीविजयश्रीजी म. सा. पू. श्री कल्याणश्रीजी म. सा., आदि ने सबको धैर्य बँधाया, संवेदना प्रकट की।

जयपुर सघ ने पूज्या प्रवर्तिनीजी के देवलोकगमनोपलक्ष मे धूम-धाम से शान्तिस्नात्र, महापूजन, अठाई महोत्सव आदि करवाये। अन्य अनेक स्थानों पर भी अठाई महोत्सव हुए।

पूज्या जैनकोकिला विचक्षणश्रीजी को प्रवर्तिनी के पद पर अधिष्ठित किया गया।

चरितनायिकाजी के विशिष्ट गुण—सामान्यतया एक स्थान पर रहने मे उस स्थान के प्रति राग हो जाता है और श्रावकगण भी उपेक्षा करने लगते है। कहा भी है—अतिपरिचयात् अवज्ञा। लेकिन यह सब विशिष्ट व्यक्तित्व वालो के लिए सत्य नही। चरितनायिकाजी विशिष्ट व्यक्तित्व वाली है। वे एक स्थान (जयपुर) पर गुरुवर्या की निश्रा में २२ वर्ष तक रही, फिर भी श्रावक-श्राविका उन्हे श्रद्धा की दृष्टि से देखते रहे।

इसका कारण रहा, उनके विशिष्ट गुण। आप स्नेह, सरलता, शुचिता, उदारता की प्रतिमूर्ति है। जहाँ अन्तो तहा वहि आदर्श— उनमे मूर्तिमान है। एकान्त मे हो अथवा समाज मे—सर्वत्र एक समान ही रूप, व्यवहार, आचार-विचार और ज्ञान मे, अध्ययन में, जपाराधना मे निमग्नता, सर्वथा निखालिस स्वर्ण, दोष, खोट, मल का नाम निशान भी नही।

यही इनकी कुछ विशेषताएँ है, जिनके कारण दीर्घकाल तक एक स्थान पर रहकर भी निर्दोष रही।

वैराग्यवती सुश्री किरण की दीक्षा

श्री कमलचन्दजी सा वांठिया की सुपुत्री सुश्री किरण वैरागिन के रूप मे आपश्री के पास रह रही थी। पू शशिप्रभाजी म सा के साथ ही इसने भी उच्चतर माध्यमिक शिक्षा बोर्ड अजमेर से मैट्रिक की परीक्षा दी थी। गृहस्थाश्रम मे कौमुदी और अमरकोश प्रारम्भ कर दिये थे। धार्मिक शिक्षा भी त्वरित गति से हस्तगत कर रही थी। उन दिनो पू श्री शशिप्रभाजी को संस्कृत का अध्ययन कराने के लिए उद्भट विद्वान पण्डित प्रवर चण्डीप्रसाद आचार्य, जो महाराजा सस्कृत कालेज के प्राचार्य थे व प्रिसीपल पद पर भी रह चुके थे, वे आते थे।

उन्ही की सत् प्रेरणा से उन्ही के द्वारा किरण ने भी सस्कृत प्रवेशिका की पढाई की और निर्धारित समय मे परीक्षा देकर फर्स्ट क्लास मार्क्स प्राप्त किये। उनकी (किरण की) वैराग्य भावना दिनानुदिन अभिवर्द्धित हो रही थी। पूज्या प्रवर्तिनीजी के स्वर्गवास के वाद उनका आग्रह वहुत वढ गया। उनके वैराग्य की कई कठिन परीक्षाएँ भी ली गई, पर वे उन सब में सफल हुई।

उनकी दृढता से प्रभावित होकर ताऊजी सुगनचन्दजी वांठिया, पिताजी कमलचन्दजी वांठिया आदि सभी परिवारीजनों ने स्वीकृति प्रदान कर दी।

आषाढ शुक्ला ६ के दिन तपागच्छीय श्री विशालविजयजी म. श्री राजशेखरजी म. की निश्रा में एवं पूज्याश्री कल्याणश्रीजी म सा आदि के सान्निध्य मे वाँठिया परिवार ने श्री संघ के सहयोग से त्रिपोलिया स्थित आतिश मार्केट मे खूव धूमधाम से विराट समारोह के साथ वि स २०२४ में सुश्री किरण की दीक्षा सम्पन्न कराई। पूज्य श्री विशालविजयजी म ने सम्पूर्ण क्रिया खरतरगच्छ के अनुसार करवाई। किरण का दीक्षोपरान्त नाम प्रियदर्शनाजी रखा गया और श्री सज्जनश्रीजी की शिष्या घोषित की गयी।

चातुर्मास अत्यन्त निकट था और वाल साध्वी प्रियदर्शना भी जयपुर की थी, अत जयपुर सघ के अत्यधिक आग्रह पर चरितनायिकाजी ने स २०२४ का चातुर्मास जयपुर मे ही किया। इस चातुर्मास

की विशेषता यह थी कि यह चातुर्मास अपनी जिम्मदारी पर किया। क्योंकि अब तक के सभी चातुर्मास पू प्रवर्तिनी श्री ज्ञानश्रीजी महाराज के आदेश से हुए अथवा उनकी निश्रा म हुए।

वीरबालिका विद्यालय की ओर से

चरितनायिका जी की दीक्षा रजत जयन्ती एव विदाई समारोह—चरितनायिकाजी को भागवती दीक्षा ग्रहण किये हुए २५ वष हो रहे थे। इस उपलक्ष्य मे वीर बालिका विद्यालय न कार्तिक सुदी ५ (स्कूल का स्थापना दिवस) को आपश्री की दीक्षा रजत जयन्ती मनाई। आपके व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डालते हुए भावाभिसिंचित अभिनन्दन पत्र भेंट दिया गया।

जयपुर मे विदाई

चातुर्मास की समाप्ति पर जयपुर श्रीसघ ने शिवजीराम भवन' मे विदाई समारोह का आयोजन किया। जिसम सकडो व्यक्ति उपस्थित थ। प्रमुख व्यक्तियो न चरितनायिकाजी क २५ वर्षीय निर्दोष सयमी जीवन पर प्रकाश डाला, आपके विशिष्ट गुणो का वणन किया और सद्भावना की कि जयपुर का यह कोहिनूर हीरा दशो दिशाओ म अपनी भव्य आभा विकीर्ण करता रह।

मन्त्रिवर श्री कोठारीजी ने सघ की ओर मे कमली ओढाकर आपका बहुमान किया, सेठश्री कल्याणमलजी गोलेच्छा न भी आपको कमली ओढाई। कमलादेवी बाठिया न अपनी सुरीली बुलन्द आवाज म विदाई गीतिका गाई जिसके भाव इतने मार्मिक थे कि उपस्थित जन समूह क नयन सजल हो उठे।

अन्त म सभी के श्रद्धा सुमन स्वीकृत करते हुए आपश्री न भावोद्गार व्यक्त किये—"इतने समय मैं जयपुर म रही हूँ, किसी प्रकार का अविनय हुआ हो कटुवचन निकल गया हो, किसी का दिल दुखाया हो तो हृदय से क्षमा प्रार्थिनी हूँ।"

तदुपरान्त विदाई समारोह सम्पन्न हो गया।

वहा से आप अपनी गुरु बहना (शीतलश्रीजी जिनेन्द्रश्रीजी) तथा शिष्याओ (शशिप्रभाजी, प्रियदशनाजी) के साथ रामलीला मैदान की ओर पधारी। सकडो व्यक्ति साथ थे। जयघोषो से धरागगन गूँज रहे थे। रामलीला मदान मे आपने सबको मागलिक सुनाया। सभी भरे हृदय लिये हुए अपन अपने गन्तव्य स्थान की ओर चले गये और आपन अपने कदम अजमेर होते हुए नाकोडाजी की ओर बढा दिये। नाकोडा जाने का कारण यह था कि पू० अनुयोगाचाय श्री कान्तिसागरजी म सा व पू० श्री दशनसागरजी म सा की निश्रा मे बाडमेर सघ की ओर से उपधान हो रहा था तथा उनकी आज्ञानुसार नूतन साध्वी प्रियदशनाजी की बडी दीक्षा भी वही करवानी थी।

मागस्थ अजमेर, ब्यावर, पाली, जोधपुर आदि क्षेत्रो को स्पर्शते हुए तीर्थ शिरोमणि नाकोडा के दर्शनार्थ पहुँचे। वहीं वि स २०१८ की माघ कृष्णा एकादशी को उपधान की माला के दिन बडे ठाठ-बाट से बडी दीक्षा सपन्न हुई नूतन साध्वीश्री प्रियदशनाजी म सा की।

इस अवसर पर अनक क्षेत्रो के लोग आये हुए थे। अन्य लोगो से आपकी (चरितनायिकाजी की) प्रशसा सुनकर और प्रत्यक्ष आपके व्याख्यान आदि मे प्रभावित होकर अपने-अपने क्षेत्र म चातुर्मास की आग्रह भरी विनती करने लग। किन्तु आपश्री ने बीकानेर चातुर्मास की विनती स्वीकारी। उसका एक कारण यह भी था कि श्री शशिप्रभाजी को शास्त्री' की परीक्षा दिलवानी थी और परीक्षा केन्द्र बीकानेर ही था।

नाकोडा से माघ शुक्ला ३ के दिन विहार करके जोधपुर पधार गई, अपनी शिष्य मण्डली के साथ। अनुयोगाचार्यजी भी जोधपुर पधारे गये।

कापरडा संघ

जोधपुर निवासी चादजीबाई सा० की भावना पू० श्री कांतिसागरसूरिजी म० की निश्रा में कापरडा सघ निकालने की थी और पूज्यश्री भी स्वीकृति दे चुके थे। सूरिजी की आज्ञा और चाँदजोबाई सा० के अत्याग्रह से कापरडा तक आप सभी साथ रही। जोधपुर से आई हुई मुख्य श्राविका भी बीकानेर तक साथ चलने को तैयार हो गयी।

कापरडा से पूज्य गुरुदेव की आज्ञा लेकर आप सभी पीपाड, साथीन होते हुए नागौर पधारी। वहाँ पूज्याश्री चचलजी म० सा०, कमलाश्रीजी म. सा. आदि विराजमान थे। उनकी निश्रा मे फागुन शुक्ला ५ को पूज्य कवि सम्राट का स्वर्गारोहण समारोह मनाया और मध्याह्न मे दादा गुरुदेव की पूजा भणाई।

वहाँ से विहार कर आप सभी गोगोलाव होते हुए फाल्गुन शुक्ला ११ के दिन गंगाशहर पधारे।

बीकानेर चातुर्मास सं० २०२५ का

आपके बीकानेर आगमन के समाचार त्वरितगति से नगर भर मे फैल गये। बड़े धूमधाम से नगर-प्रवेश कराया गया। हजारों लोग साथ थे। जुलूस बाजारो मे होता हुआ निकला। चिंतामणिजी व आदेश्वर जी के मन्दिरो के दर्शन किये और शिष्यामडली सहित रागड़ी चौक स्थित सुगनजी के उपाश्रय मे पहुँचे।

वहाँ आपने जोशीला प्रवचन दिया जिसे सुनकर सभी लोग गद्‌गद हो गये। प्रतिदिन व्याख्यान का क्रम चालू हो गया।

श्वाश्वत ओली पर्व आने वाला था, अत. आपने श्रीपालचरित्र शुरू कर दिया। समीक्षात्मक विवेचन और सुन्दर वाचन की सभी ने मुक्त कठ से प्रशंसा की।

रामनवमी और महावीर जयन्ती का समारोह हर्षोल्लासपूर्वक मनाया गया तथा चैत्री पूर्णिमा के दिन भी अच्छी तरह पर्वाराधन किया गया।

तत्वज्ञ श्रावकों के आग्रह पर आपने राजप्रश्नीय सूत्र का वाचन किया। आपकी विवेचना शैली से प्रभावित होकर जनता खिंची चली आती, उपाश्रय का हॉल भर जाता, कितनी ही श्राविकाएँ तो बराबर के उपाश्रय की खिडकियों मे बैठकर आपका व्याख्यान सुनती।

पूज्या शशिप्रभाजी ने वैशाख के महीने में शास्त्री के प्रथम खण्ड की निर्विघ्न परीक्षा दी।

चातुर्मास प्रारम्भ हो गया। आपने आचारांग के वाचन का निर्णय लिया क्योकि इसमे आचार धर्म का विशद विवेचन है। ज्ञानपूजा के साथ सूत्र का प्रारम्भ हुआ। आपकी व्याख्यान शैली से श्रोता झूम उठते थे। वास्तव मे वस्तु का विश्लेषण करने की आप मे अद्भुत क्षमता है। इसीलिए गच्छ मे आप सर्वोपरि आगमज्ञा कही जाती हैं।

इसी चातुर्मास मे आचार्य विजयवल्लभसूरिजी के पट्टधर शिष्य पू० श्री विजयसमुद्रसूरिजी म० सा० अपनी शिष्यमडली के साथ वर्षावास हेतु बीकानेर पधारे हुए थे। उनके साथ १८ मुनिराज और अनेक साध्वियाँ थी।

स्व० आचार्य विजयवल्लभसूरिजी म० सा० बड़े ही समयज्ञ, निश्छल और उदार विचारों वाले थे और थे गच्छ भेद-भाव से सर्वथा परे। उनकी इस विशाल हृदयता का असर इनके साधु समुदाय पर पडा अत. आज भी वे किसी से मिलते है तो बडा स्नेह व आत्मीयतापूर्ण व्यवहार करते हैं।

खरतरगच्छ के साधु-साध्वी तो वैसे भी प्राय सरल हृदयी और व्यवहार कुशल होते है। दोनो ओर के परस्पर सद्व्यवहार के कारण आचार्य श्री विजयसमुद्रसूरिजी व उनके समुदाय का चरितनायिका जी और उनकी शिष्यामंडली के साथ बड़ा ही सौजन्यतापूर्ण व्यवहार था। सम्पूर्ण चातुर्मास मे आचार्यश्री

की वात्सल्यपूर्ण स्रोतस्विनी प्रवाहित रही। प्रत्येक समारोह में वे चरितनायिकाजी को सादर आमंत्रित करते और अपने व्याख्यान में अपने ही मुख से चरितनायिकाजी की विद्वत्ता और सद्गुणों की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते।

सुनकर लोग चकित रह जाते सोचते—पूज्यश्री की कितनी उदारता। तपागच्छ में जहाँ श्रावक लोग साध्वी का व्याख्यान भी सुनना पसन्द नहीं करते, वहाँ ये आचार्य होकर भी अन्य गच्छ की साध्वी की प्रशंसा अपने मुख से करते हैं।

वस्तुतः यह प्रशंसा चरितनायिकाजी के विशिष्ट निर्दोष श्रमणाचार की थी और थी उदारता सहृदयता, सरलता, प्रकाण्ड विद्वत्ता आदि अलभ्य गुणों की जो उनमें साकार हैं।

इसी कारण आपका श्रमणी मंडल अत्यधिक समादृत हुआ। प्रत्येक संक्रान्ति समारोह पर चरितनायिकाजी की उपस्थिति अनिवार्य थी।

एक बार कोचरों के चौक में विराट रूप में संक्रान्ति महोत्सव का आयोजन था और उसी के साथ था योगोद्वाहक मुनिजनों का पदवी महोत्सव तथा उपधान तप के आराधकों का माल महोत्सव। तीन आयोजन एक साथ होने से विशाल जनसमूह का एकत्र होना ही था। २०-२५ वर्ष बाहर से आयी, इतनी ही पुनः टिकट आये थे। जयपुर से एक बस पंजाबी समुदाय की आई थी और जयपुर से चरितनायिकाजी की मातुश्री तथा सेठ कल्याणमलजी गोलेच्छा (चरितनायिका के संसारपक्षीय पति) का भी आगमन हुआ था। बीकानेर के लोग तो थे ही। चालीस हजार श्रोता संख्या हो गई थी।

इस विशाल जन मेदिनी में चरितनायिकाजी ने जो जोशीला प्रभावपूर्ण, धारा प्रवाह भाषण दिया तो सभी श्रोता दाँतों तले अँगुली दबा गये। समझ ही नहीं पाये कि यह साध्वी है अथवा साक्षात् सरस्वती। कैसी सुरीली आवाज है मानो सरस्वती की वीणा ही झंकृत हो रही हो। एक एक शब्द मर्म है, गजब का आकर्षण और प्रेरणीयता है। भाषण क्या है? चमत्कार है, जादू है।

इस भाषण को सुनकर कल्याणमलजी के नेत्र भी हर्षातिरेक से भर आये और बीकानेर ही नहीं आस-पास के सभी क्षेत्रों में चरितनायिकाजी ख्याति प्रसरित हो गई।

तेरापंथ के विद्वानमुनि शतावधानी श्रीराजकरणजी व पार्श्वचन्द्र गच्छ के विद्वान मुनि श्रीसुरेशचन्द्रजी म० के साथ भी आपके कई भाषण हुए। सर्वत्र आपकी वक्तृत्व कला की भूरि भूरि प्रशंसा हुई।

चरितनायिकाजी की विशाल हृदयता

चातुर्मास के पश्चात् एक बार अपनी शिष्या समुदाय के साथ भीनासर पधारे। वहाँ पूजा महोत्सव था। उसमें सम्मिलित होने के लिए पू० समुद्रसूरिजी भी अपने शिष्य शिष्या मंडल के साथ पधारे थे। पूजा के साथ तपगच्छ संघ की ओर से स्वामिवात्सल्य का भी आयोजन था। पूजा समाप्ति पर आप जैसे उठकर जाने लगे कि श्रावकों ने बहरने का अत्यधिक आग्रह किया। आप विचार में पड़ गयीं कि पात्रे तो लाये ही नहीं, बहरें कैसे?

आपकी त्वरित बुद्धि ने तुरन्त उपाय सोच लिया। तपागच्छीय प्रवीणश्री जी म. सा. आदि से पात्र लिए और उसमें आहार बहरा गई। आपश्री के हाथ में लाल पात्रे देखे तो पहले तो लोग चकित हुए और फिर आपकी विशालहृदयता का अनुभव करके आनन्दित हो उठे।

बहरा हुआ आहार तपागच्छीय साध्वीजी के साथ आपने खाया। आपके स्नेह से सभी अभिभूत/आल्हादित हो गये।

बीकानेर का यह ऐतिहासिक चातुर्मास आज भी लोगों की स्मृति में ताजा है और वहाँ के लोग अब भी दर्शनार्थ आते रहते हैं।

वैशाख मास मे पू. शशिप्रभाजी म. सा को शास्त्री द्वितीय खण्ड की परीक्षा देनी थी, अत चातुर्मास के वाद भी तव तक वहाँ ठहरना पडा।

इस वीच वीकानेरवासियो ने दूसरे चातुर्मास की आग्रह भरी विनती शुरू कर दी, किन्तु फलोदी (फलवर्द्धि) नगरी मे विराजित वात्सल्यमयी त्यागमूर्ति श्री चम्पाजी म सा का आग्रहपूर्ण आदेश था चातुर्मास हेतु फलोदी आने का।

और चरितनायिकाजी का यह विरल गुण है कि वे वडो की आज्ञा अनुल्लघनीय मानती हैं। इसलिए वीकानेर चातुर्मास की स्वीकृति न दे सकी। अस्वीकृति से वीकानेर संघ को दुःख तो वहुत हुआ पर करते क्या ? आखिर वडे ही समारोहपूर्वक विदाई दी और साथ ही पुन. पधारने की भावभीनी विनती भी की।

सैकडो नर-नारियो के साथ चरितनायिकाजी ने अपनी शिष्या मडली सहित फलोदी की ओर कदम वढाये। पहली मजिल 'नाल' पहुँचे। यह कुशल गुरुदेव का वड़ा ही चमत्कारिक स्थान है। वीकानेर सघ ने यहाँ पूजा और सार्धमिवात्सल्य का आयोजन किया था। सर्व कार्य व्यवस्थित सम्पन्न होते ही उस शुष्क मरुधर प्रदेश मे ज्येष्ठ मास की भयंकर गर्मी मे इतनी तेज वर्षा हुई कि लोग चकित रह गये। कहने लगे—पूज्याश्री ने क्रोध-मान आदि कषायो की आग मे तप्त हमारी मानस-भू को शीतल वनाया है, उसी प्रकार प्रकृति ने भी भूमि को ठण्डक प्रदान की है। यह सव पूज्याश्री की साधना का ही चमत्कार है।

उनकी हार्दिक प्रसन्नता इन शब्दों मे प्रगट हो रही थी।

दूसरे दिन शीतल सुखद वातावरण मे विहार करके आपश्री झज्झू पधारीं। वहाँ भी वीकानेर सघ की ओर से स्वामी वात्सल्य था। मध्यान्ह मे प्रवचन पीयूष का पान कराकर सवको सन्तुष्ट किया। कइयो ने विभिन्न प्रकार के त्याग-प्रत्याख्यान किये।

यद्यपि मरुधरा की ज्येष्ठ मास की गर्मी अति भयकर होती है, उसमे विहार करना अति कष्टप्रद है किन्तु वीकानेर संघ की भक्ति के कारण मार्ग सुखपूर्वक पूर्ण हो गया। सानन्द फलोदी की सीमा में पहुँच गये।

फलोदी चातुर्मास : वि० स० २०२६

दो-तीन मजिल पहले ही फलोदी के लोगो का आगमन शुरू हो गया था। साध्वी श्री जितेन्द्र श्री जी म तथा जिनेन्द्रश्री जी म. एव सूर्यप्रभाजी म. आदि एक मजिल तक लेने आईं। वड़े हर्षोत्साह के साथ नगरप्रवेश हुआ। जिन-दर्शन-वन्दन करती हुई वड़े उपाश्रय पधारी। वहाँ से वात्सल्यसरिता पू. श्री चम्पाश्री जी म सा, श्री धर्मश्री जी म. सा, श्री रतिश्रीजी म सा आदि के दर्शन कर आपने स्वय को कृतार्थ माना, हृदय आनन्द सागर मे निमग्न हो गया। स्वय पूज्येश्वरी को भी अमित हर्ष हो रहा था। चातुर्मास प्रारम्भ हुआ।

यहाँ के श्रावक तत्वरुचि वाले थे। अत आचाराग द्वितीय श्रुतस्कन्ध और 'आराम शोभा चरित्र' प्रारम्भ किया। श्रोताओ की संख्या दिनो-दिन वढने लगी।

यहाँ आपके अध्ययन-अध्यापन का कार्य भी सुचारु रूप से चल रहा था। मध्यान्ह मे सर्व साध्वियो को अनुयोगद्वार सूत्र की वाचना देते और प्रद्युम्न चरित्र पढाते थे।

साध्वी श्री शशिप्रभाजी म सा ने पूज्यवर्याओ की निश्रा मे मासक्षमण तप प्रारम्भ किया। ५ उपवास के दिन मे ही शासनदेवी के गीत प्रारम्भ हो गये। वहनो मे वहुत उत्साह था। सेवामूर्ति

जितेन्द्रश्री जी म सा तपस्विनीजी की सेवा मे सलग्न हो गईं। व दिन मे तपस्विनी जी की सेवा करती और रात्रि म अपनी पूज्याश्री व चरित्रनायिकाजी की सेवा करती। उनकी सेवा भावना से सभी साध्वियाँ अभिभूत थी।

दुखद प्रसग यह बना कि शशिप्रभाजी की तपस्या के दौरान ही फलोदी के अग्रगण्य श्रावक श्रीमान गुलाबचन्दजी गोलेच्छा का अकस्मात ही हार्ट फेल हो गया।

इस घटना म तप की पूर्णाहुति पर हर्ष तो कम हो गया पर कार्य सभी किय गये। पचरगी तप १५-१६ अठाइयाँ, शखेश्वर के अट्ठम आदि तथा अठाई महोत्सव, वरघोडा, रात्रि जागरण, स्वामि-वात्सल्य के साथ मासक्षमण तप सानन्द सम्पन्न हुआ। पारणा एव स्वामिवात्सल्य का सम्पूर्ण लाभ पू शशिप्रभाजी म सा के ससारपक्षीय भ्राता श्रीमान मूलचन्दजी सा गोलेच्छा न लिया।

इसी समय बीकानेर म श्री शशिप्रभाजी द्वारा शास्त्री परीक्षा के दो खण्डों के परिणाम निकले, उसमे आप सैकण्ड डिवीजन म उत्तीर्ण हुइ।

वात्सल्यनिधि पूज्या श्री चम्पाश्री जी म सा अपने जीवन के ८० वर्ष और सयमी पर्याय के ६० वर्ष पूर्ण कर चुकी थी। उनका सयमी जीवन कोरी चादर के समान निर्दोष था। अत सब ज्येष्ठ होने के कारण चरित्रनायिकाजी न उन्हें 'समुदायाध्यक्षा' के पद पर प्रतिष्ठित किया तथा चरित्रनायिकाजी के द्वारा रचित गीतिका चरित्रनायिका और उनकी शिष्याओं ने गाया। सुनकर जनता भाव विभोर हो गई।

इस प्रकार नित्य नये कार्यक्रमो के साथ फलोदी चातुर्मास पूर्ण सफल हुआ।

यद्यपि चातुर्मास के पश्चात् फलोदी सघ न मौन एकादशी तक रुकने का आग्रह किया किन्तु आपको जैसलमेर लोद्रवपुर आदि की यात्रा करनी थी, आपकी भावना स पूज्यवर्या परिचित थी अत वे तटस्थ रहीं। आपने फलोदी रुकना स्वीकार नही किया और पूज्यवर्या की आज्ञा तथा सघ की सहमति से विहार कर दिया।

विदाई वेला भावविह्वल कर देने वाली थी। पूज्याओ को छोडते हुए आपका मन विकल था जनता के नेत्र तो अश्रुपूरित थे ही। विदा लेकर व देकर आप आगे बढ रहे थे, कुछ लोग अब भी साथ चल रहे थे। जितेन्द्रश्री जी म आदि दो-तीन साध्वियाँ एक मजिल तक एक साथ आई थीं। वहाँ से जनता तथा साध्वीजी म वापिस लौट गये। मात्र शशिप्रभाजी म सा की बहन तेजाबाई आदि २ ३ व्यक्ति मार्ग-सेवा के लिए साथ रहे।

विहार करते हुए आपश्री जैसलमेर की पावन भूमि म पहुँचे और महावीर भवन म विश्राम लिया।

दूसरे दिन आप किले पर पधारे। वहाँ निरवद्य जिन मन्दिरो के दर्शन से ही हृदय आनन्द विभोर हो गया। शिल्पियो ने अद्भुत कला दिखाई है। अन्दर विराजमान प्रतिमाएँ तो इतनी विशाल और आकर्षक हैं कि उनकी छवि निरखते हुए न मन भरता है न नेत्र तृप्त होते हैं, वाणी मूक हो जाती है बस देखते ही रहो, देखते ही रहो—ऐसी दशा हो जाती है तन मन-नयन की, सम्पूर्णत व्यक्ति भक्ति रस म सराबोर हो जाता है।

ये प्रतिमाएँ भी कोई पाँच-सात सौ नहीं, साढ छह हजार हैं। दर्शन-वन्दन से तन मन-नयन तृप्त हो गये। भक्ति रस उमड पडा।

भडार देखा तो पुनः व्यवस्थित। पू श्री पुण्यविजयजी महाराज ने इसे पूर्ण व्यवस्थित करके अमित पुण्योपार्जन किया है।

एक और भी वस्तु दृष्टि पथ मे आई । बडी चमत्कारी । वह है—बडे दादा जिनदत्त सूरीश्वर जी की चादर । अग्नि सस्कार के समय यह चादर जली नही, अग्नि से अप्रभावित रही और आज ६०० वर्ष बाद भी जैसी की तैसी है, न तो मौसम का ही कोई प्रभाव है इस चादर पर और न काल का ही। यह सब पूज्य दादा जिनदत्त सूरीश्वर के निर्मल तप-त्याग-साधना का प्रभाव है, जो उनकी चादर के रूप मे स्पष्ट दिखाई दे रहा है ।

इन सब वस्तुओ को देखते हुए आप आठ दिवस तक रुके ।

आठ दिन बाद आप सब समीपस्थ महान तीर्थ लौद्रवपुर पधारे । वहाँ सहस्रफणा पार्श्वनाथ प्रभु के बिम्ब के दर्शन कर हृदय आह्लाद से भर गया । दर्शन-वन्दन कर नीचे उतर रहे थे तो एक और चमत्कार से साक्षात्कार हो गया ।

हुआ यह कि मन्दिर के तोरणद्वार पर लटकते हुए अधिष्ठायक देव की पूँछ पू श्री शशिप्रभाजी म सा की कमली पर आ गयी । भारीपन-सा लगा तो सबने मुडकर देखा तो पूँछ लटकती दिखाई दी। भय मिश्रित आश्चर्य के भाव उमडने लगे ।

इतने मे पुजारीजी आ गये । सभी ने एक-डेढ मिनट तक अच्छी तरह दर्शन किये । पुजारी चकित स्वर मे कहने लगे—महाराज साहब ! आप बहुत भाग्यशालिनी है कि अनायास ही इतनी देर तक दर्शन दिये अन्यथा अनेको प्रयत्न करने पर भी दर्शन नही देते ।

इस घटना से प्रगट हो जाता है कि सच्चे त्यागी-तपस्वी श्रमण-श्रमणियो को अनायास ही देव-दर्शन हो जाता है ।

वहाँ से विहार करके अमरसर के मन्दिर के दर्शन किये । पुन. जैसलमेर पधारी । वहाँ से बाडमेर की ओर प्रस्थान किया । पू चरितनायिकाजी की कमर मे वायु का दर्द हो गया था, वहाँ आयुर्वेदिक इलाज कराया । १५ दिन मे आरोग्य लाभ करके नाकोडा तीर्थ की यात्रा करते हुए जोधपुर आये ।

आपके आगमन से जोधपुर की जनता अति प्रसन्न हुई, व्याख्यान का आग्रह किया । चरितनायिकाजी ने जोशीला व्याख्यान दिया । व्याख्यान से प्रभावित होकर जनता ने चातुर्मास का आग्रह किया । लेकिन उससे पहले ही पू श्री गणाधीश म सा , अनुयोगाचार्य गुरुदेव व पू श्री जैन कोकिला का आदेश आ चुका था कि इधर-उधर कही चातुर्मास न करके जयपुर होते हुए दिल्ली पधारो ।

अत जयपुर की ओर कदम बढाये । कापरड़ा, बिलाडा, जैतारण होते हुए ब्यावर पहुँचे । एक दिन ब्यावर रुके । वही पर श्रीमान् लालचन्दजी सा बैराठी जो मालपुरा के व्यवस्थापक थे, मालपुरा मेले मे पधारने के लिये विनती करने आये, चूँकि मेला निकट ही था । मालपुरा तो आपश्री को भी जाना ही था, सहज सयोग मिल रहा था, स्वीकृति दे दी । ब्यावर से मागलियावास पधारे क्योकि वही से मालपुरा के लिये मार्ग जाता था । सयोग से वही तेजबाई मेहता जो चरितनायिकाजी की शिष्या बनने की इच्छुक थी, आ गई और मालपुरा तक साथ रही । गुरुदेव के दर्शनो की तीव्र उत्कण्ठा से सभी लोग शीघ्र ही मालपुरा पहुँच गये ।

मालपुरा गुरुदेव जिनकुशलसूरीश्वर का न जन्म-स्थान है और न स्वर्गगमन स्थान, अपितु एक चमत्कारिक स्थान है । यहाँ दादा गुरुदेव ने एक भक्त को दर्शन दिये, उसके बाद कई भक्तो को दर्शन दिये । जिस शिला पर खडे होकर दादा गुरुदेव ने साक्षात् दर्शन दिये, वह आज चरण के रूप मे है ।

वहा विशाल दादाबाडी निर्मित हो गई है और एक ऐतिहासिक स्थान बन गया है। यह स्थान जयपुर से सिर्फ १०० किलोमीटर दूर है। जयपुर वाले प्रति पूनम बस लेकर आते हैं व पूजा सेवा, रात्रि जागरण जीमन आदि करते हैं। प्रतिवर्ष फाल्गुन की अमावस के दिन मेले का आयोजन बडे धूमधाम से जयपुर सघ की ओर से किया जाता है, स्वामि-वात्सल्य भी होता है।

इस सब का प्रमुख हेतु है—श्रद्धेय दादागुरु जिनकुशलसूरीश्वरजी का कलिकाल म कल्पवृक्ष के समान होना।

ऐसे चमत्कारिक स्थान म पधारने का सौभाग्य चरितनायिकाजी और उनकी शिष्य मडली को भी प्राप्त हुआ। ४ दिन रुके, पूजा भक्ति की और श्रद्धा-सुमन अर्पित किये।

जयपुर सघ की आग्रह भरी विनती को स्वीकार करके चरितनायिकाजी जयपुर पधारी। वैराग्यवती तेजबाई साथ थी। उनकी दीक्षा का मुहूर्त निकलवाया पडित प्रवर भगवानदासजी के पास तो वि स २०२६ वैशाख कृष्णा दशमी का निकला। दीक्षा की तैयारियां होने लगी। इसी बीच शासन प्रभावक पूज्य अनुयोगाचार्य कान्तिसागरजी म सा एव साहित्य शास्त्री श्री दर्शनसागरजी म सा कलकत्ता का ऐतिहासिक भव्य चातुर्मास और कलकत्ता सघ की ओर से सम्मेतशिखर तीर्थ पर कराये गये उपधान तप की आराधना खूब धूमधाम के साथ सम्पूर्ण करवाकर मार्गस्थ तीर्थों की यात्रा करते हुए जयपुर पधारे।

चरितनायिकाजी के अत्याग्रह से दीक्षा तक रुकने की स्वीकृति दी। आपश्री की निश्रा म धूमधाम से तेजबाई की दीक्षा सम्पन्न हुई। दीक्षोपरान्त नाम दिया गया 'नयश्री' और चरितनायिका पू सज्जनश्री जी की शिष्या घोषित की गई।

पू गुरुदेव को पालीताणा पहुँचना था अत उसी सन्ध्या को जयपुर से विहार कर दिया।

चरितनायिकाजी पन्द्रह दिन जयपुर म और रुके। ज्येष्ठ मास शुरू होने वाला था, गर्मी अपना प्रकोप दिखा रही थी किन्तु चातुर्मासार्थ पहुँचना ही था। अत वैशाख शुक्ल १० को ही विहार कर दिया। मार्गस्थ बैराट (प्राचीन मत्स्यदेश की राजधानी—विराटनगर) म अति प्राचीन मन्दिर के दर्शन किये। मन हर्षित हो गया। वहाँ से अलवर पहुँचे। वहा भी रावण पार्श्वनाथ (अति प्राचीन) मन्दिर में अवस्थित विशाल प्रतिमा के दर्शन करके मन झूम उठा। वहाँ से प्रस्थान कर दिल्ली के समीप महरौली म पहुँचे।

महरौली मणिधारी दादा श्री जिनचन्द्रसूरि का अग्नि सस्कार स्थान है। उस युग म दिल्ली यहीं बसी हुई थी। उस समय यहाँ माणक चौक था, जिस स्थान पर आज गुरुदेव का स्थान बना हुआ है। पूज्य दादा गुरुदेव ने अपने ज्ञान बल से अपना अन्तिम समय जानकर भक्तों से कहा कि मेरी बैकुण्ठी (रथी) को बीचवासा मत देना। लेकिन शोकाकुल भक्त गुरुदेव के वचनो को भूल गये बीचवासा दे दिया। बस, फिर क्या था ? सकडो व्यक्ति लग गये फिर भी रथी टस से मस न हुई। हाथी लगाया उसका बल भी विफल हो गया। तब तत्कालीन दिल्ली नरेश अनगपाल ने वहीं अग्नि सस्कार की आज्ञा दे दी। अग्नि सस्कार हुआ और भक्तो ने वही स्तूप बनवा दिया। वही स्थान आज दादाबाडी के रूप में है। यहाँ प्रतिवर्ष भादवा सुदी ८ को मेला लगता है।

अपनी शिष्या मण्डली के साथ चरितनायिकाजी यहाँ दो दिन रही, दिल्ली के गण्यमान्य श्रावक भी आ गये थे। पूजा का खूब ठाठ रहा, आने जाने वालो का मेला-सा लगा रहा।

यहाँ से चार माईल दूर छोटी दादावाडी पधारे। यहाँ जैन श्रावको के अनेक घर हैं। अव तो वहाँ सन्त-सतियो के चातुर्मास भी होते है। आप भी वहाँ १५ दिन रुके। यहाँ आपकी संसार पक्षीय भुवासासु (कोटा वाली सेठानी गुलावसुन्दरी) का 'केसर पोट्रो' के नाम से विशाल स्थान है और निवास स्थान भी। उनके आग्रह से दो दिन वहाँ ठहरे।

सं० २०२६ का दिल्ली चातुर्मास

दिल्ली सघ ने वडे धर्मोत्साह और धूमधाम मे नगरप्रवेश कराया। लाल किले के पास दिल्ली श्रीसघ स्वागतार्थ उपस्थित था। चाँदनी चौक से नई सडक होते हुए नौघरा के मदिर पहुँचे, दर्शन-वन्दन किये, फिर भोपुजरा धर्मशाला पधारे। वही आपका मगल प्रवचन हुआ तथा प्रभावनादि का वितरण भी हुआ। फिर तो नित्य प्रवचन का क्रम शुरू हो गया। आपकी साहित्यिक, परिमार्जित भाषा शैली से जनता मन्त्र मुग्ध-सी वन जाती।

इसी चातुर्मास मे आपने श्रीमद् देवचन्द्रजी म० द्वारा रचित 'अध्यात्म प्रवोध' (इसका अपर-नाम देशनासार है) का अति सुन्दर अनुवाद हिन्दी भाषा मे किया जिसकी प्रथमावृत्ति तो छप चुकी है और द्वितीया वृत्ति प्रेस में है।

राष्ट्रीय स्तर पर मणिधारी दादा की अष्टम शताब्दी समारोह की तैयारियाँ जोर-शोर से चल रही थी। प्रचार-प्रसार भी उत्साह से हो रहा था। भारत के प्रमुख समाचार-पत्रो और जैन समाज की सभी पत्र-पत्रिकाओ मे समाचार प्रसारित किये गये, विदेशो को भी भेजे गये। दिल्ली सेन्टर होने के कारण एक लाख व्यक्तियो के आने की आशा थी। दिल्ली संघ मे जैसा उत्साह था, कार्य शैली उतनी ही उत्तम थी, सभी कार्य सुचारु रूप से हो रहा था।

शताब्दी समारोह मे सम्मिलित होने के लिए खरतरगच्छ के सभी साधु-साध्वियो को आमंत्रित किया जा चुका था।

चरितनायिका जी दादा गुरुदेव का जीवन चरित्र लिख रही थी साथ ही गुरु स्तवन भी। दोनो ही पुस्तके समय मे छप गयी थी।

आप प्रथम वार ही दिल्ली पधारे थे अत चातुर्मास के पश्चात हस्तिनापुर प्रस्थान किया, इसका एक कारण यह भी था कि शताब्दी समारोह चैत्र मास मे होना था। हस्तिनापुर की यात्रा करके आप दिल्ली पुन पधार गये।

पालीताना से उग्र विहार करते हुए सर्वप्रथम पू० अनुयोगाचार्य श्री कान्तिसागर जी म सा एव श्री दर्शनसागरजी म सा. फागुन शुरू होते ही पधार गये और लाल धर्मशाला मे ही विराजे। उनकी निश्रा मे नूतन साध्वी जी की वडी दीक्षा फागुन सुदी ११ को धूमधाम से सानन्द सम्पन्न हुई।

मणिधारी अष्टम शताब्दी समारोह

चैत्र प्रारम्भ होते-होते पूज्य प्रवर श्री उदयसागरजी म सा, श्री प्रभाकरसागरजी म सा, श्री महोदयसागरजी म सा, श्री तीर्थसागरजी म० सा०, श्री कैलाशसागरजी म. सा. आदि भी पधार गये और जैन कोकिला श्री विचक्षणश्री जी म. सा भी अपनी शिष्या मंडली सहित यथासमय पधार गयी। अन्य साधु-साध्वीजी महाराज आदि भी उचित समय पर पधार गये।

लखनऊ चातुर्मास : सं० २०२८

मार्ग मे जिनमन्दिर के दर्शन करते हुए शातिनाथ जी की धर्मशाला मे पधारी, वहाँ आपश्री ने ओजस्वी वाणी मे मागलिक प्रवचन दिये। लोग आश्चर्याभिभूत हो गए।

लखनऊ मे कुल ३५ घर हैं लेकिन प्राय सभी सम्पत्ति और सन्मति से युक्त। धर्मोत्साह के साथ चातुर्मास प्रारम्भ हुआ। व्याख्यान शृंखला शुरु हुई। प्रभु पूजाएँ, दादागुरु पूजाएँ आदि कार्यक्रमो से चातुर्मास सफलता के सोपान चढने लगा। मेघधाराओ के समान त्याग-तपस्याओं की झड़ियाँ लग गई। लखनऊवालों मे अत्यधिक उत्साह था। ८, ९, ११, २१ आदि की तपस्याओ का ठाठ लग गया। कोई घर ऐसा न वचा जहाँ एक-दो अठाइयाँ न हुई हो। पूजाएँ व स्वधर्मी-वात्सल्य की तो धूम ही मची रही, सम्पूर्ण चातुर्मास मे।

इंगलिश मे निष्णात श्री जोगेश्वर मास्टर सा० शशिप्रभाजी व प्रियदर्शना को इंगलिश पढाने आते थे। वे भी अत्यन्त प्रभावित हुए, कहते थे—महाराजश्री की दृष्टि में अद्‌भुत शक्ति है जिसकी ओर भी शात-स्नेहसिक्त दृष्टि से देख ले, वही निहाल हो जाय।

पूज्याश्री मध्यान्ह मे अपनी शिष्याओ को आचारांग सूत्र की वाचना देती थी, अन्य भी सुनने आते थे। सुश्रावक अमोलकचन्द जी सा के आग्रह से 'पुण्यप्रकाश' स्तवन का हिन्दी अनुवाद भी आपने किया।

लखनऊ उत्तर प्रदेश की राजधानी है और अयोध्या तीर्थ के समीप है, अत साधु-साध्वियो का आगमन होता रहता है, धर्मभावना अच्छी है फिर भी चातुर्मास बहुत कम होते हैं। लेकिन आपका यह चातुर्मास सभी दृष्टियो मे सफल रहा।

चातुर्मास के उपरान्त शिष्या मंडली सहित अयोध्या तीर्थ की ओर गमन किया। विहार का सारा लाभ माणकवाई सा. की सासु ने लिया। रत्नपुरी पहुंचे। यह भ० धर्मनाथ की कल्याणक भूमि है। लखनऊ के लोग यहाँ आते रहते हैं। इस वार स्वधर्मी-वात्सल्य का आयोजन किया गया। कार्य की समाप्ति पर हमने अयोध्या की ओर प्रयाण किया। मार्ग में फैजावाद मंदिर के दर्शन करते हुए अयोध्या पहुँचे।

विभिन्न प्रदेशों की तीर्थ-यात्राएँ

अयोध्या—यह नगरी अत्यन्त प्राचीन है। आज श्रीराम जन्मभूमि के रूप में प्रसिद्ध है, किन्तु असंख्य वर्ष पहले भगवान ऋषभदेव ने जन्म लेकर इस नगरी को धन्य वनाया था। ऋषभदेव पहले राजा, पहले योगी और पहले तीर्थंकर थे। उनसे पहले युगलिक युग था। उन्होंने ही मानव को सर्वप्रथम असि, मसि, ललित कलाओ तथा अन्य सभी प्रकार का ज्ञान कराया, गणित-विद्या और लिपिविद्या के पुरस्कर्ता भी वे ही थे। एक शब्द मे आधुनिक ज्ञान-विज्ञान, सभ्यता-संस्कृति के जनक थे ऋषभदेव।

ऐसी महान नगरी मे पहुँचे, मन्दिरो की दशा देखकर दु:ख हुआ। मुस्लिम काल मे मन्दिर और मूर्तियो को तोड़कर मस्जिदें वना ली गई। धार्मिक मतान्धता थी यह।

इस स्थिति को देखकर मन खिन्न हो गया। यहाँ से विहारकर कन्नौज आदि होते हुए वाराणसी पहुँचे।

तीर्थभूमि वाराणसी—यह नगरी तेईसवें तीर्थंकर पार्श्व प्रभु की जन्मस्थली है। गंगा किनारे बसी हुई है। यहां कई जिनमंदिर और दादावाड़ियां हैं। भेलूपुर (भगवान पार्श्वनाथ की जन्मस्थली) में प्रतिवर्ष पौष वदी १० (पार्श्व प्रभु का जन्म दिन) के दिन मेला भरता है, साथ ही प्रभुपूजा और स्वधर्मी-वात्सल्य भी होता है।

हम लोगों ने भी पौष वदी दशमी का मेला यहीं किया।

वाराणसी में हिन्दुओं का भी तीर्थ है। यहां हिन्दुओं के भी मन्दिर हैं। विश्वनाथ का मन्दिर अति प्रसिद्ध है।

वाराणसी प्राचीनकाल से विद्या का केन्द्र रहा है। संस्कृत भाषा के अनेक श्रेष्ठ विद्यालय हैं। यथा—संस्कृत विश्वविद्यालय, हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी विद्यापीठ, पार्श्वनाथ विद्याश्रम आदि। भारत के दूरस्थ प्रान्तों के निवासी संस्कृत अध्ययन के लिए आते हैं। एक जैन यूनिवर्सिटी है, जहाँ से कई लोग पी.एच.डी. करते हैं।

हम लोग जैन भवन में रुके। उन दिनों बंगला देश का युद्ध चल रहा था। अतः श्रावकों के आग्रह से १५ दिन वहीं रुके। इस बीच सिंहपुरी, चन्द्रपुरी आदि कल्याणक भूमियों की यात्रा की। वहाँ के तपागच्छ मुनिराज की निश्रा में संघ निकल रहा था। अतः हमें भी आमन्त्रित किया गया। हमें भी यात्रा करनी थी, हो लिए उनके साथ। 'संगच्छध्वं' का सूत्र सामने था।

चन्द्रपुरी के पहले सिंहपुरी आता है यह शहर से लगभग ९-१० किलोमीटर दूर है। बनारस में गाँधी परिवार की कोठी है, फार्म भी है। उनकी ओर से चाय-नाश्ता आदि की व्यवस्था थी। सिंहपुरी में भ० श्रेयांसनाथ के च्यवन, जन्म, दीक्षा तीन कल्याणक हुए हैं। विशाल मन्दिर व धर्मशाला है।

पास ही सारनाथ है, यह ऐतिहासिक बौद्धस्थल है अनेक बुद्ध मन्दिर हैं। सिंहपुरी के निकट के मृगदाव वन में ध्वंसावशेष हैं। इनमें सम्राट अशोक द्वारा बनवाया हुआ धर्मचक्र है, जो आधुनिक भारत का राजचिह्न है। कई बौद्ध मंदिर, मठ, विद्यापीठ भी दर्शनीय हैं।

दूसरे दिन चन्द्रपुरी पहुंचे। यहाँ भ० चन्द्रप्रभु के तीन कल्याणक हुए हैं।

पुनः बनारस लौटे। राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद सपरिवार यहीं रहते थे। ये पूज्याश्री के संसारपक्षीय सम्बन्धी भी हैं। उनके अत्यधिक आग्रह को स्वीकार करके एक दिन उनकी सेवाभक्ति भी स्वीकार की।

बनारस से विहार कर हम लोग पटना पहुँचे।

पटना—यह एक ऐतिहासिक नगरी है। पाटलिपुत्र, कुसुमपुर आदि नामों से प्राचीनकाल में प्रसिद्ध रहा है। महाराज श्रेणिक के पौत्र उदयन ने इसे बसाया और नन्द सम्राटों, चन्द्रगुप्त मौर्य, प्रियदर्शी सम्राट अशोक, जैन सम्राट सम्प्रति आदि की राजधानी रही है। पाटलिपुत्र भारत के इतिहास, संस्कृति के निर्माण और विध्वंस में भी प्रमुख भूमिका रहा है।

यहीं भावी तीर्थंकर पद्मनाभ का विशाल मंदिर है और समीप ही धर्मशाला है। वहीं हम लोग ठहरे। वहाँ पर स्थानीय व बाहर से आये हुए लोगों के घर हैं। स्थूलिभद्र और सुदर्शन सेठ भी यहीं के थे। शहर के बाहर उनका स्थान बना हुआ है, जहाँ उनके चरण स्थापित हैं।

हम लोग लगभग ८ दिन रहे। गुरुवर्याश्री के मार्गदर्शन में प्रायः सभी दर्शनीय ऐतिहासिक स्थल देखे, जिनसे हमारे धर्म की प्राचीनता और जनसंस्कृति के अवशेष परिलक्षित होते थे। गुरुवर्या के

मुख से उन स्थानो की ऐतिहासिकता सुनकर ज्ञानवृद्धि हुई। सांस्कृतिक गौरव का एक चित्र सामने आया।

वहाँ से नालन्दा कुण्डलपुर की ओर कदम बढाए।

नालन्दा—भगवान महावीर के समय यह राजगृही नगरी का उपनगर था। बाद मे यहा विश्व-विख्यात नालन्दा विश्वविद्यालय स्थापित हुआ जहाँ अनेक विद्यार्थी विद्याध्ययन के लिए आते थे, अब तो ध्वसावशेष मात्र ही है बौद्धविहार भी खण्डहर हो चुके है। 'नया पाली विश्वविद्यालय' भी देखा। एक बौद्धमठ ऐसा देखा जिसमे १२५ वर्ष के बौद्ध साधु थे, वे बडे तरल हृदयी व प्रज्ञाचक्षु थे।

कुण्डलपुर—यहाँ आदिनाथ भगवान की केशो वाली विशाल मूर्ति है। इस प्राचीन मूर्ति के दर्शन करके मन प्रफुल्लित हो गया। बगीची मे छोटी-सी दादावाडी भी है।

राजगृह—यह महाराज श्रेणिक की राजधानी रही है। उनके उपनगर नालन्दा मे भ० महावीर ने १४ चातुर्मास किये थे तथा यहाँ बीसवे तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथ जी च्यवन, जन्म दीक्षा और केवल ज्ञान कल्याणक की पावन भूमि है। यहाँ विशाल जिनमन्दिर, धर्मशाला व भोजनशाला है।

शिखरबद्ध विशाल मन्दिर मे श्यामवर्णी भ० मुनिसुव्रत नाथ की विशाल प्रतिमा के दर्शन पाकर मन आनन्दसागर मे निमज्जित हो गया। पूज्या गुरुवर्या तो प्राय ध्यानस्थ हो जाती। उनकी ऐतिहासिकता बताकर हमारे ज्ञान मे भी वृद्धि करती। वास्तव मे प्राचीन तीर्थस्थानो का सही आनन्द वही अनुभव कर सकता है, जो उनकी ऐतिहासिकता का जानकार हो तथा जिसकी नजर कला-पारखी और हृदय सौन्दर्य मे रस लेने वाला हो।

ये तीन भूमियाँ आज भी हमे मन की पवित्रता और भक्ति-लीनता को प्रेरणा दे रही है।

पूज्या गुरुवर्या के साथ हमने उदयगिरि विपुलगिरि आदि पाँचो पहाडो की यात्रा की।

स्थानकवासी प्रसिद्ध मुनि जयन्तीलालजी अपनी शिष्य मडली सहित अपने गुरुदेव श्रीजीवनलाल जी म० का स्वर्गारोहण दिवस मनाने आये हुए थे। हम लोगो को भी जयन्ती दिवस तक रुकने का आग्रह किया गया। तीसरे पहाड के नीचे स्वर्गस्थान पर समाधि बनी हुई है, वही आयोजन था। बौद्ध फ़्यूजी गुरु भी आये हुए थे। हम लोग इस आयोजन मे सम्मिलित हुए। सभी के भाषणो के बाद गुरुवर्याश्री का भाषण हुआ। भाषण इतना जोशीला, सरस और आकर्षक था कि सभी श्रोताओ ने मुक्त कठ से प्रशसा की।

नजदीक ही शान्तिस्तूप पर्वत है, वहाँ इलैक्ट्रिक रोप लगी हुई है. तथागत बुद्ध का चतुर्मुखी स्टेच्यू है, चारो ही ओर अलग-अलग पोज मे बुद्ध-मूर्तियाँ है। सैकडो व्यक्ति देखने के लिए देश-विदेश से आते है।

यहाँ से विहार करके पावापुरी आये।

पावापुरी—यह भगवान महावीर के प्रथम समवसरण, तीर्थस्थापन और निर्वाणभूमि है। पावापुरी मे प्रवेश करते-करते मन-मस्तिक २५०० वर्ष पीछे पहुँच गया। भगवान महावीर की स्मृति मानस पटल पर तैरने लगी।

जलमन्दिर को दखकर भगवान की पार्थिव देह का अग्नि सस्कार स्थल दृष्टि मे नाच उठा। किंवदन्ती है कि भगवान के अग्नि सस्कार के उपरान्त देवी-देवताओ, मानवो द्वारा अत्यधिक भस्मी ले

जाने से यहाँ गड्ढा हो गया, उसी ने पानी भरने से तालाब का रूप ले लिया। तालाब के बीच मन्दिर में भगवान के चरण प्रतिष्ठित हैं। निर्वाण के समय जब भगवान के लड्डू चढ़ता है तो चरणों के ऊपर जो छत्र लगा है, वह एक मिनट तक हिलता रहता है ऐसा लोग कहते हैं।[1]

जलमन्दिर बड़े सुन्दर ढंग से बना हुआ है चारों ओर गुरुदेव के चरण—बीच में भगवान की छतरी। आने-जाने के लिये चारों ओर से मार्ग। भावपूर्वक दर्शन करके हम सभी ने स्वयं को धन्य माना।

गुरुवर्याश्री के हार्दिक उद्गार निकले—भगवान जिस समय जीवित थे, उस समय तो हम जाने कहाँ होंगे? यदि मन से भगवान की वाणी सुनी होती तो इस पंचम काल में क्यों आते? वे लोग धन्य हैं जिन्होंने प्रभु के मुखारविन्द से निकली अमृतोपम वाणी का साक्षात् पान किया, हृदयंगम किया और तदनुरूप आचरण में संलग्न हो गये। फिर भी हम लोग भाग्यशाली हैं कि हमें जैनधर्म और संयमी जीवन प्राप्त हुआ तथा इन तीर्थों की यात्रा करने का सुयोग मिला।

वहाँ से हम लोग गाँव मन्दिर गये दर्शन किये और तदुपरान्त मुनीमजी की आज्ञा लेकर विश्राम हेतु ठहर गये। यहाँ समवसरण मन्दिर गये। पहले तो यहाँ समवसरण कमल ही था अब तो विशाल समवसरण की अनुकृति हो गई है। चतुर्मुख भगवान द्वादश परिषद् को प्रवचन फरमा रहे हैं ऐसा तीन गढ़ वाला मन्दिर निर्मित हो गया।

गुरु गौतम का कैवल्य स्थान गुणायाजी—गुरु गौतम (इन्द्रभूति गौतम) भ. महावीर के प्रथम पट्टधर शिष्य, १४००० श्रमणों के नायक, अक्षीण महानस आदि अनेक लब्धियों के धारक और भगवान के प्रति प्रशस्त अनुराग वाले थे। यह अनुराग उनके कैवल्य में बाधक बना हुआ था क्योंकि कैवल्य की प्राप्ति राग-द्वेष—दोनों के क्षय होने पर ही होती है। इसीलिए भगवान ने उन्हें देवशर्मा ब्राह्मण को प्रतिबोध देने के लिये गुणायाजी भेजा था। भगवान का निर्वाण हो गया। देव दुन्दुभी के स्वर सुनकर गौतम स्वामी को भगवान के निर्वाण के विषय में ज्ञात हुआ, बहुत दुःख हुआ उन्हें किन्तु दूसरे ही क्षण सुप्त ज्ञान विवेक जाग उठा, राग पलायन कर गया प्रशस्त मोह की जंजीरें टूटीं, कैवल्य भानु जगमगा उठा। ऐसे गुरु गौतम स्वामी के दर्शन कर हम कृतकृत्य हो गये।

वहाँ से विहार करके क्षत्रियकुण्ड ग्राम पहुँचे।

क्षत्रियकुण्ड ग्राम—भगवान महावीर की जन्मस्थली है। यहाँ सात पहाड़ों के मध्य अत्यन्त सुन्दर जिनालय है। इसमें श्याम वर्णी भ. महावीर की प्रतिमा इतनी मनोहर है कि दृष्टि हटाये नहीं हटती, साथ ही इतनी सचिक्कण भी है कि सैकड़ों घड़े पानी डालने पर एक बूँद भी न ठहरे। इस मूर्ति के विषय में प्रसिद्ध है कि इस प्रतिमा का निर्माण भगवान के बड़े भाई नन्दीवर्धन के द्वारा भगवान के (जीवन काल) में ही कराया गया था।

इस प्रतिमा के दर्शन-वन्दन करके तन मन विभोर हो गये।

वहाँ से समीपस्थ ही काकन्दी पहुँचे।

काकन्दी—यह भगवान सुविधिनाथ के च्यवन, जन्म और दीक्षा कल्याणक की पावन भूमि है। धन्ना अनगार, जिनके विशिष्ट तप की प्रशंसा स्वयं भ. महावीर ने की, वे भी इसी नगरी के गौरव थे। यहाँ से विहार करके जमुई पहुँचे।

विहार यात्रा मे पूज्याश्री का उत्साह गजव का रहा। ६५ वर्ष की आयु फिर भी युवाओ जैसी स्फूर्ति। तीर्थो के दर्शन-वन्दन करते-करते आत्मविभोर वन जाती। उत्साह इतना कि लम्वी-लम्वी यात्राएँ करने पर भी नाममात्र को थकान नही, मुख पर सदा प्रसन्नता के दर्शन होते।

यहाँ से चम्पापुरी की ओर विहार किया। मार्ग मे शैवो की तीर्थ नगरी वैद्यनाथ पडा। यहाँ कामना-पूर्ति के वाद भक्तजन दण्डवत् यात्रा करते है। हमने भी देखा।

चम्पापुरी—यह वारहवे तीर्थंकर भगवान वासुपूज्य की पचकल्याणक स्थली है। सम्राट श्रेणिक की मृत्यु के वाद अजातशत्रु ने चम्पा को अपनी राजधानी वनाया। भ० महावीर की ३६००० श्रमणियो की नायिका सती चन्दनवाला भी यही की राजकुमारी थी। कच्चे सूत और चलनी से जल निकालकर शीलधर्म की जयपताका फहराने वाली सती सुभद्रा भी यही की है। इस प्रकार इस नगरी से कई ऐतिहासिक, पौराणिक प्रेरक घटनाएँ जुड़ी है।

अत्यन्त सुन्दर जिनालय और समीपस्थ सुव्यवस्थित धर्मशाला है। जिनालय मे भगवान वासुपूज्य की मनोरम मूर्ति के भावपूर्वक दर्शन किये।

निकट स्थित नाथनगर पहुँचे। वहाँ वावू रायकुमारसिह जी की हवेली में रुके। ऊपर ही जिनमन्दिर था।

श्री रायकुमारसिह जी की धर्मपत्नी सज्जनवाई सा जयपुर के भांडिया परिवार की लडकी हैं और वाल-सहेली है पूज्या गुरुवर्या श्री की, जो वारह व्रतधारी श्राविका है। हमारे अप्रत्याशित आगमन को जानकर हर्ष से भर गई। उनके आग्रह से दो-तीन दिन रुके। हमे फाल्गुन चौमासा—होली पर्व—पर शिखरजी पहुँचना था अत. शिखरजी की ओर प्रस्थान कर दिया।

विहार—अतीत युग मे वहुत उन्नत प्रदेश था। तीर्थकरो के अधिकाश कल्याणक इसी प्रदेश मे हुए है। तीर्थंकरो, श्रमण-श्रमणियो के सतत विचरण से—उनके धर्मोपदेश से पावन वना हुआ। वौद्ध विहारो, मठो की अधिकता से इसे विहार नाम प्राप्त हुआ था।

लेकिन आज स्थिति विल्कुल ही विपरीत है। हिंसा का साम्राज्य छाया हुआ है, चोर-पल्लियाँ है, जन-जीवन असुरक्षित है, सवर्ण और असवर्णो के संघर्ष होते रहते है। काम-धन्धे, व्यापार आदि का अभाव सा हो गया है। खेती वाडी भी स्त्रियाँ करती हैं, पुरुष तो ताड़ी पीकर पड़े रहते हैं। मद्य माँस आदि का प्रयोग खूव होता है। मछली पकड़ने का धन्धा आम हो गया है। छोटे-छोटे वच्चे भी मछली पकडने मे चतुर हैं। कुल मिलाकर यह प्रदेश अवनत स्थिति मे है। विहार अपने प्राचीन संस्कृति एव गौरव को खो चुका है।

विहार करते-करते हम लोग ऐसे स्थान पर पहुँच गये जहाँ तीर्थराज सम्मेतशिखरजी स्पष्ट दिखाई पडता है। सवसे ऊँची टोक भ० पार्श्वनाथ की है। जैसे ही उसके दर्शन हुए सिर श्रद्धा से झुक गये और हाथ मुक्तशुक्ति मुद्रावत् वन गये।

गुरुवर्याजी ने 'वीस कोस से शिखर देख्यो' इस मधुर, सरस स्तवन कड़ी से हम लोगो का ध्यान आकर्षित किया। कितना सत्य कहा है स्तवनकार ने, अभी सम्मेत शिखर वीस कोस दूर था कि फिर भी वही से हम लोगो को शिखर के दर्शन हो रहे थे। दर्शन करते ही हृदय मे जैसे नव स्फूर्ति और उल्लास भर आया।

गिरिडीह होते हुए भ महावीर के कैवल्यप्राप्ति स्थल ऋजुवालुका तट पर स्थित बराकड तीथ पहुँचे। केवलज्ञान भूमि के दशन किये। फिर सम्मेत शिखर की उपत्यका (तलहटी) मे स्थित मधुवन म प्रवेश किया।

प्रथम बार गिरिराज के दशन करके पूज्या गुरुवर्या जी (और हम सब भी) बहुत आनन्दित हो रही थी। हृय ऐसा जैसे जन्म जन्म की साध पूरी हो गई हो।

तीथ के मुख्य द्वार के पास ही तीर्थाधिष्ठायक भौमियाजी की बडी, भव्य, विशाल और तेजस्वी मूर्ति है। मन्दिर भी बडा कलात्मक और मनोहारी है। आगे बडी विशाल धमशाला है। वहाँ योग्य, व्यवस्थित स्थान देखकर हम लोगो ने विश्राम किया।

तीर्थाधिनायक भ० पाश्वनाथ की भव्य प्रतिमा के दशनकर हृदय आनन्दित हो गया। पश्चात दादावाडी मे गुरुदेव को वन्दन नमस्कार किया। समीप ही श्रद्धेय कवि सम्राट के शिष्य कल्याणसागरजी म सा विराजमान थे, उनके दशन किये। आप शिखरजी की नवाणु यात्रा कर रहे थे।

शिखरजी जैनधम म तीथराज कहलाता है। इस पावन भूमि से २० तीर्थंकर मोक्ष पधारे हैं। अन्य कितने साधक-मुनिराजो ने मुक्ति प्राप्त की है, इसकी तो गणना ही नही असख्य जीव मुक्त हुए हैं, इस पवत से। इसीलिए इस पवत के ककड-ककड के प्रति भक्ति भावना उमडती है। हमने यात्रा शुरू की।

शिखर तक की ६ माईल की चढाई है। यात्रा के प्रथम चरण म ही 'सीतानाला' आता है। यहाँ यात्रा करके लौटने वाले यात्रियो को नाश्ता दिया जाता है। इसके पश्चात् कुछ आगे बढने पर गधव नाला आता है। यहाँ से और चढाई शुरू हो जाती है। यह तीन माइल की एकदम खडी चढाई है। इसे पूण कर सवप्रथम गणधर गौतम स्वामी की टुक (टोक) है। अनेक लब्धियो के धारी, चतुदश पूवधर, भगवान महावीर के पट्ट शिष्य—गौतम स्वामी, उनकी टुक के दशन करके चित्त उनके गुणों मे रमण करने लगा।

अन्य तीर्थंकरो के टुको के दशन करते हुए जलमन्दिर पहुँचे। बीच म मन्दिर और चारो ओर जल बडा सुहावना, अद्भुत दृश्य है। पवतमाला म चारो ओर टुक ही टुक दृष्टिगोचर होती हैं। एक पर चढे, उससे उतरे, फिर दूसरी पर चढे बडा आनन्द आया। अन्तिम टुक भ० पाश्वनाथ की टुक पर पहुचे। यह सबसे ऊँची है। भावपूवक दशन किये। चित्त मे उल्लास समा नही रहा था। पीछे से उतरे। बडी विषम उतराई है। कई स्थानो पर तो सिर्फ दो ही आदमी चल सकते इतना ही रास्ता है। एक ओर ऊँचा पहाड, दूसरी ओर गहरी खाई। जरा-सी असावधानी हुई कि हजारो फीट नीचे, हड्डी पसली भी न बचे। पर तीथराज का ऐसा प्रभाव! आज तक कोई दुघटना कभी हुई हो, ऐसा हमने नही सुना। हजारो भक्त यात्रा करते हैं और सभी सकुशल, उल्लसित मन लौटते हैं। हम लोग भी लौटे मन उल्लास से भरा हुआ था। धर्मशाला पहुँचे। होली पव बहुत ही आनन्द उल्लास और आध्यात्मिक रूप म मनाया।

पूज्य कल्याणसागरजी म सा की नवाणु यात्रा चैत्र शुक्ला पूर्णिमा को पूण हो रही थी। उन्होने हम लोगो को रुकने का आग्रह किया। हम रुक गये। शाश्वती ओली की आराधना और महावीर जयन्ती पव गिरिराज की छत्रछाया म बडे आनन्द से मनाया।

जिस तरह सुमन की सौरभ स्वय ही पवन के सयोग से साथ चारो ओर फैल जाती है, इसी प्रकार गुरुवर्याश्री का सम्मेतशिखर आगमन भी कलकत्ता सघ को मालूम हो गया। यहाँ से मुख्य

मुख्य श्रावक मारवाडी साथ वाले श्रीमान ताजमलजी सा० बोथरा, भवरलालजी सा० नाहटा, हीरालालजी सा० लूनिया, पानमलजी सा० कोठारी, ज्ञानचदजी सा० लूणावत आदि तथा मुर्शिदावादी व जौहरी साथ वाले कई श्रावकगण कलकत्ता चातुर्मास हेतु एक वड़ा विनती पत्र, कलकत्ता श्रीसघ के हस्ताक्षर युक्त लेकर पधारे, पूज्याश्री के सम्मुख रखा और भावभरी विनती की। उन्हे शीघ्र ही स्वीकृति मिल गयी। जहाँ भाव हो वहाँ मनुहार कैसी ?

पूज्याश्री रभाश्रीजी म० सा० आदि भी इधर के क्षेत्रो मे धर्म-जागरण करती हुई पधार गई। उत्साह और वढ गया। पू० कल्याणसागरजी म० सा० के नवाणु यात्रा के निमित्त अठाई महोत्सव-पूजाओ आदि का ठाठ रहा।

लगभग सवा महीने हम लोग शिखरजी रहे। वड़े उत्साह मे मन भरकर यात्राएँ-वन्दनाएँ की। वडा आनन्द का वातावरण रहा। चित्त मे उल्लास छाया रहा। तन-मन स्फूर्ति से उमग रहा था।

वहाँ से प्रस्थान करके कतरास, झरिया, धनवाद, वर्द्धमान आदि नगरो मे विचरण करते हुए तथा मन्दिरो के दर्शन करते हुए, जन-साधारण को प्रवचन लाभ देते हुए सैंथिया ग्राम (श्वेताम्बिका नगरी) मे आये। मार्ग मे कलकत्ता से ८-५ श्रावक आ गये। वे भी यहाँ तक साथ रहे।

सैंथिया—यहाँ के लगभग सभी लोग स्थानकवासी थे, लेकिन गुरुवर्याश्री के प्रवचनो से प्रभावित हो, ठाठ से नगर-प्रवेश कराया। मदिरो के दर्शन करते हुए महावीर भवन पहुँचे। वहाँ आपश्री का ओजस्वी प्रवचन हुआ। लोग चकित रह गये—क्या साध्वीजी भी इतनी विद्वान और प्रवचनकुशल हो सकती है ? वहुत प्रभावित हुए, उन्होने कुछ दिन रुकने की विनम्र श्रद्धायुक्त विनती की। हमारे भी उस क्षेत्र के लगभग सभी तीर्थ हो चुके थे, चातुर्मास मे भी अभी समय था, अत स्वीकृति दे दी।

प्रतिदिन के व्याख्यानो से काफी धर्म प्रभावना हुई। उन लोगो ने चातुर्मास का आग्रह किया पर कलकत्ता चातुर्मास स्वीकृत हो चुका था, अत उन्हे स्वीकृति न मिल सकी।

यहाँ से निकट ही वह स्थान है जहाँ प्रभु महावीर ने चण्डकौशिक नाग को प्रतिवोध दिया था। अव वह स्थान जोगी पहाडी के नाम से प्रसिद्ध है। उस समय वहाँ स्मारक वनाने की योजना चल रही थी जो अव पूर्ण हो गई है, चरण स्थापित हो गये है।

बगाल प्रवेश—यहाँ से मुर्शिदावाद की ओर कदम वढाए। मार्ग में बंगाली लोगो से परिचय हुआ। अपनी भापा मे वडी स्त्री को वे मा और छोटी स्त्री को वे दीदी कहते है। भापा प्राय मधुर थी। हमारे वेश के प्रति उन लोगो के हृदय मे सम्मान भी था। हमारे आचार-विचार-निवास के वारे मे जिज्ञासा भी कर लेते थे। जैसे—आपका घर कहाँ है (आपनार वाडी को थाय) ? आप वाल क्यो नही रखते ? पैदल (विना चप्पल जूते के) क्यो चलते है, आदि-आदि। हम लोग भी टूटी-फूटी वगला मे सक्षिप्त उत्तर दे देते।

जैन श्रमणी की कठोर चर्या को सुनकर वे लोग चकित रह जाते। अधिकाश वगाली लोगो मे भारतीय सस्कृति के दर्शन होते है। धोती कुर्ते का पहनावा, अतिथि सत्कार की भावना, त्यागियो के प्रति पूज्यभाव नारीजीवन मे सतीत्व व पातिव्रत्य को प्रथम स्थान। लोगो की दृष्टि मे अश्लीलता का अभाव। यद्यपि पहनावे आदि मे आधुनिक प्रभाव वढ रहा है, फिर भी अपनी सास्कृतिक मर्यादाओ के प्रति प्रेम और आदर का भाव है उनमे।

महिमापुर मे पहुँचे। वहाँ जगत्सेठ का कसौटी पत्थर का पूरा मदिर वना हुआ है। अत

पुलिस का पहरा रहता है। वहा कठगौला राय लक्ष्मीपतिसिहजी द्वारा निर्मित उद्यान स्थित मदिर के दशन करते हुए जीयागज पहुँचे।

जीयागज—यहा बडे सुन्दर आलीशान मदिर हैं। पहले यहा का वैभव बहुत था, लेकिन अब वह बात नही रही, साधु साध्विया का आगमन भी कम होता है, फिर भी यहा के निवासियो म धर्मानुराग और शुद्ध धमनिष्ठा काफी है। पहले यहा जैन घर काफी थे पर अब व्यापार ध धे के कारण कलकत्ता जाकर जम गये हैं। समय का प्रभाव है यह।

दो दिन रुककर गगा पार अजीमगज गये। वहाँ शहर के बाहर शिखरवद्ध जिन मन्दिर म भ० सम्भवनाथ की प्रतिमा अति विशाल और बहुत मनोग्य है। भ० नेमिनाथ का मन्दिर और प्रतिमा भी भव्य और चित्ताकर्षक है। भव्य मदिरा और प्रतिमाओ के दशन करके हृदय प्रफुल्लित हो गया। उसी सध्या को पुन जीयागज लौट आये। २ ३ दिन रुके। पूजाएँ आदि हुई। लोगो न रुकने का आग्रह किया किन्तु चातुर्मास का समय निकट आ रहा था और कलकत्ता के लोगा का आना-जाना शुरू हो गया था, अत रुके नही। कलकत्ता की ओर प्रस्थान कर दिया। माग मे पडन वाले क्षेत्रो म धम जागरणा करते हुए आषाढ कृष्णा १३ के दिन माणकतल्ला म सुप्रसिद्ध राय बद्रीदास टम्पल पहुँचे।

कलकत्ता वाला ने हमारे ठहरने के लिए सामन ही दादावाडी म समुचित व्यवस्था कर रखी थी। कुछ दिन वही ठहरे क्योकि कलकत्ता म तो आषाढ शुक्ला मे ही प्रवश करना था। एक कारण और भी था। पूज्याश्री समताश्री जी म० सा०, कुसुमश्री जी म सा आदि ९ ठाणा भी चातुर्मासार्थ आन वाले थे और प्रवेश सभी का साथ ही होना था। यथासमय वे पधार गये। शुभ मुहूत म बडराजा और हर्षोल्लासपूवक कलकत्ता वालो ने नगर प्रवेश कराया।

सघ के साथ बडे मदिर के दशन किय। कलाकार स्ट्रीट म स्थित जन भवन मे पहुँचे। वहाँ मगल प्रवचन हुआ और प्रभावना के साथ कायक्रम सपन्न हुआ। यहा से तुल्लापट्टी स्थित ११ न० (बडे मदिर के ऊपर) उपाश्रय मे आय। यहाँ हम लोगो के रुकने की उचित व्यवस्था थी।

कलकत्ता चातुर्मास स० २०२९

चातुर्मास का शुभारम्भ हुआ। गुरुवर्या बडतल्ला मे स्थित बजाज धमशाला म थे। प्रतिदिन के व्याख्यान जन भवन म होते थे। व्याख्यान मे श्रोताओ की रुचि और आचार विचार से परिचित कराने वाले, द्वादशागी के प्रथम अग, आचाराग सूत्र का प्रारम्भ किया गया। ओजपूर्ण वाणी और युक्तियुक्त सामयिक विवेचन से श्रोता विभोर हो जाते। उपस्थिति दिनोदिन बढने लगी। मध्याह्न मे गुरुवर्या श्री रत्नचूड चौपी अपनी मधुर वाणी म फरमाती थी।

गुरुवर्याश्री न लक्ष्मीवल्लभ टीका, व श्री समयसुन्दरगणी की कल्पलता व्याख्या एव बुद्धमुनिजी म० की कल्पबोधिनी टीका के आधार पर कल्पसूत्र का परिष्कृत एव परिमार्जित भाषा म हिन्दी अनुवाद का श्रीगणेश तो जयपुर म ही कर दिया किन्तु इस लेखन काय की परिसमाप्ति कलकत्ता चातुर्मास मे हुई।

कलकत्ता म साधु-साध्वियो के चातुमास हेतु स्थान का अभाव-सा था। हम लोग जहाँ रुके थे वहाँ भी काफी असुविधाएँ थीं। गुरुवर्या ने उचित स्थान लेने का प्रस्ताव सघ के सामन रखा। तुरन्त

चन्दा भी शुरू हो गये। ५-७ लाख की राशि एकत्र हो गई। कई स्थान देखे गये किन्तु कलकत्ता जैसी घनी वस्ती वाले नगर मे स्थान का मिलना असभव-सा ही है। एक बात और भी थी वह यह कि जैन भवन या वडे मन्दिर के पास ही कोई सेपरेट (Seperate) जगह मिल जाय, वह न मिल सकी। योजना सफल न हो सकी।

श्रावण की वरसात की झडियो के साथ ही तपस्याओ की झडी भी लग गई। पूर्णाहुति पर पूजा और स्वधर्मी वात्सल्य का भी खूब ठाठ रहा। अक्षय निधि तप (इसमे निरतर १५ दिन तक एकासने व अन्तिम सवत्सरी के दिन उपवास किया जाता है, मे भी लडकियो (अद्ध तरुणियाँ) वहुओ, स्त्रियो की सख्या अधिक रही। क्रिया स्थापना आदि सामूहिक रूप से ही जैन भवन मे तथा एकासना का कार्यक्रम श्री मोतीचन्दजी नखत की धर्मशाला (जो जैन भवन के वाजू में ही थी) होते थे।

व्याख्यान मे श्रोताओ की सख्या लगातार वढ रही थी। सवत्सरी के दिन तो तीसरी मजिल तक श्रोता वैठे थे। ५-७ हजार व्यक्तियो की उपस्थिति थी, अत माईक की व्यवस्था भी थी।

गुरुवर्याश्री के अगाध ज्ञान और तत्त्व विवेचन शैली से कलकत्तावासी वहुत प्रभावित हुए। तत्त्वज्ञ विद्वान श्रीमान भँवरलालजी नाहटा, श्री जिनप्रभसूरिरचित विविध तीर्थ कल्प (यह ग्रन्थ प्राकृत तथा सस्कृत दोनो भाषाओ मे है) का हिन्दी अनुवाद कर रहे थे। जहाँ उन्हे कठिनता आती या विषय स्पष्ट नही होता वहाँ गुरुवर्याश्री से पूछते और स्पष्ट व समुचित समाधान पाकर हर्षित तुष्टित होते।

इस प्रकार कलकत्ता चातुर्मास पूर्ण सफल रहा।

कार्तिव पूर्णिमा की शोभायात्रा

कलकत्ता की कार्तिकी पूर्णिमा की शोभायात्रा विश्वप्रसिद्ध है। यह चातुर्मास पूर्ण होने पर निकाली जाती है। लगभग साढे तीन माईल लम्वी शोभा यात्रा को मारवाडी, वगाली तथा अन्य सभी वड़े चाव से देखते है। जैन समाज तो भाव विभोर होते ही है, अन्य सम्प्रदाय वाले भी प्रभावित होते है, मुक्त कण्ठ से प्रशसा करते है।

शोभायात्रा मे सवसे आगे इन्द्र ध्वज चलता है, जिसकी ऊँचाई इतनी होती है कि ट्राम्स के तारो के ज्वाइट्स भी खोलने पड जाते है। सुविधा, सुरक्षा और सुव्यवस्था के लिए पुलिस साथ रहती है। यह शोभा यात्रा वड़े मन्दिर से शुरू होकर राय साहव के वगीचे (वद्रीदास टेम्पल) तक आती है और पूजा स्वधर्मी वात्सल्य के कार्यक्रम के साथ परिसमाप्त हो जाती है।

हमारे चातुर्मास के साथ ही तपागच्छ मे आचार्य त्रिपुटी-श्री जयन्तसूरि, विक्रम सूरि और नवीनसूरि तीनो आचार्यो का तथा सर्वोदयाश्री जी म० सा० वाचयभाश्री जी म०सा० आदि साध्वीजी का चातुर्मास भवानीपुर, जो कलकत्ते का ही एक उपनगर है, उसमे था। यहाँ जैनो के अनेक घर है व वडा शिखरवद्ध विशाल मदिर है और साथ ही attached धर्मशाला भी है, जो ४-५ मजिल की है और साधु-साध्वियो के ठहरने के लिए सर्वथा उपयुक्त है।

चातुर्मास पूर्ण कर हम लोगो ने भी भवानीपुर, वालीगज, लेकरोड आदि मे स्थित मदिरो के दर्शन किये और फिर खडगपुर की ओर कदम वढाने का निर्णय किया। उसका कारण था कि भूतपूर्व प्र० स्व० पूज्या श्री ज्ञानश्री जी म० सा० के ससार पक्षीय भतीजे फलोदी निवासी श्रीमान चाँदमलजी सा० गोलेच्छा व्यापार धन्धे के कारण खडगपुर ही रहते थे। वे जव भी पूज्याश्री के दर्शनार्थ जयपुर आते तभी खडगपुर पधारने की विनती करते थे।

कलकत्तावासियो से समारोहपूर्वक पुन चातुर्मास के आग्रह के साथ भावभीनी विदाई लेकर हम लोगो ने खडगपुर की ओर कदम बढाये। सैकडो व्यक्तियो के साथ हावडा पहुँचे। बीकानेर के प्रसिद्ध श्रावक श्री रामपुरियाजी के यहा रुके, आपकी भावना प्रशसनीय है साथ आये सभी लोगो का स्वागत सत्कार किया। हम लोगो से भी दो दिन रुककर बडी पूजा और व्याख्यान आदि का आग्रह किया। दूसरे दिन उनके घर पर ही प्रात ६ बजे से व्याख्यान हुआ जिसमे हावडा निवासियो के अतिरिक्त शहर के भी बहुत लोग उपस्थित हुए। रामपुरियाजी के यहा ही सभी का भोजन था। दोपहर की पूजा के बाद सभी लोग चले गये। हमने भी आगे प्रस्थान कर दिया।

मार्ग में कोयलाघाट आये। यहाँ दिगम्बर श्वेताम्बर का एक ही मन्दिर है। एक श्वेताम्बर प्रतिमा वहीं की नदी मे निकली थी, वही मन्दिर मे विराजमान है। बडी भव्य मनोहर प्रतिमा है। इधर साधु साध्वियो का आगमन बहुत कम होता है। मारवाडी जैनो के काफी घर हैं। हम लोगो से व्याख्यान का आग्रह किया। दोपहर मे व्याख्यान हुआ। व्याख्यान सुनकर उन लोगो का धर्मोत्साह जाग उठा। तप त्याग प्रत्याख्यानो की बाढ सी आ गई। किसी ने रात्रि भोजन का त्याग किया तो किसी ने कन्दमूल का, किसी ने नवकार मन्त्र की माला फेरने का नियम लिया, तो किसी ने नवकारसी का।

इस प्रकार कोयलाघाट मे धर्म व्यापार अच्छा रहा।

यहाँ से विहार कर ८वें दिन खडगपुर पहुँचे। नगर से लगभग १ किलोमीटर दूर गोल बाजार स्थित धर्मशाला मे रुके। यहा गुजराती जैनो के १०-१२ घर है। खडगपुर से दर्शनार्थियो का ताता लग गया।

खड्गपुर प्रवेश

बडे धूमधाम से खडगपुर मे प्रवेश किया। धर्मशाला मे पहुँचे। वहाँ एक कमरे मे बिना प्रतिष्ठा के ही भगवान विराजमान थे, उनके दर्शन किये, वही पूज्याश्री चन्द्रप्रभाश्री जी म सा, श्री धरणीन्द्र श्री जी म व दिव्यप्रभाजी म पहले से ही ठाणापति विराजमान थे। हम भी वही रुके। सबको मागलिक सुनाइ। सबने विदा ली।

सम्पूर्ण सघ मे हर्ष व्याप्त हो गया लेकिन वर्षों की भावना पूरी हो जाने से सर्वाधिक हर्षोल्लास श्री चादमलजी साहब को था।

व्याख्यान शुरु हुए। यद्यपि हम लोग १० १५ दिन ही रुकना चाहते थे लेकिन लोगो के आग्रह से चार महीने तक रुके। आचाराग सूत्र की एक मात्र सूक्ति 'खण जाणाहि पडिए' पर ही गुरुवर्याश्री की तत्वमेधिनी प्रज्ञा अमृत वर्षा करती रही। सभी लोग उनकी अगाध विद्वत्ता से प्रभावित हुए।

धर्मनिष्ठ चादमलजी सा प्रतिदिन पूजा के उपरान्त मागलिक सुनने आते थे। गुरुवर्याश्री ने उन्हें नूतन मन्दिर बनवाने की प्रेरणा दी। बात उनके दिल मे उतर गई। सर्वसम्मति से जैन भवन के ऊपर ही मन्दिर बनवाने का निर्णय कर लिया। फाल्गुन शुक्ला ५ के शुभ दिन गुरुवर्याश्री के कर कमलो से मंदिर का शिलान्यास हो गया।

मूल मन्दिर चाँदमलजी बनवा रहे थे, पर सभामण्डप के लिए चन्दा होने लगा। उसी समय श्रीमती सुन्दरबाई कोचर (श्री भीखमचन्दजी कोचर की धर्मपत्नी) अपनी द्वादश वर्षीया पुत्री कमल को सामने कर हर्षातिरेक मे बोल उठी—

"आप लोग तो सिर्फ रुपये पैसे का ही चन्दा कर रहे हैं लेकिन मैं महाराज साहब के चरणों में अपना चाँद का टुकड़ा समर्पित करती हूँ। यदि वर्तमान के समान भविष्य में भी इसकी भावना बनी रही तो अवश्य ही दीक्षा दिलवाऊँगी।"

इन उद्गारों को सुनकर सभी धन्य-धन्य कह उठे। हम लोग भी चकित रह गये, क्योंकि इस सम्बन्ध में कभी कोई बात ही हमारे सामने नहीं आई। न कमल ने ही ऐसी कोई भावना हमारे सामने व्यक्त की और न उसकी माता ने ही।

हमने इस सम्बन्ध में कमल की माँ से कहा—आपने इतना बड़ा निर्णय अचानक ही कैसे ले लिया और संघ के समक्ष प्रकट (declare) भी कर दिया?

तब उन्होंने कहा—आपको पहले ही बता देते तो ठीक रहता। बिना बताये ही डिक्लेयर कर दिया, यह हमारी भूल हुई। हम क्षमाप्रार्थी हैं। लेकिन जब से आप पधारे हैं और आपके ओजस्वी प्रवचन इसने सुने हैं तभी से दीक्षा की जिद कर रही है। बहुत समझाया, प्रलोभन भी दिये, पर मानती ही नहीं, दीक्षा की जिद पर अड़ी हुई है। अब आप इसे अध्ययन करवाइये। जब दीक्षा के योग्य हो जायगी तब इसे आपकी निश्रा में दीक्षा दिलवायेंगे।

यह कहकर कमल उन्होंने हम लोगों के सुपुर्द कर दी।

यद्यपि पुन: कलकत्ता जाने का हमारा विचार नहीं था किन्तु वहाँ से बार-बार विनतियाँ आ रही थीं और खड्गपुर से नूतन मन्दिर में प्रतिष्ठा हेतु मूर्तियों के मंगल प्रवेश के शुभावसर पर तो कलकत्ता के श्रावक खड्गपुर में आ ही गये। उनमें से मुख्य थे—श्री ताजमलजी सा. बोथरा, भँवरलालजी सा नाहटा, हीरालालजी सा लूनिया, जतनमलजी सा नाहटा और ज्ञानचन्दजी सा. लूणावत। सभी ने पुरजोर विनती की। यहाँ तक कह दिया कि जब तक आप कलकत्ता चातुर्मास की स्वीकृति नहीं देंगी तब तक न हम लोग मुँह में पानी डालेंगे और न ही यहाँ से उठेंगे।

इस श्रद्धा भक्ति भरे आग्रह और भविष्य में लाभ देखकर कलकत्ता चातुर्मास की स्वीकृति गुरुवर्याश्री ने दे दी।

शाश्वती ओली निकट थी। आपश्री ने चैत्री पूनम के लिए प्रेरणा दी तो कितनों ने ही सामूहिक आयम्बिल में नाम लिखाये। गुरुवर्याश्री ने श्रीपाल चरित्र का मधुर भावपूर्ण शैली में वाचन किया। नवपद ओली की सबने आराधना की।

धार्मिक ज्ञान सीखने हेतु यहाँ की कई लड़कियाँ हमारे पास आती थीं। उनमें कमल की दोनों बड़ी बहनें निर्मला और हीरामणि भी थीं। निर्मला की तो सगाई की बातें चल रही थीं, पर इसने भी दीक्षा लेने की भावना व्यक्त की, हीरामणि ने भी की, अन्य कई लड़कियों ने भी की परन्तु उस समय योग नहीं नहीं था, इसलिए उनकी भावना सफल न हो सकी।

पुन: कलकत्ता की ओर प्रस्थान और सं. २०३० का कलकत्ता चातुर्मास

सम्भवत: कलकत्ता के श्रावकों के मन में सन्देह था अत: कलकत्ता की ओर हमें प्रस्थान करवा के ही लौटे।

कोयलाघाट में खड्गपुर के कई लोग आये थे।

हावड़ा से पहले लिलुआ ग्राम म नया मन्दिर बना था, उसके दशन किये। वहा के जनो के आग्रह पर एक दिन रुके। हावडा ब्रिज पहुँचे। वहा स्वागतार्थ कलकत्ता के श्रावक उपस्थित थे। सघ के साथ बडे बाजार स्थित मन्दिर के दशन वन्दनकर ११ न० उपाश्रय पहुँचे। मागलिक सुनाया और प्रभावनादि का कायक्रम सम्पन्न हुआ।

प्रतिदिन जैन भवन मे व्याख्यान होता था। त्याग तपस्या प्रत्याख्यान आदि का माहौल पूववत् (२०२९ के चातुर्मास) जैसा ही था। वैरागिन बहनें हमारे पास रहकर ही धार्मिक अध्ययन कर रही थी। पूज्याश्री श्रीमद् देवचन्द्रजी म रचित द्रव्य प्रकाश का अनुवाद कर रही थी।

चातुर्मास सानन्द सपूण हुआ। चैत्री पूनम की शोभा यात्रा देखते हुए हम लोग बद्रीदास टेम्पिल पहुँचे।

पूज्याश्री शशिप्रभाजी म सा और मुझको (प्रियदशनाजी) साहित्यरत्न की परीक्षा देनी थी। परीक्षा पोष वदी म थी। अत एक महीने तक भवानीपुर रुके। परीक्षा हेतु पुन शहर म आ गये।

खड्गपुर मे भगिनी त्रय का दीक्षा समारोह

खडगपुर के लोगो ने आकर बताया कि दीक्षा का शुभ मुहूत वसन्त पचमी का है और उस दिन तक पधारने की हम लोगो से विनती की। शिष्या लाभ जानकर हम लोगो ने विहार किया और माग के क्षेत्रो का फरसते हुए यथासमय खडगपुर पहुँचे।

श्री रम्भाश्री जी म सा भी खडगपुर सघ के अत्याग्रह से टाटानगर चातुर्मास पूणकर खडगपुर पहुचे गये।

श्रीमान भीखमचन्दजी सा व भाई प्रकाशचन्दजी कोचर ने हर्षोत्साहपूवक शान्ति स्नात्र, महा पूजन सहित अठाई महोत्सव कराये। दीक्षा के प्रथम दिन वर्षीदान का भव्य वरघोडा जिसमे पालकी म भगवान भी साथ थे और हम लोग भी थे, मध्य बाजार से गुजर रहा था तो सभी लोगो के भावोद्गार निकले—इतनी छोटी सी उम्र म सयमी जीवन का स्वीकार! धन्य हैं ये लोग! इस प्रकार त्यागमाग की अनुमोदना कर रहे थे।

दूसरे दिन—माघ सुदी ५ को शुभ मुहूत मे पूज्याश्री चन्दश्रीजी म सा, पू श्री रम्भाश्री जी म सा आदि की निश्रा म तीनो बहनो की दीक्षा सानन्द सम्पन्न हुई। निर्मला का नाम 'दिव्यदशनाजी' हीरामणि का नाम 'तत्वदशनाजी' और कमल का नाम सम्यग्दशनाजी' रखा गया तथा तीनो को पूज्या गुरुवर्या श्री सज्जनश्री जी म सा की शिष्याएँ घोषित की गयी।

खडगपुर म ही नही अपितु सपूण बगाल मे ही सभवत साध्वी दीक्षा का यह प्रथम अवसर था। अत १५ दिन तक आस-पास के बगाली सज्जन आते रहे तथा नूतन साध्वीजी के दशन एव उनके परिवारीजनो के भाग्य की सराहना करते रहे।

वी नि की २५वी शताब्दी के उपलक्ष्य मे पावापुरी चातुर्मास वि स २०३१

तीथकर भगवान की २५वी निर्वाण शताब्दी के उपलक्ष्य मे भगवान की निर्वाण भूमि पावापुरी म विराट आयोजन हो रहा था। यद्यपि हमारा विचार नूतन साध्वियो की बडी दीक्षा कराने हेतु मध्य-प्रदेश जाने का था किन्तु श्रद्धेय पूज्य अनुयोगाचाय श्री कान्तिसागरजी म सा का आदेश पावापुरी रुकन

का आ गया। आदेश था—आगामी चातुर्मास पावापुरी मे करना है और भगवान का २५वी निर्वाण शताब्दी समारोह धूमधाम से मनाना है। राष्ट्रसंत कवि अमरमुनिजी म· एव तेरापथी मुनिश्री रूपचंद जी म· तथा साध्वी श्री सुमतिकुंवरजी म., दर्शनाचार्या श्री चन्दनाजी म. आदि भी इस शुभावसर पर पधार रहे है और हम लोग भी शीघ्र ही वहाँ पहुँचेगे।

श्रद्धेय गुरुदेव के इस आदेश को हमने शिरोधार्य किया।

पुन· पावापुरी की ओर प्रस्थान

हमारे कदम नूतन दीक्षिता साध्वियो के साथ खड्गपुर से पावापुरी की ओर वढे। मार्ग मे पुरुलिया, जमशेदपुर, विष्टिपुर आदि स्थानो में जहाँ जिन मन्दिर है और श्रद्धालु श्रावको के घर है, वहाँ दो-दो, तीन-तीन दिन रुकते-ठहरते हुए, महोदा, झरिया, कतरासगढ़ होते हुए चैत्र सुदी ५ को निमिया-घाट से शिखरजी पहुँचे।

हम लोगो को आशातीत प्रसन्नता हुई क्योकि शिखरजी की यात्रा के पुन सयोग की आशा ही नही थी हमे। शिखरजी मे ही शाश्वती नवपद ओली का आराधन किया। वैशाख वदी ३ को शिखर जी से विहार कर कोडरमा होते पावापुरी पहुँचे। लगभग ८ दिन वहाँ रहे। विचार किया अभी तो चातुर्मास मे वहुत समय है। एक वार पुन राजगृह हो आये। विचार के साथ ही पग वढे और दूसरे ही दिन शोर्टकट से राजगृह जा पहुँचे।

महासती श्री सुमतिकुवरजी एव श्री चन्दनाजी म· वीरायतन के लिए यही विराजी थी। पचम पहाड़ वैभारगिरि की तलहटी मे वीरायतन के लिए स्थान (जगह) लिया जा चुका था, दोनो साध्वीजी म· की निश्रा मे शिलान्यास हो चुका था, निर्माण कार्य चल रहा था, राष्ट्रसन्त कवि अमरमुनिजी म भी पधारने वाले थे।

वीरायतन का निर्माण कवि अमरमुनिजी म और साध्वी चन्दनाश्री जी म. की अनोखी और सामयिक सूझ-बूझ का परिणाम है। वीर शासन के प्रति उन्होने इस निर्माण कार्य से अपनी श्रद्धाभक्ति का परिचय दिया है। यहाँ ऐसा निर्माण ऐतिहासिकता को सुरक्षित रखने के लिये आवश्यक भी था।

हम लोग वीरायतन (प्राचीन ओफिस—जहाँ साध्वीजी म स्वय विराजती थी और भोजन-शाला भी थी) जाते रहते थे और साध्वी चन्दनाजी भी आती रहती थी। साध्वीजी वहुत ही मिलनसार हैं। हमारी भेंट पहले अजमेर और दूसरी वार कलकत्ता दादावाडी में हो चुकी थी। तभी से हम उनकी सहृदयता और मिलनसारिता से परिचित थी।

राष्ट्रसन्त कवि अमरमुनिजी म० के राजगृह प्रवेश पर निमन्त्रित होकर हम भी गये थे, नालन्दा वौद्ध संस्थान के कई विद्वान, जापान के फ्यूजी गुरुजी तथा प्रसिद्ध जैन विद्वान नथमलजी टाटिया (जो उस समय नालन्दा के प्रोफेसर और वर्तमान मे जैन विश्वभारती के अध्यक्ष है) पधारे थे।

कविजी म० के स्वागत मे सभा का आयोजन किया गया। सभी विद्वानो के भाषण हुए। गुरु-वर्याश्री ने भारत के ऐतिहासिक तीर्थस्थलो का इतने सुन्दर ढंग से विवरण—विवेचन प्रस्तुत किया कि सभी ने उनकी मुक्तकण्ठ से प्रशसा की।

कुछ दिन पश्चात पालीताना से विहार कर श्रद्धेय अनुयोगाचार्य श्री कातिसागरजी म०सा० पू० दर्शनसागरजी म०सा० व वालमुनि मणिप्रभसागरजी भी राजगृही की सीमा में तीसरे पहाड़ की तलहटी

में स्थित छोटी सी धर्मशाला में पधार गये। वहाँ पूज्य गुरुदेव ने अट्ठम तप के साथ तीन दिन तक मौन आराधना, जप ध्यान किये।

कलकत्ते से कई अग्रगण्य श्रावक एवं राजगृह के व्यवस्थापक श्रीमान जयन्तीलालजी सा० आदि आपके स्वागतार्थ राजगृह के तीसरे पहाड़ में आ गये। खूब ठाठ से राजगृह में प्रवेश हुआ। बड़ी धर्मशाला के सामने एक प्राइवेट बंगले में गुरुदेव रुके। तेरापंथी मुनि रूपचंदजी भी बगल (बाजू) में एक सुव्यवस्थित स्थान में रुके। हम लोग उनसे मिलने और विहार सम्बन्धी सुख पृच्छा करने गये। सौहार्दपूर्ण वातावरण रहा।

अनुयोगाचार्यजी भी दोनों मुनिराजों से मिले तथा पच्चीसवीं शताब्दी निर्वाणोत्सव में पधारने का आग्रह किया। ऐसा ही आग्रह साध्वी सुमतिकुंवरजी एवं चन्दनाजी से भी किया। जिसे सभी ने स्वीकार कर लिया।

पूज्य गुरुदेव कान्तिसागरजी ने और हम लोगों ने कच्चे शार्टकट से पावापुरी की ओर विहार किया। पावापुरी से १२ किलोमीटर पहले स्वागतार्थ आये श्रावकों ने धूमधाम से प्रवेश कराया।

यद्यपि पावापुरी में जैन घर नहीं है, किन्तु इस विशाल आयोजन और साधु-साध्वियों के चातुर्मास के समाचार प्रसारित होते ही अनेक जन बन्धु कलकत्ता विहार शरीफ, पटना, भागलपुर बीकानेर आदि स्थानों से चातुर्मासकाल के लिए आ गये पावापुरी में। यों ३०-४० चौके हो गये।

जैन चौका

जैन चौका मात्र वह स्थान ही नहीं, जहाँ भोजन बनता है। चौका का रहस्य है—चार प्रकार की शुद्धियाँ। द्रव्य शुद्धि, क्षेत्र शुद्धि, काल शुद्धि और भावशुद्धि।

द्रव्यशुद्धि का अर्थ भोजन तैयार करने वाली और जो द्रव्य, अन्न आदि हैं, वे सब शुद्ध हों। क्षेत्रशुद्धि में भोजन बनाये जाने वाले स्थान की स्वच्छता निहित है। कालशुद्धि का अभिप्राय भोजन की वेला का विचार रखना है और भावशुद्धि में भोजन बनाने वाले के भाव—चित्तवृत्तियाँ शुभ हों, शुद्ध हों उदार हों, मन में यह भावना हो कि कोई त्यागी तपस्वी साध्वी सन्त मेरे बनाये भोजन में से कुछ आहार ग्रहण कर लें तो मैं कृतार्थ हो जाऊँ, मेरा जीवन धन्य हो जाय मेरा यह चौका पवित्र हो जाय।

इन चारों प्रकार की शुद्धियों से शुद्ध चौका ही जैन चौका कहलाने योग्य है।

ऐसे चौके पावापुरी में उस समय लगभग ३०-४० थे।

नूतन दीक्षिताओं भगिनियों की बड़ी दीक्षा श्रद्धेय गुरुदेव की निश्रा में आषाढ़ शुक्ला १२ के दिन सानन्द सम्पन्न हुई। इस दीक्षा में दीक्षिताओं के माता पिता भी सम्मिलित हुए।

श्रद्धेय गुरुदेव के आदेश से पूज्य गुरुवर्याश्री ने भ० महावीर की प्रथम देशना के स्थान पर प्रथम प्रहर में श्री आचारांग सूत्र और मध्याह्न में भगवान की अन्तिम देशना उत्तराध्ययन सूत्र का वाचन शुरू किया जिसे श्रावक-श्राविका तथा बाहर से आये हुए सभी व्यक्ति सुनते थे।

इस भूमि का कण-कण भगवान महावीर से स्पर्शित है। अतः इसका विशेष महत्व है। हम सभी का तन मन श्रद्धा से अभिसिंचित हो रहा था।

श्रद्धेय अनुयोगाचार्यजी के आदेश से गणनायक ने ... मुनि ... सागरजी म० को चातु

मास काल मे ही साधनिका सहित सपूर्ण कौमुदी कण्ठस्थ करवा दी । श्री मणिप्रभसागरजी म० की ग्रहण-शक्ति भी प्रवल है, कि इन्होने इतनी जल्दी कौमुदी को कण्ठस्थ कर लिया ।

निर्वाण शताब्दी समारोह चातुर्मास के प्रारम्भ से ही शुरु हो गया था । हम लोग सव व पूज्य श्री चन्दनाजी म०, यशाजी, साधनाजी आदि निर्वाण मन्दिर मे गाते हुए, धुन लगाते हुए प्रभात फेरी के रूप में जल मन्दिर जाते थे ।

आशा यह थी कि भगवान के २५००वे निर्वाण शताब्दी समारोह के अवसर पर वाहर से लगभग एक लाख स्त्री-पुरुष आयेगे । उसी के अनुसार सुव्यवस्थित महावीर नगर वसाया गया । कार्यक्रम संपादन हेतु जलमन्दिर के एक ओर विशाल मडल भी वनाया गया ।

किन्तु उन्ही दिनो विहार में श्री जयप्रकाशनारायण का आन्दोलन चल रहा था, वातावरण अशात वना हुआ था । यद्यपि श्रद्धेय अनुयोगाचार्यजी विहार शरीफ की इतनी लम्बी यात्रा करके जे० पी० से स्वय मिले और उनसे सपर्ण कार्तिक मास में आन्दोलन वन्द रखने का वचन ले लिया था, तथा इस प्रकार के समाचार रेडियो द्वारा प्रसारित भी करवा दिये । पर जितनी आशा थी वाहर से उतने लोग नही आये ।

कार्यक्रम १० दिन पहले ही शुरू हो चुका था । विद्वान लोग आ गये थे । विद्वद् गोष्ठियाँ और व्याख्यान होने लगे । वक्ता अपने व्याख्यानो मे अहिसा, अपरिग्रह, अनेकान, आत्मवाद आदि का विवेचन करते । आस्तिक्य आदि की व्याख्या करते और प्राणीमात्र के प्रति मैत्रीभाव रखने की प्रेरणा देते ।

भक्ति आस्था और श्रद्धा का वातावरण था । इसी अवसर पर निर्वाण मन्दिर का जीर्णोद्धार भी हुआ । जैसलमेरी पीत पाषाण की दो अत्यन्त प्राचीन प्रतिमाएँ, जो जैसलमेर से ही लाई गई थी, उनको भी शांति स्नात्र महापूजन सह अष्टान्हिका महोत्सव पूर्वक वडे धूम-धाम से मिगसिर कृष्णा मे शुभ दिन और शुभ मुहुर्त मन्दिर के मूल गभारे में दोनो साइड मे विराजमान की गई ।

स्थानकवासी राष्ट्रसत कवि अमरचन्दजी म० आर्या महासती सुमतिकुवरजी, चन्दनाजी तथा तेरापथी मुनि रूपचन्दजी भी पूजादि मे पधारते और अपनी मधुर वाणी मे पूजा-भजन आदि गाते थे । इससे हमने वह अनुमान लगाया कि शास्त्रसम्मत प्रभु प्रतिमा को मानने मे उन्हे कोई ऐतराज न था और न है ।

अनेकान्तवादी जैन धर्म में अपार सहिष्णुता और सद्भावना का स्थान है ।

सभी समारोह वड़े धर्मोत्साह के साथ सम्पन्न हुए ।

हमारा यह चातुर्मास अविस्मरणीय रहा ।

चातुर्मास के उपरान्त अनुयोगाचार्यजी को शिखरजी की ओर पधारना था ।

हमने राजस्थान की ओर कदम वढाए । मार्ग मे गया, वौद्ध गया आदि तीर्थ आये । गया मे दिगम्वर जैनियो के घर काफी है, श्वेताम्वर जैनियो का एक भी घर नही है । ग्राम मे दिगम्वर मन्दिर भी है । वौद्ध गया में भी जिस पिप्पल के वृक्ष के नीचे तथागत को वोध प्राप्त हुआ था, वह वोधिवृक्ष के नाम से प्रसिद्ध है । यहाँ विशाल वौद्ध मन्दिर है । चीन, जापान, वर्मा, लका, थाइलैण्ड आदि देशो द्वारा वनवाये हुए वौद्ध मन्दिर भी है । वौद्ध विहार भी है । इनमे भिक्षु-भिक्षुणियाँ रहते है । हमने इन सव को देखा तो भारत के प्रति गौरव का भाव मन मे भर उठा । भारत के एक महापुरुष को विदेशो मे कितना सम्मान मिला ।

साथ ही इस बात का दुख भी हुआ कि भारत के ही अन्य धर्मावलम्बी धर्मांध नरेशों ने जैनों पर इतने अत्याचार किये जिस प्रदेश में हमारे तीर्थंकर जन्मे, विचरे, ज्ञान का प्रकाश दिया इसी भारत में हमारे धर्म का इतना पतन हो गया। अत्याचार तो बौद्धों पर भी हुए पर वे अन्य देशों में निकल गये, वहाँ अपना वर्चस्व स्थापित किया, लाखों-करोड़ों अनुयायी बनाए, किन्तु जैन तो पिछड़े ही रह गये और इसके अनेक ऐतिहासिक कारणों पर गुरुवर्याजी ने कई बार प्रकाश डाला।

बौद्ध गया से प्रस्थान करके नेशनल हाईवे पर चलते हुए बनारस, इलाहाबाद (पुरिमताल—जहाँ भगवान ऋषभदेव को केवलज्ञान हुआ था), कानपुर (जहाँ काँच का दर्शनीय मन्दिर है) शौरीपुर (भगवान नेमिनाथ की जन्मभूमि) होते हुए आगरा आये। ८-१० दिन रुके। व्याख्यान, पूजाओं आदि का ठाठ रहा। सभी मन्दिरों के दर्शन किये।

'श्वेताम्बर जैन' पत्र के संस्थापक-संपादक श्री जवाहरलालजी लोढ़ा के अति आग्रह से जयपुर हाउस स्थित नवीन बंगले पर गये। वहाँ उन्होंने दादा गुरुदेव पूजा व व्याख्यान का कार्यक्रम रखा था। समीपस्थ दादाबाड़ी व सेठ के बाग के मन्दिर के दर्शन करके पुनः बंगले में आ गये।

दूसरे दिन विहार कर दिया। चैत्र वदी ७ को जयपुर पहुँचे। वहाँ पूज्य प्रवर श्री साम्यानन्द जी म० एवं व्याख्यान वाचस्पति श्री जयानन्दजी म० की निश्रा में लगभग १५० श्रावक-श्राविका उपधान तप कर रहे थे। चैत्र शुक्ला ५ को मालारोपण का शुभ मुहूर्त था। अतः पूज्य प्रवर के आदेश से १५ दिन वहीं रुके।

पूज्य गुरुवर्याश्री से तत्त्वरसिक श्रावक-श्राविका एक डेढ़ घण्टे तक नित्य तत्त्वचर्चा करते थे। हम भी वहीं बैठते थे।

यद्यपि आज का युग भोगवाद का है। शिक्षा भी अर्थोपार्जन लक्ष्यी है। शिक्षितवर्ग भारतीय वेश भूषा, खान पान आचार-विचार के प्रति हेय दृष्टि रखता है। धर्मक्रियाएँ भी आडम्बर और दिखावा मात्र रह गई हैं। इन्हें धर्मक्रिया न कहकर धार्मिक परेड कहना अधिक उपयुक्त जान पड़ता है। फिर भी इस भौतिकताप्रधान युग में भी कुछ तत्त्वरसिक श्रावक-श्राविका हैं वे ही गुरुवर्याश्री से तत्त्वचर्चा करते थे।

इस प्रकार १५ दिन बीत गये। अष्टाह्निका महोत्सवपूर्वक मालारोपण का कार्यक्रम हुआ। उसी दिन गुरुदेव के मोहनबाड़ी वक्ष में योगीराज श्री शांतिविजयजी म० की मूर्ति स्थापना का कार्यक्रम भी समारोहपूर्वक संपन्न हुआ।

हम शहर में आ गये। शाश्वत नवपद ओली, महावीर जयन्ती तथा चैत्री पूर्णिमा पर्वों की आराधना की।

वैशाख महीने में जैन कोकिला पू० श्री विचक्षणश्रीजी म०सा० आदि सब दिल्ली से पधार गये थे।

चातुर्मास समीप होने से अनेक क्षेत्रों की चातुर्मास हेतु विनतियाँ आ रही थीं। अजमेर संघ का आग्रह अत्यधिक था। किन्तु इस बार पू० प्रवर्तिनीजी की इच्छा पू० गुरुवर्या का चातुर्मास अपने साथ ही कराने की थी। अतः जैन कोकिलाजी ने सबको मधुर स्वर में इन्कार कर दिया। किन्तु अजमेर संघ का आग्रह अन्त तक रहा। उस वक्त तक तपागच्छ और खरतरगच्छ में कोई भेदभाव नहीं था। इन संघ

के अग्रगण्य श्रीमान रामलालजी सा० लूनिया, श्रीरतनचन्दजी सा० सचेती आदि श्रावकों के अत्याग्रह पर अजमेर चातुर्मास के लिए प्रियदर्शनाजी, जयश्रीजी व दिव्यदर्शनाजी को अजमेर के लिए प्रस्थान करवाया।

जयपुर चातुर्मास सं० २०३१

जैन कोकिला पूज्याप्रवर्तिनी महोदया के साथ गुरुवर्याश्री को ज्ञानगोष्ठी का अपूर्व लाभ प्राप्त हुआ।

प्रात. ९ से १०-३० तक गुरुवर्याजी सर्वसाध्वीमंडल को आवश्यक सूत्र का वाँचन कराती थी और मध्यान्होतर २ से ४ तक तत्वरसिक श्रावक-श्राविका वर्ग आ जाते और जैनकोकिला व गुरुवर्याश्री से अकाट्य समाधान, अपनी जिज्ञासाओ का पाकर हर्षित होते।

चातुर्मास कब समाप्त हो गया, ज्ञानगोष्ठी करते-करते, पता ही न चला।

चातुर्मास सपूर्ण होने के उपरान्त गुरुवर्याश्री ने जैन कोकिलाजी से विनम्र शब्दो मे केशरिया आदि तीर्थो की यात्रा करने की अनुमति माँगी। यद्यपि पू० प्रवर्तिनी महोदया नही चाहती थी कि गुरुवर्याजीश्री उन्हे छोडकर जाये तथापि यात्रा को प्राधान्यता देते हुए आज्ञा देनी पडी।

पूज्या प्रवर्तिनी महोदया की निश्रा मे ही जयपुर के खरतरगच्छ ने विदाई समारोह का आयोजन किया। सपूर्ण सघ के समक्ष पू० प्रवर्तिनीजी ने गुरुवर्याश्री को 'आगम ज्योति' के विरुद मे अलकृत किया। विदुषीवर्या श्री चन्द्रप्रभाजी म० व मणिप्रभाजी म० ने सस्कृत और हिन्दी स्वरचित अष्टक बड़े ही मधुर स्वर मे समर्पित किये। सर्व मंडल और श्री सघ ने विदाई दी। गुरुवर्याश्री ने वहाँ से मिगसिर वदी मे मालपुरा की ओर प्रस्थान किया। काफी दूर तक पू० प्रवर्तिनीजी तथा श्रीसघ साथ थे। विदाई का समय बडा ही कारुणिक बन गया।

पू० गुरुवर्याश्री मालपुरा पहुँची। अजमेर चातुर्मास पूर्ण करके प्रियदर्शनाजी आदि तीनो साध्वियाँ भी मालपुरा पहुँच गई। ३-४ दिन जप-ध्यान-भक्ति-मौन साधना करते हुए वही रुके।

वहाँ से प्रस्थान करके केकडी, विजयनगर, गुलाबपुरा होते हुए हम लोग प्रसिद्ध विद्वान श्री जिनविजयजी के आश्रम (चदेरियाग्राम) पहुँचे। आप महान विद्वान, आगमो के अच्छे ज्ञाता तथा जैन संस्कृति की प्राचीनता व ऐतिहासिकता से पूर्णत. परिचित है। वे गुरुवर्या के अप्रत्याशित आगमन और मिलन से अति प्रसन्न हुए। उनके आग्रह से १ दिन रुके। ऐतिहासिक चर्चाएँ हुई। हमने भी उनसे ज्ञातव्य ज्ञात किये।

दूसरे दिन विहार करके चित्तौड पहुँचे।

चित्तौड़गढ—यह ऐतिहासिक नगरी तो है ही, लौकिक और लोकोत्तर तीर्थस्थल भी है। यह नगरी वीर क्षत्रियो की जननी है तो धर्मवीरो की भी। इतिहास मे इसका अमिट स्थान है।

याकिनी महत्तरासूनु हरिभद्रसूरि, जो जैन दर्शन के उद्भट विद्वान थे, उनकी जन्मभूमि एव प्रतिबोध भूमि यही नगरी है।

चित्तौड के आसपास का क्षेत्र वागड़ कहलाता है। श्रीजिनवल्लभसूरि ने इस क्षेत्र मे विचरण कर १८०० हूँबड वागडी लोगो को जैन दीक्षा देकर श्रावक बनाने का भगीरथ कार्य किया, और भी कई शासन प्रभावना के कार्य किये है। (विशेष जानकारी के लिए वल्लभ भारती देखे।)

चित्तौड़ दुर्ग पर बने शिखरवद्ध जिनमन्दिरो के दर्शन कर चित्त प्रसन्न हो गया। यही विजय स्तम्भ है, जिससे गुरुदेव का भी सम्बन्ध है। भक्त मीराबाई का मन्दिर भी सुन्दर है। रानी पद्मिनी का

जौहर स्थान भी यही है। हमने इन सबको देखा। ऐतिहासिक स्थानो को प्रत्यक्ष देखकर हृदय गौरव से भर गया। दो-तीन दिन रुके।

करेडा पार्श्वतीर्थ—चौथे दिन विहार किया। करेडा पार्श्वतीर्थ पहुँचे। भ० पार्श्वनाथ के विशाल शिखरबद्ध मंदिर के दर्शन किये। धर्मशाला, भोजनशाला आदि सभी सुव्यवस्थित है।

यहाँ से उदयपुर पहुँचे। राजस्थान का यह दर्शनीय स्थल है। देश विदेश के टूरिस्ट आते हैं। यहाँ कई विशाल मंदिर हैं। सूर्य पोल के बाहर ही भावी तीर्थंकर पद्मनाभ का विशाल मन्दिर है, जिसमे प्रतिमा भी विशाल है। दो-तीन दिन रुके। सभी मन्दिरो के दर्शन किये। दूर-दूर के कुछ मंदिर रह भी गये। सोचा था—केशरियानाथजी से लौटकर पुन उन मन्दिरो के दर्शन कर लेंगे। क्योकि इधर आकर हमे पुन आबू, माडोली आदि तीर्थों की यात्रा करनी थी। अत केशरियानाथजी की ओर विहार किया।

केशरियानाथ—इसका मार्ग पर्वतीय क्षेत्रो मे होकर है। काफी उतार चढाव हैं। उदयपुर से सावलाजी तक तीखे मोडोयुक्त घाटी है, भूमि ढालू है। इस घाटी को खजूरी घाटी भी कहा जाता है।

केशरियानाथ का नाम ऋषभदेव भी है। किलोमीटर के स्टोन पर भी यही नाम लिखा है।

चौथे दिन केशरियानाथ पहुँचे, गुरुवर्याश्री की भावना आज सफल होने से वे बहुत प्रसन्न थी। तीर्थ की प्राचीनता प्रतिमाजी और मंदिर से स्पष्ट परिलक्षित हो रही थी।

जैन और वैष्णवो के विवाद के कारण तीर्थ सरकार के हाथ मे है। लेकिन देखने वाला कोई नही है। भ० ऋषभदेव को हिन्दू अपना आठवाँ अवतार मानते हैं। रोज गीता रामायण का पारायण होता है। पर मन्दिर की दशा की ओर ध्यान नही। गभारा एकदम काला हो रहा है।

भगवान की ऐसी आशातना देखकर दुःख हुआ। व्यवस्थापको व पुजारियो से इस विषय मे बातचीत भी की लेकिन सुपरिणाम निकलने की कोई आशा नही दिखाई दी।

यहाँ से यद्यपि पुन उदयपुर लौटने का विचार था लेकिन जैसे ही मालूम हुआ कि अहमदाबाद बहुत समीप है तो पालीताना, गिरनार आदि पचतीर्थी करने की भावना जाग उठी। गुरुवर्याश्री की इच्छा थी गिरिराज शत्रुजय की नवाणु यात्रा और वही चातुर्मास करने की। अत कदम उसी ओर बढ़ गये।

मुहरीपार्श्वतीर्थ—मार्ग मे मुहरीपार्श्वतीर्थ आया। इसके लिए मेन रोड छोडकर कुछ अन्दर जाना पडता है। तीर्थ मे पहुँचे। विशाल मंदिर और भव्य प्रतिमा के दर्शनो से चित्त आनन्द से भर गया। 'जयउसामिय' चैत्यवदन सूत्र के पाठ 'मुहरिपास दुहदुरिय खडण' से इसकी प्राचीनता स्पष्ट होती है। वर्तमान मे यह तीर्थ टिंटोइ ग्राम के नाम से प्रसिद्ध है।

मार्गस्थ तीर्थों की यात्रा करते हुए अहमदाबाद पहुँचे।

अहमदाबाद—यह जैनो की धर्म नगरी है। ३०० ३५० जिनमंदिर हैं। कई भव्य बडे विशाल शिखरबद्ध तो कई छोटे। लेकिन छोटो मे भव्य और चित्ताकर्षक प्रतिमाएँ हैं। दर्शन करके मन तृप्त हो गया। नये मंदिरो धर्मशालाओ आदि का निर्माण भी हो रहा है।

इतने मंदिर होने पर भी सभी सुव्यवस्थित हैं। जिस मंदिर मे जाओ ५/१० भाई पूजा करते हुए मिल ही जायेंगे।

अहमदाबाद मे ८ दिन रहकर हमने सभी मंदिरो के दर्शन किये। और फिर पालीताणा की ओर विहार कर दिया।

पालीताणा—यह शाश्वत तीर्थराज शत्रुंजय जी की तलहटी मे बसा है। यहाँ के तीर्थनायक प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव है। वे नवाणु बार इस तीर्थराज पर पधारे थे। नेमिनाथ के अतिरिक्त २३ तीर्थंकरो के चरण-कमल इस पर पडे थे और भ० अजितनाथ तथा श्री शातिनाथ ने यहाँ चातुर्मास भी किया था। पाँचो पाडवो की मोक्षस्थली भी यही है। यहाँ का कण-कण पवित्र है। ऐसी पावन स्थली का श्रद्धा से किया गया स्पर्श भी कोटि जन्मो के पापो का नाश करने वाला है। यहाँ पर किये गये पुण्यो का दस गुना फल होता है। पापी और अभव्य तो इसके दर्शनकर ही नही सकता। कहा है—

पापी अभव्य न नजरे देखे.... ..

फाल्गुन कृष्णा २ को हमने इस तीर्थ मे पदार्पण किया, रोम-रोम पुलकित हो उठा, 'शत्रुंजय रास' की कडियाँ (पक्तियाँ) मन-मानस में उमडने लगी। नरशीनाथ, नरशीकेशव के दर्शन करते हुए हरि विहार धर्मशाला पहुँचे। पू अनुयोगाचार्य श्रद्धेय गुरुदेव वही विराज रहे थे। विधिपूर्वक दर्शन-वन्दनादि किये। गुरुदेव ने वही रुकने का आग्रह किया परन्तु हमे तो नवाणु यात्रा करनी थी। अत तलहटी के अत्यन्त निकट हैदराबाद निवासी श्रीमान कपूरचन्दजी श्रीमाल के कपूर निवास की ओर चल दिये। मध्य मे माधवलाल धर्मशाला मे विराजित सम्पतश्रीजी म सा, गुणवानश्रीजी म. सा. आदि साध्वियो के दर्शन करते हुए कपूर निवास पहुँच गये।

गुरुवर्याश्री के नवाणु यात्रा के निश्चय को सुनकर हम लोग चकित रह गई। ६७ वर्ष की आयु और साढे तीन माईल की चढाई। कैसे सम्भव हो सकेगा यह सकल्प पूर्ण। पर सभी के मन मे भक्ति भरा भावोल्लास था और गुरुवर्याश्री के मन मे तो सबसे अधिक।

प्रात. ५ बजे चढना, शातिपूर्वक दर्शन, चैत्यवन्दन, देव वन्दन करना और ग्यारह-साढ़े ग्यारह बजे तक उतरना। यही क्रम चलता था। कभी-कभी घेटी पाग भी पधारी, पर अधिक बार नही, क्योकि इधर चढाई खडी थी।

इसी अन्तराल मे श्री अनुयोगाचार्य जी के पास ८ वर्षीय वैरागी मुकेश कुमार जो पाँच-सात महीने से गुरुदेव के पास ही रह रहे थे, उनकी दीक्षा फाल्गुन शुक्ला ३ को समारोहपूर्वक हुई और उन्हे पू श्री मुक्तिप्रभसागरजी नाम दिया।

पूज्याश्री ज्ञानश्रीजी महाराज साहब के स्वर्गदिवस चैत्र कृष्णा १० को सूरत निवासी श्री फतेचन्द पानाचन्द भाई की ओर से मोती सुखिया मन्दिर मे बडी पूजा पढाई। प्रभावना, रात्रि जागरण आदि सभी उन्ही की ओर से था।

फतेचन्द भाई ने चातुर्मास कल्याण भवन में ही करने का अत्याग्रह हम से किया।

नव्वाणु यात्रा के विधान के अनुसार पूज्या शशिप्रभाजी तथा अन्य छोटे साध्वी जी के तो लगभग नवाणु यात्रा हो चुकी थी। दूसरी भी करीब पूरी पूरी होने जा रही थी। पूज्या गुरुवर्या श्री की १०८ यात्रा पूरी होने जा रही थी। हमे अत्यधिक प्रसन्नता थी कि पूज्याश्री का संकल्प पूर्ण हो रहा है। वे प्रतिदिन बहुत ही भक्तिभाव तथा उत्साहपूर्वक दर्शन करती थी।

चातुर्मास बिल्कुल ही निकट था। पू श्री शशिप्रभाजी म सा यद्यपि एक मासक्षमण अपनी जन्मभूमि फलौदी मे कर चुकी थी परन्तु पुन गिरिराज की छाया मे मासक्षमण की तीव्र भावना हुई। मैंने भी मासक्षमण की भावना व्यक्त की।

चातुर्मासिक चतुर्दशी के दिन भी प्रतिदिन के समान गिरिराज पर चढे। आज अन्तिम दिन था। अन्य दिनो मे तो कल पुन चढेगे ऐसी ललक रहती थी। किन्तु आज की बात दूसरी थी। चार

✵

मास क्षमण तपाराधना के अवसर पर वि स २०२५ भा शु ८ को मास क्षमण तप की पूर्णाहुति पर बरघोड म श्रद्धेया गुरुवर्य्या प्रवर्तिनी श्री ज्ञानश्रीजी म (एकदम ऊपर) के साथ कुर्सी पर विराजमान हैं तपस्विनी प्र श्री सज्जन श्रीजी महाराज ।

✵

शिक्षा गुरु एव अभिभावक श्रद्धेया श्री उपयोग श्रीजी म के सान्निध्य म वि स २००८ सेठानी सा श्री मदन कवर बाईसा गोलेच्छा के उद्यापन के उपलक्ष मे आयोजित अष्टाह्निका महोत्सव क समय जलयात्रा के बरघोडे म रामनिवास बाग म विराजी हुई दायें से दूसरे क्रम पर शिक्षा गुरुणी श्री उपयोग श्रीजी म के साथ चतुर्थ क्रम पर
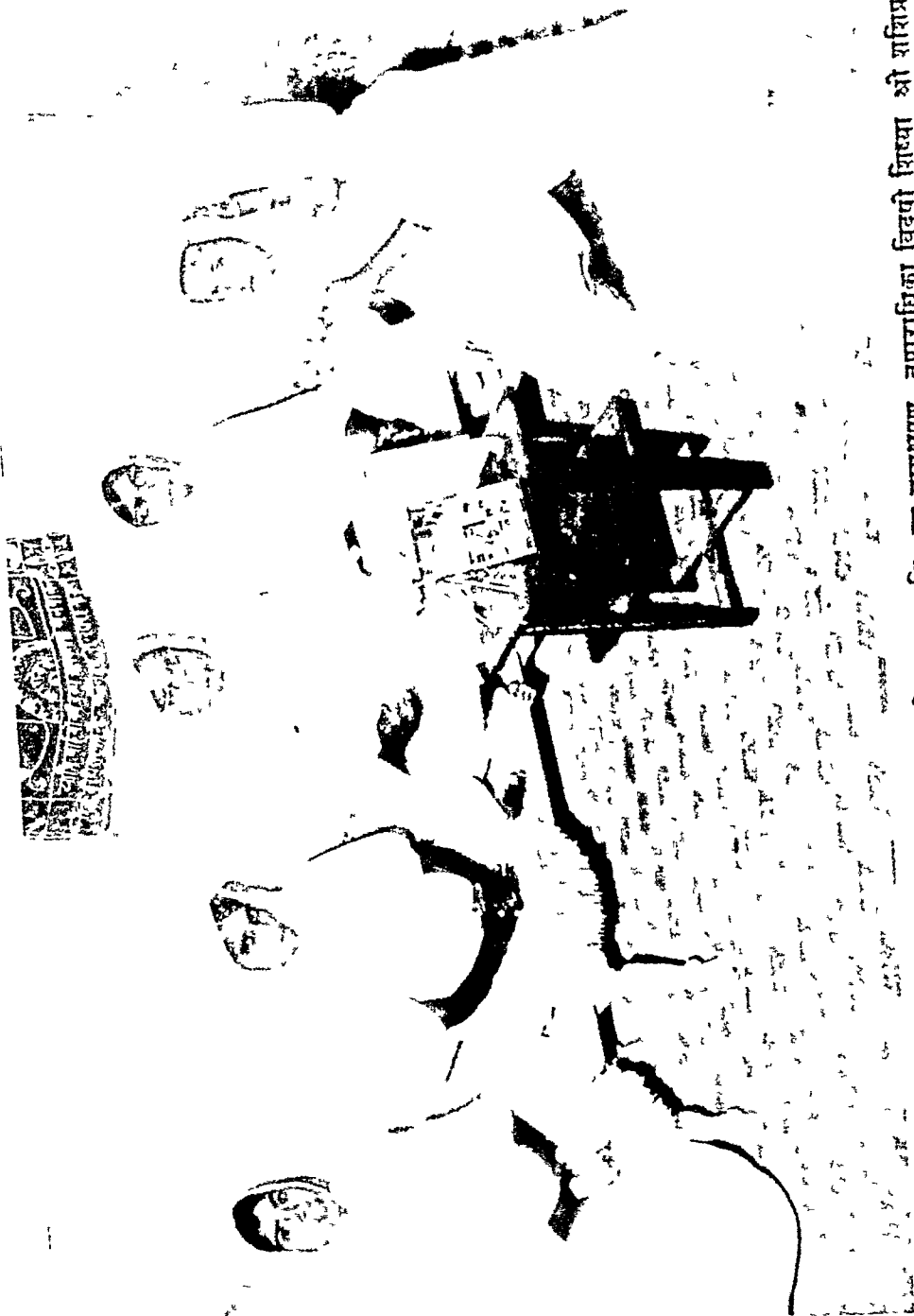
वि० सं० २०३३ श्रावण शुक्ला पूनम तीर्थराज पालीताना की पावन भूमि पर मासक्षपण तपाराधिका विदुषी शिष्या श्री शशिप्रभा श्री जी, श्री प्रियदर्शना श्री जी एवं तत्त्वदर्शना श्री जी आदि शिष्या मंडली के साथ पूज्य प्रवर्तिनी श्री सज्जन श्री जी म०

मास के लिए दशना का वियाग हो रहा था। अत भक्ति एव दशन के सुख के साथ वियोग का दु ख भी मिश्रित हो रहा था। सभी ने बडी भक्ति से दशन किये। गुरुवर्याश्री के साथ दादा के दरबार मे आये। पुन चैत्यवन्दनादि कर पू श्री शशिप्रभाजी म सा, मैंने (प्रियदशनाजी) और तत्वदशनाश्रीजी न मासक्षमण की भावना से अटठम (तेले) के प्रत्याख्यान कर लिये और दादा से चार महीन के लिए विदाई ली। हमारे नेत्र अश्रु पूण थे। वर्षा ने भी हमारे दुख को समझा और चौधारा आंसू (जलधारा) बरसा कर सहयोग/समवेदना प्रगट की।

कपूर निवास मे कल्याणभवन पहुँचे क्याकि चातुर्मास वही करना था।

पालीताणा चातुर्मास स० २०३३

अनुयागाचायजी के आदेश से गुरुवर्याश्री ही व्याख्यान फरमाती थी। मध्याह्न म अजना चरित्र सुनाती थी। हम तीना का मासक्षमण के साथ मौन-जप ध्यान चल रहा था।

पूर्णाहुति पर बालमुनि मणिप्रभसागरजी ने भी अठाई तप की आराधना की। चातुर्मासार्थ आये हुए श्रावक श्राविकाओ न पचरगी तप भी किया। अष्टाह्निका महोत्सव, पूजा-वरघोडा, रात्रिभक्ति आदि सभी कायक्रम हरिविहार म थे, इसलिये हम सब लोग भी वहीं आ गये थे। प्रसिद्ध गुटावालोतान की मडली बुलाई गई थी, जिसम पूजा, वरघोडे आदि म चार चांद लग गये थे। वरघोडे की शोभा दशनीय और स्वामीवात्सल्य प्रशसनीय रहा। सभी काय सुव्यवस्थित ढग से सम्पन्न हुए।

चातुर्मास सभी प्रकार से सफल रहा। पठन-पाठन का काय भी सुन्दर रहा और फतेचन्दभाई की सेवा प्रशसनीय रही।

हम गुजरात की पचतीर्थी की यात्रा करनी थी अत चातुर्मास बाद विहार किया। मौन एका दशी की आराधना गिरनार तीथ पर की।

वहा से विहार कर मागस्थ मागरोल, वेरावल, आदि तीर्थों की यात्रा करते हुए चन्द्रप्रभास-पाटन (सोमनाथ पाटन) पहुँचे। यहा चन्द्रप्रभ भगवान के विशाल मन्दिर के दशन करके मन प्रसन्न हो गया। यही इतिहास विख्यात सोमनाथ का मन्दिर समुद्र किनारे बना हुआ है, जिसको महमूद गजनवी ने बार-बार लूटा और ध्वस्त किया तथा इसका बार बार निर्माण होता रहा। इसे सरकार ने ऐसा भव्य रूप प्रदान किया कि टूरिस्ट लोग भी देखने आते हैं। यहाँ स सन सेट पाइट भी बडा सुन्दर दिखाई देता है।

यहाँ से विहार करके अजारा पार्श्वनाथ आये। लाल पत्थर की भगवान पार्श्वनाथ की बडी विशाल प्रतिमा है। भोजनशाला आदि भी व्यवस्थित है।

वहाँ से महुआ दाठा तलाजा आदि पचतीर्थी की यात्रा करके शत्रुञ्जयी डेम के पास नूतन मन्दिर के दशन करते हुए पालीताना आये।

चूँकि तीथराज का प्रभाव ही ऐसा है कि बार-बार यात्रा करने को मन करता है। एक बार पुन तीर्थाधिराज के दशन किये।

इसी बीच सूरत से श्री सघ का विनती पत्र एव तत्रस्थ विराजित पू श्री गणाधीश महोदय का आदेश पू श्री अनुयोगाचायजी के पास आया कि मेरा स्वास्थ्य अनुकूल नहीं रहता, अत चातुर्मास हेतु किसी साध्वीजी को भेजें। पूज्य गुरुदेव ने पूज्या गुरुवर्याश्री स कहा और उन्होंने मुझे (प्रियदशनाजी), तत्वदशनाजी तथा सम्यग्दशनाजी को सूरत विहार करवाया।

पालीताना मे उसी दिन (चैत्र वदी ५ को) पू गुरुदेव श्री कांतिसागरजी की निश्रा में दो भ्रातृ युगल श्री सुयशप्रभसागरजी व विमलप्रभसागरजी की दीक्षा हुई और दोनो ने श्री अनुयोगाचार्यजी का शिष्यत्व ग्रहण किया।

इधर जयपुर विराजित पू प्र महोदया विचक्षणश्रीजी म सा ने आदेश प्रेषित किया कि आप जैसी विद्वद्वर्या के ज्ञान का लाभ अन्य क्षेत्रों को भी मिलना चाहिये। अत आगामी चातुर्मास सांचोर या जामनगर करना उचित है। आदेश के साथ ही जामनगर संघ की आग्रहपूर्ण विनती लेकर मुख्य-मुख्य श्रावक आ गये। पूज्या गुरुवर्या ने तत्काल स्वीकृति दे दी।

गुरुवर्याश्री ने जेष्ठ मास की अगारे बरसाने वाली गर्मी मे जामनगर की ओर प्रस्थान कर दिया।

जामनगर चातुर्मास सं. २०३४

यह नगर सौराष्ट्र की सीमा पर है। यहाँ अनेक शिखरबद्ध जिनमन्दिरों में भव्य मोहक प्रतिमाएँ विराजमान है, ऐसी भव्य नगरी मे स १९९७ मे पू प्र श्री ज्ञानश्रीजी म सा. उपयोगश्रीजी म. सा आदि का शानदार चातुर्मास हो चुका था। गुरुवर्याश्री के पधारने से लोगो मे अतीत की स्मृतियाँ ताजा हो गई। बडे ही धूमधाम से आपका नगर-प्रवेश हुआ। मन्दिरो के दर्शनकर आपश्री धर्मनाथ मन्दिर से संलग्न उपाश्रय मे पधारी। धर्मदेशनारूप मागलिक प्रवचन सुन्दर गुजराती भाषा मे श्रवण कराया। श्रोता चमत्कृत रह गये कि मारवाडी—राजस्थानी साध्वीजी का गुजराती भाषा पर ऐसा अधिकार।

फिर तो चार महीने तक गुरुवर्याश्री के मुख से गुजराती भाषा मे प्रवचन पीयूष की स्रोतस्विनी बहती रही।

तथ्य यह है कि गुरुवर्याश्री का मारवाडी, गुजराती, हिन्दी, प्राकृत, संस्कृत सभी भाषाओं पर पूर्ण अधिकार है।

चातुर्मास मे वसनजी भाई (आप गुरुवर्या की सेवा मे रहते थे) ने मासक्षमण किया, बहनो ने भी पचरगी, शखेश्वरजी के अट्ठम आदि अनेक तपस्याएँ की। कई बहिनो ने सामायिक-प्रतिक्रमण, प्रकरण, कर्मग्रन्थादि सीखे। सभी का चार महीने तक धर्मोत्साह बना रहा।

यद्यपि यहाँ खरतरगच्छ के श्रावको के घर कम है पर जितने भी है, उनमे धर्म उत्साह बहुत है।

तत्रस्थ विराजित अचलगच्छीय साध्वीजी गुरुवर्याश्री के आगमज्ञान से प्रभावित होकर आचारांग की वाचना लेने आई। गुरुवर्याश्री ने आचारांग के एक-एक सूत्र का ऐसा सारगर्भित विवेचन किया कि वे दग रह गयी। नित्य आने लगी। गुरुवर्याश्री भी बिना भेदभाव के ज्ञान की वर्षा करने लगी।

जामनगर से कच्छ समीप ही है अत गुरुवर्याश्री के वहाँ जाने के भाव थे। पर जयपुर विराजित पू प्र महोदया के, पूर्व असातावेदनीय कर्मोदयवश, ब्रेस्ट (छाती) मे अचानक ही कैंसर की गाँठ हो गयी। जयपुर से पत्र द्वारा इस विषय के समाचार जानकर चिन्ता हुई, जयपुर जाने का निर्णय ले लिया। जामनगर से विहार करके मोरवी, ध्रागध्रा आदि होते हुए शखेश्वर आ पहुचे, वह दिन पौष कृष्णा १० भ पार्श्वनाथ का जन्म दिवस था।

सूरत से प्रियदशनाजी आदि साध्वीजी भी आ गये। उल्लासपूवक प्रभु की स्तवना, भक्ति आदि करते हुए ३-४ दिन तक वही रहे।

वहा से सिद्धपुर, पालनपुर आदि तीर्थों की यात्रा करते हुए माउन्ट आबू पहुँचे।

माउण्ट आबू के शिखरबद्ध मंदिर विश्वविख्यात हैं। बडी अनुपम कोरनी (कारीगरी) की गयी है। दौरानी जिठानी के आले अत्यन्त सूक्ष्म किन्तु सुदर कोरनी से युक्त हैं। हमने सभी मंदिरो के दशन किये। सनसेट पाइन्ट, नक्की झील आदि कई दशनीय स्थान हैं, जिन्हे देखने टूरिस्ट आते हैं।

वहा से और आगे अचलगढ गये। वहा बडी विशाल भव्य स्वणप्रतिमाएँ चौमुखजी के रूप मे हैं। वही योगिराज श्री शान्तिगुरुदव का स्थान है। वहा से पुन माउण्ट आबू आकर हम लोग अणादरा (जो योगिराज की जन्मभूमि है) की घाटी मे, जो बडा ही पथरीला माग है, नीचे उतरे।

वहा से सिरोही जावाल आदि होते हुए वसन्त पचमी (योगिराज का जन्म दिवस) के दिन माडोली आये। इस दिन वहा बडा भारी मेला लगता है स्वामीवात्सल्य होता है पूजा पढाई जाती है।

यही पर ४ ५ व्यक्ति सिवाणा पधारने की विनती लेकर आये। समाचार दिया—पूज्या श्री चम्पाश्रीजी म सा यही ठाणापति विराजित है। उन्ही की निश्रा मे और पूज्यश्री तीथसागरजी म सा व कलाशसागरजी म सा के हाथो से साध्वीजी की बडी दीक्षा का आयोजन है, सूयप्रभाजी ने भी मास-क्षमण करने का निश्चय किया है, समुदायाध्यक्षा का भी यही आदेश है अत शीघ्र पधारें।

हमको भी उधर जाना था, अत आश्वस्त करके बिदा कर दिया।

माडोली से विहार कर जालौर तीथ पहुँचे। वहा स्वणगिरि पवत पर ५ विशाल मन्दिर हैं। हम नदीश्वर द्वीप की धमशाला मे ठहरे। दूसरे दिन ऊपर चढे सभी मंदिरो के दशन किये, नीचे आये। दो दिन रुके। सिवाणा की ओर प्रस्थान किया। बिशनगढ बालवाडा रमणिया, मोकलसर होते हुए ५ ६ दिन मे सिवाणा पहुँच गये।

सिवाणा मे निर्णीत दिन बडी धूमधाम से बडी दीक्षाएँ हुइ। दीक्षार्थिनियो के पारिवारीजन तथा अन्य भी बहुत से लोग आये। अभी १५ दिन के दशवैकालिक योग अवशिष्ट थे। अन्य कई साध्वीजी के १५ दिन के योग बाकी थे। अत पूज्या श्री शशिप्रभाजी, मन (प्रियदशनाजी ने), जयश्रीजी ने सम्यग्दशनाजी ने दशवकालिक योग इन लोगो के साथ ही प्रारम्भ कर दिये। बडी शान्ति से योगोद्वहन पूण हुए। लगभग सवा महीने हम लोग यहाँ रुके।

वहाँ से पूज्याश्री आदि सब गोडवाड की पचतीर्थी—नाडोल, नाडलाइ, राणकपुर, वरकाणा, मूछाला महावीरजी आदि की यात्रा करते हुए पाली पहुँचे।

पाली विराजित पूज्याश्री अनुभवश्रीजी म सा के दशन-वन्दन कर एक दिन विश्राम किया। तदुपरान्त सोजत की ओर विहार किया। माग मे बागावास के स्कूल मे रात्रि विश्राम किया। यह स्थान सोजत से १३ किमी दूर है।

प्रात कुछ अंधेरा था। गुरुवर्याश्री स्थंडिल के लिए जैसे ही गेट से बाहर पधारे कि लकडी आदि बीच मे आ जाने से गिर गये। घुटनो मे काफी चोट आइ। साथ वाले साध्वीजी ने दवाई आदि लगाने का आग्रह किया पर आप स्थण्डिल चली ही गई। लौट आने पर देखा तो गोडे (जांघ) छिल गये थे। दवा आदि लगाई, कुछ राहत मिली तो चलने को प्रस्तुत हो गइ। पू शशिप्रभाजी ने बहुत मना किया पर

आप तो हिम्मत की धनी है, पू. शशिप्रभाजी विवश होकर चुप हो गई। सभी ने विहार किया। केवल दो साध्वीजी—पू. श्री शशिप्रभाजी म. सा व अन्य एक साध्वी को अपने साथ रखा, बाकी सभी को सोजत विहार करा दिया। आप धीरे-धीरे चलती हुई ४-५ घण्टे मे ४-५ किलोमीटर चलकर एक प्याऊ पर रुकी। किन्ही कारवालो ने अपको देखकर कार रोकी। आपकी पीड़ा को समझकर एक ट्यूब दी व पहिए का ग्रीस लगाने को दिया।

इधर जैसे ही साध्वीजी सोजत पहुँची तो वहाँ के श्रावकों को जानकारी हुई। वे लोग तुरन्त ही एक लेडी डॉक्टर को मरहम पट्टी के साथ लेकर उसी प्याऊ पर पहुँचे। पट्टी वगैरह तथा आहार-पानी की व्यवस्था की। फिर भी सूजन तथा दर्द मे कोई राहत न मिली। बहुत धीरे-धीरे चलकर तीन दिन मे सोजत पहुचे। वहाँ लगभग पन्द्रह दिन रुके। पॉव बिल्कुल ठीक हो जाने पर वहाँ से विहार करके ब्यावर अजमेर पधारे। वही पर हम लोगो ने (प्रियदर्शनीजी, तत्वदर्शनाजी) गुरुवर्याश्री के दर्शन किये।

वहाँ से पूज्याश्री व हम सबने पूज्या जैन कोकिला जी के दर्शनार्थ जयपुर की ओर प्रस्थान किया।

जयपुर मे प्रवर्तिनीश्रीजी के दर्शन करके हम लोगो ने स्वयं को कृतकृत्य माना। पृज्या गुरुवर्याश्री ने जैन कोकिला से उस गाँठ के विषय मे चर्चा की और देखा भी। बडे बेर जितनी मोटी गाँठ थी। गुरुवर्याश्री ने जैन कोकिलाजी को करबद्ध होकर ऑपरेशन करवाने की प्रार्थना की तो प्रवर्तिनीश्री ने स्नेहसिक्त किन्तु दृढ शब्दो मे कहा—

'सज्जनश्री सा ! मैं आपकी बात जरूर मानूँ। पर मुझे उसमे सार तो नजर आये। मैने देखा भी है और सुना भी है जिसने भी आपरेशन करवाया है और शेक लिया है। उसकी बीमारी बढी है, कम नही हुई है। फिर यह तो कर्मो का कर्जा है, चुकाना ही पडेगा। इसे अभी चुकाना हीं अच्छा है। इसलिए आप ऑपरेशन का आग्रह न करे। मैं किसी भी प्रकार उपचार नही करवाऊँगी। मेरा यही संकल्प है।'

इस सकल्प के आगे कुछ भी कहने को न रहा। सभी विवश हो गये।

चातुर्मास निकट आ रहा था। कई क्षेत्रो से विनतियाँ आई। अत- टोक क्षेत्र मे पू० श्री मणिप्रभाजी म० सा०, पू० श्री शशिप्रभाजी म० सा०, सम्यग्दर्शनाजी व विश्वा प्रज्ञाश्रीजी—इन चारो को प्रस्थान करवाया।

मालपुरा में—श्री मुक्तिप्रभाजी म० सा०, पू० कमलाश्रीजी म० सा० व दिव्यदर्शनाजी आदि तीन, पू० मनोहरश्रीजी म० सा० के साथ जयश्रीजी आदि तथा दिल्ली मे श्री निरंजनाश्रीजी काव्यप्रभाजी आदि चार। इस प्रकार निकट के क्षेत्रो मे साध्वीजी को चातुर्मासार्थ प्रस्थान करवाया।

प्र० महोदया जैन कोकिला विचक्षणश्रीजी म. की निश्रा मे

जयपुर चातुर्मास · सं० २०३५

पू० प्र० जैन कोकिलाजी ने पू० गुरुवर्याश्री को अपने ही पास रखा। साथ ही मुझे (प्रियदर्शनाजी) व तत्त्वदर्शनाजी को भी आपश्री की निश्रा मे चातुर्मास करने का सौभाग्य मिला। पू० प्रवर्तिनीजी के साथ यह मेरा पहला चातुर्मास था।

इस वर्ष पू० श्री जयानन्दजी म० सा० का चातुर्मास भी जयपुर ही था। आपश्री ने पू० गुरुवर्याश्री से आचारांग सूत्र का वाचन किया था। मध्यान्ह मे श्रीमद देवचन्द के 'आगमसार' पर स्वाध्याय,

प्रश्नोत्तर आदि चलते थे जिसम सब साध्वीजी क अतिरिक्त तत्वरसिक श्रावक श्राविका भी भाग लेते थे। श्रीमद् देवचन्द्र चौबीसी के स्तवना का अथ पू० प्रवर्तिनी महोदया बडे सुन्दर रूप मे समझाती थी।

स्वाध्याय और तत्वचर्चा करते हुए जयपुर का चातुर्मास सम्पन्न हुआ।

चातुर्मास के उपरान्त पू० प्रवर्तिनीजी दादाबाडी पधार गय। टोंक चातुर्मास करके पू० मणिप्रभाजी म० सा० आदि और मालपुरा चातुर्मास करके कमलाश्रीजी म० सा० आदि गुरुवर्या के चरणो म आ पहुँचे। पू० मनोहर श्रीजी म० सा० आदि अलवर चातुर्मास करके जयपुर आ पहुँचे। सुरजनाश्रीजी म० सा० के साथ प्रियदशनाजी व सम्यग्दशनाजी म० का प्रयाग सम्मलन की परीक्षा हेतु अजमेर प्रस्थान करवाया।

पू० जयानन्दजी म० सा० दादाबाडी की प्रतिष्ठा हेतु अलवर पधार गय।

चत्रमास म पू० श्री शशिप्रभाजी म० सा०, दिव्यदशनाजी व तत्वदशनाजी न वर्षीतप प्रारम्भ किया साथ ही कई गृहस्थ बहनो ने भी चालू किया।

पूज्या श्री शीलवतीजी म० सा० का स्वास्थ्य उपचार के बाद भी गिरता ही जा रहा था।

पू० प्रवर्तिनीजी तो दादाबाडी विराजित थी किन्तु शहर म विराजित पू० शीतलश्रीजी म० सा० के अस्वस्थ होन के कारण प० गुरुवर्याश्री कभी दादाबाडी तो कभी शहर म आती जाती रहती थी। हम लोग लगभग ५० साध्वीजी थे। उनमे से १० १२ दादाबाडी म और बाकी शहर म रहती थी।

पू० प्रवर्तिनीजी न अपने गिरते हुए स्वास्थ्य को देखकर प० गुरुवर्या से पुण्यमडल का काय भार सभालने को कहा। उत्तराधिकार सौंपा। (पूज्या विचक्षणश्रीजी म० के हस्तलिखित उत्तराधिकार पत्र की प्रतिलिपि पृष्ठ ७४ पर देखिए।) जिस पर गुरुवर्या न यथायोग्य शासनसेवा का वचन दिया।

आषाढ महीन म प० अनुयोगाचार्यजी पू० प्रवर्तिनी महोदया को दशन देने पधारे, सुख साता की पृच्छा की, दो दिन दादाबाडी में रुके और फिर प्रस्थान करके उग्र विहार करत हुए बाडमर पहुँचे।

पू० श्री शीतलश्रीजी म० सा० का स्वास्थ्य गम्भीर हो गया। उन्ह त्याग प्रत्याख्यान आदि सभी करवा दिये। पाठ-सज्झाय-नवकार मन्त्र की धुन सुनते हुए आषाढ बदी १० को २ बजे उनका नश्वर शरीर छूट गया।

यद्यपि पूज्या प्रवर्तिनी का स्वास्थ्य गम्भीर होता जा रहा था किन्तु अजमेर वाले चातुर्मास के लिए अडे हुए थे। अत इच्छा न होते हुए भी प्रवर्तिनीजी न गुरुवर्याजी को अजमर चातुर्मास की आज्ञा दे दी। गुरुआज्ञा को शिरोधार्य कर पू० गुरुवर्याजी ने अपने साध्वीमडल के साथ अजमेर की ओर विहार किया।

अजमेर चातुर्मास स० २०३६

अजमर पहुचे। बडे उल्लासपूवक दादा मेला मनाया गया। गुरुवर्या न श्रद्धाजलि रूप एक गीतिका बनाई जिसे हम सभी ने पूजा में गाई।

दूसरे दिन धूमधाम से नगर प्रवेश हुआ। प्रतिदिन बडे उपाश्रय मे व्याख्यान होता था। उपस्थिति अच्छी होती थी।

मध्याह्न मे चौपो प्रियदशनाजी बाचती थी।

श्राविकाओ न उत्साहपूवक पचरगी प्रारम्भ की। सम्यग्दशनाश्रीजी न भी पचरगी म नगीय

उत्तराधिकार पत्र, बनाता है – शासन का छत्र

ॐ नमः

विदुषी सुयोग्या सिद्धान्त विशारद श्रीमति सज्जनश्रीजी सर्व

विचक्षणश्रीजी का सादर संदेश [illegible] सुखसाता अनुवंदना जानना।

मेरे शरीर में व्याधि है मैं शांति से स्मरण स्वाध्याय आदि विशेष रूप में

~~[illegible]~~ हूँ अतः समुदाय का संचालन का कार्य आपको आज सौंप रही हूँ। आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि आप अब मुझसे अपने विचारों में सफल होने के लिये आशीर्वाद [illegible] देती [illegible] समुदाय को खूब उन्नत बनाने का प्रयत्न करते रहेंगे संयम साधना का स्रोत आपमें [illegible] बहता रहे [illegible]

प्रवर्तिनी श्री विचक्षणश्री जी महाराज ने शारीरिक अस्वस्थता की स्थिति में जीवन की सान्ध्य बेला में पूज्य प्रवर्तिनी सज्जनश्री जी महाराज को श्रमणी समुदाय की समस्त जिम्मेदारी सौंपकर जो उत्तराधिकार पत्र लिखा, उसकी प्रतिलिपि.

होने के लिए उपवास प्रारम्भ किये। प्रारम्भ म भाव तो पचोले का ही था, किन्तु शासनदेव की कृपा से मासक्षमण ही हो गया। पर्वाधिराज पयु षण की पूर्णाहुति पर ही मासक्षमण की पूर्णाहुति था।

पूर्णाहुति पर अठाई महोत्सव हुआ। पूजा पढाने के लिए यतिवय श्री रूपचन्दजी एव जयपुर से नागौरीजी पधारे। शमेश्वर के अट्ठम (तेले) काफी हुए। पूजा भक्ति, आगी प्रभावना, स्वामीवात्सल्य का भरपूर लाभ अजमेर के खरतरगच्छ ने दिल खोलकर लिया। तप-दान-पूजा का रग बरसन लगा।

स्थानकवासी सम्प्रदाय के पू० श्री नानालालजी म० सा० का चातुर्मास भी अजमर ही था। व स्वय ही एक बार सुख-साता पूछने पधारे। इससे दोना सम्प्रदाया म स्नेह की वृद्धि हुई।

इधर जयपुर से समाचार मिले कि पू प्रवर्तिनी विचक्षणश्रीजी के कैंसर गाँठ म दद बहुत बढ गया है और खून आने लगा है। विचित्रता यह थी कि इस बीमारी मे अन्य लोगो के तो दुगन्धयुक्त रक्त-पीव रिसता है किन्तु पूज्या प्रवर्तिनीजी के तो एकदम शुद्ध रक्त रिसता था। उधर अनुयोगाचायजी की निश्रा म बाडमेर से पालीताना का छ री पालित सघ निकल रहा था जिसम गुरुवर्याश्री को सम्मिलित होन का अनुयोगाचार्यजी का आदेश था।

दुविधापूण स्थिति हो गयी। इधर पूज्य प्रवर्तिनीजी के स्वास्थ्य की चिन्ता, उधर अनुयोगाचार्य जी का आदेश। क्या किया जाय ? गुरुवर्या की इच्छा थी कि पहल जयपुर जाकर पू प्रवर्तिनीजी की दशा स्वय आँखो से देखूँ इसके बाद अनुयोगाचायजी के आदश का पालन करूँ। लकिन शारीरिक स्थिति ऐसा उग्रविहार करन की नही थी।

आखिर शशिप्रभाश्रीजी ने कहा—आप मुझे आदेश फरमाय ताकि मैं स्वय जयपुर जाकर पू० प्रवर्तिनीजी की सारी स्थिति देख आऊँ। पूज्याश्री ने आदेश फरमाया और शशिप्रभाश्रीजी व दिव्यदशनाश्री जी न जयपुर के लिये विहार किया।

उस समय जयपुर मे विचक्षण भवन का उद्घाटन व हेमलता का दीक्षा समारोह था। दोनो म ही साध्वीजी सम्मिलित हुईं, ५ ६ दिन रुककर पुन अजमेर लौट आइ। वहाँ से सघ म सम्मिलित होने के लिए ६ साध्वीजी न विहार किया।

हम लोग ब्यावर से सोजत होकर पाली प्रस्थान कर रह थ कि बीच म ही गुरुवर्याश्री के पाँवा म दद होने लगा, मुश्किल मे पाली पहुँच सके। तीन-चार दिन रुककर मालिश करवाई, दर्द कुछ कम हुआ। विहार कर दिया। एक ही मजिल पहुचे कि दद फिर शुरु हो गया, जसे-तसे गुन्दोज पहुँचे। दद बहुत बढ गया, घुटना म सूजन आ गई, उठना-बैठना भी मुश्किल हो गया। गुन्दोज में ही स्थिरता करनी पडी। सघ के लिये शशिप्रभाजी म सा और सम्यग्दशनाजी को विहार करवा दिया, वे लोग गाधव ग्राम मे जाकर सघ मे सम्मिलित हो गये।

पूज्यवर्याश्री आदि कुछ दिन गुन्दोज मे रह। यहाँ जिनमन्दिर भी हैं और श्रावका के १५ २० घर भी। सभी अच्छे श्रद्धावान हैं। यहाँ रहकर आयुर्वेदिक उपचार कराया, मेथी आदि अधिक मात्रा मे ली, दर्द बिल्कुल समाप्तप्राय हो गया तब विहार करके राणावाडी, अटूपुरा होते हुए जाहोर आये। कष्ट और पीडा के क्षणो मे भी गुरुवर्या म अपार सहनशीलता और तीर्थवन्दना की उमग देखकर लगता है असातावेदनीय भी उनके सत्सकल्पो के समक्ष हार मा गया।

होली के दिन निराट थे अत सघ के आग्रह मे ८ ६ दिन रुके। व्याख्यानो मे प्रभावित होकर सघ न चातुर्मास की विनती की। सिवाणा स भी ५-७ व्यक्ति चातुर्मास की विनती लेकर आ गये बहुत

आग्रह किया। दिव्यदर्शनाजी व तत्वदर्शनाजी ने वर्षीतप का पारणा भी सिवाणा में हो, ऐसी भावना व्यक्त की। आखिर उनकी चातुर्मास की विनती स्वीकार हुई।

आहोर से सिवाना की ओर चैत्र कृष्ण पक्ष में हम लोगों ने विहार कर दिया।

तखतगढ़, साडेराव आदि छोटे-छोटे नगरों मे विशाल जिन-मन्दिरों के दर्शन करते हुए मोकलसर आये। संघ के आग्रह से ८-१० दिन रुके। फिर विहार करके सिवाणा पहुंचे।

दोनों साध्वीजी के वर्षीतप का पारणा सानन्द सम्पन्न हुआ।

जैन कोकिला पू. प्रवर्तिनीजी का देवलोक गमन

प्रतिदिन के समान वैशाख शुक्ला ५ को भी व्याख्यान चल रहा था। इसी बीच जयपुर से तार आया पू. प्रवर्तिनीजी श्री विचक्षणश्रीजी के स्वर्गवास का समाचार लेकर। जानकर बहुत दुख हुआ, व्याख्यान-सभा, शोक-सभा बन गयी। जैनजगत की एक दिव्य तारिका का अवसान! सर्वत्र ही शोक छा गया।

शोक आखिर मोह का ही एक रूप है। मोह निवृत्ति वीतराग दर्शन से ही संभव है। अतः हमने सभी लोगो के साथ देव-वन्दन किये, मन्दिर गये। वीतराग चरणो मे दिवगत आत्मा के प्रति श्रद्धा व शोक निवृत्ति की प्रार्थना की।

दो दिन पश्चात गुणानुवाद सभा का आयोजन किया गया। पू० प्रवर्तिनीजी के आदर्श जीवन और दिव्यगुणो पर प्रकाश डाला गया।

सिवाणा चातुर्मास सं० २०३७

कुछ दिन के लिए हम लोग मिठोडावास-उम्मेदपुरा (सिवाणा का एक उपनगर) चले गये। वहाँ खरतरगच्छ के २४० घर हैं। ३०-४० लडकियाँ धार्मिक अध्ययन करने हमारे पास आती थी। पू० शशिप्रभाजी म० सा० आदि जो सघ मे गये थे वे भी पालीताना से उग्रविहार करके ज्येष्ठ सुदी मे ही सिवाणा वापस पधार गये।

मिठोडावास वालो का भी चातुर्मास के लिए अत्यधिक आग्रह हुआ। अतः शशिप्रभाजी म०सा० और सम्यग्दर्शनाजी म० को मिठोडावास का चातुर्मास करवाया गया तथा पूज्या गुरुवर्याश्री एवं प्रियदर्शनाश्रीजी व दिव्यदर्शनाजी ने गाँव मे चातुर्मास किया।

व्याख्यान दोनो ही जगह होते थे। मिठोड़वास मे पू० शशिप्रभाजी व्याख्यान फरमाती और गाँव मे गुरुवर्याश्री।

गुरुवर्याश्री के व्याख्यानो से कुमारी नीता (नारगी) ललवाणी के मानस में वैराग्य भावना उद्-बुद्ध हो गई।

पू० शशिप्रभाजी म०सा० के व्याख्यानो मे मानसपरिवर्तन करने की अद्भुत शक्ति थी। उन्होंने मिठोडावास के लोगो के मन मे पड़ी हुई तडों (भेदरेखाओ) को दूर कर दिया। मनोमालिन्य समाप्त हो गया। जो काम बड़े-बड़े दिग्गज विद्वान मुनि भी नही कर पाये, वह आपने कर दिखाया।

पूज्या गुरुवर्या के आशीर्वाद से आपकी वाणी मे भी एक चमत्कार पैदा हो गया।

आपश्री के व्याख्यानो से १० वर्षीय कुमारी नारगी उर्फ निशा तथा लक्ष्मी भंसाली—दो लड-कियो के मानस मे सस्कारों के बीज प्रेरणा और प्रवचन के अमृत सिंचन से अकुरित हुए। उन पर वैराग्य, समत्व व निवृत्ति के सुमन भी खिलने लगे। वैराग्य के बीज अंकुरित हो गये।

दोनो जगह (गाँव और मिठोडावास) त्याग-तप प्रत्याख्यान आदि खूब हुए। कई बहिना ने १५ १६ ११ के तप किये। तपस्वी बहिनो का बहुमान किया गया। पूजा प्रभावना-स्वामिवात्सल्य का ठाठ रहा।

अष्टम शताब्दी मनाने का निर्णय भी इसी चातुर्मास म हुआ। मन्दिर बनवाने का निर्णय व गुरुदेव की मूर्ति बनाने का आदेश दे दिया गया।

अजमेर निवासी श्रीमानमलजी सुराणा की पुत्री मजु सुराणा के मानस म वैराग्य बीज ४ वर्ष पहले अकुरित हो चुका था, पर घरवालो ने स्वीकृति नही दी थी। किन्तु सिवाणा चातुर्मास मे श्रीमानमलजी सा० अपनी सुपुत्री को लेकर सिवाणा आये और शिक्षा हेतु पास रखने की भावना तथा दीक्षा दिलाने के लिए अजमेर पधारने की विनती की। जिसे गुरुवर्या ने स्वीकार कर ली।

साथ ही जीवाणा निवासी स्व० हस्तीमलजी बागरेचा की सुपुत्री लीलाकुमारी जो वैरागिन के रूप मे दो वर्ष से हमारे साथ ही रह रही थी, उसके भी परिवार वालो ने दीक्षा देने की स्वीकृति प्रदान कर दी।

इस प्रकार सिवाणा चातुर्मास सभी प्रकार से सफल रहा।

पालीताना चातुर्मास पूर्णकर पू० गुरुदेव कातिसागरजी म०सा० धोलका म नूतन दादावाडी की प्रतिष्ठा कराने हेतु पधारे थे। वही वैराग्यवती लीला बागरचा अपने परिवारीजनो के साथ दीक्षा के अवसर पर पधारने की विनती करने गई। गुरुदेव ने नाकोडा म दीक्षा कराने का मुहूर्त दिया, जिसे परिवार वालो ने स्वीकार कर लिया। पौष शुक्ला १० का दिन दीक्षा दिवस निर्णीत किया गया। तदनुसार गुरुदेव नाकोडा पधारे।

हम लोग सिवाणा से विहार करके पू० श्री चम्पाश्रीजी म० सा० की सेवा म बालोतरा पहुँचे। १५ दिन रुके। पार्श्वनाथ जन्म कल्याणक (पौष वदी १०) को नाकोडा पहुँचे गये।

इसी अवसर पर छत्तीसगढ़ रत्नशिरोमणि पू मनोहर श्रीजी म सा १७ ठाणा व जोधपुर चातुर्मास पूर्ण करके पू मणिप्रभाश्रीजी आदि ३ ठाणा नाकोडा पौष वदी १० के मेले पर पधार गये। उत्साह से मेला मनाया।

जीवाणा श्रीसघ के आग्रह से गुरुवर्याश्री ने पू शशिप्रभाश्रीजी म सा आदि को जीवाणा विहार कराया व पू मणिप्रभाजी म सा आदि कुछ दिन के लिए सिवाणा, मोकलसर आदि पधार गये। क्योंकि अभी दीक्षा म १५ दिन बाकी थे।

लीला बागरेचा की दीक्षा स २०३७

कुमारी लीला की दीक्षा पर पू श्री शशिप्रभाजी म सा, पू श्री मणिप्रभाजी म सा आदि पुन नाकोडा पधारे गये। पू मनोहरश्रीजी म सा और हम सब इस तरह लगभग ३० ३५ ठाणा थे। पू० गुरुदेव की निश्रा मे पौष शुक्ला १० को दीक्षा सम्पन्न हुई। कुमारी लीला को दीक्षोपरान्त नाम दिया गया—शुभदर्शनाजी और पूज्या गुरुवर्या की शिष्या घोषित की गई।

पू गुरुदेव ब्यावर की ओर विहार कर गये, क्योंकि उनका दिल्ली चातुर्मास निश्चित हो चुका था और उन्हे अजमेर-जयपुर होते हुए दिल्ली जाना था।

अजमेर म मजु सुराणा की दीक्षा स २०३८

मजु सुराणा की दीक्षा हेतु हम लोगो ने अजमेर की ओर विहार किया तथा पू मणिप्रभाजी

के साथ तीनो बहनो (खडगपुर वालो) ने जैसलमेर की ओर कदम बढाये।

अजमेर वालो की विनती स्वीकार कर दीक्षा करवाने हेतु पू गुरुदेव श्री कैलाशसागरजी म. सा. पधारने वाले थे।

हम लोग दीक्षा से १०-१५ दिन पहले ही अजमेर पहुँच गये। पू कैलाशसागरजी म सा. नियत तिथि पर पहुँचे। पू विजयेन्द्रश्रीजी म सा पहले से ही विराजित थे। तपागच्छ के साधु महाराज भी विराजित थे। जयपुर से गुरुवर्या जी की गुरुबहिन जिनेन्द्रश्रीजी म. सा. व जयश्रीजी म सा. भी पधार गये थे।

वैशाख कृष्णा ६, स २०३८ को सुभाप उद्यान मे कुमारी मजू की दीक्षा सानन्द सम्पन्न हुई। दीक्षोपरान्त नाम रखा गया मुदितप्रज्ञाश्री और गुरुवर्या की शिष्या घोषित हुई। उनकी बडी दीक्षा वैशाख शुक्ला १० को सम्पन्न हुई।

पू० शशिप्रभाजी के द्विवार्षिक तप का पारणा अक्षय तृतीया के दिन कोठी के मन्दिर मे हुआ। यहाँ मूलनायक श्री ऋषभदेव भगवान है। सघ ने सिद्धचक्र, महापूजन सहित अष्टान्हिका उत्सव किया।

ब्यावर मे हालवालो के नवनिर्मित मन्दिर की प्रतिष्ठा ज्येष्ठ शुक्ला १० को पू० कैलाशसागर जी म० सा० की निश्रा मे हो रही थी। हमे भी आमन्त्रित किया गया अत हम भी सम्मलित हुए। सानन्द धूम-धाम से प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई।

चातुर्मास के लिये ब्यावर सघ की विनती स्वीकार कर ली पर जयपुर वालो का भी अत्यधिक आग्रह था अत प्रियदर्शनाजी आदि ठाणा ५ को जयपुर विहार करवा दिया और गुरुवर्याश्री शशिप्रभाश्रीजी आदि ठाणा ६ ब्यावर मे ही विराजे।

ब्यावर चातुर्मास . सं. २०३८

ब्यावर चातुर्मास मे व्याख्यान गुरुवर्याजी ही फरमाती थी मन्दिर के परिसर मे बनी धर्मशाला मे। तप-नियम-त्याग-प्रत्याख्यान आदि खूब हुए।

दिल्ली चातुर्मास पूर्ण करके पूज्य गुरुदेव अनुयोगाचार्य जी ब्यावर पधारे। अजमेर से प्रधान सा० आदि तथा जयपुर से हम लोग भी ब्यावर पहुँच गये। पू० गुरुदेव को नागेश्वर दादावाड़ी की प्रतिष्ठा कराने जाना था अत सिर्फ एक दिन रुककर नागेश्वर की ओर प्रस्थान कर दिया तथा हम लोगो ने जोधपुर की ओर।

नागेश्वर मे, अखिल भारतीय खरतरगच्छ संघ की मीटिंग मे पू० श्री उदयसागरजी म० सा० व पू० कान्तिसागरजी म० सा० को आचार्य पद पर तथा पूज्या गुरुवर्याजी को प्रवर्तिनी पद पर प्रतिष्ठित करने का निर्णय लिया गया। तथा पद समारोह जयपुर मे ही करना है, यह भी निश्चित कर लिया गया।

जयपुर सघ तथा अखिल भारतीय खरतरगच्छ संघ का गुरुवर्याश्री से अत्यधिक आग्रह था कि पदोत्सव उत्सव पर जयपुर पधारे, पर शारीरिक अस्वस्थता के कारण नही पधार सकी, अपने प्रतिनिधि के रूप मे पू० शशिप्रभाजी म० सा० को जयपुर भेजा।

अखिल भारतीय खरतरगच्छ सघ ने गुरुवर्याश्री को जोधपुर मे ही ठाठ से पद-प्रदान करने का निर्णय ले लिया।

जयपुर मे आचार्य पद समारोह

आषाढ कृष्णा ६, स० २०३९ को जयपुर में बडे ही समारोहपूर्वक पू० उदयसागरजी म० सा० तथा पू० कान्तिसागरजी म० सा० को आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया गया।

पू० उदयसागरजी म० सा० का चातुर्मास तो जयपुर म था अत वे वही विराजे। किन्तु पू० कान्तिसागरजी म मा ने अपने शिष्य मडल के साथ जोधपुर की ओर विहार किया। पू० शशिप्रभाजी ने भी जोधपुर की ओर प्रस्थान किया।

जोधपुर चातुर्मास म० २०३९

उग्र विहार करते हुए सभी रातानाडा जोधपुर पधारे। जोधपुर सघ न रातानाडा से जोधपुर शहर तक विराट जुलूस के साथ धूम धाम से आप सबका नगर प्रवेश कराया।

चातुर्मास मे यानि नौहरे मे व्याख्यान पूज्य आचार्यश्री ही फरमाते थे। महामनीषी पू० प्रवर मणिप्रभसागरजी म० सा० पूज्या गुरुवर्याजी मे आचाराग की वाचना लेते थे और अन्य भी कई प्रकार की शास्त्रचर्चाएँ करते थे।

गुरुवर्याजी मधुर ओजस्वी वाणी म श्रीचन्द केवली रास फरमाती थी।

श्री मुदितप्रज्ञाश्रीजी ने इस चातुर्मास मे मासक्षमण तप की आराधना की।

जोधपुर मे प्रवर्तिनी पद समारोह स २०३९

चातुर्मास के प्रारम्भ से ही प्रवर्तिनी पद समारोह की तयारियां शुरू हो गयी थी। समारोह की सपूर्ण व्यवस्था निमाज की हवेली म थी। अध्यक्षता तत्कालीन न्यायाधीश श्रीमान गुमानमलजी सा लोढा ने की। आचार्य प्रवर श्रद्धेय गुरुदेव ने पू गुरुवर्याश्री को प्रवर्तिनी पद की क्रिया बडे सुव्यवस्थित ढग से करवाई। पू गुरुदेव ने प्रवर्तिनी पद से सम्बधित अधिकारो, कर्तव्यो और गरिमा प्रकट करते हुए सारगर्भित विवेचन किया और शुभकामना प्रकट की कि प्रवर्तिनीजी इस पद की गरिमा बढाती हुइ चिरकाल तक जिनशासन की सेवा करती रहेगी।

इसी अवसर पर गुरुवर्याश्री द्वारा अनूदित कल्पसूत्र का विमोचन श्री लोढाजी के करकमलो द्वारा हुआ और यह ग्रन्थ पू गुरुवर्याश्री के पाणिपद्मो म अर्पित किया गया।

गुरुवर्याश्री के ससारपक्षीय भ्राता श्रीमान भेरूचन्दजी लूणिया और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती रेखाजी ने पूज्या गुरुवर्या को कम्बली ओढाकर सम्मानित किया तत्पश्चात अन्य लोगो ने भी यथाशक्ति कम्बली ओढाई।

समारोह हर्षोत्साहपूर्वक सम्पन्न हुआ।

आचार्यश्री अपने शिष्यमडल सहित नाकोडाजी की ओर विहार कर गये।

हम लोगो ने प धर्मश्रीजी म सा व रतिश्रीजी म मा के अत्यधिक आग्रह से फलोदी की ओर विहार किया। कारण यह था कि पूज्यवर्याओ के परिवारीजनो ने महापूजन सहित अष्टान्हिका महोत्सव, स्वामिवात्सल्य का आयोजन किया था। यथासमय हम वहा पहुँचे। सभी कार्यक्रम सानन्द सम्पन्न हुए। हम लोग एक माह तक वहा रुके।

दादा गुरुदेव जिनकुशल की सप्तम शताब्दी सिवाणा मे स २०४०

सिवाणा म ही दादा गुरुदेवश्री जिनकुशलसूरि का सप्तम जन्म शताब्दी समारोह मनाने का निर्णय हो चुका था। साथ ही अञ्जनशलाका सहित प्रभु गुरुदेव की प्रतिष्ठा समारोह भी विराट आयोजन

के साथ २० मई ८३ को मनाना निश्चित किया जा चुका था। इसी शुभ अवसर पर पू० श्रीचम्पाश्री जी म० सा० का शतायु अभिनन्दन तथा ६ कुमारी बालिकाओ का दीक्षा समारोह भी था।

इन्ही बालिकाओ मे से २ बालिका (कुमारी नीता ललवानी व निशा छाजेड) पिछले डेढ-दो साल से पूज्या गुरुवर्याश्री की निश्रा मे रहकर धार्मिक अध्ययन कर रही थी, उनके परिवारीजनो ने भी गुरुवर्या के पास दीक्षा दिलाने की अनुमति प्रदान कर दी थी।

वैरागिनो के परिवारीजनो तथा सिवाणा सघ की इच्छानुसार खरतरगच्छ के सभी साधु-साध्वियो को इस शुभ अवसर पर सम्मिलित होने के आमन्त्रित किया गया। हम भी आमन्त्रित थे।

प्रथम फाल्गुन शुक्ला मे हमने फलोदी से विहार किया और क्षेत्रावा के प्राचीन मन्दिर के दर्शन करके शेरगढ पहुँचे। वहाँ जैनो के ६० घर हैं तथा बाजार मे बीचोंबीच शिखरबद्ध मन्दिर है। दो दिन रुकने का विचार था पर अधिक दिन रुकना पड़ा।

मन्दिर के परिसर मे बनी धर्मशाला मे प्रतिदिन व्याख्यान होते, रात्रि को कहानियाँ कहने का प्रारम्भ हो गया। बडी सख्या मे जैन-अजैनो की उपस्थिति होती। लोगो की रुचि देखकर सामूहिक आयंबिल, शखेश्वरजी के तेले व सामूहिक एकासने आदि कर लिये। लोगो का उत्साह बराबर बढने लगा।

होली का पर्व निकट था। लोगो का आग्रह मानकर वही रुक गये और होली के बाद ही विहार करने का निश्चय किया।

गुरुवर्याजी के प्रवचनों से लोग बहुत प्रभावित हुए। कई अजैनो ने अभक्ष्यभक्षण का त्याग कर दिया। एक मोची परिवार ने तो परम्परा से चली आ रही हिंसावृत्ति का सर्वथा त्याग कर दिया। उसी परिवार की सदस्या मोहिनीबाई ने तो पूर्णत जैनधर्म स्वीकार कर लिया। उसने पूर्णत. जमीकन्द त्याग दिया। प्रतिदिन नवकारसी करना, नवकार मत्र की माला फेरना, चातुर्मास मे चौविहार करना, पर्वतिथि को उपवास-पौषध करना—उसका नियम बन गया। इसके इस आचरण से सभी प्रभावित हुए।

होली के पश्चात् विहार किया। विहार मे शेरगढ के कई व्यक्ति साथ थे। मार्गस्थ छोटे-छोटे ग्रामो मे धर्म-जागरणा करते हुए हम सब पचपदरा पहुँचे। वहाँ के लोगो के अत्यधिक आग्रह से शाश्वत ओली पर्व की वही आराधना की। तत्पश्चात् सिवाणा की ओर विहार किया। ४-५ दिन मे सिवाणा पहुँच गये।

वहा लोग बडी उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे थे। प्रवेश में काफी लोग साथ थे।

श्रद्धेय आचार्य श्री कातिसागरजी म० सा० वहाँ पहले ही पधार गये थे।

सभी की निश्रा मे वैराग्यवती बहनो का डोरा बन्धन हुआ।

अजनशलाका प्रतिष्ठा निमित्त प्रभु का पंच कल्याणक महोत्सव बडे धूमधाम से चल रहा था। सभी उत्साहित थे। वैराग्यवती बहिनो का जुलूस और वर्षीदान देखकर तो लोग अत्यधिक प्रभावित हुए।

कुमारी नीता-निशा की दीक्षा : सं० २०४०

वैराग्यवती बहनो की दीक्षा वैशाख शुक्ला ६ (१८ मई १९८३) को पू० आचार्य प्रवर उदयसागरजी म०सा०, आचार्य प्रवर कातिसागरजी म. सा आदि मुनिवृन्दो एव समुदायाध्यक्षा श्रीचम्पाश्रीजी म. सा., पू० प्रवर्तिनी सज्जनश्रीजी म सा. आदि की निश्रा मे धूम-धाम से सानन्द सम्पन्न हुई।

प्रवर्तिनी पद समारोह—जोधपुर वि स २०३६ मगसरवदि ६ पूज्य सज्जनश्री जी म को प्रवर्तिनी पद मत्र प्रदान कर आशीर्वाद देते हुए आचार्य श्री जिनकान्तिसागरसूरी जी म पार्श्वस्थित श्री मणिप्रभसागर जी म

२० मई को सप्तम शताब्दी समारोह भी सम्पन्न हो गया। (सम्बन्धित विस्तृत जानकारी शताब्दी स्मारिका मे आलेखित है)।

सिवाणा सघ की समुचित व्यवस्था सराहनीय तथा प्रशसनीय रही। शासन की बहुत प्रभावना हुई।

कु नीता लालवानी और निशा छाजेड के दीक्षोपरात नाम क्रमश शीलगुणाजी और सौम्य गुणाजी दिये गये तथा ये दोनो पू० गुरुवर्या की शिष्याएँ घोषित हुई।

महोत्सव के अवसर पर शेरगढ से भी एक बस आई थी। इनके अत्यधिक आग्रह पर चातुर्मास की स्वीकृति देकर प्रियदशनाजी आदि ठाणा ४ को शेरगढ की ओर चातुर्मासाय प्रस्थान करवाया गया और पू० प्रवर्तिनी सज्जनश्रीजी म सा नूतन दीक्षिताओ सहित ६ ठाणा मिठोडावास की विनती को स्वीकार करके भसाली भवन मे चातुर्मासाथ विराजी।

मिठोडावास—सिवाणा चातुर्मास स २०४०

इस चातुर्मास म तप त्याग प्रत्याख्यान खूब हुए। चातुर्मास सफल रहा।

जयपुर सघ का जयपुर चातुर्मास के लिए आग्रह शताब्दी समारोह से पहले से ही चल रहा था लेकिन चातुर्मास के बाद तो वे लोग आकर जम ही गये। इच्छा न होते हुए भी स्वीकृति देनी ही पडी।

बागरेचा परिवार द्वारा मेन रोड नवनिर्मित भव्य, विशाल चौमुख मन्दिर की प्रतिष्ठा करवा कर वहा से विहार करके नाकोडा के दशन करते हुए जोधपुर पहुँचे। जोधपुरवालो ने भी चातुर्मास का आग्रह किया। सत्य स्थिति बतानी पडी। उन्होंने जयपुर वाला को पत्र डाला तो वे लोग आ गये। उन्होंने जोधपुर चातुर्मास के लिए हा भरवानी चाही पर उनके सभी प्रयास विफल हुए। आखिर जोधपुर से हम लोगो को जयपुर की ओर विहार करवा के ही गये।

हम लोग कापरडा, बिलाडा की यात्रा करते हुए ब्यावर पहुँचने ही वाले थे कि पू शशिप्रभाजी को पागल कुत्ते ने काट लिया। ब्यावर पहुँचकर श्रावको की सहमति से पेट मे १४ इन्जेक्शन लगवाने पडे। शाश्वत ओली की आराधना ब्यावर मे ही की।

वैशाख मे विहार करते हुए अजमेर गुरुदेव के दशन करके शहर मे पहुँचे। पूज्याश्री का रक्त-चाप बढ जाने से यहा २-३ दिन रुकना पडा। वहा से विहार कर वैशाख शुक्ला १० के दिन जयपुर की सीमा मे प्रवेश किया।

जयपुर सघ के लोगा को खूब उत्साह था अत अपनी गुरुवर्याश्री की आगवानी के लिए सागानेरी गेट पर इकट्ठे हो गये। जयपुर के प्रसिद्ध जियावण्ड और वीर बालिका स्कूल के बालिका बण्ड के साथ शान से जयपुर मे प्रवेश किया। प्रसिद्ध गायक लक्ष्मीचन्द जी भसाली के गायन की मधुर स्वर लहरी की सबने प्रशसा की। सैकडो व्यक्तियो के जुलूस के साथ पचायती मन्दिर के दशन करते हुए विचक्षण भवन पहुँचे। वहाँ नववधुओ ने विभिन्न प्रकार की गहुँलिया से आपका स्वागत किया। जयपुर के कई प्रसिद्ध श्रावको—हीराचन्दजी सा बद, महतावचन्दजी सा गोलेच्छा, उत्तमचन्दजी सा बडेर आदि ने आपके तेजस्वी व्यक्तित्व के गुणग्राम किये पश्चात् आपश्री ने ओजस्वी प्रवचन दिया, अन्त मे मागलिक फरमाई।

जयपुर चातुर्मास स २०४१

चातुर्मास म गुरुवर्याश्री न 'आचाराग सूत्र' की व्याख्या फरमाई। चार महीने तक प्रवचन

होते रहे । भावनाधिकार मे नरवर्म चरित्र का आख्यान किया । त्याग, तपस्या, नियम, प्रत्याख्यान अठाई और मासक्षमण भी हुए ।

चातुर्मास सपन्न कर दादावाडी पहुँचे, वहाँ विराजे ।

दस दिवसीय आध्यात्मिक शिक्षण शिविर

खरतरगच्छ संघ की ओर से पू० प्रवर्तिनीजी की निश्रा में जून १९८५ मे दस दिवसीय आध्यात्मिक शिक्षण शिविर का आयोजन किया गया जिसका सचालन विद्वद्वर श्री कुमारपालभाई ने किया एवं श्री ज्योतिकुमारजी व कमलकुमारजी का पूर्ण सहयोग रहा । लगभग २०० विद्यार्थी थे । सम्पूर्ण व्यवस्था बडी ही सुन्दर थी ।

जयपुर चातुर्मास : सं० २०४२

गुरुवर्याश्री का यह चातुर्मास भी सघ के अत्याग्रह से जयपुर में हुआ ।

किन्तु प्रियदर्शनाजी आदि को वालोतरा भेज दिया और सम्यग्दर्शनाजी ठाणा ३ को जीवाणा । इसका कारण यह था कि जीवाणा निवासी श्री हस्तीमलजी वागरेचा की सुपुत्री भँवरी वागरेचा गुरुवर्याश्री की निश्रा मे रहकर पिछले दो वर्षो से धार्मिक अध्ययन कर रही थी और उसकी दीक्षा की आज्ञा भी उसके परिवारीजनो से मिल चुकी थी । अत चातुर्मास के वाद तुरन्त उसकी दीक्षा होना निश्चित हो गया था । इसीलिए वालोतरा और जीवाणा की ओर विहार करवाया गया था ।

जयपुर में गुरुवर्याश्री का चातुर्मास शानदार ढग से शुरू हुआ । आपने आचारांग सूत्र के प्रथम अध्ययन शस्त्र परिज्ञा की सारगर्भित विवेचना श्रोताओ को सुनाई ।

त्याग-तपस्या आदि से चातुर्मास सफल रहा ।

जीवाणा में प्रथम वार ही दीक्षा हो रही थी । हम लोगो ने वालोतरा चातुर्मास पूर्ण करके सिवाणा में पू० आचार्यश्री के दर्शन कर तथा पू० चम्पाश्री जी के दर्शन किये और दीक्षा के अवसर पर अपनी शिष्याओं को भेजने का आग्रह करके कच्चे रास्ते से जीवाणा के लिए रवाना हो गये ।

आचार्यश्री का स्वर्गगमन

आचार्यश्री ने भी मिगसिर वदी ४ को सिवाणा से जीवाणा की ओर विहार कर दिया । मोकलसर, रमणिया होकर जैसे ही गुरुदेव माडवला पहुँचे कि उनका स्वास्थ्य अस्वस्थ हो गया, शरीर काँपने लगा, बुखार चढने लगा । धूजनी इतनी अधिक थी कि १० कम्बली ओढाने पर भी कम्पन वन्द नही हुआ । गाँव छोटा होने से कोई वडा डॉक्टर नही था । सामान्य कम्पाउण्डर था, उसे ही वुलाया गया, उसने इजैक्शन लगाया, कुछ राहत मालूम हुई । रात्रि को नीद आ गई ।

दूसरे दिन ९ बजे तवियत फिर विगडने लगी । जालोर से वड़े डॉक्टर को बुलाने गये । डॉक्टर आता इससे पहले ही नवकार का उच्चारण करते हुए आचार्यश्री ने इस नश्वर देह का त्याग कर दिया ।

इस अनहोनी से सभी विस्मित हो गये, शोक में डूब गये । तार-टेलीफोन से समाचार पाते ही श्रद्धालुजनो की भीड उमड पड़ी । सभी के नेत्र आँसुओ से भरे थे ।

अग्नि सस्कार की वोलियाँ १४ लाख रुपये की हुई और उसी स्थान पर विशाल गुरु मन्दिर निर्माण करवाने का निर्णय सर्व सघ ने ले लिया । कार्य निर्माणाधीन है ।

इस अप्रत्याशित घटना से भँवरी बागरेचा की दीक्षा सन्देहास्पद बन गई। सभी संशयसागर में गोते खाने लगे। लेकिन पू० प्रवर मणिप्रभसागरजी म० सा० ने सिर्फ दो शब्द कहे—'दीक्षा होगी' और जीवाणा संघ का सन्देह दूर कर दिया।

श्रद्धेय गुरुदेव मणिप्रभसागर की निश्रा में भँवरी बागरेचा की दीक्षा सम्पन्न हुई, इन्हें कनकप्रभाजी नाम दिया गया और पू० गुरुवर्याश्री की शिष्या घोषित की गई।

सम्यग्दर्शनाश्री जी आदि ३ तो दीक्षा के पश्चात जयपुर की ओर विहार कर गये और प्रियदर्शनाश्री जी तत्वदर्शनाश्री जी, शुभदर्शनाजी नूतन दीक्षिता कनकप्रभाजी की बड़ी दीक्षा कराने हेतु पू० श्री कैलाशसागरजी म० सा० के पास गये। बड़ी दीक्षा के बाद वे भी जयपुर पहुँचे।

सं० २०४७ के गुरुवर्याश्री के चातुर्मास में ही पूज्याश्री जैन कोकिला श्री विचक्षण म० सा० के अग्नि संस्कार स्थल (गलता रोड मोहनवाडी) विशाल समाधि स्थल पर मूर्ति स्थापित करने के निमित्त विराट समारोह का निर्णय खरतरगच्छ संघ ले चुका था। मूर्ति स्थापना समारोह की तिथि फाल्गुन शुक्ला ३ निर्णीत हुई थी।

प्रधान सा० पू० अविचलश्री जी म० सा० आदि पू० श्री चन्द्रप्रभाश्री जी म० सा० आदि तथा पू० श्री मणिप्रभाश्री जी म० सा० आदि सभी पधार गये थे। पू० प्रवर्तिनीजी वहाँ विराजमान थीं ही। बड़ी धूमधाम से फाल्गुन शुक्ला ३ के दिन सभी की निश्रा में विचक्षण मूर्ति स्थापना समारोह सानन्द सम्पन्न हुआ।

समारोह के बाद ही चातुर्मास की विनतियाँ आने लगीं। जोधपुर संघ का अत्याग्रह था किन्तु पू० श्री मणिप्रभाश्री जी की इच्छा पूज्या प्रवर्तिनीजी के साथ जयपुर चातुर्मास करने की थी। अतः पू० श्री सुरञ्जनाश्री जी म० सा०, मुदितप्रज्ञाश्री जी व सिद्धांजनाश्री जी का जोधपुर चातुर्मास निश्चित किया गया और सम्यग्दर्शनाश्री जी, विद्युतप्रभाश्री जी आदि ठाणा ५ का दिल्ली।

वैशाख में पू० श्री मणिप्रभाश्री जी म० सा० एवं पू० श्री शशिप्रभाश्री जी म० सा० आदि ठाणा ११ श्री जिनकुशल गुरुदेव के चमत्कारी स्थान मालपुरा के दर्शनार्थ गये।

प्रियदर्शनाजी ने व विद्युतप्रभाश्री जी ने अक्षय तृतीया से वर्षीतप प्रारम्भ किया।

पू० मणिप्रभाश्रीजी म० सा०, सौम्यगुणाश्रीजी एवं मृदुलाजी तीन ठाणा ने ज्येष्ठ मास में देवलिया की ओर विहार किया, क्योंकि वहाँ प्रतिष्ठा करवानी थी।

पू० श्री शशिप्रभाश्री जी म० सा० आदि तीन माडोली यात्रा हेतु प्रस्थान कर गये। सम्यग्दर्शना जी आदि ठाणा ५ पुनः जयपुर आ गये।

आषाढ़ वदी ४ को सम्यग्दर्शनाजी आदि ठाणा ५ को दिल्ली चातुर्मास हेतु प्रस्थान करवाया। आषाढ़ शुक्ला ३ को पू० प्रवर्तिनीजी, पू० श्री अविचलश्री जी म० सा० और प्रियदर्शनाश्री जी तीनों दादाबाड़ी आये। दूसरे दिन देवलिया प्रतिष्ठा कर पू० मणिप्रभाश्री जी म० सा० आदि पधार रहे थे तो गुरुवर्याश्री उन्हें लिवाने के लिए नीचे उतर कर पधारीं। मणिप्रभाश्री जी ने कहा—महाराज साहिबा! मैं तो आपसे बहुत छोटी हूँ और आप मुझे लेने नीचे तक पधारी हैं। तब आपने फरमाया—यह आप लोगों का नहीं श्रामण्य का विनय है।

कितनी विनम्रता है पूज्या प्रवर्तिनी जी म० सा० में!

उसी दिन स्वस्थ चित्त से आप स्थण्डिल पधारीं। प्रियदर्शनाश्री जी साथ ही थीं। छोटी सा

अनमने भाव से बोली—आज तो मेरे बाँये अग मे कुछ शून्यता-सी महसूस हो रही है, सिर भारी हो रहा है, जीभ लडखड़ा रही है, कही हैमरेज या पक्षाघात न हो जाय ।

प्रियदर्शनाजी घबडा गई । तुरन्त पू० मणिप्रभाश्री जी को बुलाया । उन्होंने स्थिति देखते ही श्रावको से कहा । गाड़ियाँ दौड़ गई । १५-१७ मिनट मे डॉक्टर साहब पधार गये । बोली—बी० पी० बहुत हाई हो गया है, नापा तो २४० । उसी क्षण अर्कामाइन तथा अन्य इंजेक्शन मिक्स करके लगाया । Tab. और Capsule भी दिये । हमे ध्यान रखने के लिए सावधान किया । सारी रात पूज्याश्री को बेचैनी रही और हम लोगो को चिन्ता ।

पू० श्री शशिप्रभाजी म० सा० आदि माडोली, सिवाणा, नाकोड़ा आदि की यात्रा करके दादा-वाड़ी पहुँचे । देखते ही घबड़ा गई, आँखो से सावन-भादो बरसने लगा ।

पू० श्री शशिप्रभाजी म० सा० ५ वर्ष की आयु मे ही गुरुवर्याश्री के पास आ गई थी और उन्हे गुरुवर्याश्री से मा से भी बढकर वात्सल्य प्राप्त हुआ व हो रहा है ।

शारीरिक अस्वस्थता के कारण पूज्या प्रवर्तिनीजी ५ वर्ष से जयपुर में ठाणापति के रूप मे विराज रही हैं, और पू० श्री शशिप्रभाजी उनकी सेवा मे सलग्न हैं । हम सब चातुर्मास तथा अन्य दिनो मे भी इधर-उधर जाते रहते है, लेकिन पू० शशिप्रभाजी म० तो गुरुवर्या के साथ ही छायावत् रहती हैं । उन्होने अपना जीवन गुरुवर्या के चरणो मे समर्पित कर दिया है ।

जयपुर चातुर्मास · सं. २०४३

औषधोपचार से गुरुवर्या के स्वास्थ्य मे सुधार तो था पर स्थिति ऐसी नहीं थी कि २ किलो-मीटर की यात्रा करके जयपुर पधार जाएँ । पू० प्रधान सा०, पू० मणिप्रभाजी म० सा० आदि का चातु-र्मासार्थ जयपुर शहर में प्रवेश हो चुका था ।

गुरुवर्याश्री भी किसी प्रकार श्रावण शुक्ला ३ तक शहर मे पधार गई । कारण यह था कि पू० निर्मलाश्री म० सा० के २१ उपवास तथा बालसाध्वी सौम्यगुणाजी एवं कनकप्रभाजी के अठाई की पूर्णाहुति श्रावण शुक्ला ५ को होनी थी ।

गुरुवर्याश्री निश्रा मे सभी कार्यक्रम सानन्द सम्पन्न हुए ।

चातुर्मास के बाद सदा की भाँति दादावाड़ी आ गये । पू० श्री मणिप्रभाश्रीजी म० सा० आदि विहार करके दिल्ली पधार गये और पौष सुदी ११ को सम्यग्दर्शनाजी आदि ठाणा ४ दिल्ली से विहार करके जयपुर आ गये ।

पू० गुरुवर्याश्री श्रीमद् देवचन्द्र चौबीसी (स्वोपज्ञ बालावबोध) के अर्थ का कार्य नियमित रूप से कर रही थी.... ...

भयकर रोग का आक्रमण

२३ दिसम्बर ! मध्यान्ह १ बजे आपश्री स्थण्डिल पधारी तो देखा दस्त का एकदम काला (Black) कलर । चिन्ता हुई । मैंने पूछा तो आपश्री ने फरमा दिया—वैद्य की दवा ले रही हूँ, उसका असर होगा । थोडी देर के पश्चात् पूज्याश्री ने कहा, मुझे कुछ कमजोरी महसूस हो रही है, लिखने मे भी तकलीफ होती है । खैर, लेटकर ही लिखती हूँ । कुछ समय तक लिखा, किन्तु चैन नही था, बेचैनी हो रही थी ।

३ बजे पुन. स्थण्डिल-पधारी तो वही कलर दस्त का और ४ बजे पुन पधारने पर भी वही बात । साध्वी शशिप्रभाजी ने डॉ सौगानीजी को बुलवाया । डॉक्टर साहब ने आते ही नई दवा लिखी

तथा स्टूल, यूरीन आदि के टेस्ट लिये। दस्त को देखा तो खून। उसे भी टेस्ट के लिए भिजवा दिया। उसी वक्त नर्स आई। उसने ब्लड लिया। यूरीन के लिए जैसे ही आप उठी कि इतनी जोर से चक्कर आये कि आँखें ही ढेर दी। हम पास खड़े थे, संभाल लिया। उसी क्षण बड़े जोर की खून की उल्टी हुई। दो-तीन मिनट बाद चेतना लौटी। हम लोग खड़े ही थे। कुछ शान्ति हुई। किन्तु कुछ समय बाद ही खून की ३ ४ दस्तें। कुछ देर बाद खून की उल्टी और वही स्थिति। हम लोग घबड़ा गये। पुन सौगानी साहब को बुलवाया।

इस बीच जयपुर के २०० २५० व्यक्ति इकट्ठे हो गये। गुरुवर्या की इस दशा से सभी चिन्तित थे।

सौगानी सा० ने गुरुवर्या की स्थिति देखकर श्री शशिप्रभाजी से कहा—दशा बहुत चिन्ता जनक है। ब्लड की बहुत कमी हो गई है। ७५ प्रतिशत ब्लड जा चुका है। तुरन्त हॉस्पीटल ले चलिए। ब्लड चढ़ाना बहुत जरूरी है।

शशिप्रभाश्रीजी ने डॉक्टर साहब से कहा—इस विषय में मैं निर्णय नहीं ले सकती। क्योंकि गुरुवर्याश्री सदा हॉस्पीटल ले जाने के बारे में हम सावधान करती रही हैं कि 'मुझे हास्पिटल न ले जाया जाय' फिर भी मैं उनसे पूछकर आपको बताये देती हूँ।

श्री शशिप्रभाजी ने और श्रावकों ने भी गुरुवर्या को बहुत कहा पर उन्होंने एक ही जवाब दे दिया—मैं ठीक हूँ, आप लोग घबड़ाओ मत। मेरा कुछ नहीं बिगड़ने वाला है। मेरी स्थिति बहुत गम्भीर नहीं है।

निराश होकर डाक्टर ने कहा—जब महाराज साहब मान ही नहीं रही हैं तो मैं क्या कर सकता हूँ? अब तो बस, आपका भाग्य ही है। रात निकल जाय तो बहुत समझो। और डाक्टर साहब चले गये।

रात निकली। सुबह हुई। डाक्टर सौगानी पुन आये। रिपोर्ट देखी तो बोले—आपके ब्लड में हिमोग्लोबिन सिर्फ ४ रह गया अतः ब्लड चढ़वाना ही होगा।

गुरुवर्याश्री ने शान्त भाव से फरमाया—डॉक्टर साहब! मैं केवल ४५ दिन का अवकाश चाहती हूँ। चारगढ्ढ ग्रंथि की प्रेक्षा करूँगी। मुझे विश्वास है ब्लड की क्षतिपूर्ति हो जायेगी।

डॉक्टर साहब क्या कहते चले गये। ४५ दिन बाद पुनः ब्लड टेस्ट हुआ। रिपोर्ट पढ़कर चकित रह गये। हिमोग्लोबिन पूरा ७ था।

डॉ० साहब श्रद्धा से विनत होकर बोले—मेरे लिये यह चमत्कार ही है—डाक्टरी इतिहास में इतनी जल्दी ब्लड कवर हो जाना।

और हम सब भी श्रद्धा से भर उठे—धन्य साधना, धन्य त्याग साधना, धन्य क्षमता तितिक्षा परीषह विजय और समता। इस उम्र में और इतनी बीमारी में भी ऐसी उच्चकोटि की साधना है गुरुवर्याश्री की।

आपकी स्वयं की साधना और डॉ सौगानी के औषधोपचार से पुन पहले जैसी स्थिति हो गयी।

इधर पू० मणिप्रभसागरजी म सा आदि पू गुरुवर्याश्री का स्वास्थ्य देखने हेतु जयपुर पधारे हुए थे। ३ दिन बाद ही वे पधार गये। ५-७ दिन जयपुर रहे। पूज्या प्रवर्तिनीश्री के प्रति आपश्री का सदा से मातृवत् भाव है।

कुछ दिन बाद पू. मणिप्रभाश्रीजी आदि भी दिल्ली से जयपुर पधार गये।

प्रियदर्शनाजी म. व विद्युत्प्रभाजी म का वर्षीतप चल रहा था जिसका पारणा अक्षय तृतीया को होना था। श्रीमान माणिकचन्दजी गोलेच्छा एव उनकी धर्मपत्नी भवरीबाई आदि के भी वर्षीतप का पारणा था। पारणे का सपूर्ण कार्यक्रम मोहनबाडी (जहाँ मन्दिर मे मूल नायक आदिनाथ के चरण है—समोसरण) मे पू प्रधान सा. श्री अविचलश्रीजी म सा व पू. प्रवर्तिनी महोदया आदि की निश्रा मे धूमधाम से सानन्द सम्पन्न हुआ।

पूज्या गुरुवर्या श्री (सज्जनश्रीजी म. सा) प्रवर्तिनी महोदया का विहार का विचार तो पक्षाघात के उपरान्त छूट ही गया है। शीतऋतु मे मोती डूगरी रोड स्थित दादाबाडी मे धीरे-धीरे पधार जाती हैं। अब आपश्री का यही क्रम चल रहा है।

सं. २०४४ के जयपुर चातुर्मास मे अस्वस्थता के कारण व्याख्यान का भार भी पू. शशिप्रभाजी म. सा को सौप दिया। दो वर्ष से यह जिम्मेदारी पू. शशिप्रभाजी ही निभाती आ रही हैं।

इस (स २०४४ के) चातुर्मास के पर्युषण मे पू. महाराजश्री की सद्प्रेरणा से शिवजीराम भवन के नवनिर्माण हेतु श्रीमान् ताराचन्दजी सचेती ने ५ लाख रुपये देने की स्वीकृति दी। अत. खरतरगच्छ सघ के मन्त्री श्री उत्तमचन्दजी वढेर की देख-रेख मे निर्माण कार्य सुचारु रूप से चल रहा है। ऊपर-नीचे १०-१२ कमरे बन गये है, जिससे यात्रियों और आने-जाने वालो को सुविधा हो गयी है। और भोजनशाला आदि मे भी काफी परिवर्तन हो गया है।

स २०४५ के जयपुर चातुर्मास मे श्री कनकप्रभाजी ने मासक्षमण तप की आराधना गुरुवर्याश्री की निश्रा मे की। इतनी छोटी आयु ऐसा तप करना आश्चर्यकारी रहा। पू. प्रधान सा श्री अविचलश्री जी म सा एव पू. प्रवर्तिनी म सा की निश्रा मे तपस्विनी का अभिनन्दन आदि सभी कार्यक्रम सानन्द सम्पन्न हुए।

पूज्या गुरुवर्या प्रवर्तिनी सज्जनश्रीजी अब ठाणापति रूप मे जयपुर विराजित है। वर्तमान समय मे आपश्री जप-ध्यान-स्वाध्याय आदि मे अत्यधिक रुचि ले रही हैं। आपका मानना है कि स्वाध्याय वह अमृत है जिसका पान करके मानव अमर हो सकता है। उत्तराध्ययन सूत्र मे भी भगवान महावीर ने स्वाध्याय को ज्ञानावरणीय कर्म के क्षय का कारण बताया है।

आगम मर्मज्ञा तो आप हैं ही। आचाराग सूत्र का स्वाध्याय चल रहा है। यद्यपि इस सूत्र को आप अनेक बार पढ चुकी है, फिर भी भगवान की वाणी को जितनी भी बार पढ़ो बुद्धि के नये-नये उन्मेष खुलते हैं, नये-नये रहस्य प्रगट होते है, स्फुरणा जागती है और हृदय आनन्द विभोर हो जाता है, रस-मग्न हो जाता है। ऐसा ही आपके साथ हो रहा है।

ज्ञातासूत्र, प्रज्ञापना, अध्यात्म प्रबोधसूत्र, ओघ निर्युक्ति, व्यवहारसूत्र, बृहकल्पसूत्र, निरयावलिया आदि चारसूत्र, सुरसुन्दरीचरिय, रयणचूडचरिय, भीमसेन हरिषेण, रायप्पसेणीय सुत्त आदि कितने सूत्रो का आप स्वाध्याय कर चुकी है और पारायण करती ही रहती है।

साध्वी मण्डल को भी स्वाध्याय की प्रेरणा देती रहती हैं। उन्हे वांचना भी देती है। शकाओ और जिज्ञासाओ के शास्त्रसम्मत समाधान भी देती है। बार-बार पूछने पर भी न कोई झुझलाहट, न कोई ऊब। अन्य गच्छो की साध्वियो को भी सूत्रो के भाव बिना भेदभाव बताये है।

इस (लगभग ८१ वर्ष की आयु) उम्र में भी इतना उत्साह और ऐसी अप्रमत्तता, अन्यत्र दुर्लभ है। समताभाव इतना कि इतने उच्चपद पर प्रतिष्ठित हैं, फिर भी गर्व का नामोनिशान भी नहीं, साध्वी वृन्द को कभी आदेश की भाषा नहीं। अपने कार्य को स्वयं ही कर लेती हैं किसी को कहती तक नहीं।

वस्तुतः आपका जीवन खरा कंचन है। स्वाध्याय-तप ध्यान संयम आदि की कसौटी पर कसा हुआ खरा सोलहवानी सुवर्ण है। संयम की महक भावना चन्दन की सुवास से भी अधिक सुरभित है। आपका जीवन, संयमचर्या संसारसमुद्र में डूबते प्राणियों के लिए दीपस्तम्भ के समान पथ प्रदर्शित करने वाला है।

ऐसी पूज्या, निर्मलचरित्रा सद्गुरुवर्याश्री सज्जनश्रीजी म. सा. के अभिनन्दन का निर्णय जयपुर खरतरगच्छ संघ ने २० मई ८९ (वैशाखी पूर्णिमा) के दिन करना स्वीकार किया है। इस अवसर पर श्रीपुखराजजी लूनिया की इच्छा को साकार रूप देते हुए अभिनन्दन ग्रन्थ भी आपश्री को समर्पित किया जायेगा। जिसका नाम होगा 'श्रमणी श्री सज्जनश्री म. सा. अभिनन्दन ग्रन्थ'। यह खरतरगच्छ संघ का प्रथम अभिनन्दन ग्रन्थ होगा।

पूज्य प्रवर मणिप्रभसागरजी म. सा. ने भी इस ग्रन्थ में प्रकाशन हेतु हमें प्रेरणा के साथ ही सहयोग भी दिया। श्रीचन्दजी सुराना सरस का भी हार्दिक सहयोग मुद्रण-व्यवस्था आदि में सराहनीय एवं प्रशंसनीय योगदान रहा। आप जैन समाज के प्रसिद्ध विद्वान हैं ग्रन्थ के सम्पादन में भी उन्होंने सहयोग किया है जिसके लिए हम उनके आभारी हैं।

पू. प्रवर्तिनी महोदया का अभिनन्दन इसी अवसर पर अखिल भारतीय खरतरगच्छ संघ की ओर से समता रोड स्थित मोहनवाड़ी, विचक्षण भवन में होगा। साथ ही विविध तपोपलक्ष्य में सामूहिक उद्यापन (उजमणा) प्रतिष्ठा आदि के कार्यक्रम आदि भी हो रहे हैं।

वस्तुतः जयपुर धर्मनगरी है। खरतरगच्छ के १०० वर्ष के इतिहास में कभी उपाश्रय खाली नहीं रहे साध्वीजी म० आते ही रहे, विराजित भी रहे। चातुर्मास भी होते रहे।

श्रावकों में भी धर्म का उत्साह अत्यधिक है। अठाई आदि तपस्याएँ होती ही रहती हैं। ज्ञान की सुरसरि भी सदानीरा पयस्विनी की भाँति प्रवाहित रहती है।

इन्हीं सब बातों से जयपुर नगरी भाग्यशाली है।

पूज्याश्री भी यहीं विराजित हैं। आपका जीवन मणि की भाँति धर्म का प्रकाश बिखेरता रहे। युग-युग तक आलोक देता रहे।

इन्हीं शुभ भावनाओं के साथ।

○ ○

सज्जन वाणी

१. उपासना से भावना का, साधना से चारित्र का, आराधना से विचार-भावना का परिष्कार और विकास होता है।
२. सच्ची सेवा समाज का धन से उपकार करना या उसे धन में लाना ही है अर्थात् दुराचरण व्यसन आदि से रोककर उनके आचार में सदाचरण की भावना दृढ़ कर देना ही वास्तविक सेवा है।
३. जीवन में सच्ची सात्विकता और विकास निहित होती है वही मानव धन्य और पूज्य बनता है।

प्रवर्तिनीश्री सज्जनश्रीजी म. सा. के यशस्वी चातुर्मास

प्रवर्तिनीश्री सज्जनश्रीजी ने अपने अब तक के ४८ वर्षीय साधना काल में कुल ४७ चातुर्मास किये है जिनमे से २९ तो जयपुर शहर मे ही सम्पन्न हुए हैं। इनमे से दस तो लगातार १९५८ से १९६७ तक ही हुए है। इसका मुख्य कारण गुरुसेवा की भावना रही है। इतना होने पर भी उनका किसी स्थान विशेष से कोई लगाव नही है। निरपेक्ष भाव से जहाँ भी चातुर्मास हो जाता है, वे कर लेती है। जयपुर मे उनके इतने चातुर्मास हो जाना संयोग मात्र ही है, यद्यपि वह उनकी जन्मभूमि होने के साथ दीक्षा भूमि भी है।

उन्होने सात चातुर्मास राजस्थान के बाहर किये हैं जो पूर्व में कलकत्ता से लेकर पश्चिम में जामनगर तक हुए हैं। राजस्थान से बाहर उनका प्रथम चातुर्मास भारत की राजधानी दिल्ली मे सन् १९७० मे हुआ था। उससे अगला चातुर्मास उत्तरप्रदेश की राजधानी लखनऊ मे और तीसरा पश्चिमी बंगाल की राजधानी कलकत्ता में सम्पन्न हुआ। यू कलकत्ता में उनके दो चातुर्मास हो चुके हैं।

उन्हे कलकत्ता के तुरन्त बाद ही तीर्थंकर महावीर के निर्वाण से पावन और धन्य बनी पावापुरी मे १९७४ मे चातुर्मास करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। पावापुरी चातुर्मास के दो वर्ष बाद उन्हे मन्दिरो की नगरी के नाम से विश्वविख्यात तीर्थराज शत्रुजय की तलहटी मे बसे पालीताणा नगर में चातुर्मास करने का सुयोग प्राप्त हुआ। यह सन् १९७६ की बात है। पदयात्रा करते हुए एक साध्वी का देश के पूर्वी छोर से दो वर्ष के भीतर पश्चिमी छोर तक पहुँच जाना कम महत्व की बात नही है। उनका अगला चातुर्मास सौराष्ट्र के प्रसिद्ध नगर जामनगर मे हुआ। इस तरह राजस्थान के अतिरिक्त उनके चातुर्मास दिल्ली सहित पाँच राज्यो मे सम्पन्न हो चुके है। ये राज्य हैं उत्तरप्रदेश, बिहार, पश्चिमी बगाल और गुजरात।

दिल्ली जाने से पूर्व उन्होने अपनी गुरुवर्या ज्ञानश्रीजी की जन्मभूमि फलोदी (जिला जोधपुर) में १९६९ मे चातुर्मास किया था। फलोदी इस मामले मे सौभाग्यशाली रही। इस महान् साध्वी ने दीक्षित होने के बाद दूसरा चातुर्मास भी फलोदी मे ही किया था। वह सन् १९४३ की बात है। उस समय ज्ञानश्रीजी विद्यमान थीं। दोनो चातुर्मासो मे पूरे २६ वर्ष का अन्तर रहा। यह एक सयोग ही है कि उनकी प्रथम और प्रधान शिष्या शशिप्रभाश्रीजी की जन्मभूमि मे भी यही फलोदी है। फलोदी और कलकत्ता के अतिरिक्त मरुधरा का सिवाना ही एकमात्र ऐसा नगर है जहाँ सज्जनश्रीजी ने दो चातुर्मास किये। यह कैसा विचित्र सयोग है कि जिन चार स्थानो पर उनके एक से अधिक चातुर्मास हुए

उनमें दो जयपुर और कलकत्ता तो बड़े शहर और राज्यों की राजधानियाँ हैं और दो पुराने मारवाड़ की मरुभूमि के प्राचीन नगर। राजस्थान में उनके चातुर्मास उदयपुर संभाग को छोड़कर बाकी सब संभागों में हो चुके हैं।

उनके अब तक के ४७ चातुर्मासों की तालिका प्रस्तुत है —

	स्थान	वि सं	सन्
१	जयपुर	१९९९	१९४२
२	फलोदी	२०००	१९४३
३	जयपुर	२००१	१९४४
४	कोटा	२००२	१९४५
५ से ८	जयपुर	२००३ से २००६	१९४६ से १९४९
९	झुंझुनू	२००७	१९५०
१० से १५	जयपुर	२००८ से २०१३	१९५१ से १९५६
१६	टोंक	२०१४	१९५७
१७ से २६	जयपुर	२०१५ से २०२४	१९५८ से १९६७
२७	बीकानेर	२०२५	१९६८
२८	फलोदी	२०२६	१९६९
२९	दिल्ली	२०२७	१९७०
३०	लखनऊ	२०२८	१९७१
३१	कलकत्ता	२०२९	१९७२
३२	कलकत्ता	२०३०	१९७३
३३	पावापुरी	२०३१	१९७४
३४	जयपुर	२०३२	१९७५
३५	पालीताणा	२०३३	१९७६
३६	जामनगर	२०३४	१९७७
३७	जयपुर	२०३५	१९७८
३८	अजमेर	२०३६	१९७९
३९	सिवाना	२०३७	१९८०
४०	ब्यावर	२०३८	१९८१
४१	जोधपुर	२०३९	१९८२
४२	सिवाना	२०४०	१९८३
४३ से ४७	जयपुर	२०४१ से २०४५	१९८४ से १९८८

अभी आप अस्वस्थता के कारण जयपुर में ही विराजमान हैं।

□□

प्रवर्तिनी सज्जनश्री जी म० का शिष्या परिवार

प्रवर्तिनीश्री सज्जनश्रीजी के शिष्या परिवार मे कुल १२ सदस्याएँ हैं जिनमें शशिप्रभाश्री जी ज्येष्ठ और श्रुतदर्शनाश्री जी कनिष्ठ है।

स्वय के दीक्षित होने के पन्द्रह वर्ष वाद उनकी प्रथम शिष्या शशिप्रभाश्रीजी की व्यावर मे सवत् २०१४ मे दीक्षा हुई थी। यह कैसा सयोग है कि उनकी गुरुवर्याजी फलोदी मे ही जन्मी थी और फलोदी ने ही उन्हे प्रथम शिष्या प्रदान की।

शशिप्रभाश्रीजी के दीक्षित होने के एक दशक वाद जयपुर मे प्रियदर्शनाश्रीजी की दीक्षा हुई। उसके तीन वर्ष वाद जयश्रीजी ने भी जयपुर में ही साध्वी दीक्षा ग्रहण की। यह संवत् २०२६ की वात है। पश्चिम वगाल के रेलवे केन्द्र खड्गपुर ने उन्हे तीन शिष्याएँ प्रदान की। ये तीनो वहनें हैं। इनकी दीक्षा सवत् २०३० मे हुई। ये शिष्याएँ—दिव्यदर्शनाश्रीजी, तत्वदर्शनाश्रीजी और सम्यग्दर्शनाश्रीजी हैं। प्रसिद्ध तीर्थ नाकोडाजी मे दीक्षित होने वाली शिष्या ने शुभदर्शनाश्रीजी का नाम पाया। एक वर्ष वाद संवत् २०३८ मे अजमेर मे मुदितप्रज्ञाश्रीजी के दीक्षा लेने से शिष्या परिवार मे एक और की अभिवृद्धि हुई। जयपुर की तरह सिवाणा ने भी उन्हे दो शिष्याएँ—शीलगुणाश्रीजी व सौम्याश्रीजी दी हैं। जीवाणा मे भी दो दीक्षाएँ हुई—तीन वर्ष के अन्तराल से। ये शिष्याएँ है—कनकप्रभाश्रीजी और श्रुतदर्शनाश्रीजी।

जन्म के हिसाब से जीवाणा (जालोर) ने तीन, फलोदी, गढ सिवाना तथा खड्गपुर ने दो-दो, जयपुर, अरई व अजमेर ने एक-एक शिष्याएँ प्रदान की हैं।

क्रम	सवत्	दीक्षा स्थल	नाम
१	वि स २०१४	व्यावर	शशिप्रभाश्रीजी
२	,, २०२३	जयपुर	प्रियदर्शनाश्रीजी
३	,, २०२६	जयपुर	जयश्रीजी
४	,, २०३०	खडगपुर	दिव्यदर्शनाश्रीजी
५	,, २०३०	खडगपुर	तत्वदर्शनाश्रीजी
६	,, २०३०	खडगपुर	सम्यग्दर्शनाश्रीजी
७	,, २०३७	नाकोड़ाजी	शुभदर्शनाश्रीजी
८	,, २०३८	अजमेर	मुदितप्रज्ञाश्रीजी
९	,, २०४०	गढ सिवाना	शीलगुणाश्रीजी
१०	,, २०४०	गढ सिवाना	सौम्यगुणाश्रीजी
११	,, २०४२	जीवाणा	कनकप्रभाश्रीजी
१२		जीवाणा	श्रुतदर्शनाश्रीजी

प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री जी महाराज शिष्या मण्डली के साथ

संक्षिप्त जीवन वृत्त

१ **शशिप्रभाश्रीजी**—जन्म फलोदी में संवत् २००१ में पिता—ताराचन्दजी, माता—बालादेवीजी, गोत्र—गोलेच्छा, नाम—किरण, १० वर्ष की अल्पायु में दीक्षा, इनकी बुआ पुण्यश्रीजी के पास दीक्षित थी, नाम था उपयोगश्रीजी, दीक्षा—संवत् २०१४ में मिगसर सुदी दूज ब्यावर में पू विज्ञानश्रीजी के सानिध्य में, हिन्दी, संस्कृत का अच्छा अभ्यास, राजस्थान विश्वविद्यालय से जैन दर्शन में आचार्य, तप त्याग में विशेष रुचि, अनुशासनप्रिय व प्रभावी प्रवचनकार।

२ **प्रियदर्शनाश्रीजी**—जन्म—जयपुर में संवत् २००६ पिता—कमलचन्दजी, माता—चन्द्रावतीजी, गोत्र—बाठिया, नाम—किरण, दीक्षा—संवत् २०२३ में अषाढ सुदी ६ को जयपुर में, संस्कृत, हिन्दी तथा अंग्रेजी का अच्छा ज्ञान, साहित्यरत्न परीक्षा उत्तीर्ण, प्रवचनकार।

३ **जयश्रीजी**—जन्म—अरई (जिला अजमेर) में वि स १९९० में, पिता—सगतसिंहजी, माता—धापूबाईजी गोत्र—मेहता, नाम—तेजकवर, दीक्षा—संवत् २०२६ वैशाख वदी १० को आचार्य जिनकांति सागरजी की निश्रा में, जयपुर में, स्वाध्यायशील, तप में विशेष रुचि।

४ **दिव्यदर्शनाश्रीजी**—जन्म—फलोदी में वि संवत् २००८ पिता—भीखमचन्दजी, माता—सुन्दरदेवीजी, गोत्र—कोचर, नाम—निर्मला, दीक्षा—खडगपुर में वि स २०३० मिति माघ सुदी ५ को, अनेक प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों का अर्थ सहित अध्ययन, तप-त्याग में रुचि अध्ययनशील व सेवा भावना अच्छी।

५ **तत्वदर्शनाश्रीजी**—जन्म—खडगपुर में वि स २०१२ में, पिता—भीखमचदजी, माता—सुन्दर देवीजी, गोत्र—कोचर, नाम—हीरामणि दीक्षा—वि० स० २०३० में माघ सुदी ५ (२८ जनवरी १९७३) को खडगपुर में, तप त्याग में रुचि के साथ सेवा भावना।

६ **सम्यग्दर्शनाश्रीजी**—जन्म—खडगपुर में वि० स० २०१६ (२१ फरवरी १९६०), पिता—भीखम चदजी, माता—सुन्दरदेवीजी गोत्र—कोचर, नाम—कमलेश, दीक्षा—खडगपुर में वि० स० २०३० में माघ सुदी ५ (२८ जनवरी १९७३) में, अध्ययनरत व प्रवचनकार।

७ **शुभदर्शनाश्रीजी**—जन्म—जीवाणा (जालोर) में वि० स० २०१६ पिता—हस्तीमलजी माता—मोहरादेवीजी गोत्र—बागरचा नाम—लीला, दीक्षा—वि० स० २०३७ पौष सुदी १० को नाकोडाजी तीर्थ में आचार्य जिनकांतिसागरजी की निश्रा में, अध्ययनरत।

८ **मुक्तिप्रज्ञाश्रीजी**—जन्म—अजमेर में वि० स० २०१४ में पिता—मानमलजी माता—चाँद देवीजी, गोत्र—सुराणा नाम—मंजु, दीक्षा—अजमेर में कलामसागरजी की निश्रा में वि० स० २०३८ वैशाख वदी ६ को शिक्षा—बी ए आगे अध्ययन जारी।

९ **शीलगुणाश्रीजी**—जन्म—गढ सिवाणा (जिला बाडमेर) में वि० स० २०२०, पिता—हेमराजजी माता—सीतादेवीजी, गोत्र—ललवाणी, नाम—नीता, दीक्षा—वि० स० २०४० वैशाख वदी ६ आचार्य जिन उदयसागरजी की निश्रा में, गढ सिवाणा में, अध्ययनरत।

१० **सौम्यगुणाश्रीजी**—जन्म—गढ सिवाना में वि० स २०२७, पिता—केशरीचदजी माता—विमलादेवीजी, गोत्र—छाजेड, नाम—निशा, दीक्षा—२०४० वैशाख वदी ६ को गढ सिवाणा में आचार्य उदयसागरजी की निश्रा में, नाम के अनुरूप सौम्य स्वभाव—अध्ययनरत।

११ कनकप्रभाश्रीश्री—जन्म—जीवाणा (जालोर) में वि० सं० २०२३, पिता—हस्तीमलजी, माता—मोहरादेवीजी, गोत्र—वागरेचा, नाम—भँवरी, दीक्षा—मणिप्रभसागरजी की निश्रा में वि० स० २०४२ मिगसर वदी ३ को, अध्ययनरत।

१२. श्रुतदर्शनाश्रीजी—जन्म—जीवाणा (जालोर) मे वि० सं० २०२३, पिता—खेतमलजी, माता—हस्तुबाईजी, गोत्र—गोलेच्छा, नाम—सुमन, दीक्षा—मणिप्रभसागरजी की निश्रा में वि० सं० आसाढ वदी २ को, अध्ययनरत।

सज्जन भारती—

महावीर—जिन स्तवन

(तर्ज—वेदो का डका आलम मे)

सद्वोधामृत का सिन्धु भरा, वर्द्धमान तुम्हारी वाणी मे।
है वस्तुविषयक विज्ञान खरा, वर्द्धमान तुम्हारी वाणी मे ॥स्थायी॥

स्याद्वाद सुधा की शैली सरल, देती है मिटा विसवाद गरल।
सिद्धान्त अवाधित अटल अचल, वर्द्धमान तुम्हारी वाणी मे ॥१॥

जो है जग की उपकारकरा, दुख दीन प्राणियो का है हरा।
उसी दिव्य दया का सन्देश भरा, वर्द्धमान तुम्हारी वाणी मे ॥२॥

जो सव को शान्ति दिया करती, और मन मे प्रेम भाव भरती।
वही विश्व मैत्री धारा झरती, वर्द्धमान तुम्हारी वाणी मे ॥३॥

जीवन मे ज्योति जागृत कर, जो भर देती गुण अति शुभतर।
है सन्मति का सुखप्रद निर्झर, वर्द्धमान तुम्हारी वाणी मे ॥४॥

ताप त्रय से जो प्राणी तपा, उसको पीयूष की पूत प्रपा।
रहती है भरी निस्सीम कृपा, वर्द्धमान तुम्हारी वाणी में ॥५॥

भरी निवृत्ति पथ की पोषकता, और प्रवृत्ति मार्ग की शोषकता।
है ऐसी अपूर्व अलौकिकता, वर्द्धमान तुम्हारी वाणी में ॥६॥

जिसे भव्य भक्ति से श्रवण करे, सुन ससृति सागर शीघ्र तरे।
सुमधुर सुमञ्जुल भाव भरे, वर्द्धमान तुम्हारी वाणी मे ॥७॥

उज्ज्वल गुण गण प्रकटाती है, मोहतम को दूर हटाती है।
जनता अनुपम आनन्द पाती है, वर्द्धमान तुम्हारी वाणी मे ॥८॥

अन्तर में ज्ञान रवि जग जाता, उपयोग शुद्धतर भवि पाता।
"सज्जन" मन तन्मय हो जाता, वर्द्धमान तुम्हारी वाणी मे ॥९॥

○—○

परिवार-परिचय

[जीव मात्र का धारण (पोषण-संरक्षण) करने वाली इस पृथ्वी का एक सार्थक नाम है धरा। किंतु यह धरा, धरा मात्र नहीं, वसुंधरा भी है। जब-जब इसने किसी आत्मशक्ति संपन्न तेजस्वी यशस्वी परोपकारपरायण पुण्यआत्मा को जन्म दिया, धारण किया तब-तब यह अपने वसुंधरा (महामूल्यवान मणिरत्नों को धारण करने वाली) नाम से सार्थक हुई है और रत्नगर्भा अभिधान से गौरव मंडित हुई है।

महान आत्मा स्वयं स्वार्जित गौरव की स्वाभिषिक्त मूर्ति है। उसे किसी अन्य के गौरव से अभिषिक्त करने की आवश्यकता नहीं रहती। किंतु श्रद्धाभिसिक्त होने के बाद लोग उस मूर्ति के मूल आधार का भी सम्मान करने लगते हैं। जिस खान में रत्न पैदा होता है उस खान का भी गौरव बढ़ता है। महान आत्मा जिस कुल वंश में जन्म लेते हैं उस कुल वंश की भी गरिमा युग युग तक गाई जाती है और उन माता-पिता को भी लोक श्रद्धा से पूजते हैं, नमन करते हैं। स्वयं देवेन्द्र तीर्थंकर देव की माता पिता की वंदना करते हैं।

आज ऋषभदेव के नाम के साथ ही नाभिराय और माता मरुदेवी की वन्दना की जाती है। इक्ष्वाकुवंश का गौरव गाया जाता है। राम और कृष्ण के नाम के साथ ही दशरथ, कौशल्या, वसुदेव देवकी यशोदा का नाम स्मरण किया जाता है। सूर्यवंश और चन्द्रवंश (हरिवंश) की यशोगाथाएँ गाई जाती हैं। भगवान महावीर की वन्दना के साथ ही माता त्रिशला और राजा सिद्धार्थ को भी नमन किया जाता है। ज्ञात वंश का गौरव गाया जाता है। यह सब प्रत्यक्ष सत्य है— महापुरुष अपने जन्म से अपने कुल, वंश, परिवार और प्रदेश व देश को भी गौरवान्वित करते हैं।

इसी परम्परा के अनुरूप यहाँ पूज्य प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी महाराज के धर्मनिष्ठ पिता माता तथा अन्य सम्बन्धित परिवार का परिचय अत्यावश्यक है और पाठक की जिज्ञासा का स्वयं ही समाधान है।

—संपादक]

धर्मपरायणा आदर्श माता : श्रीमती महताबबाई

—*विजय कुमार लूणिया*

स्वधर्मी गौरवपुरुष सेठ श्री गुलाबचन्दजी लूणिया की धर्मपत्नी का नाम महताब बाई था। पति के विचारों की अनुगामिनी, आदर्श पत्नी एवं सत्-संस्कारों की शिक्षा देने वाली आदर्श माता और वात्सल्य की खान ये हमारी पूजनीया दादीजी थी। आपके पिताश्री का नाम श्री चुन्नीलालजी कोठारी

था जो कि तत्कालीन भोपाल रियासत के खजाची थे। दादीसा० को धर्मनिष्ठा और धार्मिक सस्कारो का वरदान अपने पिताश्री से ही मिला था।

श्रीमान् चुन्नीलालजी के पूर्वज राजस्थान के वोरावड ग्राम मे रहा करते थे। वे अपने वडे भाई के साथ भोपाल व्यवसाय के लिए चले गये थे। वहाँ उन्होने जवाहरात का कार्य प्रारम्भ किया। ईमानदारी एव व्यवहार कुशलता के कारण व्यापार मे दिन दूनी रात चौगुनी वृद्धि होने लगी और थोडे ही समय में आपकी गिनती भोपाल नगर के गणमान्य वरिष्ठ व्यापारियो में होने लगी। उस समय भोपाल मे वेगम साहिवा राज्य करती थी। श्री चुन्नीलालजी की नैतिकता और सच्चाई की चर्चा जव वेगम साहिवा के पास पहुँची तो उन्होने सेठ साहव को अपने यहाँ आमन्त्रित किया। वे आपकी व्यवहारकुशलता, व्यापारिक प्रामाणिकता और स्पष्टवादिता से अत्यन्त प्रभावित हुई और उनको अपने राज्यकोष का खजाची वना दिया। वेगम साहिवा आपके कार्य से पूर्ण सन्तुप्ट एव आश्वस्त थी।

धर्मनिष्ठ गृहणी

श्रीमती महताब बाई सेठ श्री चुन्नीलालजी की दूसरी सनान थी जिनका विवाह जयपुर नगर के प्रसिद्ध जौहरी श्री गणेशमलजी के सुपुत्र श्री गुलावचन्दजी के साथ हुआ। उस समय उनकी उम्र मात्र इग्यारह वर्ष थी। ये एक आदर्श दम्पत्ती थे। उनका जीवन धार्मिक सस्कारो एव सात्विक विचारो से ओतप्रोत था। विवाह के तुरन्त वाद ही श्रावक के वारह व्रतो की कठोर अनुपालना उनके सयमित जीवन की साक्षी है। यह दोनो का मणि-काचन सु-सयोग था जो परिवार और समाज मे धर्म और परमार्थ की आभा फैलाता रहा।

दादी सा. को नवकार मत्र की एक माला तथा एक सामायिक प्रतिदिन करने का नियम वाल्यकाल से ही था। इस नियम का आपने आजीवन पालन किया। पति के साथ वारह व्रतो की साधना के अलावा आपने १५ वर्ष की आयु से ही चतुर्दशी का व्रत रखना प्रारम्भ कर दिया था। इस व्रत का भी आपने ७५ वर्ष की अवस्था तक अनवरत पालन किया। वीमारी हो, प्रसूति हो या प्रवास हो, आपने इस व्रत को कभी नही टूटने दिया। कालान्तर मे आपने एक सामायिक के स्थान पर तीन सामायिक प्रतिदिन करने का नियम ले लिया और उसे आजीवन निभाया।

आपको विभिन्न प्रकार के द्रव्यानुयोग के स्तोक (थोकडे) याद थे। साधु-साध्वियो के नियमित दर्शन, उनकी सेवा, पदयात्रा, व्याख्यान आदि मे आपकी गहरी रुचि थी। धर्म-चर्चा ही आपके जीवन का पाथेय था। अपने माता-पिता के धार्मिक सस्कारो की छाप ही सतानो पर भी पडी थी। प्रवर्तिनीश्री सज्जनश्रीजी म सा के उज्ज्वल जीवन को देखकर हम सहज हो जान सकते है कि माता-पिता कितने महान् सस्कारो से भावित थे।

उनके चार सताने हुई, दो सुपुत्रियाँ तथा दो सुपुत्र। सवसे वडी संतान है—वर्तमान मे खरतरगच्छ धर्म-सघ की प्रवर्तिनी आर्यारत्न श्री सज्जनकुमारीजी म सा.। दूसरी सन्तान हुए हमारे पिताश्री केशरीचन्दजी लूणिया जो अपने पिताश्री की भाँति ही तत्वज्ञानी, निर्भीक वक्ता एव कुशल रत्न-व्यवसायी थे। उनकी प्रेरणा से ही आज उनके पुत्र-प्रपौत्र देश-विदेश मे जवाहरात के व्यवसाय मे अच्छी प्रगति कर रहे है। एक अन्य पुत्री श्रीमती कस्तूरी बाई तथा सवसे छोटे एक पुत्र श्री पूनमचन्दजी हुए। चारो ही सताने धर्मनिप्ठ, कर्तव्यनिप्ठ एव व्यवहारनिप्ठ हुई।

व्यवहारकुशल आदर्शवादी

दादी सा० अनावश्यक एव निरर्थक वातो मे अपना एक क्षण भी नप्ट नही किया करती थीं। वे अत्यन्त मृदुभापिणी एव शालीन स्वभाव की थी। वच्चो को मारना तो दूर की वात है, वे उन्हे कभी

(माताश्री) रत्नकुक्षि श्री मेहताब बाई लूनिया

जोर से डाँटती तक नहीं थी। सांसारिक व्यक्ति के सामने परस्पर व्यवहार निभाने की अनेक उलझनें होती हैं, किन्तु वे अत्यन्त व्यावहारिक थीं तथा संयम और न्यायपूर्ण ढंग से चला करती थी। वे हमारे दादाजी सेठ श्री गुलाबचन्दजी की केवल धर्मपत्नी ही नहीं थी अपितु धर्मयुक्त परामर्शदात्री भी थी। अनेक अवसरों पर उन्होंने अपने पति को न्यायसंगत एवं नीतिसम्मत परामर्श देकर अपनी योग्यता का परिचय दिया था। प्रतिकूल परिस्थिति में भी उनका सम्यक् भाव अडिग रहता था।

अपने सबसे छोटे पुत्र श्री पूनमचन्द जी के आकस्मिक एवं असामयिक निधन पर भी उन्होंने अपना धैर्य नहीं खोया था। उनका चिंतन था कि संसार नाशवान है, जिसने जन्म लिया है वह देर-सबेर अवश्य जायगा। और इसी चिन्तन के सहारे उन्होंने पुत्र के वियोग को मन पर हावी नहीं होने दिया। निर्लिप्त बनकर यथावत् अपने नियम संयम का पालन करती रही। लगभग इसी प्रकार की अनित्य भावना का परिचय आपने उस समय दिया जब आपके पतिदेव सेठ श्री गुलाबचन्दजी का अन्तिम समय निकट था। उनको मरणासन्न जानकर भी दादी मा ने धैर्य खोकर रोना धोना आदि नहीं किया। अपितु आपने पतिदेव को धर्म-चर्चा का श्रवण करवाया और नमस्कार महामन्त्र तथा चार शरणों का धार्मिक संबल प्रदान करती रही।

अनुकरणीय संस्मरण

यों तो दादी सा का सम्पूर्ण जीवन ही अनुकरणीय है, किन्तु अपने पति को निरन्तर धर्माचरण में प्रेरित करते रहना तथा निरन्तर उनके साथ रहकर धार्मिक क्रियाओं में प्रवृत्त रहना सद्गृहिणी के अनुपम उदाहरण हैं। उन्हें अपने आप पर और अपने संयमित एवं नियमित जीवन पर पूर्ण विश्वास था। जिस प्रकार गांधीजी दृढ़ता के साथ कहा करते थे कि मैं १२५ वर्ष तक जीऊँगा, क्योंकि उनको भी अपने नियमित, संयमित और धार्मिक जीवन की लम्बी आयु का पूर्ण विश्वास था, उसी प्रकार दादीजी भी अपनी लम्बी उम्र के विषय में पूर्ण आश्वस्त थी।

एक बार वृद्धावस्था में उनको मियादी ज्वर (टाईफाइड) ने घेर लिया। वे कृशकाय हो गयी। किसी ने उनकी अवस्था और रुग्णता देखकर परामर्श दिया कि अब उनको संथारा (आमरण अनशन) पचक्ख लेना चाहिए। किन्तु उन्होंने दृढ़ता के साथ उत्तर दिया— मेरा आयुष्य अभी बहुत शेष है। आत्मघात करके क्या विराधक बनना है? मैं संथारा नहीं करूँगी। ऐसा उत्तर वे ही दे सकते हैं जिनको अपने संयम नियम और धर्माचरण पर पूर्ण निष्ठा हो। इस बीमारी के बाद वे २५ वर्ष से भी अधिक जीवित रही तथा ९७ वर्ष की दीर्घायु में दिवंगत हुई। अपने अन्तिम समय तक वे धर्म-चर्चा में लीन रही और धर्माराधनापूर्वक त्याग प्रत्याख्यान के साथ उन्होंने अपने इहलोक और परलोक को सार्थक बनाया।

दादी सा स्वर्गीया महताब कँवरजी की माताजी का नाम जतनकँवरजी एवं छोटी बहिन का नाम फूलकँवरजी था। ये दोनों ही तेरापंथ धर्मसंघ के साध्वी वर्ग की आदर्श साध्वियाँ हुई हैं। उनकी गणना धर्मसंघ की अत्यन्त विनयशीला एवं सहनशीला सतियों में की जाती है।

गुरुवर्या प्रवर्तिनी आर्यारत्न सज्जनश्रीजी म. सा. की पूजनीया माताजी का स्मरण करना इस अवसर पर अत्यन्त आवश्यक है धर्म लाभ का कार्य है, क्योंकि आज हम जिस महान् विभूति का स्मरण कर रहे हैं वे उस महान् नारीरत्न की सुपुत्री हैं जिसने अपने जीवन के ९७ वर्ष पवित्रता एवं धार्मिक भावना से ओतप्रोत रहकर लूणिया परिवार को शाश्वत गौरव प्रदान किया है। गुरुवर्या के सादर अभिनन्दन के शुभ अवसर पर सभी उस महान् आत्मा को श्रद्धांजलि अर्पण करें।

धर्मनिष्ठ तत्वज्ञ श्रावक

सेठ श्रीगुलावचन्दजी लूणिया

धन का विरवा परिश्रम का जल चढाने से सहज ही वढने लगता है। यश एवं कीर्ति का क्षेत्र भी पारस्परिक सम्पर्क, दानशीलता, सेवा-सहयोग, मृदु व्यवहार एव मित्रभाव का पुट देकर जिस गति से चाहे वढाया जा सकता है। किन्तु धर्म की वेल यूँ सहज ही फलीभूत नही होती। पूर्व संस्कारो का पवित्र जल इसमे सीचना होता है। पीढी दर पीढी धर्मनिष्ठ पूर्वजो की आस्था का पोपण इस वेल को देना पडता है। दैनन्दिन क्रिया कर्म, नियमित उपासना, तप और साधना के साथ-साथ लोक-व्यवहार, वृत्ति-व्यवहार, घर-परिवार सभी क्षेत्रो मे धर्मपरायणता का निर्वाह करना होता है। अनेकानेक भौतिक एव मनोकायिक भूचालो से धर्म-वेल की रक्षा करनी होती है, तभी यह अमृत तुल्य फल प्रदान करती है, तभी परिवार मे धार्मिक सस्कारो से युक्त सतानो का प्रादुर्भाव होता है।

ऐसा ही सुयोग मिला था धर्मनिष्ठ तत्वज्ञ श्रावक सेठ श्रीगुलावचन्दजी लूणिया को। उनके पूर्वज ११वी शताब्दो में मुलतान राज्य मे व्यापार करते थे। उनमे सवसे ख्यातनामा थे श्री धीगरमल शाह (मूँदडा) जो कि मुलतान राज्य मे प्रधानमन्त्री के सम्मानित पद पर आसीन थे। उनके एक पुत्र लूणाशाह थे, जिनको एक बार सर्प ने डस लिया। दैवयोग से उस समय वहाँ जैन मुनि श्रीगुरुजिनदत्तसूरि जी का आगमन हुआ। आप बड़े दादा गुरु के नाम से विख्यात थे। उन्होने अपने मंत्रवल से लूणाजी शाह का सर्प विष उतार कर उन्हे स्वस्थ कर दिया। श्री धीगरमलजी इस चमत्कार से अत्यन्त प्रभावित हुए और उन्होने जैन धर्म स्वीकार कर लिया। सन् ११९२ मे आचार्य महाराज ने उनके पुत्र लूणाशाह के नाम पर ओसवाल जाति में "लूणिया" गोत्र प्रदान किया। गोत्र का शुभारभ उनसे ही हुआ।

श्री धीगरमल जी शाह का परिवार मुलतान मे यवनो का शासन हो जाने तथा अकाल की स्थिति वन जाने के कारण मुलतान छोडकर जैसलमेर मे आ वसे। जहाँ यह परिवार १७ वी शताब्दी तक रहा। जैसलमेर मे व्यापार की अधिक प्रगति होती नही देखकर शाह जी दिल्ली में आकर वसे।

दिल्ली से से लूणिया परिवार जयपुर आ गया तथा व्यापार दिल्ली व जयपुर दोनो स्थानों पर करते रहे। श्रीछवीलचन्दजी के सुपुत्र का नाम था गोरूमल जी, उनके दो पुत्र थे—एक श्रीचौथमलजी तथा दूसरे श्रीगणेशमलजी।

यह वह समय था जव महाराज जयसिह ने जयपुर नगर बसाया था और अन्य प्रान्तो के विद्वानो, व्यापारियो, धार्मिक महापुरुपो और कलामर्मज्ञो को जयपुर में आकर बसने का आह्वान किया था। श्रीगोरूमलजी को भी महाराजा जयसिह द्वारा आमन्त्रण मिला और वो भी जयपुर आकर व्यापार करने लगे। उन्होने जवाहरात के व्यवसाय मे अच्छी ख्याति अर्जित की, तथा "गोरूमल चौथमल" नाम से एक फर्म की स्थापना की व कुन्दीगर के भैरूँजी के रास्ते मे एक हवेली वनवाई। जहाँ आज भी लूनिया-परिवार रहता है।

(पिताजी) स्वनामधन्य श्रेष्ठी श्री गुलाबचन्द जी लूनिया

श्रीगोरमलजी ने अपने बड़े पुत्र चौथमलजी का विवाह चौधाणी (नाहटा) परिवार में किया तथा छोटे पुत्र गणेशमलजी का विवाह बोथरा परिवार में किया। गणेशमलजी की प्रथम पत्नी का देहान्त हो जाने पर उनका दूसरा विवाह भूरामलजी चोरडिया की बहिन से हुआ। गणेशमलजी का तीसरा विवाह राजगढ़ (सादुलपुर) में बगवानी परिवार में हुआ। बड़े भाई चौथमलजी के कोई सन्तान नही हुई। गणेशमलजी की तृतीय पत्नी से तीन सन्तानें हुई—एक कन्या और दो पुत्र। कन्या का नाम हुलासा बाई रखा गया। दोनों पुत्रों का नाम क्रमश तेजकरण और गुलाबचन्द रखा गया। हुलासाबाई का विवाह उस समय के ख्यातिनामा ढड्ढा परिवार में श्रीबहादुरमलजी ढड्ढा से हुआ। बहादुरमलजी अधिक आयु नही पा सके। वे २५ वर्ष की अवस्था ही में अपनी पत्नी श्रीमती हुलासाबाई तथा पुत्ररत्न श्रीउमरावमल को छोडकर स्वर्गवासी हो गये। उमरावमलजी को लूनिया परिवार में दीपचन्द कहते थे।

श्रीगणेशमलजी के प्रथम पुत्र तेजकरणजी तथा उनकी पत्नी का देहान्त भी युवावस्था ही में हो गया। तेजकरणजी की पत्नी लनवाल परिवार से थी।

इसी पीढी में श्रीगणेशमलजी के द्वितीय पुत्र गुलाबचन्दजी थे। श्रीगणेशजी की वंश बेल श्रीगुलाबचन्दजी से ही फली फूली। उनके द्वारा लगायी गयी वंश-पौध आज वट वृक्ष बनकर लहलहा रही है। इस वंश ने धन, सम्पन्नता धर्मनिष्ठा, सामाजिक प्रतिष्ठा, लोक व्यवहार विदेशों में व्यापारिक सफलता एवं ख्याति के अनेक कीर्तिमान स्थापित किये है। इसी वंश वृक्ष की एक उज्ज्वल मणि हैं—आगमज्ञा, विदुषीवर्या आर्यारत्न प्रवर्तिनी श्रीसज्जनश्रीजी महाराज साहब। स्वनामधन्या श्रीसज्जनश्रीजी म सा अपनी ज्ञानसुधा से अध्यात्म पिपासु भक्तजनो के हृदयों को निरन्तर आप्लावित करने वाले श्रीगुलाबचन्द जी की पुत्री हैं जो अपने त्याग, तप, धर्मनिष्ठा तथा संयम साधना से पीहर और ससुराल दोनों ही पक्षों का नाम उज्ज्वल कर रही हैं।

श्री गुलाबचन्दजी की बाल्यावस्था

आपका जन्म संवत् १९३४ में जयपुर में हुआ। नीतिनिष्ठा और धर्माचरण आपको विरासत में प्राप्त हुए थे। पिताश्री गणेशमलजी की ईमानदारी और धर्मनिष्ठा का प्रभाव गुलाबचन्दजी के संस्कारों में भी आया। धार्मिक आचरण एवं साधु-सन्तों की सेवा दादाजी श्री गोरमलजी के समय में भी परिवार के मुख्य कर्तव्य माने जाते थे। स० १८८८ में तेरापंथ धर्मसंघ के चतुर्थ आचार्य श्रीमद् जयाचार्य ने अपना चातुर्मास जयपुर में किया था। उस समय ४२ व्यक्तियों ने तेरापंथ की गुरु धारणा ग्रहण की। गोरमल जी उन्हीं में से एक प्रमुख व्यक्ति थे। धर्म की इस अजस्र धारा में ही पल्लवित-पुष्पित हुई थी श्री गुलाबचन्द जी की मानस वल्लरी। कल्पना शक्ति और भावनामय उडान आपको ईश्वर प्रदत्त थी। बाल्यकाल ही से आप साधु-साध्वियों की सेवा में अधिक से अधिक समय दिया करते थे। धर्मचर्चा में आपका मन खूब रमता था। सुन्दर-सरस और तात्त्विक ढालें तो आप १७ वर्ष की आयु में ही निर्माण करने लग गये थे।

आप बचपन से ही मृदुभाषी थे। भावुक होने के कारण आपने कभी किसी को कटुवाणी से कष्ट नहीं पहुंचाया। सबके सहयोगी एवं सेवाभावी आप बाल्यकाल ही से थे। आपका सांसारिक कार्यों में कम ही मन लगता था।

दीक्षा ग्रहण की तैयारी :

अनेक आध्यात्मिक गुणो से युक्त वालक गुलावचन्द जी का मन प्रायः दीक्षा के लिए लालायित रहने लगा। उनकी इस महती आकांक्षा को परिजनों ने भाँप लिया और हर सम्भव उपाय से वे उनका मानस वदलने का प्रयत्न करने लगे। अत १४ वर्ष की आयु में ही उनका विवाह यह विचारकर कर दिया गया कि गृहस्थी का भार वहन करने मे दीक्षा लेने का भाव स्वत ही तिरोहित हो जायेगा। श्री गुलावचन्द दीक्षा तो नहीं ले पाये, किन्तु गृहस्थी मे रहकर भी उन्होंने अग्रणी और पूर्ण धर्माचरणयुक्त श्रेष्ठ श्रावक के रूप मे ख्याति अर्जित की। सन्त-मुनिराज भी अपने प्रवचनों मे श्री गुलावचन्द जी के हूँ-कारे (तहत्ति) का ध्यान रखते थे, क्योकि वे स्वाध्यायी थे, चिंतक थे और धर्म-आख्यानो का उन्हे विशुद्ध ज्ञान था, अत. उनका हूँ-कारा' आना प्रवचनकर्ताओं की सफलता का कारण वन जाता था।

विवाह एवं गृहस्थ जीवन

श्रावक सेठ श्री गुलावचन्दजी का विवाह भोपाल रियासत के खजाची श्री चुन्नीलालजी कोठ्यारी एवं श्रीमती जतनकुमारीजी की सुपुत्री महतावकुमारी के साथ हुआ था। श्रीमती महताव-कुमारी गृहकार्य मे दक्ष, सुशील, व्रत-नियमो मे आस्थाशील सदाचारिणी महिला थी। वे अत्यन्त धार्मिक प्रवृत्ति की थी। ऐसी सहधर्मिणी मिलने से सोने मे सुहागा वाली कहावत चरितार्थ हो गई। युवावस्था में ही पति-पत्नी ने तेरापंथ के अष्टम आचार्य श्री कालूगणी से वारह व्रत धारण कर लिये थे। धर्माचरण सामायिक और व्रत-पचखाण के साथ दोनो ने गार्हस्थ्य जीवन की यात्रा आरम्भ की।

कुछ काल उपरान्त श्री गुलावचन्दजी के पिताश्री और श्री चौथमलजी का स्वर्गवास हो गया। गृहस्थी का सम्पूर्ण भार श्री गुलावचन्दजी तथा भाई तेजकरण जी पर आ पड़ा। किन्तु विधि के विधान मे श्री गुलावचन्दजी को ही सारे उत्तरदायित्वों को वहन करवाने की योजना थी, अत कुछ कालोपरांत भाई तेजकरण जी भी निःसन्तान ही इस संसार से विदा हो गये। अव सारे परिवार का भार श्री गुलाव चन्दजी पर ही आ पड़ा। आपने पूरी ईमानदारी तथा कठिन परिश्रम से इस उत्तरदायित्व को निभाया। ससारी रहे, किन्तु मन को संसार मे नही रमाया, धर्म से अलग नही होने दिया। उन्होंने व्यापार और धर्मनिष्ठा मे समान रूप से प्रगति की और दोनो ही क्षेत्रो मे अच्छा नाम कमाया। सांसारिक उत्तरदायित्वों को निभाते हुए भी वे उससे मोहग्रस्त नही हुए, धन-वैभव अर्जित किया। और संसार मे रहकर भी कमल की भाँति निर्लिप्त रहे।

पारिवारिक वैभव :

सेठ श्री गुलावचन्दजी के दो पुत्र एवं दो पुत्रियाँ हुई।

वर्तमान में जैन श्वेताम्वर खरतरगच्छ संघ की प्रवर्तिनी सज्जनश्री जी का जन्म १६ मई १६०८ को हुआ। वाल्यकाल मे आपको सभी स्नेहवश 'गपजी' कहकर पुकारते थे। पिताश्री का आप पर अत्यन्त स्नेह था। वे इन्हें अपना पुत्र ही मानते थे। और धार्मिक क्रियाकलाप हो या सामाजिक समारोह, सव मे आपको अपने साथ ही रखते थे। यह वात निर्विवाद सत्य है कि प्रवर्तिनी जी मे धार्मिक संस्कारो का प्रस्फुटन अपने पिताश्री की प्रेरणा से ही हुआ, फिर भी आप मे पूर्वजन्मों के धार्मिक संस्कारो का वीज भी अवश्य रहा है, अन्यथा यह धर्मपौध इतनी कम आयु ही मे थोड़ी सी प्रेरणा पाकर ही कैसे प्रस्फुटित कैसे होता ? सज्जनश्रीजी का विवाह वाल्यकाल मे ही १२ वर्ष आयु मे जयपुर के प्रसिद्ध दीवान श्री नथमलजी गोलेछा के सुपुत्र श्री कल्याणमल जी से हुआ। विवाह वहुत धूमधाम से सम्पन्न हुआ।

विवाहोपरात भी प्रवर्तिनीश्रीजी सासारिक बधनो, धन-वैभव की सुविधाओ, गार्हस्थ्य जीवन के मोहो में नही रम सकी। जीवन का वास्तविक उद्देश्य क्या है ? प्राणी पृथ्वी पर क्यो जन्म लेता है ? उसका वास्तविक लक्ष्य क्या है ? आदि-आदि प्रश्न आपके अन्तर को निरन्तर सासारिक जीवन से उदासीन तथा आध्यात्मिक जीवन की ओर उन्मुख करते रहे। अतत आपने सासारिक मोहबधन से छुटकारा पाने का दृढ निश्चय कर अपनी भुवासास श्रीमती वाफना के सहयोग से सन् १६४० में जैन श्वे खरतरगच्छ सघ मे दीक्षा ग्रहण करली। निर्बध निर्लिप्त जीवन का शुभारम्भ हो गया। उस समय आपकी आयु मात्र ३२ वर्ष थी। तब से आज ८१ वर्ष की अवस्था तक आप कर्मठ तपस्विनी, साधिका, शास्त्रज्ञा, आगमवेत्ता सघ प्रवर्तिनी, गुरु सेविका और गुरुवर्या के रूप में ख्याति प्राप्त हैं।

सन् १६१५ में श्री केशरीचन्द्र जी का जन्म हुआ, जिनके चार पुत्र और तीन पुत्रिया है। सन् १६१७ में दूसरी पुत्री कस्तूरीबाई का जन्म हुआ तथा १६२२ में दूसरे पुत्र पूनम चन्द जी जन्म हुआ। जिनके चार पत्रियाँ और एक पुत्र हुए।

व्यापारिक प्रगति

सेठ श्री गुलाबचन्द जी ने जयपुर के जौहरियो में अपनी सत्यनिष्ठा एवं ईमानदारी से शीघ्र ही विशिष्ट स्थान बना लिया था। भारत के अनेक जौहरीगण आपके आढतिये थे। वे समय समय पर जयपुर आते और श्री गुलाबचन्द के घर पर ही ठहरते थे। श्री गुलाबचन्द जी के द्वारा किये हुए सौदो मे आढतियो को भी अच्छी आय होती थी।

विदेशियो से सम्पर्क

आपने जवाहरात का एक शो रूम जौहरी बाजार में खोला। थोडे समय पश्चात् आपकी ख्याति सुनकर रियासत के दीवान सर मिर्जा इस्माईल ने अपने नाम पर नव निर्माणाधीन मिर्जा इस्माइल रोड पर एक बृहत् भूमिखड बहुत कम कीमत पर प्रदान किया। जिस पर आपने जवाहरात का एक भव्य शो रूम व सुरम्य उद्यान लगाया जो "लूनिया के बाग" के नाम से प्रसिद्ध हुआ। अंग्रेजी जानने वाले गुमाश्ते रखे। व्यवसाय के क्षेत्र मे जयपुर नगर मे यह एक विशेष कार्य था। दो घोडो की बग्घी पर सेठ श्री गुलाबचन्दजी आया जाया करते थे। अपने ही घर पर आपने जडिया सोने मीने का काम करने वाले कारीगर, छिदाई व घुटाई का काम करने वाले पटवा बगडी, मोती पिरोने वाले आदि रखे। उन सबका कार्य सेठसाहब की देख रेख मे ही होता था।

आपके व्यापार में अच्छी वृद्धि हुई। धर्म का प्रभाव धनवृद्धि पर भी पडा। चतुर्दिक प्रतिष्ठा बढने लगी। रियासत के बडे बडे प्रतिष्ठित अधिकारियो, जैसे—नवाब-साहब, हाथीबाबू जी, मोतीलाल जी अटल, अमरनाथ जी अटल, गीजगढ ठाकुर कुशल सिंह जी, रूपसिंह जी राठौड, अमर सिंह जी राठौड महाराजा माधोसिंह जी के साले साहब खवास बालाबक्ष जी अंग्रेज रेजीडेन्ट, आदि से अच्छा सम्पर्क था।

जयपुर के प्रतिष्ठित जौहरियो से आपके पारिवारिक सबध थे तथा उनके यहाँ सपरिवार आना-जाना होता था।

सेठ श्री गुलाबचन्द जी ने एडवर्ड सप्तम के पुत्र पचम जार्ज प्रिंस आफ वेल्स के दिल्ली आगमन पर हुए समारोह में जौहरी के रूप में सक्रिय भाग लिया। आपको प्रिंस आफ वेल्स और जार्ज पचम तक से प्रशसा पत्र प्राप्त हुए। महाराजा माधोसिंह जी के दरबार में आपकी भी कुर्सी लगती थी। दरबार

के कई प्रतिष्ठित ठिकानेदारो से आपका व्यक्तिगत सम्पर्क था। महाराजा जामनगर ने आपसे जवाहरात का बहुत माल खरीदा और वे समय-समय पर आपको जामनगर आमन्त्रित करते थे।

इन सभी महत्वपूर्ण सम्पर्कों, सम्बन्धों और व्यापारिक उपलब्धियों का एकमात्र कारण आपकी सत्यनिष्ठा ही थी। लाभाश से कई गुना अधिक आपका ध्यान संबंधों और सम्पर्कों की शुद्धता व निरतरता बनाये रखने पर रहता था। यही कारण था कि अच्छे-अच्छे व्यापारी, ओहदेदार, ठिकानेदार, अग्रेज अफसर, राजदरबारी आदि आपके आजीवन मित्र बने रहे।

व्यापारिक सहिष्णुता

इतने बृहद् पैमाने पर व्यापार होते हुए भी आपने कभी कचहरी का द्वार नही खटखटाया। कोर्ट-कचहरी, मुकदमेवाजी आदि झझटो से आप आजीवन दूर रहे। गवाही (साक्षी) देने जाने की आपने सौगन्ध ले रखी थी। इस व्रत को आपने आजीवन निभाया।

बहुआयामी किन्तु धर्म निष्ठजीवन

व्यापारिक, सामाजिक एव पारिवारिक जीवन सभी क्षेत्रो मे कर्तव्यनिष्ठ रहते हुए भी सेठ साहव ने अपने हृदय को धर्म की धुरी पर ही केन्द्रित रखा। कहते है, धर्मनिष्ठ गृहस्थी तपोनिष्ठ साधु से भी श्रेष्ठतर होता है। इसलिए श्री गुलावचन्दजी का मान चारो ही सम्प्रदायो के आचार्य करते थे। सेठजी को सम्प्रदायवाद ने छुआ तक नही था। आपकी दृष्टि व्यापक थी।

नगर मे किसी भी सम्प्रदाय के आचार्य पधारे हो, सेठसाहव उनकी सेवा में नियमित रूप से जाते थे। आप केवल औपचारिक श्रावक नही थे अपितु एक महान् तत्त्वज्ञानी थे। उपवास बेला तेला आदि की तपस्या भी करते रहते थे। जयपुर के एक प्रसिद्ध यत जी महाराज के स्वर्गवास होने पर उनकी सम्पूर्ण हस्तलिखित ग्रन्थो का भंडार आपने खरीद लिया तथा उनका अनुशीलन किया। आगम शास्त्रो का आपको गहरा ज्ञान था। ज्योतिषविद्या के भी आप अच्छे जानकार थे। आचार्यों से आपकी तत्त्व-चर्चा निरन्तर चलती रहती थी। इसलिए व्याख्यानो व प्रवचनो मे आचार्यवर्य भी आपकी "तहत्ति" की निरन्तर अपेक्षा रखते थे। सामायिक प्रतिक्रमण, आपकी दिनचर्या के नियमित क्रियाकलाप थे। युवावस्था ही मे आपने अपनी धर्मपत्नी के साथ १२ व्रतो की पालना प्रारम्भ कर दी थी। आपने विदेशयात्रा, एलोपैथी औषधी, अखाद्य खाद्य, मुकदमेवाजी आदि नही करने की शपथ ले रखी थी। इन सभी नियमो का पालन आपने आजीवन किया था।

तेरापंथ धर्मसंघ की पाट-परम्परा के पाँचवे आचार्य श्री मघवागणी, छठे आचार्य श्री माणकगणी, सातवे आचार्य श्री डालगणी, आठवें आचार्य श्री कालूगणी एवं वर्तमान आचार्य श्री तुलसीगणी की आपने दत्तचित्त होकर सेवा की। इन पांचो आचार्यों की निकट सेवा का अवसर सेठसाहब को अनेक वार मिला। उन्होने गण और गणी की सेवा मे सदैव तत्परता दिखलाई। आपका सम्पूर्ण जीवन ही सघ की सेवा से ओत-प्रोत रहा। यह उल्लेखनीय है कि जर्मन दार्शनिक हर्मन जेकोवी सर्वप्रथम आपके सम्पर्क मे आए और आपने उनको जैनदर्शन, जैन आचार, आचार्य भिक्षु के तत्वदर्शन आदि के विषय मे विस्तार से वताया। जर्मनी मे जैनधर्म के प्रचार एवं प्रसार मे आपका पूर्ण सहयोग रहा।

भावमर्मज्ञ, भक्ति-रसज्ञ, सगीतज्ञ कविहृदय

रात्रि जागरण के आयोजनो मे यदि सेठ श्री गुलावचन्दजी का भक्ति सगीत हो तो मदिरो मे आपकी ढाले और चौमासे की विनतियाँ सुनने के लिए हजारो की भीड़ लग जाती थी। आप एक सुमधुर गायक थे तो गीतिकाओ और ढालो के सिद्धहस्त रचयिता भी थे। तीन सौ से अधिक भजन ढाले आपने स्वय लिखी, जिनमे भक्तिरस, तत्वज्ञान और धार्मिक भावनाओ का त्रिवेणी संगम देखने को

मिलता है। आपको कई देशी राग रागनिया का अच्छा ज्ञान था। आपने लोकप्रिय राग रागनिया के आधार पर कई भजनो की रचना की। आज भी सेठ साहब के समय के लोग, मित्रजन, श्रावक उनके भजना को गाते हैं और इस भक्त हृदय की सगति का स्मरण कर आत्मविभोर हो उठते हैं। आपके भजनो का सचय (कैसेट) भी तयार किया गया है जिसे सुनकर हर व्यक्ति स्वय अनुभव कर लेता है कि सेठ श्री गुलाबचदजी वस्तुत ऐसे महकते हुए गुलाब थे जिनमे भक्ति सगीत और काव्य ममनता की सुरभि पूर्णत व्याप्त थी। नि सदेह, इस सौरभ ने लूणिया परिवार, सम्पूर्ण जैन समाज और उनके स्वय के जीवन को एक समुज्ज्वल धर्मभावना से आवष्टित बनाये रखा था और आज भी वह सौरभ श्री सज्जनश्रीजी म सा के माध्यम से उसी गरिमा के साथ दिग दिगत म व्याप्त है।

युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ ने श्री गुलाबचदजी लूणिया के विषय म कहा है कि श्री गुलाबचन्द जी प्रथम श्रावक थे जिन्होने भक्ति-भाव पूर्ण ढाल गीतिकाएँ स्तवन आदि की रचनाएँ की और भक्ति-भाव से विभोर हो उनको स्वय गाया भी। श्री गुलाबचद जी लूणिया व श्री सुजानमल जी खाटड की गायन युगल जोडी पूरे जन समाज म प्रसिद्ध थी।

ग्रन्थ प्रकाशन एव धर्मभावना

धार्मिक समारोह आध्यात्मिक जागरण एव तत्वचर्चाओ म भाग लेने के साथ-साथ श्री गुलाब चद जी लूणिया ने अनेक स्वरचित व अन्य ग्रन्थो का प्रकाशन करवाया। उनके द्वारा रचित/प्रकाशित अनेक पुस्तकें उस समय जैन-तत्व दर्शन के क्षेत्र म महत्वपूर्ण मानी जाती थी। अनेक श्रावक श्राविकाओ और साधु साध्वियो ने इन ग्रन्थो से जैन तत्वो की जानकारी प्राप्त की। आज भी इन ग्रन्थो को जैन तत्व दर्शन के प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। श्री गुलाबचदजी साहब के धर्मग्रन्थ जिनकी रचना आपने ही की थी, निम्नलिखित हैं—

१ भिक्षुयश रसायन २ नव पदार्थ निर्णय ३ श्रावक धर्म विचार ४ शिशुहित शिक्षा ५ श्रावक आराधना ६ सुगुणावली ७ प्रश्नोत्तर तत्वलोक।

श्री लूणियाजी को ग्रन्थ प्रकाशन कार्य म सबसे अधिक सहयोग मिला था उनके अनन्य मित्र सहयोगी एव सहधर्मी श्री हीरालालजी आचलिया का। श्री आचलियाजी भी लूणियाजी की तरह जैन शासन के भक्त-श्रावक रहे हैं। वे प्रथम श्रावक हुए हैं जिन्होने धार्मिक ग्रन्थो का शुद्धिकरण करवाया उन्हे छपवाया और धर्मचेतना जाग्रत करने हेतु नि शुल्क वितरण करवाया।

श्री आचलियाजी गगाशहर (बीकानेर) रहते थ। किन्तु ग्रन्थ प्रकाशन के कार्य हेतु प्राय जयपुर आया करते थे और श्री गुलाबचदजी लूणिया के यहाँ ही ठहरा करते थ। दोनों ही दृढ श्रद्धायुक्त भक्त थे जिन्होने जैनग्रन्थो के प्रकाशन, वितरण एव प्रभावना की दृष्टि से ऐतिहासिक योगदान किया था।

श्री गुलाबचदजी का स्वच्छ रहन सादे परिधानयुक्त सरल आध्यात्मिक हृदय वाला आकर्षक व्यक्तित्व था। वह भावपूर्ण, कला ममज्ञ हृदय, उदार किन्तु उत्तरदायित्वपूर्ण गृहस्थ श्रावक, कुशल किन्तु स्वार्थरहित व्यवसायी थ। अपने पीछे दो पुत्र, दो पुत्रिया तथा जन मानस कीर्ति, धर्म प्रभावना यश प्रतिष्ठा और अनेक स्मरणीय एव अनुकरणीय कृतियाँ छोडकर उनकी दिव्यआत्मा अकस्मात ही हृदय गति रुक जाने से वि० स० १९९९ म माघ शुक्ला ७ की रात्रि को ८ बजे स्वर्गलोक म प्रयाण कर गई। आज भी उनके भजन गीत, ढालें स्तवन और अनेक ग्रन्थ उनकी स्मृति को अमर बनाये हुए हैं। आज भी वे अपनी सम्पूर्ण जीवतता के साथ जीवित हैं। उन्ही की एक सुपुत्री है स्वनामधन्या महान साध्वीरत्न प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी म सा जिनका अभिनन्दन करते हुए हम उस अमर आत्मा के प्रति श्रद्धा-नत हैं। □

पूज्य प्रवर्तिनी श्रीजी के संसारपक्षीय सहोदर वन्धु

श्री केशरीचन्दजी लूनिया

पिताजी श्री केशरीचन्दजी लूनिया का जन्म सन् १९१५ में हुआ। आपके पिताश्री श्रेष्ठ श्रावक प्रसिद्ध जौहरी सेठ गुलावचन्दजी लूणिया थे, तथा माता का नाम महताव कुवर था। १४ वर्ष की अल्पायु मे ही जवाहरात के व्यवसाय मे रुचि लेना शुरू कर दिया था। वे कलकत्ता मे १९४०-१९५६ तक रहे और कलकत्ता के ग्रांड होटल और ग्रेट ईस्टर्न होटल मे सफलता पूर्वक जवाहरात का शोरूम चलाया।

१९५७ मे जयपुर के रामवाग पैलेस होटल मे "एस गुलावचद लूनिया एण्ड कं०" के नाम से शोरूम खोला जो कि आज भी सफलता पूर्वक चल रहा है। द्वितीय महायुद्ध के वाद पिताजी व्यापारार्थ सघाई [चीन] गये थे। जमनालालजी वजाज की अध्यक्षता मे प्रजामंडल का जयपुर मे अधिवेशन हुआ उसमे आप एक नवयुवक नेता के रूप मे सम्मिलित हुये और कार्य किया।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् जयपुर मे १९४८ मे पहली वार कांग्रेस का अधिवेशन हुआ उसमे भी सक्रिय कार्यकर्ता के रूप मे भाग लिया।

अन्त समय तक नमस्कार मन्त्र का जाप—मेरे पिताश्री अत्यन्त ही विनोदी, मिलनसार और व्यवसायी बुद्धि के व्यक्ति होते हुए भी विज्ञान, दर्शन, कला आदि गभीर विषयो के भी ज्ञाता थे। अतिम दिनो मे वीमारी के दौरान भी जरा सी भी तवियत ठीक होती तो कहते "चलो पन्ना हम रामवाग चलकर आते है।" जव भी कभी मेरी कोई भाभी आती तो कहते ढाले और भजन सुनते। हमेशा टेप रिकार्ड पर आचार्यश्री तुलसी व अन्य विद्वान साधु-साध्वियो के भजन आदि सुना करते थे।

वीमारी के दौरान हमेशा ही "अरिहता को शरणो सिद्धाको सरणो" आदि शब्दो का उच्चारण किया करते थे। जब डॉक्टरो ने उन्हे इलाज हेतु विदेश जाने की सलाह दी तव उस जून की भीषण गर्मी एव इतनी अस्वस्थता के वावजूद भी उन्होने कहा—पहले मै गुरुदेव (आचार्यश्री तुलसी) के दर्शन करूगा फिर उनसे निर्देश प्राप्त करके ही कही जाऊगा। वे लेटे-लेटे ही गाडी मे दिल्ली चले गये और उनके दर्शन किये।

पिताश्री कष्ट और अपार शारीरिक वेदना मे हमेशा ही प्रसन्नचित रहते और नमस्कार महामन्त्र वोलते रहते थे। मृत्यु के करीव डेढ महीने पहले ही उन्हे पूर्वाभास हो गया था और कहते थे अव मेरा समय निकट आ गया है "खमत खामणा है सभी लोगो से"।

एक वार साध्वी जी दर्शन देने पधारी तो मंगल पाठ सुनाने के बाद फरमाने लगी "सेठा अव काय की इच्छा है" तो आप कहने लगे "महाराज अव तो मेरी किसी चीज की भी इच्छा नही है सिर्फ चाहता हूँ कि पडित मरण आवे।"

पिताजी का जीवन हमेशा कीचड मे कमल की भाँति निर्लिप्त रहा, राग द्वेष किसी से भी नही था। किसी मे भी कहा-सुनी होने पर भी कभी गाँठ नही वाँधते। दस मिनट वाद ही वह पहले जैसे हो जाते जैसे कुछ हुआ ही न हो। उनका पूरा जीवन ऋजुता, क्षमा और सहनशीलता, दृढ निश्चय और आत्म विश्वास से पूर्ण था।

आचार्य तुलसी युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ तथा अन्य साधु साध्वियों का आशीर्वाद प्राप्त करने हेतु पिताश्री सेवार्थ तत्पर रहते थे। परिवार मे निरन्तर कहा करते थे "मन का तप करो—तन का तप तो सोरा (सहज) है असली तप तो मन का है।"

ऐसे मेरे बहु आयामी पिताश्री का आशीर्वाद हमारे साथ है।

केशरीचन्दजी का विवाह जयपुर के प्रसिद्ध बक्स के परिवार म श्री बीजराजजी बाठिया के यहा हुआ। आपकी धर्मपत्नी का नाम श्रीमती रेखादेवी लूनिया है। य स्वय भी अत्यन्त सरल हृदया एव धर्म परायण महिला हैं।

श्री केशरीचन्द जी साहब लूनिया को चार पुत्र रत्नो और तीन पुत्रियों की प्राप्ति हुई जिनके नाम क्रमश इस प्रकार है—(१) श्रीविजयकुमार लूणिया, (२) श्री पुखराज लूणिया, (३) श्रीमाणकजी लूणिया एव (४) श्रीसुरेशकुमार लूणिया तथा पुत्रियां (१) श्रीमती कमल साड, (२) श्रीमती पन्ना सकलेचा, एव (३) श्रीमती मन्जु पाटोदिया है।

श्री विजयकुमार लूणिया—श्रीकेशरीचन्दजी साहब के ज्येष्ठ पुत्र हैं। आप एक सफल व्यापारी है। आप हवामहल के सामने स्थित शोरूम 'ओरियन्टल जेम पैलेस" का सफल सचालन कर रहे हैं। आप मिलनसार, हसमुख और कर्मनिष्ठ व्यक्ति है। आपकी स्व० धर्मपत्नी निर्मला लूणिया कर्तव्यपरायण धर्मनिष्ठ एव सेवाभावी रही हैं आपका पुत्र स्व मनोज एव होनहार बालक था। आपकी अजु और मनीषा नाम की दो पुत्रिया है।

श्री पुखराज लूणिया—श्रीकेशरीचन्दजी के द्वितीय पुत्र हैं। आपने जवाहरात के कार्य म देश विदेश म अच्छी ख्याति अर्जित की है। आप उत्साही युवक है। और जवाहरात के कार्य मे कई नवयुवकों का दिशानिर्देश निरन्तर करते रहते हैं, आप एक शिक्षित, समाजसेवी धर्मनिष्ठ और मिलनसार व्यक्तित्व के धनी है। आपकी सुशीला, सुशिक्षित कला ममज्ञ धर्मपत्नी श्रीमती रत्ना लूणिया है। श्रीमती रत्नाजी गगाशहर के प्रसिद्ध आचलिया परिवार की पुत्री है जिनके साथ लूणिया परिवार का पुराना घनिष्ठ मैत्री सम्बन्ध रहा है और धार्मिक कार्यक्रमो म दोनो परिवार समान रूप म सम्माननीय रहे हैं। अत आचलिया परिवार की सुसस्कारी सुशिक्षिता कन्या का इस परिवार म पुत्रवधु के रूप मे आना सचमुच मणि-कांचन सयोग माना जायेगा। आपकी पुत्री का नाम अनुपमा है।

श्री माणकचन्द लूणिया—आप भी जवाहरात के व्यापारी हैं। आप केशरीचन्दजी के तृतीय पुत्र हैं। किसी भी कार्य को योजनाबद्ध कर उसे पूरी लगन और परिश्रम से पूर्ण करने के आप अभ्यासी हैं। सायर लूणिया आपकी सुन्दर सुशील पत्नी है। आपके दो पुत्र सुदीप और गौरव तथा एक पुत्री है जिसका नाम शालिनी है।

श्री सुरेश लूणिया—केशरीचन्दजी साहब के चतुर्थ पुत्र हैं। आप भी जयपुर ही म जवाहरात के कार्य मे सलग्न है तथा रामबाग का शोरूम सफलतापूर्वक सचालित कर रहे हैं। आपकी धर्मपत्नी इन्दुमति सुमुखी, सुशिक्षित एव सुसस्कृत महिला है। आपकी दो सुन्दर कन्यायें हैं जिनका नाम स्वाती एव सुरभी है।

श्री केशरीचन्दजी की ज्येष्ठ पुत्री कमल का विवाह श्रीविजयमलजी साड के साथ हुआ जो कि वर्तमान म बिडला सस्थान म चीफ एक्सजीक्यूटिव हैं।

द्वितीय पुत्री पन्नाबाई का विवाह जयपुर के प्रसिद्ध राजजौहरी कालीनाथजी के घराने म श्रीविजयसिहजी सकलेचा से सम्पन्न हुआ। आप जवाहरात का ही व्यापार करते हैं।

ततीय पुत्री मजु का विवाह कलकत्ता के उद्योगपति परिवार के श्री अरविन्दबाबू पाटोदिया से सम्पन्न हुआ है। ☐

धर्मशीला श्रीमती रेखादेवी लूणिया

(धर्मपत्नी श्री केशरीचन्दजी लूणिया)

सेवाभावी, प्रसन्नमना, क्षमामूर्ति, सहनशीलता की देवी मेरी पूज्य माताजी श्रीमती रेखादेवी लूनिया के बारे मे जब भी कभी सोचती हूँ तो ऐसा लगता है हमने पूर्व जन्म मे शायद बहुत ही अच्छे कार्य किये होंगे जो इतनी अच्छी माँ मिली है—वो लाखों मे एक है। हमेशा ही खुशमिजाज और सन्तोषी स्वभाव रहा है। आपका जन्म जयपुर की प्रसिद्ध बैंकर्स परिवार मे श्री बीजराजजी जोरावर मलजी बाठिया के यहाँ हुआ।

नये विचारों की प्रगतिशील महिला के रूप मे आप तेरापथ महिला मडल की अध्यक्षा के रूप मे रही। करीब १२ वर्षो तक आपके नेतृत्व मे मडल ने बहुत विकास किया। कई वर्षो तक लायनेस क्लब जयपुर की भी सक्रिय सदस्य के रूप मे कार्य किया। आपकी चार भतीजियाँ भी दीक्षा ली हुई है जो कि साध्वी श्रीकमलूजी, सूरज कु वरजी, पानकंवरजी, रायकंवरजी है। हम सात बहन-भाइयो मे तथा चार बहुओ मे से शायद ही कभी किसी को डाटा हो अपितु जरा सी किसी को तकलीफ होने पर हमेशा ही पूरे सहयोग से दूर किया है।

मेरी ममतामयी माँ इतनी शातमना और गम्भीर है कि मेरे पास उनकी प्रशसा हेतु शब्द नही है भगवान से यही प्रार्थना करती हूँ आपकी छत्रछाया हम बच्चो को हमेशा मिलती रहे आशीर्वाद बना रहे।

सरलमनाश्री पूनमचन्दजी लूनिया

स्वर्गीय श्रीपूनमचन्दजी लूणिया सेठ गुलाबचन्दजी लूणिया की सबसे छोटी सन्तान थे। आपका जन्म वि. स १९७२ ज्येष्ठ पूर्णिमा तथा स्वर्गवास १७ जून सन् १९७६ मे हुआ। बचपन मे ही आपका रुझान धार्मिक क्रियाकलापो की तरफ रहा, धर्मगुरुओ से धर्म के विषय मे चर्चाएँ करना आपकी विशेष रुचि थी, और इसी के फलस्वरूप तेरापथ साधुसमाज ने "पण्डित" के नाम से प्रख्यात थे।

आपका चरित्र निर्मल जल के समान पवित्र था तथा आपने अपना समस्त जीवन सादगीपूर्ण तरीके से बिना छलकपट के बिताया। परिवार के सब सदस्यो के प्रति आपका एक समान व्यवहार व प्रीति थी। आप अपने-पराये की भावना से परे थे। आप माता-पिता के अत्यन्त आज्ञाकारी पुत्र थे। पूजनीय प्रवर्तिनीजी महाराजसाहब से भी आपका अगाढ स्नेह था।

आपकी दो शादियाँ हुई। पहली पत्नी श्रीमती लाधुबाई का युवावस्था मे ही देहान्त हो गया जिनसे एक पुत्री प्रेम बाठिया है जिसका विवाह जयपुर के ही प्रतिष्ठित जौहरी श्रीप्रकाशचन्दजी बाठिया के साथ सम्पन्न हुआ। दूसरी पत्नी श्रीमती कमलाबाई से आपके चार सन्तानें हुई तीन पुत्रियाँ व एक पुत्र। परिवार के प्रति आपने अपनी पूर्ण जिम्मेदारी निभायी तथा बच्चो मे बचपन से ही अच्छे सस्कार डाले जिसके फलस्वरूप आपकी सभी सन्तानो ने अच्छी शिक्षाये प्राप्त की और समाज मे अपना नाम उज्ज्वल रखा। आपकी दूसरी पुत्री श्रीमती पुष्पा पारीख ने भौतिक शास्त्र मे एम एस. सी. प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण किया है तथा वर्तमान मे लेक्चरार है। आपकी तीसरी पुत्री कु० प्रभा ने बी ए के पश्चात कार्मशियल आर्ट मे डिप्लोमा प्राप्त किया। आपकी चौथी पुत्री कुमारी पदमा ने मनोविज्ञान मे ही एम. ए. किया उसके पश्चात् मनोविज्ञान मे एम फिल. की उपाधि प्राप्त की। वर्तमान मे वह पी एच-डी कर रही है। आपके पुत्र पुष्पेन्द्रकुमार एम काम. कर रहे है तथा साथ ही जवाहरात का व्यवसाय कर रहे हैं।

□

गोलेच्छा परिवार का परिचय

□ *विजयकुमार गोलेच्छा*

[ससुराल पक्ष परिचय]

गोलेच्छा वश की उत्पत्ति

चन्देरी नगरी मे खरहत्थसिह राठौड राज्य करते थे। खरहत्थसिह के चार पुत्र थे—अम्बेदेव, निम्बदेव, भसासिह और आसफल।

एक बार यवन सेना ने इनके प्रदश को लूटा। खरहत्थसिह को ज्ञात होते ही उसने पुत्रो सहित सेना लेकर यवन सेना का पीछा किया। घमासान युद्ध हुआ। यवन सेना सब कुछ छोडकर पलायन कर गइ।

इस युद्ध म विजय तो हुई, पर चारो पुत्र गम्भीर रूप से घायल हो गये। दवयोग से महान प्रभावक युगप्रधान श्री जिनदत्त सूरि का उस प्रदेश अर्थात् चन्देरी म पधारना हुआ। राजा न उनके महाप्रभाव की बात सुनी और उनकी शरण म पहुँचे, अपनी विपत्ति—पुत्रो की घायल मरणासन्न अवस्था कही। गुरुदेव ने वासक्षेप व जल अभिमन्त्रित कर दिया जिसके प्रयोग से वे शीघ्र स्वस्थ हो गय। राजा की श्रद्धा दादा गुरु मे दृढ हो गई। प्रतिबोध पाकर राजा सपरिवार जन बन गया। उनके साथ अनक अन्य क्षत्रिय आदि भी जैन बन वि० स० ११९७ म।

राजा के तृतीय पुत्र भसासिह के द्वितीय पुत्र का नाम गलोजी था। उनके पुत्र का नाम था वच्छराज। जनता इनको गेलवच्छा के नाम से सम्बोधित करती थी। तब य गलवच्छा कहलाये और वही शब्द अपभ्र श होते-होते गुलेच्छा या गोलेच्छा कहलाना है।

आदरास्पद श्रीयुत रतनचन्दजी गोलेच्छा—आपन खीचन फलौदी मे गुलाबी नगरी जयपुर की ओर प्रस्थान किया। परिवार सहित आप जयपुर म ही बस गये। आपके दो पुत्र थे। बडे पुत्र का नाम श्री नथमलजी था और छोट पुत्र का नाम श्री जवाहरमल जी।

मानव बन कर आय हो मानव ही बनकर चलना, तप पूत हो तप के आगन म है दिन रात तुम्ह पिघलना।
जीवन वही कि जिसकी लौ धरती को नभ से बाँधे, बैठो मेरे पास सुनो तुम मगल दीपक सा जलना॥

विश्वविख्यात गुलाबी नगरी जयपुर के गुलाबी रत्न

दीवान सेठ श्री नथमलजी गोलेच्छा का परिचय

आप बचपन से ही बडे भाग्यशाली तथा प्रखर एव तेजस्वी थे। आपकी कार्यकुशलता को देखकर जयपुर के महाराजा भी आपसे प्रभावित हुए बिना नही रह सके। आपको अपनी रियासत का दीवान बना दिया। आपके छोटे भाई को खजाची बनाया।

आपको दीवान साहब के नाम से प्रसिद्धि मिली। बच्चे बच्चे के मुख पर श्री नथमलजी दीवान का नाम था। शोहरत तो कदम चूम रही थी। सेठ नथमलजी का कटला व सेठ नथमलजी का चौक आज भी आपके नाम से जान जाते हैं।

दीवान पद पर रहते हुए भी आपकी धम के प्रति गहरी आस्था थी। आप साधु-सन्तो के नियमित रूप से दशन का लाभ लेते थे तथा धम की दलाली करते थे। ठाकुर, राजपूत एव अन्य जाति के लोगो को मास मदिरा का त्याग करवाते थे। और उन लोगो को जन सन्तो के दशन करवाते थे।

इस विशाल धरती पर तमाम लोगों के चरित्र ऐसे मिल जायेंगे जिन्होंने दूसरो के भले के लिय अपने आपको समर्पित कर रखा है। इस तरह के व्यक्तियो का जीवन चन्दन के वृक्ष की तरह होता है

जो आज के दूषित वातावरण में रहते हुए भी अपने दान, त्याग और धर्माचरण जैसी शीतल सुगन्धित भावनाओं को नहीं छोड़ते।

जयपुर निवासी सेठ दीवान श्री नथमलजी गोलेछा का जीवन चन्दन की तरह था, जिसमें धर्मानुराग, त्याग, दान भावना की शीतल सुगन्ध समाई हुई थी। वे अपने राज्य कार्य भार के तमाम जंजालों में उलझे रहकर भी दूसरों के कल्याण हेतु हर तरह का सहयोग देते रहते थे। जैन समाज के वे जाने-माने समाज सेवकों में से एक थे।

तुम मित्र जन की ज्योति प्रीति की शक्ति प्रखर, तुम मन, बुद्धि, कर्मों का समन्वय करते थे सत्वर।
तुम मरुत मान थे ज्योतित पखों की उड़ान भर, ले जाते थे आत्मा की आकांक्षाओं को ऊपर।

एक समय की बात है कि आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज साहब के गुरु भाई ने अभिग्रह ले रखा था कि अमुक बात होने पर ही अभिग्रह खोलूंगा और कई दिनों तक उनका अभिग्रह फला नहीं तब आपने अपनी मूछ का बाल तोडकर दे दिया और उनका अभिग्रह फल गया। ऐसी बातें बहुत कम सुनने को मिलती है। आपके पाँच पुत्र और एक पुत्री थी।

आपकी पुत्री का नाम उमराव बाई था। (भुवा सा उमराव बाई)। आप बचपन से ही बड़े लाड-प्यार में पली, शान्त, सरल स्वभाव की थी। सौभाग्य रेखा तो आपको बचपन से ही रही। आपका विवाह कोटा के नगर सुप्रसिद्ध सेठ दीवान रायबहादुर श्रेष्ठिवर्य श्री केसरी सिंहजी बाफना के साथ हुआ था। आप मूर्तिपूजक थे। धर्म मे आपकी गहरी आस्था थी।

सेठ श्री सौभाग्यमलजी आपके तृतीय पुत्र थे—आप इतने भाग्यशाली थे जिन्हे दीवानश्री नथमलजी जैसे पिता मिले। आपका विवाह जोधपुर दीवान की सुपुत्री से हुआ। आपकी धर्म मे बडी रुचि थी, साथ मे दानवीर थे। आप अष्टमी चौदस को रात्रि भोजन व हरी के सौगन्ध रखते थे। आपके तीन पुत्र थे। बडे पुत्र का नाम श्री कल्याणमलजी, दूसरे पुत्र का नाम श्री सरदारमलजी तथा तीसरे पुत्र का नाम श्री राजमलजी था। श्री सरदारमलजी अपने ताऊजी के यहाँ गोद चले गये थे।

श्री कल्याणमलजी गोलेच्छा

दीप्त ओज बल, तप बल आज करे हम धारण, शुद्धमना हम करे मनो से शोक निवारण।
तुम चिर सहिष्णु हम सहन कर सके धीर शात बन, पूर्ण बने हम सौम्य, सत्य पथ करे आप से धारण।

आपका बाल्यकाल का ज्यादातर समय कोटा में आपकी बुआ सा के पास व्यतीत हुआ था। आपकी बुआ के सन्तान न होने के कारण आप पर उनका अत्यधिक स्नेह था। आपका विवाह प्रसिद्ध जैन तेरापंथ समाज के वरिष्ठ श्रावक श्री गुलाबचन्दजी साहब लूणिया जौहरी की सुपुत्री सज्जनकुमारी के साथ हुआ, जो दीक्षा लेकर अब सज्जनश्रीजी महाराज साहब के नाम से विख्यात हैं।

आपने नि सन्तान होने के कारण अपने छोटे भाई श्री राजमलजी के पुत्र विजयकुमार को पुत्र समान माना तथा आपको अपने पौत्र अजयकुमार पुत्र श्री विजयकुमार गोलेछा एव पुत्रियाँ वन्दना तथा नमीता से असीमप्रेमथा। आपके छोटे भाई श्री राजमलजी ने आपके साथ रहकरआजीवनआपकी सेवा की।

शादी के बाद आप कुछ वर्ष तक अपनी धर्मपत्नी के साथ अपनी बुआ सा के यहाँ कोटा रहे। वही से आपकी धर्मपत्नी को वैराग्य भावना आ गयी और उन्होने दीक्षा लेने का निश्चय किया। उन्होने आपसे दीक्षा की आज्ञा माँगी और आपने उनका धर्म के प्रति लगाव देखकर आज्ञा प्रदान की।

आपने अपनी पत्नी की दीक्षा के अवसर पर अपने निवास स्थान गृह (देरासर) मे भगवान ऋषभदेव की भव्य प्रतिमा की स्थापना करवाई।

चरितनायिका के जीवन को नया मोड देने वाला वाफना परिवार

[कोटा के वाफना परिवार का सक्षिप्त परिचय]

पूज्येश्वर वडे दादा गुरुदेव ने प्रसिद्ध राजा भोज क वशजा पवार क्षत्रिया को जैन धम मे दीक्षित कर उ हे सम्यक्त्वधारी वनाया एव ओसवाल जाति मे गौरवशाली वाफना वश की स्थापना की।

इस वश का इतिहास वडा समुज्ज्वल है। सबसे प्राचीन इतिहास जैसलमेर के अमर सागर नामक सरोवर एव उद्यान मे लगे हुए एक शिलालेख से मिलता है जो सेठ हिम्मतरायजी वाफना ने लगाया था।

उनके वश म देवराज जी वाफना, उनके पुत्र गुमानचदजी वाफना थे। इनके पाच पुत्र थे—वहादुरमलजी सवाईराम जी, मगनीरामजी, जोरावरमलजी और प्रतापचन्द्र जी। सवप्रथम सेठ वहादुरमलजी जसलमेर से कोटा आये और चम्वल तट पर कुनाडी ग्राम म दुकान करके व्यापार करना आरम्भ किया। थोडे ही दिनो मे व्यापार उन्नति के शिखर पर चढ गया। आपने करोडो की सम्पत्ति उपार्जित की। जसलमेर से अपने लघु भ्राताओ को भी बुला लिया। सब भाइयो न मिलकर ३५० दुकाने भारतवष के विभिन्न नगरो म स्थापित की और विदेशो—चीन जापान आदि म भी दुकान खोलकर वहा भी व्यापार करने लगे।

पाचो भाई अलग-अलग होकर व्यापार करने लगे। सुविधा के लिए सेठ वहादुरमलजी ने कोटे मे स्थायी निवास करके वहा अपना हैड क्वाटस बनाया।

सेठ वहादुरमल जी तत्कालीन गवनमट की देवली एजसी क व कई रियासता के खजाची (टेजरर) थे। आपको कोटा राज्य की ओर से चाँदी की छडी, अडानी, छत्र, म्याना, पालकी, तामझाम, हाथी घोडा मय सोने के साज के, और कई पट्टे परवाने मिले थे। बूदी से रायमल और टोक राज्य से खुर्रा गाँव जागीर म प्राप्त हुए थे।

आपकी धार्मिक प्रवृत्ति का और देवगुरु के प्रति महान् श्रद्धा का तो इसी से अनुमान लगाया जा सकता है, कि जहाँ-जहाँ दुकानें थी वहाँ-वहाँ मन्दिर देरासर वनाय थे और सारा प्रवन्ध दुकान की ओर से होता था, जो आज भी कई स्थानो पर दृष्टिगोचर हो रहा है। सेठ वहादुरमल जी साहव की भावना श्री शत्रुञ्जय का सघ निकालने की थी जो पूण न हो सकी और उनके स्वगवास के बाद सुयोग्य दत्तक पुत्र श्री दानमल जी साहव न सघ निकालकर अपने स्वर्गीय पिता की अभिलाषा पूण की। श्री वहादुरमल जी का स्वगवास वि० स० १८९० म हो गया।

श्री दानमल जी साहव ने वि स० १८९१ म श्री शत्रुजय का विशाल सघ निकाला। इस सघ म वृहद् खरतरगच्छीय श्री मज्जिनमहेन्द्रसूरिजी महाराज आदि १००० साधु-साध्वी एव यति आदि

पूज्य वर्ग था। सघ में सारे ३० हजार व्यक्ति थे। इस संघ की रक्षा के लिए अँग्रेज सरकार, उदयपुर, कोटा, बूंदी, टोक, जैसलमेर व इन्दौर राज्यो ने स्वयं के व्यय से अपनी-अपनी सेनायें भेजी थी, जिनमें १५०० अश्वारोही, ४००० पैदल, ४ तोपे, हाथी, नगारे, निशान, छड़ीदार, चोपदार आदि थे।

यह संघ मार्ग मे आने वाले जैन मन्दिरो, दादावाडियो एवं धर्मशालाओ का जीर्णोद्धार कराता हुआ स्वधर्मीवात्सल्य प्रभावना आदि करता हुआ क्रमश तीन मास मे श्री सिद्धाचलजी पहुँचा था। इसके उपलक्ष में ओसवाल समाज ने आपको सघवीपद पर अधिष्ठित किया। जैसलमेर महारावल ने लोद्रवा ग्राम जागीर में प्रदान किया। इस सघ मे २० लाख रुपयो का सद्व्यय करके महान पुण्य और अमर कीर्ति प्राप्ति की। आपने कितने ही मन्दिरों और दादावाडियो का निर्माण भी कराया जो आज भी आपकी पुण्य गाथा का मूक गौरवगान कर रहे हैं।

इन्ही के प्रपौत्र स्वनाम धन्य श्री केशरीसिंह जी साहब थे। रतलाम एवं कोटा दोनों ही स्थानो पर आपका अधिकार था। सेठ चादमल जी साहब बाफना ने नि सन्तान होने के कारण आपको ही अपना उत्तराधिकारी बना दिया था। रतलाम के उद्यापन महोत्सव का वर्णन पुण्य जीवन में कर दिया है। सेठ केशरीसिहजी साहब को रतलाम नरेश की ओर से राज्यभूषण, इण्डिया गवर्नमेंट की ओर से सन् १९१२ मे राय साहब, सन् १९१६ मे रायबहादुर तथा सन् १९२५ मे दीवान बहादुर की सम्मानीय उपाधियाँ प्राप्त हुई थी।

ये बडे ही धर्मनिष्ठ, भद्र प्रकृति, निरभिमानी, दानवीर और उदार महानुभाव थे। इतनी सम्पत्ति के स्वामी और कई उपाधियो से विभूषित होने पर भी आप मे अभिमान का अंश भी न था। आप बड़े ही विनम्र स्वभाव वाले दयालु व्यक्ति थे। इनके तीन पुत्र है—श्री बुद्धिसिह जी बाफना कोटे में रहते है। जैसलमेर तीर्थ के ट्रस्टी है। धर्मप्राण सुशिक्षित विनम्र स्वभाव के है। श्री पवित्रकुमार सिंह जी व अशोक कुमार सिह जी दिल्ली में रहते है। दोनो ही व्यापार व्यवहारकुशल धर्मनिष्ठ हैं। धार्मिक कार्यो मे अग्रणी रहते है।

सेठानी श्रीमती गुलाब सुन्दरी बाफना धर्मप्राण, देवगुरु की परम भक्त आदर्श श्राविका रत्न है। लाखो रुपयो का धार्मिक कार्यो में सद्व्यय करती है। पूज्या श्री सज्जनश्रीजी म॰ सा को दीक्षा दिलवाने मे आपका पूर्ण सहयोग रहा है। यद्यपि सेठ सा. श्रीमान् कल्याणमलजी सा० सज्जनकुंवरबाई को उनके आग्रह के अनुसार दीक्षा की आज्ञा दे चुके थे तथापि उनके अनेक आग्रह थे। यथा—अमुक के पास अमुक जगह तथा अमुक समय मे ही दूंगा, आदि-आदि। उस समय सेठ श्रीमान् केशरीसिहजी सा. एव सेठानी सा० श्री गुलाबसुन्दरीजी बाफना ने कल्याणमल जी सा० को स्पष्ट कह दिया कि तुम्हारा काम तो मात्र आज्ञा देने का था सो दे दी। अब शेष बातो के लिए सोचने की जिम्मेदारी आपको नही देनी है। उसके लिए हम लोग काफी है। इसके पश्चात् कल्याणमल जी सा. कुछ बोल न सके, चूं कि उन्होने सेठ सा. व सेठानी सा. को सदा से ही माता-पिता के समान सन्मान दिया है। इस प्रकार श्रीमान् एवं श्रीमती बाफना जी के पूर्ण सहयोग से श्री सज्जनबाई की दीक्षा सानन्द सम्पन्न हुई। सर्वप्रथम मूर्तिपूजक धर्म की सम्प्राप्ति भी आपको (श्री सज्जनकंवर बाई को) यही से अर्थात् बाफना परिवार से ही सम्प्राप्त हुई।

—:●:—
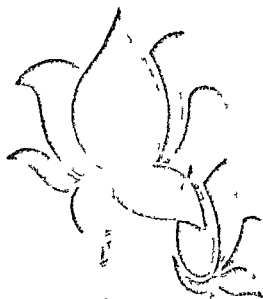
व्यक्तित्व-परिमल

अनुभव-संस्मरण

एक संस्कृत कवि ने कहा है :

हे पथिक ! कुमुद वन की सुषमा और सौरभ का वर्णन तुम क्यों करते हो ? उसका वर्णन तो वहां फूलों पर सतत मंडराते, रसपान करते हुए भ्रमर स्वयं ही मस्त गुंजारव के मिष निरन्तर करते ही रहते हैं। हां, तुम तो सिर्फ उनकी गुंजन की भाषा सुनो, समझो ...

"किसी व्यक्तित्व के विषय में जानना/समझना हो तो उसके मित्र, परिचित, सम्बन्धी और सेवा में रहने वाले निकट व्यक्तियों की बात सुनो, वे ही उसके व्यक्तित्व का यथार्थ स्वरूप बतायेंगे और वही उसका विश्वसनीय/यथार्थ परिचय होगा।

पूज्य प्रवर्तिनी सज्जनश्री जी महाराज के अन्तरंग जीवन का अनुभव की आंखों से देखा यथार्थ और स्मृतियों की स्याही से लिखा सच्चा चित्र यहां प्रस्तुत है। उनके अत्यन्त निकट/आत्मीय भाव से सतत सामीप्य साधने वाले मुनिजन, शिष्याएं तथा श्रावक वर्ग की अपनी शब्दावली में ·
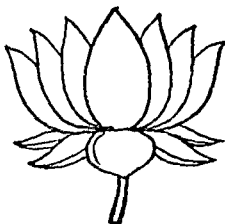
साध्वी हो, तो ऐसी

☐ महोपाध्याय चन्द्रप्रभसागर

विदुषी प्रवर्तिनी श्रीसज्जनश्रीजी का अभिनन्दन आयोजन जानकर प्रसन्नता हुई। इस अभिनन्दन मे मेरे मन की साध पूरी हुई है। यह अभिनन्दन योग्य व्यक्तित्व के ज्योतिर्मय महादीप से उन दीयो को सस्पर्शित करने का प्रयत्न है, जो बुझ हैं, किन्तु जलन के प्रति आस्था रखते है।

मैं कई बार सोचता हूँ कि हमारे देश मे सुयोग्य पुरुषो के, साधुओ के, आचार्यों के अभिनन्दन समारोह तो हर महीने आयोजित किये जाते है, किन्तु सुयोग्य महिलाओ के, साध्वियो के, प्रवर्तिनियो के भी अभिनन्दन समारोह हो, तो अच्छा रहे। मेरा मानना है कि नारी अथवा साध्वी का सम्मान वास्तव मे उस महनीयता का सम्मान है, जिसके कारण मनुष्य और धर्म अपना अस्तित्व पाते है और जिनके बलबूते पर ससार मे अपना अस्तित्व बनाये रखते हैं।

हमारा देश और हमारी सस्कृति पुरुष प्रधान है। इस नीति ने न केवल आम नारी को, अपितु साध्वी को भी दमित किया है। मेरे मन मे नारी-दमन के प्रति आदर भाव नही है।

जिन लोगो ने नारी को पतितकारी बतलाया है, उन्होने वात्सल्य, करुणा जैसे आदर्श गुणो को वहन करने वाले व्यक्तित्व का अपमान किया है। नारी किसी को पतित नही करती, वरन पुरुष स्वय पतित होता है। उसे निमित्त दोष कोई भले ही दे दे पर नारी का व्यक्तित्व तमसावृत नही है। वह तो सद्गुणो की दीपशिखा है।

नारी का सौन्दर्य केवल उसके शरीर मे ही नही, किन्तु उसकी नैसर्गिक चित्तवृत्तियो मे है। उसके सहज भाव उसके शरीर से भी अधिक कोमल और सुकुमार है। उसके कण्ठ से भी अधिक मधुर उसका स्निग्ध व्यवहार है। वह करुणा की प्रतिमूर्ति, सेवा की अनुरक्ति, सहिष्णुता की सजीव प्रतिकृति तथा ममता की जीती जागती आकृति है। वह शक्ति है, जिसकी कृपा पर मानवता का भव्य प्रासाद प्रतिष्ठित है। नारी अपने ही बलबूते पर मातृत्व के महिमा मण्डित सर्वोच्च सिंहासन पर अभिषिक्त एव विराजमान है।

वह स्वर्ग से भी अधिक गरीयसी एव महीयसी इसलिए नही मानी गयी है कि नर मात्र की जननी तथा नररत्न प्रसविनी है, अपितु नारी मे निहित सहज उदात्त गुणो का त्याग कर मानव समाज की कल्पना करना नितान्त असम्भव है। उन समस्त महनीय गुणो के अभाव मे जो समाज बनेगा। उसे समाज शब्द से अभिहित करना उस शब्द के साथ बडा भारी अन्याय होगा। वस्तुत उसे असुर-समूह या पशुओ का झुण्ड कहा जा सकता है।

यह सर्वथा सत्य है कि नारी शारीरिक बल में पुरुष से घटकर है, पर यह ध्यान रखना चाहिये कि शारीरिक बल ही सब कुछ नहीं है। यह निर्विवाद सर्वसम्मत है कि शारीरिक बल से नैतिक बल कहीं ज्यादा बढ़ा-चढ़ा है। शारीरिक बल तो पशुबल है, जो सर्वथा निन्दित और गर्हित है। ये नैतिक बल ही है, जिसके चलते मनुष्य में देवत्व की प्रतिष्ठा होती है। समस्त नैतिक बलों की अधिष्ठात्री नारी ही है।

मेरी समझ से नारी को यदि अवसर मिले तो वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मात्र पुरुष की समता ही नहीं कर सकती, बल्कि जीवन के कुछ महत्वपूर्ण उपयोगी क्षेत्रों में पुरुष से बढ़कर अपने को सिद्ध कर सकती है। यह केवल कपोल कल्पना नहीं है। इतिहास में ऐसी बहुत-सी नारियाँ हो चुकी हैं जिन्होंने अवसर पाकर गौरव के उच्च शिखर पर अपने को आसीन किया है। दूर अतीत को छोड़ भी दें, तो राजनीति में श्रीमती इन्दिरा गाँधी, काव्य में महादेवी वर्मा आदि किस माने में पुरुष से घटकर थीं। धार्मिक क्षेत्र में मदर टेरेसा का नाम लिया जा सकता है। साध्वी जगत् में मैं जिन-जिन से प्रभावित हुआ, उनमें विचक्षणश्रीजी और सज्जनश्रीजी का नाम मुख्य है। ये दोनों आचार्य पदधारी न रहीं हों, पर उनका व्यक्तित्व मुझे किसी पहुँचे हुए आचार्य से भी बढ़कर लगा है।

प्रवर्तिनीश्री सज्जनश्रीजी नारीत्व की ज्योतिर्मयता को संवहन करने वाली दीपिका हैं। उनका जीवन प्रकाशवाही है। वे कम बोलती हैं। पर जो बोलती हैं, वह उनकी ज्योतिर्मयता की जम्हाई होती है। उनके बोल उसे बहुत भाते हैं, जो स्वयं ज्योतिर्मय होने के लिए उत्कण्ठित है। वे मितभाषी साध्वी हैं। इसलिए वहाँ होठों के स्वर उतने अच्छे नहीं लगेंगे, जितने उनके मौन के स्वर। मुझे तो बहुत सुहाया उनका वह रूप, जिसमें भाषा का लेन-देन कम है। मेरी समझ से यह गुण अहिंसा-महाव्रत का पालन करने के लिए एक अनिवार्य शर्त है।

साध्वीश्री के गेहुँए मिट्टी के दीये में जगमगाती है उजली दिव्यता। वे सही अर्थों में साध्वी हैं। उनमें कषाय नहीं है, अतः वे पशुता की सीमा से परे हैं। कषाय और पशुता दोनों में मैत्री है। कषाय वह है, जो व्यक्ति को कसता है और पशु वह है जो पाश में बँधा है। मनुष्य मनन करता है पाश-मुक्ति के बारे में। इसलिए मनुष्य मननशील-जन्तु है। साधुई जीवन पशु और मनुष्य से ऊपर खिला कमल है। विवेच्य साध्वी के साथ यह साधुई उपमा पूरी तरह फबती है।

साध्वी श्री सज्जनश्रीजी वात्सल्य और सेवा की तो प्रतिमूर्ति हैं। मैंने उनके जीवन-चक्र में घटित हुई कुछेक घटनाओं को सुना है अपनी नन्ही-बड़ी साध्वियों के गुणानुरागी मुख से। उन्होंने अपनी गुरुवर्या की जबरदस्त सेवा-सुश्रूषा की। गुरु-भगिनियों के प्रति उनका आत्मीय व्यवहार तो मैंने भी प्रत्यक्ष निहारा है। एक भेद-विज्ञानी साधिका हुईं—साध्वीश्री विचक्षणश्री। उनके साथ कितना मधुर सम्बन्ध, अपनापन और वैयावृत्यझकृत व्यवहार था उनका मैंने वह सब उस समय देखा है, जब मैं उनकी सज्जनता से अपरिचित था।

प्रवर्तिनीजी की विनयशीलता की खरतरता-तेजस्विता ने भी मुझे प्रभावित किया। प्रवर्तिनी-जैसा उच्च पद प्राप्त होने के उपरान्त भी अपनी गुरु-बहिनों के साथ इतना नम्र और झुका हुआ व्यवहार कम महत्वपूर्ण नहीं है। विद्वत्ता के टीले हर कोई खड़ा कर सकता है, किन्तु ऋजुता/सरलता की सहज प्रवाहवती धारा हर किसी के दिल से उद्भूत नहीं हो सकती। उनमें संगम है दोनों का गंगा यमुना का, विद्वत्ता ऋजुता का। बिना ऋजुता का ज्ञान व्यक्ति के लिए अहंकार का कारण बनता है। चूँकि ऋजुता उनकी परछाईं है, अतः उनका निरभिमानी होना स्वयमेव सिद्ध हो जाता है। ●

प्रवर्तिनी सज्जनश्रीजी महाराज के निकटस्थ

आत्मीय जनों के अनुभव/संस्मरण एवं प्रेरक प्रसंग

□ साध्वीश्री हेमप्रज्ञाश्रीजी म

(सुशिष्या स्व० साध्वी विचक्षणश्रीजी म०)

प्रभावशाली व्यक्तित्व अनेक होते हैं, किन्तु कुछ व्यक्ति अहंकार की प्रेरणा से जगत में अपना प्रभाव स्थापित करते हैं। और कुछ व्यक्तियों का जीवन ही इतना सरल और सहज होता है कि दुनियाँ उनसे स्वयं प्रभावित होती है। सरलता और सहजता जिनके जीवन में विशेष रूप से प्रतिबिम्बित होती है—वे हैं प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी म सा।

जब अन्तरंग में सरलता होती है तब व्यवहार में सहजता होती है, जब अन्तरंग में अहंकार होता है तब व्यवहार में कृत्रिमता होती है। बहुत सी बार नम्रता का बाना धारण कर अहंकार उपस्थित हो जाता है। किन्तु जिनके अन्तःकरण में सरलता होती है उनके व्यवहार में नम्रता और सहजता स्वयमेव होती है।

प्रवर्तिनीश्रीजी की विशेषता है कि सर्वोच्च पदासीन होने पर भी उनके प्रत्येक व्यवहार में सरलता और निरभिमानता झलकती है।

एक बार मध्याह्न का समय था। प्रवर्तिनीश्रीजी पाट पर विराजमान थी। मैं एक ग्रन्थ लेकर उनके सम्मुख उपस्थित हुई और निवेदन किया—पूज्याश्री ! यह विषय समझ में नहीं आ रहा। उन्होंने तुरन्त अपने हाथ की पुस्तक रखकर ग्रन्थ ले लिया और समझाना प्रारम्भ कर दिया। मेरी दृष्टि कभी ग्रन्थ में केन्द्रित हो जाती थी तो कभी उनकी मुखाकृति पर। पांच मिनिट ही व्यतीत हुए थे कि उन्होंने अपनी दृष्टि ग्रन्थ से हटाई और क्षण भर चुप रहकर कहा—अरे ! तुम खड़ी रहोगी ? बैठ जाओ ! मुझे असमंजस में देखकर उन्होंने पुनः सहजता से कहा—अच्छा ! नीचे बैठने पर ग्रन्थ नहीं देख पाओगी तो कोई बात नहीं इसी पाट पर बैठ जाओ।

मैं संकुचित हो उठी। सर्वोच्च पदासीन, साध्वी वर्ग की संचालिका, प्रवर्तिनी पदविभूषिता साध्वी श्रीजी एक छोटी सी सामान्य सी साध्वी को अपने पाट पर बैठने के लिए कहे। मैं आश्चर्यमुग्ध थी। उन्होंने विषय समझा दिया। मैं ग्रन्थ लेकर अपने स्थान पर जा बैठी। आँखें ग्रन्थ पर टिकी थी—

पर मन मे विचारो का प्रवाह उमड रहा था— सोच रही थी— साधना का फल क्या है ? स्वाध्याय की परिणति क्या है ? सरलता, निरभिमानता।

यद्यपि साधक की साधना का उद्देश्य कषायविमुक्ति होना है। कषायमुक्ति के लिए वह विषय-त्याग, इन्द्रियसंयम, कठोर ब्रह्मचर्य पालन करता है किन्तु फिर भी कई बार अहंकार से पराजित हो जाता है और अपनी साधना को ही अहंकार का कारण बना लेता है। स्वगुणों का भान ही कभी-कभी अभिमान उत्पन्न कर देता है। क्योकि शक्ति प्राप्त होना बडी बात है। कहा गया है—ज्ञान का अजीर्ण अहं, तप का अजीर्ण क्रोध, क्रिया का अजीर्ण दूसरो के प्रति तिरस्कार के रूप मे प्रकट होता है। अत. साधना के साथ सरलता मणिकाञ्चन सयोग है।

प्रवर्तिनी श्रीजी का जीवन क्षमा, वात्सल्य, अप्रमत्तता आदि अनेक गुणो से परिपूर्ण है। साधक जीवन की साधना की गहराइयो को समझना सहज नही है। साधक का व्यक्तित्व सर्वाङ्ग रूप से लिपिबद्ध करना प्राय असम्भव है। पुष्प ने कितनी बाधाएँ और काँटो की पीडा सहन की है यह तो वही जान सकता है किन्तु जगत तो उसके सुवासित सौन्दर्य को देखकर ही मुग्ध होता है। उसी प्रकार विशिष्ट गुणो से पूर्ण व्यक्तित्व कितनी साधना के पश्चात् प्रकट हुआ है—यह तो उसी का अनुभव है किन्तु हम उसके जीवन से प्रेरणा लेकर अपने जीवन को गुणो मे परिपूर्ण बना सकते है। प्रवर्तिनीश्री जी का विशिष्ट व्यक्तित्व हमारे लिए मार्गदर्शक है। सदा-सदा रहे—यही मगलभावना है। □

□ *साध्वीश्री मंजुलाजी*

वयोवृद्धा पूज्या प्रवर्तिनी साध्वी श्री सज्जन श्रीजी महाराज जैन समाज की प्रभावक साध्वियो मे से एक है। आपके व्यक्तित्व निर्माण के घटको मे विनय ने अह भूमिका निभाई है। विद्वत्ता का होना सहज है किंतु विद्वत्ता के साथ विनय और निरभिमानता का होना बहुत ही दुर्लभ है।

चार साल पहले की बात है। सयोग से हमारा चातुर्मास भी जयपुर मे था और साध्वीवर्या श्री सज्जन श्रीजी महाराज भी वही विराजमान थी। साध्वीश्रीजी मेरे लिए हर दृष्टि मे मातृ स्थानीय हैं। वय-स्थविर, शास्त्र-स्थविर और प्रव्रज्या-स्थविर तीनो दृष्टियो से स्थविर होते हुए भी आपकी विनम्रता, शालीनता और सहृदयता देखकर हम गद्‌गद् थे।

एक बार किसी समारोह मे हम पास-पास बैठे थे। साध्वीश्री ने बडे ही आत्मीयता भाव से हमारे नवोदित संघ की स्थिति के बारे मे पूछा। मुझे बड़ा अच्छा लगा। माँ की ममता, पिता का प्यार और सम्बन्धियो का सा स्नेह सभी कुछ आप मे नजर आया। कुछ दिन बाद हम कुछ साध्वियाँ उस आत्मीय भाव से प्रेरित होकर साध्वीश्रीजी के स्थान उपाश्रय मे पहुँची। साध्वीश्रीजी ने हमे देखते ही पट्ट से उठकर आगवानी की और अस्वस्थता की हालत मे भी पट्ट छोड़कर नीचे विराजमान हुई। जबकि हम देखते हैं बडे बड़े साधनारत आचार्य भी पट्ट का मोह नही छोड़ पाते।

बहुत से समारोह इसीलिए गडबड़ा जाते हैं कि कौन आचार्य ऊँचे पट्ट पर बैठे और कौन नीचे आसन पर। एक तरफ भगवान महावीर ने विनय को धर्म का मूल बताया है और दूसरी तरफ हमारे मनस्वी आचार्य व वर्चस्व शील मुनिवर आसन के अहकार मे बड़े से बडे धर्मलाभ को ठुकरा देते हैं। कुछ आचार्य व मन नो राजनेताओ को अपने सामने जमीन पर बैठाकर गर्वित हो जाते है। जबकि मुनि की गरिमा विनम्रता मे है, अकडाई मे नही। वह विनयता साध्वी श्री सज्जन श्रीजी मे देखने को मिली। साध्वीजी को उसी विनय भावना ने उन्हे बहुत बड़ा बना दिया है।

जो व्यक्ति औरो को महत्व देता है उसे अपने आप महत्व मिल जाता है। जो व्यक्ति दूसरा का उचित मूल्याकन करना जानता है वह दुनिया की नजरो म अपन आप बडा आका जाता है। औरा को हीन, दीन और लघु समझने वाला खुद ही लघुत्व को प्राप्त होता है।

आज के युग मे साध्वीश्री का जीवन एक महान आदश है। अनेक विशेपताओ का सगम आपका जीवन है। फिर भी आपको अभिमान बढ नही पाया है।

ऐसी सवगुणसम्पन्न प्रवर्तिनी साध्वी श्री सज्जनश्रीजी के दीघ साधना काल की कामना करते हुए मैं आपश्री के सवगुणसम्पन्न व्यक्तित्व की अभिवन्दना करती हूँ। □

□ श्री हीराचन्दजी वैद, जयपुर

आज हम सयममाग पर आरूढ एक महान् व्यक्तित्व के सम्बन्ध म विचार करने को तत्पर हुए हैं। यह और भी विशेपता की बात है यह व्यक्तित्व नारी समुदाय से है। अब से ८० वप पूव लूनिया परिवार म जन्म लेकर तया सम्पन्न गोलेछा परिवार म परिणीत होकर ३४ वप की अल्प आयु मे सयम माग पर आरूढ होने का साहस करने वाली इस नारी जाति के आदश ने जन समाज के साथ ही जयपुर नगर को गौरवान्वित किया है।

आपका जीवन ज्ञान एव भक्ति की ज्योति से ज्योतिमय

आप आगम ग्रन्थो की महान जानकार हैं ही इसी से आपश्री 'आगम ज्योति' पद से विभूपित है। साथ ही आपने कई ग्रन्थो की रचना की है। महत्व की वात तो यह है कि ज्ञान की इस महान परा-काष्ठा पर पहुँचने पर भी सरलता विनम्रता-सौम्यता मृदुता मानो एक साथ आपके जीवन मे सन्निहित हो गई है। उदार भावना की तो जो झलक आपमे आई है वह अनुमोदनीय है। मेरे जीवन म कुछ प्रसग आये हैं जब उनकी उदार भावना ने नतमस्तक कर दिया है और मैं समर्पित हो गया हूँ उनकी इस महानता के प्रति।

एक वक्त जब मैं जयपुर तपागच्छ सघ का सघ मन्त्री था तब दो भाद्रपद के कारण दो पर्युपण हुए—इधर चातुर्मास का कोई योग नही था। पूज्य प्रवर्तिनी जी का चातुर्मास जयपुर मे था। हमने बडी झिझक के साथ आत्मानन्द सभा भवन मे पधार कर पर्युपण म व्याख्यान देने हेतु निवेदन किया। ऐसी परिस्थिति मे विचार-विमश कर जवाब देने की प्रथा बनी हुई है। पर हम बडा सुखद आश्चय हुआ जब आपने फरमाया कि इसमे क्या पूछना सोचना है मेरा सद्भाग्य है जो मुझे भगवान महावीर की जीवन गाथा एक ही वर्ष मे दो बार वाचने का अवसर मिला है। आपने तो मुझे आमन्त्रित कर मेरे पर उपकार किया है मुझे इसके लिए धन्यवाद देना चाहिए आपको। कैसी सरलता, कैसी उदारता, ऐसा ही एक और प्रसग मेरे सघ मन्त्रित्व काल म आया। जयपुर के बाठिया परिवार की एक बहिन आपश्री के पास सयम ग्रहण करने वाली थी। उस वक्त जयपुर मे पूज्य मुनिराज श्री विशालविजय जी (अब जनाचाय विजय विशालसेन सूरि जी महाराज सा) विराजते थे। आपन बडी उदारता और भावना से इस दीक्षा का विधि विधान कराने हेतु मुनि प्रवर से प्रार्थना की। मुनिप्रवर बहुत सकोच म थे एक तो समुदाय भेद, दूसरे इससे पूव कभी इस तरह की दीक्षा का प्रसग व विधि विधान उनके हाथ से सम्पन्न नही हुआ था। पूज्य साध्वीजी म सा ने जिनकी मेरे पर बडी कृपा रही है मुझे कहा कि कैसे भी तुम्हें मुनिप्रवर को इस काय हेतु तयार करना है। हम सब महावीर के सिपाही हैं। मुनिप्रवर की जयपुर म मौजूदगी हो और

दीक्षा प्रसंग उनकी निश्रा मे न हो यह बात हम सबके लिए शोभनीय नही रहेगी। और अन्त मे मुनि श्री को उनकी भावना समझनी पड़ी और अति भक्ति व शालीनता से दीक्षा सम्पन्न हुई और आपश्री विद्वान शिष्या प्रियदर्शना श्रीजी सयममार्ग पर आरूढ हुई।

अभी-अभी का एक प्रसग और बना है। जयपुर के निकट जोबनेर मे राष्ट्रसंत आचार्य पदमसागर सूरीश्वर जी के शिष्य पन्यास धरणेन्द्रसागरजी म की निश्रा मे मन्दिरजी के प्रतिष्ठा महोत्सव का आयोजन था। इस क्षेत्र मे कभी अपने साधु-साध्वियो का विचरण भी नहीं हुआ था। मैंने प्रवर्तिनी जी से निवेदन किया आप अपनी शिष्याओ को इस महोत्सव मे जोबनेर भिजवाने की कृपा करें। मेरा निवेदन उनकी पुरानी यादो मे समा गया। उन्होने फरमाया—जोबनेर मेरे जीवन की निकट कुल की भूमि है। मैं जरूर तुम्हारे निवेदन को ध्यान मे रखकर शिष्याओ को भेजूगी और भेजा। उनके पधारने से महोत्सव की शान बढ गई तथा उनके उपदेश से वहाँ का समाज काफी लाभान्वित हुआ।

ये कुछ प्रसग हैं जो यह दर्शाते है कि वे केवल विशेष समुदाय के साथ बँधी हुई नहीं है अपितु महावीर के नाम व काम के लिए सदैव समर्पित हैं।

यही वजह है आज जयपुर मे सब ही समुदायो मे उनके प्रति अटूट आस्था है बहुमान है। उनकी एक और घटना मैं प्रस्तुत करूँगा।

गुरुवर्या साध्वीश्रीजी म. सा ने आज से करीब ६५ वर्ष पूर्व महिलाओ की खासकर विधवा व परित्यक्ता बहनो के शिक्षा हेतु जैन श्राविकाश्रम नाम से एक सस्था की स्थापना की। पर उस काल मे समाज उनकी भावना को नही समझ सका और थोडे ही समय मे वह सस्था बालिकाओ के स्कूल रूप मे परिणत हो गयी। यही स्कूल आज वीर बालिका शिक्षण संस्थान के रूप मे प्राथमिक से स्नातक की शिक्षा व नारी जागरण का केन्द्र बन गया है। और करीब ३५०० बहने वहाँ शिक्षण प्राप्त कर रही है। इस सस्था के साथ तो प्रारम्भ से ही आपका लगाव रहा और सस्था के उत्थान व विकास के लिये आप सदैव ही प्रेरणा देती रही। पर आपने संयम मार्ग ग्रहण कर भी विद्या अध्ययन के लिए भी इस संस्था को चुना और हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की प्रथमा, विशारद व साहित्यरत्न की कक्षाओ का अभ्यास भी यहाँ किया तथा परीक्षायें भी यहाँ से दी। वीर बालिका शिक्षण सस्थान अपने ऐसे गरिमायुक्त विद्यार्थी को पाकर स्वयं गौरवान्वित हो रहा है। और अपने एक अंग को आज जैन शासन के श्रमणी समुदाय के महान व उच्च प्रवर्तिनी पद पर आरूढ पाकर फूला नही समाता। एक बात और, उन्होने इस सस्था मे केवल शिक्षा ही नही पाई अपितु अन्य छात्राओ को शिक्षा प्रदान करने मे शिक्षिका की भूमिका भी निभाई। इस संस्था को आपसे पूर्ण अतिप्रियता मिली है। उनका आशीर्वाद ही इस सस्था के उन्नत व विकासशील बनने मे सहायक बना है।

ऐसी महान विभूति की सेवाओ को याद करने, चिरस्थायी बनाने व प्रेरणा प्राप्त करने के लिए उनके ८०वे वर्ष पर एक अभिनन्दन ग्रन्थ का प्रकाशन किया जा रहा है वह सस्तुत्य है, अनुमोदनीय है।

ऐसे महान अप्रतिम प्रतिमा के धनी जैन शासन की विदुषी आर्या को शत. शत नमन। शत: शत वन्दन।

☐ श्रीराम अमरचन्द जी लूणिया

(अध्यक्ष श्री जैन श्वे० खरतरगच्छ श्री सघ, अजमेर)

राजस्थान के ऐतिहासिक नगर जयपुर के लूणिया वंश की अनुपम देन, जैन श्वेताम्बर मूर्ति-

पूजक समाज को एक महान प्रबुद्ध व्यक्तित्व के रूप मे, प्रवर्तिनी पूज्या सज्जन श्री जी म० सा० की है। जिस किसी ने आपका पावन सान्निध्य दर्शन, वंदन कर प्राप्त किया वह मृदुस्मित मुस्कान के साथ आत्म कल्याणी उपदेश एव मागलिक से धन्य हो गया।

प्रतिपल जापपरायणा सयमनिष्ठ अप्रमत्ता प्रवर्तिनी ज्ञानश्रीजी महाराज की आप परम प्रिय शिष्या रही हैं। आपके अनुशासन म शिक्षित-दीक्षित, एव सेवारत विदुषी शिष्यावर्ग भी खरतरगच्छ सघ की अनुपम धरोहर के रूप म जिनशासन प्रभावना मे विशाल योगदान दे रही हैं, यह सर्व विदित ही है।

भारत कोकिला समन्वय-साधिका समताधारी स्व० प्रवर्तिनी श्री विचक्षणश्री जी म० सा० ने आपकी विशाल प्रतिभा को आकते हुए आपको "अध्यात्म रस निमग्ना" पद से तो अलकृत किया ही था। किन्तु आपको प्रवर्तिनी पद देने की भी अपने पत्रो म भावना व्यक्त की थी। दिल्ली म मैंने सन १९८० म अनुयोगाचार्य पूज्य श्री कान्तिसागर जी म० सा० को स्व० प्रवर्तिनी जी महाराज की पत्रावली बताई तथा आपको प्रवर्तिनी पद देकर उक्त भावना को मूर्तरूप देन की विनती की, आपने उसी समय मुझे आश्वस्त किया कि ठीक है, यह होना श्रेष्ठ रहेगा। अखिल भारतीय श्वेताम्बर जैन खरतरगच्छ महासघ के प्रयत्नो मे सन् १९८२ म पूज्यवर के आचार्य पद विभूषित होने के पश्चात् जयपुर म पुन महासघ द्वारा चर्चा की गई तथा पूज्या सज्जन श्रीजी म सा को प्रवर्तिनी पद देने का मुहूर्त शीघ्र निकालने का निर्णय लिया गया। श्री खरतरगच्छ श्रीसघ जोधपुर की इस महान् कार्य म अत्यधिक रुचि थी, अत मिति मिगसर वदी ६ सम्वत् २०३९ को पूज्य आचार्य श्री १००१ श्री कान्तिसागर सूरीश्वर जी म सा की पावन निश्रा म आपको प्रवर्तिनी पद से जोधपुर में समारोहपूर्वक अलकृत किया गया।

आप जैन दर्शन की ममज्ञ होने के साथ-साथ ज्योतिष शास्त्र म भी अपना वर्चस्व बनाये हुए हैं। सन् १९८२ म चातुर्मास म जब पर्युषण पर्वाराधना को लेकर खरतरगच्छ सघ विषम परिस्थिति म पड गया था उस समय महासघ के अध्यक्ष श्री जवाहरलाल जी सा० रावयान, महामत्री श्री दौलतसिंह जी सा० जैन एव राजस्थान क्षेत्र उपाध्यक्ष (लेखक) के साथ आचार्य भगवन्त श्री कान्तिसागर सूरीश्वर जी म० सा० के पास जोधपुर विनती करने गये कि इस प्रकरण का सुलझाव का प्रयत्न किया जाये। आचार्यश्री ने उसी समय श्री केशरियानाथ जी के मदिर के पास उपाश्रय से पूज्या श्री सज्जन श्री जी म० सा० को बुलाया तथा आपसे गूढ विचार विमर्श करके समस्या का समाधानपूर्वक हल निकाला। आपके आदेशानुसार अध्यक्ष महोदय आचार्य श्री उदयसागर सूरीश्वर जी म० सा० के पास स्वीकृति हेतु पधारे, इस सर्वमान्य निर्णय से समस्त खरतरगच्छ को सुसगठित होकर एव एकता बनाये रखकर पर्युषण पर्व मनाने का सुयोग प्रदान किया। अत अखिल भारतीय खरतरगच्छ महासघ ऐसी महान् विदुषी साध्वीजी का सदैव ऋणी रहेगा।

अजमेर सघ को १९८० म आपश्री के चातुर्मास कराने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। अजमेर चातुर्मास के सुअवसर पर ही परम पूज्य बालब्रह्मचारी आर्या श्री सम्यग्दर्शना श्री जी म सा ने मासखमण की दीर्घ तपस्या छोटी उम्र म सम्पूर्ण की। इस महान् तपस्या के उपलक्ष म अठाई महोत्सव कराने का लाभ श्री जैन श्वेताम्बर श्री सघ (पजीकृत) अजमेर ने लिया। तथा पूज्या महाराज श्री सज्जन श्रीजी म० सा० की पावन निश्रा म समारोह व शान्ति स्नात्र पूजन आदि सुसम्पन्न हुए।

अजमेर खरतरगच्छ श्री संघ भी आपका महान उपकार कभी नही भूल सकता है। अप्रेल १९८१ में यहाँ के इतिहास में सर्वप्रथम भागवती दीक्षा हुई। आपके ही स्नेहपूर्ण शिक्षण, प्रशिक्षण एव मातृवत् स्नेह ने श्री संघवी मानमलजी सुराणा की आतमजा कुमारी मन्जु सुराणा बी. ए. को वैराग्य भावना से अभिभूत कर दिया तथा परम पूज्य शासन प्रभावक मुनिराज १०८ श्री कैलाशसागर जी म. सा की पावन निश्रा में पूज्य विजयेन्द्र श्री जी म० सा० आदि की उपस्यित में विशाल समारोह (दौलत-बाग) में आयोजित कराके कुमारी मन्जु सुराणा को भागवती दीक्षा आपके द्वारा प्रदान की गई, तथा आर्या मुदितप्रज्ञा श्रीजी नामकरण किया गया। उपरोक्त आयोजन श्री जैन श्वेताम्बर श्री सघ (पजीकृत) अजमेर के तत्वाधान में श्री मानमलजी सुराणा के सहयोग से सुसम्पन्न हुआ।

अजमेर संघ का परम सौभाग्य रहा कि इस वर्ष दूरदर्शी घोर तपस्विनी पूज्य श्री शशिप्रभा श्री म. सा. के दो वर्ष के वर्षीतप के पारणे का सुअवसर प्राप्त हुआ।

इसी वर्ष आप उच्च रक्तचाप से ग्रस्त हो गई तथा व्याख्यान में ही आपकी वाणी पर हल्का पक्षाघात भी हुआ जिससे एकदम चिन्ता व्याप्त हो गयी और भागदौड़ मच गई, जयपुर से वैद्यराज सुशीलकुमार जी को लेकर श्रद्धेय श्री राजरूप जी सा टाँक पधारे और आपका निदान कराके उचित पथ्य एव औषधोपचार निर्देश दिया। परम पूज्य प्रत्यक्ष प्रभाविक दादा गुरुदेव की असीम अनुकम्पा से आपने शनैः शनै स्वास्थ्य लाभ प्राप्त किया तथा जोधपुर की ओर प्रस्थान किया।

इस प्रथम आघात के समय व सन् १९८८ के जयपुर मे हुए दीर्घ रक्तस्राव की भयकर त्रपसदी से जब सारा जयपुर श्री सघ व अजमेर श्री सघ चिन्ता मे डूब गया था तब आपने असीम धैर्य व साहस से जब पीड़ा को झेलते हुए डाक्टरो के खून चढाने के तीव्र आग्रह को अपने स्पष्ट रूप से मना कर दिया और दैव के भरोसे निमग्न रही। शासन देव की कृपा से आपने यह भीषण रोगावस्था भी सकुशल पार की और अभी भी इस वृद्ध अवस्था मे भी आप सतत् लेखन-पाठन-धर्मक्रिया आदि से शिष्य परिवार को अनुशासित करती रहती है। आप अभी "देवचन्द्र बालावबोध" ग्रन्थ का विशद लेखन कार्य सम्पन्न कर चुकी हैं।

अपने दर्शनों को आये भक्त परिवारो को आप मागलिक व धर्म-देशना से दिनभर विराजे रहकर, बिना आराम किए, लाभान्वित करती रहती है तथा अपनी गुरुवर्या पूज्य प्रवर्तिनी म० सा० स्व श्री ज्ञान श्री जी म० सा० के बताये समन्वय प्रेम, समता के उपदेशो की जन-जन पर निरन्तर वर्षा करती रहती है।

अजमेर खरतरगच्छ श्री सघ आपका हार्दिक अभिनन्दन करते हुए शासन देव से प्रार्थना करता है कि ऐसे पूज्य भव्यात्मा को स्वस्थ एव दीर्घायु करे ताकि वे अपनी प्रतिभा से जैनधर्म का ध्वज उच्च शिखर पर पहुँचावे।

☐ श्री अरुणकुमार जैन शास्त्री, व्याकरणाचार्य

जहाँ साधु-महात्माओ का संग है, वह स्थान ही साक्षात तीर्थ होता है। जयपुर में दादाबाडी भी एक ऐसा ही जीवन्त तीर्थ है। इस सतसग की सूत्रधात्री, आधारस्तम्भ प्रवर्तिनी सज्जनश्रीजी महाराज है। उनकी सौम्यमूर्ति दर्शनीय है, उनका आचरण ग्रहणीय है, उनके हाथ मे प्रतिसमय पुस्तक दिखती है, व्यर्थ के विकल्पनाओ में स्वयं को उलझाती नही, निरन्तर पठन-पाठन ही उनका कार्य रहा है।

पू प्रवर्तिनीजी म का दादागुरुदेव के प्रति समपर्ण

पू गुरुदेव आचार्य श्री जिनकान्तिसागरसूरीश्वर जी म सा से निर्देश ग्रहण कर रहे पू प्रवर्तिनी जी एवं शिष्या मण्डल (जोधपुर चातुर्मास वि सं 2039)

पू मुनि श्री मणिप्रभसागर जी म सा से द्रव्यानुयोग पर चर्चा कर रही पूज्य प्रवर्तिनी जी म

लूनिया परिवार के साथ प्रवर्तिनी श्रीजी

जीवन में क्षणिक राग द्वेषों से बहुत दूर उनका सरल, सौम्य जीवन है। उनका दर्शन ही सुखद है, तो उन जैसा जीवन सुखद क्यों न होगा ?

एक दिन की बात है मैं वहां सौम्यगुणाश्री महाराज तथा शुभदर्शनाश्री महाराज को न्याय का विषय समझा रहा था। जहाँ मैं बैठा था, वहाँ धूप आ रही थी, वह धूप साधारणतया तापदायक थी ही, पर विषय समझाते समय उस ओर ध्यान जाता नहीं था।

उसी समय महाराज सा० किसी कारणवश बाहर आयीं, उन्होंने मुझे देखा, तो तुरन्त आकर कहा "मास्टरजी को धूप में क्यों बैठने दिया ? धूप तेज है, छाया में आसन बिछाओ।"

जीवन में कई घटनायें छोटी छोटी होती हैं, पर उनसे हृदय का अवबोध होता है।

मुझे महाराज सा० के हृदय की विशालता व करुणा का ज्ञान उस छोटी सी घटना से हुआ।

उस घटना से हृदय आज भी उनके समक्ष झुकता है।

हमारे हृदय का खुद ब खुद उनके सामने नम्र होना ही उनके माहात्म्य की महिमा है।

"महात्माओं का हृदय विशाल होता है" इस नीतिवाक्य का साक्षात जीवन्त उदाहरण महाराज सा० स्वयं हैं।

ऐसे महात्मा सभी को लाभान्वित कर उस भावना के साथ उनके दीर्घायुषी जीवन की कामना करता हूँ। □

□ व्यक्तित्व के विविध उज्ज्वल पक्ष

□ *कुमारी बेला भण्डारी*

भारतीय धरा पर ऐसी अनेक महान् विभूतियां हुई हैं जिन्होंने अपने ज्ञान, त्याग एवं तपोमय जीवन से देश के नाम को सदैव आलोकित किया है। ऐसी ही चन्द महान विभूतियों की पंक्ति में आगम निष्णात, अज्ञान तिमिर तरणि, आशु कवयित्री, शान्तिप्रिय, त्यागी-तपस्वी, तत्व द्रष्टा, महाप्रतिभा सम्पन्न सज्जनश्रीजी महाराज साहब का नाम निःसन्देह अंकित किया जायेगा। इन्होंने अपने त्याग, तप, ज्ञान एवं चारित्र बल से जन-जनतर समाज का अवर्णनीय उपकार किया है। इन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन बौद्धिक एवं आध्यात्मिक उत्थान के प्रयत्न को अर्पित कर दिया।

बौद्धिक पक्ष—

इनमें बौद्धिक सूझबूझ के साथ मस्तिष्क का सार्थकतापूर्ण उपयोग करने की अनुपम विशेषता है। यही असाधारण विशेषता इन्हें अन्य अन्य विभूतियों से भिन्न श्रेणी में रखती है। इनमें किसी भी विषय की दार्शनिक व्याख्या करने के तौर तरीके अन्य पद्धतियों से भिन्न हैं।

आध्यात्मिक पक्ष—

इनके व्यक्तित्व की आध्यात्मिक गहनता का सही ढंग से अन्दाज लगाना अत्यन्त कठिन है। यह निर्विवाद सत्य है कि इन्होंने आध्यात्मिक क्षेत्र में एक विशिष्ट स्थान बनाया है। इनकी आध्यात्मिक शक्ति अन्य चमत्कारिक शक्तियों से भिन्न है। ये सदैव चमत्कारों से दूर रही हैं। वास्तव में लोग आध्यात्मिक चमत्कार से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होते हैं। वे गुप्तर आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर होने में असमर्थ हैं। किन्तु उनका आध्यात्मिक जीवन बहुजन हिताय एवं बहुजन सुखाय है।

प्रवचन पक्ष :—

इनके विचार गूढ एव गहरे अवश्य है परन्तु वे सरल एवं सुग्राह्य भी है। इनके प्रवचन सार्वभौमिक शास्त्रीय सत्यो पर आधारित, मधुर एव सारगर्भित हैं जो श्रोताओं के मन, मस्तिष्क एव हृदय पर अमिट छाप छोड जाते हैं। इनकी वाणी, इनके बोल एव इनके कथन मे आध्यात्मिक गहराइयो व अनुभूतियो का अद्भुत सगम है। इन्होने अनेक कृतियो का सृजन किया है जिनमे विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं पूज्य जीवन ज्योति, श्रमण सर्वस्व, श्री कल्पसूत्र की आधुनिक हिन्दी व्याख्या, द्वादश पर्व व्याख्या हिन्दी व्याख्या, अध्यात्मबोध अपर नाम देशनासार सस्कृत का हिन्दी अनुवाद, चैत्यवन्दन कुलिक आदि। इसके अतिरिक्त इन्होने अनेक भजनावलियाँ भी बनाई है जो लोगों के भौतिक और आध्यात्मिक जीवन को शान्तिमय एव सुखदायी बना रही है। विशेष रूप से उल्लेख करने योग्य है—कुसमांजली, पुष्पाञ्जली, गीताञ्जली तथा सज्जन विनोद।

एकाग्र भाव पक्ष :—

एकाग्र भाव पक्ष इनके जीवन का एक अनूठा एव अद्वितीय पक्ष है। इनके अध्ययन पठन, पाठन, मनन एव ध्यान मे एकाग्रता की पराकाष्टा है। इनकी पढाने की शक्ति असीम है। इनके पढाने के तरीके में नवीनता के साथ तारतम्यता भी जबरदस्त है। यही नही आप ज्ञानपिपासु के मन और मस्तिष्क पर एक विशिष्ट छाप छोड जाती है। मूल मे तो इनका जीवन ही एक निश्चल प्रवाहमान धारा के अनुरूप है। ये प्रत्येक जिज्ञासु की प्यास बुझाने का समान अवसर देती है। जिज्ञासु अपनी क्षमता के अनुसार अपना पात्र भरकर ले जाते हैं।

सेवाभाव पक्ष —

इनके व्यक्तित्व का सेवा भाव पक्ष भी अति प्रबल है। ये दलित एव गिरे हुए लोगो को उठाने का प्रयास करती है। ये साधु-सन्तो की सेवा मे भी सदैव तत्पर रहती है। प्रवर्तिनी महोदया ज्ञानश्रीजी महाराज साहब की सेवा मे २२ वर्षावास जयपुर मे करना यह इनके सेवा भाव पक्ष का एक ज्वलन्त उदाहरण है। ये किसी भी जीव के दुःख से द्रवित ही नही होती अपितु हर सम्भव उसके दुःख को दूर करने का प्रयास करती हैं।

तप रुचि :—

इन्होने अपने जीवन मे "तपस्या" को भी एक विशिष्ट स्थान दिया है। इनका यह अटूट विश्वास है कि तपस्या हमारे स्वस्थ शरीर, मन एव आध्यात्मिक शक्ति की सजीवनी बूटी है और तपस्या के द्वारा ही बँधे हुए कर्मो को आन्दोलित और प्रक्षालित किया जा सकता है। इन्होंने अब तक के जीवन में उपधान, नवपद ओली, विशतिस्थानक तप, अट्ठाई, मासक्षमण तप तथा कई तेले चोले किये हैं और अब भी आप कोई न कोई तप करती रहती है।

इनके उपर्युक्त वर्णित विलक्षण गुणो और असाधारण विशेषताओ से प्रभावित होकर कई बहिनो ने ससार के दावानल से मुख मोडकर इनके पावन चरणो में स्थान पा लिया है, और अनेक बहिनो मे इनके पावन चरणो मे स्थान पाने के लिये आध्यात्मिक रूप से चाह है। जिस प्रकार एक मूर्तिकार अपनी कल्पना, बुद्धि, शक्ति से पत्थर को मानो सजीव मूर्ति का एक रूप दे देता है, उसी प्रकार इन्होने भी शिष्याओ के जीवन को बदल दिया जिसके परिणामस्वरूप वे इनकी आध्यात्मिक ज्योति को देश के कोने-कोने मे फैला रही हैं।

आज के आणविक युग मे सम्पूर्ण मानव जाति संहार के कगार पर खडी है। एक ओर विश्व-शक्तिया आपसी टकराव के कारण मानव जाति के अस्तित्व को समाप्त करने म लगी हुई हैं तो दूसरी ओर साम्प्रदायिकता की भावना, जातिवाद की भावना मानव जाति को जकड रही है।

यदि हमे संसार के ऐसे संताप और नैराश्य के वातावरण से अपने आपको बचाना है तो "गुरुवर्या सज्जनश्रीजी महाराज साहब" के बहुमुखी व्यक्तित्व से अनुकरणीय बातें ग्रहण कर उन पर चलना होगा ताकि हम सभी अपने जीवन को मंगलमय, आनन्दमय एव शातिमय बना सके।

अनुकरणीय बातें —

१ धैर्य, सहनशीलता, सयम एव अहिंसात्मक भाव पर मनन एव आचरण करना।
२ साम्प्रदायिकता की भावना का त्याग कर विशाल दृष्टिकोण अपनाना, जिससे समाज एव राष्ट्र को बिखराव की स्थिति मे बचाया जा सके।
३ असहाय, दुखी और कमजोर वर्ग के लोगो के उत्थान म सहायक बनना।
४ स्वाध्याय, चिन्तन एव मनन के लिए कुछ समय का प्रावधान करना।
५ प्रसन्न चित्त रहने का नियमित प्रयास करना।
६ अपशब्दो के प्रयोग पर नियन्त्रण करने का प्रयास करना।
७ क्रोध, ईर्ष्या, एव अहंभाव का त्याग करने की आदत डालने का प्रयास करना।
८ पर निंदा के वाद विवाद से दूर रहने का प्रयास करना।
९ जीवन की प्रत्येक क्रिया सयम से करने का प्रयास करना।
१० विनय, विवेक एव क्षमा को जीवन की आधारशिला बनाने का प्रयास करना।

हम "गुरुवर्या श्री सज्जनश्रीजी महाराज साहब" के द्वारा बताये गये नियमो एव आदर्शों पर किंचित मात्र भी आचरण करें तो निश्चित रूप से अपना इहलोक और परलोक उज्ज्वल बना सकते है। □

□ श्रीमती गुलाबसुन्दरी जी बाफना

परमादरणीया पूज्या प्रवर्तिनी महोदया श्री सज्जनश्रीजी महाराज साहब के ८२वें वर्ष प्रवेश के प्रसंग पर मैं पूज्य गुरुवर्याश्री का हृदय से अभिनन्दन करती हूँ।

मेरा परम सौभाग्य है कि मुझे इनका सम्पर्क मिला, क्योंकि गृहस्थ जीवन के सम्बन्ध मे मुझे इनकी भुआसास बनने का अवसर प्राप्त हुआ। प्रथम सम्पर्क से आज तक का अनुभव है कि इनकी प्रकृति म कभी विकृति नही देखी। जो गुण मैंने देखे वे गुण इनके जीवन के सहज स्वाभाविक हैं। जीवन मे कभी कृत्रिमता नही देखी। कई लोगो को देखती हूँ तो लगता है कि उनके जीवन म दोहरापन है, कथनी-करनी म अन्तर है, अन्दर-बाहर भेद है जीवन और जिह्वा म फर्क है। किन्तु मैंने पू सज्जनश्रीजी म सा को गृहस्थ जीवन भी देखा व साधक जीवन म भी देख रही हूँ किन्तु इनके जीवन म कभी दुराव, छुपाव नही देखा।

जितनी बार सान्निध्य प्राप्त हुआ जब-जब भी दर्शन किये, तब ही पू गुरुवर्या श्री के जीवन मे आत्मा के सहज स्वाभाविक गुणो के दर्शन किये। पूज्या श्री के दर्शन से ऐसे ही भाव आते, अहसास होता

है कि जीवन हो तो ऐसा हो, जो कि सबके बीच रहते भी सबसे न्यारे, सबसे परे, अनासक्त योगिनी बन सदा स्वयं मे मग्न, लक्ष्य साधना के लिए कटिबद्ध, अध्ययन अध्यापन मे तल्लीन रहती है।

इनके प्रति मेरी श्रद्धा समान बनी रही। कभी भी श्रद्धा मे रुकावट नही आयी। जिसका मुख्य कारण यही है कि इनके जीवन मे बनावट नही है, सजावट नही है, किसी के प्रति खेद नही व भेद नही है, रोष नही है, आक्रोश नही है, छलरहित हैं, मलरहित है. कभी भी इनमे माया कपट, मान उत्तेजना नही देखी।

गुरु के प्रति पूर्ण समर्पित भाव था, हृदय के अगाध आस्था थी, गुरुआज्ञा में गुरुसेवा में सदा तत्पर रहती थी। गुरु शिष्य के व्यवहार को देखकर कई साध्वीजी महाराज व पू उपयोगश्रीजी महाराज साहब कहा करती थी कि शिष्या बने तो सज्जनश्रीजी जैसी। जिनसे ऐसी शिष्या को पाकर गुरु परम शान्ति का अनुभव करे अन्यथा शिष्या न बने व पू. प्रवर्तिनी श्री विचक्षणश्रीजी म. सा. तो अपनी शिष्याओं को कई बार सम्बोधन करती थी कि बड़ो के प्रति सदा आदर का भाव रखती हैं तो छोटो के प्रति भी कम आदर नही है। सभी के साथ आत्मीयता का व्यवहार करती हैं। सभी के प्रति वात्सल्य उमड़ता है। करुणा की साक्षात् देवी है। दीन-दुःखी के प्रति कभी हीनता के भाव नही देखे, उन्हें, सहानुभूति के साथ गले लगाती हैं। पठित से अधिक अपठित को महत्व देती हैं। अमीर से अधिक गरीब को स्थान देती है।

सागर की गहराई का थाह पाना मुश्किल है उसी तरह पू. गुरुवर्या श्री के गुणों के अथाह सागर को शब्दो मे बाँधना मेरे लिए दुष्कर है। गुरुदेव से हार्दिक प्रार्थना करती हूँ कि पू गुरुवर्या श्री दीर्घायु बन शासनोन्नति करती हुई हम जैसे ससार मे भ्रमित, दोषो से ग्रसित प्राणियो को पथ प्रदर्शन कर शाश्वत सुख को प्राप्त करें। ☐

☐ श्रीवुद्धिसिंह, श्रीपवित्रकुमार, श्रीअशोककुमार, बाफना

पूज्या प्रवर्तिनी सज्जनश्रीजी महाराज साहब से मेरा परिचय मेरे शैशवकाल से ही है। मेरे मामा श्रीसोभागमलजी साहब गोलेच्छा के ज्येष्ठ पुत्र श्रीकल्याणमल साहब गोलेच्छा से आपका विवाह हुआ था और आप सदैव अपनी बुआ के यानि मेरे घर आती रही और मेरे बाल्यकाल में इनका मुझे भरपूर स्नेह मिला जो मेरी स्नेहमयी भाभज रही जिसकी स्मृतियाँ आज भी मेरे हृदय मे अंकित हैं।

गृहस्थ जीवन मे भी आप सदैव गम्भीर और सौम्य थी। मैंने एक क्षण भी आपको उच्छृंखल होते नही देखा और सदैव वाणी पर सयम बनाये रखा। मेरी आयु ज्यो-ज्यो बढती गई और जब भी आपसे मिलता आपकी शालीनता से उत्तरोत्तर प्रभावित होता रहा। मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि आपके गृहस्थ जीवन मे ही आप मे साधुत्व के लक्षण प्रकट होते रहे हैं।

आपका जीवन सदैव निस्पृह और मर्यादित रहा है। दीक्षा तो ऐसे मर्यादित जीवन की अनिवार्यता है। दीक्षा के पश्चात् भी आप सर्वथा प्रचार और प्रसार से दूर रही और मान और प्रतिष्ठा के अहं को आपने कभी भी अपने व्यक्तित्व को स्पर्श नही करने दिया।

एक बात विशेष रूप से अभिव्यक्त करना चाहूगा कि आप तेरापंथ परिवार में जन्मी, स्थानकवासी परिवार मे आपका विवाह हुआ और मूर्तिपूजक सम्प्रदाय मे आपने दीक्षा ग्रहण की। अत. आपमे सम्पूर्ण श्वेताम्बर जैन समाज का त्रिवेणी सगम है और ऐसी उदारता है जिसमे वैचारिक भेद कभी उत्पन्न ही नही होते।

यश और कीर्ति की भावना से परे साधना मे लीन महाराज साहब सज्जनश्रीजी का जीवन दीर्घायु हो और सम्पूर्ण जैन समाज को निरन्तर अपने आदर्श से प्रभावित करती रहे, ऐसी मेरी मगल कामना है। ☐

☐ श्री थानमल आचलिया, गगाशहर (बीकानेर)

मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि परम विदुषी गुरुवर्या सज्जनश्रीजी महाराज की ८१वी वर्षगांठ के पावन अवसर पर उनका सार्वजनिक अभिनन्दन किया जा रहा है। महाराज सा० का जन्म लूनिया परिवार म हुआ और हमारे परिवार को यह परम सौभाग्य मिला है कि—लूनिया परिवार के साथ पिछली तीन पीढ़ियो से प्रगाढ़ सम्बन्ध रहे हैं। मेरे पिताजी श्रीहीरालालजी आचलिया थली प्रदेश के जाने माने तत्वज्ञ विद्वान थे। उनका सम्बन्ध जयपुर नगर के श्रीमान गुलाबचन्दजी लूनिया के साथ इसी आधार पर बना था कि श्रीमान लूनियाजी भी जैन दर्शन के जाने माने तत्वज्ञ श्रावक रहे हैं। इन दोनो ही भक्त श्रावको ने जन तत्वो की अनेक पुस्तक प्रकाशित करायी और अधिक से अधिक लोगो के हाथो म बिना कोई मूल्य लिए पहुँचाइ।

तीन पीढी पहले का ये सम्बन्ध निरन्तर चलता गया और मेरी पुत्री सौ० रत्ना का विवाह श्रीमान केसरीचन्दजी लूनिया के सुपुत्र श्रीपुखराजजी लूनिया के साथ जब हुआ तो दोनो परिवारो मे अटूट सम्बन्ध स्थापित हो गये। इस प्रकार दोनो परिवारो ने तेरापथ सघ के पाँचवे आचार्य पूजनीय मघवागणी से लेकर वर्तमान आचार्य श्री तुलसी गणी तक निरन्तर सेवा का लाभ उठाया है तथा निरन्तर लाभ ले रहे है।

पूजनीया सज्जनश्रीजी महाराज सा अत्यन्त सरल हृदया एव दयालु प्रकृति की हैं। आपके दर्शन मात्र से मन मे सात्विक प्रेरणा जाग उठती है। यह एक शुभ सयोग है कि आपश्री ने जन शासन के तेरापथ सम्प्रदाय म जन्म लिया। और आपका विवाह स्थानकवासी सम्प्रदाय के गोलेछा परिवार मे हुआ किन्तु तत्वो की खोज करते-करते आपने अपना वैराग्य जीवन खरतरगच्छ सघ की आर्यारत्न बनकर प्रारम्भ किया। जीवन के महत्वपूर्ण वर्षों मे आपने मात्र अध्यात्म की ओर ही ध्यान बनाए रखा। किसी साम्प्रदायिक सकीर्णता को कभी प्रोत्साहन नही दिया। इस प्रकार जैन शासन की तीन पवित्र धाराओ का सगम आपश्री के पास हुआ है। जैन समाज का सौभाग्य है कि यह आपका अभिनन्दन कर रहा है वस्तुत आपका अभिनन्दन त्रिवेणी सगम की उपासना है, जन एकता का अभिनन्दन है और जन सस्कृति के लिए एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अवसर है। आपश्री के चरणो मे मेरा कोटि-कोटि अभिनन्दन। ☐

☐ श्रीमती रत्ना लूणिया

हम अभिनन्दन कर रहे है—पुण्यशीला, करुणामूर्ति, आगम ज्योति, सयम, साधना और दर्शन की प्रतिमा, गुरुवर्या प्रवर्तिनी सज्जनश्रीजी महाराज का। जिस प्रकार आने वाली घटनाओ का सकेत बहुत पहले ही समय हम दे देता है, उसी प्रकार महाराज साहब के दिव्य जीवन का आलोक उनके जन्म के साथ ही फैलने लगा था। समय के उन सकेतो को उस समय सम्भवत कोई पकड नही पाया हो, किन्तु जब होनहार प्रतिभा के कोमल पत्रो की स्निग्धता का स्पर्श माता पिता की दृष्टि ने किया तो वे समझ गये कि उनकी लाडली बेटी कोई असाधारण प्रतिभा है।

बात अस्सी बरस पहले की है। जयपुर नगर के स्वनामधन्य सेठ श्री गुलाबचन्दजी लूणिया

एव मातुश्री महताब बाई के आँगन में पुनीत आत्मा का जन्म हुआ। पिता अत्यन्त ज्ञानवान, धर्मनिष्ठ, तत्वज्ञ, दार्शनिक एव समाज के प्रतिष्ठित व्यक्ति थे तो माता भी अत्यन्त सरल-सहज, पति की अनुगामिनी थी। दोनो ही बारह व्रतधारी श्रावक-श्राविका थे। माता-पिता की छाया मे पुत्री को लाड़-प्यार के साथ-साथ धार्मिक सस्कार भी स्वत ही मिलने लगे। जीवन-निर्माण मे नियमित शिक्षा पिताश्री से मिलती थी। पिताश्री आपको पुत्री न मानकर पुत्र ही मानते थे और अपनी धार्मिक गतिविधियो मे सदा साथ रखते थे। इस प्रकार धर्म के प्रति निष्ठा का बीजवपन महराजश्री के हृदय मे बाल्यकाल से ही हो गया था। साध्वियो के व्याख्यान सुनने तथा उपाश्रय मे जाकर नियमित रूप से सामायिक आदि करने की ललक उनमे निरन्तर बनी रहती थी। यहाँ तक कि शाला मे पढ़ते-पढते ज्यो ही थोडा अवकाश मिलता, वे दौडकर पास वाले धर्मस्थान में चली जाती और साधु-साध्वियों का दर्शन लाभ कर लौट आती।

इधर धार्मिक सस्कार और तत्वो की जानकारी बढती गयी तो उधर सहज ही आपका मन विराग की ओर झुकने लगा। माता-पिता के लिए यह एक चिन्ता का विषय था। एक प्रतिष्ठित एव सम्पन्न परिवार की बेटी ऐश्वर्य को ठुकराने की बात सोचे, यह उन्हे उचित नही लगा, अत उन्होंने छोटी उम्र (१२ वर्ष) मे ही आपका विवाह श्रीमान कल्याणमलजी गोलेछा के साथ कर दिया। किन्तु, उस पारिवारिक जीवन मे आपका मन कहाँ रमने वाला था ? जिसे आत्मलक्षी बनना हो उसे सांसारिक सुखो के प्रति क्या आकर्षण हो सकता है ? वैराग्य ही जिसकी नियति हो उसे ऐश्वर्य के बन्धन कब तक बाँध कर रख सकते हैं ? विदुषीवर्या ने तो छोटी सी अवस्था मे ही अपना लक्ष्य निर्धारित कर लिया था, अत घर, परिवार, संसार के सारे वैभव को छोडकर आपने जैन श्वेताम्बर खरतरगच्छ सघ मे जैन भगवती दीक्षा ग्रहण कर ली और गुरुवर्या ज्ञानश्री जी के सान्निध्य में अपनी सयमसाधना प्रारम्भ कर दी।

महाराज साहब ने अपने ४८ वर्षो के सयमी जीवन मे कठोर साधना, उत्कृष्ट तपश्चर्या, ज्ञान और दर्शन की आराधना, सूत्रो और आगम का पठन-पाठन एव ग्रन्थ-प्रणयन आदि अनेक महान् कार्य सम्पन्न किये है। आपकी विलक्षण प्रतिभा एव अद्भुत स्मरण-शक्ति ऐसी थी कि प्रारम्भ के दिनो मे भक्तामर स्तोत्र को थोडे ही समय मे पूर्ण कण्ठस्थ कर आपने अपनी गुरुवर्या को सुना दिया था और उनके हृदय मे परम शिष्या के रूप मे स्थान पा लिया था। सस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, अँग्रेजी, राजस्थानी, गुजराती आदि अनेक भाषाओ पर महाराज साहब का समान अधिकार है। आगम, द्रव्यानुयोग आदि गहन तात्विक विषयो की आप पूर्ण ज्ञाता है। तप, साधना एव दर्शन के गूढ गम्भीर विषयो मे रमण करती हुई आप मधुर सरस एवं काव्यमय व्यक्तित्व की धनी हैं। भावमयी, ममतामयी महाराज साहब का करुणास्रोत और भक्ति-स्रोत सरस कविताओ के रूप मे प्रवाहित होता रहता है।

आपने अनेक भावपूर्ण गीतिकाओ का सृजन किया है। जब स्वय गाती है तो भक्ति की अजस्र धारा स्वत ही फूट पडती है। श्रोताओ का मन आत्मविभोर हो भक्ति और सगीत के एक अनोखे ससार में रमण करने लगता है।

परम विदुषी, आगमज्ञा तथा धर्मसघ के शार्षस्थ पद पर आसीन गुरुवर्या की सरलता और सहजता देखते ही बनती है। मैने आपके हृदय की निर्मलता, वाणी की स्पष्टता और व्यवहार की मृदुता के निकट से दर्शन किये है। अपनी अनुवर्तिनी शिष्याओ, श्रावक-श्राविकाओ तथा अन्य लोगो के प्रति आपका वात्सल्यपूर्ण एवं आत्मीय व्यवहार स्वत ही एक आकर्षण उत्पन्न करता है। अनुशासन मे आप

कठोर हैं, किन्तु ममत्व और स्नेह की मृदुता भी इतनी है कि आपका अनुशासन सबको सहज ही स्वीकार्य हो जाता है।

महाराज श्री के सान्निध्य का लाभ मुझे प्राय मिलता रहता है। ज्ञान विज्ञान स्वस्थ मनोरंजन रोचक वार्ता, आधुनिक प्रगति, राजनैतिक और आर्थिक परिदृश्य आदि सभी विषयो पर आप निर्बाध चर्चा कर सकती हैं। पुरानी बाते हो, दर्शन की ग्रन्थिया हो या फिर अवसर्पिणी उत्सर्पिणी काल-गणना की उलझी पहेलियाँ हो, आप इतने सरल एव रोचक ढग से समझाती हैं कि बालको तक की समझ म आ जाता है। उनसे किसी भी विषय का कोई भी प्रश्न किया जाये तत्काल समाधान मिल जाता है।

प्रवर्तिनी श्रीजी न मुझे बताया कि व लगभग ५००० पुस्तक विभिन्न विषयो की पढ चुकी हैं। पुस्तकें पढने, गीतिकाये गान तथा धार्मिक कार्यों म पूरी लगन के साथ भाग लेन के गुण आपको अपने पिताश्री से विरासत म मिले है।

आपकी सास-मा भी सुदृढ धार्मिक विचारो की थी, उनको भी आप पुस्तकें पढ कर सुनाया करती थी।

अपनी दिनचर्या के विषय म आपने बताया कि आप एक ही नीद सोती हैं। तथा प्रात जल्दी उठ जाती हैं। गहरी नीद नही लेती। अहर्निश ज्ञान ध्यान को आराधना करती रहती हैं।

लूणिया परिवार धन्य है जिसम आप जसी पुनीत आत्मा न जन्म लिया। मेरे लिए भी अत्यन्त गौरव की बात है कि मुझे उसी भाग्यशाली परिवार की बहू होने का सौभाग्य मिला। आर्याश्री हमारी ससार पक्ष म बुआ-सा हैं। मैं बाबा सा श्रीगुलाबचन्दजी सा० के दर्शन नही कर पायी किन्तु आपके व्यक्तित्व में उनकी छवि के दर्शन कर स्वत ही आत्मगौरव होन लगता है। मैं सोचती हूँ लूणिया परिवार म मेरे प्रवेश की भूमिका सम्भवत समय ने बहुत पहले ही बाध दी थी। महाराज साहब सज्जनश्रीजी के लूणिया परिवार का परिचय मुझे अपनी किशोरावस्था म ही हो गया था। मेर दादाजी श्रीहीरालालजी आँचलिया और मेरे दादा श्वसुरजी श्रीगुलाबचन्दजी सा० की बातें मेरे पिताजी प्राय परिवार म किया करते थे और मैं दत्तचित्त हो उन्हें सुना करती थी।

दोनो परिवारो के बीच यह मैत्री मेरे दादा-सा० हीरालाल जी आंचलिया और सेठ श्रीगुलाबचन्दजी लूणिया के बीच बहुत पहले ही हो गयी थी। श्रीमान लूणिया जी जैन तत्वो के जानकार, लेखक, कवि और ग्रन्थकार थे तो श्रीमान आंचलियाजी तत्वो म गहरी रुचि रखने वाले, ग्रन्थो को प्रकाशित कर उनको घर घर मे पहुँचाने वाले धर्मानुरागी श्रावक थे। दोनो भक्त श्रावको की वह मैत्री अनेक दशको तक चलती रही। वे ही धार्मिक स्नेह-सम्बन्ध प्रगाढ मैत्री म बदल गये और क्रमश तीसरी पीढी म आकर पारिवारिक सम्बन्ध बन गय।

इस मैत्री सम्बन्ध के बारे मे तेरापथ धर्म सघ के युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ जी ने अपने विचार यो प्रकट किये हैं —

"हीरालालजी प्रथम श्रावक हुए हैं जिन्होंने धार्मिक ग्रन्थो का शुद्धिकरण करवाया उन्हें छपवाया और धर्म चेतना हेतु निशुल्क वितरण करवाया। इसी प्रकार तेरापथ सम्प्रदाय म सेठ श्री गुलाबचन्दजी लूणिया प्रथम श्रावक थे जिन्होंने अनेक स्तवन, गीतिकाएँ, भजन, स्तुति एव तात्विक ढाल स्वय लिखी और उन्हें स्वर-बद्ध, तालबद्ध कर स्वय ही अपने सुमधुर कठ मे गायी तथा अनेक पुस्तकें प्रकाशित

की और वितरित की । वे भक्त श्रावक गायक थे । दोनों ही भक्त श्रावकों का मैत्री सम्बन्ध अनुकरणीय है । यह एक शुभ सयोग है कि श्रीगुलाबचन्दजी लूणिया के पौत्र पुखराज और श्रीहीरालालजी आचलिया की पौत्री रत्ना का वैवाहिक सम्बन्ध हुआ । मित्रता की अविरल धारा तीसरी पीढी मे आकर भी अबाध-गति से प्रवहमान है ।"

उन दिनो धार्मिक शिक्षा प्राय' मौखिक ही हुआ करती थी । धर्मज्ञान की जो पुस्तके थी उनमे भी अशुद्धियाँ बहुत होती थी । बाबाजी को यह कमी बहुत अखरती थी, वे शुद्ध भाषा की पुस्तके प्रकाशित कर उनका प्रचार करने को लालायित रहते थे । क्रमश. उन्होने प्रकाशन कार्य प्रारम्भ कर दिया और इसी सिलसिले मे उनका परिचय जयपुर निवासी सेठ श्रीगुलाबचन्दजी लूणिया से हुआ । जैन धर्म, जैन तत्वज्ञान, जैन सिद्धान्त, आचार-व्यवहार, सूत्र-आगम आदि का आपको विशद ज्ञान था । कभी आचलिया जी जयपुर आते तो कभी आप गगाशहर चले जाते । दोनो मित्रो मे धर्म-चर्चा होती तो पुस्तको का प्रकाशन भी होता रहता । सेठ श्रीगुलाबचन्दजी लूणिया की निम्नांकित पुस्तको के प्रकाशक सेठ श्रीहीरालाल जी आचलिया थे —

१. नव पदार्थ निर्णय	शिशु हित शिक्षा
२ श्रावक धर्म विचार	श्रावक आराधना
३. प्रश्नोत्तर तत्व बोध	सुगुणावली
४. भिक्षु यश रसायन	

दोनो मित्र अलग-अलग शहरो के निवासी थे, दोनो परिवार भिन्न थे किन्तु दोनो की वृत्ति एक ही थी, अत उनका सम्बन्ध मित्रता के रूप मे आजीवन बना रहा और उन धार्मिक संस्कारो की छाप परिवार के सदस्यो पर पडती चली गयी । लूणिया परिवार मे महाराज साहब श्रीसज्जनश्रीजी ने ज्ञान और वैराग्य की ज्योति जगायी तो आचलिया परिवार मे श्री हीरालालजी के सुपुत्र श्रीसुमतिचन्दजी तथा पुत्रवधु श्रीमती सुदर्शनाजी ने एक साथ (सजोडे) तेरापथ धर्मसंघ में जैन भागवती दीक्षा ग्रहण कर सयम और तप के कीर्तिमान स्थापित किये । दूसरे पुत्र मोहनलालजी (उन्होंने) ने भी अपने भरे-पूरे परिवार को छोडकर अभी हाल ही में दीक्षा ग्रहण कर ली है । इस प्रकार ज्ञान का आलोक दोनों ही परिवारो मे पूरी प्रखरता से फैला है ।

प्रवर्तिनीश्रीजी का अभिनन्दन मानव मूल्यो का अभिनन्दन है, उस ज्ञान-ज्योति और संयम-साधना का अभिनन्दन है । इस मगलमय अवसर पर मै हृदय की समस्त शुभभावनाओ के साथ आपश्री के चरणो मे शतश अभिवन्दन करती हूँ तथा कामना करती हूं कि आपका वात्सल्यपूर्ण वरदहस्त सदैव हमारे सिर पर बना रहे । आप चिरायु हो, सयम और तप की साधना करती हुई जैन-जगत एवं प्राणि-मात्र को सही दिशा प्रदान करती रहे ।

○○

☐ साध्वी सुयशाश्रीजी म

(*सुशिष्या श्री विचक्षणश्रीजी म सा*)

सद्‌गुरु की कृपा पाकर नर बनता महान्।
दिल में भक्ति मानस में, दीपित हो सद्‌ज्ञान।
शिष्य बीज सम जगत म, है गुरु माली समान।
प्रज्ञा जल के योग से, बनता है इसान।

मनुष्य के जीवन मे सद्‌गुरु की प्राप्ति होना एक महान् उपलब्धि है। 'गुरु' एक ऐसी आध्यात्मिक शक्ति है जो मनुष्य को नर से नारायण और आत्मा को परमात्मा बना देती हैं। गुरु एसे श्रेष्ठ कलाकार होते हैं जो एक अनगढ ठोकरें खाते हुए जीवन रूपी प्रस्तर को अपने सत् प्रयासो द्वारा जनता में पूजनीय और वन्दनीय बना जाते हैं।

अध्यात्मरस निमग्ना, शासन प्रभाविका आशु कवयित्री प्रवर्तिनी साध्वी श्री सज्जनश्रीजी म सा का जीवन एक सच्चे गुरु का कलाकारमय जीवन है।

आप सदैव आध्यात्मिक साधना म तल्लीन रहती हैं। आप अपनी शिष्याओ सहित स्वाध्याय करती रहती हैं। मुझे आपके सानिध्य मे रहन का जब जब भी अवसर मिला प्राय आपको मौन या स्वाध्याय में लीन देखा। पढने पढाने में आप इतने अधिक दत्तचित्त हो जाते ह कि आपको पता ही नही चलता कौन आया और कौन गया। आप अपनी छोटी छोटी शिष्याओ से व्याख्यान भी दिलवाते रहते हैं। और उन्हें अलग अलग चौमासा करने के लिए भेजते रहते हैं। जिससे वे जिनशासन की सेवा करती हुई आगे बढती रहे।

वस्तुत आपका जीवन शान्त, सौम्य मधुर मुस्कान, ज्ञान की गम्भीरता विचारो की गरिमा, मृदुलवाणी, स्वभाव मे सरलता, विनम्रता, कोमलता से भरपूर (सम्पूर्ण) हैं। आपके प्रवचनो म समन्वय सरलता, और हृदय को स्पर्श करने की क्षमता है, ओज है समधुर मिठास है जो भी श्रोतागण आपका प्रवचन सुन लेता है वह आत्म विभोर हो उठता है।

पूज्य चन्द्रकलाश्रीजी म सा मुझे बता रहे थे कि आपने प्रवर्तिनी श्री ज्ञानश्रीजी म सा की रुग्णावस्था मे काफी लम्बे समय तक तन मन से लग्नपूर्वक गुरुभक्ति व सेवा की। यह दूसरो के लिए अनुकरणीय व आदर्श रूप है। आप गुरुवर्या प्रवर्तिनी श्री विचक्षणश्रीजी म सा जैसी महान् साध्वी के *सानिध्य मे काफी समय तक रहे। जैसे सग मे रहो वसा रग लग जाता है।* क्योकि जो गुण गुरुवर्या श्री के जीवन मे विद्यमान थे वही सम्पूर्ण गुण आपके जीवन मे भी हैं। मुझ जैसी अल्पमति पर सदैव कृपा बनाये रख इसी शुभकामना के साथ। ☐

☐ साध्वीश्री जयश्री जी म०

प्रवर्तिनी सज्जनश्रीजी महाराज साहब के अलौकिक गौरवपूर्ण, गरिमामय, विराट् व्यक्तित्व का यथातथ्य रूप में चित्रण करने का प्रयास, अनन्त आकाश को अपने बाहुपाश मे आबद्ध कर लेने और सागर को गागर मे भर लेने के सदृश हास्यास्पद प्रयास है। फिर भी गुरुभक्ति भाव से भावित होकर इस परिप्रेक्ष्य मे मद बुद्धि का यह प्रयास है।

सादगी, सरलता, सहिष्णुता, सज्जनता, स्नेहशीलता, सहृदयता, समता की प्रतिमूर्ति प्रवर्तिनी सज्जन श्रीजी महाराज साहब का व्यक्तित्व असाधारण, प्रेरक, गुणग्राही व्यक्तित्व है। इन्होने समस्त दर्शनो का तलस्पर्शी ज्ञान प्राप्त किया है। यद्यपि इनमे अनेक उत्तमोत्तम गुण है लेकिन उन गुणो मे वादित्व (शास्त्रार्थ करने मे प्रवीण), गमकत्व (दूसरे विद्वानो की रचनाओ को समझने समझाने मे समर्थ), वाग्मीत्व (अपने वचन चातुर्य से दूसरो को वश मे करना), कवित्व (काव्य एव साहित्य की रचना करने वाले) ये चार प्रमुख गुण है।

इनका सम्पूर्ण जीवन जप-तप-स्वाध्याय से परिपूर्ण है। इन्होने अपने जप-तप-ज्ञान-ध्यान द्वारा जैन जैनेतर समाज को आलोकित किया है। एकाग्रता, समय की नियमितता, और अनुशासन की दृढता के पक्के है। यद्यपि कोई भी व्यक्ति किसी एक क्षेत्र मे वर्चस्व प्राप्त कर लेता है, तो उसे महान् की सज्ञा दे दी जाती है। लेकिन जो जीवन के सभी क्षेत्रो मे धार्मिक, सामाजिक, आध्यात्मिक, राज-नीतिक, शैक्षणिक आदि सभी क्षेत्रो मे वर्चस्व प्राप्त करता है, उसे यदि हम "महामानव" की उपाधि भी दे तो अतिशयोक्ति नही होगी। इसी 'महामानव' उपाधि का ज्वलन्त उदाहरण प्रवर्तिनी सज्जनश्रीजी महाराज साहब का अनोखा, अनूठा व्यक्तित्व है। आपके सद्गुणो का एक सरल रेखाकन इस प्रकार है।

सरलता और सहिष्णुता का भाव—सरलता और सहिष्णुता ही इनका कवच है। जो मन मे सो वाणी मे और जो वाचा मे सो कर्म मे। गुरुवर्या श्री जीवन मे सहजरूप मे है।

वात्सल्यपूर्ण भाव—इनकी दृष्टि मे कोई छोटा बडा नही, ये सभी ज्ञान-पिपासुओ को बिना किसी भेदभाव के ज्ञान प्रदान करती है तथा अपने स्नेह को वात्सल्यपूर्ण भाव से सभी जिज्ञासुओ पर समान रूप से उडेलती है।

वैयावच्चभाव—सेवाभाव पक्ष इनके जीवन का अभिन्न अग है। ये अपने सभी कार्यो को छोड कर पहले सेवा के कार्य को महत्त्व देती है। इनका हृदय किसी भी दुखी व्यक्ति को देखकर द्रवित हो जाता है और उसका दुख दूर करने का हर सभव प्रयास करती है। इनके वैयावच्चगुण की कीर्ति चारो ओर फैली है। इन्होने अपनी गुरुआणी की तन मन से प्रसन्न मुद्रा से, अप्रमत्त भाव से दीर्घकाल तक सेवा की।

भाषण शैली—आपकी भाषण शैली चमत्कारपूर्ण है। भाषा हमेशा हित, मित और प्रिय रही है।

इनकी सरल, मार्मिक अन्तस्तलस्पर्शी अमृतमयी वाणी और ससार की असारता के उपदेश से प्रभावित होकर कई बहिनो ने ससार के दावानल से मुख मोडकर इनके पावन चरणो मे स्थान पाया है। मुझे भी इनकी चरण रज बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ अर्थात् इनका सान्निध्य मुझे एक वसीयत के रूप मे मिला है। मै यह ऋण सभवतया इस जीवन मे तो किसी भी रूप मे चुकाने मे अक्षम हूँ। इनके सान्निध्य मे मैंने जो ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास किया है, उसे मै जीवन की महान् उपलब्धि समझती हू। ☐

☐ आर्याश्री प्रज्ञाश्रीजी० म०

(सुशिष्या प्रवर्तिनीश्री जिनश्री म० सा०)

प्रथम दर्शन के क्षणों में ही परमपूज्या प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी म० सा० के अपूर्व व्यक्तित्व से मन इतना प्रभावित व प्रफुल्लित हो गया था कि जिसका वर्णन करना लेखनी की शक्ति से पर है।

सम्मेतशिखर तीर्थ में जब आपश्री का नाम सुना, तब से मन में तीव्र उत्कंठा थी कि कब आप श्री के दर्शन का अपूर्व लाभ प्राप्त हो। वह स्वर्ण अवसर आ ही गया और कलकत्ता-चातुर्मास आपश्री के साथ होना तय हुआ। आपके ज्ञान ध्यान की बातें सुनी ही थी। जब सभी १५ ठाणा का चातुर्मास साथ में होगा यह निर्णय हुआ तो मन बाँसों उछलने लगा और आनन्द से भरा मन उन सुनहरी घड़ियों की तीव्रता से प्रतीक्षा करने लगा। समय अपनी गति से बीतता गया और शीघ्र ही वह शुभ क्षण आ गया। कलकत्ता दादावाड़ी में आपश्री के प्रथम बार दर्शन करके कृत्य-कृत्य हुई।

आप श्री के सान्निध्य का मेरा निजी अनुभव सिर्फ ६ माह का है। प्रारम्भ में तो लगता था कि मैं अल्प बुद्धि के कारण इस अल्प समय में कुछ भी नहीं पा सकूँगी। परन्तु बाद में प्रतीत हुआ कि अल्प समय में मेरी अल्पमति ने जितना भी अनुभव प्राप्त किया है वह गहन गम्भीर है, मौलिक है, अलौकिक है। स्वाध्याय व आत्म चिन्तन ही आपश्री के प्राण हैं। आपश्री अपनी शिष्याओं व प्रशिष्याओं तथा आत्मीयजनों को भी स्वाध्याय, ध्यान और आत्मचिंतन की ओर प्रेरित करती रहती हैं।

आपश्री के अनेक गुणों में से मेरे जीवन पर जिसकी अमिट छाप पड़ी है वह है आपश्री की तीव्र ज्ञान पिपासा। तब मेरी उम्र १८ वर्ष की थी। किन्तु मैंने जब आपश्री को करीब ५५ ६० वर्ष की उम्र में भी इतनी तीव्र ज्ञान पिपासा देखी, मेरा मन मुग्ध हो नाचने लगा। सोचने लगी कि देखो आपश्री की कैसी ज्ञान पिपासा है ? इधर मैं ऐसी हूँ कि समय प्रमाद में ही बीत रहा है। बस उन्हीं दिनों से मेरे मन में आपका यही गुण आदर्श रूप बन गया और मैं भी यत्किंचित ही क्या न हो अध्ययन में तन्मय होने का प्रयत्न करने लगी। आपश्री अध्ययन में इतनी तल्लीन रहती थी कि भूख प्यास भी भूल जाती।

वात्सल्य भावना आपके रोम-रोम में भरी है। आप इतनी मधुरता से पुकारती कि वह मधुर आवाज आज तक भी विस्मृत नहीं हुई।

आपश्री के अल्प सम्पर्क से मेरे हृदय में यह भावना दृढ़ हो गई कि आपश्री कितनी महान हैं। ज्ञान ध्यान में रमा कैसा मस्त जीवन है। जीवन में संयम की महक, मुख में नवकार का जप और आभ्यन्तर तप आपश्री का मुख्य ध्येय है।

आपश्री का आत्मबल, ज्ञानबल, चारित्रबल, तपोबल व मनोबल अपूर्व है।

परमपूज्या प्रवर्तिनी श्रीसज्जनश्रीजी म०सा० से मेरी नम्र प्रार्थना यही है कि आपश्री मुझे सदा शुभाशीष प्रदान करती रहें। जिससे मेरा मन संयम तप व स्वाध्याय के मार्ग से कभी विमुख न हो और मैं मोक्षमार्ग की ओर उन्मुख होकर शुद्ध संयम जीवन का पालन करती रहूँ। ☐

☐ प० शांतिचन्द जी जैन न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न जैन सिद्धान्त शास्त्री, अजमेर (राज०)

भगवान महावीर स्वामी ने उत्तम मानव जीवन को दुर्लभ बताते हुए उत्तराध्ययन सूत्र में फरमाया है—

"चत्तारि परमंगाणि दुल्लहाणिह जंतुणो।
माणुसत्तं, सुई, सद्धा संजमम्मि य वीरियं"॥

प्रभु महावीर के इस उपदेश को चरित्रनायिका प. पूज्या प्रवर्तिनीजी श्री सज्जनश्री जी म. सा ने अपने आदर्श जीवन मे चरितार्थ किया है। कहते हुए गर्व होता है कि आपने उपरोक्त चारो ही दुर्लभ वस्तुएँ प्राप्त कर ली है। इनमें आदर्श मानवता के गुण है। आप मे सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्र एव सम्यक् तप चारो ही महान गुण विद्यमान हैं।

प्रवर्तिनी जी जहा जैन आगमो के ज्ञाता हैं और इन आगमो का तल स्पर्शीज्ञान है वहीं आगमो के अनुसार धार्मिक क्रियाओ की आराधना मे भी पूर्ण सलग्न रहने वाली महान विदुषी आर्या है। आपका आदर्श जीवन सभी आर्याओ के लिये और सभी श्रावक-श्राविका आदि साधको के लिये अनुकरणीय है।

आपने अपने जीवन मे उपधान, नवपद ओली, विंशतिस्थानक तप ओली, कल्याणक तप, पखवासा तप, पचमी सोलिया तप, दश पच्चक्खाण तप तेले, चौले, अठाई, मासक्षमण तप किये है। इस प्रकार आपका जीवन अहिंसा, सयम, तप मय रहा है। इसलिये शास्त्र के कथनानुसार मानवो के साथ-साथ देवताओ के भी आप वंदनीय हैं। आपके ऐसे धर्ममय व्यक्तित्व की हम जितनी प्रशंसा करें उतनी कम है।

आपकी रचनायें—

बचपन मे ही आपने धार्मिक संस्कारो के कारण प्रभु के स्तवन आदि की रचना आरम्भ कर दी थी। सयम धारण करने के बाद आपने ज्ञानार्जन किया और अनेक काव्य पुस्तकें लिखी यथा— सज्जन विनोद, कुसुमाजलि, पुष्पाजलि, गीताजली, वीरगुण गुच्छक, आदि। इसी प्रकार आपने अनेक धार्मिक ग्रन्थो का अनुवाद भी किया जैसे कल्पसूत्र का आधुनिक हिन्दी मे अनुवाद, व श्री देवचन्द्र गणिवर्य के रचित "अध्यात्म प्रबोध अपर नाम देशनासार" सस्कृत ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद, दादा गुरुदेव श्री जिनदत्त सूरि जी रचित चैत्य वदन कुलक का हिन्दी अनुवाद, आदि ग्रन्थो का हिन्दी मे सरल अनुवाद करके हिन्दी जानने वाले लोगो के ज्ञान प्राप्ति के लिए अनुवाद ग्रन्थ प्रकाशित कर धर्म की महान प्रभावना की है और सम्यक् ज्ञान का प्रचार किया है।

अभिनन्दन के शुभ अवसर पर हम आपके दीर्घ जीवन की और पूर्ण स्वस्थता और अधिकाधिक धर्म प्रभावना की शुभ कामनाये करते है। □

□ साध्वी तत्त्वदर्शना श्रीजी म.

पू गुरुवर्या श्रीजी के जीवन के विषय मे क्या लिखूं और क्या नही लिखूं? इनके जीवन में दूसरो की बढती हुई प्रगति देख ईर्ष्या नही देखी। प्रतिकूल प्रसंगो मे इन्हे क्रोधित होते नही देखा। हजारो भक्तो की भीड होते हुए भी भक्त बनाने का लोभ नही देखा, आगम ज्ञान होते हुए भी अभिमान नही देखा सबके बीच रहते हुए कभी माया करते नही देखा, शिष्या परिवार होते हुए भी शिष्याओ मे आसक्ति नही देखी। यदि इनके जीवन को एक शब्द मे ही कह दूं **जलकमलवत् जीवन जीती हैं** तो कोई अतिशोयक्ति नही होगी।

बड़ो के साथ नम्रता का व्यवहार छोटो के साथ भी आदर सत्कार का व्यवहार करती है। विद्वानो का सम्मान करती हैं। तो कम पढ लिखे को कम महत्व नही देती। दुःखी व्यक्ति को अधिक हृदय लगाती हैं। आने जाने वालो से या निकट रहने वालों मे कम ही बाते करती है किन्तु दु खी व्यक्ति से पहले बोलती हैं। सामान्य लोगो मे ध्यान मग्न हो बातचीत करती है। पुस्तक पढने मे इतनी एकाग्रता कि चार व्यक्ति ढोल भी बजा दे तो पता नही चलता तो कोई आकर वन्दना करे या उन्हे धीरे से कुछ

कहे तो उनका ध्यान उस ओर होना बहुत ही मुश्किल है। अस्वस्थ अवस्था मे भी पढन-पढान का श्रम नही टूटा। इस अवस्था म भी स्वय का काय स्वय करती है। कभी किसी से उपालम्भ की भाषा मे नही बोलती हैं। इन सब गुणो से युक्त गुरुवर्या श्री को देखते हुए १२ वष नही १० वष हो गये निकटता से देखते हुए, किन्तु कही भी जीवन के गुणा मे बनावटीपन नही देखा। सहज स्वाभाविक गुणा को ही देखा है व देख रही हूँ। गुरुदेव से प्राथना करती हूँ कि चिरायु बन शासन-सेवा म रहती हुई गुरुवर्याश्री अपने गुणो की सौरभ दिग दिगन्तो म फैलाती रहे व उनके जीवन के गुणो का मेरे जीवन म भी विकास हो। इसी शुभेच्छा के सथ।

☐ साध्वी सुदशनाश्रीजी म

(सुशिष्या स्व० साध्वी श्री विचक्षणश्रीजी म० सा०)

धम-साधना के क्षेत्र मे पुरुषो की तरह नारी वग न अपनी धीरता वीरता, तितिक्षा, कष्ट-सहिष्णुता और पुरुषाथ-पराक्रम का विशिष्ट परिचय दिया है। जैनशासन-परम्परा म अनेक तपपूता साधिकाओ का जीवन हमारे लिए आदश और प्रेरणास्रोत है।

आगमज्ञा, आशुकवयित्री, प्रखरवक्त्री प्रवर्तिनी श्रीसज्जनश्रीजी म सा का जीवन त्याग वृत्ति, सरलता आदि अनुकरणीय है। उच्च कोटि की विद्वत्ता एव निमल चारित्र ही आपकी योग्यता का परिचायक है। महान विभूति का जीवन अद्भुत है। आपकी भव्य तेजस्विता और शान्तिमयी मुद्रा देखकर मस्तक झुक जाता है।

मैंने आपको अति निकटता स देखा है—जब आप परमपूज्या समतामूर्ति प्रवर्तिनी गुरुवर्याश्री विचक्षणश्रीजी महाराज साहब से कुछ समाधान या विचार विमश करना होता तो आप एक विनीत शिष्या की तरह उनके चरण-कमलो के समीप ही बैठती थी। ऐसा विनय गुण का महान् आदश और कहाँ देखने को मिलेगा ?

आपकी अति पवित्र ८२वी जन्मतिथि पर मैं अपनी मगल भावना व्यक्त करती हूँ कि आपश्री स्वास्थ्य लाभ कर एव दीघजीवी होकर समाज को और हम सबको अपने चिन्तन, मनन, लेखन, प्रवचन मे अहर्निश लाभान्वित करती रहे।

☐ साध्वी विनीताश्रीजी म० सा०

(सुशिष्या स्व० साध्वी विचक्षणश्रीजी म० सा०)

सज्जन सज्जनता धरी, करे सज्जन काम।
सौरभ चिहुँ दिशि विस्तरी, जिनका सज्जन नाम ॥

अनादिकालीन ससार म जीवात्माएँ कर्मावृत हो नानाविध दुखानुभव करती है पर प्रबल पुरुषार्थी आत्माएँ सम्यग्ज्ञान-दशन व चारित्र की आराधना—साधना से अष्टकम विजेता बन मोक्षगामी बनती हैं।

कई आत्माएँ अष्टकर्मों मे से कुछेक कर्मों का क्षयोपशम कर कुछ विशेष योग्यता प्राप्त कर लेती है। सातावेदनीय कम के उदय से साता प्राप्त कर नैरोग्ययुक्त होती हैं तो कोई ज्ञानावरणीय कम के क्षयोपशम से प्रतिभासम्पन्न होती हैं इस प्रकार कई पुण्यात्माएँ कर्मों के क्षयोपशम से कुछ विशिष्टता युक्त होती हैं।

प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी म की ज्ञानावरणीय के क्षयोपशम स जीवन मे कुछ विशिष्टता प्राप्त है अर्थात बुद्धिवैभव-सपन्न हैं।

मैं सं १९९६ मे प० पू० प्र० जैन कोकिला विचक्षणश्रीजी म० सा० के कर कमलो मे दीक्षित हो स० १९९८ मे इन्ही गुरुवर्या के साथ जयपुर आई उस समय मैंने देखा कि आप प्रतिदिन गुरुवर्या के साथ भी धार्मिक चर्चा किया करते थे। यो इनका पूर्व परिचय था ही। स० १९८२ में पू. प्र. अध्यात्मनिष्ठा सुवर्णश्रीजी म सा के साथ गुरुवर्याश्री ने चातुर्मास किया था, आप दोनो विशिष्ट रूप से पठन-पाठन लेखन-अध्ययन व धर्म-चर्चा करते थे। एक दिन का प्रसंग है कि प्रेरणास्पद वाते करते अनायास ही प्र विचक्षणश्रीजी म. सा. के मुख कमल से सज्जन वाई की जगह सज्जनश्रीजी संवोधित हो गया, कहा कि सज्जनश्रीजी ! देखो यह सूत्र कितना वढिया है, यह स्तवन सुन्दर भावार्थ युक्त है इसे भी लिखकर याद कर लेना। आपके हस्ताक्षर मोती के दाने से सुन्दर होने मे प्राय लेखन कार्य गुरुवर्याश्री आपसे ही करवाते थे। तव सज्जनवाई ने कहा कि महाराजश्री ! अभी मेरे अन्तराय कर्मों का अन्त कहाँ, जो मैं सज्जनश्री वन् पर हाँ आपश्री की इस अमृतमय भविष्यवाणी की मैं शुकन गाठ वाँधती हूँ कि मैं शीघ्र ही आपश्री की भविष्यवाणी को सफल कर संयमित जीवन स्वीकार कर सज्जनश्री वनू।

यह किसे विदित था कि गुरुवर्याश्री के मुख कमल से निसृत वाणी निकट भविष्य मे ही सिद्ध हो जायेगी। किन्तु कभी-कभी ऐसा होता है कि किसी महापुरुष की वाचा किसी-किसी के लिए वरदान रूप सिद्ध होती है वैसे ही यह वात विदुषी सज्जनवाई के लिए चरितार्थ हुई।

पू० विद्वद्वर्य मणिसागर जी म सा के निश्रा मे स० १९९८ के आसोज माह मे जयपुर मे उपधान तप हुआ तो इस समय आपने भी सजोडे उपधान तप किया, संसार कारागार से मुक्त होने हेतु आपकी वैराग्य भावना उत्तेजित हो उठी, अव एक क्षण भी इस कारागार मे रहना असह्य हो गया, अथक परिश्रम किया। "श्रम सफलता की कुजी है" आपके श्रम सफल होने के आसार नजर आने लगे। पू साधुजी म सा. व साध्वीजी म सा ने कल्याणमलजी को उद्वोधित किया कि सज्जनवाई की इतनी तीव्रतम भावना पर रोक लगाकर आप अतराय के भागी क्यो वन रहे है ? इन्हे आज्ञा प्रदान कर अनन्त पुण्योपार्जन करिये। त्यागी वर्ग के प्रेरणाप्रद उपदेश ने श्री कल्याणमलजी का हृदय परिवर्तन कर दिया। उन्होने गद्‌गद् हो शीघ्र ही १९९९ के वैसाख मास मे आज्ञा पत्र लिख दिया—आज्ञा प्राप्ति के साथ सज्जनवाई का मन मयूर नाच उठा, शुभस्य शीघ्रम्, इस उक्ति को अपनाकर शीघ्र ही मुहूर्त निकलवाया। वैरागन सज्जनवाई की उत्कृष्ट चारित्र भावना के प्रभाव से आषाढ शुक्ला दूज का मुहूर्त आया। दीक्षोत्सव की तैयारियाँ धूम-धाम से होने लगी मानो गुलावी नगरी मे चारो ओर चारित्र की धूम मच रही है। आपकी दीक्षा की तैयारियाँ देख चौथीवाई कोचर भी भावावेग मे आ गई और परिवार की आज्ञा प्राप्त कर आपके साथ ही सयम लेने को उद्यत हुई। प. पू मणिसागरजी म सा एवं त्यागमूर्ति ज्ञानश्रीजी म सा व उपयोगश्रीजी म. सा के कर-कमलो से आप दोनो की दीक्षा सानद सपन्न हुई। आपका नाम सज्जनश्रीजी व चौथीवाई का विवुधश्रीजी घोपित किया।

आप प्रव्रजित हो ज्ञान-साधना मे सततोद्यमी रही, पू. प्र ज्ञानश्रीजी म. सा से आगमो का (जैनागमो का) वाचन किया, अपनी अनवरत ज्ञानोपासना से संसार के चोटी के विद्वानो की कोटि मे आपने विशिष्ट स्थान पा लिया, अद्यावधिपर्यंत सयम आराधना सह गुरुजनो की सेवा मे सतर्क प्रहरीवत सदैव सावधान रहने के साथ-साथ सरस्वत्युपासना मे अनवरत संलग्न रहे मानो आप साक्षात् सरस्वतीसुता हैं।

आपकी वौद्धिक सूक्ष्मता ने किसी भी विपय को अछूता नही रखा है। आप गहन से गहन विपय का प्रतिपादन-स्पष्टीकरण इतनी सरलता से करते है कि श्रोता उसे हृदयगम कर हर्ष-विभोर वन जाते हैं एव प्रश्नकर्ता अपना सही समाधान पा प्रसन्नचित हो लौटते है।

वृद्धावस्था होते हुए भी आप आठों याम साधना संलग्न व ज्ञानमग्न रहते हैं। जब देखो तब कभी कुछ चिंतन, कभी कुछ लेखन कभी कुछ रचनाएँ तो कभी उपदेश, प्रेरणा व मार्गदर्शन देते हुए अप्रमत्त भावों में विचरण कर रहे हैं। आपका विचरण क्षेत्र भी विस्तृत रहा। गुजरात, सौराष्ट्र राजस्थान, बंगाल, कलकत्ता, लखनऊ आदि क्षेत्रों में विचरण कर जन जनतर जनता को अपनी ज्ञान गंगा में स्नान कराके पावन कर दिया, जैनशासन की अनुपम प्रभावना के साथ-साथ कई भव्यात्माओं को प्रतिबोध दे दीक्षित किया जो आपके पावन सान्निध्य में ज्ञानाराधना, संयम साधना, व चारित्रोपासना में सतत संलग्न हैं एवं भिन्न स्थानों में चातुर्मास कर जिनशासन की महती प्रभावना कर रही हैं।

आपकी पूर्ण योग्यता के कारण प पू प्र जैन कोकिला विचक्षणश्रीजी म सा ने अपना उत्तराधिकारी (प्रवर्तिनी पद के लिए) आपको उपयुक्त घोषित किया। सं० २०४२ के, मिगसर कृष्णा ६ को जोधपुर में प्रवर्तिनी पद से विभूषित कर प पू प्र पुण्यश्रीजी म सा की पदपरम्परा में प पू आचार्य प्रवर जिनकान्तिसागर सूरीश्वर जी म सा ने चतुर्विध संघ के समक्ष प पू स्व प्र विचक्षणश्रीजी म सा की पद धारिणी बनाया।

गुरुदेव से प्रार्थना है कि आपको वैराग्य दान प्रदान के साथ दीर्घायु करें, यावच्चन्द्र दिवाकरौ जिन शासन सेवा में तत्पर रह साहित्य समृद्धि को वृद्धिगत करते हुए सरस्वतीसुता नाम सार्थक करें इसी शुभ कामना के साथ नमित हूँ। ○

☐ साध्वी कनकप्रभाजी म सा

(सुशिष्या पू० श्री सज्जनश्री जी म सा)

स्वभाव में सरलता, व्यवहार में नम्रता, वाणी में मधुरता, मुख पर सौम्यता, नयनों में तेजस्विता हृदय में पवित्रता, स्वभाव में सहजता पू० गुरुवर्याश्री का जीवन उक्त उपमाओं से परिपूर्ण है। गुरुवर्याश्री के जीवन को कहीं से भी शाककर देखो उसी तरह दिखाई देगा जिस तरह गंगा नदी का पानी किसी भी छोर से पिओ मीठा ही होगा। मिश्री का किसी भी कोन से चखो मीठी ही होगी। गुलाब के पुष्प की कहां से भी किसी भी पत्ती को सूंघो एक सी सुगन्ध होगी। इनके जीवन के गुणों को शब्दों में बाँधना उतना ही दुष्कर है जितना पानी में पड़ते प्रतिबिम्ब चन्द्रमा को पकड़ना। फिर भी अपनी अल्पबुद्धि से इनके सभी गुणों का सीमित शब्दों में अभिव्यक्त करने का प्रयास कर रही हूँ।

स्वभाव में सरलता—आपका स्वभाव अत्यन्त सरल है। कपट, माया छल का नामोनिशान नहीं है जैसे अन्दर हैं वैसे ही बाहर हैं। आपके स्वभाव की सबसे बड़ी विशेषता है अन्दर और बाहर की एकरूपता।

वाणी में मधुरता—जैसे अमृत देवताओं की सम्पत्ति है उसी प्रकार मधुर वाणी मानव की निज सम्पत्ति है। मृदुवाणी आकर्षण कला का मुख्य केन्द्र है। यद्यपि सौन्दर्य भी सभी के लिये आकर्षण का केन्द्र है किन्तु चेहरे पर चाहे जितना सौन्दर्य हो यदि वाणी में मधुरता नहीं है वाणी में सौन्दर्यता नहीं है तो चेहरे का सौन्दर्य फीका है। प्रकृति ने मयूर को असीम सौन्दर्य दिया ऐसा लगता है कि चित्रकार ने अपनी सारी कला को यहीं लगा दिया किन्तु वाणी का सौन्दर्य नहीं दे पाया। शरीर का सौन्दर्य होते हुए भी वाणी के सौन्दर्य के अभाव में मयूर किसी भी कविता की काव्य भूमि में स्थान नहीं ले पाया। जबकि कोयल आकृति के सौन्दर्य के अभाव में भी वाणी की सौम्यता के कारण कवियों की काव्यभूमि में अमर हो गयी, चेहरे के सौन्दर्य का महत्व नहीं है।

मधुरता का महत्व—पू० गुरुवर्याश्री की वाणी में मक्खन की तरह मिठास है। जब कभी भी किसी

से बात करती हैं धीरे व मधुर आवाज से। महाराजश्री के जीवन में वाणी के गुण पूर्ण रूप से विद्यमान है। आवश्यकतानुसार बोलती है, गर्वरहित बात करती है, कभी भी तुच्छ शब्दो का प्रयोग नही करती हर समय उच्च भाषा का व्यवहार करती है। तथ्य सत्ययुक्त बोलती है, तोल कर बोलती है सीमित शब्दो मे बात को पूरी कर देती हैं, सदा सत्य बोलती हैं। गुरुवर्याश्री की वाणी मे मधुरता होने के कारण छोटे-बडे सभी खुल जाते है, किसी को सकोच या भय नही होता है।

व्यवहार मे नम्रता—आपके जीवन की विशेषताएँ हैं कि विद्वत्ता होने हुए भी अहम् अहकार का अर्जन नही है। बडे व छोटो के साथ, पठित अपठित के साथ अमीर-गरीब आदि सभी के साथ नम्र व्यवहार करती है। बडो के सामने सदा झुकी ही रहती हैं कभी भी बडो का अपमान नही किया। बडे कैसी भी आज्ञा दे उस आज्ञा को तहत्ति कर उसी समय स्वीकार करती है। उनके नम्र व्यवहार से हर व्यक्ति प्रसन्नता का अनुभव करते है। गुजराती कहावत है नमे जो सहुने गमे अपनी नम्रता के कारण ही सभी के लिये आकर्षण केन्द्र बने हुए है।

हृदय मे पवित्रता—आपका हृदय पूर्णरूप से पवित्र है, क्रोध, मान, माया लोभ की गन्दगी उनके हृदय को किंचित् भी स्पर्श नही कर पायी, सदा समता अमानी अमायी निर्लोभिता आदि गुणो की सुगन्ध से हृदय में पवित्रता के लिये हुये है।

मुख पर सौम्यता—चेहरा सदा फूलो की तरह मुस्कराता रहता है। किन्ही क्षणो मे देखे किसी भी प्रतिकूल परिस्थिति मे देखे लेकिन चेहरे की सौम्यता का लोप नही होता है।

आपश्री के बारे मे क्या लिखू क्या नही लिखू ? इतने गुण है उसकी लेखनी करने मे मेरी कलम भी असमर्थ है। जब अभिनन्दन ग्रन्थ के विषय मे बात चली तो मन मयूर नाच उठा और अन्तर् से आवाज आई कि हाँ ऐसी महान् विभूति का अभिनन्दन ग्रन्थ अवश्य निकलना चाहिए। वो बीज वृक्ष के रूप मे साकार हुआ। वह दिन आज धन्य बना। मैने आपश्री के बारे मे कुछ लिखना चाहा लिखा, कुछ त्रुटियाँ हो सकती है ध्यान न दे। आपश्री का आयुष्य दिनो-दिन बढता जाये। अपने सयम-जीवन को पवित्र बनाती जाये। जुग-जुग जिओ शासन की सेवा करती रहो ....।

हमारे ऊपर आपश्री का वरद हस्त सदा रहे यही गुरुदेव से प्रार्थना है। जब तक सूरज-चाँद रहेगा गुरुवर्याश्री का नाम रहेगा। इन्ही शुभ कामनाओ के साथ.......।

व्यक्ति, व्यक्ति को नही देखता उसकी सरलता को देखता है।
व्यक्ति, व्यक्ति से प्रभावित नही होता उसके गुणो से प्रभावित होता है।
व्यक्ति, व्यक्ति से आकर्षित नही होता उसकी वाणी से आकर्षित होता है।
व्यक्ति, व्यक्ति का अभिनन्दन नही करता है उसके व्यक्तित्व का अभिनन्दन करता है। ○

☐ साध्वी शुभदर्शनाजी म. सा.

(सुशिष्या परमपूज्या प्रवर्तिनी साध्वी श्री सज्जनश्रीजी म सा)

बीज की ओट मे वट वृक्ष का अस्तित्व छिपा है, तथा सीप मे चमचमाते मोतियो का हार रहता है। बादलो की ओट मे शीतल लहरो का सागर छिपा है, उसी प्रकार पुरुषो मे महापुरुषो का व्यक्तित्व छिपा रहता है। यह व्यक्तित्व जब निमित्त पाकर उभरता है तो समाज उसकी महत्ता का मूल्याकन करता है।

ऐसे ही महापुरुषो की शृखला मे अपने आपको जोडने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। सद्ज्ञान सरिता, अनन्त ज्ञान मजूषा, आगमवेत्ता आशुकवयित्री मम जीवन, उपकारिणी प्रवर्तिनी महोदया "यथा नाम तथागुण" पूज्य सज्जनश्रीजी म सा।

फूल वन जाते है। विपत्ति भी सम्पत्ति वन जाती है। इन्ही महापुरुषो की श्रेणी में है पू० गुरुवर्या श्री सज्जनश्रीजी म० सा० का भी व्यक्तित्व। जिनका सयमी जीवन समाज व शासन सेवा कार्य मे पूर्णरूप से तत्पर है।

आपश्री अत्यन्त शान्त सरल स्वभाव वाली है। दार्शनिक मुखमण्डल पर चमकती दमकती हुई निश्चल स्मित रेखा, उत्फुल्ल नीलकमल के समान मुस्कराती हुई स्नेह स्निग्ध निर्मल आँखे, स्वर्ण कमल पत्र के समान दमकता हुआ सर्वतोभद्र भव्य ललाट, कर्मयोग की प्रतिकृति के सदृश वे वाहर से जितनी सुन्दर व नयनाभिराम है उससे भी अधिक अन्दर से मनोभिराम हैं। उनकी मन्जुल मुखाकृति पर निष्कपट विचारकता की भव्य आभा झलकती है। आपकी उदार आँखो के भीतर से कमल के समान सरल सहज स्नेह सुधारस छलकता है। जव भी देखिए वार्तालाप मे सरस शालीनता के दर्शन होते हैं। हृदय की सवेदनशीलता एव उदारता दर्शक के मन और मस्तिष्क को एक साथ प्रभावित करती है। कुछ क्षण मे ही जीवन की महान दूरी को समाप्त कर एकता के सहज सूत्र मे वाध देती है।

मेरा सौभाग्य है कि मुझे गुरुवर्या श्री सज्जनश्रीजी म सा का सान्निध्य प्राप्त हुआ। आपश्री के जीवन में अनेक गुण विद्यमान है। आपश्री के लिए "स्वय तरन्-तारयितु क्षम. परम्" उक्ति चरितार्थ होती है। स्वय ससार सागर से तिरने वाली है और प्रत्येक प्राणी को भी ससार सागर से तिराने वाली है। जव आपश्री गढ सिवाणा पधारी। मैंने आपश्री के प्रथम वार ही दर्शन किये थे। लेकिन आपश्री का आदर्श जीवन, सरल स्वभाव व वात्सल्य भरे व्यवहार से मैं इतनी अधिक प्रभावित हुई कि मैं अपनी लेखनी द्वारा अभिव्यक्त करने मे असमर्थ हूँ। और दर्शन करने से लगा मानो मैंने आज साक्षात् भगवान के दर्शन किये हो। ओली पर्व का समय निकट आ रहा था। श्री संघ की विनती को स्वीकार कर आपश्री ने ओली करवायी। मुझे आपश्री के प्रतिदिन दर्शन व प्रवचन श्रवण का सुयोग वरावर मिलता रहा, कुछ दिन पश्चात् आपश्री मिठोडावास पधार गई। वहाँ भी मैं वरावर जाती रही।

सिवाणा श्री सघ की आग्रहभरी विनती को स्वीकार कर आपश्री ने चातुर्मास सिवाणा में ही किया। मुझे चार महीने आपश्री की सान्निध्यता प्राप्त हुई और सत्प्रेरणा मिलती रही जिससे मेरी भावना और दृढ वन गयी। और मैंने आपश्री की शीतल छाया मे रहकर यावज्जीवन व्यतीत करने का निर्णय कर लिया। आपश्री की भी कृपादृष्टि सदा इतनी वरसती रही कि मेरी दिनानुदिन भावना दृढतर होती गयी। और संयम-पथ पर अग्रसर होने के लिए उद्यत हो गयी।

आपश्री के जीवन मे एक-एक विशेषता ऐसी भरी है कि जितना भी लिखे अतिशयोक्ति नही होगी। आपश्री मे विद्वत्ता के साथ-साथ त्याग, तप का भी विशेष गुणहै। आपश्री ने मासक्षमण, ओलीजी विंशतिस्थानक, वर्षीतप आदि अनेक तपस्याएँ करके अपने सयमी जीवन को पवित्र वनाया और वना रही है। आपश्री अपनी शिष्याओ को भी हमेशा प्रेरणा देती रहती है कि जीवन मे जव तक त्याग, तप नही आयेगा तव तक आत्म-शुद्धि भी नही होगी। तप के साथ-साथ वैयावृत्य की भावना भी विशेष है। अपनी पू गुरुवर्या श्री ज्ञानश्री जी म सा की सेवा मे २२ वर्ष तक एक ही स्थान पर जयपुर में रहकर सेवा की। साथ ही आवश्यकता होने पर सभी पूज्यवर्याओ की सेवा के लिए सदा तत्पर रहती है।

गच्छ प्रवर्तिनी जैसे महान पद पर आसीन होते हुए भी जीवन मे इतनी सरलता है कि कभी कभी तो विचार आता है आपश्री इतनी विद्वान योग्य श्रमणी होते हुए भी छोटे वड़ो के प्रति सदा समान

भाव रहता है। आपश्री की निश्रा में १२ दीक्षाएँ हुई हैं। सभी शिष्याएँ परम विदुषी हैं। साथ ही अन्य वैराग्यवती बहिनें भी आपश्री की सानिध्यता में हैं।

पू० गुरुवर्याश्री की कृपादृष्टि मुझ पर सदा रही है। आपका वात्सल्य मुझे अनन्त मिला है और मिल रहा है। मैं तो हर क्षण सोचती हूँ कि मेरे जीवन का हर पल, हर क्षण आपश्री की शुभ निश्रा में ही व्यतीत हो। आपश्री चिरायु होकर समाज सेवा व अपनी पार्श्ववर्तिनी शिष्याओं को प्रतिक्षण शुभाशीर्वाद प्रदान करती रहें। ○

☐ आर्या दिव्यदर्शनाश्री

(सुशिष्या परम पूज्या श्रीसज्जनश्रीजी म० सा०)

गुरुवर्याश्री हो तो ऐसी हो जिनके देखने मात्र से वैराग्य की भावना जागृत हो गयी। आप श्री की आकृति में हमेशा सरलता, सहजता, सौम्यता, सहिष्णुता टपकती रहती है। आप विनम्रता की साक्षात मूर्ति हैं। अहंकार उनके आसपास नहीं रहता। वे ज्ञानी हैं पर ज्ञान का अहंकार नहीं। वे त्यागी हैं पर त्याग का घमंड नहीं। उनके कण कण में वात्सल्य है। आपके प्रवचनों में सबसे बड़ी विशेषता है, कि वे आगम के गूढ़ गम्भीर रहस्यों को सरल और सुगम रीति से प्रस्तुत करती हैं जिससे श्रोतागण ऊबते नहीं हैं। आप हमेशा हम सभी को अध्ययन की प्रेरणा देती रहती हैं कि "कुछ आगम का ज्ञान सीखो इसके बिना जीवन में शून्यता है।" शून्य की कीमत संख्या के बिना कुछ नहीं है। जहाँ संख्या लगी शून्य की कीमत बढ़ी। जितनी गहराई में जाओगे उतने ही रत्न मिलेंगे। जितना चिन्तन के द्वारा मंथन करोगे उतना ही मक्खन मिलेगा। आप हमेशा त्याग-तप व संयम के ऊपर जोर देती हैं। आपकी बनाई हुई कविता की पंक्ति याद आ रही है।

"तप संयम रमणता
न हो तो श्रमणता'

आपका कहना है। संयम में निष्ठ बनो। आप हमेशा शिक्षा की पावन प्रेरणा देती रहती हैं। आपके पद चिह्नों पर हमेशा चलें। इसी आशीर्वाद की आकांक्षा के साथ पू० गुरुवर्या श्री के स्वास्थ्य की कामना करती हुई श्री चरणों में कोटि-कोटि अभिनन्दन। ○

☐ साध्वीश्री सुलोचनाश्रीजी म

भयंकर भीष्म दारुण संसार में से भव्यात्माओं के जीवन पाषाण में कुशल कारीगरी कर संयम प्रतिमा का सर्जन करने वाले अजोड़ महापुरुषों एवं सताओं की पंक्ति में महामनीषी वात्सल्य मूर्ति परम पूज्या प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी महाराज सा० भी सहज ही आते हैं।

आपश्री विरल व्यक्तित्व के धनी और उत्कृष्ट चारित्रिक गुणों से विभूषित अपूर्व आध्यात्मिक मूर्ति हैं। आपश्री के व्यक्तित्व में जटिल सयोगों का चमत्कारिक सामंजस्य सही में विस्मयजनक है।

वृद्धावस्था होने के बावजूद भी जरा प्रमाद नहीं। आपका हृदय बच्चों का सा सुकोमल, सुनवनीत सा द्रवित है। आपश्री विनय, नम्रता, शान्ति एवं वात्सल्य की साकार मूर्ति हैं। आपश्री के प्रथम दर्शन से ही व्यक्ति चुम्बक-आकर्षित होकर खिंचे चले जाते हैं।

आपश्री के सम्पर्क से मैंने यह अनुभव किया है कि आप अनिर्वचनीय रूप शोभमालिका का एक प्रकाश पुञ्ज हैं। ज्ञान, दीप ज्ञान दर्शन, चारित्र, तप की ज्योति से स्वयं भी जगमगा रही हैं। अतएव आपकी वाणी और लेखनी में धर्म, नीति, तप, त्याग, उपासना, निदिध्यासन आदि सद्गुणों को प्रबुद्ध करने

वाले तत्वों का बाहुल्य है। आपकी रचनायें स्वान्त सुखाय न होकर परोपकार के उदात्त अभिप्राय से अनुप्राणित हैं।

मैं देव गुरु से मंगल कामना करती हूँ कि आपश्री शतायु बनें, चिरायु बनें तथा स्वस्थ रहकर जिनशासन गच्छ का अमूल्य पूर्ण गौरव बनाये रखें।

अनन्त ज्ञान के ज्योति पुन्ज हो, तमसावृत जो दूर करें।
ऐसी महान प्रवर्तिनी श्री को, वन्दन हम शत बार करें॥ ○

□ आर्या विद्युतप्रभाश्री, एम० ए०
(सुशिष्या प्रवर्तिनी श्रीविचक्षणश्री म०)

सत्य, संयम की साधना हेतु सुगन्धित सुमन के हार नहीं अपितु तलवार की धार को धारकर स्वयं के जीवन को सुयश की सुगन्ध से सुवासित करने वाली सरस्वतीतुल्या सतत साहित्योपासना में संलग्न, सन्मति-सम्पन्ना, श्रुतशील वारिधि तथा निष्ठा, निःस्वार्थ, निर्दम्भ निर्मल भावों से गुरु चरणों में तन मन से समर्पित, यथा नाम तथा गुणधारी पूज्येश्वरी......

गुलाबी नगरी के उपाश्रय में गुलाब तुल्य स्व गुणों से जन-मन को सुगन्ध देने वाली, अखंड ज्ञान यज्ञ से जुडी, दुनियाँ की अटपटी-खटपटों से बहुत बहुत दूर......

प्रशमरसनिमग्ना, जपरचितसम्पन्ना पू० प्र० श्रीज्ञानश्रीजी म० सा० के चरणों में समर्पण भाव से विराजित नामानुसार सज्जनता जिनमें पायी गई है—ऐसे महान् व्यक्तित्व के दर्शनों का सौभाग्य मुझे मिला—(आज से लगभग ३० वर्ष पूर्व) मुकुलित पुष्प के रूप में विद्यमान शान्त साध्वी पू० श्रीशशिप्रभा श्रीजी म०सा० के माध्यम से।

आपश्री आशु-कवयित्री, आगमज्ञा होने के साथ-साथ अहंकार, अभिमान से बहुत दूर...... अतः मात्र गुरुजनों की ही नहीं अपितु निकटवर्ती समस्त संयमी आत्माओं की सेवा हेतु सतत् सक्रिय रहतीं। वय-सम्पन्ना होने पर भी बालकों की सी सक्रियता, स्फूर्ति तथा युवा-सा उत्साह, उमंग, उल्लास आप में देखा गया।

कवि ने सत्य कहा है—

सम्पूर्ण कुम्भो न करोति शब्द ......

शक्तिसम्पन्न व्यक्ति यदि सुज्ञ है तो कभी अधिक ध्वनि नहीं करता। कुमारसभवम् में कवि कालिदास ने कहा है—

"शक्तौ क्षमा"—महान् व्यक्ति का लक्षण है शक्ति के साथ क्षमा होना। आपके पास अनेकानेक शक्तियाँ हैं तथा उन्हें पचाने के साथ-साथ उनका सदुपयोग भी है। विद्या के साथ विनय, विनम्रता, स्वाध्याय के साथ सेवा, सरलता तथा विद्वत्ता के साथ लघुता आपके जीवन में स्वर्ण सुहागे का काम करती है।

अध्ययन के साथ आपकी अध्यापन रुचि भी दर्शनीय है—आप जब भी पढ़ने जाइये—पढ़ाने को तैयार—कभी नहीं कहेंगे अभी क्यों आये—अभी नहीं बाद में आना, ये भी कोई समय है पढ़ने का, देखते नहीं मैं क्या कर रही हूँ। बस ली पुस्तक और उल्लसित रूप से अध्यापन प्रारम्भ। कितनी सरलता, सहजता।

आपके सद् सहस्र-सहस्र सद्गुण—पुष्पो को यदि धागे मे गूंथना प्रारम्भ करूं तो एक विस्तृत हार का निर्माण हो जावे। इस पुष्पवाटिका म से मैं भी आत्महिताय दो चार पुष्प पा जाऊँ तो स्वय के जीवन को धन्य मानूँगी।

☐ श्रीसौम्यगुणाश्री म०

(बालशिष्या पूज्याश्री सज्जनश्री म०)

भ० महावीर ने "समय गोयम मा पमायए" का उपदेश दिया, गौतम ने इसका पालन कर स्वकल्याण किया, गुण गरिमायुक्त इस सूत्र को भ के शासन म जुडने वाली पूज्या प्रवर्तिनी महोदया न धारण कर विश्व मे आदश उपस्थित किया। क्या कभी इस उक्ति की ओर हमारी दृष्टि गई? क्या हमन कभी नजर दौडाई? यदि चिंतन, मनन करते हुए हम अपना स्वय निरीक्षण करें ता ज्ञात होता है कि भगवान् के शब्दो से सर्वथा प्रतिकूल है हमारा जीवन। भाव से प्रमादी तो अनन्तकाल से बने हुए हैं चूंकि आज तक आत्मा की ओर तो हमारा कोई लक्ष्य ही नही रहा, और कभी लक्ष्य बना भी तो वह अत्यल्प समय के लिए। किन्तु आज मानव द्रव्य से भी प्रमादी बन गया। इस वज्ञानिक, मशीनरी युग म प्रत्यक काय मशीनो, यन्त्रो एव भृत्यो द्वारा होने लगा है। तथापि इस उक्ति को चरितार्थ करने वाली खरतरगच्छ की एक सयमधारिणी, शासन सघ की शोभावर्धिनी, जन-जन की कल्याणकारिणी, साध्वीवृन्द की प्रवर्तिनी हैं पू गुरुवर्या श्रीसज्जनश्रीजी म सा।

पू गुरुवर्याश्री का जीवन प्रतिक्षण, प्रतिपल अप्रमत्तता मे ही व्यतीत होता है। शरीर की आवश्यक क्रियाओ के अतिरिक्त शायद ही उनके जीवन म कभी ऐसा समय आया हो, जब प्रमाद म ही अधिक समय व्यतीत हुआ हो। सहिष्णुता, निर्मलता, सहजता, सहृदयता, भावुकता, नम्रता आदि गुण तो फिर भी यत्किंचित् किसी मे दृष्टिगोचर हो सकते हैं किन्तु अप्रमत्तता का गुण तो विरल व्यक्ति मे ही अवलोकन करने को मिलता है।

निम्नांकित कतिपय बिन्दुओ द्वारा उनके अप्रमत्त जीवन की थोडी सी झलक अपनी लेखनी द्वारा आलेखित करती हूँ।

१—"जिन क्षणो मे गुरुवर्या श्री शास्त्रवाचन अथवा पुस्तक पढने म दत्तचित्त होती है, उन क्षणो मे समीपस्थ व्यक्ति क्या वार्तालाप कर रहे हैं? उस ओर गुरुवर्याश्री का यत्किंचित भी ध्यान नहीं जाता।"

२—"व अपना काय कभी भी जहाँ तक है करवाना नही चाहती, स्वय ही उस कार्य को करने के लिए अभ्युत्थित हो जाती हैं। इससे इनका स्वावलम्बी जीवन स्पष्ट परिलक्षित होता है।"

३—"आप कभी भी गुरुवर्याश्री को देखिये परखिय, जानिय, किसी न किसी काय म लीन ही मिलेंगी।"

उपयु क्त सभी कथ्य अनुभवसिद्ध हैं। ऐसी एक नही, अनक विशेषताएँ पूज्याश्री म स्पष्ट रूप स परिलक्षित होती हैं, जिन्हें मैंन न तो किसी अन्य म देखी हैं और न सुनी हैं।

उनके अप्रमत्तजीवन का एक सस्मरण मरे मानस म उभर कर आ रहा है, जिसे लेखनी लिखने के लिए आतुर हो रही है।

एक बार गुरुवर्याश्री सिवानाग्राम स विहार कर पिंक सिटी जयपुर की ओर पधार रही थीं। मैं भी साथ थी। विचरण करते करते हम सब जोधपुर से पट्टे "कुन्डी" ग्राम मे पहुचे। उस दिन

विहार काफी लम्बा हो चुका था और गुरुवर्याश्री की उम्र भी लगभग ७६ वर्ष की थी। कुण्डी ग्राम में एक विद्यालय के अन्दर रुके। जिस कक्ष में हम रुके थे उसके अत्यन्त समीप में ही पुस्तकालय था। गुरुवर्याश्री जैसे ही विद्यालय मे पधारी, वैसे ही उस पुस्तकालय मे चली गई और प्रोफेसर की अनुमति से पुस्तक ली, और वही खडी-खडी पढने मे लीन हो गई। इधर दर्शनाचार्य पू शशिप्रभाजी म. सा. ने यत्र तत्र देखा। कही भी गुरुवर्याश्री नही। चिन्ता हो गई, किन्तु किंचित् समयानन्तर जब साध्वी शशिप्रभाश्री म सा ने पुस्तकालय मे गुरुवर्याश्री को पुस्तक पढते देखा, तब बोली "आप विहार कर पधारी हैं अत. कुछ आराम कर लीजिए, बाद मे पुस्तक पढियेगा।" तब "पुस्तक पढना ही हमारा आराम है" गुरुवर्याश्री ने कहा। मैं भी समीप ही खडी थी।

यह वाक्य सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ कि मेरी उम्र तो अभी इतनी अल्प है फिर भी आते ही आसन बिछाकर सीधे सोती हूँ किन्तु गुरुवर्याश्री को देखो।

वास्तव मे इस वाक्य ने "कि पुस्तक पढना ही हमारा आराम है" मेरा जीवन भी आंशिक रूप मे परिवर्तित कर दिया।

इससे अनुभव कर सकते हैं कि गुरुवर्याश्री का जीवन कितना अप्रमत्त है। वास्तव मे गुरुवर्याश्री ने "समय गोयम ! मा पमायए" की गुण गरिमायुक्त उक्ति को चरितार्थ किया है।

कृपा से परिपूर्ण आपश्री का वरदहस्त सदा सर्वदा मेरे सिर पर रहे, जिससे मेरे कदम उत्तरोत्तर उन्नति की ओर अग्रसर होते रहे और मैं अपने लक्ष्य को शीघ्र प्राप्त कर सकूं। इन्ही शुभ अभ्यर्थनाओ के साथ—

युग-युग तक करती रहो धरा पर
जिनवाणी का विमल उद्योत
और बहा दो मम मानस मे
आध्यात्मिकता का नूतन स्रोत। ☐

☐ श्री आर. एम. कोठारी, आर. ए. एस.

प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी की शिष्या पू. श्रीसम्यग्दर्शनाजी के दर्शन मुझे उनके जोधपुर प्रवास में पू. श्री विद्युत्प्रभाश्रीजी के सग भैरुबाग मन्दिर मे हुए। साध्वीजी श्री सम्यग्दर्शनाजी को देखा तो पाया कि निरन्तर पठन-पाठन उनका मुख्य व्यसन है तथा उनकी विद्वत्ता, विनम्रता, जनकल्याण की भावना व सदाशयता ने मुझ पर गहरी छाप छोड़ी। उनसे ही जानकारी मिली कि उनकी दो बहिनें भी साध्वी-जीवन बिता रही हैं। जिनकी शिष्या गुणों की खान हो—उनकी गुरुवर्या कैसी होगी ? जानने की जिज्ञासा बढी।

मुझे शीघ्र ही उनकी गुरुवर्या पूज्या प्रवर्तिनीजी का जयपुर चातुर्मास मे एवं तत्पश्चात् सन् १९८२ मे जोधपुर प्रवास मे सान्निध्य प्राप्त करने का अवसर प्राप्त हुआ। उनके सान्निध्य का लाभ मेरे लिए मंगल विधायक सिद्ध हुआ।

पूज्या प्रवर्तिनीजी की छवि मे प्रशस्त ललाट, अलौकिक तेज पुंज, शान्त स्वरूप, दीर्घ नयन, शरीर मे देवभाव का प्रभाव, मुखमण्डल मे सर्वजीवो को अभय करने वाली अपूर्व शोभा है।

आशीर्वाद देने के लिए उठे आपके दाहिने हाथ मे गुरु पर्वत के बायी ओर से अन्दर की ओर जाने वाली रेखा (साइड रिग), गुरु पर्वत पर क्रास का चिन्ह, पर्वतों पर चार वृत, बुध एव सूर्य पर्वत को

घेरती हुई रेखा जो हृदय रेखा से समागम करने जसी है (मिली नहीं है—कान्जाइ ड) तथा शनि पवत पर शाखाओ के रूप मे बँटती है, जीवन रेखा एव मस्तिष्क रेखा का एक दूसरे से मिलने की ओर अग्रसरता अ तर्ज्ञान (इ ट्यूशन) रेखा की विद्यमानता आपको जनसमूह को विपत्तियों से उद्धार करने वाला उद्धारक, सामाजिक चेतना जगाने एव उसका सफल नेतृत्व करने के लिए ही पृथ्वी पर ज म लेने का प्रयोजन साबित करता है। (Saviour to protect masses from disaster)

आपकी शिष्याओ पू शशिप्रभाश्रीजी, प्रियदशनाश्रीजी, दिव्यदशनाश्रीजी, सम्यग्दशनाश्रीजी आदि को देखकर स्पष्ट भान होता है कि पारस पत्थर तो लोहे को सान म परिवतन कर देता है मगर पूज्या प्रवर्तिनीजी ने तो उनके सान्निध्य मे रहन वाली समस्त साध्वियो को ही 'पारस' मे परिवर्तित कर दिया है।

आपकी सरलता, विनम्रता और मौन साधना का निहार कर श्रीसूत्रकृताग की यह सूक्ति स्मरण हो जाती है—

सारद सलिल व सुद्ध हियया
विहग इव विप्पमुक्का,
वसु धरा इव स न फासविसहा ॥—२-२ ३८

साध्वीजी का जीवन शरदकालीन नदी के समान निमल है। व पक्षी की तरह ब धनो से विप्रमुक्त और पृथ्वी की तरह समस्त सुख-दुखा को समभाव से सहन करन वाले है।

पूज्या प्रवर्तिनीजी के जीवन की निमलता के विषय मे श्री बनारसीदास की यह पक्तिया भी स्मरण हो जाती हैं—

जसे निसि वासर कमल रहे पक ही मे,
पकज कहावे प न फँसे दिग पक है,

भवपक म, कमलवत इनका जीवन है।

पूज्या प्रवर्तिनीजी का जैन आगम साहित्य (मूल, नियु क्ति चूर्णि भाष्य) का सतत् अध्ययन एव साहित्य सृजन, विश्वशान्ति, प्राणीकल्याण एव मानवोत्थान के लिए है।

अस्सी वष की वृद्धावस्था एव शरीर रुग्ण होते हुए भी आप श्रीसघ को श्रीवीतराग दव के पथ पर ल जान, धार्मिक एव मानव के नैतिक उत्थान के लिए सतत् प्रयत्नशील है।

जयपुर श्रीसघ का अहोभाग्य है कि उ ह पूज्या प्रवर्तिनीजी के अभिन दन का अवसर मिला है। पूज्या प्रवर्तिनीजी का गुणानुवाद—धार्मिक एव सास्कृतिक धरोहरो से विभूषित इस महान मनीषी का ही गुणानुवाद नही है यह जनधम, जैन सास्कृतिक जागरण, धार्मिक प्रवृतिया, सम्यक्त्व, साहित्यिक विकासोन्नयन एव जन ऐक्य के गुणानुवाद का प्रसग है।

जिनशासन देव ऐसे शान्तमूर्ति गम्भीरता के प्रतीक आत्मीयता की खान, पीयूषवाणीदाता को चिरायु बनावें। पूज्या प्रवर्तिनीश्री को कोटि-कोटि वन्दन, शत शत अभिन दन।

☐ श्रीमती स्नेहलता चौरडिया

आगममर्मज्ञा परमपूज्य गुरुवर्या आशुकवयित्री प्रवर्तिनो महोदया श्री सज्जनश्रीजी म सा जिनकी कीर्ति का डका सम्पूण भारत देश म बज रहा है। आपश्री के उत्तम श्रेष्ठ गुणा की महत्ता का बखाण प्रत्येक व्यक्ति अपन मुखारबिन्द स किये बिना नही रह सकता है।

मेरा परिचय पू गुरुवर्या श्री से आज का नही है। जब मै आठ-नौ वर्ष की थी तब मे ही आपश्री की सान्निध्यता का सुअवसर प्राप्त हुआ था, आपश्री के साथ रहने से मुझे भी कुछ ज्ञान प्राप्त हुआ। पद-यात्रा मे आपश्री के साथ खूब रही। वे दिन मुझे याद आ रहे है। मुझमें इतनी समझ नही थी, नादान बालिका थी। मुझसे कोई गलती भी हो जाती लेकिन गुरुवर्याश्री वात्सल्यपूर्वक मुझे समझाते और उस गलती को कभी गलती नही समझते थे।

आपश्री का उज्ज्वल, सयमी जीवन जन-जन को आकर्षित करता है। सरलता, सहजता और विद्वत्ता से प्रभावित होकर अनेक मुमुक्षु व बालिकाओ ने अपने आपको धन्य माना है।

पू गुरुवर्याश्री दीर्घायु होकर समाज की एव स्वय की उन्नति करती रहे और हमें सदा सन्मार्ग बताती रहे इन्ही शुभकामना एव भावनाओ के साथ हार्दिक अभिनन्दन। ○

☐ डा० विजयचन्द जैन, लखनऊ

ये बात सन् १९७२-७३ की है जब मेरे आठ वर्षीय पुत्र संजय उर्फ गुड्डू को कुत्ते ने काट लिया था। उन दिनो महाराज जी लखनऊ चौमासा करने आई हुई थी। उन्हे मैंने अपने पुत्र को कुत्ते काटने वाली बात बताई जिस पर उन्होने मेरे पुत्र को धर्म आदि सुनाया और असीम स्नेह व आशीर्वाद दिया। तदुपरान्त वो कलकत्ता चली गयी। तभी मैंने बच्चे को कुत्ते काटने का असर खतम करने वाली चौदह सुइयां लगवाई तथा उसकी बूस्टर भी दी। इसके दो साल बाद मै कलकत्ते गया वहाँ जाकर मैंने महाराज जी का पता लगाया। इसी बीच मेरे पुत्र गुड्डू की हालत अचानक खराब हो गई। उसमे कुत्ता काटने के उपरान्त हुए लक्षण दिखाई देने लगे। मैं फौरन महाराजजी के पास गया और बच्चे का हाल बताया। वो तुरन्त ही दस किलोमीटर चलकर मेरे बच्चे के पास आई और उसे धर्म सुनाया। उसके बाद दूसरे दिन पुन. आने को कहकर चली गयी। इस बीच उसी रात बच्चे की हालत ज्यादा खराब हो गई और दूसरे दिन सवेरे पाँच बजे मेरे पुत्र का देहान्त हो गया। उधर उसका देहान्त हुआ और उसी समय महाराज जी का फोन आया। इससे पहले कि मैं उन्हे गुड्डू के देहान्त की बात बताता उन्होने स्वय ही पूछा कि अब हमारी वहाँ आने की आवश्यकता है क्या? ये सुनकर मुझे अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि उन्हे स्वत. ही कैसे आभास हो गया कि अब उनके आने की आवश्यकता नही रही। इस घटना से मुझे महसूस हुआ कि उनका दिव्यज्ञान कितना प्रबल है और यह घटना महाराज जी के प्रबल आत्मज्ञान को प्रमाणित करती है जिसे मै आज तक नही भूल सका। ○

☐ श्रीमती लक्ष्मी भन्साली

ससार मे ऐसे कम ही महाव्यक्तित्व होते है, जिनके दर्शन से स्व-दर्शन की प्रेरणा मिलती है।

मुझे याद है कि आगमज्योति, आशुकवयित्री परम श्रद्धेया गुरुवर्याश्री अपनी शिष्या मण्डली के साथ वि० सं० २०३७ मे सिवाना चातुर्मास हेतु पधारी। तब मुझे प्रथम बार आपके दर्शनो का सौभाग्य प्राप्त हुआ, साथ ही उनके वैराग्य से परिपूर्ण मृदु, ओजस्वी प्रवचनामृत का पान करने का भी अद्वितीय सयोग सम्प्राप्त हुआ, फलस्वरूप ससार से उद्विग्नता जागृत हो गई और मानस-भू मे वैराग्य अकुर का उद्‌भव हो गया। और तत्क्षण मैंने मन मे सकल्प कर लिया कि मुझे यावज्जीवन के लिए इन समता-मूर्ति गुरुवर्याश्री के चरणो मे आश्रय लेना है, क्योकि सच्ची आत्मिक शान्ति इनके चरणो मे प्राप्त होगी। शान्ति वही दे सकता है जिसने शान्ति प्राप्त कर ली हो।

पू० गुरुवर्याश्री को जब भी मैंने देखा, जिस समय मे देखा, जहा भी देखा, उन्ह समता की भावनाओ से ओतप्रोत ही देखा।

क्रोध के प्रसग मे भी समतामूर्ति गुरुवर्याश्री को कभी उत्तेजित होते नही देखा, इतनी समता, शान्ति शायद ही कहीं देखने को मिलती है, जैसे गुरुवर्याश्री म। हर समय शान्त, सरल, सौम्य गुरुवर्या श्री के निश्रा की शरण भव भव मे प्राप्त हो।

उनके बहुआयामी व्यक्तित्व एव कृतित्व से ग्रथित यह अभिनन्दन ग्रथ प्रकाशित हो रहा है। अत्यधिक प्रसन्नता है, किन्तु मैं अकिंचन, अल्पज्ञ तुच्छ बालिका किन शब्दो के द्वारा आपके महान गुणो को अभिव्यक्त करूँ। क्योकि महान व्यक्ति के जीवन चरित्र को पूर्ण रूप म तो केवल श्रद्धा, सभक्ति, सविनय आपके सद्गुणो का अभिनन्दन एव दीर्घायु की शुभकामना करती हुई चरणो मे शत शत कोटि-कोटि वन्दन। ○

☐ श्रीमती शान्ता गोलेच्छा

इस धरातल पर कुछेक विभूतियाँ ऐसी हैं, जो स्वय का उद्धार करने के साथ-साथ अन्यो का उद्धार करने म भी समर्थ हैं। कुछेक ऐसी विभूतिया होती हैं जो अपने पुरुषार्थ से सयमी जीवन के सम्पर्क म आने वाले प्राणियो का उद्धार करने म सशक्त होती हैं। ऐसी त्याग, तप, चारित्रमय आत्माओ का जीवन विराट, व्यापक और विशाल होता है। उनके हृदय म प्रत्येक व्यक्ति के प्रति करुणा की भावना भरी होती है। ऐसी ही एक विभूति है "यथानाम तथागुण' धारिका प्रवर्तिनी गुरुवर्या श्री सज्जनश्रीजी महाराज साहब।

आपश्री से मेरा परिचय ३० वर्ष से है। जब मैं छोटी थी जब स माता पिता के धर्मनिष्ठ सस्कारो से सस्कारित होने के कारण मुझे भी धर्म सीखने की प्रेरणा मिलती रही। अत एक दिन मैं उनकी प्रेरणा से प्रेरित होकर जयपुर मे विराजित प्रवर्तिनी महोदयाश्री प ज्ञानश्रीजी म सा की विदुषी शिष्या पूज्यवर्या श्री सज्जनश्रीजी म सा के पास धर्म सीखने गई। जैसे ही महाराज की सरल सौम्या-कृति देखी कि मैं उनसे प्रभावित हुए बिना न रह सकी।

वसे मुझे महाराज के पास आना-जाना कम ही पसन्द था, किन्तु महाराजश्री के वात्सल्यमय मृदु मधुर व्यवहार से मन सहज उनकी ओर आकर्षित हो गया। और आने-जाने का क्रम प्रतिदिन प्रारम्भ हो गया।

जब मैं गुरुवर्याश्री को धार्मिक पाठ सुनाती तो कई बार उच्चारण की अशुद्धता करने पर भी बडे प्रेम से समझाती थी। पुन फिर उसे बडे प्रेम से शुद्ध करवाती थी। इस अर्से म मैंने कभी उनको क्रोध करते हुए नही देखा। और न कभी उन्होंने ऐसा ही कहा कि कितनी बार तुमको शुद्ध कराया फिर भी अशुद्ध बोलती हो।"

ऐसी समतामूर्ति के सयोग से मेरी भी धर्म मे रुचि जागृत हो गई। उनके इस वात्सल्यमय व्यवहार के कारण मेरा आकर्षण गुरुवर्याश्री की ओर दिनानुदिन बढता गया और अल्प समय म ही मैंने पचप्रतिक्रमण आदि अनेक चीजें सीख ली।

इस प्रकार मुझ जसी अज्ञानबाला का धर्म मे जोडने का श्रेय श्रद्धेया गुरुवर्याश्री को ही है। अत उनका मुझ पर अनन्त-अनन्त उपकार है। उस उपकार मे मैं कभी उऋण नही हो सकती। गुरुवर्या श्री की कृपा मुझ पर सदा से है और सदा रहेगी, ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है। तथा मैं अपने इष्ट देव म

यही प्रार्थना करती हूँ कि आपकी कृपा दिनानुदिन बढती जाये। आपका वरदहस्त मेरे मानस को सदा उजागर करता रहे व दीर्घ समय तक आपकी शीतल छाया, सम्यक्‌निश्रा हमे प्राप्त होती रहे।

□ श्री सोहनराज भंसाली, जोधपुर

श्री सज्जनश्री जी महाराज [का जैसा नाम है, वैसी ही वे गुणनिधान है। "यथा नाम तथा गुण" यह लोकोक्ति आपके जीवन मे यथार्थ चरितार्थ होती है। सचमुच मे आप सरलता, शालीनता, सौजन्यता एव सेवापरायणता की जीवन्त मूर्ति ही हैं।

कठोर श्रम, निरतर अध्ययन, कुशाग्रबुद्धि एव सीखने और जानने की दृढ़ इच्छाशक्ति के कारण आपने जैनसाध्वी समुदाय मे आगमज्ञाता के रूप मे अपना एक विशिष्ट स्थान बना लिया। आपके आगमज्ञान से प्रभावित होकर जैन समाज ने आपको "आगम ज्योति" की उपाधि मे अलंकृत किया जो सर्वथा योग्य ही है। वर्तमान मे खरतरगच्छ मे ही क्या समग्र जैन समाज के साध्वी मंडल मे आपके समान आगम साहित्य की ज्ञाता शायद ही कोई साध्वी होगी ऐसा कह दूँ तो कोई अतिशयोक्ति नही होगी। यो तो वर्तमान मे नई पीढी की साध्वी समुदाय में अनेक, एम ए, पी.-एच डी (डॉक्टरेट) आदि विश्वविद्यालयो की उच्च डिग्रियाँ प्राप्त विदुषी साध्वियाँ है। परन्तु जैन आगम साहित्य जैसा उच्च और गहन अध्ययन आपका है वैसा इन डिग्रीधारी साध्वियो में नही है, यह एक तथ्य है।

ज्ञान और चरित्र का संगम—

महाराजश्री एक उच्च कोटि की आगमज्ञा होते हुए भी आपके जीवन व्यवहार में संयम धर्म की मर्यादाओ की पालना एव धर्म क्रियाओ के आचरण मे कोई कमी या ढिलाई नही है। इसका अर्थ आप यह भी न लगावे कि आप एक दकियानूसी, कट्टर रुढिवादी हैं और आँख मूँदकर पुराने विचारो का समर्थन या पोषण करती हैं। यद्यपि आप पुरानी पीढी की आर्या है तथापि आपके विचार आधुनिक हैं। यही कारण है कि आप अपने प्रवचनो मे "माइक" का प्रयोग कई दशकों पूर्व से ही करती आ रही हैं जो आपकी प्रगतिशीलता का द्योतक है।

मुझे यहाँ परम अध्यात्मयोगी द्रव्यानुयोग के महान ज्ञाता श्रीमद् देवचन्द्र जी की वे पंक्तियाँ स्मरण आती है जो उन्होने अपने शिष्यो को उद्‌बोधन या सिखावन देते हुए कही थी।

"पग प्रमाण सोडि ताणज्यो, श्री संघनी हो तमे धरज्यो आन।
वहिज्यो सूरिजीनी आज्ञा, सूत्र शास्त्र हो तुमे धरज्यो ज्ञान॥

इन पंक्तियो मे श्रीमद् ने कहा, गुरु की आज्ञा मे वफादार रहते हुए भी, श्री संघ की आज्ञा को मानते हुए भी, सूत्र शास्त्र मे बताये मार्ग का अनुसरण करते हुए भी "पग प्रमाण सोडि ताणज्यो" अर्थात् द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव को सामने रखना, उस पर चिन्तन मनन करना, उस पर ध्यान देना।

महाराजश्री श्रीमद् की इन पक्तियो का मर्म और गूढ़ रहस्य को समझ कर उसी के अनुरूप चलने का प्रयास करती है जो सर्वथा अनुकरणीय एव अभिनन्दनीय है। निसन्देह आप मे नए और पुराने विचारो का सगम है, आप नूतन और पुरातन आयाम के सामजस्य एवं समन्वय की एक जोड़ने वाली कडी है, सेतु है।

सन् १६८२ मे जोधपुर चातुर्मास के वाद विहार कर आपका जयपुर की ओर आने का निश्चय हुआ। उस समय आपके रुग्ण एव वृद्धावस्था के कारण आपके समक्ष यह प्रस्ताव रखा गया कि आप से

पाद विहार नहीं हो सकेगा। अत विहार मे ठेला या कुर्सी का प्रयोग कर लें। परन्तु आपने इसे स्वीकार नही किया। आपने कहा, जितना चल सकूँगी धीरे धीरे चलूँगी, लम्बा विहार नही हो सकेगा तो थोडा-थोडा करूँगी। दिन अधिक लगेंगे तो कोई बात नही। जब तक शरीर साथ देता है, पदल ही चलने की भावना है। यह है आपकी सयम पालने की उत्कृष्टता।

आगम ज्ञान के साथ साथ आपका एतिहासिक ज्ञान भी उत्तम है। 'ओसवाल वश अनुसधान के आलोक मे" पुस्तक की पाडुलिपि जब मैंने आपको अवलोकनार्थ दी तब आपने उसे पूरी रुचि, लगन एव तत्परता से पढा। मुझे कई उपयोगी सुझाव दिए। कुछ भूलो का परिमार्जन भी कराया। तक्षशिला के बारे मे आपने मेरी शका का तर्कयुक्त ढग से समाधान किया। मैंने पूछा कि तक्षशिला मे ५०० जिन चैत्य थे ऐसा जैन साहित्य मे पढने को मिलता है क्या यह ठीक है ? ५०० जिन चैत्य वाले नगर मे जैनो की आबादी ज्यादा मे रही होगी। आपने बताया कि पुराने समय मे कई प्रदेशो म ऐसी परम्परा थी कि जैन लोग अपने घरो के मुख्य द्वार के ऊपर पदमासन आकार के तीर्थकर की मूर्ति अकित कराते थे जैसा कि आज भी कई वाहन व घरो के द्वार के ऊपर गणेश की मूर्ति रहती है। इसके अतिरिक्त कई जैन घरो म घर देरासर होते थे। आज भी कुछ सम्भ्रात घरो म घर देरासर (मन्दिर) देखने को मिलते हैं। इस प्रकार आपने दूसरी भी कई शकाओ का समाधान किया। जो आपका इतिहास ज्ञान का परिचायक है।

ज्ञान और चारित्र का जैसा सुमेल एव समन्वय आपके जीवन म देखने को मिलता है वसा तालमेल और एकरूपता बहुत कम देखने को मिलेगी। अपनी गुरुवर्या स्वर्गीय प्रवर्तिनी श्री ज्ञानश्रीजी एव स्व प्रवर्तिनी श्री विचक्षणश्रीजी के निकट सपर्क मे रहने से उनके विशिष्ट गुणो की अमिट छाप आपके जीवन मे स्पष्ट परिलक्षित होती है।

अन्त म मेरा सज्जनश्री जी महाराज को शत शत वन्दन। उनके ज्ञान और चारित्र का कोटि कोटि अभिनन्दन। ○○

सज्जन सज्जन है अहो सज्जनता की खान।
सज्जन सब मिलकर करें सज्जन का बहुमान॥

☐ डॉ० निजामउद्दीन

[हिंदी विभागाध्यक्ष, इस्लामिया कालिज, श्रीनगर (काश्मीर)]

वजूदे-जन से है तस्वीरे-कायनात म रग
इसी के साज से है जिंदगी का सोजे दरूँ
शरफ म बढकर सुरया स मुश्ते-खाक इसकी
कि हर शरफ है उसी दुर्ज का दुरे मकनूँ
मकालमाते-अफलातूँ न लिख सकी लेकिन
उसी के शोले से टूटा शरारे-अफलातूँ

—डा० मुहम्मद इकबाल

डा० मुहम्मद इकबाल न ठीक कहा है कि सृष्टि की शोभाश्री नारी के अस्तित्व के कारण है। शालीनता म उसकी श्रेष्ठता की बराबरी कौन कर सकता है। भले ही नारी न अफलातून के समान उच्चकोटि के ग्रन्थो का प्रणयन न किया हो, लेकिन अफलातून को उत्प्रेरणा देने वाली नारियाँ ही तो हैं।

जैन धर्म म नारी की पवित्रता तथा शालीनता की दृष्टि स उच्च स्थान है। वह महापुरुषो की जननी तथा उन्ह महान बनाने की प्रेरक शक्ति भी रही है। यहाँ नारी व्रत नियम का अनुपालन कर मोक्ष

की अधिकारिणी वनती है। भगवान महावीर के युग में—स्वय उनके समवशरण मे आर्यिकाओ का समुल्लेख मिलता है। श्रमणधर्म मे नारी-सम्मान की, उसके उच्च स्थान की महिमान्वित गाथाएँ विराजमान हैं। आचार्य शुभचन्द्र ने 'ज्ञानार्णव' मे कहा है—

ननु सन्ति जीवलोके काश्चिच्छमशील-सयमोपेता ।
निजवशतिलकभूता· श्रुतसत्यसमन्विता नार्य· ॥
सतीत्वेन महत्त्वेन वृत्तेन विनयेन च ।
विवेकेन स्त्रिय· काश्चिद् भूषयन्ति धरातलम् ॥ (१२, ५७-५८)

अर्थात् श्रुत, सत्य से समन्वित और शम-शील, सयम से युक्त नारियाँ धन्य है वे अपने सतीत्व महत्व, पावनाचरण, विनयशीलता तथा विवेकशीलता द्वारा ससार को सुशोभित करती है।

जैनधर्म मे नारी को नानाविधगुणसम्पन्न माना गया है। उसके सभी रूपों—माता, पुत्री, वहन, पत्नी का समाज मे बहुमान है। वह न दासी है, न परतन्त्र, न भोग्या है न पदार्थ। उसका अपना सम्मानपूर्ण स्थान है समाज में। वह साध्वी बनकर पुरुषो को बोध देती है, सद्मार्ग पर चलने की प्रेरणा देती है। राजीमती ने रथनेमि को प्रबोध देकर उसकी कामभावना को परिष्कृत किया था। 'उत्तराध्ययन सूत्र' में उनका आख्यान प्रसिद्ध है।

परम साध्वो 'प्रवर्तिनी' 'आगमज्योति' सज्जनश्री जी म० (जन्म स· १९६५ वैशाखपूर्णिमा) का व्यक्तित्व भी प्रेरणादायक है। उन्होने अपने तप·पूत प्रवचनो द्वारा अनेक लोगो को महावीर वाणी का कल्याणमय निर्झर प्रवाहित कर अध्यात्म ज्ञान से सूखे दिलो को हराभरा बनाया, उनमें तत्वज्ञान के बीज बोये। वह एक श्रेष्ठ लेखिका है, प्रतिभापूर्ण कवयित्री है। उनकी उर्वरा लेखनी से 'पुण्य जीवन-ज्योति', 'श्रमण सर्वस्व' तथा 'कुसुमाजलि' की रचना हुई, साथ ही उन्होने कुछ पुस्तको का हिन्दी-रूपातर भी प्रस्तुत किया जैसे 'अध्यात्म प्रवोध' तथा 'व्रतारोप विधि'। उन्होने 'कल्पसूत्र' की व्याख्या भी की है और 'द्वादश पर्व व्याख्यान' की रचना भी उनकी लेखनी से प्रसूत हुई है। उससे विदित होता है कि साध्वी सज्जनश्री जी म लेखनकला मे कितनी सिद्धहस्त है और साथ ही एक रससिद्ध कवयित्री है जो आगमोपदेश के द्वारा जनमानस को अभिप्रेरित तथा प्रभावित करती हैं।

वह एक तप पूत व्यक्तित्व की धनी है। उनके तप की पावनता दूसरो का मल हरती है, उन्हे भी पावन बनाती है। उन्होने कल्याणतप, पचमी सोलियातप, पखवासातप के अतिरिक्त नवपद ओली, विशतिस्थानक तप ओली आदि भी किये। जहाँ इतनी तप-साधना उनमे है वहाँ स्वाध्याय की तल्लीनता भी देखने योग्य है। इस प्रकार तप और स्वाध्याय की दिव्याभा से उनका व्यक्तित्व अभिमण्डित है। साथ ही उनके व्यक्तित्व की उदारता भी दर्शनीय है। उसमे एक माता का ममत्व है, वात्सल्य है, करुणा है, स्नेह है, प्यार की ज्योति है। ऐसे विविध गुणो के तारो से जगमगाता उनका व्यक्तित्व सर्वहितकारी न होगा तो क्या होगा! पति, परिवार के वन्धनो की शृखलाओ को विच्छिन्न करने वाली, महावीर-उपदेष्टित मार्ग के वटोही बनकर जन-जन के मन-कलुष को धोने का प्रयास किया। राग-विराग से विमुख साध्वी सज्जनजी म ने आगम-वाणी को जन-जन तक पहुँचाकर अहिसा, मैत्री, समता, सयम, अनेकान्त, अपरिग्रह का अविरल प्रचार-प्रसार मे योग दिया, आत्मकल्याण के साथ पर-कल्याण भी किया। आगम-ज्ञान-दीप को जीभ देहरी पर रखकर अपनाअन्तर्जगत् भी आलोकित किया और बाह्यजगत् भी—लोगो का मन भी आलोकित किया, तभी तो उनका कल्याण-क्षेत्र राजस्थान तक सीमित न रहकर

गुजरात, सौराष्ट्र, बगाल, बिहार, मध्यप्रदेश तक फला दिखाई देता है । जाहिर है उनमे एक अनुपम वाग्मिता है, भाषण देने की मधुर कला है । वह खरतरगच्छ सघ की ज्योति हैं जिनसे कितनी ही साध्वियाँ प्रकाश ग्रहण कर रही है और अपने मन की तामसता दूर कर रही हैं। 'भक्तामर स्तोत्र' म ऐसी ही श्रेष्ठ माताओ, स्त्रियो, नारियो की प्रशसा की गई है । नारी की महिमा मे सूय का तेज, चाद की शीतलता, धरती की सहनशीलता तथा उवरता सभी का समीकरण है । मानतुगाचाय न ठीक ही कहा है—

स्त्रीणा शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्
नान्या सुत त्वदुपम जननी प्रसूता ।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्ररश्मि,
प्राच्येव दिग् जनयति स्फुरदशुजालम् ।

—भक्तामरस्तोत्र, २२

आगमज्योति परम तपस्वी साध्वी श्रीमज्जनश्रीजी म को शतश नमन, उनका शतश अभिनदन ।

□ श्रीमती ज्ञानदेवी बेगानी

सरलता, सादगी, सहिष्णुता, समता की प्रतिमूर्ति श्रद्धेय प्रवर्तिनी सज्जनश्रीजी महाराज साहब का व्यक्तित्व एक विलक्षण व्यक्तित्व है । मेरा परिचय गुरुवर्याश्री से लगभग २५ ३० वप पुराना है । मेरा प्रथम सम्पक तब हुआ जब मैं पाकिस्तान से जयपुर आयी । उस समय मेरे जीवन मे चहुँ ओर निराशा ही निराशा थी, क्योकि पाकिस्तान के झगडे में मेरे कई निकटवर्ती सबधियो का निधन हो गया था । जब मुझे ऐसे पावन निमल गुरु से मिलने का सयोग प्राप्त हुआ तो मेरे शोकसतप्त, अधकारमय जीवन में प्रकाश की लहर आयी । इन्होंने मुझे धम की ओर प्रेरित किया अर्थात मुझ म धम के सुसस्कार डाले फिर इन सस्कारो से मेरी भावना उत्तरोत्तर बढती गयी । म जब भी इनके दशनार्थ आती हूँ तो इनके मुस्कराते हुए चेहरे को देखकर, इनकी सरलता और समता भाव को देखकर हर क्षण यही विचार करती हूँ कि हे प्रभु मुझे भी ऐसी सरलता और समता प्राप्त हो । इनका एक विशेष गुण यह है कि जब भी कोई व्यक्ति किसी समस्या के समाधान के लिए या कोई सुझाव लेकर आता है तो ये उसकी बात को बडे ही ध्यान से आदरभाव से सुनती ही नही अपितु उसकी समस्या का समाधान करती है और उसे उचित सुझाव भी देती हैं ।

इनका समग्र जीवन समाजोत्थान तथा शिक्षा के विस्तार और विकास के लिए समर्पित है । इनकी उदारता और प्रेम छोटे बच्चे से लेकर बडे व्यक्ति के दिल को भी स्पश कर जाता है । इनका व्यक्तित्व महान फल और छाया से युक्त वृक्ष के समतुल्य है, जिसकी शीतल छाया मे हर व्यक्ति अपने जीवन का उचित ढग से निर्माण कर सकता है ।

□ श्री कपूरचदजी श्रीमाल हैदराबाद

चार पाच वप पू गुरुवर्याश्री का विचरण बगाल, बिहार, यू पी क्षेत्र म रहा और दो वर्ष का विचरण गुजरात म भी रहा । ६७ वप की उम्र मे आपश्री न पालीताणा की नव्वाणु यात्रा की जहाँ मुझे, यदा-कदा आपश्री के सेवा म रहने का अवसर प्राप्त हुआ ।

आपके जीवन की एक विशेषता है कि एक सम्प्रदाय मे दीक्षित होकर भी सम्प्रदाय से बँधी नही उसका मुख्य कारण है कि सन्त वृत्ति जीवन म साकार हो गयी ।

मै गुरुदेव से अन्तश प्रार्थना करता हूँ कि आप शतायु, दीर्घायु, चिरायु वन शासन सेवा में सलग्न रहती हुई सन्तप्त प्राणियो को मार्ग प्रदर्शित करती रहे। इसी शुभेच्छा के साथ चरणो में कोटि-कोटि वन्दन अभिनन्दन।

☐ श्रीमती उर्मिला श्रीवास्तव

(प्रधानाध्यापिका : श्री वीरबालिका उ. मा विद्यालय, जयपुर)

ज्ञान-सूर्य, तप की स्वर्ण-रश्मियो से,
करती जो जन-जन को आलोकित
शुचिता प्रेम दया और करुणा से,
करती जो सबको आप्लावित।
आज करे हम उनका अभिनन्दन,
मन की श्रद्धा-भाव सर्मपित।
आपश्री के चरणो की करे वन्दना,
करें जन्म जन्म के पुण्य अर्जित।

विधाता की इस रग-बिरगी कौतुक-पूर्ण सृष्टि मे हजारो जन्म व मरण के कारक बनते रहते है। यही इस सृष्टि का विधान है, किन्तु कुछ अलौकिक व्यक्तित्व अपनी प्रतिभा, साधना, संयम, सेवा एव त्याग के बल पर इस काल चक्र के बन्धन को भी निर्बन्ध करने मे समक्ष होते है। इन्ही आत्मशक्ति पुञ्ज साधनाशील व्यक्तियो के सम्मुख ससार नतमस्तक हो जाता है। प्रवर्तिनी पद विभूषिता परम पूज्या साध्वी सज्जनश्रीजी महाराज के सम्पर्क, सम्वाद एव आशीर्वचनो से लाभान्वित व्यक्तियो की भी यही स्थिति है। एक बार आपका आशीष एव मार्गदर्शन प्राप्त करने के पश्चात व्यक्ति श्रद्धावनत होकर बार-बार दर्शनो के लिए लालायित रहता है।

मुझे भी महाराजश्री के आशीर्वचनो का सद्लाभ प्राप्त करने का अवसर सयोग से प्राप्त हुआ। उत्तरप्रदेश के एक भाग से शिक्षा प्राप्त करके जयपुर के श्री वीरबालिका उ. मा विद्यालय मे सेवा करने का अवसर प्राप्त हुआ। यह जैन विद्यालय सामाजिक, धार्मिक एव राष्ट्रीय गतिविधियो के लिये अत्यन्त प्रसिद्ध था। कुछ दिनो पश्चात विद्यालय मे साध्वी सज्जनश्रीजी महाराज साहब का शुभागमन हुआ। आपकी तेजस्वी मुद्रा जहाँ आपके गहन दार्शनिक तत्वज्ञान की गरिमा को प्रकट कर रही थी वही श्वेत-वस्त्रो से आवृत सुस्मित हास्य आपकी करुणा एव वात्सल्यपूर्ण हृदय की महानतम विशेषताओ को उजागर कर रहा था। बच्चो के सम्मुख आपने बोधगम्य भाषा एव प्रभावपूर्ण शैली का प्रयोग करते हुए तीन "व" विद्या, विनय व विवेक को धारण करने की प्रेरणा दी। साथ ही सदाचरण की ओर प्रेरित करते हुए आपने सूत्र रूप मे सात "स" के पालन करने का आग्रह किया जो इस प्रकार है—सत्य, सहयोग, सहानुभूति, सद्भाव, सादगी, समता एव सयम। जीवन के सार-तत्व को इतनी सरलता एव प्रभावपूर्ण ढग से व्यक्त करने की क्षमता अद्भुत है। यह क्षमता आपके गहन चिन्तन-मनन एव सजगता की परिचायक है। जीवन के इन शाश्वत मूल्यो पर अपना सम्पूर्ण अधिकार रखने वाली आर्या के प्रति सबका मस्तक श्रद्धा से झुक गया। निश्चय ही गुरुवर्या का यह सन्देश छात्राओ एवं अध्यापिकाओ के जीवन का लक्ष्य बना रहेगा।

केवल इतना ही नही इस सस्था से महाराज साहब का सम्बन्ध अनक कडियो से जुडा है। हमारी भूतपूर्व प्रधानाध्यापिका श्रीमती प्रकाशवती सिन्हा आपकी सहयोगी एव शैक्षिक निर्देशिका रही। इनके साथ आपका अत्यन्त आत्मीय भाव हम सबन अनुभव किया। अनेक बार आप दोना के बीच हास परिहास की वार्ता भी हमारे लिये प्रेरणासूत्र बन जाती थी। एक बार की घटना है नहरू जयन्ती का आयोजन विद्यालय म किया गया था। प्रधानाध्यापिकाजी न नेहरूजी के व्यक्तित्व एव कृतित्व पर विस्तार से प्रकाश डाला। इस पर महाराज साहब ने परिहास करते हुए उनसे पूछा कि आप नेहरूजी पर इतनी आस्था रखती हैं, किन्तु आज तक कितन नहरू बनाये हैं ?

यद्यपि यह एक परिहास था। किन्तु शिक्षक वग के लिये यह एक दायित्व है कि वह बालक बालिकाओ को केवल पुस्तकीय ज्ञान ही । प्रदान करें वरन् उनम राष्ट्र व समाज के प्रति रचनात्मक दृष्टिकोण व सेवा की भावना भी पदा करें। आध्यात्मिक क्षेत्र की साधिका एव वराग्य पथ की अनुगामिनी की एसी विराट चेतना निश्चय ही अभिनन्दनीय ह। एक ऐसा व्यक्तित्व जिसन ससार का परित्याग किया, इसकी माया ममता छल-कपट व ईर्ष्या द्वेष को तिलाञ्जली दी किन्तु विश्व-कल्याण व मानव सेवा से मुख नही मोडा। आज ऐसे अलौकिक व्यक्तित्व का अभिनन्दन करते हुए हम अपने आपको कृताथ व अनुग्रहीत कर रह हैं।

☐ श्री विमलकुमार चौरडिया भानपुरा (म प्र)

पूज्याश्री का नाम तो उनके द्रव्यानुयोग के विशेष ज्ञान के कारण वर्षों से सुन रखा है किन्तु उनके सान्निध्य का अवसर सन् १९७५ मे पूज्यश्री सम्यानन्दजी एव पूज्यश्री जयानन्दजी म सा की निश्रा म जयपुर म हुए उपधान तप के समय हुआ। मेरे पुण्य का उदय था कि मुझे पूज्यश्री जयानन्दजी म सा की निश्रा मे उपधान करने का अवसर मिला।

उपधान की क्रियाओ को करने के बाद बचन वाले समय का सदुपयोग करन के लिए जन धर्म मूल, द्रव्यानुयोग का ज्ञान प्राप्त करन हेतु हमन पूज्याश्री सज्जनश्रीजी म सा से आग्रह किया। पूज्याश्री ने बडे प्रेम व सरलता से हम स्वीकृति दी एव नियमित रूप स हम—नवतत्व, नय, निक्षेप, स्याद्वाद आदि का ज्ञान दिया।

व्याख्याता कई प्रकार के होते हैं।जिनकी अपनी-अपनी शली हाती है। साधारणत उन्ह तीन प्रकारो म विभक्त किया जा सकता है।

प्रथम प्रकार के व्याख्याता ऐसे होते है जो घण्टा तक धाराप्रवाह बोलते हैं किन्तु व्याख्यान के पश्चात् श्रोताओ से पूछा जाय कि उनन व्याख्यान से क्या समझा तो व यह देते हैं कि सुना तो बहुत पल्ल कुछ नही पडा।

दूसरे प्रकार के व्याख्याता वक्तृत्व कला के नियमो को ध्यान मे रखकर चलने वाले वाणी के साथ विचारो का सामजस्य रखते हैं, कवित्व से भरपूर आकर्षक एव मन मोहक शैली में व्याख्यान देते हैं किन्तु उनकी कथनी करनी म भेद के कारण, उनके तप-तेज के अभाव के कारण उनका व्याख्यान प्रभावशाली नही हो पाता है।

तीसरे प्रकार के व्याख्याता की भाषा—अनुप्रास अलकारो से युक्त स्वर—उदात्त व स्पष्ट ध्वनि युक्त शब्द—शिष्ट एव उदार, वाक्य महान अर्थ वाले, विसगति रहित, असदिग्ध बोध देन वाला हृदय को छून वाला, शब्दो, पदो एव वाक्यो म सगति, प्रत्येक मर्म प्रकरण, प्रस्ताव—देश, काल, श्रोता

आदि को दृष्टिगत रखते हुए वस्तु स्वरूप का प्रतिपादन करने वाला, मर्यादित पर-निंदा व स्व-प्रशसा से रहित तथा व्याख्यान अमर्म भेदी शुद्ध धर्म का उपदेशक, व्याकरण शुद्ध, विभ्रमादि मुक्त, सरस, क्रम-वद्ध, युक्ति-युक्त आदि आदि गुणो से युक्त रहता है। ऐसा व्याख्या सर्वोत्कृष्ट होता है। ऐसा व्याख्यान वे ही दे सकते है जिनकी वाणी के साथ आचार भी शास्त्रसम्मत हो, तप का तेज हो। पूज्या सज्जन श्रीजी महाराज मे तीसरे प्रकार के वक्ता के अनेक गुण है।

पूज्याश्री सज्जनश्रीजी म सा के जीवन मे विचार वाणी एव आचरण की एकता है। आपने जैन शासन की महती प्रभावना की। प्रवचन के द्वारा शास्त्रो का ज्ञान दिया, धर्मोपदेश देकर धर्म से स्खलित होने वालो को स्थिर किया, धर्माचरण करने वालो के विचारो को पुष्ट कर आगे वढाया और भव्यजीवो को उपदेश देकर धर्म की ओर प्रेरित किया।

आपने सच्चे अर्थो मे अपने गुरुवर्या ज्ञानश्रीजी म सा से शास्त्रो का ज्ञान लेकर उनका मनन चिन्तन कर अपने दूसरे गुरुवर्यश्री उपयोगश्रीजी म सा के नामानुसार अपने उपयोग को प्रशस्त मार्ग पर लगाकर स्वय का जीवन तो सार्थक किया ही समाज को भी सन्मार्ग पर लगाया है।

इसे मै अपनी प्रवल पुण्याई कहूँगा कि मुझे भी इस निमित्त से पूज्याश्री के गुणानुवाद का अवसर मिला। पूज्याश्री का गुणानुवाद निश्चय ही अशुभ कर्मो को क्षय कर भविष्य उज्ज्वल करेगा।

☐ श्री अशोक बाफना, कोटा

जैन श्वे समाज मे सुप्रसिद्ध कोटा रतलाम राज्य के निवासी दीवान बहादुर स्व श्री केशरी सिहजी सा वाफना दीवान नथमलजी सा के जामाता थे। सौभाग्यवती सेठानी उवरावकुवरवाई सा. का अपने भतीजे पर वात्सल्य भाव होने से विवाह भी आपकी इच्छानुसार किया और विवाहोपरान्त अपने ही पास रखा तथा आपके नववधू सज्जनकुमारी को अपने ही समुदाय के विधि विधान सिखाने की व्यवस्था की। आज्ञाकारिणी नववधू ने आज्ञानुसार सव विधि विधान दर्शन विधि, सामायिक विधि आदि शीघ्र ही सीख ली। तेरापन्थी सम्प्रदाय और स्थानकवासी मूर्तिपूजा के विरोधी है।

सज्जन कुवर के मस्तिष्क मे हलचल रहती थी। वि स १९७८ मे कोटा मे पू श्रीमती प्रव-र्तिनी ज्ञानश्रीजी म सा. उपयोगश्रीजी म सा, का चातुर्मास होने से सीखने जाने का प्रसग था। मूर्तिपूजा विषयक शका का निराकरण भी वही हुआ।

स्वय ने ही शास्त्र वाचन कर वास्तविकता ज्ञात कर ली और मूर्तिपूजा पर श्रद्धा दृढ हो गई। श्री उमराव कुंवर सेठानी सा का देहान्त हो जाने पर भी उस परिवार से सम्पर्क वरावर वना रहा क्योकि सेठ सा की तृतीय धर्मपत्नी श्रीमती गुलाव सुन्दरी जी का भी गोलेच्छा परिवार पर पूर्व सेठानी सा जैसा ही प्रभाव था। पूरा परिवार उनका आदर करता था।

दीक्षा के अवसर पर स्वय सेठ सा श्री केशरीसिह सा सपरिवार पधारे और स्वय के प्रभाव से दीक्षा जयपुर मे ही करवायी। श्री कल्याणमलजी सा. से नथमलजी के कटले मे मन्दिर व दादावाडी के लिए जमीन प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी म. सा व श्रीमती गुलावसुन्दरीवाई सा. ने सत्प्रेरण देकर श्री खरतरगच्छ सघ को भेट कर रजिस्ट्री करवाई।

आज भी कोटा का वाफना परिवार आपके प्रति पूर्ण श्रद्धाशील है।

☐ श्री मोहनलालजी बुरड, ब्यावर

जिनागम वेत्ती परमविदुषी आर्यारत्न स्वपरोपकारक विविध विषयो पर साहित्य की सजना करने वाली, तप और सयम मे निरतर निरत रहने वाली प्रवर्तिनी सज्जनश्रीजी म का जिसने नाम करण किया, मालूम होता है कि वह अवश्य भविष्यवेत्ता रहा होगा। अन्यथा क्या कारण है कि उनके जीवन व्यवहार मे यथानाम तथागुण की लोकोक्ति पूर्णरूप मे चरितार्थ होती है। वास्तव मे श्रद्धेय साध्वीजी का सम्पर्क मे आने वाले प्रत्येक नर नारी के प्रति अत्यन्त सौजन्यपूर्ण, मधुर एव वात्सल्यमय व्यवहार होता है। यद्यपि आप अल्पभाषिणी हैं निरर्थक बातें करना आपकी प्रकृति के विरुद्ध है, फिर भी जीवनोपयोगी धार्मिक आध्यात्मिक चर्चा मे रस लेती हैं। आपके साथ ऐसी चर्चा करने वाला प्रभावित हुए बिना नही रहता।

साहित्य पठन की ओर आपकी कितनी तीव्र रुचि है, यह प्रदर्शित करने के लिये एक उदाहरण जो मुझ मे सम्बधित है, उपस्थित कर देना पर्याप्त होगा।

साध्वीजी महाराज ब्यावर नगर मे पधारे। नगर मे जब कोई आत्म-साधक सन्त या सती पधारते हैं तो उनके सत्समागम का लाभ उठाने को मेरा मन उत्सुक हो उठता है। मैं आपकी सेवा मे भी उपस्थित हुआ। उन दिनो अहमदाबाद से मेरे पास "आत्मज्ञान अने साधनापथ' नामक गुजराती पुस्तक आई हुई थी। आपको दिखाई। आपने लेकर सरसरी तौर पर उसे देखा। पन्ने उलट-पलट कर कुछ पृष्ठ पढे और फर्माया कि यह पुस्तक तो मुझे भी पढनी है। मेरी भावना थी कि पहले मैं पढ लू फिर आपको दू। मगर आप इतनी उत्सुक थी कि आपने सुझाव दिया दिन दिन म मैं पढूगी, शाम को आप ले जाकर अध्ययन करते रहना। ऐसा ही किया गया। शाम को जाता पुस्तक पाट पर रखी तयार मिलती।

ऐसी है आपकी स्वाध्यायवृत्ति, गुणग्राहकता। वास्तव म आपका समग्र जीवन सरलता, सज्जनता नम्रता और समाधि से परिमण्डित है।

देह छता जेनी दशा, वर्ते देहातीत।
ते ज्ञानीना चरणमा हो वदन अगणीत॥
मेरा शत शत वदन!

☐ श्री केशरीचदजी पारख

लगभग १५ २० वष पूव की यह स्मृति है। मैं परम तारक, चरम तीर्थंकर श्री सम्मेत शिखर अधिष्ठाता श्री पार्श्वनाथ प्रभु एव अधिष्ठायक देव श्री भोमीयाजी महाराज के दशन, वदन पूजन हेतु सम्मेत शिखर की यात्रा पर गया हुआ था। उन दिना शात स्वभावी, मृदुभाषी प पू साध्वीजीश्री सज्जनश्री म सा भी अपने शिष्या समुदाय के साथ वही विराजित थी। मैं तलहटी म जिन मन्दिर में पूजा कर रहा था। पूजा, चैत्यवदन आदि करके निवृत्त हुआ था, उसी समय प पू साध्वीजी का भी जिन मन्दिर के प्रागण म आगमन हुआ।

मेरा यह उनके दशन करने का पहला अवसर था। मैंने विनीत भाव से उन्हे वही मन्दिर के प्रागण मे खमासमणा सहित वदन किया।

उन्होने मुझे एक ओर ले जाकर नम्र वचना म समझाया—जिन मन्दिर के प्रागण म, वीतराग प्रभु के सम्मुख, साधु-साध्वी को वन्दन नही करना चाहिए। इसमे तीर्थंकर दव की आशातना होती है।

वहुत ही शात वचनो व नम्र भाव से सारी वाते समझाई ।

मैं उनकी शातमूर्ति व नम्रता के भावो को आज भी स्मरण करता हूँ तो नतमस्तक हो जाता हूँ उनके शात स्वभाव की अभिव्यक्ति पर। आज के युग मे प्राय. यह देखने में आना है कि लोग जिन मन्दिर के प्रागण मे ही एक-दूसरे का अभिवादन करते हैं व कई लोग व्यावसायिक या गृह सम्वन्धी चर्चाएँ भी करते है।

हमे उपरोक्त दृष्टांत से इस विपय पर गम्भीरता से सोचना चाहिए ।

☐ उत्तमचन्द वडेर

(मन्त्री—श्री जैन श्वेताम्वर खरतरगच्छ सघ, जयपुर)

अत्यन्त आनन्द का विपय है कि आगम ज्योति आशु कवयित्री प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी म० सा० का दीक्षा स्वर्ण जयन्ती अवसर पर अभिनन्दन ग्रथ प्रकाशित हो रहा है। श्वे० मूर्तिपूजक सघ में श्रमणी का यह अभिनन्दन ग्रन्थ सर्वप्रथम है। इससे पूर्व किसी भी साध्वीजी महाराज का अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित नही हुआ है व खरतरगच्छीय श्रमण-श्रमणी परम्परा मे तो सर्वप्रथम ही अभिनन्दन गन्थ प्रकाशित हो रहा है जो प्रथम वार का अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित करवाने का लूणिया परिवार जयपुर को व अभिनन्दन समारोह मनाने का जयपुर सघ को सौभाग्य प्राप्त हो रहा है। वास्तव में पूज्या प्रवर्तिनी श्री सार्वजनिक अभिनन्दन के योग्य हैं।

पूज्या प्रवर्तिनीश्री के जीवन को निकटता व लम्वे समय से देखने को मिला। उनके समग्र जीवन मे एकरूपता है।

क्योकि जयपुर श्री सघ का सौभाग्य रहा कि सदा साधु भगवन्त व साध्वीजी म सा का सुसयोग मिलता रहा—पू० प्रवर्तिनी पुण्यश्रीजी म सा. (जो प्रवर्तिनी श्री की दादागुरुणीजी है) ने अपने जीवन के साधना काल के अन्तिम क्षण जयपुर मे ही विताये व पुण्यश्रीजी म. सा. की शिष्या व प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी म सा की गुरुवर्याश्री प्रवर्तिनीश्री ज्ञानश्रीजी म. सा. भी अपनी शारीरिक परिस्थिति के कारण वर्षो जयपुर मे विराजी। पू. ज्ञानश्रीजी म. सा. व पू. उपयोगश्रीजी म सा से प्रभावित हो युवावस्था मे ससार के मोह-माया परिजाल के चक्रव्यूह से निकलकर संयम जीवन स्वीकार कर सर्वस्व गुरु चरणो मे समर्पित किया। दीक्षित हो आपश्री गुरु सेवा में संलग्न हो गयी, समाज सेवा मे तत्पर रहती हुई गुरु सेवा मे २२ चातुर्मास जयपुर मे किये।

लम्वे समय तक एक स्थान पर रहते हुये कभी भी आप परेशान नही हुई सदा एक भावो मे अपने कर्तव्य पथ पर डटी रही। कभी किसी के लिये अश्रद्धा का कारण नही वनी। वर्षो तक एक स्थान पर रहना और लोगो की श्रद्धा को घटाना नही वल्कि निरन्तर वढाना ये इनकी जीवन की महत्वपूर्ण विशेपता रही है।

आपश्री का मार्गदर्शन जयपुर सघ को सदा मिलता रहा। आपकी ही प्रेरणा से शिवजीराम भवन का निर्माण हुआ था पुन आपकी ही प्रेरणा से पुनर्निमाण का कार्य प्रारम्भ हुआ व्याख्यान हॉल का नूतन रूप से निर्माण हो रहा है। आपकी ही की सत्प्रेरणा से नायला हवेली भी खाली करवा उपाश्रय का रूप दिया गया।

आपश्री के जीवन का सहज स्वाभाविक गुण है अध्ययन व अध्यापन। साधक जीवन की क्रियाओं के पश्चात् जीवन का प्रतिक्षण अध्ययन व अध्यापन में व्यतीत होता है। खरतरगच्छ साध्वी समाज में आगमज्ञान में आपका गौरवपूर्ण स्थान है।

मैं गुरुदेव से प्रार्थना करता हूँ कि आप दीर्घायु बन प्राणिमात्र को मार्गदर्शन देती हुई अपने शुद्धत्व सिद्धत्व को प्राप्त करें। इन्हीं शुभकामनाओं के साथ चरणों में कोटि-कोटि वन्दन अभिनन्दन-अभिनन्दन।

☐ श्री भँवरलाल नाहटा, कलकत्ता

प. पू. प्रवर्तिनीश्री जी सज्जनश्रीजी महाराज खरतरगच्छ की एक महान् विदुषी और प्रभावशाली आर्या रत्न हैं। यों तो आपके दर्शन अनेकश हुए किन्तु आपके कलकत्ता चातुर्मास में सत्संग का मुझे अच्छा लाभ मिला। आपके प्रभावशाली प्रवचन आत्मलक्षी तत्त्वज्ञान से परिपूर्ण और ओजस्वी होते थे। आचारांगसूत्र जैसे प्राचीनतम आगम की अध्यात्म रस भरी व्याख्या बड़े बड़े वक्ताओं के चटपटे व्याख्यानों से मुमुक्षुओं को अधिक प्रिय लगती, भले श्रोताओं की भीड़ कम हो। काकाजी (श्री अगरचंदजी नाहटा) के आदेश से मैंने विविध तीर्थ कल्प का अनुवाद पर्यूषण के बाद आरंभ किया, यह ग्रंथ संस्कृत प्राकृत गद्य-पद्य मिश्रित था। प्रतिदिन अनुवाद करता और पूज्य महाराज सा० को दिखा देता। भाषा ज्ञान के अभाव में अटकी हुई गाड़ी को वे अपने विशाल ज्ञान से आगे चला देते। इस तरह से दीपावली से पूर्व संपूर्ण अनुवाद हो गया। आपके सिवा साहाय्य के मेरे जैसा अल्पज्ञ स्वल्प समय में कभी अनुवाद नहीं कर पाता। मेरे स्वर्गीय मित्र शिवशंकर शास्त्री आपसे मिलते ही रहते थे। उन्होंने एक निबंध लिखा जो पूरा तो उनका स्वर्गवास हो जाने से न हो सका पर उस पर मेरे नाम से नोट लिखा मिला कि पूज्य सज्जनश्रीजी म० सा० को दिखा दें। वे कहा करते थे कि सज्जनश्रीजी महाराज में गजब का पौरुष और वाणी में अमोघता है।

साधुओं की कमी में खरतरगच्छ में विदुषी साध्वियों से ही गच्छ रूपी रथ का संचालन होता है। जैन कोकिला शासन स्तंभ श्री विचक्षणश्री जी महाराज द्वारा दीर्घ दृष्टि पूर्वक प्रवर्तिनी पद का चयन आपकी योग्य प्रतिभा का एक सशक्त प्रमाण पत्र है। आप शतायु हों और सुदीर्घ शासन प्रभावना करते रहें, स्वस्थ रहें ऐसी गुरुदेव से प्रार्थना करता हूँ।

☐ धनरूपमल नागोरी (एम. ए., बी. एड. साहित्यरत्न, न्याय मध्यमा)

कभी स्वप्न में भी कल्पना नहीं थी कि एक परम विदुषी साध्वीजी से ऐसा घनिष्टतम सम्पर्क होगा कि जिसकी सुवास जीवन भर बनी रहेगी। लेकिन ऐसा हुआ। जन्म जन्मांतर के सम्बन्धों से अथवा तो संयोगों या पुण्योदय से वे क्षण आये कि सम्पर्क हुआ और आज भी बना हुआ है। तीस इक्तीस वर्ष पूर्व जो सुवास दी वह आज तो द्विगुणित हो गई।

आप सहज भाव से पूछेंगे कि वह सुवास कहाँ है? तो उत्तर है—वह सुवास है साध्वी श्री सज्जनश्रीजी म० साहब। आज उनके गुणों रूपी पराग से सारा जन समाज सुवासित हो रहा है।

आपके ज्ञान गंगा का नीर सतत बहा और बह रहा है। इतना ही नहीं वह ज्ञान गंगा कई ग्रंथों के रूप में प्रवाहित हुई है। श्री कल्पसूत्र जी श्री भगवतीसूत्रजी प्रतिष्ठा कल्प आदि कई ऐसे

ग्रन्थ है जिनमे से ज्ञान की सुवास निरन्तर आ रही है और अनेको सुन्दर कृतियाँ हैं जिनकी सुवास हम ले रहे है।

जप, तप, सयम तीनो का त्रिमेल आप में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। संयममय जीवन मे जप एवं तप न हो तो जीवन खोखला होता है। जप तप बिना ऐसे जीवन का कोई अर्थ नही। लेकिन आपने जीवन मे जप-तप को पूरा स्थान दिया। इससे सयममय जीवन सुवासित हो गया। नवकार मत्र की आप परम आराधिका बनकर अपने सयमित जीवन को उजागर कर रही है।

स्वशिष्याओ के अतिरिक्त, समस्त साध्वी वृन्द मे आपके प्रति एक निष्ठा, श्रद्धा एवं अनुराग है। जो कोई भी सम्पर्क मे आता है, उसके हृदय मे आप अपनी सरलता एव स्वाभाविक स्नेह से स्थान बना लेती है।

आपका ज्ञान एव प्रतिभा बहुमुखी है। ज्योतिष में आपकी अच्छी गति है। प्रतिष्ठा आदि के मुहूर्त्त तो आपने कई बार दिये। शकुन मे भी गति है। हस्तरेखा, सामुद्रिक मे भी आपकी रुचि रही। सगीत के क्षेत्र मे भी कम नही। कई राग-रागनियो का आपको बोध है। पूजनादि पढ़ाने का एव ताल स्वर का अच्छा ज्ञान है, जो कई बार अनुभव मे आया। स्वयम् के बनाये हुए स्तवन, गीत भजन आदि बहुत भावपूर्ण हैं। उनमे प्राचीनता एव अर्वाचीनता के दर्शन स्पष्ट होते हैं।

शासन देव से यही कामना है कि आप हमारे बीच मे युग-युग तक रहकर सत्पथ का मार्गदर्शन करती रहे। आप अपनी सुवास से हमें युग-युग तक सुवासित करती रहे।

O श्री महावीर जैन श्वेताम्बर मन्दिर

O श्री मुलतान जैन श्वेताम्बर सभा, जयपुर

"सर्व-जीव-हिताय" व्यक्तित्व की धनी प्रवर्तिनी महोदया का सम्पूर्ण जीवन आध्यात्मिकता के सुरभित वातावरण मे समाज के प्रति जहाँ समर्पित रहा है, वहाँ आपने सदैव अपने को अध्ययन और लेखन की पावनता से स्वय को जोड़े रखा है।

आपकी रचनाओ ने हमेशा समाज को एक नई दिशा प्रदान की है। सबसे महत्वपूर्ण बात आपके जीवन की एक ही है कि जीवन मे साधुत्व के जो अपेक्षित सात्विक गुण होने चाहिए, उन अपेक्षाओ मे आप पूर्ण रूप से खरी उतरी है, इसलिए आपकी छवि सम्पूर्ण समाज मे निर्मल, सरलता, सहृदयता एव एकाकी चिन्तक के रूप मे सर्व विदित है।

जिनेश्वर भगवत से प्रार्थना है कि आप शतायु हो और समाज की सतत् प्रेरणा का स्रोत बनी रहे।

●●

साहित्य-समीक्षा

— श्री भगवती व्याख्या प्रज्ञप्ति स्तुति —

जय जग ! विश्वोद्धारिणि ! भगवति ! जय हे जय व्याख्याप्रज्ञप्ति ! !

नन्दतु नन्दतु हे श्रुत सरिते ! तत्त्वबोध अभिव्यक्ति ! ॥ स्थायी

श्रुतज्ञान रत्नाकर जय हे ! गणधर सुगुरु प्रणीत ! !

स्याद्वाद वाङ्मय मान सरोवर ! न्याय शास्त्र नवनीत ॥ १ ॥

प्रश्नोत्तर वर रत्न मालिके ! शालिके अद्भुत ज्ञान ! !

अनेकान्त प्रोज्ज्वल प्रतिभे ! जय ! प्रपे! ज्ञाननिधान ॥ २ ॥

विविध भक्ति ! नय प्रमिति नीतिमयि ! आगम ललित ललाम ! !

विश्ववन्द्य विभु वीर वदन निःसृत निर्झर अभिराम ! ॥ ३ ॥

आत्मानन्द विधायिनि ! दायिनि ! सदैव ज्ञानोपयोग !

भव्य व्यक्ति तव प्रसाद करते, रत्नत्रय उपभोग ॥ ४ ॥

सुपुण्यमयि ! सुवर्ण शालिनि ! दिव्य प्रभावति ! मात ! !

'सज्जन' मन श्रुति पावन कारिणि ! करती हम प्रणिपात ॥ ५ ॥

पूज्य प्रवर्तिनी सज्जनश्री जी महाराज की सुन्दर शास्त्रीय लिपि के सुन्दर चित्र ये स्वच्छ, सुघड हस्ताक्षर चरित्रगत उदात्त गुणों को स्पष्ट व्यंजित करते हैं।

विदुषी साध्वी श्री [illegible] विरचित

षडक्षरसिद्ध सारस्वत स्तोत्रम्

(शार्दूल विक्रीडित वृत्तम्)

व्याप्तानन्त समस्त लोक निकरैङ्कारा समस्ता स्थिरा,

या ऽऽराध्या गुरुभिर्गुरोरपि गुरुर्देवैस्तु या वन्द्यते ।

देवानामपि देवता वितरताद् वाग्देवता देवता,

स्वाहान्तः क्षिप ॐ यतः स्तवमुखं यस्याः समन्तोत्तर ॥१॥

ॐ ह्रीं श्रीं प्रथमा प्रसिद्ध महिमा सन्तप्तचित्ते हि या,

ऐं ऐ मध्यहिता जगत्त्रयहिता सर्वज्ञनाथाहिता ।

श्रीं क्लीं ह्रीं चरमा गुणानुपरमा जायेत यस्याः रमा,

विद्यैकाववहि [illegible] करी वाणी स्तुवे तामहम् ॥२॥

ॐ कर्णे नरकर्णभूषित तनु कर्णेऽथ कर्णेश्वरी,

ह्रीं स्वाहान्तपदा समस्त विपदां छेत्त्री पदं सम्पदाम् ।

संसारार्णवतारिणी विजयते विद्याप्रदाने शुभे ।

यस्याः सा पदवी सदा त्रिभुवने देवीतरांसी कृता ॥३॥

सर्वाचार विचारिणी प्रतरिणी नौर्वाग्भवाब्धौ नृणां,

वीणा वेणुवर क्वणाऽतिसुभगा दुःखादि विद्राविणी

सा वाणी प्रवणा महागुणगणा न्याय प्रवीणाऽमला,

शैवेय स्तरणी रणीषु निपुणा जैनी पुनातु ध्रुवम् ॥४॥

सुन्दर हस्ताक्षर का पत्र, प्रकट करता समग्र चरित्र

□ श्री मदनलाल शर्मा जयपुर

(प्रन्थ के सम्पादक सदस्य)

झाँकता हूँ पल्लवावृत भाग्य के लघु द्वार से।
ब्रह्माण्ड दिखता है मुझे इस धरा के द्वार से॥
पृथ्वी पर बैठा हुआ मैं स्वर्ग को अवलोकता हूँ।
मिलता क्या स्वर्ग और भूलोक में यह सोचता हूँ॥
लोकमत जिनका हृदय से कर रहा है आज वन्दन।
मानवी हो या कि मानव स्वर्ग का वह दूत पावन॥
मृत्तिका घट में भरे जो आत्मा के शील गुण।
है वही निर्गुण प्रभु का अंश प्राणी में सगुण॥

जहाँ सात्विक वृत्तियों का प्रसार प्रभाव हो। स्नेह, प्रेम, अप्रमाद अहिंसा एवं ज्ञानार्जन का प्रवाह जहाँ निरन्तर प्रवाहित हो। जहाँ चिन्तन ही चिन्तन हो तथा चिंता से मुक्ति का वातावरण हो स्वर्ग वहीं है, वहीं है वहीं है। और,

ऐसा व्यक्तित्व जो आध्यात्मिकता से ओत प्रोत हो। विनय एवं करुणा से जिसका हृदय परिपूर्ण हो। जो निर्लिप्त भाव से प्रकृतिस्थ हो कमलवत् संसार में रहकर संसार को ज्ञान सौरभ प्रदान कर रहा हो वही पुरुष या प्राणी अलौकिक है, स्तुत्य है वन्दनीय है? निर्गुणवादी कबीर ने भी ऐसे ही व्यक्ति को ईश्वर से अधिक महत्वपूर्ण मानकर कहा है—

गुरु गोविन्द दोनों खड़े काके लागूँ पाय।
बलिहारी गुरुदेव की गोविन्द दियो बताय॥

ऐसे ही वातावरण और ऐसे ही व्यक्तित्व का सौभाग्य से साहचर्य प्राप्त हुआ। प्रवर्तिनी सज्जनश्री जी म सा और उनकी शिष्या साध्वीवृन्द का! वातावरण और व्यक्तित्व दोनों ही ने मेरे हृदय को अत्यन्त प्रभावित किया। प्रेरणा और क्रियाशीलता का ऐसा सामंजस्य यदा कदा ही दर्शन को मिलता है। उपाश्रय में जाते ही लगा कि 'पवित्रता" शुभ्रवस्त्रावृता हो इन सौम्यगुणा साध्वी शरीरों में साकार रूप में उतर आई है। सरलता और ज्ञानपिपासा तथा धर्मलाभ हेतु निरन्तर साधना यहाँ चहुँ ओर दृष्टिगत होती है। साध्वी एवं श्रावक मडल अपने केन्द्र प्रवर्तिनी सज्जनश्रीजी के चारों ओर चिन्तनार्थ, साधनार्थ एवं विचार विमर्शार्थ छाया रहता है?

प्रवर्तिनी आगमज्ञा सज्जनश्री का ज्ञान असीम है। अस्तु उनके द्वारा किया गया समाधान हृदय स्पर्शी होता है। जैनदर्शन हो या कि सनातन मान्यतायें सभी पर आपका समान अधिकार है। अनेक आगम ग्रंथों का कई बार पारायण कर आप "आगमज्ञा" कहलाई हैं। देववाणी (संस्कृत) पर तो आपका पूर्ण अधिकार है। हिन्दी, गुजराती, प्राकृत अंग्रेजी, राजस्थानी भाषा पर भी आपका अधिकार है। भावनामय जीवन है अतः जीवन में काव्यमयता का प्राधान्य है। आपने कई गद्य गीतकाओं की रचना की है एवं अनेक दुरूह ग्रन्थों का सरस हिन्दी भाषा में अनुवाद किया है।

आपश्री की पट्ट शिष्या साध्वी श्री शशिप्रभाजी की धर्मशीलता, धर्म-परायणता एवं ज्ञान-स्वाध्याय किसी भी भाव में भरा न जीवन क्रियाशीलता को देखकर ही पूजनीया गुरुवर्या सज्जनश्रीजी के

व्यक्तित्व प्रभाव का सही आकलन हो जाता है। 'गुरु जाना भी जाता है अपने शिष्यों के द्वारा' इस 'अभिनन्दन ग्रन्थ' सम्पादन के कार्य हेतु मेरा उनसे कई बार मिलना हुआ। विचार-विमर्श हुआ, तर्क-वितर्क हुआ तथा मैंने पाया कि गुरुवर्यानुरूप ही आप अपने कर्तव्य के प्रति सतत जागरूक रहने वाली कर्मठ वैरागिनी हैं। शशिप्रभाजी एवं प्रवर्तिनीश्रीजी की स्नेह पोषिता अन्य शिष्यायें इस साधना उपवन का सुरभित सौरभ है। महिलाओं में जागृति एवं चेतना का यह पावन आश्रम है।

जहाँ सज्जनश्रीजी अपने मृदुल स्नेह एवं कठोर अनुशासन का समन्वय कर स्वर्ण का कुन्दन बनाती हैं। इस पंचभूत शरीर में त्याग, तपस्या, करुणा का अमृत भरती है। धन्य हैं ऐसी गुरुवर्या एवं धन्य हैं उनकी साध्वीवृन्द जो इक्कीसवीं सदी में प्रवेशातुर निपट भौतिक उपलब्धि में अनुरक्त संसार के समक्ष अपरिग्रह, इन्द्रियनिग्रह एवं अध्यात्म की पताका लिये चुनौती देना दृढ़ता से महावीर वाणी में आस्था लिये खड़ा है।

अनेक रोगों से जर्जरित, विषयाक्रांत समाज के समक्ष ८१ वर्षीया प्रवर्तिनी जी आत्म-साधना का प्रभाव लिये स्वस्थ, प्रसन्न, अप्रमत्त भाव से 'स्फूर्त चेतना सी' लगती है जिनका 'चेतन' जरा द्वारा, रोग द्वारा, एषणाओं द्वारा पराजित नहीं किया जा सका, प्रत्युत उन्होंने ही अपना दास बनाकर रख दिया। पूर्ण सम्पन्न परिवार में जन्मी, सम्पन्न परिवार में ही विवाहित हुई किन्तु सम्पन्नता के व्यामोह को स्वीकार नहीं कर सकी। बाल्यकाल से ही पिताश्री सेठ गुलाबचन्द जी की धर्म निष्ठा एवं तत्व निष्ठा ने आपके मेधावी कुशाग्र मन मस्तिष्क को प्रभावित कर लिया था। वही प्रभाव निरन्तर मन को प्रेरित करता रहा और एक दिन गार्हस्थ्य और मोह बन्धनों को झटकर कर आप जैन श्वेताम्बर खरतर-गच्छ संघ में दीक्षित हो गईं। जैसे भगवान महावीर और भगवान बुद्ध बुद्धत्व को प्राप्त करने की दिशा में दृढ़चित्त हो अग्रसर हुए थे। मोह भंग होते ही मोहावृत संसार से परे हो गये थे। फिर मुड़कर पीछे नहीं देखा। संसार के प्रत्येक प्राणी में ऐसा वैराग्य भाव कई बार उत्पन्न होता है किन्तु इस भाव को प्राणी जकड कर पकड नहीं पाता जो पकडता है वह बुद्धत्व को प्राप्त कर लेता है, वह बुद्ध हो जाता है। ऐसे ही पथ की अनुगामिनी है।

सैंतालीस वर्षों की अनवरत चली आ रही साधना यात्रा ने आपको पूर्णरूपेण आत्मकेन्द्रित बना दिया है। आपके सान्निध्य में जो भी आता है वह कुछ न कुछ अलौकिक भाव ही पाता है। जीवन के "वास्तविक उद्देश्य" का भाव। शरीर सुख से परे "आत्म-सुख" का भाव। अपरिग्रह, अस्तेय एवं अचौर्य का भाव। विश्व बन्धुत्व का भाव ?

सम्प्रदाय एवं धार्मिक संकुलता से दूर आप जैन एवं जैनेतर समाज की मार्गदर्शिका हैं।

ऐसी विदुषीवर्या प्रवर्तिनी सज्जनश्रीजी का "अभिनन्दन समारोह" हो रहा है तथा इस अवसर पर "अभिनन्दन ग्रंथ" का भी प्रकाशन हो रहा है। अतः ऐसे पावन कार्य संपादन करने वाले जैन श्वेताम्बर खरतरगच्छ संघ तथा लूणिया परिवार के साधुवाद का भी मैं लोभ संवरण नहीं कर पा रहा हूँ जिन्होंने वन्दनीय का अभिनन्दन कर निस्संदेह प्रशंसनीय एवं स्तुत्य कार्य किया है।

—卐—

प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी महाराज का अद्‌भुत–अनुवाद–कौशल

—गणी मणिप्रभसागरजी

विद्वानो ने शब्द को 'ब्रह्म' की उपमा दी है। शब्द' ब्रह्म है, इसका मतलब है 'शब्द' अनन्त शक्तिसम्पन्न, अनन्त अथ और पर्याय वाला एक महत्तत्व है। जिस प्रकार एक छोटे से बीज मे विराट वृक्ष की अनेक, अगणित पत्तिया व असख्य बीजा की सत्ता छिपी रहती है उसी प्रकार इस छोटे से 'शब्द' अक्षर मे अगणित अर्थों का रहस्य छुपा रहता है।

जैनाचार्यों ने सूत्र का 'सुत्त' अर्थात् सुप्त कहा है, जिसके भीतर अगणित अथ और रहस्य छुपे हो, ज्ञान का अनेकानेक किरणें जिसके भीतर सुप्त गुप्त हो, और जिसे वाचक, व्याख्याता अपनी सम्यक प्रज्ञा से जागृत करता है, उस रहस्यपुञ्ज शब्द को सूत्र या 'सुत्त' कहा गया है।[1]

सूत्र का अथ समझना कठिन है, इसके लिए शास्त्र का तलस्पर्शीज्ञान तो चाहिए ही, व्याकरण और भाषा शास्त्र पर अधिकार भी होना चाहिए और साथ ही आगम परम्परा, इतिहास और दशन का भी गम्भीर ज्ञान होना चाहिए।

'शब्द' देश-काल परिस्थिति के परिवेश म अपना अथ बदलता रहता है, अपना रूप—स्वरूप परिवर्तित करता रहता है। यदि हमे उसके इस परिवतन की परम्परा और परिवेश का ज्ञान नहीं है तो हम शब्द का सम्यगअथबोध नही कर सकते। ब्रह्म की भाँति श द अनेक रूप अनेक अथ वाला है, अत व्याख्याता को शब्द समग्र रूप का ज्ञान/परिज्ञान होना आवश्यक है, तभी वह शब्द के रूप मे सुप्त अथ रूप ज्ञान ज्योति को प्रकाशित कर सकता है।

भोजन करते समय किसी ने अपने सेवक से कहा—'स धवमानय ! स घ वलाओ !' मूख सेवक न सिधु देश म ज मा घोडा लाकर खडा कर दिया क्योकि 'स धव' नाम घोडे का भी है। स्वामी न कहा—मूख ! अभी तो मैं भोजन करन बैठा हूँ भोजन म नमक नही है, इसलिए सैंधव नमक लान को कहा और तूने घाडा लाकर खडा कर दिया।

तो शब्द का अथ बोध करने के लिए देश-काल परम्परा-दशन और मनोभावा का परिज्ञान होना भी आवश्यक है। 'श द' ब्रह्म को वही पहचान सकता है, वही व्याख्यात कर सकता है जिसका अध्ययन और निरीक्षण चतुमुखी हो, जो बहुश्रु त बहुअधीत हो। अ यथा श द के अथ का अनर्थ भी हो सकता है।

---

१ पासुत्तमर्म सुत्त अत्यणावोहिय न त जाणे —बृह० भा ३१

नई रचना/सर्जना करना एक स्वतन्त्र कला है, इसमें जन्मजात प्रतिभा की प्रधानता है, किन्तु अनुवाद करना एक कठिन कला है। इसमें शब्द शास्त्र का गम्भीर ज्ञान, आगम-इतिहास आदि विषयों का परिपूर्ण परिशीलन होना बहुत ही आवश्यक है। नवसर्जना से भी अनुवाद करना कठिन है। वास्तव मे कुशल और सफल अनुवादक वही हो सकता है, जिसके ज्ञान की चतु सीमा विस्तृत हो और अनुभव परिपक्व हो।

अनुवादक सिर्फ ट्रासलेटर मात्र नही होता, वह शब्दो का व्याख्याकार भी होता है। शब्दो अर्थ और व्यजन का गम्भीर ज्ञाता और उद्घाटक होता है, तभी वह अनुवाद्य ग्रन्थ के साथ के साथ सम्पूर्ण न्याय कर सकता है। साथ ही अनुवादक अनाग्रहवादी, तटस्थ विचारक और सम्यग्बोधि होना चाहिए। वह शब्दो में सुप्त अर्थ को अपनी मान्यता व धारणा का रग नही देता, किन्तु शब्दों के सन्दर्भ को समझकर उसके पूर्वापर की परम्परा को ग्रहण कर उसका वास्तविक रूप निखारता है/उघाडता है। अनुवादक की बुद्धि और भाषा रंगीन बोतल नही होना चाहिए, जिसमे रखी प्रत्येक वस्तु बोतल के रग मे ही दीखने लगे, किन्तु उसकी बुद्धि और वाणी तो शुभ्र श्वेत शीशी होनी है जो वस्तु के असली रूप को दर्शाती है। यही अनुवादक की कुशलता-नीति निष्ठता और सम्यग्सम्बुद्धता है।

प्रवर्तिनी सज्जनश्रीजी महाराज के बौद्धिक व्यक्तित्व मे यह विरल विशेषता है कि वे एक सृजनधर्मी कवयित्री है। काव्यकला उनको जन्मजात गुण के रूप में प्राप्त है। उनकी भक्ति-उपदेश-वैराग्य प्रधान रचनाएँ बहुत ही ललित और जीवन्त प्रेरणा भरी हैं। उनका स्वर भी मधुर है, जो सोने मे सुगन्ध कहा जा सकता है। वे सस्कृत-प्राकृत आदि भाषा की मर्मज्ञा है और न्याय-दर्शन आदि शास्त्रो की विदुषी है। किन्तु इसके साथ ही उनकी एक अन्य दुर्लभ विशेषता है, और वह है, अनुवाद-कुशलता।

प्रवर्तिनीश्रीजी की प्रज्ञा इतनी जागरूक है कि विषय को एक ही बार मे गहराई से पकड़ लेती है और पदानुसारी बुद्धि की तरह एक ही शब्द को आधार बनाकर उसके पूर्वापर सन्दर्भ को सम्यग्रूप से ग्रहण कर लेती हैं। उन्होने नई रचनाओ के साथ ही कई सुन्दर व उत्कृष्ट अनुवाद भी किये है, जो सम्पूर्ण जैन समाज मे अध्यात्म-पिपासु पाठक वर्ग मे समादृत हुए हैं, उनके अनुवाद चाव से पढे जाते है और पाठक उनमे मूल ग्रन्थ का सा रसास्वाद पाकर बार-बार पढता है। उसमे रस-विभोर हो जाता है।

(१) अध्यात्म प्रबोध : देशनासार

प्रवर्तिनीश्रीजी द्वारा अनूदित रचनाओ मे से कुछ रचनाएँ बहुत प्रसिद्ध है, जैसे अध्यात्म प्रबोध-देशनासार तथा द्रव्य-प्रकाश। ये दोनो ही ग्रन्थ खरतरगच्छ के विश्रुत विद्वान प्रसिद्ध अध्यात्मवादी श्रीमद् देवचन्द्रजी की रचनाएँ है। श्रीमद देवचन्द्रजी का जन्म बीकानेर के निकटवर्ती ग्राम मे लूणिया गोत्र मे ही हुआ। उन पर प० बनारसीदासजी आदि की अध्यात्मवादी रचनाओ का विशेष प्रभाव पडा। और उस युग मे अध्यात्मप्रधान रचनाओ की विशेष आवश्यकता अनुभव कर उन्होने अपनी लेखिनी उठाई और अनेक गम्भीर अध्यात्म प्रधान ग्रन्थो की सर्जना की। उनकी भाषा मे सहजता और अध्यात्म रसिकता की स्पष्ट झलक है। देशनासार, एक प्राकृत गाथा बद्ध ग्रन्थ है, इसमे मुख्यत आत्मा, सम्यग्दर्शन, कर्म आदि गंभीर आध्यात्मिक विषयो की चर्चा है। लेखक ने स्वानुभव के आधार पर इन विषयो की बडी सुगम और हृदयस्पर्शी विवेचना की है। अध्यात्मविषयक यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण कृति है और अब तक अप्रकाशित ही थी। प्रसिद्ध विद्वान श्री अगरचन्द जी नाहटा ने इस कृति का अनुसन्धान किया और विदुषी

आर्यारत्न श्री सज्जनश्रीजी महाराज ने इसकी स्वोपज्ञवृत्ति के आधार पर वि स २०२५ २७ के मध्य इसका सुन्दर भावपूर्ण अनुवाद किया है। यह अनुवाद अनुवाद ही नही, बहुत ही सुन्दर भावोद्घाटिनी व्याख्यायुक्त है। विदुषी आर्या श्रीजी न अपने ज्ञानरस को शब्दो की कटोरियो म इस प्रकार परोसा है कि अध्यात्म रस का भूखा पाठक आनन्दपूवक पीता रहे पीता रहे, तृप्ति का अनुभव करता रहे। अध्यात्मप्रधान विषय होकर भी विवेचन बहुत ही सरल और सर्वांग हैं। बीच बीच मे अन्य ग्रथो के सन्दभ देकर आपने विवेचन को अधिक प्रामाणिक और परिपूण बना दिया, यह आपकी बहुश्रुतता का स्पष्ट प्रमाण है। देशनासार—वास्तव मे देशना (जिनप्रवचन) का सार है नवनीत है।

(२) द्रव्य प्रकाश—अध्यात्मवेत्ता श्रीमद् देवचन्द्र जी गणि की यह रचना द्रव्यानुयोग पर आधारित है। ब्रजभाषा मे दोहा, सवया, चौपाई, कुडलिया, चन्द्रायणा, कवित्त आदि छन्दो मे निबद्ध है। यह ग्रन्थ तीन अधिकारो म विभक्त है, प्रथम अधिकार म षटद्रव्य का विवेचन है, द्वितीय अधिकार मे कम प्रकृतियो का तथा तृतीय अधिकार नय निक्षेप, स्याद्वाद तथा षडदशन की समीक्षा करते हुए जैन दशन की तक-युक्तिसगत विवेचना है।

मूल काव्य ब्रजभाषा मे होन से शब्दो को समझ पाना तो सरल है, किन्तु विषय बहुत गभीर है। बिना जनदशन व अन्य दशनो के अध्ययन के इस ग्रन्थ का विवेचन तो क्या, हार्द समझना भी कठिन है। इस विवेचन की स्पष्टता और सरलता से यह पता चलता है कि पूज्य प्रवर्तिनी श्री जी का ज्ञान सिफ शास्त्रीय ज्ञान नही है, वह ज्ञान आत्मसात् हो चुका है, उनके हृदय के कण कण मे रम चुका है। इसलिए विवेचन करते हुए बडी सहज शब्दावली म बहुत ही सरलतापूवक व उसके हार्द को अभिव्यक्ति देने मे समथ हुई हैं।

इस छोटे मे विवेचन म जनदशन का सम्पूण सार समा गया है। जो विषय हजारो पृष्ठो म लिखा जाता है, वह विषय विवेचन के सिफ ७०-७५ पृष्ठो मे समा गया है। इसे ही हम 'सिंधु बिन्दु समाये' की कुशलता कह सकते हैं।

इन दोनो अनुवादो पर से पूज्य आर्या श्री जी की अध्यात्म एव दशन विषय म गहरी पैठ और उसकी हृदयगमता की स्पष्ट प्रतीति होती है।

शब्दो की सरलता और यथाथ उपयोग उनके भाषाज्ञान का भी प्रमाण है। एक जन साध्वी द्वारा किया गया यह विवेचन वास्तव मे गौरव का विषय है और साध्वी समुदाय के वैदुष्य का ज्वलन्त प्रमाण है।

(३) कल्पसूत्र—भाषानुवाद —"कल्पसूत्र" श्वेताम्बर जैन समाज की 'रामायण" मानी जाती है। सम्पूण जैन समाज मे साधु-साध्वी श्रावक श्राविका चतुर्विध तीथ म इस शास्त्र का सबसे अधिक पठन, पाठन, वाचन, श्रवण होता है। इस शास्त्र की सबसे अधिक व्याख्याएँ/अनुवाद छप हैं। विविध प्रकार की साज-सज्जा से स्वण रौप्य चित्रमय, बडे अक्षरो म सुनहले अक्षरो म छपे हुए इस शास्त्र की विविध प्रकार की प्रतियाँ देखकर सहज ही अनुमान होता है कि युग युग से इस शास्त्र का सर्वाधिक महत्व रहा है। जिन प्रतिमा की भाँति ही यह शास्त्रराज भी जनता की श्रद्धार्चा का विषय बना हुआ है।

पर्युषण पव के दिनो मे तो जन मन्दिर-उपाश्रय-स्थानक आदि धम समाओ मे कल्पसूत्र का वाचन करना, एक प्राचीन परम्परा रही है, और आज भी इसका सजगता व उत्साहपूर्वक पालन होता है।

"कल्प" शब्द का एक अर्थ है, "आचार"। नियम व समाचारी सम्बन्धी मर्यादाएँ, जैसे स्थविर कल्प, जिनकल्प आदि। तथा "कल्प" शब्द का एक अर्थ है—इच्छित वस्तु प्रदान करने वाली दिव्य शक्ति, जैसे कल्पवृक्ष, कल्पद्रुम।

कल्पसूत्र—अपने दोनो ही अर्थो मे सार्थक है। यह कल्पवृक्ष की भाँति दिव्य है। इच्छित फल—मोक्ष लक्ष्मी प्रदान करने मे समर्थ है, तो श्रमण जीवन की आचार-मर्यादा का दिग्दर्शन भी कराता है तथा साथ ही महापुरुषो, तीर्थंकर भगवन्तो के पवित्र चरित्र का वर्णन कर सभी वांछित फल प्रदान करने वाला शास्त्र है। संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंश-गुजराती-हिन्दी-अंग्रेजी आदि भाषाओ मे शताधिक संस्करण छप चुके हैं, फिर भी बराबर इसकी माँग रहती है। जनता की माँग व युग की आवश्यकता को देखकर कलकत्ता के श्री जिनदत्त सूरि सेवा संघ, तथा स्थानीय धर्मप्रेमियो की प्रार्थना पर पूज्य प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री जी म ने वि० स० २००६ मे इसका सरल हिन्दी अनुवाद विवेचन तैयार किया था। यह विवेचन-अनुवाद खरतरगच्छीय उपाध्याय श्री लक्ष्मीवल्लभ गणि कृत कल्पद्रुमकलिका के आधार पर किया गया है। उसकी कृति का यह एक स्वतन्त्र अनुवाद है।

जैसा कि प्रारम्भ मे मैने कहा है—अनुवाद करना, मौलिक रचना से भी कठिन है, इसमे मूल ग्रन्थकार (शास्त्रकार) की भावना, उनका उद्देश्य और तत्कालीन समाज मे प्रचलित शब्दो के अर्थ को समझना बहुत ही महत्व का है।

दो हजार वर्ष पुराने शास्त्र का अनुवाद करते समय दो हजार वर्ष पुरानी सभ्यता, संस्कृति, परम्परा, इतिहास, लोकाचार और दार्शनिक मान्यताओ का यदि ज्ञान नही है तो अनुवादक मूल शास्त्र के साथ न्याय नही कर सकता। अनुवादक विशेषज्ञ और कुशलप्रज्ञ होना चाहिए। यह सब विशेषता प्रवर्तिनीश्रीजी कृत अनुवाद पढते समय स्वयं सजीव देखी जाती हैं। अनुवाद पढ़ते समय मूल शास्त्र पढने का आनन्द अनुभव होता है। कही ऊब, ऊलझन नही, दुर्गमता नही और दुर्बोधता भी नही। ऐसा लगता है, नदनवन की सीधी सपाट स्निग्ध धरती पर विचरण कर रहे हैं।

कल्पसूत्र जैसे विशाल शास्त्र का अनुवाद अनुवादक की दृढ इच्छा शक्ति, निष्ठा, तन्मयता और एक कार्य मे जुटकर उसे पूर्ण कर देने की प्रबल आत्मशक्ति का द्योतक है।

इसकी भाषा प्राञ्जल है। मूल पाठ का भावग्राही अनुवाद इतना सरल है कि फिर उसकी परिभाषा बताने की, व्याख्या करने की आवश्यकता नही लगती। चूंकि यह शास्त्र प्रवचन का विषय है। इसलिए इसकी भाषा को सहज जनबोध्य रखना अनुवादक की समयज्ञता और जनरुचि का आदर करना ही माना जायेगा।

भारत की एक प्राचीन परम्परा जहाँ स्त्री को वेद पढने के अधिकार से ही वचित रखती है और आज भी कुछ परम्पराएँ स्त्री को शास्त्र-पढने के अधिकार देना नही चाहती। ऐसी स्थिति में एक विदुषी साध्वी (नारी) इतने महत्वपूर्ण शास्त्र की इतनी सुन्दर विवेचना, और व्याख्या करती है, यह भारतीय संस्कृति के गौरव मे चार चाद लगाने वाला विषय है। जैन परम्परा की समत्व भावना का यह स्पष्ट उद्घोष है, और इस परम्परा की उदारता, गरिमा का अखण्ड मण्डन है, जो युग-युग तक शोभास्पद बना रहेगा।

—卐—

आर्या सज्जनश्रीजी की काव्य-साधना

—डॉ० नरेन्द्र भानावत
(जयपुर)

काव्य और अध्यात्म का गहरा सम्बन्ध रहा है। दोनो का उद्देश्य रस-दशा की प्राप्ति है। रस दशा वह दशा है, जहाँ तमस और रजस गुण तिरोहित हो जाते हैं और सात्त्विक गुणो का उद्रेक होता है। यह दशा हृदय की मुक्त अवस्था है, जहाँ सुख दुख से परे दिव्य आनन्द की अनुभूति होती है। काव्यशास्त्रियो ने रस को ब्रह्मानन्द सहोदर कहा है और अध्यात्म साधक तो ब्रह्मलीन अवस्था म रहता ही है। जब अध्यात्म साधक अपनी अनुभूति को शब्द का रूप देता है तब जो काव्य का सृजन होता है उसका आनन्द हृदय की मुक्त दशा का आनन्द ही है। यहाँ न राग रहता है, न द्वेष। आर्यारत्न सज्जनश्रीजी इस काव्य-पथ की अध्यात्म साधिका हैं।

हिन्दी साहित्य म भक्ति काव्य का विशेष महत्व है। अपने आराध्य के प्रति निश्छल समपण और विनम्र आत्म निवेदन भक्ति-चेतना का मूल तत्त्व है। भक्ति-काव्य को समृद्ध करने मे पुरुष भक्त के साथ साथ स्त्री भक्त कवयित्रियो की भी महत्वपूण भूमिका रही है। निर्गुणधारा की कवयित्रियो म दयाबाई, सहजोबाई, रूपादे, उमाबाई, मरूपाबाई, गवरीबाई आदि प्रसिद्ध हैं तो सगुणधारा की कव यित्रिया म कृष्ण भक्ति शाखा के अन्तर्गत मीराबाई सोढानाथी छत्रकवरीबाई, सम्मानबाई, सौभाग्य कुवरी आदि के नाम हमारे सामन आते हैं तो राम भक्ति शाखा के अन्तगत प्रतापकुवरी रत्नकवरी और चन्द्रकलाबाई के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। डिंगल परम्परा की कवयित्रियो म झीमा चारणी, पद्मा चारिणी चम्पादे रानी आदि प्रसिद्ध हैं।

कृष्ण और राम को आराध्य बनाकर अपन भाव-पुष्प समर्पित करन वाली कवयित्रिया के समानान्तर ही वीतराग प्रभु ऋषभदेव, पार्श्वनाथ, श्रमण भगवान् महावीर आदि तीर्थंकरो एव सामान्य रूप से जिनन्द्र भगवान् के चरणो मे अपनी भक्ति वन्दना निवेदित करने वाली साध्वी परम्परा की कई कवयित्रियाँ हुई हैं। उनम गुण-समृद्धि, महत्तरा, विनयचूला, पद्मश्री, हेमश्री, हेमसिद्धि, विवेकसिद्धि, विद्यासिद्धि, हरकुबाई हुलासाजी, सम्पाबाई, जडावजी, आर्या पावताजी, भूरसुन्दरीजी, रत्नकुवरी आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। इसी परम्परा मे आर्यारत्न सज्जनश्रीजी का विशेष स्थान है।

आर्या सज्जनश्रीजी बहुआयामी प्रतिभा की धनी हैं। प्राकृत, संस्कृत, हिन्दी, राजस्थानी आदि भाषाओं पर आपका अच्छा अधिकार है। आगम एव सैद्धान्तिक ग्रन्थो का आपन गहरा अध्ययन किया है और उनकी व्याख्या विवेचना म भी अच्छी सफलता प्राप्त की है। आप हृदय से कोमल, स्वभाव

से मधुर है। आपकी कोमल और माधुर्य भावना कविता के स्वरो मे फूट पडी है। 'ज्ञान पुष्पांजलि', 'श्री जैन गीताजलि', 'सज्जन-विनोद' आदि नाम से आपकी कविताओं के लघु संकलन प्रकाशित हैं। आपकी समस्त रचनाओ का एक प्रतिनिधि संग्रह प्रकाशनाधीन है।

आपकी कविताएँ प्रधानतया मुक्तक रूप मे है। इन्हे पद या गीत कहना अधिक उपयुक्त होगा। इन मुक्तको के दो प्रधान भेद किये जा सकते है। स्तुतिपरक मुक्तक तथा वैराग्यप्रधान उपदेशात्मक मुक्तक। स्तुतिपरक मुक्तक के दो प्रकार है—एक जिनस्तुति या तीर्थंकर-भक्ति और दूसरा गुरु-स्तुति या गुरु भक्ति। जिन-स्तुति मे सामान्य रूप से उन जिनेन्द्र भगवान के प्रति अपनी श्रद्धा-भक्ति व्यक्त की गयी है, जिन्होने राग-द्वेष पर विजय प्राप्त कर अखण्ड आनन्द स्वरूप मुक्ति प्राप्त कर ली है। जो अनन्तज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्त वल—पराक्रम के धारक हैं, जो क्षमासागर, करुणासागर और परम दयालु हैं। जिनका सत्सग और सान्निध्य अपार शाति, असीम सुख और दिव्य आनन्द प्रदान करता है। वे जिनेन्द्र भगवान् जिन्होने लोक-कल्याण के लिए तीर्थ की स्थापना कर धर्म-चक्र प्रवर्तन किया है, वे "तीर्थंकर" कहलाते हैं। ऐसे तीर्थंकर २४ माने गये है। इनकी स्तुति और महिमा मे लिखे गये स्तवन "चौवीसी" नाम से प्रसिद्ध हैं। देवचन्द्रसूरि, यशोविजय, आनन्दघन जैसे अध्यात्म-महापुरुषो की 'चौवीसी सज्ञक' रचनाएँ अत्यन्त लोकप्रिय हैं। साध्वी सज्जनश्रीजी ने भी २४ तीर्थंकरो की स्तुति मे 'चौवीसी' लिखी है। इसमे आपके हृदय की विनय और समर्पण भावना अभिव्यक्त हुई है। कवयित्री इनके दर्शन, पूजन और मिलन के लिये उत्कठित है —

"वीर प्रभु दर्शन दो विन दर्शन दुःख पाऊँ ··· (स्थायी)
मुझ को दर्शन लगता प्यारा, जिससे दुःख जाता है मारा,
नित उठ मन्दिर जाऊँ·· ···· ॥१॥
मोहन मुख के दर्शन जिस दिन, भगवन् होते नही है उस दिन,
दिन भर मै पछताऊँ·· ·· ॥२॥
जिस दिन दर्शन करती तेरा, जीवन धन्य मानती मेरा,
अनुपम सुख को पाऊँ·······॥३॥
प्रतिदिन दर्शन होवे मुझको, सदा करूँ मै वन्दन तुझको,
"सज्जन" तव यश गाऊँ··· · ॥४॥

तीर्थंकर स्तुति मे कवयित्री ने भगवान् महावीर, पार्श्वनाथ एव नेमिनाथ के प्रति विशेष पद लिखे है। महावीर जयन्ती एव महावीर निर्वाण दिवस (दीपावली) के प्रसंग पर भी कई गीत लिखे हैं, जिनमे महावीर की जीवन-साधना से प्रेरणा लेकर अपने जीवन को सफल और सार्थक बनाने का आह्वान है। नाम-स्मरण पर बल देते हुए कवयित्री कहती है—

"वीर-वीर मन रट ले, प्रभु वीर हरे सब पीर,
जिनका नाम है महावीर, उनका आभारी जग सारा॥१॥

उनके तेजस्वी प्रभामण्डल को देखकर कवयित्री उस पर मुग्ध है :—

जब से देखी है अदा, उस प्यारे की,
सूरत आँखो मे बसी, दुनिया के उजारे की॥१॥
है दिल मे तमन्ना फखत, 'सज्जन' को इतनी,
सूरत दिखला दे कोई, जीवन के सहारे की॥२॥

कवयित्री वीर प्रभु के चरणो म सवस्व योछावर करने को उद्यत ह —

> एक वार जा नाथ निहालूँ, प्रेमाश्रु नीर से चरण पखालू,
> तन मन धन सब अपण कर दूँ, प्रभु तव पद-पूजन मे ॥१॥

कवयित्री पाश्वनाथ से अनुनय विनय करती है कि व उसकी नया को पार उतार दें। वह उनके दशन के लिए उत्कठित है। उनका दशन चन्द्रमा की तरह शीतल और सूय की तरह अधकार को हटाने वाला है—

> तुम दशन है शरद चन्द्रिका, शीतलता का झरना,
> रोग, शोक सताप मिटावे, जग, जन्म और मरना।
> तुम दशन है ज्ञान दिवाकर, तिमिर हटाव मन का,
> हो उद्योत ज्योति उर झलके, मिले सुफल जीवन का ॥१॥

कवयित्री पाश्वनाथ के सौन्दय पर मुग्ध है —

> मन मोहनगारा, पाश्व जिनन्द लागे प्यारा,
> सावरी मूरत लागे प्यारी निरख मन मोद अपारा
> मन ॥१॥
> मस्तक मुकुट कण कुण्डल द्वय गल बिच मौक्तिक हारा
> मन ॥२॥
> चिन्ताचूरन वाछापूरण, चिन्तामणि बिरुद तुम्हारा,
> मन ॥३॥

नमिनाथ के प्रति राजुल के माध्यम स कवयित्री न अपने जन्म जमान्तर का सम्बन्ध जोडा है। पशुओ के क्रन्दन से पसीज कर नमिनाथ तोरण स लौट पडते हैं और सन्यस्त हो आत्म-साधना म लग जाते है। राजुल विरह-व्यथित हो उठती है—

> सखी! सुन तू बात हमारी, विरहा जियरा जलाय
> जाऊँ मैं भी सग पिया के उन बिन कुछ न सुहाय।

वर्षा ऋतु मे यह वियोग असह्य बन जाता है। जलधारा तीर सी चुभती है। पपैया का पीऊ-पीऊ का स्वर हृदय को विदीर्ण करता है। कोयल की कुहू-कुहू हृदय में हूक उठाती है। वह सखी से अनुनय विनय करती है —

> मुझे नेमि पिया से मिला दो सखी ।
> नयन युगल यह प्यासे दरश के, इन्हे दशन नीर पिलादे सखी ॥१॥
> मैं दुखियारी पिया के विरह मे, मरती हूँ मुझको जिला दे सखी ॥२॥
> हाथ जोड तेरे पया पडत हूँ, मेरे प्रियतम को दिखला दे सखी ॥३॥
> कैसे मनाऊँ मैं रुठे पिया को, कोई ऐसी रीति सिखादे सखी ॥४॥

कवयित्री के लिये नमिनाथ ही मन मन्दिर के देव है। वह उन्ह उपालम्भ भी देती है। राजुल के माध्यम से विरहानुभूति का जो वणन है, वह कवयित्री की आध्यात्मिक भावलीनता का प्रतीक है।

कवयित्री अपनी लघुता, कम मलिनता और अपन आराध्य की महानता एव वीतरागता का वणन कर अपनी शरण मे लेन के लिये उनसे आत्म निवेदन करती है —

तू शिववासी, मैं जगवासी अन्तर बहुतेरा रे,
तेरे और मेरे बीच में, अन्तर बहुतेरा रे।
कैसे...... ॥१॥

वीतराग तू मैं हूँ सरागी कर्मों ने घेरा रे,
मुझको तो प्रभु अशुभ कर्मों ने घेरा रे।
कैसे......॥२॥

सुख सिन्धु भगवान तुम्ही हो, मिटा दो फेरा रे,
भव-भव का प्रभु जल्दी मिटा दो फेरा रे।
कैसे...... ॥३॥

स्तुतिपरक मुक्तकों मे कवयित्री ने तीर्थंकरो के अतिरिक्त अपने दादा गुरुओं श्री जिनदत्तसूरि, श्री जिनकुशलसूरि, श्री जिनचन्द्रसूरि आदि के प्रति अपनी गुरु-भक्ति व्यक्त करते हुए उनके तपस्वी, सयमी जीवन और धर्म प्रभावक व्यक्तित्व की अभिवन्दना की है। उनकी पूजा-अर्चना मे कवयित्री भक्ति की केसर, शुभ भाव का चन्दन निर्मल मति का कपूर, स्नेह के फूल चढाती है। श्रद्धा के अक्षत, शुद्ध मनोबल के श्रीफल और सद्ज्ञान रूपी दीपक की जोत से उनकी पूजा करती है। यह भाव-पूजा कितनी भव्य और दिव्य बन पडी है।

गुरुदेव तुम्हारे पूजन को, एक तेरा पुजारी आया है,
पद कमलो के प्रक्षालन को, नयनो मे वारी लाया है...... (स्थायी)

तव अचल भक्तिमय केशर है, शुभ भाव का चन्दन शीतल यह,
निर्मल मति का कपूर मिला, तेरे चरणो पै चढाया है......॥ १ ॥

ये स्नेह भरे वर सुमन प्रभो, अंजलि मे ले आया ले लो,
और अशुभ विचार की धूप जला, सुविचार सुगन्ध फैलाया है......॥ २ ॥

सद्ज्ञान ज्योतिमय दीपक है, जिससे निज पर का भेद दिखा,
श्रद्धा के उज्ज्वल अक्षत ले, सुन्दर स्वस्तिक यह रचाया है......॥ ३ ॥

तप सयम शील क्षमा मृदुता के नैवेद्य बने है रुचि कर ये,
विशुद्ध मनोबल श्रीफल ले, वाछित फल पाने आया है......॥ ४ ॥

दादा गुरुओ के अतिरिक्त अपने गुरु श्री हरिसागरजी म० सा०, पूज्य आचार्यश्री आनन्दसागरजी म०सा०, श्रीकवीन्द्रसागर जी म०सा०, श्रीसुखसागरजी म० सा०, श्रीकातिसागरजी म०सा०, श्रीउदयसागर जी म०सा०, श्री मणिप्रभसागरजी म०सा० आदि के प्रति भी अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित किये हैं। इन मुक्तको में कवयित्री की गुरुभक्ति और विनय-भावना प्रकट हुई है। आर्या सज्जनश्रीजी ने अपनी गुरुणी ज्ञानश्रीजी, उपयोगश्रीजी, स्वर्णश्रीजी, पुण्यश्रीजी एव जैन कोकिला विचक्षणश्रीजी का गुणानुवाद भी किया है।

स्तुतिपरक मुक्तको के अतिरिक्त जो उपदेशात्मक मुक्तक लिखे गये हैं, उनमे शरीर की नश्वरता, जग की अनित्यता का चित्रण करते हुए चंचल मन पर नियत्रण करने मोह रूपी निद्रा से जागने, क्रोध, मान, माया, लोभ रूपी कषायों पर विजय प्राप्त कर क्षमा, विनय, सरलता और सतोष धारण करने की प्रेरणा दी गयी है। इन मुक्तको मे सुमति-कुमति का मानवीकरण कर चिदानन्द को सचेत किया गया है कि वह कुमति का साथ छोड़कर सुमति को अपनाये। सुमति के वरण से ही नये समाज की और ससार की

रचना सभव है। कवयित्री के मन मे जो नये ससार को रचने की भावना है, वह ससार ऐसा है, जिसमे अपने पराये का भेद नही, जहा दुख, ईर्ष्या और तृष्णा नही, सभी से मैत्री और प्रेम है—

एक नया ससार बसाऊँ, एक नया ससार (स्थायी)

भेद न हो जहा अपने पर का, कौन पराया कौन है घर का,
हो समान व्यवहार, बसाऊँ ॥ १ ॥

दुख का जहाँ लेश न हो, ईर्ष्या तृष्णा क्लेश न हो,
हो सुखी सभी नरनार, बसाऊँ ॥ २ ॥

सभी जनो से मित्रता हो, नही किसी से शत्रुता हो,
हो सर्वत्र प्रेम प्रचार, बसाऊँ ॥ ३ ॥

आनन्दमय जीवन हो सारा, ज्ञानोपयोग का हो उजियारा,
"सज्जन" मन के विचार, बसाऊँ ॥ ४ ॥

यह सही है कि कवयित्री का मन प्रभुभक्ति और गुरुभक्ति मे ही अधिक रमा है। तथापि भक्ति के मूल मे निहित सामाजिक चेतना से वह बेखबर नही है। भक्ति और पूजा के नाम पर व्याप्त आडम्बर, नामवरी पद, प्रतिष्ठा उसे स्वीकार्य नही। पूजा के नाम पर क्रियाकाड होता रहे और प्रभु भक्ति के माध्यम से यदि गरीबो के प्रति प्रेम नही उमडता, अपने-पराये का भेद नही मिटता, मन का राग-द्वेष कम नही होता, देहासक्ति मिटती नही तो वह भक्ति और पूजा किस काम की ?

दर्शन करें पूजन करें बारह व्रतधारी बनें।
पर गरीब जन का खून चूसना, नही गया पर नही गया ॥ १ ॥
लाखो रुपये दान करते, दानी बने है क्षण मे।
पर अपने नाम का मोह हृदय से, नही गया पर नही गया ॥ २ ॥
धन माल व परिवार सब सुख भोग तज साधु बना।
पर अपने पर का भेद भाव तो, नही गया पर नही गया ॥ ३ ॥
पौसह सामायिक नित करें, तपस्या भी करती खूब हैं।
पर विकथा करना धर्मस्थान मे नही गया पर नही गया ॥ ४ ॥
विद्वान बन वक्ता बन, धर्मोपदेशक बन गये,
अपने मन से रागद्वेष का भाव जरा भी, नही गया पर नही गया ॥ ५ ॥
स्वाध्याय जप और ध्यान करते, अध्यात्म योगी बन गये,
पर "सज्जन" कहे निज देहाध्यास तो, नही गया पर नही गया ॥ ६ ॥

इन भक्तिपरक रचनाओ मे कवयित्री ने ज्ञानोपयोग एव दर्शनोपयोग को विशेष महत्त्व दिया है —

१ शुभ उपयोग महा प्रतिक्षण वरतूँ, जीवन सफल बनाओ रे।
"सज्जन" मननी ए अभिलाषा, शिवसुख भागी बन जाओ रे।

२ शुभ उपयोग मे रमण करूँ नित, "सज्जन" मांगे जिनन्द।

३ दर्शन ज्ञान चरणनी साधना रे, "सज्जन" करशे भव पार !

मुक्तकों के अतिरिक्त कवयित्री ने 'कथा गीतिकाएँ' नाम से जो रचनाएँ लिखी हैं, उनमें गीतो के रूप में कथा कही गयी है। उन कथाओ मे राजकुमारी प्रभजना, महारानी सीता, सती शिरोमणि अजना, सती मृगावती, सती मदनरेखा, सती ऋपिदत्ता आदि का आख्यान गाया गया है। इनमें नारी के सतीत्व, शौर्य, शील, तप, सयम, कष्ट-सहिष्णुता, पतिव्रत धर्म, त्याग, समर्पण जैसे उदात्त जीवन मूल्यो को उजागर किया गया है। यहाँ नारी अवला वनकर नही, सवला वनकर, शक्ति वनकर प्रकट हुई है। नारी दैहिक शृगार की आलम्वन नही, आत्मिक शृंगार की माधुर्यमयी मूर्ति और उत्सर्गमयी स्फूर्ति है।

यथाप्रसग कवयित्री ने नव पद आराधना, तपस्या, अक्षय तृतीया, नन्दीश्वरद्वीप, पर्युषण आदि के सम्वन्ध मे भी गीत लिखे है। इन गीतो मे संवद्ध विषय के महत्व और आराधना-विधि को स्पप्ट किया गया है।

कवयित्री के भाव पक्ष और कला पक्ष दोनो में सहजता, सरलता और सहृदयता की रक्षा हुई है। कवयित्री की भाषा सरल और वोधगम्य है। उसमे राजस्थानी और गुजराती का मिश्रित स्वाद है। भावो को अनुभूति के स्तर पर व्यक्त किया गया है। कारीगरी और कलावाजी से कवियत्री दूर रही है। अपने भावो को स्पप्ट करने के लिए यथाप्रसग साहश्यमूलक अलकारो का विशेष प्रयोग हुआ है। कुछ उदाहरण द्रप्टव्य है.—

रूपक

प्रभु दर्शनरवि जव उदय हुआ, महामोह-तिमिर का विलय हुआ।

होली रूपक

ज्ञान की गुलाल उडाकर, प्रभुजी की पूजा रचाओ।
भक्ति भावना के जल से भरकर, सुमन पिचकारी चलाओ।
ध्यान-वह्नि प्रज्वलित कर मन में, षोडश कषाय जलाओ।
नोकषाय और मोहनीत्रिकसह, मोह को मार भगाओ।
शुद्ध समकित प्रकटावो।
ऐसी होरी मनाओ, सखी नित प्रभ गुण गावो ॥

उपमा

जो एक रूप और एक रस वनकर,
प्राणेश्वर ! तव पद-पकज मे।
मधुकर सा मोहित सदा रहा,
उस मन को नाथ सताया क्यो ?

o o o

तन मन से थे एक रूप ही, जैसे दूध और पानी,
क्षण भर भी नही दूर थे रहते, समझी आज विरानी।

उत्प्रेक्षा

मरकट ज्यो रहता है उछलता, कूदत डाली-डाली,
पकड़-पकड़ कर रखने पर, भग जाता दे ताली रे।

आर्या सज्जनश्री की काव्य-साधना का महत्वपूर्ण पक्ष है उसका सगीत तत्व । काव्य सजना का उद्देश्य पाडित्य प्रदशन न होकर अपने कथ्य को सहज, बोधगम्य और लोकभोग्य बनाना है । इसी उद्देश्य से कवयित्री ने पारम्परिक मात्रिक, और वार्णिक छदा का उपयोग न कर लोक जिह्वा पर तरने वाली राग रागिनिया का प्रयाग किया है । कतिपय राग शास्त्रीय राग हैं—यथा—भरवी माड, सोरठ, आसावरी आदि । कतिपय राग लोक गीतात्मक राग हैं, जिनकी तज है —

पथडो निहालू रे, तावडो धीमी पड जा ।
नणराती ऐ मूमल, हालोनी चट,
केसरिया कामणगारो आदि ।

अधिकाश रागें और तर्जें फिल्मी है यथा —"आजा मेरी बरबाद, नगरी-नगरी द्वारे द्वार, राजा की आयगी बारात, मन डोले मेरा तन डाले जादूगर सया छोड मेरी बहिया, जब तुम ही चले परदेस, बिगडी बनाने वाले, सारी-सारी रात तेरी याद, जिया बेकरार आदि ।

उपयुक्त विवेचन मे स्पष्ट है कि कवयित्री सज्जनश्री की काव्यसाधना म उनका आध्यात्मिक अनुभव समाया हुआ है । भावुक भक्त और लाक सगीतकार के रूप म आप अपनी काव्य स्थली म प्रतिष्ठित प्रतीत होती है । नागी का कोमलता, मधुरता, भावुकता और विह्वलता का करुण सौंदय और मन को दिव्य आलोक स मडित करन वाला माधुय पाठक का और श्रोता का एक साथ अभिभूत करता चलता है । कवयित्री अपनी भक्ति सुरभि जन-जन को सदा बाटती रहे यही मगल कामना है ।

—सी, २३५ ए, दयानन्द माग,
तिलकनगर जयपुर—४

• • •

—सज्जन वाणी—

१ ईर्ष्यादि दुगुण अनेक शारीरिक और मानसिक रोगो के मूल कारण है । जब तक ये दुर्गुण नही निकलते हैं तब तक औषधियाँ कुछ नही कर सकती ।

२ बडे-बडे डाक्टरो का अभिमत है कि मानसिक असतुलन समस्त व्याधिया का प्रमुख कारण है ।

३ मनुष्य जैसा सोचता है, चिन्तन करता है, उसी के अनुरूप वह बनता है अत सोच और चिन्तन विशुद्ध, आदशमय होने आवश्यक हैं । इसके लिए उत्तम महापुरुषो, सन्त महर्षियो द्वारा रचित ग्रन्थो का स्वाध्याय करना चाहिए ।

४ कहा जाता है कि ज्ञान सीखने पर ही आता है किन्तु यह बात एकान्त नही । क्योकि अन्तर स्फुरण भी एक वास्तविक कारण है । यह नही हो तो मनुष्य कुछ भी नही कर सकता ।

———

एक सफल अनुवाद—करयित्री :
आर्यारत्न प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री म०

—साहित्यश्री डॉ. आदित्य प्रचण्डिया 'दीति'
एम० ए० (स्वर्णपदक प्राप्त), पी-एच० डी०, डी० लिट्०

एक भापा मे उपलब्ध पाठ सामग्री को दूसरी भापा की समतुल्य पाठ सामग्री मे रूपान्तरित करने की प्रक्रिया और परिणति-विशेष अनुवाद है। रूपान्तरण की इस प्रकृष्ट प्रक्रिया मे अनुवाद-कर्त्ता को उस अनुभव के दौर से गुजरना होता है जिस अनुभवो के पडावो से होकर स्रष्टा-लेखक की लेखन-यात्रा सम्पन्न हुई होती है। अपने इस महनीय प्रयत्न मे अनुवादक को लेखककी मानसिक पर्तो को चीरते-विश्लेषित करते हुए गहरे और गहरे पैठना होता है। साथही उसे सम्पूर्ण मनो प्रक्रिया को पुन सृजितकरना होता है। अनुवाद दो प्रकार से किया जाता है—एक तो जो है, उसे ज्यूँ का त्यूँ रूप देना, दूसरा वह, जो मूल पाठ है उसमे समाहित 'साहित्य रस' को धूमिल-मलिन न करते हुए उसकी अर्थवत्ता-प्राणवत्ता को रूपायित-शव्दायित करना होता है। अनुवाद समतुल्यता की साधना है। इस समतुल्यता की सिद्धि जितनी अधिक होगी अनुवाद उतना ही सुष्ठु और सफल होगा। यह अपने मे तथ्यपूर्ण है कि शव्दो की अर्थच्छायाओ, अर्थच्छवियो तथा अभिव्यक्ति की वक्रताओ/श्लिष्टताओ के एव वाक्य-रचना-वैभिन्न्य के अनेक वाधा-वन्धनो के कारण हम जिसकी उपलव्धि अनुवाद मे कर पाते है वह अन्ततोगत्वा सन्निकटन (Approximation) ही होता है। यह सन्निकटन आदर्श तो हो सकता है, यथार्थ कदापि नही।

आर्यारत्न प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री महाराज एक विदुषी साधिका हैं। आपका व्यक्तित्व-ववतृत्व कला से अभिमण्डित है। आप गीतार्थ, आगमज्ञ और परमशान्त उज्ज्वल चरित्रवान है। आप लेखिका है और हैं एक कवयित्री। आपश्री हिन्दी, गुजराती, सस्कृत, प्राकृत, उर्दू, राजस्थानी आदि भापाओ की प्रखर पण्डिता है। आपने पुण्य-जीवन-ज्योति, सज्जन विनोद, कुसुमाजली, गीताञ्जली, पुष्पाञ्जली आदि का प्रणयन किया है। श्रीमद् देवचन्द्रजी कृत देशनासार एवं कल्पसूत्र/लक्ष्मीवल्लभी टीका का अनुवाद किया है। श्री जिनकुशलसूरि विरचित 'श्री चैत्यवन्दन कुलक-वृत्ति' का हिन्दी अनुवाद भी आपश्री की सशक्त लेखनी से हुआ है। प्राकृत भाषा मे लिखित 'श्री चैत्यवन्दन कुलक-वृत्ति' नामक कृति मे जैन श्रावक-श्राविकाओ के कर्त्तव्य, आचार-विचतर पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। अनुवादिका साध्वीश्री इस कृति की अनूठी पाठ-सामग्री से, उनके स्वरूप से जुड़ी हुई है। उनकी भाषा मे तरलता, सुकुमारता, श्लिष्टता और मार्दव भाव समाहित है। मूल कृति शास्त्र है, वौद्धिक और विचारात्मक है

लेकिन साध्वीजी ने चौबीस कथाओं का समायोजन कर अनुवाद रचना को जीवन्त रुचिवन्त बना दिया है। महान कवियों की रचनाओं की हर युग में नये नये अर्थ और नई-नई व्याख्याएँ होती हैं। अनुवादिका इस कृति के मूल लेखक के मन्तव्य का भली भांति आत्मसात् करके उसमें साधारण से साधारण शब्दों को भी अपने अभिनव प्रयोग कौशल से एक असाधारण अर्थ और चमक देने में सफल सिद्ध हुई हैं। काव्य कथा और शास्त्र का अद्भुत संगम लिए यह कृति अनुवाद की समतुल्यता के गुण से अभिमण्डित है। मूलकृति के नियतार्थ और निश्चयार्थ सीमा को अनुवादिका ने अपने अनुवाद कौशल से उसकी काव्य भाषा की अर्थक्षमता को विस्तीर्ण और असीम बना दिया है। साध्वीजी के इस कौशल का एक नमूना निदर्शन द्रष्टव्य है—

'खीर दहि नवणीय घय तहा तिल्लमेव गुडमज्ज,
महु मस चेव तहा उग्गहिमगच विगइओ।

क्षीर दूध, दही, नवनीत मक्खन, घृत, तेल, गुड शक्कर, मद्य, मधु, मांस हिमग—पक्वान्न ये दस उग्र विकृति मानी जाती है। इनमें से चार—मद्य, मांस मधु और नवनीत तो सर्वथा ही अभक्ष्य हैं। शेष छह—दूध दही, घृत, तेल, मिठाई, पक्वान्न अर्थात् तली हुई खाद्य सामग्री—मोदक, बर्फी आदि मिष्ठान, मालपूये, पूरी कचौरी, बड़े-पूवे, बड़े पकौड़ी, समोसे, कोपत तथा तले हुए पापड़, पपड़ी, सलेवड़े पीले खीचे, दालमोठ, चिउड़ा, चने की दाल, मूँग, उड़द तले हुए छोले चने, मूँगफली बादाम, पिश्ते, काजू इत्यादि भी पक्वान्न माने जाते हैं। उत्कृष्ट से तो तनी हुई रोटी, परांवठे, चिलड़े धारड़े-उल्ट आदि भी पक्वान्न ही की गिनती में हैं।" (पृष्ठ १२१)

उक्त नमूने से स्पष्ट है कि उपरि विवेचित अनुवाद के दूसरे प्रकार का व्यवहार साध्वीश्री ने इस अनुवाद कृति में सफलता के साथ किया है जिससे मूल कृति में निहित 'साहित्य रस' भी नष्ट विनष्ट नहीं हुआ है अपितु मस्त अनुवादिका ने अपने अनुभव और अभिज्ञान का भी भरपूर उपयोग और लाभ उठाते हुए उसमें अभिव्यञ्जित अर्थच्छायाओं-अर्थच्छवियों को मूर्त्त रूप दिया है। इस प्रकार भाषा की सम्प्रेषणीयता, अर्थमत्तता और रोचकता का समाहार विवेच्य अनुवाद कृति में हुआ है। अनुवाद की उक्त प्रवृत्तियों से अनुप्राणित विवेच्य कृति के परिप्रेक्ष्य में आर्यारत्न प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री महाराज एक सफल अनुवादिका प्रमाणित होती हैं। शुभम्।

मंगल कलश
३९४, सर्वोदयनगर,
आगरा रोड, अलीगढ़
२०२० १ (उ० प्र०)

—सज्जन वाणी—

१ आवेश, आवेग, उत्तेजना आक्रोश मनुष्य की चिन्तन प्रणाली को नष्ट कर देते हैं।

२ छिपा हुआ आक्रोश, दुर्भावना, गर्ह, निन्दा, चुगली, आदि के रूप में प्रकट होकर स्वयं को जलाते ही हैं, साथ रहने वाले व्यक्ति भी सुखी नहीं रहते।

३ ईर्ष्या द्वेष, आदि दुर्गुणों से ग्रसित मनुष्य स्वयं को तो दुःखी करते ही हैं, दूसरों के लिए भी सिरदर्द बन जाते हैं।

एक श्रेष्ठ जीवन चरित
"पुण्य जीवन ज्योति"—अवगाहन

—महावीर प्रसाद अग्रवाल
(व्याख्याता : हिन्दी
एन. एम जैन वरिष्ठ उ० मा० विद्यालय, जयपुर)

जिनकी कीर्ति का कल गान हम निरन्तर अपने पूज्य गुरुजनो, श्रद्धेय परिजनो, सहमार्गी साथियो और सुविख्यात सामाजिको से सुना करते है तथा जिनके दर्शन, स्पर्शन एव सेवा का सौभाग्य हमे नही मिला है, उनके विषय मे साधिकार कुछ लिखना कठिन कार्य है. एक ऐसी चुनौती है जिसे स्वीकार करने का साहस विरले ही नर-रत्न कर पाते हैं। खरतरगच्छ सम्प्रदाय की महत्तरा साध्वीरत्न स्व. श्रीमती पुण्यश्री जी महाराज साहब की जीवन कथा का आलेखन भी एक ऐसा ही दुसाध्य कार्य था, जिसे सम्पन्न करने का सुयोग मिला उनकी प्रशिष्या साध्वी श्रेष्ठ श्रीमती सज्जनश्रीजी महाराज साहब को।

पूज्य पुण्यश्रीजी महाराज साहब परम त्यागी, चारित्रनिष्ठ, निरभिमानी, करुणासिक्त, धीर-प्रशान्त, प्रभावशालिनी, विदुपी साध्वीरत्न थी। वे आत्मविकास की उस श्रेणी पर पहुँची हुई साध्वी श्रेष्ठा थी जहाँ आत्मज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि गुण विशद बनने की भूमिका पर होते हैं। उनमें शास्त्रोक्त वे सभी गुण विद्यमान थे, जो साधक जीवन के लिए अनिवार्य माने जाते है। परोपकार की पुनीत सौरभ से सुवासित उनका जीवन चरित्र प्रत्येक के लिए आदरणीय, अनुकरणीय और आचरणीय है। लेखिका ने अपने लेखन कौशल से अमर प्रेरणा की स्रोत, पुण्य जीवन ज्योति साध्वी पुण्यश्रीजी म सा. के व्यक्तित्व की न केवल प्रभावी प्रस्तुति की है वरन् खरतरगच्छ सम्प्रदाय के १५० वर्षों के इतिहास का भी उल्लेख किया है। इसमे सम्प्रदाय की २०० से भी अधिक साध्वीरत्नो तथा ५० से भी अधिक साधको के उज्ज्वल जीवन चरित्रो को मणिकाचन सम जड दिया है। इससे इस पुस्तक की उपयोगिता एक ऐतिहासिक ग्रन्थ के सदृश बढ गई है। इससे वैराग्य-पथ के पथिको को त्याग, समर्पण, सेवा और अपूर्व आत्मबल मिल सकेगा।

ग्रन्थ लेखन की प्रेरणा लेखिका को अपने सस्कारो और वातावरण से मिली। लेखिका के पिता प्रसिद्ध तेरहपथी साहित्यसेवी श्री गुलाब चन्द जी लूनिया अपनी सुयोग्य पुत्री से चरित्रनायिका की खुले दिल से प्रशंसा किया करते थे। उनका कहना था कि "हमने उनके जैसी प्रभावशालिनी शास्त्रज्ञा एव मधुर भाषिणी अन्य साध्वी नही देखी।" उनकी सवा सौ से भी अधिक साध्वी शिष्याएँ थी। उनके समय मे खरतरगच्छ सम्प्रदाय को जो श्रीवृद्धि हुई, वह चरित्रनायिका के दिव्य गुणो की ओर ही सकेत करती है। यश सौरभ ही सबल बना पूज्य गुरुवर्याओ से निरन्तर उनके विषय मे सुनने को मिलता ही था, जिज्ञासा बढ़ने लगी। ज्ञात हुआ कि चरित्रनायिका की प्रमुख शिष्या तथा लेखिका की गुरुवर्या

सुवर्णश्रीजी महाराज साहिबा की प्रेरणा से जोधपुर के कवि पं० नित्यानन्द शास्त्री ने इस चरित्र को महाकाव्य के रूप में संस्कृत भाषा में लिखा था, पर यह काव्य अपूर्ण था। सुयोग से इसके अनुवाद की प्रति भी उपलब्ध हो गयी, पर उसकी भाषा ठीक नहीं थी। अतः लेखिका ने दो वर्ष के अथक परिश्रम से असम्बद्धता तथा अपूर्णता को दूर कर आधुनिक शैली में राष्ट्रभाषा हिन्दी में इसका आलेखन किया।

ग्रन्थ का आरम्भ "दिव्य विभूतियों की महत्ता" से होता है जिसमें चरित्रनायिका के महत्व का उल्लेख है। 'जैन धर्म में महिलाओं का स्थान" एक विचारात्मक लेख है, जिसमें जैनधर्म की समानता के आदर्श का वर्णन है। चरित्रनायिका का पावन चरित्र ३६ शीर्षकों में विभाजित हैं, जिनमें उनके जन्म और बाल्यकाल, विवाह, वज्रपात, सत्संगति का प्रभाव, वैराग्य का उद्भव, दीक्षा महोत्सव, पवित्र जीवन के पथ पर, विविध स्थानों पर चातुर्मास, दीक्षाओं की धूम महाप्रस्थान और चरित्रनायिका के कुछ विशिष्ट गुणों का उल्लेख है। लेखिका ने चरित्रनायिका के जीवन का अंकन केवल सुने या पढ़े हुए तथ्यों के आधार पर ही नहीं किया है, वरन् उसे अपने साधु जीवन की अनुभव सौरभ से भी सुवासित कर दिया है। लेखिका के व्यक्तिगत अनुभवों के कारण वर्णन मौलिक, सम्प्रेषणीय और प्रभावोत्पादक बन गये हैं।

लेखिका का विश्वास है कि विश्वशान्ति आध्यात्मिक जागृति के बिना असम्भव है। केवल भौतिक उन्नति से ही सुख शान्ति की आशा रखना मृगमरीचिका है। आध्यात्मिक विश्वासों के बिना मानव की पशुता विकसित होकर अनर्थ की परम्पराओं को बढ़ाती है।

उत्तम साहित्य सरिता में अवगाहन करने से पाठक के हृदय में आशा, विश्वास और उल्लास की उर्मियां उछलने लगती हैं, निराशा, सन्देह और विषाद दूर भाग जाते हैं। उत्साह का समुद्र उमड़ जाता है आलस्य नष्ट होकर स्फूर्ति आ जाती है। अध्ययनशील व्यक्ति गौरवपूर्ण विचारशक्ति युक्त हो जाता है। उसमें सत्संकल्प जाग्रत रहता है। वह सदैव आत्मसम्मान को प्रधानता देता है। कभी ऐसा आचरण नहीं करता जिसे उसे अपमानित होना पड़े। उसका चरित्र पूर्ण उत्कर्ष को पहुँच जाता है। वह मानव से ऊँचा उठकर देव (महामानव) बन जाता है। मातृभूमि के प्रति कर्तव्यबोध का वर्णन करती हुई लेखिका कहती है—"जन्म भूमि या स्वदेश के प्रति जीव मात्र को सहज आकर्षण होता है। जहाँ मनुष्य जन्म लेता है, जहां की मृत्तिका में खेल कूद कर बड़ा होता है, जहां के अन्न-जल से उसके शरीर का पोषण होता है, उस स्थान के प्रति एक प्रकार का ममत्व भाव होता ही है। मातृभूमि का ऋण चुकाना प्रत्येक का कर्तव्य है। इसमें किसी का सन्देह करने का कोई कारण नहीं। यह विषय निर्विवाद है।"

एकता के महत्व का उपदेश करते हुए लेखिका ने कहा है—'एक ही धर्म के अनुयायियों में मनोमालिन्य होना, धर्म को कलंकित करना है। भगवान तीर्थंकर देवों का धर्म कषाय रहते आराधन नहीं किया जा सकता। धर्म रूपी हर्म्य में प्रवेश करने का प्रथम द्वार सम्यक्त्व है। आपने सुना होगा कि जब तक आत्मा में अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, रूप कषाय का भूत रहता है और गलत मान्यताएँ रहती हैं तब तक सम्यक्त्व रत्न की प्राप्ति नहीं हो सकती। श्रावक का पद तो सम्यक्त्वी से भी ऊँचा होता है। सम्यक्त्वी भी एक वर्ष से अधिक कषाय को रखे तो सम्यक्त्व भ्रष्ट हो जाता है। श्रावक तो कषाय रख ही नहीं सकता। यदि रखता है तो श्रावक धर्म से पतित होता है।"

संगीत कला के प्रभाव का उल्लेख करते हुए कहा है—'सचमुच, संगीत में कुछ ऐसा अद्भुत प्रभाव होता है कि मनुष्य तो क्या पशु-पक्षी भी सुध-बुध बिसरा कर तन्मय हो जाते हैं।"

मृत्यु की भयानकता तथा उसकी शाश्वतता का उल्लेख अग्रांकित शब्दों में बहुत ही हृदय-स्पर्शी बन गया है :—

'मृत्यु ! ओह ! कितना भीषण शब्द है। शब्द की भीषणता में ही अर्थ की भीषणता का विचार अत्यन्त भयावह है।"

ग्रन्थ में मार्मिक स्थलों के विवरणों का भी प्रसंगानुसार समावेश हुआ है। लेखिका ने अपने अनुभव तथा चिन्तन से ऐसे स्थलों की प्रेषणीयता को और भी बढ़ा दिया है। लेखिका ने संस्कृत, प्राकृत तथा अन्य भाषाओं के उद्धरणों द्वारा अपने विवरण को अधिक प्रभावशाली तथा प्रामाणिक बनाने का प्रयास किया है।

"पुण्य जीवन ज्योति" जैन-धर्म और दर्शन का सागर है जिसे लेखिका ने इस ग्रन्थ-सागर में उँड़ेल दिया है। प्रसंगानुसार जैन धर्म के अनेक पवित्र स्थलों तथा पूजा, अर्चना विधियों, पर्वों व उत्सवों का विस्तार से वर्णन किया गया है। अनेक रंगीन-चित्रों के संकलन से ग्रन्थ की उपादेयता और भी बढ़ गई है।

संक्षेप में "पुण्य जीवन ज्योति" जैन साधिका साध्वी का एक पावन इतिहास, जैन सिद्धान्तों आदर्शों, मान्यताओं, पर्वों और त्यौहारों का परिचय ग्रन्थ और परम साध्वी पुण्यशालिनी स्व. पुण्यश्री जी महाराज का पावन चरित्र है।

महावीर जय....

[तर्ज—वीणावादिनी वर दे]

वीर महावीर की जय हो—जय हो ऽऽऽ—जय हो ऽऽऽ।
सुर नर वन्दित जग अभिनन्दित, विश्व ज्योति जय हो....॥स्थायी॥

मातृ कुक्षि में अचल हुये जब मातृ दुःख वश नियम लिया तब,
पितरौ जीवित व्रत न धरूँ अब, मातृभक्त ! जय हो...॥ १ ॥

सुरपति मन में संशय आया, सिंहासन अंगुष्ठ दबाया,
जन्मोत्सव में मेरु कंपाया, अतुलबली ! जय हो....॥ २ ॥

शैशव में आमलकी क्रीड़ा, हारा सुर पाया अति व्रीड़ा,
मेटी सब की मानस पीड़ा, अपराजित ! जय हो— ॥ ३ ॥

भ्रातृ प्रेम वश वर्ष द्वय तुम, रहे धाम पर संयम मय तुम,
उच्चादर्श प्रदर्शित कर तुम, धन्य बने ! जय हो— ॥ ४ ॥

—प्रवर्तिनी सज्जनश्रीजी म० रचित

एक बहु आयामी समग्र व्यक्तित्व
प्रवर्तिनी सज्जनश्रीजी महाराज

—*आर्या शशिप्रभाश्रीजी* (दशनाचार्य)

विश्व वाटिका अनेक सुविकसित पुष्पा से आकीण है। भिन्नाकृति के वे सुदर पुष्प अपनी मधुर सौरभ विकीण कर कण कण को सुरभित बना रहे हैं। जिसका पान कर मानव मन रूपी मधुकर पूणत आप्यायित हो रहा है।

ऐसी ही मृदु मधुर सौरभ से परिव्याप्त एव अवणनीय वाटिका है परम श्रद्धेया गुरुवर्य्या प्र श्री सज्जनश्रीजी म सा का जीवन। जिसमे अनेकानेक सुगधित गुणपुष्प पूणत सुविकसित हैं, जिसकी मादक गध मानवरूपी भ्रमरगण को आकर्षित करने मे सवथा सक्षम है। चूंकि उन पुष्पो म सहज सुगध का वर्षण है, सुदरता का उन्मुक्त दशन है व चुम्बकीय शक्ति का आकषण है। इसीलिए मानव मधुकर सहज, सरल, नि शक व नि सकोच रूप से उन पुष्पो के प्रति आकर्षित हो जाते हैं।

यद्यपि पूज्या प्रवर्तिनी महोदया की जीवन वाटिका के उन सम्पूण गुण पुष्पो का आलेखन करना मुझ जसी सामान्य मन्द बुद्धि के बाहर है तथापि लेखनी आकर्षित कर रही है निम्नाकित कतिपय गुण पुष्पा का वणन करने हेतु।

> □ जिसमें नारी सलभ मदुता, वत्सलता, सेवा समपण और सरलता के दशन होते हैं तो नर स्वभावी साहस, सकल्पशीलता, दूरदर्शिता और विवेकप्रवणता भी परिलक्षित है

(१) विनय—सयमी जीवन मे जिन सद्गुणो की अनिवाय आवश्यकता है उनमे विनय एक प्रमुख गुण है। प्रभु महावीर ने भी "विणय मूलो धम्मो" की उक्ति से विनय को धम का मूल कहा है। साधना पथ के पथिक के लिए विनय का प्रतिपक्षी अभिमान काले सपवत् महान् भयकर है जिस साधक को इस सप ने डस लिया वह साधना की मधुर सुधा का पान नही कर सकता। अहकार और साधना एक ही स्थान पर वसे ही नही रह सकते जैसे अधकार और प्रकाश। वैनयिक गुण प्राप्त करने से पूव अभिमान के विप वृक्ष को जडमूल से उखाड कर फकना होगा।

श्रद्धेया गुरुवर्य्याश्री नम्र ही नही अति विनम्र हैं। आपश्री 'पुण्य श्रमणी मडल' की प्रवर्तिनी है, अनेक उपाधियो से विभूपित हैं तथा आगमज्ञान की सतत् प्रवहमान स्रोतस्विनी हैं। तथापि विनय की प्रतिमूर्ति है। उत्तराध्ययन सूत्र के अनुसार "इगियागार सम्पन्ना" महान् प्रज्ञावती है। गुरुजनो एव

पूज्यजनो के मात्र इगित आकार को समझकर तत्क्षण कार्य करने की क्षमता सम्पन्न है। आपश्री के जीवन मे विनय का सर्वोपरि स्थान है चूँकि विनीत साधक ही सिद्धि के सोपान पर चढ सकता है। एक विनय गुण के आ जाने पर अन्य गुण तो उसके अनुगामी बनकर स्वत आ जाते है।

आपश्री मे यह गुण बाल्यकाल से ही विद्यमान है। इसीलिए न चाहते हुये भी माता-पिता की इच्छा को प्रधानता देकर गृहस्थ जीवन मे प्रवेश किया व समय की परिपक्वता व अन्तरायोदय नष्ट होने पर बाल्यकालीन आपकी उस आन्तरिक संयम भावना को साकार रूप देने का सौभाग्य भी मिला।

आपश्री के संयमी जीवन को लगभग अर्द्ध शतक पूर्ण होने जा रहा है। इस दीर्घकालीन संयमी जीवन मे आपने अपने गुरुजनो की आज्ञा की कभी यत्किंचित् भी उपेक्षा नही की। पूज्यजनो की आज्ञा के प्रति आप त्रियोग मे पूर्णत समर्पित थी व आज भी है। मुझे याद है कि पालीताना चातुर्मास के पश्चात् गुजरात की प्राय यात्रा सम्पूर्ण कर एक बार तीर्थाधिराज के दर्शन हेतु पुन. पालीताना आये थे तथा शारीरिक अस्वस्थता के कारण कुछ दिन वहाँ स्थिरता की पश्चात् अत्यधिक गर्मी के कारण द्वितीय चातुर्मास भी वही करने की मन स्थिति बना चुके थे, किन्तु जैसे ही भूतपूर्व प्र. महोदया स्व. श्री विचक्षणश्रीजी म सा को जब ज्ञात हुआ तो उन्होने बडी आत्मीयता से लिखा कि आप पालीताना तो चातुर्मास कर ही चुकी हैं जामनगर वालो की कई वर्षो मे विनती है अत इस बार आप वही चातुर्मास करे। शासन प्रभावना का अच्छा लाभ मिलेगा। भयकर गर्मी थी फिर भी बिना किसी ननुनच के आपश्री ने आदेश स्वीकार कर जामनगर की ओर प्रस्थान कर दिया। मै देखती ही रह गई। पूज्याश्री जेठ मास की इतनी भयकर गर्मी मे कैसे विहार करेंगी ? साथ ही यह भी देखा कि पूज्या प्र श्री के आदेश को मानकर आप कितनी अधिक प्रसन्न थी। चूँकि आपने अपने जीवन मे सदा बडो का विनय किया है व उनकी प्रत्येक आज्ञा को हर परिस्थिति मे हर सम्भव मानने को प्रतिक्षण प्रतिपल तैयार रही है। ऐसे एक नही अनेक सस्मरण है आपश्री के जीवन के जिन्हे मैंने प्रत्यक्ष देखे है।

पूज्यजनो के विनय मे तो आपश्री ने कभी उपेक्षा की ही नही पर छोटो के प्रति या गृहस्थ श्रावक-श्राविकाओ के प्रति भी कभी किसी प्रकार का असद् व्यवहार नही किया व अन्य किसी को करते देखती तो बड़े ही स्नेहयुक्त शब्दो मे आगम की स्मृति दिलाती हुई समझाती है—'न साहूण आसायणाए न साहूणीण आसायणाए न सावयाण आसायणाए न सावियाण आसायणाए। यही कारण है कि सयमी जीवन का अधिकांश समय गुरुवर्य्याश्री की सेवा मे आपश्री ने जयपुर मे ही व्यतीत किया व वर्तमान मे भी जयपुर संघ के अत्याग्रह से ५ वर्ष से तो 'स्थिरवास' रूप मे विराज रही हैं। तथापि आपश्री जयपुर श्री सघ की अटूट श्रद्धा का केन्द्र बनी हुई हैं।

(२) सरलता की प्रतिमूर्ति—प्रभु महावीर ने सरलता को साधना का प्राण कहा है। चाहे वह गृहस्थ साधक हो या ससार-त्यागी। दोनो के लिए सरलता, निर्दम्भता, निष्कपटता आवश्यक ही नही अनिवार्य है। कहा भी है—"सोही उज्जुयभूयस्स धम्मो सुद्धस्स चिट्ठई। जो ऋजुभूत है, सरल है वही धर्म साधना कर सकता है और सिद्धि के अन्तिम सोपान को भी वही साधक प्राप्त कर सकता है।

पूज्यवर्या श्री का नख से शिख तक सम्पूर्ण जीवन सरल निर्दम्भ व निष्कपट है। आपश्री का आन्तरिक व बाह्य जीवन सर्वथा सरल है—वाणी मे सरलता, विचारो मे सरलता, यहाँ तक कि जीवन के प्रत्येक व्यवहार मे प्रत्यक्ष रूप से सरलता परिलक्षित होती है। न कही दुराव है, न कही छिपाव। आपश्री सदा यही कहती हैं कि सरल बने बिना सिद्धि प्राप्त नही हो सकती। यथा—भयकर विषधर को भी बिल मे जाने के लिए सरल बनना पडता है। वैसे ही साधकको भी मुक्ति में जाने के लिए निष्कपट, पर निर्दम्भ, सीधा,

सरल बनना पड़ता है। मुमुक्षु साधक के लिए आवश्यकता है चरित्र की, चातुर्य की नही, सम्यक्आचार की जरूरत है ममलकृत वाणी की नही, कार्य करने वाले की आवश्यकता है न कि विवरण देने वाले की किन्तु कही कही साधक के जीवन मे भी बहुरूपियापन देखने को मिलता है जो उसकी साधना म विक्षेप उत्पन्न करने वाला है। जिससे सिद्धि तो अतिदूर है ही पर मानवता की सोपान भी कोसा दूर रह जाती है। पर पूज्याश्री इनसे सर्वथा अछूती हैं, बहुत दूर हैं। आपश्री का जीवन तो "जहा अन्तो तहा बाहिं" अर्थात् जैसा अन्दर है वैसा ही बाहर है, कथनी करणी के अनुरूप है। उपर्युक्त बात छोटो की भी सहज ही स्वीकार कर लेती हैं। अपनी बात मानने व मनवाने म यत्किंचित् भी हठाग्रह नही है। आज आप इतने बडे पद पर आसीन है फिर भी वही सरलता, वही सौम्यता है। उसमे किंचित् मात्र भी अन्तर नही आई वृद्धिगत ही है अहम्‌रहित सरल जीवन ही अहम् पद का प्राप्त कर सकता है।

(३) सहिष्णुता की सरिता—साधकजीवन स्वर्ण व चन्दन के समान होता है। यथा सोने का ज्यो-ज्यो आग म तपाया जाता है त्यो त्यो अधिक शुद्ध व चमकदार बनता है। चन्दन को जितना अधिक घिसा जाय उतनी ही अधिक महक आती है। वसे ही साधक के जीवन म जितने अधिक कष्ट आते हैं उतना ही उसमे और अधिक निखार आता है। और अधिक उज्ज्वल व प्रशस्त बनता है उसका जीवन।

प्रत्येक मानव के जीवन मे अनुकूल प्रतिकूल प्रसग सदा आते ही रहते हैं। पूज्याश्री ने भी अपने जीवन म अनेक बार ऐसे कटु मधुर अनुभव किये पर उनम सदा तटस्थ रही है।

मैंने अपने दीर्घकालीन सयमी जीवन के सयोग मे आपश्री को कभी प्रतिकूल प्रसगा मे कभी भी अप्रसन्न होते नही देखा और न ही कभी यशकीर्ति, प्रशसा आदि अनुकूल परिस्थिति मे प्रसन्नता या गर्व करते देखा ऐसे समय मे आप सदा मध्यस्थ रहती है। मैं कभी पूछ लेती 'पूज्या श्री आपको प्रतिकूलता मे भी कभी नाराज होते या गुस्सा होते नही देखा, और न कभी अनुकूलता म चहरे पर मुस्कराहट।" मेरे प्रश्न का आप बडा ही गभीर उत्तर देती— 'यह जीवन तो सुख दुःखमय है और ससार फिल्म हाल के समान है, जहाँ प्राय ऐसे प्रसग आते ही रहते हैं उन प्रसगो म क्या हँसना, क्या रोना क्या प्रसन्न होना क्या अप्रसन्न होना। इन प्रसगा मे साधक का बहना नही है अपितु ज्ञाता द्रष्टा बनकर हर स्थिति को निरपेक्ष भाव से देखना है। जीवन व्यवहार म कभी किसी से मन मुटाव कहा सुनी हो जाये तो इस उक्ति से "कहना नही सहना सीखो' से मन को समझाना है—इस सर्वोत्कृष्ट सूत्र का जीवन के प्रत्येक व्यवहार म उतारना है।" वास्तव मे पूज्याश्री की न केवल जिह्वा ही अपितु जीवन भी बोलता है। अनुकूल प्रतिकूल प्रसगो म तो आपश्री पूर्णत तटस्थ हैं ही किन्तु भयकर शारीरिक वेदना म भी पूर्णत समता के दर्शन होते हैं आपश्री के जीवन म। २ वर्ष पूर्व ब्लड की उल्टिया व दस्त लगने पर आपश्री की उस अपूर्व समता के हम लोगो ने व जयपुरवालो ने प्रत्यक्ष दर्शन किये। जड-चेतन के भेद को आपश्री ने न केवल जिह्वा स समझा है अपितु प्रसग आने पर जीवन मे पूर्णत उतारा भी है।

इस प्रकार सहिष्णुता की पराकाष्ठा है आपश्री का यशस्वी तेजस्वी जीवन।

(४) दयार्द्र हृदया—'दया धर्मस्य जननी' अर्थात् दया धर्म की जननी है मा है। जिस प्रकार माँ के बिना जीवन शून्यवत्-सा महसूस होता है, उसी प्रकार दया के बिना मानव मात्र आकृति से मानव है प्रकृति से नही। जीवन म मानवता लाने के लिए दया देवी की पूजा करना, रोम रोम मे उसको स्थान देना आवश्यक ही नही परमावश्यक है फिर साधक का तो यह अनिवार्य आवश्यक गुण है। प्रति

क्षण प्रतिपल उसके हृदय मे करुणा का स्रोत छलकता रहे रोम-रोम मे अनुकम्पा के भाव निरन्तर प्रवाहित होते रहे। चूँकि दया साधना का नवनीत है, मन का माधुर्य है, उसकी सरस जलधारा में साधक का हृदय उर्वर बनता है और सद्गुणो के कल्पवृक्ष फलते-फूलते हैं। किसी ने कहा भी है—

'सन्त हृदय नवनीत समाना'". पर मैंने देखा सन्तजीवन नवनीत अर्थात् मक्खन से भी विलक्षण होता है। नवनीत-स्वताप से द्रवित होता है जबकि सन्त जीवन पर-दुःख मे—परताप मे द्रवित होता है।

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि....सन्त स्वकष्टो को सहन करने मे वज्र से भी कठोर बन जाता है, भयकर विपत्तियो मे भी मुस्कराता रहता है किन्तु दूसरो के दुःखो को देखकर पुष्प से भी कोमल बन जाता है, मोम के समान उसका हृदय अत्यधिक द्रवित हो जाता है।

हमारी करुणामयी गुरुवर्य्याश्री का हृदय भी करुणारस से छलकता हुआ सरोवर है जिसमें प्राणिमात्र के प्रति दया, करुणा, अनुकम्पा के भाव भरे हुए हैं। उनके कष्टो को देखकर आपका हृदय अत्यन्त द्रवित हो उठता है। तथा तत्क्षण उनके दुःख को दूर करने के लिए, तत्पर हो जाती है। अपने-पराये के भेद से रहित आपके हृदय मे मानव मात्र के प्रति वात्सल्य का स्रोत निरन्तर प्रवाहित रहता है—जिसमे निमज्जित हो मानव मन अत्यन्त आह्लादित हो जाता है। असमर्थ दीन-प्राणियो को सहायता दिलवा-कर उनके दुःखो को दूर करने का निरन्तर सफल प्रयास करती रहती हैं।

(५) मधुर व्याख्यातृ—आपश्री की प्रवचन शैली अनूठी, अजोड़ व अनुपम है। पार्वत्य कंदरा से निर्गत कल-कल निनाद करती जलधारा की तरह आपके मुख से निसृत अमृत वाणी का प्रवाह श्रोताओ को पूर्णतया अपने मे बहा ले जाने मे सक्षम है। आपश्री की वाणी में अनूठा जादू व विचित्र चमत्कार है। आपश्री गभीर से गभीर विषय का जिस समय प्रतिपादन करने लगती हैं तो श्रोता मत्रमुग्ध से भाव-विभोर हो आपाद मस्तक उस भाव गंगा मे डूब जाते हैं तथा एक मन एक रस होकर तादात्म्य की अनुभूति करने लगते हैं।

आपश्री के प्रवचन आगमिक विषयो पर होते है। जिनमे नैतिकता, बौद्धिकता, विद्वत्ता, प्रभावोत्पादकता व हृदयस्पर्शिता के सहज दर्शन होते हैं।

वस्तुत. आपश्री के प्रकाण्ड पाण्डित्य व विद्वत्ता की सौरभ जो चारों ओर प्रसृत हो चुकी है वह जन-जन के मानस को अनुप्राणित व अनुप्रेरित कर रही है।

(६) कार्यक्षमता—आपश्री की कार्य क्षमता प्रत्येक क्षेत्र मे दर्शनीय व अनुकरणीय है। आम लोग सभी क्षेत्रो मे सम्पूर्ण कार्यो में निपुण नही होते। कई पढ़ने में आगे हैं तो कई तपस्या मे, कई घरेलू कार्यो में तो कई अन्य-अन्य कार्यो मे।

पर आपश्री की कार्यक्षमता अजोड़ है, अद्वितीय है। कोई कार्य ऐसा नही है कि जिसमे आप विशेषज्ञ नही। यद्यपि आप रईस माता-पिता की सुपुत्री व जयपुर के दीवान खानदान की बहू हैं। अतः उस समय अर्थात् आपके गृहस्थ जीवन मे शायद ही कभी पैदल चलने का अवसर आया होगा। और न ही कभी दीक्षा लेने से पूर्व किसी प्रकार के विचार आये कि कैसे पैदल चलूँगी इतने बड़े घराने की बहू हूँ तो कैसे घर-घर जाकर आहार-पानी आदि लाऊँगी। किन्तु फिर भी दीक्षा लेते ही सर्वकार्य आपश्री इतनी दक्षता से व इतनी रुचिपूर्वक करती थी कि देखने वालों को आश्चर्यमिश्रित आभास होता कि वस्तुत आप सभी कार्यों मे कितनी माहिर हैं। न कोई संकोच है न कहीं शर्म—प्रत्येक कार्य

को सहजतया पूण कर लेती हैं। इसीलिए आपश्री की गुरु बहिनें व गुरुवर्य्या श्री फरमाया करती थी— कि शिष्या हो तो सज्जनश्रीजी जैसी हो जो अकेली ही अनेको काय सँभाल लेती हैं। कोई काय इनसे अछूता नही, सभी मे पूणरूपेण पारगत हैं।

(७) सेवापरायणता—सेवा शुश्रूषा का गुण हर कोई मे महज सम्भव नही है और न ही हर प्राणी इसके मूल्य को आक सकता है। मानव स्वय के हृदय म उदभूत चचल मनोवृत्तियो का बलिदान करके ही इस अद्भुत गुण को सम्प्राप्त कर सकता है। सामान्य मदबुद्धि मानव सेवा के अप्रमेय मूल्य का मूल्याकन नही कर सकता और सहज प्राप्त गुण से कोसा दूर रह जाता है। चूँकि वह समझता है,सेवा करना छोटो का काय है, पढे लिखे व्याख्यान वाचस्पति व रईसो का काय नही है।

किन्तु आप जैसी प्रज्ञावती इसके अनुपम गुण से सवथा परिचित हैं इसीलिए सैकडा अन्य कार्यो को गौण समझकर सेवा को प्रथम स्थान दती हैं। मैंने स्वय न प्रत्यक्ष देखा है कि पूज्येश्वरी न अपने पूज्यजनो की व गुरुवर्य्याश्री की सेवा कितनी दत्तचित्त स की है। अपन गुरु की सेवा तो प्राय प्रत्येक शिष्य करता ही है किन्तु आप अन्य पूज्यजना की सेवा भी निरपेक्ष भाव से बडी रुचिपूवक करती हैं। चूँकि आपन कभी किसी को अय समझा ही नही। मैं सबकी हूँ व सब मेरे है अर्थात् वसुधव कुटुम्बकम् की भावना से ओतप्रोत है आपश्री का विशाल हृदय। पूज्यजना के प्रति पूज्यभाव तो रोम रोम मे भरा है पर छोटा के प्रति वात्सल्य का निझर भी सदा ही झरता रहता है।

आपश्री के महान् पुण्योदय से व परम सौभाग्य से प्राय सदा आपका बडा की निश्रा सम्प्राप्त होती रही जिसस आपको दोहरे लाभ का सहज ही सौभाग्य प्राप्त हो जाता। प्रथम तो उन पूज्यवर्य्याओ की आत्मीयतापूर्ण कृपा दष्टि की अविरल वृष्टि व उनकी सेवा का अप्रतिम अद्भुत लाभ। आपश्री को आपकी बौद्धिक व शारीरिक क्षमता से सहज ही सुलभ हो जाता है व अब भी यथाक्षमता सदा तयार रहती हैं।

(८) प्रभावशालिता—आपश्री का यशस्वी, तेजस्वी व्यक्तित्व अद्भुत प्रभावशाली है जो गहराई मे सागर से भी अधिक गम्भीर व ऊँचाई म हिमगिरि से भी अधिक उत्तुग है। ऐसे व्यक्तित्व के विषय मे कुछ लिखना सूय को दीपक दिखाने के समान है। अपन विचरण काल म आपश्री जहाँ भी पधारी, जिनके भी मध्य रही या जिस किसी से भी सम्पक रहा अथवा किसी से भी सम्बध बना वह आपके प्रकाण्ड पाण्डित्य व विद्वत्ता के साथ साथ सहज सरलता, सौजयता सौम्यता, उदारता, विशालता आदि गुणो की सौरभ से सुरभित हुए बिना नही रहे। आपश्री से किसी न कभी कोई अशान्ति या परेशानी का अनुभव नही किया अपितु उसे सदा शान्ति, प्रसन्नता व आनन्दातिरेक की अनुभूति होती रही है। आपश्री के अधिकाश चातुर्मास जयपुर मे ही हुए हैं व वतमान म भी शारीरिक अस्वस्थता के कारण ५ वष से जयपुर मे ही विराज रही हैं फिर भी किसी को आपश्री स कोई शिकायत नही है अपितु हर व्यक्ति हर समाज पर आपके दिव्य अद्भुत, सरल, सुन्दर व्यक्तित्व की अमिट छाप सदा के लिए विद्यमान है। ऐसा अद्भुत प्रभावशाली जीवन है आपश्रीजी का जिसमे भी प्रभावित होकर अनक बालिकाओ न युवावस्था मे पाँव रखन से पूव ही आपश्री का शिष्यत्व स्वीकार कर लिया जो आज त्याग, तप सयम की आराधना के साथ-साथ अपने अध्ययन मे सलग्न है।

(९) अध्ययन—मानव जीवन के उत्थान व निर्माण मे अध्ययन अर्थात् शिक्षा का अत्यन्त महत्त्वपूण स्थान है। किन्तु वह अध्ययन शास्त्रानुकूल सम्यग् अध्ययन होना चाहिए। जिसस बुद्धि परिष्कृत व परिमार्जित होती है।

खान से निकले हुए रत्न के समान मनुष्य की वृत्तियाँ जन्म से तो असस्कृत व अपरिमार्जित ही होती है किन्तु जब उस रत्न को तराशा जाता है अर्थात् कांट-छांट सफाई की जाती है तो उसकी सुन्दरता मे चार चाँद लग जाते है उसकी चमक मानव-मन को सहज ही आकर्षित कर लेती है तथा मूल्य मे कई गुना वृद्धि हो जाती है।

तथैव—रत्न के समान ही मानव वृत्तियो का सस्कार, सुधार व परिष्कार भी अति आवश्यक है। वह हो सकता है मात्र सम्यग् अध्ययन से। उसी से उसके अन्त करण की शुद्धि होती है, विचार निर्मल और उच्च बनते है तथा योग्यायोग्य कार्य का निर्णय करने की विवेक शक्ति उत्पन्न होती है।

अध्ययनशील व्यक्ति की दुर्भावनाएँ सहज ही नष्ट हो जाती हैं तथा उसके हृदय में स्नेह, सदविवेक सहानुभूति, विनम्रता, शिष्टता, उदारता आदि अनेक सद्गुणो का आविर्भाव हो जाता है। अध्ययनरत सभी की दृष्टि मे ऊँचा उठ जाता है और उसका सर्वत्र सम्मान होने लगता है।

श्रद्धेया गुरुवर्या श्री की बचपन से ही अध्ययन की ओर अत्यधिक रुचि थी। स्कूल की पढाई भी बहुत ही दत्तचित्त होकर करती थी। पुस्तक तो सदा से आपकी जीवन साथी बनकर रही है। कोई पुस्तक हाथ मे आ जाये उसे बडी ही एकाग्रता से आप पढती हैं। फिर तो आपका ध्यान बँटता नही है। आपकी माँ साहब भी कहा करती थी कि 'सज्जनबाई' को पुस्तक मिल गई तो मानो सब कुछ मिल गया।

आज हम भी यही अनुभव करते है। आपश्री का अधिकाधिक समय अध्ययन-अध्यापन मे ही व्यतीत होता है। आपके जीवन का यह एक विशिष्ट गुण है या यो कहूँ पिताश्री से विरासत मे मिले हुए दृढ सस्कार है। पिताश्री के माध्यम से ही शास्त्राध्ययन की रुचि भी अल्पावस्था मे ही जागृत हो चुकी थी। चूँकि शास्त्रो मे विविध विषयो का ज्ञानकोश सचित रहता है। उसमें गहन शास्त्रीय ज्ञान के अतिरिक्त नैतिक शिक्षायें, धार्मिक उपदेश और आदर्श कथाएँ भी प्रचुर परिमाण मे प्राप्त होती है जिनका अमिट प्रभाव पाठक के हृदय पट पर टंकोत्कीर्णवत् हो जाता है। आप्त महापुरुषो के वाक्य धीरे-धीरे उसके जीवन में व्यावहारिक रूप धारण करके उसकी उत्कर्षता में असाधारण वृद्धि करते है। इतना सब जानती हुई आप सदा आगम शास्त्रो का अध्ययन-स्वाध्याय करती रहती हैं जिससे आपश्री का जीवन उत्कर्षता की चरम सीमा पर पहुंचने का मार्ग प्राप्त कर चुका है। शास्त्रावलोकन तो आपश्री के जीवन की अनिवार्य खुराक है ही किन्तु सद्साहित्य व इतर साहित्य भी आपसे खूब पटा व खूब मथा है। फलत भूगोल, खगोल, इतिहास आदि की प्राय सम्पूर्ण जानकारी आपश्री को है जिसकी चर्चा समय-समय पर हम लोगो व अन्यो के बीच भी होती रहती है। इतना ही नही आप देश-विदेश की सस्कृति से व वहाँ के आचार-विचार से भी पूर्णत परिचित हैं। इस विषय की बाते जब हम व अन्य लोग सुनते है तो दग रह जाते हैं कि आपश्री इतना सब कैसे जानती है? क्योकि प्रतिपादन शैली से ऐसा आभास होता है मानो आपने विदेश की यात्रा की है अथवा लगता है सब कुछ प्रत्यक्ष देखा हो। यह सब आपके सतत अध्ययन व तीव्र प्रज्ञा का ही सुफल है।

लोग तो यहाँ तक कहते है कि महाराजश्री का दिमाग तो अजायबघर की भाँति है। अथवा कोई कहता है ये तो चलती-फिरती सुन्दर व्यवस्थित लाइब्रेरी है। वस्तुत. इसमे कोई अतिशयोक्ति नही पूर्णत वास्तविकता है।

वर्तमान मे यद्यपि शरीर से आपश्री अस्वस्थ है, इन्द्रियो की क्षमता भी अल्प हो गई है पर पढ़ने के व्यसन मे कोई कमी नही आई है, भले लेटे-लेटे पढे पर पढती अवश्य है।

अध्ययन के विषय में कहा तक लिखूं ? जैसा प्रत्यक्ष देख रही हूं वैसा वर्णन करती चलूं तो एक ग्रंथ निर्मित हो जाये।

(१०) अध्यापन — अध्ययन करना जितना सहज है अध्यापन करना उतना ही कठिन। क्योंकि व्यक्ति अपनी बुद्धि से किसी भी तरह अर्थात् येन-केन प्रकारेण विषय को स्पष्ट कर लेता है और समझकर दिमाग में बैठा लेता है पर उसी विषय को जब अन्य को समझाना होता है तो उसके लिए अत्यन्त दुष्कर हो जाता है। अध्ययन करने वाला स्वयं के लिए स्वयं का इच्छाओं का त्याग करता है जबकि अध्यापन कराने वाले को पर के लिए अर्थात् दूसरों के लिए अपनी स्वयं की इच्छाओं का त्याग करना पड़ता है। दूसरों को पढ़ाते समय स्वयं के सन्तुलन को बनाये रखना व अध्ययनार्थी पर प्रेमपूर्वक अनुशासन करते हुए शिक्षा देना कोई सामान्य बात नहीं है। प्रकाण्ड विद्वान भी समय पर उपयुक्त भाव भाषा के अभाव में योग्य धैर्य न रख पाने से अपना सन्तुलन खो बैठते हैं।

पर श्रद्धेया गुरुवर्या श्री अपने तीव्र एवं योग्य अध्ययन के साथ साथ अध्यापन कार्य में भी पूर्णतः निपुण हैं। आपश्री की वाणी में कहीं कोई दर्प नहीं। अनुशासन की सत्ता नहीं, व्यवहार में बड़प्पन की झलक नहीं। सामान्य बोलचाल की भाषा में अनेकों उदाहरणों से विषय को स्पष्ट कर विद्यार्थी को सन्तुष्ट करने की आपश्री में अद्भुत शक्ति है।

अध्ययनार्थी को संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, गुजराती, व्यावहारिक व क्लासीकल शिक्षा से लेकर आगमिक ज्ञान पर्यन्त सम्पूर्ण अध्ययन कराने के लिए सदा तैयार रहती हैं। यद्यपि आपश्री ने किसी प्रकार की कोई परीक्षा देकर डिग्रियां प्राप्त नहीं की हैं तथापि योग्यता इतनी अधिक है कि प्रथमा से लेकर शास्त्री, आचार्य, एम. ए., एम. फिल आदि परीक्षाओं के छात्र छात्राओं व साधु-साध्वियों को आपने पढ़ाया है व वर्तमान में भी पढ़ा रही हैं तथा उनकी शंकाओं का बहुत ही सुन्दर ढंग से समाधान करती हैं। अन्य गच्छ की श्रमणीवृन्द भी शास्त्र वाचन हेतु निःसंकोच आपश्री के पास आती रहती हैं और आपश्री भी उदार हृदय से उन्हें वाचना प्रदान करती हैं। आप श्रुत स्थविरा व पर्याय-स्थविरा तो थी ही पर अब वय स्थविरा की श्रेणी में भी पूर्णतः प्रवेश कर चुकी हैं और शरीर पर रुग्णता ने आधिपत्य स्थापित कर लिया है अतः शारीरिक क्षमता अल्प हो गई है। फिर भी अध्यापन रुचि ज्यों की त्यों बनी हुई है। यह हमारा परम सौभाग्य है।

(११) तप के प्रति अनन्य श्रद्धा — तप श्रमण-जीवन का अनन्य आभूषण है। शास्त्रों में अहिंसा संयम तप को उत्कृष्ट धर्म मंगल कहते हुए तप के महात्म्य को निर्विकल्प स्वीकार किया है। साधना में रत्नत्रय अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यग्चारित्र की आराधना के साथ ही सम्यक्तप का समावेश साधक की साधना में चार चाँद लगा देता है। इन चारों की सम्यग् साधना में ही साधक अविनश्वर आत्मदर्शन अर्थात् स्वरूप की प्राप्ति कर सकता है।

श्रद्धेया पूज्याश्री इस तथ्य को पूर्णतः हृदयंगम कर चुकी हैं। इसीलिए आपश्री के उद्गार आपकी कृति के माध्यम से स्पष्ट व्यक्त हो रहे हैं—'तप संयम रमणता ये ही तो हैं श्रमणता '

आपश्री के जीवन में त्याग तप, संयम की त्रिवेणी निरन्तर प्रवाहमान है जो आपकी दैनिक क्रियाओं में व उपदेशों में स्पष्टतः दृष्टिगोचर होती है। आपश्री ने अपने ४७ वर्ष के दीर्घकालीन संयमी जीवन में व उससे पूर्व गार्हस्थ्य जीवन में अनेक प्रकार की तपस्यायें की। यथा—वर्षी तप, उपधान, मासक्षमण, नवपद, बीसस्थानक आदि। प्रायः देखा जाता है—तपस्विया की प्रकृति अक्सर उग्र हो

जाती है पर आपश्री इसकी अपवाद है। आपके शान्त स्वभाव का तो क्या वर्णन करूँ वह तो अवर्णनीय है। आपश्री की गुरु वहिने फरमाया करती थी कि 'सज्जन श्रीजी वास्तव मे सज्जन ही है।'

तप, त्याग व सयम निष्ठता के लिए आपश्री हमें सदा प्रेरित करती रहती हैं। चूँकि तप, सयम की रमणता मे ही श्रमणत्व निहित है। मुझे तो जन्मदातृ माँ से भी अधिक आपश्री का असीम वात्सल्य सम्प्राप्त हुआ है। चूँकि मात्र १० वर्ष की अल्पायु मे ही मुझे आपश्री के चरणो के सन्निकट रहने का सौभाग्य प्राप्त हो गया था। तव मैं सर्वथा मिट्टी के लौंदे के समान थी। कुम्भकारसम पूज्याश्री ने वर्तमान में मुझे कुम्भ का रूप प्रदान कर महान् उपकार किया है जिससे न केवल इस भव मे अपितु भव-भव मे भी मैं उस उपकार से उऋण नही हो सकती।

उपसहार—वस्तुत पूज्या प्रवर्तिनी महोदया, श्रद्धेया, गुरुवर्याश्री का जीवन त्याग, तप, शील, सयम, उदारता, सरलता, नम्रता, शिष्टता आदि अनेक गुणों से ओतप्रोत है। आपश्री मे शास्त्रोक्त, वे सभी गुण विद्यमान है जो साधक-जीवन के लिए अनिवार्य माने जाते हैं। अत आत्मविकास की सर्वोच्च श्रेणी पर जहाँ आपकी निर्मल साधना मे रत्नत्रय की आराधना पूर्णत. शुद्ध वने इसी शुभ भावना से आरुढ होने हेतु निरन्तर प्रयत्नशील हैं।

ऐसे महान् व्यक्तित्व की धनी श्रद्धेया पूज्याश्री के लिए जितना लिखा जाये, अल्प है। किन्तु मन्दमति मुझ अल्पज्ञा मे इतनी शक्ति कहाँ है जो आपके उन सर्वोच्च सम्पूर्ण गुणो को इस जड़ लेखनी से आवद्ध कर सकूँ। ये तो श्रेष्ठ पुष्प नही, मात्र उनकी अल्प पंखुडियो को सग्रहीत करने का असफल प्रयास किया है जिसे पढकर पाठक उपर्युक्त आपश्री के उदात्त गुणो को स्व मे लाने का यथा साध्य प्रयास करेगे।

इन्ही शुभभावनाओ के साथ—

'अद्भुत तुम्हारी साधना, अनुपम तुम्हारा ज्ञान।
नामानुरूप गुणधारिका, हो कोटि-कोटि प्रणाम।
खरतरगच्छ की शान हो, खरतरगच्छ की प्राण।
सज्जन गुरुवर्या विश्व मे, अमर आपका नाम।'

●●

खण्ड २

आशीर्वचन
शुभकामनाएं
अभिनन्दन

सन्देश-शुभकामनाएं

चेतना के हिमालय का केन्द्र है-हृदय । हृदय के उत्स से जब श्रद्धा-भक्ति-भावना का निर्झर प्रवाहित होता है तो उसमें एक अद्‌भुत सम्प्रेषण शीलता होती है, और होती है समग्र को आत्मसात् करने की जलीय तरलता, मिलन सारिता । भावनाओं के इस निर्झर का पात्रानुसार नाम कुछ भी दे दे, जैसे बड़ों के हृदय से जब लघु के प्रति भाव लहरें तरंगित होती हैं तो वे स्नेह, वत्सलता और आशीर्वचन का रूप धारण करती है तो सद्‌भाव-श्रद्धा रखने वालों की तरफ से उच्चारित कोमल भावनाएं, शुभकामना या वन्दना का परिवेष पहन लेती है । श्रद्धेय के प्रति विनम्र कृतज्ञ भाव से व्यक्त शब्दावलियां-अभिनन्दन का रूप ले लेती है ।

पूज्य प्रवर्तिनी सज्जन श्री जी का सौजन्य सुरभित स्नेह-शीतल व्यक्तित्व सभी के लिए वरेण्य रहा है । गुरुजनों का आशीर्वचन, सद्‌भावी सज्जनों की शुभ-कामनाएं और श्रद्धाशील भक्त-मानस की वन्दनांजलियाँ अभिनन्दनात्मक भावाभिव्यक्ति हमें जो प्राप्त हुई है उसी से यह अनुमित है कि यह मधुर-मिलनशील निर्मल व्यक्तित्व सबके लिए कितना आदरास्पद और भावना-भावित रहा है ।

—'सरस'
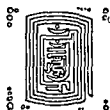
शुभकामनाएँ

[पूज्य आचार्यो, मुनिवरा एव श्रमणी मण्डल द्वारा]

आचार्य श्री जिनउदयसागर सूरि जी महाराज

खरतरगच्छीय आगममनीषी वयावृद्ध पर्याय स्थविर प्रवर्तिनी जी श्री सज्जनश्री म० सा० का अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित कर आपने शासन के रत्न को सही समय पर यथास्थान पर प्रतिष्ठित कर जो सेवा का लाभ उठाया, हम भारी प्रसन्नता हुई और "क्या कर नही सकती महिला" इस उदाहरण से मार्गदर्शन प्राप्त कर, नारी समाज आत्मकल्याण के लिये अग्रसर बने यही शुभभावना।

प्रवर्तिनीश्री जी का जीवन ज्ञान दर्शन चारित्र रत्नत्रय की आराधना मे सलग्न है और आप सतत इस पथ पर शुभ भावपूर्वक बढती रहें, यही शुभेच्छा है। □

आचार्य श्री विजय इन्द्रदिन्न सूरि जी म

प्रवर्तिनी महोदया साध्वी श्री जी म० से मेरा सम्पर्क साधनाकाल के प्रथम वर्ष से ही हो चुका है। जब मैं शान्त तपामूर्ति आचार्य श्री विजयसमुद्र सूरीश्वर जी म के साथ बीकानेर मे था। आपका पत्र पाते ही वह सारी पुरानी स्मृतियाँ पुन ताजा हो गइ। उनकी प्रवचन शैली म वाणी की माधुर्यता के साथ-साथ ज्ञान की गहनता एव जीवन का अनुभव झलकता है। यह महाराज श्री जी की अप्रमत्त ज्ञान-साधना का ही परिचायक कहा जा सकता है। जहा जीवन म एक ओर ज्ञान-तप-सेवा एव साधना का तेज परिलक्षित होता है तो दूसरी ओर विनय विनम्रता तथा स्वल्प सीमित अर्थ गर्भित शब्दो वाली वाणी भी जीवन की पूर्णता को अभिव्यक्त करती है। इस प्रकार अनेक सद्गुणो से अलकृत प्रेरणादायी जीवन को शब्दबद्ध करना असम्भव है क्योकि कुछ न कुछ छूट जाने की सम्भावना रहती है। फिर भी छपने वाला अभिनन्दन ग्रन्थ ग्रन्थ ही नही अपितु उनके जीवन की जीवन्त स्मृतिया को अजर अमर बनाने वाला होगा। ऐसी मेरी हार्दिक शुभकामना है। □

आचार्यश्री आनन्दऋषिजी म. सा.

न+अरि=नारी, अर्थात् जिसका कोई शत्रु नही। यह नारी शब्द का शाब्दिक अर्थ है परन्तु इसका भावार्थ बहुत व्यापक है। समय-समय पर नारी ने पुरुषो को उभारा है। अपरिहार्य समय पर उसे जगाया है, चेताया है। कर्तव्य से पराड्मुख को मार्ग पर लायी है। इसीलिये भगवान् महावीर ने नारी को समानाधिकार अपने चतुर्विध सघ मे देकर उस समय की विषमता समाप्त की जिस समय नारी को हीन दृष्टि से देखा जा रहा था।

हमारे समाज मे भी चन्दनवाला की परम्परा को चलाने वाली याकिनी महत्तरा सरीखी साध्वियाँ हुई है। जिन्होने आचार्य हरिभद्रसूरि सरीखे व्यक्तियो को जैनधर्म मे दीक्षित कर अद्भुत कार्य किया था। उसी परम्परा की शृखला की एक कडी परम विदुषी प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री जी म० सा० है। उनका सक्षिप्त परिचय देखने से ज्ञात हुआ कि उन्होने एक सम्पन्न एव सस्कारी कुल में जन्म लिया, छती-रिद्धि को त्यागकर मोक्षप्रदायिनी दीक्षा-ग्रहण की और ज्ञान-ध्यान मे अपनी शक्ति लगा दी एव अनेक प्रान्तो मे विचरण कर स्व-पर का कल्याण किया। ये समन्वयवादी है। कवित्व शक्ति उनकी जन्मजात प्रतिभा है। उनके द्वारा विरचित काव्य आज भी उनकी यश कीर्ति को बढा रहा है। ऐसी गुणग्राही साध्वी जी का अभिनन्दन ग्रन्थ जन-जन का प्रेरणादायक बने। यही मेरी शुभकामना है।

☐
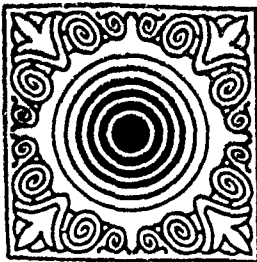
आचार्यश्री तुलसी जी म०

साधु जीवन की सफलता के चारे दरवाजे हैं—क्षान्ति, मुक्ति, आर्जव और मार्दव। इन दरवाजो में प्रवेश होने के बाद ही साधना के आनन्द का अनुभव होता है। जैनशासन में दीक्षित होने वाले साधु-साध्वियाँ भगवान् महावीर के इस प्रेरणा वाक्य को आधार बनाकर ही अपने जीवन की यात्रा प्रारम्भ करते है।

मूर्तिपूजक परम्परा में दीक्षित वयोवृद्धा साध्वी सज्जनश्री जी से हमारा पुराना परिचय है। जयपुर के तेरापथी श्रावक गुलावचन्द जा लूणिया की पुत्री होने के कारण भी उनका तेरापथ धर्मसघ के साथ निकटता का सम्बन्ध है। साध्वीजी की सहज और निश्छल मनोवृत्ति उनकी साधना की गहराई को उजागर करने वाली है। उनके सम्मान मे 'अभिनन्दन ग्रन्थ' की समायोजना साध्वी समाज की गुणवत्ता के मूल्याकन की योजना है। जैनशासन की प्रभावना मे साध्वियो का उल्लेखनीय योगदान रहा है। अभिनन्दन ग्रथ मे ऐसी घटनाओ, सस्मरणो का आकलन भी हो, जो साध्वी समाज की अर्हताओ को अभिव्यक्ति देने वाला हो।

☐
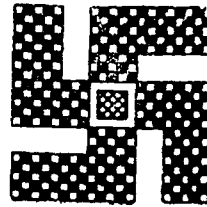
उपाध्याय श्री अमरमुनिजी म० सा०

महत्तरा प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री जी मात्र शब्दो म ही सज्जनश्री नही है अपितु निमल पुण्य भावो म भी सज्जनश्री हैं। उनके अन्तर और बाह्य दोना जीवन धाराओ का कुछ एसा दिव्य सगम है कि गगायमुना के सगम के रूप मे तीथराज प्रयाग की लोक जीवन म जो पुण्य स्थिति है, वह मन मस्तिष्क की भाव-स्मृति मे सहसा उद्भासित हो उठती है।

सौम्य, औदाय आदि सद्गुणो की पावन गगा हैं साध्वीरत्न श्री सज्जनश्री जी। इधर उधर के द्वन्द्वो से मुक्त रहकर स्वच्छ शुभ्र पवित्र भावधारा म प्रवाहित रहता है उनका आदश सयमी जीवन। वे कथ्य मे नही तथ्य म विश्वास रखती हैं। जो कहना सो करना, और जो करना सो कहना, इस केन्द्रबिन्दु पर समवस्थित है, उनके जीवन का ज्योतिबिन्दु।

प्रवर्तिनी श्री जी के द्वारा आत्मकल्याण के साथ जन-कल्याण के जो महत्त्वपूण काय यथाप्रसग होते रहे हैं, उनका एक चिरजीवी आदश इतिहास है। यह एक एसा इतिहास है, जो वतमान और भविष्य के साधक एव साधिकाओ के लिए मागदशन का पुनीत काय करता रहेगा।

मैं हृदय म प्रवर्तिनी श्री जी के अभिनन्दन का स्वागत करता हूँ। व स्वत ही अभिनन्दनीय हैं फिर भी भक्तजनो का कतव्य है कि व जन-जन के प्रतिबोध के लिए प्रवर्तिनी श्री जी के दिव्य जीवन की प्रभा अभिनन्दन ग्रन्थ के रूप मे भी प्रकाशमान करके पुण्याजन करें। □

आचार्य श्री विजय यशोदेव सूरिजी म०

आयारत्न प्रवर्तिनी साध्वी जी श्री सज्जन श्री जी का अभिनन्दन ग्रथ प्रकाशित होने वाला है तदथ आपको धन्यवाद है।

भगवान् महावीर का शासन २१००० वष तक अविच्छिन्न चलने वाला है। उसम साध्वीजी महाराज का स्व-पर-कल्याण करने मे बडा भारी योगदान रहा है। फिर भी साध्वीजी की साधना शक्ति और प्रभाव के बारे म विशिष्ट प्रकार का इतिहास लिखा नही गया है। यह बात वतमान के सभी सुधी विद्वानो को अखरती है, इसीलिये यद्यपि आजकल थोडे थोडे प्रयत्न विविध व्यक्तियो द्वारा हो रहे हैं लेकिन जोरदार और व्यापक प्रयत्न हुआ नही है। जो करने की अनिवाय आवश्यकता समझता हूँ। एसी परिस्थिति म आप लोगो ने साध्वी जी का जीवन प्रकाशित करने के लिये जो प्रयत्न उठाया, इसकी सराहना करता हूँ। आपका काय सफलता को प्राप्त करे। □

आचार्य श्री पद्मसागर सूरीश्वर जी म०

विदुषी प्रवर्तिनी साध्वी श्री सज्जनश्री जी म० सा० के अभिनन्दन समारोह के साथ ही अभिनन्दन ग्रन्थ भी प्रकाशित किया जा रहा है, जानकर मुझे बडी प्रसन्नता हुई।

जिन शासन की उनके द्वारा की गई प्रभावना एव सेवा अनुमोदनीय है। अभिनन्दन समारोह की सफलता के लिये मेरी हार्दिक शुभकामना है। □

'संत का सत्कार होना चाहिए'

□ संघ प्रमुख चन्दन मुनि

परम विदुषी प्रवर्तिनी साध्वीमतल्लिका सज्जनश्री जी को मैं बाल्यकाल से जानता हूँ। उनके पिता स्वनामधन्य श्री गुलाबचन्द जी लूनिया जयपुर के तत्त्वज्ञ श्रावकों में अग्रगण्य थे। वे कवि एवं सुमधुर गायक भी थे। उनकी प्रिय पुत्री, श्री केसरी चन्द जी की सहोदरा साध्वी सज्जन श्री से मेरा चिर-परिचय रहा है। इस वैशाखी पूर्णिमा पर उनका अभिनन्दन समारोह मनाया जा रहा है, यह जानकर प्रसन्नता हुई। क्योंकि गुणीजनों का अभिनन्दन होना चाहिए। वास्तव में वह अभिनन्दन उनका नहीं, उनके उज्ज्वल व्यक्तित्व का होता है। गौतम कुलक में कहा गया है 'रिसी य देवाय सम विमत्ता।' ऋषि देव तुल्य माने गये गये हैं। इसी विषय पर लिखा मेरा एक गीत सप्रेम स्वीकार करें—

सन्त का सत्कार होना चाहिए।
देव सा व्यवहार होना चाहिए।
सन्त को पूजो, न पूजो पंथ को।
सत्य ही आधार होना चाहिए ॥१॥
सन्त वो ही सन्त, जो निर्ग्रन्थ हो,
शान्तमन निर्भार होना चाहिए ॥२॥
नहीं नफरत स्थान पाती है वहाँ,
प्रेममय संसार होना चाहिए ॥३॥
हैं सभी अपने न कोई गैर है,
विश्व ही परिवार होना चाहिए ॥४॥
ज्योति 'चन्दन' जले पावन प्रेम की,
खुला दिल दरबार होना चाहिए ॥५॥

महोदया सज्जनश्री के जीवन उपवन में अनेक सुगुण पुष्प महक रहे हैं पर एक अनुकरणीय असाधारण गुण से मैं बहुत प्रभावित रहा हूँ वह है उनकी उपशान्त वृत्ति। जिसे अकृत्रिमता, सहजता, सरलता आदि अनेक रूपों में देखा जा सकता है। नाना नामों से पुकारा जा सकता है। वाचकमुख्य उमास्वाति प्रशमरति प्रकरण में मार्मिक उल्लेख करते हैं—

सम्यग्दृष्टिर्ज्ञानी ध्यान तपोबल युतोऽप्यनुपशान्तः।
त लभते न गुण यं प्रशमगुणमुपासितो लभते ॥२७॥

जो साधक सम्यग्दृष्टि है, ध्यान तपोबल युक्त है फिर भी यदि अनुपशान्त है तो वह उस गुण को—उस अध्यात्म की ऊँचाई को नहीं छू सकता जिसे उपशान्त वृत्ति की उपासना करने वाला छू सकता है।

अतः इस अभिनन्दन समारोह के सभी संयोजक बन्धु, विशेषतः शशिप्रभाजी आदि विनीत आर्यावृन्द भी नवतेरापथ धर्म संघ की ओर से इस मांगलिक प्रसंग पर शत-शत बधाइयाँ स्वीकार करें। □

○ गणी मणिप्रभसागर जी

प्रवर्तिनी सज्जनश्री जी महाराज जैन श्रमणी के सच्चे श्रेष्ठ स्वरूप की प्रतीक हैं। उनका व्यक्तित्व इतना बहुआयामी है कि जिस आयाम पर भी विचार करता हूँ, मन उनके प्रति श्रद्धा और आदर से विनत हो जाता है। ज्ञानार्जन और धर्म-प्रचार, काव्य रचना और साहित्य सर्जना जिन भक्ति-धर्माराधना और समाज-संघटना सभी क्षेत्रों में उनका देय महिमायुक्त है। मैंने तो उनके सान्निध्य में बैठकर कई बार ज्ञानार्जन किया है, तत्त्वचर्चा की है। उनकी मधुर और विनम्र बोली से, वत्सलतामयी ज्ञान ज्योति से ऐसा लगता है यह प्राचीन भारत की गुरुणी माता है। जिसमें एक साथ गुरुत्व और मातृत्व साकार हुआ है।

खरतरगच्छ की श्रमणी परम्परा को आपने गौरव मण्डित किया है। आपका अभिनन्दन श्रमणी वर्ग का, श्रेष्ठ साधिका और ज्ञान उपासिका का अभिनन्दन है। मैं उनके प्रति आशीर्वचन तो दे नहीं सकता, क्योंकि वे मेरी विद्यागुरुणी रही हैं। उनके ज्ञानज्योति मण्डित जीवनतत्व के आरोग्य एवं दीर्घायुष्य की कामना करते हुए उनका हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ। ●

○ मुनिश्री नगराज जी, डी लिट्

यह जानकर परम प्रसन्नता हुई कि जैन श्वेताम्बर खरतरगच्छ सघ, जयपुर विरल विदुषी प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री जी महाराज साहब का अभिनन्दन करने जा रहा है और इस प्रसग पर एक अभिनन्दन ग्रन्थ का प्रकाशन करने जा रहा है, जिसके प्रकाशन का भार धर्मप्रेमी श्री केसरीचन्दजी लूणिया व श्रीमती झमकूदेवी लूणिया आदि समस्त लूणिया परिवार ने उठाया है। अस्तु, यह एक शुभ कार्य है, और इसमे सहभागी होने वाले सभी बन्धु पुण्य पात्र है।

प्रवर्तिनी साध्वी श्री सज्जनश्री जी ने भारतीय इतिहास की धारा मे एक नया अध्याय जोडा है। वेद उपनिषद आगम, त्रिपिटक, मनुस्मृति, महाभारत, रामायण आदि सस्कृत के सभी आधार ग्रन्थ पुरुष प्रणीत हैं। नारी उपेक्षा की इस चिरन्तन शृखला को अपने वैदुष्य से तोडने वाली नारियो मे ये अग्रणी मानी जा सकती है। उनकी ग्रन्थ रचनाएँ परम मौलिक एव पुरुष विद्वानो को भी चुनौती देने वाली है।

प्रवर्तिनी श्री के विषय मे क्या लिखूं, उनकी गौरव-गाथा को शब्दो में बाँध पाना भी किसी के द्वारा शक्य नही है। ऐसी विरल प्रतिभा साध्वीश्री के अभिनन्दन मे मैं भी अपना तुच्छ अर्घ्य चढाता हूँ। ○

□ प्रवर्तक श्री महेन्द्रमुनिजी 'कमल'

भारतवर्ष ऋषि, मुनि और सन्तो का देश है। जैन बौद्ध और वैदिक धर्मधाराओ को अखण्ड बनाये रखने मे भारत के ऋषि हमेशा एक रहे हैं। ससार से आख मूँदकर गिरि-कन्दराओ मे साधना कर उन्होने जो पाया उसे जनहित मे लुटाया। ससार से उपरत हो जाने के बाद भी उन्होने अपने स्व-पर-कल्याण व्रत को, साँस के पिछवाडे छिपी मृत्यु की तरह स्मृति का अमृतबिन्दु माना है जन जन की मगल कामना को। स्व-कल्याण कामना मे तो हर किसी को आकर्षण हो सकता है मगर जो सच्चा सन्त मन लेकर सयम/प्रव्रज्या ग्रहण करते हैं वे पर पीडा का स्वपीडा मानते है। पर-कल्याण, पर मगल और पर अभ्युदय होता देखते है तभी उनका निर्मल सन्त मन मुस्कराता है।

श्वेताम्बर जैनधर्म धारा की महाप्रज्ञा महासती प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री महाराज श्वेताम्बर जैन खरतरगच्छ की महिला सन्ता मे दया, प्रेम करुणा और परोपकार की जीवत महिला सन्तरत्न हैं। ये अपने लिए वज्र के समान होने के साथ अतर् मे खोई भीगी डबी आत्मरमणता है। अपनी पीडा, अपनी असाता को कर्मोदय क्रीडागण मानती हैं। पिछले अनेक वर्षो से रोग आनामी हो आया है, उसे परम समता से झेलती/जाती है। कई वर्ष से रोगाक्रमण इन पर प्रभावी है। पर उसे भुलाकर साहित्य सृजन इत्यादि लोक मगल के कार्यो का यज्ञ अक्षुण्ण चलाया हुआ है।

जो साधक-साधिका अपने मन को सन्त बना लेते हैं वे ही साधक परपीडा, पर-मगल मे रत रह पाते हैं। उनके लिए स्व-उपसर्ग कर्म क्रीडा से अधिक कुछ नही होते।

महाप्रज्ञा साध्वीमना प्रवर्तिनी सज्जनश्री जी के अभिनदन ग्रन्थ के प्रकाशन कार्य के लिए सम्बन्धित श्रद्धानिष्ठ गृहस्थो को शताधिक साधुवाद देता हूँ—जिन्होने महासती जी के जीवन व्यक्तित्व को

उजागर करने का शुभ सकल्प किया है। इसके साथ ही पत्राचार के माध्यम से उत्साही एव श्रमनिष्ठ आर्या शशिप्रभाश्री जी एव विदुषी आर्या सम्यग्दर्शनाश्री जी की सराहना किये वगैर नही रह सकता—जिन्होंने श्वेताम्बर जैन खरतरगच्छ की तप पूत साध्वीरत्न के जीवन कार्यों से समग्र जैन समाज को सुपरिचित कराने के लिए अभिनदन ग्रन्थ प्रकाशित करवाकर एक समारोह मे उसका लोकार्पण कराने का महान् सकल्प किया है।

उक्त अभिनदन ग्रन्थ का प्रकाशन निश्चय ही एक सच्चा सन्त सम्मान सावित होगा। साध्वी रत्न की निर्मल असाप्रदायिक व्यापक दृष्टि का यह ग्रन्थ परिचायक भी सिद्ध होगा। जैनदर्शन से सम्वन्धित निवन्धो का सयोजन भी इसमे किया गया है। उसमे विविध विद्वानो के लेखो का एक जगह उपलब्ध होना भी विशिष्ट महत्वपूर्ण कार्य है। इससे अभिनदन ग्रन्थ व्यक्तिपरक न रहकर समष्टिपरक होगा।

एक वार पुनः साध्वी शशिप्रभाश्री के इस महनीय कार्य की मैं मनत अभिवृद्धि और प्रभावी होने की शुभकामना करता हूँ।

□

मुनिश्री कैलाशसागर जी म०

विदुषी साध्वीरत्न श्री सज्जनश्री जी का अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है, जानकर प्रसन्नता हुई।

साध्वीश्री का स्वास्थ्य स्वस्थ रहे। दीर्घायु वन शासन सेवा करें, गुरुदेव से प्रार्थना व शुभाशीर्वाद है।

□

○ मुनिश्री रूपचन्द जी महाराज

(दिल्ली)

प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री जी म० सा० के अभिनन्दन का समाचार जानकर अतीव प्रसन्नता हुई। साध्वीश्री जी से मेरा निकट परिचय राजगिरि पावापुरी चातुर्मास मे हुआ।

हम मुनिगण श्वेताम्वर कोठी, राजगिरी में ठहरे हुए थे। चातुर्मास का प्रारम्भ हुआ नहीं था। साध्वीश्री का राजगिरी आगमन हुआ। वे हमारे स्थान पर पधारी। वरिष्ठ साध्वी को सामने देखकर वार्तालाप के लिए मैंने अपना आसन जमीन पर विछाने के लिए कहा। तभी साध्वीश्री ने कहा—यह कैसे हो सकता है? आपको पट्ट पर ही विराजना होगा। मैंने वहुत कहा—आप वरिष्ठ हैं, आगमज्ञा है, आपका सम्मान चारित्र और श्रुत का सम्मान है। किन्तु साध्वीश्री ने मेरी एक भी नहीं सुनी। तुरन्त अपना आसन विछाकर वे सामने विराज गई। आपकी अकृत्रिम नम्रता के प्रति मैं मन ही मन नत-मस्तक था।

भगवान् महावीर के पच्चीसवे निर्वाण समारोह मे आपको सदा प्रचारलिप्सा में दूर मौन भाव से शासन की सेवा मे रत पाया। एक विनय-शील-सम्पन्न, सहज-शान्त तथा मौन सेवारत साध्वीश्री का सम्मान पूरे साध्वी समाज का सम्मान है। श्री जैन श्वेताम्वर खरतरगच्छ संघ इसके लिए वधाई का पात्र है।

□

○ श्री कुशलमुनिजी महाराज

रत्नो की गुलावी नगरी जयपुर में जन्म प्राप्त कर भौतिक रत्नों में न लुभाते हुए, आपने आध्यात्मिक पच रत्न अहिसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य एव परिग्रह को अपनी पारखी नजरो से परखकर अपने जीवन को धर्ममय वनाया।

दीक्षा ग्रहण करके, इस अमूल्य मानव-जीवन के महत्व को समझकर, साधना के मार्ग पर चलकर

साधक के गुणो को विकसित किया। उन्ही के उपदेश, उन्ही का आचरण जन मन का प्रभावित ही नही करता अपितु अन्तर् विकास की भावना भी उत्पन्न करता है। ये सभी गुण सज्जनश्री जी म विद्यमान हैं।

इनका जीवन इनके नाम के अनुरूप ही है। आगम, द्रव्यानुयोग, संस्कृत जसे कठिन विषया की पूणतया ज्ञाता होने के साथ ही गम्भीरता सरलता, स्पष्ट वक्ता आदि अनेक गुणा से मंडित उनका जीवन पुष्प की सौरभ के समान आज भी जन मानस म छाया हुआ है।

कहा भी है जा साधु-साध्वी निर्दोष माग पर चलते हैं तथा निष्काम होकर दूसरे मनुष्या को भी इस सत्य माग पर चलात हैं व खुद ता भव सागर से तरते है साथ ही दूसरे प्राणिया को भी भवसागर मे तारने म समथ हाते हैं। ऐसे सन्ता को समाज भुला नही सकता है।

ऐसी ही प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री जी का जा 'अभिनन्दन ग्रन्थ" प्रकाशित हो रहा है, वह सघ के लिए बडे ही हष का विषय है।

○

☐ श्रीजयानन्दजी मुनि

(सुशिष्य गणिश्री बुद्धिमुनि जी)

जिन्हाने राजस्थान की राजधानी जयपुर नगर म जन्म लेकर इस धमभूमि से धमसस्कार ग्रहण करके युवावय म ससार के भौतिक सुखा को तिला जलि देकर प्रभु महावीर स्वामीजी के माग का अगीकार किया।

जो साधनसम्पन्न परिवार के थे फिर भी *जिन्हाने ज्ञानगर्भित वैराग्य द्वारा चारित्रमाग* अगीकार करके अपने परिवार, जन-समाज एव खरतरगच्छ को गौरवशील किया।

जो आगमप्रज्ञ है, द्रव्यानुयोग जिनका प्रिय विषय है। अपनी असाधारण ज्ञान प्रतिभा द्वारा द्रव्यानुयोग जसे कठिन ग्रन्था का भी बाल जीवा के लिये सुलभ भाषा म अनुवाद किया।

ऐसी महान विदुषी प्रवर्तिनी पद से विभूषित स्वनामधन्या साध्वीजी सज्जनश्री जी का अभिनन्दन विशेषाक प्रगट करके जयपुर जैन सघ बहुमान कर रहा है, इस की हमे परम खुशी है।

जिनेश्वर प्रभु से प्राथना है कि साध्वीजी चिरायु हो और जन सघ एव खरतरगच्छ की सेवा करते करते अपनी आत्मा का भाव मगल करें।

○

☐ प्रवर्तिनी श्री जिनश्रीजी म० सा०

वयोवृद्धा, साध्वी श्रेष्ठा, ज्ञानध्यानमग्ना, प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी म सा ! मैं साशीर्वादपूवक लिखना चाहती हूँ कि आपका जो गौरवग्रन्थ निकल रहा है वह अत्यन्त समुचित आयोजन इसलिए है कि यह गौरव केवल आपका नही समग्र जैन साध्वी समाज का है। जन शासन का है। आपने जिस ढग से जप तप युक्त ऊँचे आध्यात्मिक जीवन को अपनाया है, जिस एकाग्रवृत्ति से ज्ञान साधना की है और विशाल श्रावक समाज म विशाल धर्मप्रेरणा जगायी है वह अनूठी है। भूरि भूरि प्रशसायोग्य है। अत मैं आपको अत करणपूवक शाबासी देती हुई आपका अभिनन्दन करती हूँ तथा एसी हार्दिक शुभभावना व्यक्त करती हूँ कि आप प्रगति पथ पर दीघकाल तक अक्षुण्णरूप से आगे बढती रहो। ○

□ साध्वी प्रमुखा कनकप्रभाजी

जैन श्रमणी का जीवन त्याग-तपस्या-संयम-सेवा की चतुर्मुखी ज्योति है, वह पवित्रता और प्रशम रस की स्रोतस्विनी है। युग-युग से मानव को जीवन की ऊर्ध्वगामिता का सन्देश सुनाती आई है श्रमणी।

श्वेताम्बर मूर्तिपूजक परम्परा में खरतरगच्छ परम्परा की प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी महाराज का जीवन भी सयम की दीर्घ साधना का जीवन्त इतिहास है। तेरापथ परम्परा के साथ उनका बहुत ही नजदीकी पारिवारिक सम्बन्ध रहा है। आपके सौजन्य और सरलता से हम सभी सुपरिचित हे। ऐसी समत्व साधिका विदुषी श्रमणी का अभिनन्दन जैनत्व की गरिमा को अवश्य मण्डित करेगा।

○

□ आचार्य श्री चन्दनाजो

(वीरायतन)

साध्वीरत्न सौम्यमूर्ति प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री जी की मधुर-स्मृति मन-मस्तिष्क पर सहसा ज्योतिर्मय हो उठी है। उनके मिलन का काल काफी लम्बी यात्रा कर चुका है फिर भी ऐसा लगता है कि वे अभी-अभी मिली है और उनके मिलन की सुगध आस-पास के वातावरण मे आज भी महक रही है।

प्रवर्तिनी श्री जी का जीवन एक ऐसे मगलदीप का जीवन है, जो दीप से दीप प्रज्वलित होते रहने की सदुक्ति को फलितार्थ करता है। उनके द्वारा अनेक भव्य आत्माओ का जीवन निम्न धरातल से ऊपर उठकर सदाचार एव सयम के एक-से-एक ऊँचे शिखरो पर पहुँचता रहा है।

महासती जी ज्ञान एव कर्म की मिलनमूर्ति है। ज्ञान और तदनुरूप कर्म के क्षेत्र मे जो इन्होने अनेकानेक स्थानो मे बीजारोपण किये है, वे अकुरित ही नही अपितु सुचारु रूप से पल्लवित, पुष्पित होते हुए अन्तत फलित स्थिति में भी पहुँचे हैं।

प्रवर्तिनी श्री जी के सम्बन्ध मे एक महान दार्शनिक आचार्य का दिव्य उद्‌गार स्मृति-पटल पर अवतरित हो रहा है "वसन्तवल्लोकहित चरन्त। अर्थात् महान सयमी सन्त-जीवन वह है जो ऋतुराज वसन्त के समान लोकहित का निर्माण करते हैं। सत्कर्म के दिव्यपुष्प उनके द्वारा आरोपित किए हुए ऐसे खिलते हैं, महकते है कि सृष्टि का रूप कुछ और का और हो जाता है। मानव के मन का कण-कण खिल उठता हे, इस प्रकार के वसन्त के आविर्भाव में। सज्जनश्री जी साधना के क्षेत्र की ऐसी ही वसन्त हैं।

साधुजीवन सहज रूप से स्वयं ही एक अभिनन्दन है। फिर प्रवर्तिनी श्री जी जैसे निर्मल, निश्छल एव सहज उदात्त साधु-जीवन का तो कहना ही क्या ? मुझे प्रसन्नता है प्रवर्तिनीश्री जी के सम्बन्ध मे एक विराट् समादरणीय अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है। मै उक्त प्रकाशन रूप सत्कार्य मे सलग्न सुयोग्य साध्वीजनो का, साथ ही भावनाशील भक्त उपासको का भी हृदय से अभिनन्दन करती हूँ। सत्कर्म किसी के भी द्वारा हो वह सर्वतोभावेन सदैव अभिनन्दनीय है।

○

□ आर्या धर्मश्री रतिश्री म० सा०

परम विदुषी आगमज्योति प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री जी म० खरतरगच्छ की ही नही अपितु जैन समाज की विशिष्ट प्रतिभासम्पन्न साध्वी हैं। वे आगममर्मज्ञा है, समता-सरलता की साक्षात देवी हैं। आपका अनुपम व्यक्तित्व जैन अजैन सभी के लिए श्रद्धा का केन्द्र बना हुआ है। आपकी जन-कल्याण मय वाणी सभी के दिलो मे गुजित है। आपकी व्याख्यान शैली सरलतम है, कठिन से कठिन आगम वाणी को सुगमता से समझाकर श्रोता को सन्तुष्ट कर देती है। आपके व्याख्यान मनोरजन के लिए

नही होते, अपितु आत्म परिवतन के लिए होते हैं।

शुरू से स्वाध्याय का गुण जीवन का दूसरा अग वना हुआ है। इस अवस्था म स्वाध्याय करने व कराने का नम नही छोडा, ये इनकी अप्रमत्तता का द्योतक है।

जीवन म तप और त्याग की रुचि भी अनुकरणीय है। आप व्याख्यात्री के साथ साथ एव सफल लेखिका व आशुकवयित्री भी है।

गुरुदेव से प्राथना है कि सुसाध्वीजी पूण स्वस्थ रहकर जैन धम की विजयध्वजा फहराती हुई जन-जन के लिए दीपक की तरह उपयोगी बनें।

□

□ साध्वी श्री मनोहरश्री
(छत्तीसगढ रत्न शिरोमणि)

वीतराग तीथकरो का यह वज्राघोप रहा है कि आध्यात्मिक समुत्कष जितना पुरुप कर सकता है उतना ही नारी भी कर सकती है। चतुर्विध सघ म दो सघ नारी सम्वन्धित हैं, वे सघ के आधार हैं। अपने आप मे ऐसी मिशाल है जो अन्यत्र ढूँढने पर भी नही मिल सकती। नारी वह शक्ति है चन्द्रकान्त मणि है जिसकी शीतल रश्मिया के आलोक मे पुरुप न केवल पथ खोजता है अपितु दिव्य शक्तियो को जाग्रत कर जन से जिन पद तक पहुँचता है।

ब्राह्मी सुन्दरी ने बाहुवली को जगाया, राजीमति ने रथनेमी को प्रबोध दिया, कमलावती ने इपकार को सबोधि दी, याकिनी महत्तरा ने हरिभद्र को सत्य माग सुझाया रत्नावली ने तुलसी को सत तुलसी वनाया। ऐसे एक नही अनेको उदाहरण हैं। उद्बोधिनी शक्ति नारी अपनी मृदुता, उदारता से मानव मन मे दिव्य तेज ओज का सचार करती रही है। चाहे क्रान्ति हो या शान्ति हो, भ्रान्ति के चक्कर म न उलझ कर दोनो परिस्थितियो म शानदार दायित्व निभाती है। वह ममतामयी मा है, सहज स्नेह बिखेरती भगिनी है, श्रद्धा स्निग्ध कन्या है ता सवस्व समर्पित सह धर्मिणी भी है। भारतीय साहित्य म नारी नारायणी के रूप मे सदा प्रतिष्ठित रही है।

नारी की इस गुणवत्ता को कुशल प्रहरी की भाति सरक्षित रखन म पूण प्रयत्नशील विदुषी श्रेष्ठा सज्जनश्री जी म० सा० के व्यक्तित्व एव कृतित्व को उजागर करन हेतु अभिनदन समारोह व ग्रन्थ प्रकाशन का आयोजन प्रसन्नतादायी व प्रशसनीय है। साध्वी रत्न, प्रर्वातनी महोदया आशु कवयित्री, सफल लेखिका व आगमा की गभीर ज्ञाता है। जिन्होंने सस्कृत प्राकृत, न्याय, व्याकरण, काव्य, आगम आदि ग्रन्था का तलस्पर्शी अध्ययन कर स्व जीवन को महकाया है एव कई भव्य आत्माओ को चमकाया है। जो सवदा निस्पृह, निरपेक्ष भाव से साधना के पथ पर अप्रमत्तता से बढती हुई अपन जीवन पुष्प को ज्ञानादि सद्गुणो के सौरभ व सयमशील-सेवा सदभावना के विरल सौन्दय से मडित कर पुण्य उपवन म सुरभि और सुपमा का विस्तार कर रही हैं। जिनम ज्ञान की ललक है दशन की दमक है, चरित्र की चमक है। शान्त सरल, गुण गम्भीर प्रकृतिसम्पन्ना प्रवर्तिनी श्री सज्जनजीश्री म० वस्तुत समाज की गौरव हैं। अभिनदन की पात्र हैं। अभिनदन की इस बेला म मेरी भव्य भावना है कि वे चिरजीवी बनें एव उनके जीवन सुमन की शुभा वनी महक का विस्तार कर सबको प्रेरित करने वाला यह अभिनदन ग्रन्थ त्याग श्रुत, सयम, शील की गौरव गाथा बने। यही हार्दिक शुभकामना है।

卐 □

☐ श्री निर्मलाश्री जी म० सा०

हार्दिक प्रसन्नता का विषय है पूज्यवर्या प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी म०सा० के दीक्षा स्वर्ण जयन्ती उपलक्ष मे अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है।

मेरा परम सौभाग्य रहा कि मुझे बचपन से ही पूज्य गुरुवर्याश्री के दर्शनो का लाभ मिलता रहा और अब तो चरणो मे रहने का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ।

आपका स्वभाव अत्यन्त सरल विनम्र है। हम जब कभी भी जाते तो सरलता-वात्सल्यता के साथ बातचीत करती। मैंने अपने जीवनकाल में कभी उत्तेजित नही होते देखा। आरम्भ से अभी तक उनके जीवन मे कभी कृत्रिमता नही देखी। किसी मे भेदभाव करते नही देखा। माया, कपट, छल करते नही देखा। सदा स्वाध्याय करना व कराना इसी मे तल्लीनता देखी। तप, त्याग, सयमनिष्ठ बनने की सभी को प्रेरणा देती रहती है कि सयम, तप, त्याग के बिना जीवन का कोई महत्व नही है। कितने भी पढ लो, दुनिया से कितनी भी प्रसिद्धि पा लो लोगो को कितना भी रिझालो परन्तु जब तक आत्मा को नही रिझाओगे तब तक कुछ नही है।

गुरुदेव से मै पूज्य गुरुवर्याश्री की शतायु दीर्घायु की कामना करती हुई पुन गुरुवर्याश्री से यही आशीर्वाद चाहती हूँ कि आपकी तरह सरल, सहिष्णु बन जीवन को समुज्ज्वल बना मोक्ष लक्ष्य को प्राप्त करूँ। इसी शुभेच्छा के साथ चरणो में कोटि-कोटि अभिनन्दन-अभिवन्दन।

☐

☐ साध्वी श्री मणिप्रभाश्री जी म०सा०

(सुशिष्या स्व० साध्वी विचक्षणश्री म०सा०)

नाम के साथ गुण का अद्‌भुत संयोग, ज्ञान के साथ सरलता का सुयोग, पद के साथ वात्सल्य का योग, अप्रमत्तता से समय का उपयोग, विद्वत्ता के साथ कवित्व का प्रयोग, ज्ञानदान मे पूर्ण मनोयोग आदि अनेक विशिष्टताओ से युक्त है जीवन जिनका वे है प्रवर्तिनी पू० श्री सज्जनश्री जी म०सा०।

पूज्या प्रवर्तिनी सा० का जीवनवृक्ष अनेकानेक गुणों रूपी फलो से आपूरित है। यह बात निश्चित है कि साधक की साधना जितनी बलवती होती जाती है—उसमे उतनी ही सरलता बढती चली जाती है। उसके व्यवहार में निश्छलता सहज होती है। सासारिक क्षेत्र मे ज्ञान के साथ अभिमान, पद के साथ मद उभरता है लेकिन साधना क्षेत्र मे ज्ञान के साथ सरलता बढती है।

हृदय मे आल्हाद भर जाता है, अनुमोदना भाव उभरने लगता है—पूज्या प्रवर्तिनी जी के जीवन वैभव को देखकर। प्रवर्तिनी पद और कितनी महजता आत्मज्ञान मे सर्वोपरि स्थान पर कितनी सरलता. जीवन का वृद्धत्व पर कितनी अप्रमत्तता।

अभिनन्दन है उनका, अभिवन्दन है उनका—जो जीवन के एक-एक पल को सतर्कता से जी रहे है। प्रार्थना है प्रभु से—वे शतायु हों और हमारी पथप्रदर्शिका बनी रहे।

☐

☐ श्री अविचलश्री जी म०

(सुशिष्या प० पू० प्र० विचक्षणश्री जी म० सा०)

केवल खरतरगच्छ सघ के लिए ही नही परन्तु समस्त जैन सघ-समाज के लिए गौरव की बात है कि प० पू० जैन कोकिला प्र० स्व० विचक्षणश्री जी म० सा० की पट्ट धारिणी, आशु कवयित्री, आगम मर्मज्ञा प्र० सज्जनश्री सा० का अभिनन्दन होने जा रहा है। यह उनके व्यक्तित्व का परिचायक है अत विशेष कुछ न लिखकर शासनदेव व गुरुदेव से प्रार्थना है कि इन्हे दीर्घायु करे जिससे चिरकाल तक जिनशासन की प्रभावना करते रहे एव अनेकानेक भक्तात्माओ को वीतराग वाणी का अमृत पान कराकर सयममार्गी व मोक्षगामी बनावे। इसी शुभकामना के साथ। ☐

□अचलगच्छीय साध्वीश्री ज्योतिष्प्रभाजी म०

विश्वनी अन्दर गुरुभगवन्तो विश्वना जीवोना हितने माटे जीवन जीवनारा होय छे। मानवना काडे बाधेलु घडियाल मानवने काम आव छे। घरमा रहेलु घडियाल घरना माणसोने काम आव छे, शेरीमा रहलु घडियाल शेरीना माणसोन काम आव छे। परन्तु टावर बधान काम आव छे। तेम गुरु भगवन्तो विश्वना तमाम जीवोना हितन माट टावरनी जम पाताना जीवन न जीवीन दुनियाना तमाम जीवोनु भलु करनारा होय छे, महान प्रताप शाली, प्रतिभासपन्ना, अजोड वक्ता, नाम तेवा गुणोने प्राप्त करणारा प० पू आगमप्रज्ञ सज्जनश्री जी म सा ना गुणोनु हुँ शु वणन करू ! जेमना जीवनमा सज्जनता रगेरगमा भरेली छे, प्रेमालता, अमीदृष्टि, वात्सल्यता, परार्थरसिकता, मत्रीभाव, निस्पृहता आदी अनेक गुणो ऐमने जे वरेला छे, ज्ञान पिपासु ता एवा छे के जेमना सानिध्यमा जे आवे तो व्यक्ति ज जाणी शके।

हु, जामनगरमा चातुर्मास हती त्यारे मने अनुभव थयो। ए जणावता आनन्द थाय छे के आवा गुणियल गुरुना गुणा लखवानो अवसर मल्यो। पुज्य श्रीजीनो स्व पर दशननो बोध अपूव कोटीनो छे अमेणा घणा आगमग्रन्थोनु वाचन मनन परिशीलन चिन्तन अने अनुप्रेक्षा करेली छे। अमे बने ठाणा अमनी पासे सुयगडाग सुत्रनी टीका वाचवा जता। त्यारे अमेनी समजाववानी कला अनुभवी अजब कोटीनी के आपणने हृदय मा वसी ज जाय, बीजी पर पुस्तक हाथमा लेवानी जरूर ज न पडे। ज्यारे जईय त्यारे अप्रमत्त दशा ऐवी के पुस्तक हाथमा ज होए गमे ते समये गया होईए पण क्यारे अमेना मुखमाथी नकारनो नाम ज नथी।

वात्सल्यथी भरपूर अमेनु हृदय न जोईने गुरुसमपण भाव उमराया विना रहे ज नही। पोताना विशाल शिष्या वन्दमा पण अमेन अधिक व्हालथी अभ्यास करावता, आ नानकडी जीभथी आवा गुण गिल महापुरुषना गुणो गाइ शकाय, सागरना बिन्दु, अकाशना तारा, रेतीना कणीया, गणवा जेम अशक्य छे तेम मारी बुद्धया अेमना गुणेनु मूल्य करवु अशक्य छे। अवा आगमप्रज्ञ गुरुभगवन्त श्री जा ने कोटी कोटी वदन वदन वदन। □

□ विचक्षण ज्योति,
साध्वी श्री चन्द्रप्रभाश्री

वतमान युग की जाज्वल्यमान व्यक्तित्व एव ददीप्यमान कृतित्व की दवी, वात्सल्यवारिधि, अप्रतिम प्रतिभा की धनी, अनुपम साधिका, परम श्रद्धेया प्र० म० नी सज्जनश्रीजी म० को वन्दन।

भगवान् महावीर के पद जिनके अणु-अणु म व्याप्त हैं, ज्ञानदायिनी मा सरस्वती के प्रति एकाग्र साधना, गुरुदेव एव गुरुवर्या श्री के प्रति समर्पित भावना, सहनशीलता की महाकाव्य, स्नेह सहानुभूति की सारस्वत गगा, सहज स्फूत अध्यात्म धारा प्रवाहिका, अनन्त दविक गुणो की खान पूज्य प्रवर्तिनी साध्वीजी श्री सज्जनश्रीजी म०सा० के जीवन से मैं अन्तस्तल तक प्रभावित हूँ।

युग की इस महान् मनीषी का अभिनन्दन यथाथत इस अनुपम गरिमामय गुणा का ही अभिनन्दन है।

इस पुनीत अवसर पर मैं श्रद्धेया गुरुवर्याश्री के सद्चरणा म अभिनन्दन-अभिवन्दन के समन्वित पुष्प समर्पित करती हू। □

□ साध्वी श्री मुदितप्रज्ञाश्री

ससार के इतिहास मे स्वर्णाक्षरा म लिखा गया है कि "सन्त भारत की आत्मा है भारतीय इतिहास के निमाण म वे नीव की ईट के रूप म रहे हैं।" जिस प्रकार प्रत्यक पवत पर मणियाँ नही होती, हर हाथी के मस्तक म मुक्ता नही होती, हर जगल मे चन्दन के वृक्ष नही होत उसी प्रकार प्रत्यक स्थान पर सज्जन पुरुष नही होते। महापुरुष अपने व्यक्तित्व के कारण महान् बनते है। व्यक्तित्व

आचार-विचार की दो धातुओ से वनता है। जिसमे आचार की ऊँचाई व विचार की गहराई होती है वही जीवन महान होता है।

विवेक-विलासी, ससार से उदासी, शिव रमणी की प्यासी, तत्त्व ज्ञान की उल्लासी पूज्य-वर्या श्रो का जीवन भी लाखो में एक है। मानो वैराग्य उन्हे पूर्व जन्म की विरासत के रूप मे मिला है।

गुणो की गुरुता के कारण व्यक्ति की महत्ता वढती है। धीरे-धीरे आपश्री विनय-विवेक-स्वाध्याय-ज्ञान-ध्यान-तप जप से अभ्युदय के शिखर पर पहुँचने लगी।

आपश्री अप्रमत्तता के साथ अध्ययन मे सदा सलग्न रहती है। वर्तमान मे ८० की उम्र है, स्वास्थ्य भी अनुकूल नही है फिर भी स्वाध्याय पक्ष कमजोर नही है। अध्ययन-अध्यापन मे सदा आगे ही रहती है। आपश्री का चिन्तन गहरा है, विश्लेषण शक्ति अद्भुत है। ज्ञानी है, पर ज्ञान का अहकार नही है। विनय-विवेक से समन्वित उनका जीवन दर्शन प्रेरक है।

आपश्री के जीवन मे सरलता अजव गजव की है। कैसा भी प्रश्न उपस्थित हो जाय विना किसी तनाव व आक्रोश के उलझन को सुलझन का रूप दे देती हैं।

आपश्री की विशेषताओ को देखकर सभी पूज्य-वर्याओ के मुँह से यही उद्गार निकलते "**शिष्या बने तो ऐसी जो स्वय भी सुखी उनसे दूसरे भी सुखी।**" अरे, कोई तो सज्जन वनो। नीति मे भी कहा है कि

> **"भक्त चित्त मे रहे प्रभु वह नर धन्य है।**
> **प्रभुचित्त में रहे भक्त वह नर धन्योत्तम धन्य है।"**

इस पावन वेला मे मेरे अन्तर् हृदय मे जो भाव उमड रहे है उन्हे आपश्री "सुदामा के तन्दुल" की तरह अवश्य स्वीकार करे।

□

□ साध्वी मधुस्मिताश्री

(प पू. शासनज्योति मनोहर श्री जी म. सा. की शिष्या)

मैं अपने आपको भाग्यशालिनी मानती हूँ कि मुझे आगमज्ञाता, परम विदुषी, आशु कवयित्री, परमपूज्या प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी म. सा. की गुण-गरिमा का वर्णन करने का अवसर प्राप्त हुआ है। जैसे पानी की नन्ही सी वूँद मे कोई चमत्कार नही होता है, परन्तु वही नन्ही वूँद जव कमलिनी के पत्तो का संसर्ग पा लेती है तो वह अनमोल मोती की आभा को प्राप्त कर लेती है। इसी प्रकार मैं अपने आपको धन्य मानती हूँ।

परमपूज्य सज्जनश्री जी म. सा स्वनामधन्या तो है ही साथ मे आपका जीवन तप, त्याग, सयम तथा परोपकारमय है। आपने अपने ज्योतिर्मय जीवन की खुशवू चारो तरफ फैला दी है। जो भी आपके सम्पर्क मे आता है, आकर्षित हुए विना नही रहता।

आपकी वुद्धि-पटुता भी गजव की है। एक सामायिक के अन्दर भक्तामर स्तोत्र को कंठस्थ कर लिया।

मैं अपने आपको वहुत ही भाग्यशालिनी मानती हूँ कि मुझे आपश्री का सान्निध्य प्राप्त हुआ। दीक्षा से पूर्व गृहस्थ-जीवन मे चार वर्ष तक मुझे आपका सान्निध्य, ओजस्वपूर्ण वाणी, वात्सल्यता तथा आपका निर्देश वरावर मिलता रहा। सयम ग्रहण करने के पश्चात् अभी मैंने प्रथम वार जयपुर मे आपश्री के दर्शन कर अपना अहोभाग्य समझा। थोडे समय के सयोग ने तथा आपकी स्नेहमयी वाणी ने मेरे जीवन को मोह लिया। समयाभाव तथा आगे की परि-स्थितियो को देखते हुए हमें इच्छा न होते हुए भी जयपुर से प्रस्थान करना पड़ा। विहार करते समय आपके मुख रूपी कमल से यही शब्द स्फुटित हुए कि ऋजु परिणामी वनो, शासन की सेवा करो, जीवन को उन्नत वनाओ।

आपकी जीवन गत गुण गरिमा के लिए कितना क्या लिखू। आपकी सर्वोन्नत प्रतिभा का आलेखन करने मे यह कलम सक्षम नही है। अन्त मे शासन-देवी तथा गुरुदेव से यही मंगल कामना करती हूँ कि आप दीर्घायु वनें। □

विभिन्न आम्नाय प्रतिनिधि प्रमुख सद्‌गृहस्थो जैनसाधो, सस्थाओ एव श्रद्धालु श्रावको की

शुभकामना—वन्दना

☐ श्री विमलचन्दजी सुराना (जयपुर)

श्रमणत्व का सार है कषायो की निवृत्ति। इस अर्थ म पूज्याश्री का जीवन वास्तव म श्रमणी जीवन है। ज्ञान के भडार होने पर भी अह का लेशमात्र भी नही। आप सरलता की प्रतिमूर्ति हैं। उनके गुणानुमोदन के लिए लिखा गया यह 'ग्रन्थ' हमारी राग-द्वेष की सारी ग्रन्थियो को तोडने वाला बने, यही आपश्री के प्रति वास्तविक श्रद्धाजलि होगी। ☐

☐ श्री हरिश्चन्द्र जी बडेर (जयपुर)

महासती परम पूज्या श्रद्धेय सज्जनश्रीजी म सा उत्कृष्ट कोटि की साधिका हैं। श्रद्धेय महासती जी का जीवन महान् है। मैं इन महान् साधनाशील महासती जी के लिये जिनेश्वर भगवान् से यही प्रार्थना करता हूँ कि आप स्वस्थ एव दीर्घ जीवन जीयें, प्रकाश से महाप्रकाश की ओर इतने अग्रसर हो जायें कि इसी भव म मुक्ति के महान अधिकारी बनें और जिनशासन की अधिकाधिक सेवा करें और आपके अनमोल मार्ग-दर्शन के माध्यम से अनेक आत्माएँ भवी बनें।

> 'जीवन चरित महापुरुषो के,
> हम नसीहत करते हैं।
> हम भी अपना अपना जीवन,
> स्वच्छ रम्य कर सकते हैं।'

☐

☐ श्री उमरावमलजी चौरडिया (जयपुर)

जैन श्वेताम्बर खरतरगच्छ सघ के आर्यारत्न प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री जी महाराज साहब का अभिनन्दन करने का निश्चय किया है यह परम सौभाग्य की बात है।

अभिनन्दनीय का अभिनन्दन करना तो हमारा सामर्थ्य कहा है? निश्चय ही उनके उदात्त तत्वज्ञानमय विचार, हृदयगम करने की अप्रतिम प्रतिभा, शान्त, सेवाभावी एव निरभिमानी व्यक्तित्व जन-जन का प्रेरणास्रोत बन समाज को एक नया दिशा दर्शन देता रहेगा। इसी भावना के साथ श्रीचरणो म भावाजलि एव ग्रन्थ के लिए शुभ कामनायें। ☐

☐ श्री जवाहरलालजी मुणोत (बम्बई)

(भू० पू० अध्यक्ष—अ० भा० श्वे० स्थानकवासी जैन कान्फ्रेंस, दिल्ली)

जैन समाज की एव परम देदीप्यमान महासती श्रमणी आर्यारत्न प्रवर्तिनीजी श्री सज्जनश्री जी महाराज साहब का अभिनन्दन ग्रन्थ प्रस्तुत किया जा रहा है, यह प्रसन्नता का विषय है।

रूढ और स्थूल रूप से जैनधर्म ने, समस्त धार्मिक सगठन को चार बहुत स्पष्ट भागो मे विभाजित कर डाला—श्रमण और श्रमणी तथा श्रावक और श्राविका। भगवान् महावीर के क्रान्तिकारी और अत्यन्त दूरदर्शी नियोजन का आधार इसलिए, सुस्पष्ट है। इस प्राचीन और अर्वाचीन धर्म म ही पुरुष और स्त्री को केवल आलकारिक रूप मे नही बल्कि समस्त अधिकारो के साथ बराबर-बराबर स्थान निर्धारित किया गया है।

जैन धर्म परम्परा अतीव भाग्यशाली है कि इस समाज मे, समय-समय पर अत्यन्त तेजस्वी, तप पूत और कठोर आध्यात्मिक साधना से सफलीभूत आर्यारत्न प्रवर्तिनीजी जैसी महान श्रमणी का आविर्भाव हुआ है। परन्तु इनका अभिनन्दन तो ऐसा अवसर है जब हमे बिना झिझक, फिर से चतुर्विध सघ को पुनर्स्थापित करने का सही और श्रमसाध्य प्रयास करना चाहिए। जहाँ दूसरे चर्चो मे अथवा धार्मिक सघो मे, स्त्री को आध्यात्मिक समाज की समानता स्थिति देने के लिये नये आन्दोलन करने पडते हैं—वही यह कैसी विडम्बना है कि जो अपने सघीय प्रारम्भ मे ही स्त्री स्वरूप को सम्पूर्ण समान अधिकार देता है, उस जैनधर्मीय सघ को आज श्रमणी और श्राविका को उसके असली अधिकार पर पुनर्स्थापित करने के लिए नये प्रयत्न करने पड रहे हैं।

मेरे जैसे अकिचन श्रावक की यही अभिलाषा है कि अभिनन्दन का यह अनुपम अवसर इस महान कार्य के शुभारम्भ का सही श्रीगणेश करने मे सफल हो।

□

□ श्री जी० आर० भण्डारी

यह कहते हुए मुझे गर्व है कि साध्वीजी का सम्पूर्ण जीवन प्राणी मात्र के आत्म-कल्याण के लिए समर्पित है। जैन समाज को ऐसी विदुषी साध्वी पर गर्व तो है ही साथ ही जैन समाज सदैव साध्वीजी का ऋणी रहेगा।

मेरा विश्वास है कि प० पू० साध्वी जी श्री शशिप्रभाश्री जी म० सा० "जैन दर्शनाचार्य" के सान्निध्य मे प्रकाशित इस अभिनन्दन ग्रन्थ मे निश्चित ही साध्वीजी के सस्मरणो की अमूल्य निधि का समावेश रहेगा। मै आपके प्रयासो एव अभिनन्दन ग्रन्थ की सफलता चाहता हूं।

□

□ श्री हजारीमलजी बांठिया (कानपुर)

परम पूज्या साध्वी जी श्री सज्जनश्री जी म० सा० की वाणी तो ऐसी ज्ञानमयी जादू की वाणी है जी चाहता है प्रतिदिन वह कान मे गूँजती रहे और मैं श्रवण करता रहूँ। ऐसी महान विदुषी का अभिनन्दन कर आपने सचमुच ही जैनधर्म की गौरवमयी परम्परा को आगे बढाया है। वे खरतरगच्छ परम्परा की अवश्य है किन्तु सभी समाज के लिए पूजनीय एवं अभिनन्दनीय हैं। सत किसी बाडे मे नही बँधते हैं। वे तो समस्त जगत् का उद्धार करने के लिए इस धरा पर अवतरित होते हैं, ऐसी आगमज्ञा गुरुवर्या के चरणो मे शतश नमन—अभिनन्दन।

□

□ श्री राजेन्द्रकुमारजी श्रीमाल

(श्री कुशलसस्थान, जयपुर)

वैराग्यमूर्ति, जनकल्याणकारी, मृदुभाषी, सरल स्वभावी, अज्ञानतिमिरनाशक, गुणनिधि प० पू० प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री जी म० सा० के अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित होने के समाचार जानकर हृदय आनन्द से पुलकित हो उठा व प्रसन्नता का पारावार न रहा।

प० पू० प्रवर्तिनी के जीवन का मुख्य लक्ष्य विद्योपासना एव सरस्वती साधना है। हम सान्निध्य एव सम्पर्क मे रहकर अपने आपको बडा गौरवशाली एव भाग्यशाली समझते हैं। आपश्री शतायु हो, जनकल्याण हेतु ज्ञान बाटती रहे, तथा आपका लिखा हुआ साहित्य प्रकाशित हो जिससे हमे नवीन जागृति, चेतना व मार्गदर्शन मिले—इन्ही मगल भावनाओ से प्रेरित मेरा अभिनन्दन स्वीकार करे।

□

☐ विद्यावारिधि डॉ महेन्द्रसागर प्रचडिया

डी० लिट०
(निदेशक जन शोध अकादमी
आगरा रोड, अलीगढ)

यह जानकर परम प्रसन्नता हुई कि सुधी समाज परम वद्य आगमप्रज्ञा प्रवर्तिनी सज्जनश्री महाराज की वदना मे एक अभिनव अभिनन्दन ग्रन्थराज प्रकट किया जा रहा है । अभिनन्दन ग्रथ म विदुषी साधिका का जिनमाग और जिनवाणी विषयक समूचा अवदान मूल्याकित किया जाएगा, फलस्वरूप ज्ञान गोमती के पवित्र प्रवाह म अवगाहन करने का सुयोग प्राप्त होगा ।

सुधी साधिका परम पूजनीया सज्जनश्रीजी महाराज के सुख साता की मगल कामना करता हुआ, यह आत्म भाव उनके शत सहस्र वर्षीय जीवन की भव्य भावना भाता है ।

शत शत वदना सहित !!

☐

☐ श्री चन्दनमल चाँद

(सम्पादक जनजगत बम्बई
प्रधानमत्री भारत जन महामडल)

व्यक्तिश प्रवर्तिनी श्री जी स मेरा सम्पक मुझे याद नही है किन्तु कुछ ऐसे व्यक्तित्व भी होते हैं जो दूर बैठे भी अपनी सुगन्ध से आकृष्ट करते हैं। आप ऐसी ही विदुषी, कवयित्री, लेखिका, अनक भाषाओ की ज्ञाता और ज्ञान के अहकार से रहित हैं। लगभग ४६ वर्षों के दीक्षा पर्याय मे आपने अपनी सयम-साधना के साथ लेखनी एव वाणी से जैन धम के प्रचार प्रसार म महत्वपूण योगदान दिया है। स्वभाव से आप शान्त, सेवाभावी, मधुर भाषी एवम् अध्ययनशील हैं। आपके अभिनन्दन समारोह के अवसर पर मेरी भावभरी हार्दिक शुभकामनाएं।

☐

☐ डा० महावीरसरनजी जैन (जबलपुर)

आपने पूज्य साध्वी समुदाय के प्रवर्तिनी पद पर प्रतिष्ठित साध्वीरत्ना सज्जनश्रीजी म० सा० के अभिनन्दन ग्रन्थ की जो योजना बनाई है वह मु विचारित है। मैं अभिनन्दन ग्रन्थ की पूणता एव उसके शीघ्र प्रकाशन की तथा अभिनन्दन समारोह की सफलता की हार्दिक शुभकामनाएँ व्यक्त करता हूँ। प्रतिभाशाली तपस्वी, साधक एव धमपरायण व्यक्तित्व का अभिनन्दन करना कृतज्ञ समाज का धम है। म उनकी सयम यात्रा की प्रगति की भी मगलकामना करता हूँ।

☐

☐ श्री दौलतसिंह जी जैन

(मत्री—श्री अखिल भारतीय जन खरतरगच्छ
महासघ, दिल्ली)

यह अत्यन्त हप का विषय है कि श्री जन श्वेताम्बर खरतरगच्छ सघ जयपुर आगमज्ञा विदुषीवर्या प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी म० सा० का अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित कर रहा है। प्रवर्तिनीश्रीजी जन आगम व साहित्य की प्रखर ज्ञाता व प्रवचनकार हैं। आपने अनेक ग्रन्थो की रचना कर साहित्य का भण्डार भरा है। तप द्वारा कर्मो का क्षय करते हुए आप आत्म-कल्याण व लोक-कल्याण के माग पर अग्रसर हैं। भारत के अनेक भागो म विचरण व चातुमास करके, आपने जिनेन्द्रदेव के सन्देश को जनसाधारण तक पहुँचाया है।

आपको प्रवर्तिनी पद प्रदान कर समाज ने अपने को गौरवान्वित महसूस किया है, शरीर के अस्वस्थ होते हुए भी आप धम प्रचार प्रसार का अनुकरणीय काय कर रही हैं। जिनेश्वरदेव से प्राथना है कि आपको दीर्घायु प्रदान कर शासन की सेवा का अवसर प्रदान करें।

☐

☐ श्री इन्द्रचन्द्रजी मालू
पूर्व अध्यक्ष
एव
श्री अमृतराज बागरेचा
पूर्व उपाध्यक्ष
(श्री जैन श्वेताम्बर खरतरगच्छ सघ जोधपुर)

जयपुर के अति प्रतिष्ठित कुटुम्ब की पुत्रवधु जिसे वैभवता एव सम्पन्नता का तनिक भी अभाव नही। ऐसे सुखद वातावरण से सयम के कठोर पथ पर अग्रसर होने की तीव्र लालसा एव दृढ सकल्प से प्रेरित होकर तरुण अवस्था मे ही आपने दीक्षा ग्रहण कर महान कल्याणकारी कार्य किया।

आपने अपने आत्म कल्याण हेतु कठिन तपस्याये भी की हैं परन्तु इसके साथ ही आपकी लोक-कल्याण एव पर-सेवा करने की प्रवृत्ति भी अथक रूप मे सक्रिय है। अत दूसरो की आत्मा को आनन्द देना ही आपके जीवन की सरस धारा रही है।

आपका त्यागपूर्ण जीवन आपकी सर्वोपरि उपलब्धि है और इसी कारण धार्मिक सहिष्णुता-समन्वय, अनुशासन, उदारता, नम्रता से आप सर्वोच्च पद प्रवर्तिनी का गौरवान्वित कर रही है तथा साध्वी समुदाय के लिए अनुकरणीय उदाहरण भी उपस्थित कर रही है।

आपके इन्ही महान गुणो से ओत-प्रोत व्यक्ति को निखारने हेतु सूर्य नगरी-जोधपुर को, वि० सं० २०३६ मे आपके भव्य चातुर्मास मे, आपको प्रवर्तिनी पद पर ससम्मान प्रतिष्ठित करने के आयोजन करने का मगलमय अवसर प्राप्त हुआ। अत जोधपुर समुदाय के लिए यह ऐतिहासिक आयोजन आपके गौरव के साथ चिरस्मरणीय रहेगा। इसी प्रसग मे यह भी उल्लेखित करना उचित रहेगा कि स्व० प्रवर्तिनी पूज्या श्री विलक्षणश्रीजी महाराज साहिबा की वृहद् दीक्षा का आयोजन करने का भी पूर्व मे जोधपुर समाज को स्वर्णिम अवसर प्राप्त हो चुका है जिन्होने सम्पूर्ण भारत मे अपना विशिष्ट स्थान बना लिया था और जैन कोकिला विरुद से सम्मानित हुई थी।

पूज्य प्रवर्तिनी महोदया श्री सज्जनश्रीजी महाराज साहिबा के अभिनन्दन समारोह के उपलक्ष मे हम भी अपने श्रद्धा सुमन मे उनके सज्जनतापूर्ण शालीन व्यक्तित्व के लिए हार्दिक अभिनन्दन करते हुए उनके अच्छे स्वास्थ्य एव दीर्घायु की श्री दादा-गुरु से प्रार्थना करते है। ☐

अनुमोदना
☐ जनरल मैनेजर : सेठ आणंदजी कल्याणजी पेढी अहमदाबाद

उपरोक्त अभिनन्दन ग्रन्थ आपनी सस्था तरफ थी प्रकाशित करवानी योजना परत्वे खूब-खूब धन्यवाद।

सेठ आणंदजी पेढीना प्रमुखश्री तथा ट्रस्टी-मडल आ प्रकाशननी अनुमोदना करीये छीये। ☐

☐ जीवाणा खरतरगच्छ संघ

प्रवर्तिनीश्रीजी सर्वथा अभिनन्दन के योग्य है। सज्जनश्री म० सा० विदुषी होते हुए भी अहम् अहकार से घिरी हुई नही है। संयम साधना के क्षेत्र मे साध्वी जी की अप्रमत्तता अनुकरणीय व अनुमोदनीय है।

अपनी प्रभावपूर्ण वाणी द्वारा जन-जन को जाग्रत किया। जीवाणा श्री सघ पर उनका अनन्य उपकार है। गुरुदेव से हार्दिक प्रार्थना है कि साध्वी जी को सुदीर्घ आरोग्यमय बनाये। ☐

☐ श्रीसंघ झुंझनू

प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी महाराज साहब ने झुंझनु नगर मे अपनी गुरुवर्या श्री उपयोगश्री जी महाराज साहब के सान्निध्य मे सं० २००६ मे विराजित रहकर चातुर्मास सम्पन्न किया। चातुर्मास

अवधि मे आपश्री की प्ररणा से अनेक प्रकार की तपस्या, वरघोडा पूजा, जागरण, स्वामिवात्सल्य आदि हुए। स्थानीय जैन एव अजैन समाज आपकी प्रतिभाशाली प्रखर वक्तृत्व कला से लाभान्वित हुआ।

आपश्री का झुझनु समाज से अत्यन्त स्नेह रहा है।

२० मई १९८६ को सम्पन्न होने वाले आपके अभिनन्दन समारोह अवसर पर झुन्झुनु श्री सघ शुभ कामनायें प्रेषित करता है तथा आपके दीर्घ जीवन की श्री गुरुदेव जी महाराज से प्रार्थना करता है।

☐

☐ मीसरीलालजी लोढा

(अध्यक्ष—श्री महाकौशल जैन श्वे० मूर्तिपूजक सघ)

जयपुर श्री सघ परम सौभाग्यशाली है जिसे "आगम ज्योति" उपाधिधारिणी, विदुषीवर्या शान्त, सरल स्वभावा प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी म० सा० का अभिनन्दन करने का सुअवसर प्राप्त हुआ है साथ ही इस विराट अवसर पर जैन शासन की दिव्य ज्योतिमय तारिका क्षमाशील, विनय और नम्रता की साकार जगम मूर्ति, सौम्य सरलता की प्रतीक गुरुवर्या प्रवर्तिनी पू० श्री सज्जनश्रीजी म० सा० के अभिनन्दन ग्रन्थ के प्रकाशन का भी सुखद प्रसग उपलब्ध हुआ है। हम इस शुभ अवसर के लिए आपको हार्दिक बधाई देते हैं।

साथ ही पूज्यवर्या साध्वीरत्न प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी म० सा० के स्वास्थ्य लाभ की आकाक्षा करते हुए उनके दीर्घायु होने की मगल कामना करते हैं।

☐

☐ जवाहरलालजी रामपान

(पू० पू० अध्यक्ष खरतरगच्छ महासघ)

आप "आगम ज्योति" उपाधि धारिणी पूज्य वर्या प्रवर्तिनी महोदया श्री सज्जनजी महाराज साहिबा जैन शासन नभ की एक ज्योतिमय तारिका है।

आपके विद्वत्तापूर्ण वक्तव्य, विनयपूर्ण शात सेवाभाव, निरभिमान स्वल्प मधुर भाषण नियमित चर्या अनुकरणीय है।

जैनशासन की आपने बहुत सेवा की है तथा जैन आगमो की ज्ञाता हैं। आपने बहुत से आगम तथा शास्त्रो का गहन अध्ययन करके, जन-साधारण के समझने योग्य भाषा में जो अनुवाद किये हैं उनसे समाज को इस सम्बन्ध में बहुत ज्ञान प्राप्त हुआ है तथा समाज को बहुत बल मिला है।

ऐसी श्रेष्ठ विदुषी पूजनीय आर्या प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी महाराज का जितना भी गुणगान किया जाय उतना ही कम है। इस सम्बन्ध में जो अभिनन्दन समारोह प्रवर्तिनी श्री जी महाराज के सम्मान में जयपुर में आयोजित किया जा रहा है वह अत्यन्त प्रसन्नता का विषय है।

इस पुनीत अवसर पर अपनी शुभ-कामनाओ को प्रेषित करते हुए मुझे बहुत प्रसन्नता हो रही है। आशा है श्री गुरुदेव की कृपा से यह उत्सव सानन्द सम्पन्न होगा।

☐

☐ श्री हस्तीमलजी मुणोत, सिकन्दराबाद

(कार्याध्यक्ष अ भा श्वे स्थानकवासी जैन कान्फ्रेंस, दिल्ली)

प्रवर्तिनी सज्जनश्रीजी महाराज का अभिनन्दन एक सच्ची श्रमणी का अभिनन्दन है। जिनकी साधना में—ज्ञान, साधना, वक्तृत्व और धर्मप्रचार के चार स्तभ लगे हैं। आपका हृदय बहुत ही उदार विनम्र और पारदर्शी है। आपका अभिनन्दन कर हम सचमुच प्रमोदभाव का आनन्द अनुभव होता है। ☐

☐ श्री कालूरामजी बाफना

(उपाध्यक्ष—श्री अखिल भारतीय खरतरगच्छ महासंघ, बालाघाट)

तीर्थंकर महावीर के दर्शन के प्रचार/प्रसार के साथ-साथ आत्मकल्याण मे सलग्न साध्वियो मे प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री जी म सा का नाम अग्रगण्य है।

आपश्री का विनयी, शात, निरभिमानी एव मधुरभाषी स्वभाव आपके द्वारा आगम-ज्ञान का गहन अध्ययन एवं उसे दिनचर्या मे उतारना दर्शाता है।

वात्सल्य, करुणा, क्षमा की मूर्ति प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी महाराज साहिबा का अभिनन्दन वस्तुत. आपश्री के तप, त्याग एव सयम का गुणानुवाद है। सं २०४६ की वैशाख पूर्णिमा को जैन श्वे० खरतरगच्छ सघ जयपुर द्वारा आयोजित अभिनन्दन समारोह भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित दर्शन के प्रति आस्था प्रकट करने का सशक्त माध्यम है। अत श्री जैन श्वे० खरतर गच्छ सघ जयपुर साधुवाद का पात्र है।

शासन देव से प्रार्थना है कि महान परोपकारी प्र. श्री सज्जनश्रीजी म सा को उत्तम स्वास्थ्य एव दीर्घायु प्रदान करे जिससे जिन-शासन की अधिक-से-अधिक सेवा हो सके। प पू महाराज साहिबा एव साध्वी समुदाय के चरणो मे शत्-शत् वन्दन ! ☐

☐ सोहनलाल जी पारसान

(भूतपूर्व जौइन्ट सेक्रेटरी श्री जैन श्वेताम्बर मण्डल तीर्थ पावापुरी)

प्रात स्मरणीया पूजनीया साध्वी श्री सज्जन श्री जी महाराज का अभिनन्दन समारोह जयपुर शहर मे होने जा रहा है। यह सुनकर हृदय प्रफुल्लित हो उठा है। आज अनायास ही स्मरण हो आए वे दिन जब साध्वीश्री का चातुर्मास शासन नायक तीर्थंकर भगवान महावीर के २५००वे निर्वाणोत्सव पर उनकी निर्वाण स्थली पावापुरी मे सम्पन्न हुआ था। धन्य हो गया था वह दिन। क्योंकि करीबन १०० वर्षों मे उधर किसी भी साध्वी जी का चातुर्मास हुआ ही नही था। आप पावन चरित्रा है, शास्त्र मर्मज्ञा हैं। आपका वहाँ आगमन न केवल वहाँ उपस्थित विशाल जनसमूह के लिए वल्कि जैनेतर समाज के लिए भी बडे ही आनन्द एव उल्लास का कारण बना था। आपके सद्चरित्र के प्रभाव से प्रकृति भी मानो फूली नही समा रही थी। यह मात्र कथन नहीं, हकीकत है। उस वर्ष फसल बहुत अच्छी हुई। बेचारे गरीब कृषक आज भी सज्जनश्री जी महाराज को स्मरण कर यह आकाक्षा करते है कि उनके पावन-चरण पुन पावापुरी मे पडे और वह धरती हरी-भरी बने।

ऐसी शासन प्रभाविका महिमामयी श्री सज्जनश्रीजी महाराज के पुनीत चरणो मे मेरा शत-शत वन्दन। ☐

☐ श्री लालचन्द जी वैराठी

(अध्यक्ष, श्रीमाल सभा, जयपुर)

"आगम ज्योति' उपाधिधारिणी पूज्यवर्या प्रवर्तिनी महोदय श्रीमती सज्जनश्रीजी महाराज साहिबा जैन शासन नभ की एक दिव्य ज्योतिर्मय तारिका हैं। आप यथानाम तथागुण से ओत प्रोत है। आपका व्यक्तित्व एव कृतित्व सर्वथा अनुपम और अद्वितीय है। आप न केवल (जयपुर) राजस्थान की अपितु सम्पूर्ण जैन श्वेताम्बर खरतरगच्छ सघ जैन समाज की शान है। भारत के सभी क्षेत्रो में आपके सरल स्वभाव व कठिन साधना की छाप है। आप जैन साहित्य की लेखिका के रूप मे विशेष रूप से कलम की धनी हैं साधना व अध्ययन ही आपका मुख्य आधार है।

हम अपनी ओर से एव श्रीमाल सभा जयपुर की ओर से पूज्या गुरुवर्याश्री की सुदीर्घ जीवन की मगल-कामना के साथ आपका हार्दिक अभिनन्दन करते है। ☐

⌐ शिखरचन्द्रजी पालावत

(अध्यक्ष, श्री जन श्वे तपागच्छ सघ)

आज भी हम वडे गव के साथ यह वह सकते हैं कि जैनसमाज म भारत की पावनभूमि म श्वेताम्बर समाज की चाहे वो तप गच्छ की हो चाहे खरतरगच्छ की अथवा किसी अय गच्छ की, साध्विया अपनी कीर्ति सारे भारतवप म फला रही हैं—

परम पूज्या, आयरत्ना प्रवर्तिनी "श्री सज्जन श्री जी महाराज" सम्पूण जन समाज की एव शान हैं, निधि हैं।

आपन राजस्थान, उत्तर प्रदश, विहार, बगाल मध्य प्रदेश गुजरात सौराष्ट्र आदि प्रदशा म विचरण कर भगवान महावीर की वाणी को अपने प्रतिभाशाली प्रवचनो स जन-जन तक पहुँचान का महान काय किया है। आपके द्वारा शासनोनति के अनक स्मरणीय एतिहासिक काय हुए हैं।

आपश्री युग युगान्तर तक जन समाज को दिशाबोध प्रदान करती रह।

साध्वीश्री के चरणो म शत शत नमन !

☐

☐ श्री गुमानमल जी चोरडिया

(अध्यक्ष श्री वधमान स्मारक सवा समिति जयपुर एव पशुक्रूरता निवारण समिति, जयपुर)

महासती श्री सज्जनश्रीजी महाराज सा० को अपन पितृपक्ष से ही उच्च सस्कार प्राप्त हुए एव वही सस्कार सत-सतियो के सान्निध्य म विकसित होते रह। आपका जम विक्रम स० १६६५ वशाख पूर्णिमा का है। जिस प्रकार पूर्णिमा का चद्रमा पूण विकसित होकर अपनी प्रभा फैलाता है, उसी प्रकार प्रवर्तिनीश्रीजी न अपने सयम की, तप की चारित्र की प्रभा चतुर्विध सघ म फैलाई है। जिस प्रकार पूर्णिमा का चद्रमा अपनी पूण शीतलता फैलाता है, उसी प्रकार महाराज सा० प्रवर्तिना श्रीजी ने अपनी शीतलता का सबको अनुभव कराया है। आपके सान्निध्य मे आज चतुर्विध सघ पूण प्रमुदित है। आपन १६६६ आपाढ सुदी २ को दीवान नथमल जी के कटले म दीक्षा ग्रहण की। आपकी दीक्षा मे मैं भी उपस्थित था, वह दृश्य बडा ही प्रमादकारी था। आपन दीक्षोपरान्त ज्ञान दशन, चारित्र म अभीष्ट प्रगति की। आप म तप की भी विशेप अभिरुचि रही एव तप के साथ-साथ सेवा परायणता का गुण आपके व्यक्तित्व को चार चाँद लगा रहा है। आत्म कल्याण के साथ-साथ लोक कल्याण म भी आप अग्रसर रही, इसी कारण आपने राजस्थान के साथ साथ उत्तरप्रदश, विहार बगाल, मध्यप्रदेश, गुजरात सौराष्ट्र आदि प्रदेशा म विचरण करके भगवान महावीर की वाणी का नगर-नगर एव ग्राम-ग्राम म सदश गुजाया। वतमान म अस्वस्थता के कारण आपका यहा विराजना हो रहा है, यह जयपुर सघ के लिए अत्यन्त सौभाग्य की बात है।

वीर प्रभु से यही प्राथना है कि आपकी साधना निरन्तर वढती रहे चतुर्विध सघ पर आपका वरद हस्त रहे एव "तिनाण तारयाण" की तरह आप स्वय तिरें एव साधकों को भी तारें।

इन्ही शुभ कामनाओ सहित आप श्रीजी के चरणारविन्दो म शत शत वदन।

☐

☐ स्व० डॉ० उम्मेदमल मुनोत

(मुख्य सरक्षक श्री वधमान श्वेताम्बर जन सभा लखनऊ
ज्ञान प्रसारिणी सभा, लखनऊ
श्री जौहरी बाग दादाबाड़ी सघ लखनऊ)

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि विदुपीवर्या श्री सज्जनश्रीजी महाराज साहब का अभिनदन ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है। इस ग्रन्थ मे जैन

दर्शन से सम्बन्धित विशिष्ट निवन्धो का भी सग्रह होगा जो प्रशसनीय पहल है ।

मेरी दृष्टि में यह ग्रन्थ उन परम्पराओ को आधुनिक परिप्रेक्ष्य मे आगे वढाते हुए पूरे समाज के लिए ही नही, समूचे मानव-समाज के लिए भी उपयोगी वने, यही कामना है ।

श्री सम्पादक जी को इस दुर्गम पथ पर सफलतापूर्वक चलते रहने की हार्दिक शुभकामनाएँ । ☐

☐ श्री सुशीलकुमारजी छजलानी

(सघ मन्त्री,
श्री जैन श्वे० तपागच्छ सघ, जयपुर ।)

परम विदुपी परमादरणीया, प्रवर्तिनी जी, श्री सज्जनश्रीजी महाराज के अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशन का प्रयास प्रशसनीय एव स्तुत्य है ।

पूज्य प्रवर्तिनी श्री के दर्शन एव उपदेश श्रवण आत्मवोध की गहरी अनुभूति जागृत करते है । आपकी अद्वितीय सरलता, विनय एव गहन अध्ययन पूर्ण जैन समाज की अनमोल निधि है ।

प्रवर्तिनी जी की गहन साधना एव अध्ययन का आधार, उपदेश के माध्यम से, हम भविको को आत्मवोध जागृत करने के लिए मिलता रहे । आप दीर्घायु हो एव जैन शासन की सेवा मे रत रहे यही शासन देव से प्रार्थना है । तपागच्छ सघ, जयपुर की ओर से एव मेरी ओर से इस पुनीत अवसर पर इनके आयोजको को उनके प्रयास मे सफलता की हृदय से कामना करता हूँ एव वधाई देता हूँ । ☐

☐ श्री सघ, व्यावर

श्री जैन श्वेताम्बर खरतरगच्छ संघ व्यावर द्वारा प्रवर्तिनी महोदया श्री सज्जनश्रीजी महाराज सा. का भाव भीना अभिनन्दन करते हुए अत्यन्त हर्ष हो रहा है ।

आपश्री का जीवन सदैव मानव कल्याण के प्रति सदा सलग्न एव तत्पर रहा । आपकी आवाज में ओजस्विता एव वाणी में मधुरता रूपी अमृत पाया जाता है जिसका आस्वादन प्रत्येक व्यक्ति द्वारा किया जा रहा है । आप त्याग वैराग्य, समता, सहिष्णुता, सरलता, सहजता की प्रतिमूर्ति है ।

आप आगमो की ज्ञाता है एव प्रत्येक विषय का प्रतिपादन एव विवेचन बहुत ही सुन्दर ढग से करती है । आपश्री का ज्ञान गूढ, गहन एव गम्भीर है ।

पुनः अन्तस्भावेन करबद्ध नतमस्तकेन परम पवित्र पादारविन्दों की कोटिश वन्दना करते हुए यही इष्टदेव से प्रार्थन करते है कि आपश्री शतायु दीर्घायु वने एव समय-समय पर हम सभी को सतर्क सावधान सचेत जाग्रत करती रहे । ☐

☐ श्री त्रिलोकचन्दजी गोलेच्छा

(मत्री · श्री जैन युवा परिषद्, जयपुर)

भगवान महावीर के वताये 'विश्ववात्सल्य' के मार्ग का अनुसरण करते हुए सेवा, त्याग, तप व संयम के मार्ग का प्रचार करते हुए प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी म० सा० ने भारत के साध्वी समाज में विशेष स्थान प्राप्त किया है ।

आपके ८१ वर्ष पूर्ण होने के अवसर पर प्रकाशित 'ग्रन्थ' द्वारा 'श्री जैन युवा परिषद्' जयपुर आपका अभिनन्दन करती है व वीतराग प्रभु से आपके दीर्घ आयु की मंगलकामना करती है । हम इस अवसर पर मानवसेवा के लिए व जैन धर्म के प्रचार के लिए पुनः समर्पित होने का सकल्प लेते है । ☐

☐ जैन श्वे० श्रीसंघ

टाटोटी (राज०)

पू० महाराज श्री सज्जनश्रीजी म० सा० का अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है, जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई । आपश्री कलियुग में भी सतयुग की साक्षात् मूर्ति तुल्य है । आपश्री सरलता, नम्रता,

विद्वत्ता, सेवापरायणता आदि सभी क्षेत्रों में अग्रिम पंक्ति में बैठने वाली हैं। बचपन से लेकर आज तक आपश्री स्वाध्यायरसिक रही हैं। अध्ययन और अध्यापन आपके जीवन के सच्चे साथी हैं। स्वास्थ्य अनुकूल न होते हुए भी अप्रमत्तता के साथ आपश्री स्वाध्याय में सजग रहती हैं। हम यही शुभकामना करते हैं कि वर्षों तक आपश्री अमर रहें और स्व-पर का कल्याण करती हुई अपनी भावना को सफल बनायें। □

□ श्री सरदारमल जी चौपड़ा

(संघ मन्त्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ, जयपुर)

जयपुर सदा से ही पुण्यभूमि रही है। इसी भूमि की रत्न, गौरवशाली प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री जी म० सा० का जीवन स्वर्णिम प्रभात की तरह उज्ज्वल और चमकते नक्षत्र के समान ज्योतिर्मय रहता है। आपश्री शान्त, निर्मल, स्वभावी व गम्भीरता से साधना पथ की ओर सदा अग्रसर रहने वाली महान साध्वी हैं। आपके जीवन का कण कण क्षण-क्षण साधनामय, तपोमय पथ पर अग्रसर होता रहा है। आप प्रकृति से विनम्र, शान्त, निर्मल स्वभाव, मधुरभाषी है। आप जीवन के प्रत्येक क्षण को सही मायने में जी रही हैं। आपश्री का ज्ञान हमें प्रवचनों से स्पष्ट झलकता है। आपका चिन्तन, मनन, आगम ज्ञान निश्चय ही संघ और समाज को नई प्रेरणा, नया चिन्तन, नया रास्ता दिखाते रहे हैं।

तपस्या का प्रश्न हो या ज्ञान का अथवा सेवा का हर क्षेत्र में उनकी उपलब्धियां आश्चर्यजनक रही हैं। आपके चरण जहां भी गये उस क्षेत्र को सदा नई उपलब्धियां रही है। संयम साधना के कठोर पथ पर ये आज भी अग्रसर है। शारीरिक अस्वस्थता होते हुए भी उनका जीवन सदैव धर्ममय, कर्ममय रहता है। जयपुर का सौभाग्य है जिनके यहां २२ वर्षावास हो चुके हैं। जयपुर सदैव सन्तों की भूमि रही है। बड़े बड़े सन्त सतियों का आगमन व उनका वरदहस्त सदा हमें मिला है। ऐसे में महान साध्वीरत्न श्री सज्जनश्रीजी म० का अभिनन्दन वन्दन करते हुए हम जा रहे हैं, वह अपने आप में एक गौरवशाली आत्मा, उनके त्यागमयी व संयममयी जीवन का अभिनन्दन है। वे सदैव समाज को नया चिन्तन, नई रोशनी देती रहें, इस पुनीत अवसर पर हमारी यही मंगल भावना है। महान साध्वीरत्न के पावन चरणों में हमारा शत शत वन्दन है, अभिनन्दन है। □

□ श्री यशपालजी नाहटा

(मन्त्री श्री जैन नवयुवक मण्डल, जयपुर)

यह हर्ष का विषय है कि आर्यारत्न प्रवर्तिनी आगमज्ञा श्री सज्जनश्रीजी म० सा० के अभिनन्दन के शुभ अवसर पर एक अभिनन्दन ग्रन्थ का प्रकाशन किया जा रहा है।

जनजगत की आप वह ज्योतिर्मय पुंज है जिसने अपनी विद्वत्ता एवं ज्ञान के प्रकाश में न केवल जैनसमुदाय को ही आलोकित किया है बल्कि इससे भी कहीं ऊपर उठकर सामान्य जन-जन को भगवान महावीर की वाणी से आप्लावित किया है। एक ओर जिनका सदैव ज्ञानार्जन लेखन-पठन, वैयावृत्य, लोकहित एवं अनेक ग्रन्थों की रचना आदि में बीता हो, दूसरी ओर उसमें नम्रता, शालीनता, करुणा, समता आदि गुणों का होना निश्चय ही उन्हें महान बनाता है। ऐसी साध्वी का शत शत वन्दन।

ऐसी महान साध्वी का अभिनन्दन अवश्य ही हमारा कर्तव्य है, इस अवसर पर प्रकाशित यह अभिनन्दन ग्रन्थ जन जन के लिए प्रेरणादायी बने, यही हमारी शुभकामनाएँ है।

☐ श्री विनयकुमारजी लूनिया (जयपुर)

साध्वी श्री सज्जनश्रीजी महाराज एक प्रखर चिन्तक, प्रभावी व्याख्याता, प्रवल सगठक और विशिष्ट साधना सम्पन्न सती हैं। जैन धर्म त्याग-प्रधान धर्म है। भोग से योग की ओर, राग से विराग की ओर वढने की यह पवित्र प्रेरणा देता है। यही कारण है जैनधर्म मे सन्त-सतियो का जीवन त्याग और तप का जीता-जागता उदाहरण है। जब भी मैं कभी भुआसा महाराज के दर्शन करता हूँ, आत्मविभोर हो उठता हूँ। और मन करता है सान्निध्य मे वैठा ही रहूँ, इस अभिनन्दन ग्रन्थ के विमोचन के सुअवसर पर मैं भी अपनी तरफ से श्रद्धा के फूल समर्पित करता हुआ यही कामना करता हूँ कि आपका आशीर्वाद हमे युगो-युगो तक मिलता रहे।

☐

☐ श्री निहालचन्द सोनी (मदनगज)

जिन शासन के नन्दन वन मे,
महक रहे ज्यो चन्दन।
श्रमणी प्रवरा सज्जनश्री जी,
लो शत-शत अभिनन्दन ॥

☐

☐ श्री सुरेश लूनिया (जयपुर)

रत्नगर्भा वसुन्धरा ने समय-समय पर अनमोल रत्न प्रदान किये है। उन्ही रत्नो मे एक अनमोल रत्न है—मेरे भुआसा महाराज साध्वी श्री सज्जन श्रीजी महाराज का नाम वडी निष्ठा और गर्व से लिया जा सकता है।

आप हमेशा एक महान साधिका के रूप में हमारे समक्ष परिलक्षित होती रही है। प्रतिष्ठा और ज्ञान का आप मे किंचित् मात्र भी अभिमान नही है। सर्वगुण सम्पन्न होने पर भी आप स्वभाव से सरल, विनम्र, मिलनसार एव निरभिमानी हैं। आपमे प्रत्येक साध्वी को निभाने की क्षमता है।

आप एक कुशल व्याख्यात्री भी हैं। आपकी वाणी में मधुरता तथा ओजस्विता कूट-कूट कर भरी है। आपकी वाणी मे साधना का ओज है। आप एक सुलझी हुई साधिका एवं विचारिका हैं। यही कारण है कि आप जो वात कहती हैं सीधी, सरल और अन्तर्मन को छू लेने वाली होती है। हमारा अहोभाग्य है इस पुनीत अवसर पर हमे भी श्रद्धा के दो शब्द लिखने का अवसर मिला। इस मौके पर मेरा भाव भरा अभिनन्दन है, दीर्घायु की कामना है।

☐

☐ श्रीमती रेखा लूनिया

जीवन तो सभी जीते हे, पर जीने की कला विरले व्यक्तियो मे ही मिलती है। जीवन जीने की एक शैली है, तरीका है। जो अपने आपको खपाता है वही महान् वनता है।

परम विदुषी, साधना सम्पन्न मेरे वडे ननदवाई साध्वी श्री सज्जनश्री जी एक ऐसी ही विशिष्ट साध्वी है जिनका जीवन अगरवत्ती की तरह सुगन्धित है, जो स्वय कष्ट सहकर भी आजीवन परोपकार मे जुटी हुई है। आप एक ओजस्वी और तेजस्वी साधिका है। आपने अपनी निर्मल वाणी से जन-जीवन मे अभिनव चेतना का सचार किया है।

मैंने जब भी कभी महासतिजी के दर्शन किये हमेशा ही मुस्कराते देखा। कभी भी उनके चेहरे पर क्रोध या तनाव, झुझलाहट की रेखाये नही पाई। अपनी शिष्याओ से भी वात्सल्य से ओत-प्रोत व्यवहार देखा। आपकी प्रवचन कला वहुत ही अनूठी व चित्ताकर्षक है। आपके व्याख्यानो मे यह विशेषता रही है कि उनमे गहरा चितन, मनन और अपने अनुभवो एव सत्य का उत्कृष्ट वल है वाणी मे मधुरता के साथ ही आप सदा समन्वयात्मक भाषा का प्रयोग करती है।

माध्वियो ने जिनशामन की गरिमा मे सदा ही चार चाद लगाये हैं। उन्ही साध्वीरत्ना म साध्वी श्री सज्जनश्रीजी महाराज का नाम बडे गौरव से लिया जा सकता है। आपका सरल उदार स्वभाव एव धमपरायणता तथा आत्मसाधना आपके अद्भुत व्यक्तित्व को निखारने म सदा सहायक रही है।

गुणियो के गुणानुवाद करने से कर्मों की भी निजरा होती है। मैं अपनी अनन्त श्रद्धा महासती जी के चरणो म समर्पित करती हूँ कि वे युग युग तक धम की प्रबल प्रभावना करती रहे और आपका यशस्वी जीवन सभी के लिये प्रेरणास्पद रहे। आपश्री का अभिनन्दन हमारे लिये गौरवास्पद बात है। ☐

☐ श्री चिरजीलालजी रेड

मुझे यह जानकर अति प्रसन्नता हुई कि परम-विदुषी प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी म सा की ८२वी वर्षगाठ के पावन अवसर पर एक सार्वजनिक अभिनन्दन समारोह उनके तेजस्वी व्यक्तित्व और कृतित्व को उजागर करने वाला अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है। अभिनन्दन ग्रन्थ के प्रकाशन मे देश के हर क्षेत्र व धम के लोगो पर उनके चरित्रवान जीवन का गहरा प्रभाव पडेगा। इस शुभ अवसर पर हम सब मिलकर आपका सादर अभिनन्दन करते हुए आपके शतायु होने की कामना करते हैं।

☐

☐ श्रीमती पन्ना सुकलेचा

परम विदुषी साध्वीरत्न श्री सज्जनश्री जी महाराज एक पहुँची हुई साधिका हैं और खरतर गच्छ धम सघ की वतमान म प्रवर्तिनी है। उनके गौरवमय जीवन को जब मैं निहारती हूँ तो मेरा मन बासो उछलने लगता है।

मुझे गौरव है हमारे परिवार म एसी विदुषी साध्वी है जिन्होने हमारे कुल गौरव म चार चाँद लगाये हैं। उनकी ८२वी जन्म जयन्ती पर यह अभिनन्दन ग्रन्थ समर्पित किया जा रहा है। जिससे उनकी महिमा और गरिमा स्वत सिद्ध होती है। मैं भी इस सुनहरे अवसर पर श्रद्धा सुमन अर्पित करती हूँ।

☐

☐ सुश्री शालिनी लूनिया

जैनधम के खरतरगच्छ सघ की विदुषी प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी म सा० एक अलौकिक प्रतिभा की दिव्य ज्योतिर्मय तारिका हैं।

आप खरतरगच्छ सघ की एक ओजस्वी साध्वी है। आपका जीवन अनन्त आकाश से भी अधिक विशाल है। मैं एसी परम विदुषी भुवासा म० सा० को नतमस्तक हो शत शत अभिनन्दन करती हूँ व इस मगल अवसर पर यह कामना करती हूँ कि आप युग-युग तक स्वस्थ व प्रसन्न रहकर जैनधम की ज्योति को अक्षुण्ण बनाये रखें।

☐

☐ सुश्री मायर लूनिया

साध्वी सज्जनश्रीजी म० सा० विदुषी प्रवर्तिनी। लूनिया परिवार की बेटी और गोलेच्छा परिवार की बहू। आप अलौकिक गुणो से कठिन साधना से, सतत् अध्ययन अध्यापन से, इस प्रकार महिमा मडित हुई कि स्वनामधन्या होने के साथ-साथ दोनो परिवारो का नाम भी उज्ज्वल कर दिया। हमे गर्व है कि हमारे परिवार म से एक ऐसी विभूति ने जन्म लिया जिन्होंने जिनशासन सेवा के लिए अपने जीवन को समर्पित कर दिया। आपकी कीर्ति तो ध्रुव नक्षत्र के समान खरतरगच्छ सघ की विदुषी आगमज्ञा प्रवर्तिनी के नाम से स्वत दीप्तिमयी है।

प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी म० सा० ने साधना मय जीवन के ४७ बसन्त पूर्ण किये हैं। त्याग और तपस्या के इस भव्य गरिमामय व्यक्तित्व का आज लूनिया परिवार शत शत अभिनन्दन करता है। ☐

☐ श्री मानकचन्दजी लूनिया

सज्जनश्री महाराज आपका
शत शत है अभिनन्दन ।
नतमस्तक हो श्री चरणो मे
करते है हम वन्दन ॥
आगमवेत्ता-जिनवरचेता
आप विनय की प्रतिमा ।
जैन धर्म की जागृत प्रतिभा,
अतुलनीय है गरिमा ॥
सहज सरल समता की देवी,
अभिनन्दन स्वीकार करो ।
हम अनजान अभिज्ञ प्राणि है,
मुक्तिमार्ग मे हाथ धरो ॥
शत शत वन्दन, शत अभिनन्दन,
कोटि नमन चरणो मे ।
वसो सदा जन-जन अन्तर मे,
वाणी मे नयनो मे ॥

प्रवर्तिनी आर्या श्री सज्जनश्रीजी के प्रति मेरे मन मे जो असीम श्रद्धा उत्पन्न हुई है उसका कारण यह नही है कि वे मेरी बुआजी है। इस श्रद्धा का कारण यह भी नही है कि वे जैन श्वे० खरतरगच्छ सघ के उच्च पद पर पदासीन है। यह भी इस श्रद्धा का कारण नही है कि वे आगमज्ञा है, शास्त्रज्ञ हैं, भाषाविद है, कवयित्री है तापसी है ? नही ! मेरे आत्मज्ञ मन मे प्रवर्तिनी विदुषीवर्या सज्जनश्रीजी के प्रति श्रद्धा उत्पन्न होने का एक मात्र कारण है उनका "नारी" होना ? नारी होकर भी उन्होने साधना, तपस्या, ज्ञानाराधना, सयम के पथ पर चलकर जो नारी की गरिमा को बढाया है वह निस्सन्देह पूजनीय है। "नारी नरक की खान" उक्ति को वे एक चुनौती है उस क्रातिकारी वैज्ञानिक गेलीलियो की तरह जिसने यह सिद्ध कर दिया था कि सूर्य, पृथ्वी के चारो ओर नही घूमता वरन् पृथ्वी सूर्य के चारो ओर चक्कर लगाती है। नारी उत्थान, नारी चेतना, नारी जागरण, नारी अनुशासन मे वे आज भारत के किसी भी सम्प्रदाय, किसी भी धर्म सघ, किसी भी नारीकल्याण सस्था से पीछे नही है। प्रवर्तिनी जी का पथ तलवार की धार पर चलने के समान है। पुरुष सघो का आचार्यो द्वारा सचालन इतना खतरो भरा नही जितना कि नारी सघो का सचालन करना और इस कसौटी पर कठोर अनुशासन अनुगामिनी प्रवर्तिनी सज्जनश्रीजी म० सा० सौ टक खरी उतरी है। मेरा मन यही आजानुनतमस्तक हो श्रद्धावनत हो जाता है। गुरुवर्या विचक्षणश्री जी म सा के स्वर्गवास के उपरान जैन श्वे० खरतर-गच्छ सघ प्रवर्तिनी जी की सचालन संगठन प्रतिभा के सहारे निरन्तर उन्नतिशील रहा है। क्या यह उपलब्धि किन्ही शाब्दिक प्रशसा से प्रशसनीय हो सकती है ? शब्द असमर्थ है अस्तु भावाजलि अर्पित कर ही आपश्री का अभिनन्दन हो सकता है।

प्रवर्तिनी श्री के अनेक गुणो मे अद्वितीय गुण है आपश्री की "विनम्रता" "सहजता" "सरलता"।

"अमृत रस से भरे फलो का,
वृक्ष सदा झुक जाता है।
धरती का प्राणी उसमे ही,
छाया पाता, जीवन पाता है॥

ऐसे अमृत भरे कल्पवृक्ष सी ही है प्रवर्तिनी श्री जी ! विनम्र-सहज-सरल, आज तक मैंने किसी श्रावक से, किसी शिष्या से, किसी खरतरगच्छ धर्मावलम्बी से प्रवर्तिनी जी के अहकार, असहज व्यवहार, क्रोध, आवेश के बारे में कभी कुछ नही सुना प्रत्युत सबने आपश्री को सहज सरल विनम्र शातमना ही कहकर बखाना तो क्या "खल्कए आवाज नक्काराए खुदा" नही है ? आपश्री निसदेह अभिनन्दन की अधिकारिणी हैं। अधिकारिणी हैं अपनी तपस्या से, साधना से, ज्ञान से और अधिकारिणी है अपने पिता श्री—मेरे दादाजी श्री गुलाबचन्द जी से विरासत मे मिले धार्मिक गुणो को प्रभामडित करने से।

कल की बुआजी और आज की प्रवर्तिनी श्री जी, आपके चरणो मे मेरा नतमस्तक प्रणाम। ☐

□ श्रीमती प्रेमलता गोलेछा
एव गोलेछा परिवार, जयपुर
(भू पू कोषाध्यक्ष श्री अ भा
साधुमार्गी जन महिला समिति)

शात सरल स्वभाव, लोक कल्याणी, तपस्विनी, ज्ञान मूर्ति, विदुषी, आर्यारत्न प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी महाराज साहब, (पूजनीय ताई जी म सा) के चरणो म कोटि कोटि वन्दना।

अनुपम व्यक्तित्व की धनी, मानव-मानवसे सहज प्रेम करने वाली, ज्ञानज्योति धमप्राण धमवती, आपके गुणो की महिमा जितनी गाई जाय उतनी ही कम है। आपने जयपुर रियासत के दीवान सेठ नथमलजी गोलेछा की पौत्रवधु बनकर समुराल का नाम रोशन किया। इतना महान त्याग आप जैसी पुण्यात्मा नारी ही कर सकती है। आज तीनो समाज म आपकी महिमा का गुणगान किया जाता है।

तीनो ही समाजो म स्थानकवासी की बहू बन कर, तेरापथ की लडकी, मदिरमार्गी समाज म दीक्षा ग्रहण करके तीनो ही समाजो को गौरवान्वित किया है।

आपने आत्म-कल्याण के साथ साथ लोककल्याण का भी पूरा ध्यान रखा। आपने जैन समाज मे गौरवान्वित होती हुई एक मिसाल दिखाई है। म सा आपने अपने शुद्धाचार और शातिपूर्ण जीवन द्वारा मानवता का माग दशन किया है। अहिंसा सत्य महान साधनापथ पर बढते चले जाने का सदेश दिया है।

आपकी प्रेरणाओ को जीवन म उतारकर हम अपना समग्र माग निरन्तर गतिशील रखने का प्रयत्न करेंगे। जिस प्रकार कि डॉक्टर मरीज की स्फूर्ति के लिए टॉनिक देता है उसी तरह आपके टॉनिक रूपी उपदेशो का ग्रहण करने से आत्मा म चारित्र्य स्फूर्ति का सचार होता है।

इन्ही मगल श्रेष्ठमय, कल्याणकारी शुभकामनाओ के साथ हम आपका अभिनन्दन करते ह कि आपका स्वास्थ्य सदैव सुन्दर स्वस्थ रहे आप दीर्घायु हो और मधुर वाणी स समाज को निरन्तर लाभान्वित करती रहे।

"इन्ही मगल कामनाओ से
कर रहे हम वन्दन
शत शत वन्दन करते हुए
हम कर रहे आपका अभिनन्दन।"

□

□ श्रीमती कमलादेवी लूनिया

(धमपत्नी स्व० श्री पूनमचन्द जी लूनिया)

पूज्य प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री जी महाराज सा का अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है एसी जानकारी मिलने पर मन अत्यत ही आनन्द से भर गया क्योकि किसी के भी व्यक्तित्व को पूर्ण रूप से जानने के लिए अभिनन्दन ग्रथ एक एसा माध्यम होता है जिसम भिन्न भिन्न समुदायो के व्यक्तियो द्वारा व्यक्ति विशेष के जीवन व व्यक्तित्व की सही जानकारियो का सकलन प्राप्त होता है। यह अभिनन्दन ग्रन्थ पूजनीय महाराज साहब के व्यक्तित्व का भली भाँति उजागर करने का सफल प्रयास है। इसके लिए मेरी ओर से हार्दिक शुभकामना है।

□

□ श्रीमती कमल साड

(पुत्री स्व० श्री केशरीचन्द जी लूनिया)

साध्वीरत्न श्री सज्जनश्री जी महाराज एक गुणी हुई साध्वियाँ हैं, विचारिका हैं। यही कारण है कि उनका ज्ञान गहरा है सीधी सरल और अन्तमन को छूने वाली होती है।

गुणियो का अभिनन्दन करना हमारी अपनी पुरानी परम्परा रही है। यह बहुत ही प्रसन्नता की बात है कि सज्जनश्री महाराज के अभिनन्दन ग्रन्थ

अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है। इस माध्यम से मुझे भी कुछ श्रद्धा सुमन समर्पित करने का सुनहरा अवसर मिला है। हम अपनी अनन्त आस्था के सुमन समर्पित कर अपने आपको धन्य-धन्य अनुभव कर रहे है। □

□ श्री सुशीलकुमार जी वॉठिया, जयपुर

आगमज्योति, आशुकवयित्री पूज्यवर्या प्रवर्तिनी महोदया श्री सज्जनश्री जी म सा का अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है। जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। पू० गुरुवर्याश्री का प्रभावशाली व्यक्तित्व एव गरिमामय उत्कृष्ट जीवन की सौरभ चिहुँ दिशि में महक रही है। आप सयम के प्रत्येक क्षेत्र मे निपुणता लिये हुए प्रत्येक क्षण आत्म-साधना के प्रति अर्पित है।

पू गुरुवर्याश्री के गुणो को लिपिवद्ध करने मे मैं अपनी बुद्धि से स्वय को असमर्थ अनुभव कर रहा हूँ। पू गुरुवर्या श्री के चरणो मे कोटि-कोटि वदन अभिनन्दन प्रेषित करता हुआ जिनशासनदेव से व गुरुदेव से प्रार्थना करता हूँ, पू. गुरुवर्याश्री के स्वास्थ्य के लिए।

जिनशासन की ज्योति वनकर सदा चमकती रहे इसी शुभेच्छा के साथ वाठिया परिवार की ओर से हार्दिक अभिनन्दन !

□

□ श्री हेमराजजी ललवानी

मुझे जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि पू आगम-मर्मज्ञा आशुकवयित्री पू गुरुवर्या श्री सज्जनश्री जी म. सा के ८२ वे जन्म दिवस पर उनका सार्वजनिक अभिनन्दन करने का निर्णय लिया गया है। यह अत्यन्त हर्ष का विषय है कि इस अवसर पर हम उनके सम्मान मे एक अभिनन्दन ग्रन्थ उन्हे समर्पित करने जा रहे है।

मै आशा करता हूँ कि आपश्री को समर्पित किया जाने वाला अभिनन्दन ग्रन्थ आपके जीवन दर्शन और साधना के वारे मे प्रेरणास्पद जानकारी प्रदान करेगा। □

□ श्री प्रकाश वॉठिया, एवं परिवार जयपुर

अत्यन्त प्रसन्नता का विषय है लूनिया परिवार के द्वारा प. पू गुरुवर्या श्री का अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है।

आपश्री का सम्पर्क मुझे वचपन से ही प्राप्त हुआ। जव से मैंने आपश्री के जीवन को देखा, परखा, जाना, सुना और उसमे मुझे अनेक ऐसी विशेषताएँ मिली जो अन्य लोगो मे वहुत अल्प मात्रा मे दृष्टिगत होती है यथा—अध्ययन और अध्यापन, सेवा और समर्पणशीलता, सरलता, सहजता, वात्सल्य और प्रेम। ऐसी महान आत्मा दीर्घकाल तक चिरायु वन शासन सेवा मे अभिवृद्धि करे। और हम सव पर आपकी कृपा दृष्टि अविच्छिन्न सतत् रूप से प्रवाहमान होती रहे। □

□ श्री प्रेमचन्दजी धाधिया, जयपुर

सौम्यस्वभावी, स्वाध्यायप्रेमी, आगमज्ञ, पू० प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री जी म सा. के अभिनन्दन ग्रन्थ के प्रकाशित होने का समाचार पढकर हार्दिक प्रसन्नता हुई। यह ग्रन्थ सुन्दर, आकर्षक व समाजोपयोगी हो, यही मेरी हार्दिक भावना है। □

□ श्री जोगराज भैरूँलाल भंसाली (गढ़सिवाना)

प पू प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री जी म सा के दीक्षा स्वर्ण जयन्ती के सुअवसर पर भसाली परिवार का शत्-शत् अभिनन्दन !

मुझे आपश्री के दर्शनो का प्रथम सौभाग्य सिवाना नगर में प्राप्त हुआ। आपश्री का जीवन प्रत्येक दृष्टि से - सेवा पक्ष की दृष्टि से, अध्ययन पक्ष की दृष्टि से, सरलता सहजता की दृष्टि से, देखे तो सर्व गुणो से समन्वित है। आपकी प्रवचन

उनके स्वस्थ स्वास्थ्य की मंगल कामना करता हुआ मुझ पतित पर सदा कृपा दृष्टि रहे यही श्री चरणो में विनम्र प्रार्थना है।

पू० गुरुवर्याश्री का मुझ पर असीम उपकार है। उस उपकार से कृतघ्न न बनू। कृतज्ञ बन मोक्ष को प्राप्त करूँ। यही गुरुवर्याश्री के चरणो मे मेरी अभ्यर्थना है। □

□ श्री मोहनचन्दजी गोलेच्छा, उटकमण्ड

पूज्यवर्या, आगम मर्मज्ञा, प्रवर्तिनी श्रीसज्जनश्री म०सा० का लूनिया परिवार की ओर से अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है, जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई।

गुरुवर्याश्री जैन समाज की निधि है, आप यथा नाम तथागुण से ओत-प्रोत है। आपकी भद्र प्रकृति सभी को प्रभावित करती है। आप खरतरगच्छ की शान है।

आप ज्ञान, ध्यान, तप, जप की उत्कृष्ट साधिका हैं। आप मे करुणा की भावना कूट-कूट कर भरी हुई है। शरण मे आये प्रत्येक प्राणी को जिनवाणी का अमृत पान कराती है। इनकी वाणी जनकल्याणी, हितकारिणी है। पू० महाराज के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर ही मेरी बहिन किरण ने १० वर्ष की उम्र मे ही उन्हे गुरु के रूप मे चुनकर संयम हेतु जीवन समर्पित कर दिया। ३२ वर्ष से सयमी जीवन व्यतीत करती हुई, शासनसेवा व गुरुवर्या की सेवा मे रत है जो वर्तमान मे पू० शशिप्रभाश्रीजी म०सा० के नाम से प्रख्यात है।

यह अभिनन्दन ग्रन्थ जिस दिव्य प्रतिभा मूर्ति के चरणो मे समर्पित होगा। वास्तव मे वे गुलाब सी मोहकता लिये हुए हैं। व्यक्तित्व निस्सन्देह निखरा हुआ है, निशक बिखरा हुआ है।

मैं भी व अपने परिवार की ओर से भावाभिनदन श्रद्धाभिनदन उन पावन परम पवित्र श्रीचरणो मे समर्पित करता हुआ गुरूदेव से प्रार्थना करता हू कि इन्हे स्वस्थ स्वास्थ्य प्रदान करे। □

□ श्री भगवानचन्दजी छाजेड़ एव समस्त परिवार

परम पूज्या प्रवर्तिनी महोदया गुरुवर्या श्रीसज्जन श्रीजी महाराज साहब के ८२ वर्ष प्रवेश के प्रसग पर समस्त छाजेड़ परिवार आपका हार्दिक अभिनन्दन करता है।

मेरा अहोभाग्य है कि आपश्री के दर्शनो का लाभ मुझे सिवाना नगर मे प्राप्त हुआ। मार्गदर्शन से ही मेरा मन आपकी ओर श्रद्धान्वित हो गया। जब मैंने आपका त्याग, तप, सयम से परिपूर्ण प्रवचन सुना तभी मे मेरा मन धर्म की ओर उन्मुख हुआ। धर्म क्या है ? धर्म क्यो करते हैं ? धर्म से क्या लाभ होता है ? इत्यादि जानकारी मुझे आपके सम्पर्क मे प्राप्त हुई। इससे पूर्व मैं कुछ भी नही जानता था। आपके आध्यात्मिक प्रवचन से न केवल मेरा ही मन अपितु मेरी भतीजी जो पूज्याश्री के सान्निध्य में अध्ययनरत है, ने तो अपना सर्वस्व ही गुरुवर्याश्री के चरणो मे समर्पित कर दिया। इस प्रकार आपके अद्भुत व अनुपम प्रवचन से एक दो ही नही हजारो व्यक्ति धर्म की ओर अग्रसर हुए।

मैं गुरुदेव से अभ्यर्थना करता हूँ कि ऐसी महान् आत्मा दीर्घायु चिरायु बने। समस्त छाजेड़ परिवार पर आपकी कृपादृष्टि अनवरत रूप मे सतत् प्रवाहित होती रहे। □

□ श्रीमती इन्दूबाला संखवाल, दिल्ली

यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव हुआ कि साध्वी श्री सज्जनश्री जी म० सा० की ८२ वी वर्षगाठ के उपलक्ष्य पर एक अभिनन्दन ग्रन्थ का प्रकाशन होने जा रहा है। पूज्य म० सा० मेरी ताईजी है और मेरा बचपन उनके वात्सल्यरूपी प्यार-दुलार के साथ उन्ही की गोद में बीता था।

वीर प्रभु से मै यही मगल कामना करती हूँ कि आपके जीवन से प्रेरणा पाकर हम भी अपने मानवजीवन को सार्थक करे। साध्वी श्री शशिप्रभा जी म० को अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशन करने के लिए आभार प्रकट करती हूँ। □

□ श्री हुक्मीचन्दजी लूणिया, व्यावर

ससार म अनेक व्यक्ति ह। किन्तु हर व्यक्ति अभिनदन के काबिल नही होते हैं परन्तु पूज्या प्रवर्तिनी श्री पूर्ण रूप से अभिनदन के योग्य हैं।

आपमे साधकीय जीवन के गुण पूर्ण रूप से विद्यमान है। हम सुनते हैं कि सन्त निर्विकल्प होना चाहिये, निस्पृह, निर्लेप होना चाहिये। ये ही सन्त के गुण पूज्य महाराज श्री के जीवन म मैंने निकटता स देखा।

पूज्या श्री के व्यावर चातुमास म मैंने प्रथम ही अनुभव किया वो किसी भी बाह्य प्रवृत्ति म भाग नही लेती, आने जाने वाला से उन्ह कभी भी व्यर्थ का आलाप करते हुए नहीं देखा, कभी किसी मे जोश से बात करते नही देखा।

यदि दर्शक पाँच दिन म आये चाहे दस दिन म, चाहे महीने म आये कभी भी उपालम्भ की भाषा मे उलाहना देते हुए नही देखा, सदा स्वय के स्वाध्याय म, साधना म समय सम्पूर्ण करना इसी लक्ष्य के साथ समय का सदुपयोग करती है।

गुरुदेव से मैं हार्दिक प्रार्थना करता हूँ कि पूज्या श्री चिरायु दीर्घायु बन समान गच्छ का अभ्युत्थान कर प्राणी मात्र को मोक्ष का अधिकारी बनावे। □

□ श्री राजेन्द्र नाहटा, भोपाल

अनोखे बहु अनुभवी, सरल स्वभावी-यशस्वी तपस्वी चहुँमुखी व्यक्तित्व की धनी, साहित्यप्रेमी एव धार्मिक शिक्षण म जिज्ञासु, सेवा परायणा आगमज्योति परम पूजनीय प्रवर्तिनी महोदया श्री सज्जनश्रीजी महाराज साहब के दर्शन अनेक प्रसगो पर हुए। गत अनेक वर्षो से श्री खरतरगच्छ महासघ के कार्यक्रमो के सदर्भ म मार्ग दर्शन एव प्रेरणा की स्रोत रही हैं। आपश्री ने खरतरगच्छ की गतिविधियो, सगठन उद्देश्यो मे विशेष रुचि ली है।

बहुत समीप से मैं उनकी कार्य प्रणाली एव मधुर भाषा स अत्यन्त प्रभावित हुआ हूँ।

मैं इनके गुणो के प्रति विनयावन्त हूँ। आप जन समाज की प्रकाश स्तम्भ हैं और वर्षो अपने प्रकाश से सबको आलोकित करेंगी।

इसी श्रृखला मे 'पुण्य जीवन ज्योति', श्रमण सवम्व, 'श्री कल्पसूत्र आदि अनेक रचनाये प्रकाशित की है। □

□ प० कन्हैयालालजी दक, उदयपुर

जिस महान् आत्मा के गुणानुवाद करने के लिए यह अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है, वे प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी विशुद्ध सामयिक चारित्र की आराधिका हैं, उनका ज्ञान, दर्शन व चारित्र रूप रत्नत्रय की प्राप्ति करते रहने का निरन्तर लक्ष्य रहा है। उनकी गुण गरिमा का अभिनदन करना सयम, तप तथा त्याग का अभिनन्दन करना है।

इस प्रकार के शुद्ध सयम का पालन करके जीवन को धन्य व सार्थक बनाने वाली साधिका को शत शत वन्दन। □

□ श्री मूलचन्दजी मिश्रीमल छगनमल भंसाली

जैन जगत की अनुपम ज्योति आगम ममज्ञा, शासन प्रभाविका महामना प्रवर्तिनी पदासीन परम श्रद्धेया पूज्या श्री सज्जनश्री जी म सा के विशिष्ट व्यक्तित्व से प्रभावित होकर जयपुर श्रीसघ ने पूज्याश्री के सयमी जीवन की स्वर्ण जयन्ती के उपलक्ष्य म 'अभिनदन ग्रन्थ' प्रकाशित करने का जो निर्णय लिया है वह अत्युत्तम, प्रशसनीय व अनुकरणीय है। □

□ सुश्री सुरजी

भगवान महावीर का सदेश है—गुणो के विकास के लिए सूत्र है— गुणीजनो की चर्चा, गुणीजनो की वाणी का श्रवण, गुणीजनो के गुणो का वर्णन और गुणीजनो के गुणो का नेहदिल से गुणगान।' अनेकानेक गुणो की स्वामिनी प्रवर्तिनी पू श्री सज्जनश्रीजी म सा के गुणो के अभिनन्दन के लिये अभिनदन ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है।

जीवन मे गुणो का विकास होना ही जीवन की सार्थकता है। ऐसे व्यक्तित्व को ही दुनिया नमन करती है। वन्दन करते हुए आशीर्वाद चाहती हूँ कि मुझ मे भी इन गुणो का विकास हो। ☐

☐ श्रीमती मेमबाई सुराणा

पिछले ३२ वर्षों मे मैंने प्रवर्तिनीश्रीजी के अनेक बार दर्शन किये। करीब ५ वर्ष निरन्तर उनके जयपुर वर्षावास मे तो उन्हे निकट से देखने का खूब अवसर मिला।

मैंने देखा है—प्रवर्तिनीश्रीजी प्रारम्भ मे ही सेवा और सहनशीलता की प्रतिमूर्ति है। गुरुसेवा मे वे सदा तत्पर रही है। किसी के जीवन मे सेवा गुण अधिक और किसी के जीवन मे स्वाध्याय अधिक होता है किन्तु प्रवर्तिनीजी ने सेवा और स्वाध्याय दोनो ही क्षेत्रो मे अग्रिम पंक्ति मे स्थान लिया।

सरल और सहज व्यक्तित्व से परिपूर्ण प्रवर्तिनी जी का आने वाले प्रत्येक व्यक्ति के प्रति सहज वात्सल्यभाव रहता है।

सन्तो का जीवन वृहस्पतिपुत्र भी वर्णन करने मे समर्थ नही तो मै सामान्य श्राविका तो कह ही क्या सकती हूँ। मात्र श्रद्धा के दो शब्द आपश्री के चरणो मे समर्पित करती हुई अपने इष्ट देव से आपकी दीर्घायु की शुभकामना करती हूँ।

हे ज्ञानज्योतिपुंज गुरुवर,
सहज हो तुम सरल हो।
जिनशासन की इस बगिया के,
पुष्प एक तुम विरल हो।
नाम सज्जन, हृदय सज्जन,
गुणो के भण्डार हो।
क्या कहूँ गुण आपरा,
वन्दन हजार वार हो। ☐

☐ श्री विजयकुमारजी कक्कड, सरवाड़

पृथ्वी पर आदि अनादि से समय-समय पर महान् विभूतिया हुई है, जिन्होने अपने अनूठे व्यक्तित्व द्वारा दुनियाँ को ज्ञान रूपी प्रकाश से देदीप्यमान किया है।

आज के युग में ऐसी ही एक महान विभूति है, जिनकी रग-रग मे चन्द्रमा के समान शीतलता, नभ के समान विशालता, करुणा, दया, वात्सल्यता कूट-कूट कर भरी है। ऐसे व्यक्तित्व की धनी समता मूर्ति, आगम वेत्ता, मधुर वृक्त्री, आशुकवयित्री पूज्य गुरुवर्या श्री सज्जनश्रीजी म सा हैं।

ऐसी पूज्य गुरुवर्याश्री ने अपने जीवन को पूर्ण रूप से जिनशासन के प्रति समर्पित कर दिया है। हमेशा पठन, पाठन एव स्वाध्याय मे अपने आपको तल्लीन रखकर, आगम व शास्त्रो का गूढ अध्ययन कर सांसारिक प्राणियो को उनका सार बताना आपके जीवन का प्रमुख ध्येय रहा है।

ऐसी महान विभूति के अभिनन्दन समारोह पर उनके चरणो मे शत-शत वन्दन करता हुआ अपने इष्ट देव से उनकी सहस्रायु होने की प्रार्थना करता हूँ। ☐

☐ श्री भीखमचन्दजी कोचर, खडगपुर

मेरे हृदय के उद्गार है कि गुरुवर्याश्री की जितनी प्रशंसा की जावे वह कम है। मेरे परिवार को उज्ज्वल बना दिया। नरकवासी को मोक्ष का द्वार बता दिया। ऐसी महान् विभूति कोकिल कंठी ज्ञान दृष्टि रखने वाली पुण्य आत्मा को बार-बार वन्दना करता हूँ। धन्य है उनके माता-पिता को जो ऐसा दुर्लभ रत्न समाज को भेट दिया। ऐसी महान् विभूति के दर्शन मात्र से कई भवो के कर्म नष्ट हो जाते है। ☐

- श्री सिरहमल नवलखा,
श्रीमती प्रेमलता नवलखा, जयपुर

आगम ज्योति प्रवर्तिनी आर्यारत्न पूज्य श्री सज्जनश्री महाराज साहिबा का हम अभिनन्दन समारोह मनाने जा रहे हैं। आप जैसी कला सपन्न, परम विदुषी, स्वल्प मधुरभाषी, अध्ययनशील एव गहन गम्भीर तात्विक एव आध्यात्मिकता से ओत-प्रोत साध्वी जी हमारे समाज मे विरली ही हैं। आपको शत शत नमन।

ऐसी गुण गरिमा एव सयम तप त्याग मे ओत-प्रोत प्रवर्तिनीजी के अभिनन्दन का सौभाग्य हम प्राप्त हो रहा है वस्तुत यह हमारा ही परम अहो भाग्य है। इस शुभ अवसर पर हम आपके प्रति पूर्ण श्रद्धा से नतमस्तक हैं, एव आपके यशस्वी जीवन से प्रेरणा लेकर अपना जीवन भी सार्थक बनाने का सकल्प लेते हैं। □

□ श्री दुलीचन्दजी टाक (जयपुर)

परम पूज्या गुरुवर्या, प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री जी म सा के विषय मे कुछ लिखना सूर्य को दीपक दिखाने जैसा है। आपश्री आशुकवयित्री आगमज्ञा ज्योतिष, ध्यान आदि विषयो की ममज्ञा तो हैं ही साथ ही अत्यन्त शात एव सरल स्वभावी हैं।

जयपुर सघ का अपूर्व सौभाग्य है कि आपश्री के दर्शन वदन का लाभ सतत मिल रहा है। हम श्रावक तो मात्र उनके गुणो की अनुमोदना ही कर सकते हैं। शासन देव से प्रार्थना है कि आपश्री दीर्घायु होकर सघ की सम्भाल करती रहे। □

□ श्री बलवन्तराजजी भन्साली

अभिनन्दन समारोह के इस अवसर पर पूज्य प्रवर्तिनी जी म सा के वैदुष्य और सयमन्याग त्यागपूर्ण गुणगरिमा का अभिनन्दन करते हुए मैं आपके सुस्वास्थ्य तथा दीर्घायु की कामना करता हूँ। □

□ श्री गजेन्द्रकुमार जी भसाली, उदयपुर

श्री जैन श्वेताम्बर खरतरगच्छ सघ जयपुर भाग्यशाली है जिसे ऐसी पूज्यवर्याश्री जी का अभिनन्दन करने का सुयोग मिल रहा है।

ऐसा अभिनन्दन वस्तुत राष्ट्र, समाज एव खरतरगच्छ सघ के लिए नयी चेतना का अभिनन्दन है? ऐसे शुभ कार्यों के सयोजकों को मैं साधुवाद देता हूँ। और इस महोत्सव की हीरकोज्ज्वल सफलता के लिए हार्दिक मगलभावना प्रेषित करता हूँ। पूज्यवर्याश्री जी को शुभकामनाएँ देकर रस्म अदायगी करना धृष्टता होगी, सस्कृति के इस सवाहक को मैं अपना प्रणाम अर्पित करता हूँ। □

□ श्री मानमलजी सुराणा,
एव सम्पूर्ण परिवार
अजमेर (राज०)

अत्यन्त हार्दिक प्रसन्नता है कि प श्रद्धेया प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री जी म० सा० के ८२वें जन्म जयन्ती महोत्सव पर श्री जैन खरतरगच्छ सघ वैशाख शुक्ला पूर्णिमा वि० स० २०४६ तदनुसार शनिवार दि० २० मई १९८९ को जयपुर नगर मे अभिनन्दन समारोह समायोजित कर रहा है। चतुर्विध सघ पर प पूजनीया प्रवर्तिनी जी के अनेक उपकार हैं। आपका आदर्श जीवन हम सबके लिये धर्म आराधना हेतु परम प्रेरणास्पद है। इस शुभावसर पर प पू प्रवर्तिनी श्री के चरण कमलो मे नतमस्तक होकर सविनय वदना अर्ज करता हूँ और शासन देव से प्रार्थना करता हूँ कि आप चिरायु और स्वस्थ रहकर इसी प्रकार जैन शासन की सेवा एव प्रभावना करती रहे एव आपकी आज्ञानुवर्तिनी विदुषी शिष्याएँ भी आपके आदर्श जीवन का अनुकरण करें और आत्मकल्याण व लोककल्याण द्वारा जैन शासन की शोभा बढाती रहें। □

उसी प्रकार पू गुरुवर्य्याश्री ने मुझे सद्मार्ग बताकर मुझ पर अनन्य उपकार किया है।

विचक्षण भवन का निर्माण चल रहा था तब गुरुवर्य्याश्री की प्रेरणा से ही मैने व्याख्यान हाल बनवाने मे सम्पत्ति का सदुपयोग किया।

गुरुवर्य्याश्री के चरणो मे सश्रद्धा, सभक्ति, सविनय प्रार्थना करती हूँ कि जब-जब भी कुमार्ग पर भटकूँ सदा आप मुझे ज्ञान की ज्योति दिखा सुमार्ग पर ले आये।

गुरुदेव से प्रार्थना करती हूँ कि पू० गुरुवर्य्याश्री दीर्घायु बन ससार-रसिक जीवो को अपने उपदेश से शासन-रमिक—मोक्ष-रसिक बनाये। इसी शुभ-कामना के साथ— □

□ विमला झाडचूर, जयपुर

··· बहुमुखी प्रतिभा और आपके द्वारा प्रेरित भक्ति ज्ञान से देश परिचित है। आपने अपनी उच्चतम साधना एव ज्ञान के द्वारा देश और विदेश के सहस्रों मानव प्राणियो का कल्याण किया है। आपश्री सरल स्वभावी शान्तमूर्ति है आपकी अमृत-मयी वाणी और आशीर्वाद मे जैसे जादू ही भरा है।

मेरा स्वय का अनुभव है कि कभी ज्वर या सिर मे दर्द या अन्य कोई व्याधि शरीर मे हो जाती है तो आपश्री का वासक्षेप आशीर्वाद मिलते ही शान्ति अनुभव होती है। जब भी मैं उपाश्रय मे आती तो आप जैसी शान्ति-मूर्ति के दर्शनो से आत्मा को अनन्त शान्ति मिलती है। मेरी तो प्रतिक्षण यही इच्छा रहती है कि आपश्री के पास ही बैठी रहूँ और अमृतमयी वाणी का पान करती रहू। आपश्री की वाणी मे मानो अमृत ही बरसता है बस मन यही चाहता है कि आपश्री बोलती ही रहे।

मैं आपश्री से इतनी प्रभावित हूँ कि यद्यपि मैं सांसारिक जीवन मे रह रही हूँ लेकिन प्रतिक्षण आपश्री की निराली छवि आँखो के सामने छायी रहती है और घर के कार्य करती हुई भी ध्यान आपश्री की ओर चला जाता है। मैंने अपने जीवन मे ऐसी शान्त सरल छवि कभी किसी की नही देखी। आप युग-युग तक जैन शासन की प्रभावना करती रहे। □

□ कमलेश भंडारी, जयपुर

मुझे जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है कि पू प्रवर्तिनी गुरुवर्य्या श्री सज्जनश्री जी म० सा० के त्याग-तप-सयम का शालीन अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है?

वैसे तो उनका जीवन ही त्याग-तप-सयम से परिपूर्ण है फिर भी लिखित शब्दो के माध्यम से उनके गुणो को एक सूत्र मे बाँधने का जो निर्णय लूणिया परिवार ने लिया है वे बहुत ही भाग्यशाली है।

मैंने गुरुवर्य्या श्री को बहुत ही निकटता से देखा—देखने पर कभी ऐसा न पाया कि उनके जीवन मे प्रमाद है। सदा अप्रमत्तदशा मे रहती हुई स्वयं स्वाध्याय करती है व अन्यो को करवाती है।

अध्ययन व अध्यापन मे सदा मग्न रहती हुई आत्म गुणो को विकसित करने मे अपने जीवन के हर क्षणों को जोडा। बाह्य व्यर्थ के कार्यो मे कभी भी अमूल्य क्षणो को नष्ट नही करती है।

गुरुदेव से प्रार्थना करती हूँ कि आपश्री के जीवन के आशिक गुण मेरे जीवन मे भी प्रविष्ट हो जिससे मेरा जीवन सफल बने व सत्पथ को प्राप्त कर संसार के जन्म-मरण के चक्र से छूटकर सिद्धत्व को प्राप्त करूँ। □

काव्यांजलियाँ

है। प्रमाद और आलस्य तो उनसे कोसों दूर रहता है, क्योंकि व हर समय पठन-पाठन और लेखन काय म तल्लीन रहती है। इनका प्रमुख गुण यह है कि स्वकल्याण और विश्वास का ध्यान रखने के साथ साथ आप जनकल्याण और समाजोत्थान की भावना म भी ओत प्रोत हैं। अभिनन्दन के अवसर पर मेरा शत शत वन्दन। ☐

☐ श्रीमती ताराकुमारी झाडचूर

शब्दों की एक सीमा होती है उनम इस असीम अनुपम ज्योतिमय व्यक्तित्व को अभिव्यक्त करना सम्भव नही है तथापि विचारों की तरंगों को रोक नही पा रही हूँ। मैं करीब ३८ वष पूव जयपुर के झाडचूर परिवार म आई थी तब पूज्य गुरुवर्या के अलौकिक व्यक्तित्व का प्रभाव पडा था और शन शनै वह गूढ होता गया। वे अत्यन्त सरल एव करुणाहृदयी हैं। इतनी बुद्धिजीवी होकर भी जरा सा भी मान नही है, न पद की लालसा है और न ही नाम की आकांक्षा। ऐसी गुरुवर्या के दशन एव स्पश स जिस सुख की अनुभूति होती है सम्भवत उसे ही परमानन्द कहा गया है। मुझे शुरू से ही पुराने स्तवन अच्छे लगते ह क्योंकि उनमे भावाभिव्यक्ति बहुत ही उत्कृष्ट होती है। गुरुवर्या म कुछ स्तवन भले ही वे फिल्मी गानों की तज पर ही क्यों न हों, अत्यन्त सारगर्भित हैं। गुरुदेव के एक भजन की आखरी पक्ति म पूज्य गुरुवर्या ने कहा है "दो ज्ञानमय उपयोग एसा आतम को जाने," कितना आध्यात्मिक भाव एव कितना सरल कि साधारण व्यक्ति के भी समझ म आ जाए।

जयपुर श्री सघ पर गुरुवर्याश्री की विशेष कृपा रही है। जब भी प्रमाद म फँस कर धम कृत्य छोड देते हैं तो पुन जागृत करती रहती है। कितना प्यार एव कितनी आत्मीयता है। ऐसी महान विभूति के चरणों मे त्रिकाल वन्दन करते हुए पूज्य गुरुवर्याश्री के आरोग्य तथा दीघ जीवन की गुरुदेव से मगल कामना करती हूँ। ☐

☐ श्री जोगेश्वरनाथजी सड

धम प्रवर्तिनी पूज्यवर्या प्रवर्तिनी सज्जनश्रीजी म० साहब, आगम ज्योति के इस अभिनन्दन समारोह के लिये मेरी हार्दिक शुभ-कामनाय तथा ऐसी महाप्राण साध्वीजी के सुस्वस्थ होने तथा शतायु होने की मगल कामना अर्पित करता हूँ। शत शत नमन। ☐

☐ श्रीमती रत्ना ओसवाल

(सहमन्त्राणी अखिल भारतीय महिला समिति, राजनांद गांव म० प्र०)

अपने आचार विचार की समतल पृष्ठभूमि पर व्यक्तित्व की परिभाषा बन उभरता है, वही सत है, वही साध्वी है। परम पूज्य प्रवर्तिनी साध्वी श्री सज्जनश्रीजी का व्यक्तित्व आचार विचार की समन्विति से मडित है। इस मगल बेला पर उन्हें शत शत मेरा वदन। ☐

☐ श्रीमती भवरदेवी गोलेच्छा

अत्यन्त हष का विषय है कि आगमज्ञा विदुषीवर्या समता मूर्ति सरल स्वभावी सुपुनीत सत महामहिम प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी म० सा० के अभिनन्दन ग्रन्थ का प्रवतन प्रकाशन होने जा रहा है। वास्तव म यह सत का सम्मान तो है ही उससे अधिक यह उनके कर्मों से जुडे अन्य सुपुनीता के सद्गुण ग्रहणात्मकता का प्रकाशन भी है।

अन्त मे मैं इतना ही कहूँगी

'बदौ गुरुपद पदुम परागा।
सुरुचि सुवास सरस अनुरागा॥
अमिय मूरिमय चूरन चारु।
शमन सकल भवरुज परिवारू॥

गुरुवर्या के चरणों म कोटिश प्रणाम। ☐

□ साध्वी रभाश्रीजी महाराज

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि भगिनी प्रवर्तिनी श्रीसज्जनश्रीजी महाराज का अभिनन्दन किया जा रहा है।

उनका व्यक्तित्व अपने आप म अनुपम व अनुकरणीय है।

गुरुदेव से प्रार्थना है कि चिरायु बन जिनशासन की सेवा सलग्न रहे। □

□ श्री ज्ञानचन्दजी लूनावत

(मन्त्री श्री जिनदत्त सूरि सेवा सघ कलकत्ता)

पूज्यवर्या प्रवर्तिनी महोदया श्रीसज्जनश्रीजी महाराज साहब क अभिनन्दन समारोह क समाचार जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई। आपश्री म ऐसे अनेको गुण हैं जिससे मस्तक श्रद्धा स स्वत ही झुक जाता है। आपश्री प्रकाण्ड विदुषी है। प्रकाण्ड विद्वान होना बहुत बडी बात है किन्तु उससे भी बडी बात है विद्वत्ता का लेश मात्र भी अहकार न होना। विद्वत्ता की उच्च स्थिति म पहुँचने के बाद भी अहकार पर विजय पाने वाले व्यक्ति तो नगण्य ही होते हैं। पूज्या प्रवर्तिनीजी इस गुण को प्राप्त करने म पूर्ण समर्थ हुई हैं।

व्यर्थ की विकथा से दूर रहकर धर्मध्यान व शुक्ल ध्यान मे रहना मुनि जीवन का प्रमुख गुण है। प्रवर्तिनी महोदया सदा ही विकथा से दूर तप-स्वाध्याय म लीन रहती है। आपश्री मे, ज्ञान एव चारित्र दोनो का एक साथ समावेश है।

इसके अतिरिक्त विनम्रता, मधुर भाषणता, सेवाभावना आदि अनेक गुण आप मे है। आपश्री केवल विदुषी ही नही, वक्तत्व कला सम्पन्न, सफल लेखिका एव कवयित्री भी हैं। आपश्री का अभिनन्दन करते हम अत्यन्त हर्ष हो रहा है।

□ श्री महताबचन्दजी बाठिया, बम्बई

अत्यन्त आनन्द का अनुभव हो रहा है कि पूज्या प्रवर्तिनीश्री का अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है।

पू गुरुवर्याश्री जैनाकाश की दिव्यतारिका हैं। आपश्री स्वभाव से पूरी तरह मुनित्व जीवन से निकट हैं। साधुत्व का लक्षण हैं—समता व अनासक्ति। जिनके जीवन मे य दो गुण आत्मसात हो गये, वे निश्चित रूप से निग्रन्थ बन गये। पू गुरुवर्याश्री को इन्ही गुणो से परिपूर्ण देखा।

मैं अन्त करण से हार्दिक अभिनन्दन करता हुआ यही शुभकामना करता हूँ कि पूज्या प्रवर्तिनीजी दीर्घायु बन ससार रसिको को शासनरसिक बनायें। □

□ श्री हमचन्द चौरडिया

(व्यवस्थापक ज्ञान भडार,
श्री जन श्वे खरतरगच्छ सघ, जयपुर)

यह मन का व्यापार निरन्तर,
इसमे तो वह छूट सकेगा।
तोडेगा ममता के बन्धन
कर पायगा आत्म नियन्त्रण
जिसन मन को जीत लिया—,
वह जीवन को जीत सकेगा।

कवि के उपरोक्त विचारो को सार्थक करने वाली प्रवर्तिनी सज्जनश्रीजी महाराज साहब का अभिनन्दन करना अपने आप म एक महान पुण्य कार्य है।

आपके आदर्श चरित्र, सौम्यता, सयम, सरल स्वभाव, हृदय की भव्यता एव विद्वत्ता का अभिनन्दन करके सम्पूर्ण जन समाज गौरवान्वित होगा ही, साथ ही साथ जन समाज के उत्थान मे आपका योगदान सदव की भाँति मिलता रहगा। आप दीर्घायु हो इसी कामना के साथ। □

□ श्रीमती प्रेमदेवी झाडचूर (जयपुर)

हार्दिक प्रसन्नता का विषय है कि पू गुरुवर्या श्री सज्जनश्रीजी म सा का अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है।

जिस तरह से माँ अपने बच्चे को अगुली पकडकर सही रास्ता बताती है, भटकने नही देती है

उसी प्रकार पू गुरुवर्य्याश्री ने मुझे सद्मार्ग बताकर मुझ पर अनन्य उपकार किया है।

विचक्षण भवन का निर्माण चल रहा था तब गुरुवर्य्याश्री की प्रेरणा से ही मैंने व्याख्यान हाल बनवाने मे सम्पत्ति का सदुपयोग किया।

गुरुवर्य्याश्री के चरणो मे सश्रद्धा, सभक्ति, सविनय प्रार्थना करती हूं कि जब-जब भी कुमार्ग पर भटकूँ सदा आप मुझे ज्ञान की ज्योति दिखा सुमार्ग पर ले आये।

गुरुदेव से प्रार्थना करती हूँ कि पू० गुरुवर्य्याश्री दीर्घायु बन ससार-रसिक जीवो को अपने उपदेश से शासन-रसिक—मोक्ष-रसिक बनाये। इसी शुभ-कामना के साथ— ☐

☐ विमला झाड़चूर, जयपुर

" बहुमुखी प्रतिभा और आपके द्वारा प्रेरित भक्ति ज्ञान से देश परिचित है। आपने अपनी उच्चतम साधना एव ज्ञान के द्वारा देश और विदेश के सहस्रों मानव प्राणियो का कल्याण किया है। आपश्री सरल स्वभावी शान्तमूर्ति है आपकी अमृत-मयी वाणी और आशीर्वाद मे जैसे जादू ही भरा है।

मेरा स्वय का अनुभव है कि कभी ज्वर या सिर में दर्द या अन्य कोई व्याधि शरीर मे हो जाती है तो आपश्री का वासक्षेप आशीर्वाद मिलते ही शान्ति अनुभव होती है। जब भी मै उपाश्रय मे आती तो आप जैसी शान्ति-मूर्ति के दर्शनो से आत्मा को अनन्त शान्ति मिलती है। मेरी तो प्रतिक्षण यही इच्छा रहती है कि आपश्री के पास ही बैठी रहूँ और अमृतमयी वाणी का पान करती रहू। आपश्री की वाणी मे मानो अमृत ही बरसता है बस मन यही चाहता है कि आपश्री बोलती ही रहे।

मैं आपश्री से इतनी प्रभावित हूँ कि यद्यपि मैं सासारिक जीवन में रह रही हूँ लेकिन प्रतिक्षण आपश्री की निराली छवि आँखो के सामने छायी रहती है और घर के कार्य करती हुई भी ध्यान आपश्री की ओर चला जाता है। मैंने अपने जीवन मे ऐसी शान्त सरल छवि कभी किसी की नही देखी। आप युग-युग तक जैन शासन की प्रभावना करती रहे। ☐

☐ कमलेश भडारी, जयपुर

मुझे जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है कि पू प्रवर्तिनी गुरुवर्य्या श्री सज्जनश्री जी म० सा० के त्याग-तप-सयम का शालीन अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है ?

वैसे तो उनका जीवन ही त्याग-तप-संयम से परिपूर्ण है फिर भी लिखित शब्दो के माध्यम से उनके गुणो को एक सूत्र मे बाँधने का जो निर्णय लूणिया परिवार ने लिया है वे बहुत ही भाग्यशाली है।

मैंने गुरुवर्य्या श्री को बहुत ही निकटता से देखा—देखने पर कभी ऐसा न पाया कि उनके जीवन मे प्रमाद है। सदा अप्रमत्तदशा में रहती हुई स्वय स्वाध्याय करती है व अन्यो को करवाती है।

अध्ययन व अध्यापन मे सदा मग्न रहती हुई आत्म गुणो को विकसित करने में अपने जीवन के हर क्षणो को जोडा। बाह्य व्यर्थ के कार्यो मे कभी भी अमूल्य क्षणो को नष्ट नही करती है।

गुरुदेव से प्रार्थना करती हूँ कि आपश्री के जीवन के आशिक गुण मेरे जीवन मे भी प्रविष्ट हो जिससे मेरा जीवन सफल बने व सतपथ को प्राप्त कर ससार के जन्म-मरण के चक्र से छूटकर सिद्धत्व को प्राप्त करूँ। ☐

काव्यांजलियाँ

करते तेरा अभिनन्दन !

—गणी श्री मणिप्रभसागरजी म

सज्जनश्री की काया के मिस सज्जनता न धारा अग ।
सज्जनता की उपासना चल, रही निरन्तर नित्य अभग ।। १ ।।

महावीर प्रभु के शासन का, लिये हुए शुभ यश धवल ।
परिणामो की परम धवलिमा पल पल बना रही उज्ज्वल ।। २ ।।

शम दम सयम सत्य अहिंसा तत्व साधना मे कर स्थिर ।
तत्पर बनी साधिका सज्जन पूर्ण समर्पित कर निज सिर ।। ३ ।।

उजडे उखडे झाड मूल जड, पडे पान फल फूल कही ।
बीज सुरक्षित रह जाने पर, मानी जाये भूल नही ।। ४।।

बाह्याभ्यन्तर का जो अन्तर, यही कषाय यही बन्धन ।
सयम अनल अनिल हो समता, अन्तर बन जाये इंधन ।। ५ ।।

कथन सरल अति कठिन आचरण धन्य वही जो करे तरे ।
मर मिटने की हिम्मत वाले, प्रलयकाल से नही डरे ।। ६ ।।

साध्वी सज्जनश्री का करते सज्जन जन मन अभिनदन ।
सज्जनता के श्री चरणो मे, त्रिभुवन का शत शत वदन ।। ७ ।।

सत्कृत सम्मानित स्तुत नित हित, परहित निरता विरता नित्य ।
सज्जनश्री की सज्जनता से, रहे प्रकाशित सत् साहित्य ।। ८ ।।

प्रवर्तिनी प्रवरा आर्याश्री, सहृदया सरलात्मा शुचितम ।
सौम्याकृति अति प्रतिभावाली, साध रही शम दम सयम ।। ९ ।।

तेरा मन नही यहा पर, अस्थिरता मे स्थिर आतमा ।
खोज रही आतमा आतमा मे, मिल जाये गर परमातमा ।।१०।।

'मणिप्रभ' करता सज्जनजी का अभिनदन स्वीकारा जाय ।
सबसे शोभित आप, आपसे, शोभित है सारा समुदाय ।।११।।

हे दिव्य ज्योति ! हे ज्ञान ज्योति !

—शशिकर 'खटका' राजस्थानी

हे ! दिव्य ज्योति, हे ज्ञान ज्योति हे आगम ज्योति वन्दन है।
हे ! सरल स्वभावी पूज्य प्रवर्तिनी, अभिनन्दन है अभिनन्दन है ॥

जन्म लूनिया कुल में लेकर तुमने उसे दीपाया।
महताब देवी की कुक्षी को उज्ज्वल यहाँ बनाया।
नगर गुलाबी गुलाबचन्दजी थे सब ही के प्यारे।
श्रीमती महताब देवी सग धारण व्रत थे धारे।
उनके संग सग तुमने जाना जग में दुख क्रन्दन है।
हे ! सरल स्वभावी पूज्य प्रवर्तनी अभिनन्दन है अभिनन्दन है।

ज्ञानश्रीजी महाराज के चरण शरण तुम आई।
कोई नहीं किसी का जग में सुनी बात मन भाई।
छोड़ सभी एक दिन जायेंगे बात मर्म की जानी।
कर्म काटना होगा जग में बात धर्म की मानी।
सुनकर शिक्षा गुरुणी जी की मन में हुआ स्पन्दन है।
हे ! सरल स्वभावी पूज्य प्रवर्तिनी अभिनन्दन है अभिनन्दन है ॥

आषाढ शुक्ला दूज संवत् निन्यान्वे का आया।
मणिसागरजी की निश्रा में वैराग्य वेश अपनाया।
आचार्य देव हरिसागरजी से वृहद् दीक्षा ले ली।
त्याग दिया संसार आपने जीवन बनी पहेली।
त्याग मयी जीवन ही तुमको लगा यहाँ वन नन्दन है।
हे ! सरल स्वभावी पूज्य प्रवर्तनी अभिनन्दन है अभिनन्दन है ॥

श्री सज्जनश्रीजी महाराज ने तन को बहुत तपाया।
तेले अठाई मास खमण कर जीवन सफल बनाया।
रचना का संसार शशिकर हर पल गाया कहता।
स्तवन रचना का स्रोत आपके मन में हर पल बहता।
आप बोलते तो जग का जग जाता था मन है।
हे ! सरल स्वभावी पूज्य प्रवर्तनी अभिनन्दन है अभिनन्दन है ॥

अभिनन्दन

—श्रावक 'श्री छगन'

ओ! धम प्राण! ओ तप्त प्राण! गुण रत्न खाण अभिनन्दन है।
ओ! दिप्त भाण ओ शात प्राण, वराग्य खाण शत वन्दन है॥

तुम आगम ज्योति उजागर हो।
ज्योतिमय गरिमा गागर हो।
कवितव्य हृदय रस सागर हो॥

ओ! ज्ञानवान चारित्रवान, दशननिधान अभिनन्दन है।
ओ! दिप्त भाण, ओ शात प्राण, वैराग्य खाण शत वन्दन है॥

विनयी हो सौम्य स्वभाव मयी।
मधुरिम वाणी अभिमान नही।
परदु खकातर वात्सल्यमयी॥

ओ! नीतिवान ओ रीतिवान, ओ कीर्तिवान अभिनन्दन है।
ओ! दिप्त भाण, ओ शात प्राण वैराग्य खाण शत वन्दन है॥

है विकथा का लवलेश नही।
स्व श्लाघा मन अवशेष नही।
रति अविरति कुछ शेष नही।
अवमान मान मन क्लेश नही॥

ओ! त्यागवान, विरागवान, अनुरागवान अभिनन्दन है।
ओ! दिप्त भाण ओ शात प्राण वैराग्य खाण शत वन्दन है॥

हो प्रौढा पर गतिशीला हो।
स्वाध्याय ध्यान लवलीना हो।
तन रुग्ण आत्मबलशीला हो।

ओ! धैयवान ओ शौयवान, गाम्भीयवान अभिनन्दन है।
ओ! दिप्त भाण ओ शात प्राण वैराग्य खाण शत वन्दन है॥

वन्दन है बारम्बार तुम्हें।
शत आयु हो अभिलाष हमे।
सज्जन हो सज्जन चरणा म।
"छगन" शीश पुनि पुनि नमे॥

ओ! "खरतर" की जागृत ज्योति बार-बार अभिनन्दन है।
ओ! दिप्त भाण, और शात प्राण वराग्य खाण शत वन्दन है॥

सबका नम्र प्रणाम

—श्री मोहन सोनी,
(दानीगेट, उज्जैन)

जिनके तप से सुबह सुहानी, और सलोनी शाम,
प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री को, सबका नम्र प्रणाम।

संवत् उन्नीस सौ पैंसठ, वैशाग्व पूर्णिमा आई,
जयपुर की धरती से रवि की, प्रखर किरन टकराई।
श्री गुलाब की फुलवारी मे महकी गंध सुहानी,
किसे पता था लिखी जायेगी, तप की नई कहानी।

है कृतज्ञ हर जैन, आपने पाया मन निष्काम,
प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री को, सबका नम्र प्रणाम।

श्री ज्ञानश्रीजी की शिष्या का दर्शन हितकारी,
सब उपाधियाँ मिली आपसे, धन्य हो गई सारी।
आठ दशक के तपश्चर्य की आभा चमक रही है,
जितना किया लोकहित उसकी महिमा महक रही है।

किये आपके दर्शन हमने मिला पुण्य परिणाम,
प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री को, सबका नम्र प्रणाम।

सन् बयासी मे प्रवर्तिनी पद ने शोभा पाई,
त्याग तपस्या सयम देखा धन्य हुई पुरवाई।
तीर्थ तीर्थ मे जाकर मन से दूर भगाई माया,
वीर प्रभु के विमल स्वरो को जन जन तक पहुँचाया।

जहाँ आपके चरण पड़े हैं धन्य हुआ वह ग्राम,
प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री को, सबका नम्र प्रणाम।

तप का अभिनन्दन कर, हमने गौरव प्राप्त किया है,
किसी पुण्य के फल से ही, अनुभव पर्याप्त किया है।
मन के भावो को शब्दो मे, लाये अर्पित करने,
युगों युगो तक मिले आपके शुभाशीष के झरने।

दरस आपका इन आँखो में बना रहे अविराम,
प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री को सबका नम्र प्रणाम।

हमें शक्ति दे आप कि जीवन भक्तिभाव मे बीते,
हृदय सभी के, सत्य अहिसा से न कभी हो रीते।
जो भटके है उन्हे ज्ञान की ज्योति राह दिखलाये,
ध्यान हमारा दुराचरण मे कभी अटक ना पाये।

जिधर आपकी दृष्टि जाय, हो जाये तीरथ धाम,
प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री को सबका नम्र प्रणाम।

सज्जनश्रियमह् बहुशोऽभिनन्दे

—मुनिश्री ललितप्रभसागरजी

यस्या स्वभावमतुल सरल गम्भीर, निधू तकल्मपमनिन्द्यमचिन्त्यरूपम् ।
सर्वेऽपि साधुपुरुपा सतत वदति, ता सज्जनश्रियमह् बहुशोऽभिनन्दे ॥१॥

या स्तूयते सकलशास्त्र विचार बोधात् साध्वीजन श्रमण श्रावक सवसघै ।
सम्मानिता समभवच्च गुणरुदारै, ता सज्जनश्रियमह् बहुशोऽभिनन्दे ॥२॥

यस्या मुखाब्जममल परिदर्शनीय, कान्त नितान्तमनिश सुविकाममेति ।
या ज्योतिरागमनिधे नितरा विभाति ता सज्जनश्रियमह् बहुशोऽभिनन्दे ॥३॥

या वीतरागरुचिरास्तसमस्तदोषा, नारीजगत्सु महनीयतमा विभाति ।
या विद्यया च वयसा च समुन्नतास्ति, ता सज्जनश्रियमह बहुशोऽभिनन्दे ॥४॥

शुभ्राददातरुचिरेण गुणेन यस्या, लोकत्रयेऽपि गरिमा परिवर्धतेऽद्य ।
श्री वर्द्धमानकथितस्य मतस्य नून, ता सज्जनश्रियमह् बहुशोऽभिनन्दे ॥५॥

जयतु जयतु नित्य, ज्ञान विज्ञान सारा, शुभगुणगणभारा, धर्मकर्मोक्षितारा ।
ललितवरविचारा सवशास्त्राधिकारा, विगतबहुविकारा, सज्जनश्रीरुदारा ॥६॥

पद्य पुष्पम्

—प० ब्रह्मदत्त शर्मा फलोदी

सुरम्ये धन्वे व सिंधुपुरीनवासरपचिता,
सुमन्ये मान्यय जिनवरकथावाचनवरा,
सुगण्या धर्मज्ञे नयपथसुगन्तीबुधबुधा,
सता सल्लोकश्री जयजयनिनादैर्विजयते ॥१॥

जिनेजन्य ज्ञान वितरति च नित्य सुकृतिने
कवैवर्यै वया मधुमधुवचोभि प्रियकरा,
जिनेमग्ना साध्वी गुरुजन मुखर्मानितपदा,
सता सल्लोकश्री जयजय निनादैर्विजयते ॥२॥

सुशिष्या समना निगमनिपुणा सत्कविवरा,
दृढा वीरे भक्ति करुणहृदया दीनसुखदा,
शुभे जैने शास्त्रे तव गुणगणज्ञा बहुजना
सता सल्लोकश्री जयजय निनादैर्विजयते ॥३॥

वरेण्या शास्त्रज्ञे जिनगुणगणज्ञा शुभमना,
सुशीला दैवज्ञा प्रथितलटियाले सिंधुपुरे ।
चिरायुर्जीव्यात्सा शुभशुभ गिरा दत्त वचनम्
सता सल्लोकश्री जयजय निनादैर्विजयते ॥४॥

गुरुपरम्परा प्रशस्तिः

—श्री भंवरलाल नाहटा, (कलकत्ता)

श्री जिनदत्त गुरु नत्वा सूरेश्च कुशल प्रभो ।
सुविहितस्य मार्गस्य लिख्यतेऽय प्रशस्तिका ॥ १ ॥

गच्छे खरतरे स्वच्छे क्षमाकल्याणपाठको ।
शुद्ध साधु क्रियाधारी विद्वज्जैनशिरोमणि ॥ २ ॥

श्रमणार्या सुसघोऽभूत् परम्परा सुविस्तृता ।
तपस्वी क्रियापात्राश्च गणाधीश परम्परा ॥ ३ ॥

सूरिपदप्राप्तो येनऽजीमगंजपुरेवरे ।
श्री हरिसागराचार्य जैनधर्मप्रभावक ॥ ४ ॥

पट्टोद्धारकस्सद्वक्ता सूरयानन्दसागर ।
वीरपुत्राभिधानेन ख्यातिमाप्त सुभारते ॥ ५ ॥

सुमति सिन्धूपाध्याय पट्टे श्री मणिसागर ।
सूरि पद प्राप्तं येन शास्त्रवादि शिरोमणि ॥ ६ ॥

सत्काव्य कला प्रतिभा-धारी कवीन्द्रसूरय ।
रचितानि यैश्च सत्पूजा स्तवकाव्यान्यनेकश ॥ ७ ॥

श्री हेमेन्द्रगणाधीश-तत्पट्टोदयसागर ।
द्वितीयोऽनुयोगाचार्य - कान्त्यब्धिमुप्रभावक ॥ ८ ॥

सघयात्रा सुसस्थान-सूपधानाद्यनेकश. ।
प्रतिष्ठा जिनविम्वादि कारितानि महोत्सवै ॥ ९ ॥

समायोजिते संघेन जयपुरे हि सदुत्सवै ।
आपाढ षष्ठी दिवसे सूरिपदो द्वौ सद्गुरौ ॥१०॥

स्वनामधन्य प्रतापीश्च सन्मुनि मोहनलालजित् ।
जिनयश सूरिपट्टे जिनर्द्धिरत्नसूरय ॥११॥

लब्धि-केशर-बुद्धिञ्च पाठकपन्यासो गणी ।
जयानन्द क्रियापात्र प्रवचने वाचस्पति. ॥१२॥

अत्याग्रहेनुपाध्याय सघेनालकृता पदे ।
चिर नन्दन्तु वर्द्धन्तु श्रमणसघो च भूतले ॥१३॥

आगमज्ञा सद्विदुषी आर्याश्री सज्जनाभिधा ।
प्रवर्तिनी पदारूढा कवयित्री सल्लेखिका ॥१४॥

भक्त्या भँवरलालेन विरचिता प्रशस्तिका ।
शासनोन्नतिं कुर्वन्तु दीर्घायुपि गुरुत्तमा ॥१५॥

अभिनन्दन स्वीकारो

—सुदीप एवं गौरव लूनिया

अभिनन्दन है बुआ दादीजी का, जिनका सज्जनश्री है नाम ।
सुदीप-गौरव पौत्र आपके, कोटि-कोटि करते प्रणाम ॥

धर्म-ज्ञान संयम-नियम का, पाठ आपने हमें पढाया ।
बातो ही बातो मे चौवीस तीर्थंकरो का नाम सिखाया ॥

कितना अच्छा लगता है जब, लोग बताते है हमको ।
आप ज्ञान की अतुल राशि है, ज्ञान बाँटती है सबको ॥

आप विदुषी है—प्रवर्तिनी मां ऐसा कहती है ।
लेकिन हमको आप भुवाश्री, केवल 'ममतामयी" लगती है ॥

कोटि-कोटि वन्दन चरणो में, करते है शतवार नमन ।
धन्य हुए हम आज मनाकर, जन्म दिवस पर अभिनन्दन ॥

शत शत प्रणतियाँ

—साध्वी श्री शशिप्रभाश्रीजी

श्रद्धा भरी शत शत प्रणतियाँ, पदकजा मे है हमारी।
श्रमणीगण म अग्रणी हैं, अप्रतिम प्रतिभा के धारी ॥
धन्य राजस्थान की अवनी, धन्य धन्य है आपकी जननी।
धन वैशाख पूर्णिमा रजनी, जन्म हुआ था आनन्दकारी ॥

किया धन्य तारुण्य ले दीक्षा, सम्यगदशन ज्ञान सुशिक्षा।
हम भी मागे ज्ञान की भिक्षा, दे दो हमको हे दातारी ॥
हिन्दी गुजर प्राकृत भारती, राजस्थानी सस्कृत विचारती।
क्षण क्षण तत्त्वस्वरूप विचारती, सशय सबके दूर निवारी ॥

विनय विवेक साकार बन है जिनके वचन भी स्नेहसने है।
सन्तसती देखे ही घने है, तव रीति है सबसे न्यारी ॥
जब देखो वाचन म निरत हैं अथवा अध्यापन म रत हैं।
विकथा से तो सदा विरत हैं कहते हैं या सब नरनारी ॥

काव्यकलामय कृतिया ऐसी, सुनते लगती अमृत जसा।
होती जग मे विरली वसी, पण्डितजन कहते सुविचारी ॥
आगम ज्योति कहते गुरुजन, करती गद्यपद्य का सजन।
अमर रह यशोनाम से सज्जन, जब तक "शशि" सूरज सचारी ॥

अभिनन्दन स्वीकारो

—साध्वी प्रियदर्शनाश्री

अभिनन्दन स्वीकारो भगवती तुम दशन अति सुखकारो ॥ (टर) ॥
भाव सुमन श्रद्धाञ्जलि भरकर, अपण करने आई दर पर, कर कृपा अवधारो ॥१॥
क्रोध कषाय मान मद त्यागी, आत्मज्ञान की बन अनुरागी, सम्यग्दशन धारो ॥२॥
आगमज्ञान की अद्भुत ज्ञाता, ग्रन्थ अनको की निर्माता, बहुमुखी प्रतिमा धारो ॥३॥
उदार हृदया सरल सुप्रज्ञा विध विध भाषा की सुविज्ञा, चमको ज्यू ध्रुव तारो ॥४॥
ज्ञान ज्योति मन मदिर भर दो, आत्मभूमि अति निमल करदो मिथ्या तिमिर निवारो ॥५॥
जनकल्याणी ! विश्वविख्याता करुणामयी ! श्रुतज्ञान प्रदाता गुणगरिमा भण्डारो ॥६॥
"प्रियदशना" अभिनन्दन करती, कोटि-कोटि अभिवदन करती प्राण जीवन आधारो ॥७॥

अज्जा सज्जणसिरी अहिणंदणं

—डा. उदयचन्द जैन
(उदयपुर)

णच्चा उसहं देव, लोगालोग-पगासग-जुत्त ।
पणमामि सव्वतित्थ, कम्म-कलक विणासअहेउं ॥१॥

अह तेसिं णमो सया, ससार-जलहि-तारण-समिद्धो ।
झाण-णाण-तवो रत्ता, सिरि-महावीर-जिणेसरं ॥२॥

ते वे सव्वे मुणिवरा सयल वंदणीया णिच्च ।
जिणचरणसु रत्ता मुत्ति-पह-गमणसीला य जे ॥३॥

जस्स परम-पसादेण, बुद्धि-णिच्च पवड्ढए सूरो विव ।
गोतम-गणहाइरिया-उवज्झाय-साहु-अज्ज-अज्जिया ॥४॥

चदणसम-सुरहीओ चदणा-गुण-गुणाणं कया सया ।
वदे सज्जण-अज्ज भव्व-राजीव-दिवायरो व्व ॥५॥

कुल-परिचया—

सावग-सग्गण-वारह-वय-धारी-सगीतण्ण कवी वि ।
पिउ-सिरि-गुलावचदो, लूणियाकुल-साहग-वरिट्ठो ॥६॥

सु-सावगा धम्मवई, महताव देवी माउसिरी ।
सा वि धम्मशीला, तत्तवेत्ता वारह-वय-धारिणी ॥७॥

मायाए वच्छल, पिउ-पीई-भाऊ-सणेह-जुत्त ।
णयणाहिरामा सा तु, सज्जणसिरी सज्जणाण पिया वि ॥८॥

गुणसीला अईधीरा, तत्तजिण्णासु धम्मवई वि ।
ववहार-णाण जुत्ता, सक्कय-पाइय-भास-पवीणा ॥९॥

अगल-भासा-हिदी, गुज्जर-रायट्ठाणी समाधेज्जा ।
णाणा-भासा भासो, सज्जण-सिरी-महासई सा ॥१०॥

वालत्तणे वि सया, पडिक्कमाइ-अहिरुइ-कया ।
महुर-भासा-भासिणी, धम्म-रहारूढ-वाहिणी सया ॥११॥

ताए पाणिग्गहण, जयपुर-सु-पसिद्ध गोलेच्छा-परिवारस्स ।
णहमलदीवणस्स तु, कल्लाण-मलेण सह जाया ॥१२॥

गारव-गाहा—

णाण-ज्ञाण-परायणा, सत्थण्णा संतिभूइ-धम्मसालिणी ।
गुरुणी सिरि-णाणसिरी, उवजोगसिरी णाणासत्थ-पवीणा ॥२४॥

ण तु पुर-भासा-णाई, लोगिग-भासा-पवीणा सा ।
जिणागम-तत्तवेया, पुण्ण-तलप्फासी अवि तु मा ॥२५॥

आगम-जोड-उवाहि आगम-मु-रस-भरिया कारणाहि ।
अलंकरं पाविऊण, सलिल व्विव गहीरा जाया ॥२६॥

जिण-सासण णहम्मि मा जोइ-सील-तारगमिव पगासिआ ।
चदिम-कलकजुत्ता, सा तु णिस्कलंकिया भूया ॥२७॥

परमविउंसि होऊण अज्जाए अग्गणी जाया अवि मा ।
कव्व-सरस धाराए सव्वाण जणाणं अवि कया ॥२८॥

पगई-संत-सहावा, णिरहिमाणी विणयी सेवासीला ।
हिय मिय-महुर-भासिणी, दत्त-चित्त-अज्झयणसीला वि ॥२९॥

आहार-विहार-जुत्ता, णाणा भायेसु पद-गमणसीला ।
सवत्थ जिण तत्ताणं, पख्वणं सया अहि कया वि ॥३०॥

अण्णाणणासणट्ठं, वत्थु - तत्त - विबोहणट्ठं वि ।
धम्म-देसणट्ठ सा, णाण - दीव-पगासं - मया कया ॥३१॥

साहणं साहणं चिट्ठे, तत्थ सज्झ ठेव भवेउ जीवाण ।
साहण भोतिगेय य, सज्झ-अज्झप्पगुण उच्चइ ॥३२॥

अप्पा सासय लोए, अप्पा खलु णाण दसण-चरण-जुत्तो ।
अप्पा विसय-विहीणो, अप्पा सव्व-गुण-गणाणं वड्हव तु ॥३३॥

कोहो वा माणो वा, माया वा लोहो-णेव साहगो ।
अप्पाण वल सेयं किं अण्णेण पयोजणं वि ॥३४॥

अप्पाणेव ह गुरू, अप्पाणमेव मुसंरि इह लोए ।
इह भावण भाविऊण य, गामाणुगाम-विहर-सीला ॥३५॥

पवासावाससमए, गुरु-गारवाइरिय-चरणपहे वि ।
णेव पजहिआ धम्म, वक्खाण - पीयूस-विसेसणं ॥३५॥

णहं सच्छण्णंचदो पवड्ढए पुण्णिमा पेज्जंतं तु ।
सा सज्जण-महासई जिण-सासण-पहावणाइ रआ ॥३६॥

णिज्झरणी पीऊस-धारा—

गज्ज-पज्ज-साहणाइ संजमी-जीवण-मु-कया-रयणा वि ।
गुरम्मा गुण-गहीरा, सुहाकर-सम-अमिय-दत्ता वि ॥३७॥

पुण्ण जीवण-जाइ वि, विलिहिऊण स-णाम धण्णा-कया।
पुण्ण धम्म धुरिं अवि, समण सघ टहिवित्त-सुरक्खिया ॥३८॥

समण-सव्वस्स-पोत्थो, साहु-जीवणस्स पह पदरिसिगा वि।
आयार वियारहिं, परिपुण्णा पइट्ठा वि गया ॥३९॥

तमोछण्ण लोए तु, समुवागए दिवायरे जायए।
पगासग अइणिम्मतो, जणमणो तम रहिआ होई ॥४०॥

महावीरस्स चरिया, पाइय णिबद्ध-कप्पसुत्तम्मि अत्थि।
तस्स पाण्यमुत्तस्स, रटिठय भासा हिंदी कया ॥४१॥

ण तु अईसरला-सु गमा-सुरस भावाणुजुत्तो अवि।
जण-कल्लाण णिमित्त, एसा अइ-सेटठ कज्ज कया।४२॥

वाग्ह पत्र-चावसाइ दव्वाणुजोगमय-अज्झप्प पवोहो।
वजमाना ममलविअ-पज्ज-सवित्त-सवव्या-दव्व-सगहो ॥४३॥

चेइय-वदण-कुलक, गुरुदेव जिणदत्तसूरिणा विरइय।
वयारोव विहि णामा हिंदी भासाए पगासिआ य ॥४४॥

वालाववोहणटठ चउवीस जिण थवण रटठ भासाए।
कुसु जलि विणयजलि-गायजलि-वीर-गुण गुच्छआई।८५॥

तव्व पुण्ण चरिया—

अज्झयण ण तु केवल, ण कव्व धारा अवि वलिट्ठा।
णाण झाण तव रत्ता, स-पर-कल्लाण-करणटठ वि ॥४६॥

सुह णिय जीवण पाणे, उवहाण णव-पय ओली धारिया।
विस - थाणय - तव-ओली - कल्याणय-नव मण रजिया ॥४७॥

पणवासा तव-कया वि अप्प धम्म-पवड्ढण णिच्च।
पचमि-सोलिया-तवो, दस-पच्चक्खाण-तवो सया किया ॥४८॥

जया विहार-अज्जाइ, तया समागया जणा पभूया य।
पाउं धम्म - सुहाण, सच्च - सील - सजम - हेऊहिं ॥४९॥

अह उदयचदा अवि, अहिणदण-वदण करासि सुणंसि णिच्च।
धम्मरत्ता वाहणटठ, सद्धावतो तत्त वियारा ॥५०॥

सत - गनयाम जीवउ, सा सज्जणसिरी महासई।
असि-धारा पेरल, का का जीवा ण धण्णा अत्थि ॥५१॥

●●

वन्दन करें हम........

—आर्या प्रियदर्शनाश्रीजी

प्र प्रकर्ष भाव से मम सिर ऊपर
वर वरदहस्त रख दो गुरुवर
ति तिमिर हटाकर मम मानस का
नी नीतियुक्त बने जीवन स्तर ....(१)
श्री श्री चरणों का आश्रय पाकर
सज् सद्ज्ञानामृत पान करूं
ज जन्म जरा मरणादि रूप इस
न नश्वर तन का त्याग करूं ... .(२)
श्री श्री को प्राप्त करूं तव मेरी
म मद मोह मान अरु क्रोध की सेना
हा हारे, जीवन उज्ज्वल हो ... .. (३)
रा राज मिले अपने घर का
ज जब गुरु सज्जन में श्रद्धा जागे
सा सागर सम गम्भीर है जीवन
ह हर क्षण निज का ध्यान धरे
ब बडे-बडे पडित भी जिनकी गुण गरिमा का
गान करे ....(४)
का काम-क्रोध मद लोभ भगे तब
हृ हृत्तंत्री के तार बजे
द दमन किया इन्द्रिय राज पर
य यम नियम के साज सजे ....(५)
से सेवागुण अतिउत्तम तुझ मे
अ अमर अखंड आनन्ददायी
भि भिन्न स्वरूप जड चेतन का है
न नही कभी सुख दु.खदायी ...... (६)
न्‍ न्याय काव्य कोष ज्योतिष की
द दर्शन की भी ज्ञाता तुम
न नम्र भाव से तव पद कंज मे
वन्दन करें प्रियनेत्री हम । .. ....(७)

कोटि-कोटि अभिनन्दन !

—प्रवर्तक श्री महेन्द्रमुनि 'कमल'

अभिनदन, कोटि-कोटि अभिनदन
त्याग का, वैराग्य का
संयम का, शील का
सत्य के कृत्य का
अहिंसा के शातिदायी नृत्य का ।
धर्म का, ध्यान का,
साधना की गौरव गरिमा मण्डित पहिचान का।
आप सज्जन हो और सरल हो
सघन में विरल हो
मूर्ति करुणा की, स्नेह धारा हो वरुणा की ।
मन से सौम्य हृदय से तरल हो
अहिंसा संयम, तप और
अनेकानेक सद्गुणो से तरल हो ।
धवल परिधान मे,
अपने ही ध्यान मे
युग को दिशा बोध देने
पंक मे फँसी युग नाव खेने
अवस्था व्यवस्था की चिता से दूर
वही जा रही हो, चली जा रही हो ।
आपसे महावीर का, आनंदातिरेक प्रदान करने
वाली वाणी
सुन-सुनकर भव्य, प्राणी
गद्गद् हो रहा है,
दुष्प्रवृतियाँ खो रहा है ।
संप्रदायवाद से दूर,
समन्वय भाव से भरपूर
महाश्रमणी सज्जन
आदरपूर्वक अभिनंदन
कोटि-कोटि अभिनंदन ।

'गुणाष्टक'

—चन्द्रप्रभाश्रीजी

भव्यजन तारिके, विमल गति धारिके,
चन्द्रिके जैन गगनागणस्य
शुद्ध श्रद्धान्वित, सुदृढ सकल्पिके
प्रणति तव पाद युग्मे मदीयम् ॥१॥
त्यक्त यौवनवये जनक पति वभवे,
जन मार्गानुगामिनी सुधन्या,
सरल सभापिणी विनय नय वासिनी
प्रणति तव पाद पद्मे मदीयम् ॥२॥
दुरितमतिवारिणी सवहित काक्षिणी,
तारिणी भव्य भवविशद नौका,
कलुपिता नहि कदा वासित मुदा,
प्रणति तवपादपद्मे मदीयम् ॥३॥
आगम श्रुतरता तत्त्व चिंतनपरा,
सदा निष्ठित मति ज्ञान गगे,
खरतरगच्छ सु दिव्य मणिवत् सदा,
प्रणति तव पादपद्मे मदीयम् ॥४॥
सज्जननाम तव कर्मरिपु रोधन,
वोधन शुद्ध भावानुभावम्,
मातृवात्सल्यरस सतत सचारिणी,
प्रणति तव पादपद्मे मदीयम् ॥५॥
जन शासन समुन्नति, सदा काक्षिणी,
राजते शशिप्रिया जयसुदिव्या,
तत्व सम्यग् शुभभाव दर्शनयुते,
प्रणति तव पादपद्मे मदीयम् ॥६॥
कामना सतत तव सगति मम इहि
गमनवेलाअति दारुणाहि
विप्रलम्भो तव शल्य तुल्य मम,
प्रणति तव पादपद्मे मदीयम ॥७॥
विदुपीवर्यामति सुमति विद्रागिणी,
ज्ञान उपयोगमयि क्षमशीले ।
विचक्षण चरणरज, चन्द्र गुण सस्तुता
प्रणति तव पादपद्म मदीयम् .. ॥८॥

शत-शत वन्दन

—विजयकुमार जैन

शत शत नमन कर रही मृत्तिका
शत शत नमन कर रहा समीर
शत शत नमन कर रहे आज घन
शत शत नमन उदधि कर गभीर
शत शत नमन कर रही यह क्षिति
करते हैं हम सब भी वन्दन
जन्म दिवस पावन बेला पर
शत शत वन्दन शत अभिनन्दन ।

नारी के प्रति

—मनु

अपना ने अवज्ञा
पीडा परायो ने
सस्कृति ने सकट
और विधि ने दी वेदना ।
नारी तू निमल है
कलिया सी कोमल है
स्नेह प्यार ममता का
निर्बाध निझर है ।
अम्बर से अन्तर मे
धरती का धीर लिये
कष्टा से क्रीडा कर
पीर कोटि पिये जा ।
जीवन की ज्वाला मे
तप-तप तपस्विनी
अविरल आलोकित कर
जगती मे ज्योति जला ।
स्मृतिया सजो सजो
विस्मृत कर व्यथा को
नियन्ता की निदय
सज्ञा को झुठला दे ।

□

पुण्यश्लोका सज्जनश्रीजी

—श्रीमती राजकुमारी बेगानी

मणिरत्नो का व्यवसाय प्रधान
गुलावी शहर जयपुर
सम्वत् १९६५ की
वैशाख शुक्ला पूर्णिमा
पूर्ण ज्योत्स्ना मे थिरकता चन्द्र
स्निग्ध चाँदनी मे नहायी-सी धरती
पुलकित उल्लसित वातावरण
ऐसे मे
श्रेष्ठीवर्य गुलावचदजी लूणिया के
वंशोद्यान मे
भार्या महताव देवी की कुक्षि डाल पर
एक सुवासित कली खिली
महक-महक गया
धरती का हरित आँचल।
पितृगृह की दुलार भरी प्यार भरी
मृदु मृदुल वयार के
मन्द सुगन्ध झोंको में विकसित होकर
दीवान नथमलजी जौहरी के
सुपौत्र के साथ
परिणय सूत्र मे वधी।
किन्तु मुक्त को वधन कैसा ?
प्रकाश को अंधकार कैसा ?
हृदय रम न पाया
उस भोग विलास भरे
कृत्रिम वातावरण मे
अत
खुली श्वांसों के लिए
सस्कारो के वातायन से
स्वार्थपरक जगत को झाँका।
खुल पड़े स्मृति पटल
स्मरण हो आया
नव किसलयो का हरे पल्लवो का
सूखे पीत पर्णो मे वदलकर
झर जाना
उपेक्षित चरणो से कुचलकर
निष्ठुर हाथो से झाड बुहार कर
फेंक दिया जाना।
काँप उठी वैराग्य ज्योति
जल उठा ज्ञान दीप
प्रकाशित हो गया कमल वन
वदल गया जीवन दर्शन
उठे कदम उस ओर
जिस डगर पर चलकर
चूक जाता है मृत्यु का छोर
मिल जाता है चिंतन तत्व
शाश्वत अमरत्व।
शुद्ध सस्कार प्रेरित
इस भव्य आत्मा ने
पूज्य गुरुवर्या खरतरगच्छ प्रवर्तिनी
श्री ज्ञानश्रीजी महाराज के

श्री चरणो मे पहुँच कर
धारण कर लिया
आर्या का सुवेष
नाम हुआ सज्जनश्री ।
प्रारम्भ हुआ नव्य जीवन
सूत्रो का पारायण
आगमो का मन्थन
छट गया कषाय
निकल पडा अमृत ।
जिसे पान कर
लुप्त हुयी विषमता
बस छा गयी जीवन म
समता ही समता ।
अब उदारमना साध्वीश्री
पद यात्राएँ करती हुयी
लगी लुटाने दोनो हाथों मे
स्व स्वभाव भूली दिग्भ्रमित आत्माओ को
ज्ञान पीयूष सत्यामृत ।
तप से स्वाध्याय से।
परिषहो को सहन कर
शुभ्र बना आचरण
सिंह लगन मे दीक्षित
सिंह-सा निर्भीक मन
दहाड उठा, गरज उठा
क्षुद्रता पर
निकृष्टता पर
प्रान्त प्रान्त मे छायी
अज्ञान की जडता पर ।
हे शास्त्र ममज्ञा साध्वी शिरोमणि, प्रवर्तिनी
तुम चलती रही, चलती रही

सयम के कठोर पथ पर
सतत अनवरत
लिखती रही स्वानुभव को
समझाती रही जिनवाणी को
गाती रही वीतरागियो की
पावन गाथाओ को ।
और आज भी
अस्सी वष की इस आयु म भी
कहा अन्त है उस शौय का ?
व्याधियो स जूझती हुयी
देह आत्मा के भेद को समझती हुयी
जल रही हो
धम की मशाल-सी ।
हे पुण्यश्लोका
तुम वेद की ऋचाओ सी
मत्र के बीजाक्षरो-सी
सूत्रो की चूलिकाओ-सी
अहिंसा की प्रशान्त धुरी-सी
ससारविरक्ता
खरतरगच्छ की
प्रदाता कल्पवृक्ष-सी ।
हे साधना सौम्या !
हम अज्ञानी।
क्या करें तुम्हारा अभिवन्दन
जिस दुलभ सयम को
स्वय देव करें नमन
मैं तो बस
भावभीनी श्रद्धा से
तुम्हारे युग्म चरणा मे
करती कोटि-कोटि वन्दन ।

सूरज सरीखा व्यक्तित्व : श्रीसज्जनश्रीजी महाराज

—प्रो० डॉ संजीव प्रचंडिया 'सोमेन्द्र'

सूरज
धरती पर उतर आया है
और उसकी किरणें
बिखर गयी हैं घरो के बन्द/खुले आँगन पर
जो शुष्क और साफ है
किसी पहाडी चट्टान की तरह ।
सूरज
दरवाजे पर दस्तक देता है,
खिड़की से झाँकता है
और सीढियो से ऊपर चढ जाता है ।
मीलित/अर्द्ध मीलित आँखो को खोलता है
सोयो को जगाता है
हँसता है/हँसाता है
बच्चे हो या जवान या फिर बूढे
सभी के साथ खेलता है आँख मिचौनी
एकदम अनहोनी ।
सूरज कितना विचित्र है
साथ रहता है पर दूर है ।
मजबूर है ।
साधक है, तपस्वी है
पर, मान अभिमान से
नितांत दूर है ।
मजबूर है ॥
आओ जग अपने को देखे
सूरज की किरणो को गौर से पेखे
कूड़ा-करकट को झाडे-बुहारे
पूज्य को पूजे
गुणो का गान करे ॥
समरस का आव्हान करे ।
आओ सूरज से
नित नए भोर की किरणे माँगे
प्रमोद को छोड़े
अज्ञता के घुप्प अँधेरे से
अपने मुख को मोड़े
बुराइयो को हम न दुहराये
एक सकल्प ले—
स्वय जगे और
दूसरो को जगाएँ ॥

सज्जन नाम है तुमने पाया

—साध्वी सुरेखाश्री

असत् का छोड़ा तुमने साथ,
सत् के सग को बढाया हाथ ।
सत्-जन मे नाम गुजाया,
सज्जन नाम है तुमने पाया ॥
गुण सौरभ पाई पिता गुलाब से,
तत्व-ज्ञान मिला माता महताब से ।
सुसस्कारो का हुआ बीज वपन,
साकार हुआ उनका सपन ॥
ज्ञान गुरु से पाई गुण गरिमा,
उपयोग गुरु की बढाई महिमा ।
सत्य सेवा और स्वाध्याय से,
धो डाली कलुषित कालिमा ॥
पुण्य समुदाय की तुम लड़ी,
हाथ मे पुस्तक रहे हर घड़ी ।
जिन प्रवचन का करती पान,
जिन शासन की रखी शान ॥
कर-कमलो जब लेखनि होती,
स्वाति बूँद से निकले मोती ।
बिरुद दिया आशु कवयित्री,
तत्वज्ञा हो तुम आगम ज्योति ॥
गुरु विचक्षण के पाट पर,
हुई तुम प्रवर्तिनी पदासीन ।
नभ पर रहे चाँद ओ सूरज,
रहो धरा पर तुम आसीन ॥

शत-शत अभिनन्दन

—कु० कविता डागा

चिन्तन, मनन, प्रेम की धारा,
उज्ज्वल ज्योति, निमल, गभीरा,
नभ की ज्योतिमयी तारिका,
तुम सफल कवयित्री, सफल लेखिका,
करते हम तुझको शत् वन्दन,
अभिनन्दन ! तेरा अभिनन्दन ॥

महताव कुवर की कोख सवारी
नाम "गुलाव" किया उजियारा,
आत्म विश्वासी, आत्म - सयमी,
तेरी दृढता का हम सब करते हैं वन्दन
अभिनन्दन ! है अभिनन्दन ॥

राजस्थान, बगाल, गुजरात म
फैलाया वीर प्रभु का सन्देश प्यारा,
उतर प्रदेश, मध्य प्रदेश म भी
वही अहिंसा की शुचि धारा,
जन धम फलान वाली,
वन्दन है शत् शत् वन्दन,
अभिनन्दन । है अभिनन्दन ।

शान्त स्वभावी, निर-अभिमानी,
सेवाभावी, मधुर है वाणी,
अध्यात्म की अप्रतिम प्रतिमा,
मेरा सब कुछ है चरणो मे अपण,
अभिनन्दन है अभिनन्दन ॥

"पुण्य जीवन ज्योति" लिखकर,
जन धम का किया प्रचार,
तपस्या म रही विचक्षण,
तले, बेले का नही पारावार,
जिन धम की प्रतिभा सज्जन श्रीजी,
"कविता" करती है वन्दन,
अभिनन्दन है अभिनन्दन ।

तुमको मेरा प्रणाम

—सुधाकर श्रीवास्तव 'सुधाकर',
(नवलगढ़ राज०)

स्वाध्यायशील "सज्जन श्रीजी"
तुमको मेरा शत शत प्रणाम ।

उद्देश्य समुज्ज्वल निस्पृह ले,
रह रही कम म नित्य व्यस्त,
बस एक चिरन्तन चिन्तन है
हो ध्वस्त त्रस्त कटुता निरस्त ।

मुक्ति पथ जिधर, बढ गयी उधर,
खिच गई रेख उर पर ललाम ।

पथ बाधा तृण के तुल्य तोड,
तडिता सी तडप लिए आयी ।
साहस असीम भर कर उर म,
बढ चली दिशा दस कतरायी ।

तुम स्वाभिमान की व्रती-वीर,
निश्छल, निमल, निष्काम-काम ।

'श्रीकल्पसूत्र" "समुदाय-सूत्र",
लिखकर प्रबोध अध्यात्म दिया ।
जिसका आस्वादन कर सबने,
निज निज जीवन कृतकृत्य किया ।

व्यक्तित्व तुम्हारा निखर रहा,
बनकर जग मे आदित्य धाम ।

स्वाध्यायशील "सज्जनश्रीजी"
तुमको मेरा शत् शत् प्रणाम ।

अनुपम अद्वितीय

—अनुपमा लूणिया

अनुपम, अद्वितीय ॥
आगमज्ञा, विदुषीवर्या,
आर्यारत्न प्रवर्तिनीश्रीजी,
अनेकानेक उपाधि मण्डिता
किन्तु, कितनी सहज-सरल
ममतामयी मेरी "दादी-सा"।
सयम ही जीवन जिनका
ज्ञान ही जिनका पोपण,
तप और साधना की भूमि पर
किया जिन्होने
आत्म मुरभित पौध-रोपण
चालीस वर्षो से सिंचित,
सेवित यह पौध आज
कल्पवृक्ष वन गया है,
कि
स्नेह, वात्सल्य, समता
के सुधोपम फलो से लदा-फदा
अम्वर से धरती तक
झुक गया है।
इस शीतल छाया तले
मैं, तुम, हम सव
श्रांत-क्लांत ससारी
पाते है नयी चेतना,
स्फूर्त प्रेरणा,
उत्तिष्ठ होने की-जाग्रत होने की,
अग्रसर होने की
उस पथ की ओर
जिधर जाने से
मुक्ति का "गुलाव" मिल सके,
यह जीवन सार्थक होकर
जीवन कहलाने योग्य
वन सके।

☐ मुक्तक

—साध्वी श्री मधुस्मिताश्रीजी

(सुशिष्या शासनज्योति मनोहरश्रीजी)

साहस नही चन्द्र पकडने का,
फिर भी मन वाचाल हुआ,
कलम हाथ में लेकर मैंने,
गुरु चरणो मे नमन किया। ॥१॥

पिता गुलाव चद लूणिया ने
गुलाव पुष्प को जन्म दिया
महक फैलाकर पूरे विश्व में
जन-जन का उद्धार किया। ॥२॥

यह जीवन क्षण भंगुर है
इतना ही वस तुमने जाना
गुरु चरणों में किया समर्पण
ज्ञान, उपयोग आत्मा को साधा ॥३॥

यहाँ न कोई अपना मेरा
इतना दृढकर तुमने माना
महावीर प्रभु शाश्वत है अपने
कुशल गुरु को मन मे धारा ॥४॥

रहूँ असग चाह नही कुछ
पाया सुख उसमें ही पाया
पर के दुःख को अपना करके
निज सुख को क्षण मे त्यागा ॥५॥

आगम वेत्ता आशु कवयित्री
वक्तृत्व कला की आप हो धनी
श्रमण सर्वस्व प्रकाशन करके
सयम पथ की हुई प्रवर्तिनी ॥६॥

मैं मन्दज्ञानी अल्पज्ञ बालिका
क्या जानूँ गुरु गरिमा को
सागर सम गभीर गुणो की
अनन्त ज्ञान निधि महिमा को ॥७॥

☐

कोट-कोटि वन्दना

—पदमा लूणिया

आँखें है अनुभवी आपकी
दर्शाती है जो
समस्त जीवो के प्रति
स्नेह एव करुणा का छलकता सागर
परिपूर्ण है ये जीवन रस के
हर पहलू के सकलन से ।
जो जानती हैं
जीवन की वास्तविकता को
और सदैव देती हैं प्रेरणा
सतत् सत्य के मार्ग पर चलने की
इच्छा होती है हरपल मेरी
इन्हे नमन करने की ।

वाणी की परिपक्वता व मधुरता
देती है यह प्रबल सदेश
कि क्षण भर भी प्रमाद न करें
साथ ही देती है सकेत
कि जीवन के प्रत्येक क्षण मे
तत्पर रहें कुछ कर जाने को
न खो दें भूल से भी
उस अमूल्य क्षण को
जो शायद जीवन का
मार्ग ही बदल दे
मन करता है हरदम मेरा
इन्हे सुनते रहने का ।

सगति आपकी करती है
आध्यात्मिकता से ओत प्रोत
आज के भटकते युवक वर्ग के
विचलित हो रहे मानस को
करती है आगाह
कि बचा कर रखें स्वय को
भौतिकता के इस
विकट मोहपाश से
और कहती है कि जीवन को करें
सादगी से अलकृत
मन करता है मेरा भी प्रतिपल
सदा रहूँ निकट आपके ।

तीक्ष्ण बुद्धि व मस्तिष्क आपका
भडार है असीमित ज्ञान का
झरते हैं ज्ञान के पुष्प
निरन्तर जिससे ।
यदि समेट सकें
एक दो पुष्प भी इनमें से तो
अवश्य सफल हो जाये
यह दुर्लभ मानव जीवन ।
ईश्वर से है
एकमात्र कामना मेरी
करे ऐसी तीक्ष्ण बुद्धि
मुझे भी प्रदान !

व्यक्तित्व आपका है मिसाल
साहस व त्यागमय
जीवन का
एक उगता सूरज है यह
अलौकिक आलोक है
जिसके चारो ओर ।
जिसे शत शत
नमन करने को
मन करता
सम्पर्क मे आने वाले
हर इन्सान का

आस्था के मोती

सुश्री प्रतिभा लूणिया, डोरगढ़

आर्य भूमि मे तुमने अवतार लिया
आर्य संस्कृनि से आत्मा का संस्कार किया
आर्य अणगार बन हृदय मे तुमने
आर्य विचारो का साकार किया ॥१॥

जिन शासन की हो तुम शान
स्वीकार की तुमने महावीर की आन
संसार मे जब तक चांद सूरज हैं
तब तक हम गायेंगे तेरे गुणगान ॥२॥

अध्ययन ही जिनके जीवन का प्रथम अंग हैं
सेवा ही जिनके जीवन का दूसरा उपांग हैं
सरलता ही जिनके जीवन मे पद-पद पर मिलती है
ऐसी अद्भुत गुरुवर्या के पद्मो मे मेरी प्रणति है ॥३॥

अध्ययन ही जिनके जीवन की सहजात वृत्ति है
अन्य को पढ़ाना ही जिनकी प्रवृत्ति है
लेखन काव्य रचना मे रत रहती हुई
जिनका मुख्य लक्ष्य ससार निवृत्ति है ॥४॥

पूज्या गुरुवर्या सबसे आली है

प्रकाशचन्द निर्मलकुमार बांठिया

पूज्या गुरुवर्या सबसे आली है
वो शांत सरल चित्त वाली है।
सूरत मोहनगारी है सबका मन हरने वाली है।
मीठी मधुरी वाणी है मानो अमृत की प्याली है।
४५ आगमज्ञान वाली है, प्रवर्तिनी पद की धारी है।
जीवन मे जिनके रत्नत्रय की आराधना निराली है।
जैनशासन की मजबूत डाली है,
चहुँ ओर हरियाली है।
ज्ञान मडल मे खुशियाली है, मानो आई दीवाली है।

संतों की वाणी पर गजल

उमा श्रीवास्तव 'उमाश्री'

संतो की वाणी पर गर देश चला होता,
बेकसूर न मरते, सबका ही भला होता,
आतकवाद और उग्रवाद से असुर नही होते,
उपदेशो का अमृत गर एक बार चखा होता,
खंडित न हो पाती विवेक और बुद्धि,
उपदेशो का चन्दन गर शीश मला होता,
नफरत की नागफनी नही उठाती सिर,
नेह के तुलसी चौरे पर गर दीप जला होता,
मणि से ज्यादा मूल्यवान है सतों के आशीष,
उनके पद चिह्नो पर गर पथिक चला होता।

'आगमज्ञा' सज्जनश्री

प्यारा मूथा, अमरावती

चर अचर जग मे तेरा 'रत्नत्रयी' राज रहे,
छ दर्शन के मुकाबिल मे तू सरताज रहे।
'वीर' से देव जहाँ 'हरि' से गुरुराज रहे,
उस 'प्रवर्तिनी सज्जन' के ही सरताज रहे।
'ज्योति आगम' की जली, गैर दिये सब मंद हुए,
इक यही रोशनी संसार मे जावांज रहे।
बज रहा डंका जिनागम मे तुम्हारे बाइस,
दस दिशाओ मे सदा गूजती आवाज रहे।
ज्ञान की आग मे तप-तप के बनी तुम कुन्दन,
पर लगें यश को, बुलंद और भी परवाज रहे।
'ईश' दे उम्र तुम्हे और सलामत रक्खे,
मुझ ससार को संयम पे तेरे नाज रहे।
पूज्य ! स्वीकारो मेरा भाव भरा दिल का प्यार,
'प्यार' जो कल भी रहा, कल भी रहे, आज रहे।

हे ! सज्जनश्रीजी महाराज

— *पराक्रमसिंह चौधरी* कोठियाँ (भीलवाडा)

जन जन के मन म ज्ञान ज्योति का तुमने दीप जलाया।
सत्य अहिंसा दया धर्म का निश दिन तुमने नीर पिलाया।
मेरे मन मे जो भी हैं वे सारे विकार आप हरो।
हे सज्जनश्रीजी महाराज मुझ पर यह उपकार करो।
नगर गुलाबी जयपुर म तुमने जन्म लिया था
गलाबचन्द मेहताब देवी का जीवन धन्य किया था,
गोलेछा कल्याणमलजी पति बन कर के आये,
पर मोक्ष मार्ग के बढते पाव रोक नही पाये,
मन बोला मुख पाना है तो दीक्षा ग्रहण करो।
हे ! सज्जनश्रीजी महाराज मुझ पर यह उपकार करो।
आप विदुषी आगम ज्योति बनकर जग म आई
जिन शासन म प्रवर्तिनी की पावन पदवी पाई
सेवाभावी निरभिमानी तुम स्वल्प मधुर भाषी हो
शान्त प्रकृति, स्वाध्यायी सदा मोक्ष अभिलाषी हो,
पापी से नहीं सदा पाप, तुम कहती मत घृणा करो।
हे सज्जनश्रीजी महाराज मुझ पर यह उपकार करो।
प्राकृत दर्शन न्याय व्याकरण इनको तुमने जाना,
काव्य कोष जैनागम को पढकर के पहचाना
प्रतिभा से सम्पन्न आप थी बनी मधुर व्याख्याती,
'पुण्य जीवन ज्योति' लिखकर कहलाई महा ज्ञानी,
पथ भ्रमित हो रही मानवता इसमे ज्ञान भरो।
हे ! सज्जनश्रीजी महाराज मुझ पर यह उपकार करो।
तपोनिष्ठ सेवा भावी बनकर लोक सुधारा,
महावीर की शिक्षा से तुमने परलोक सवारा,
अभिनन्दन की बेला म मन मेरा नित नाचे,
महावीर बन कर आगम ज्योति मेरे मन मे राचे,
अपनी ज्ञान ज्योति को मेरे मन मे आज भरो।
हे ! सज्जनश्रीजी महाराज मुझ पर यह उपकार करो।

भावधारा

—अजय कुमार गोलेछा, जयपुर

प्रकृति नटी ने साज सजाकर अनुपम रूप दिखाया है।
श्री महावीर की अनुकम्पा से यह पावन दिन आया है।
करते हैं तन मन से वन्दन, जननी ममतामयी आपका।
आराधन अपनी संस्कृति का, अभिनन्दन तव आत्मत्याग का।
शोभित है दिन रवि से और निशा रजनीकर से
पंकज शोभित है तड़ाग से जग शोभित महाराज आप से।
पूर्णमासी के पूर्णचन्द्र की चन्द्रकला सी उदित हुई
शत वन्दन है अभिनन्दन है ज्ञान ध्यान की रश्मि छवि।
पंच महाव्रत धारिका जप-तप संयम है साधना
कोटि-कोटि वन्दन स्वीकारो अन्तर्मन की यही कामना।
इन श्रद्धा विश्वास सूत्रो मे बँधे हुए. हैं हम आपके सहचर
गोलेछा परिवार मे बोये हैं आपने प्रकाश के बीज अमर।

पुष्पान्जली

—केसरीसिंह चौरड़िया, कलकत्ता

स्वनाम धन्य विद्वान विदुषी गुरुवर्या श्री सज्जनश्री जी
वन्दन कर मैं धन्य हुआ वयोवृद्ध श्री महासती जी का
अभिनन्दन करने को तेरा "खरतरगच्छ जैन" संघ का भाव जगा
धन्य यहाँ के श्रावक श्राविकाएँ जयपुर नगर का भाग्य जगा
गुणगाथा मैं लिखूँ विनय से तुम हो आगम ज्योति
जैन धर्म कुल अवतरण हुई, गुणवान प्रभावी "मोती"
जाज्वल्यमान चारित्र आपका चन्दा जैसा शीतल
शात स्वभावी महाप्रभावी पथ प्रदर्शिका भूतल
प्रवर्तिनी पद से शोभित है आज हमारी महोदया
उनके मन मे बसी हुई है प्राणी मात्र के लिये दया
उनको नहिं लालच कुछ भी था अपनी ख्याति का
फर्ज हमारा भी बनता है सेवा कुछ तो करने का
गुणगान करें जितना तेरा हृदय नहीं भरता है
दर्शन तेरा मिले नित्य दिल ऐसा करता रहता है
मजबूरी है गुरुवर्या हम दूर आपसे बसे हुए
फिर भी भवर-केसरी हृदय में, गुरुवर्या जी बसे हुए।

अभिनन्दन गीत

☐ साध्वी सम्यक्दर्शनाश्री जी
(प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी म० की शिष्या)

(तर्ज—छोड़ गये बालम)

वन्दन है बारम्बार,ओ गुरु तुम चरणों में मेरा ॥ टेर ॥
राजस्थान की पुण्य धरा जयपुर में जन्म लिया।
वैशाखी पूनम का दिन था, सबके मन को हर्ष किया ॥ १ ॥
माता पिता परिवार सभी की बनी प्राणों से प्यारी।
लाड-प्यार से बीता बचपन, पढ़ लिख बनी सस्कारी ॥ २ ॥
सासारिक सुख साधन सारे, छोड दिया जग मेला।
अपनी आँखो से सब देखा, इस दुनिया का मेला ॥ ३ ॥
गुरु चरणो का आश्रय लेकर, किया ज्ञान विस्तारा।
समता ममता की मूर्ति है जीवन गगा धारा ॥ ४ ॥
प्रवर्तिनी पद अर्पित करके, किया सघ अभिनन्दन।
तुम पावन चरणों मे सम्यक्, का है शत शत वदन ॥ ५ ॥

☐☐

अभिनन्दन करना स्वीकार

☐ साध्वी सम्यक्दर्शनाश्री

हे जिन शासन शृगार, तुझे हम वन्दन करते हैं।
तेरी महिमा अपरम्पार, तुझे हम वन्दन करते हैं ॥ टेर ॥
सागर विभूति समता मूर्ति, विनय विवेक विशाल।
श्रमणी श्रेष्ठा बनी है ज्येष्ठा कोई न तेरी मिसाल ॥
प्रखर व्याख्याता आशु कवयित्री, आगम ममर्ग ज्ञान।
स्वाध्यायरत रहती अप्रमत्त करती सदा सम्यग् ध्यान ॥
नाम है सज्जन काम है सज्जन, सरल सहज व्यवहार।
सौम्याकृति सम्यग् प्रकृति, अभिनन्दन करना स्वीकार ॥

मुक्तक

□ साध्वी सम्यक्‌दर्शनाश्री जी

१

नीला-नीला कितना सुन्दर लगता है आकाश ।
छाँव तले उनकी हर मन का मिट जाना सत्रास ॥
गुरुवर्या श्री सज्जनश्रीजी महाराज का भी ऐसा—
व्यक्तित्व अनूठा जनमानस को देता दिव्य प्रकाश ॥

२

चेहरा गुरुवर्या का प्रतिपल मुस्काता रहता है ।
मौन मे भी उनके अमृत का झरना बहता है ॥
परम पावनी गुरुवर्याश्री की है शीतल छाया—
भव भव मुझे मिले मेरा मन हरदम ये कहता है ॥

३

नाम अनुपम रूप अनुपम, अनुपम सारा जीवन ।
ज्ञान अनुपम ध्यान अनुपम जन्मभूमि का कण-कण ॥
पूज्य गुरुवर्याश्री की मैं क्या गुण गरिमा गाऊँ—
तुझसे ही यह बगिया सारी महक रही ज्यो चदन ॥

४

दिव्य तेज बिखराता मणि-सा रहता चेहरा तेरा ।
प्रतिपल पान करूँ अमृत का मन यह कहता मेरा ॥
तेरे चरणो मे गुरुवर्य्या यही प्रार्थना मेरी—
करुणामृत बरसाकर मेटो जन्म मरण का फेरा ॥

५

श्री शशि प्रिय चरणो मे मैंने मन की शान्ति पाई ।
तुमको ही अर्पण करने मैं भाव सुमन भर लाई ॥
युग-युग अमर रहे गुरुवर्या मन की यही पुकार—
सम्यक्‌दर्शना ने धर श्रद्धा ये प्रार्थना गाई ॥

खण्ड ३

इतिहास के उज्ज्वल पृष्ठ
जैन परम्परा के गरिमामय
अतीत के प्रेरक और
शिक्षाप्रद मुँह बोलते पृष्ठ

३. इतिहास के उज्ज्वल पृष्ठ

इतिहास- सागर की तरह महान और विशाल है । वर्तमान एक छोटी सी लहर की भांति अत्यन्त क्षुद्र । तरल ।

जीवन का सिर्फ एक क्षण, वह प्रथम क्षण वर्तमान है, जिसमे हम जी रहे हैं । वर्तमान दूसरे ही क्षण अतीत हो जाता है । अनागत सत्ता-हीन है । वर्तमान विद्यमान है, और अतीत इतिहास बनकर साक्षात् हमारी स्मृतियों मे, धारणाओ में जीवन्त है, इसलिए वर्तमान मे भी अधिक विराट, अधिक महान और अधिक अवलोकनीय है- इतिहास ।

हजारो, लाखो अनुभूतियो का महाकोश है, अतीत घटनावलियो की अनन्त तरगो का महासागर है इतिहास । इतिहास की आख जिसके पास है, वह सक्षम द्रष्टा है । इतिहास का शिक्षक जिसके साथ है, जीवन की परीक्षा मे हर चरण पर उत्तीर्ण होने की दृढ सभावना उसके साथ है । इतिहास कालचक्र की वह वर्तुलाकृति है, जिसमे समाये है-असख्य अनुभव, अनन्त शिक्षासूत्र । हमारा इतिहास उजली-धुधली, विरल-सरल रेखाओ का पुज है । भद्र-अभद्र घटनाओं का विराट ग्रथ है । हमे एक तटस्थ दृष्टि से देखना है, उसके चित्रो को, स्थितप्रज्ञ होकर सुनना है, उसकी पदचाप को और फिर उसी आधार पर वर्तमान क्षण का मूल्याकन करना है ।

प्रस्तुत खण्ड मे हम पढ सकेगे-इतिहास की उन महत्वपूर्ण प्रेरक घटनावलियो को, परिवर्तनों को, जिन्होने ईतत्व को ज्योतिष्मान् बनाया है । मानवता को महिमा-प्रदान की है और साधुता को हर सन्दर्भ मे श्रृगारित किया है । आदि युगपुरुष भगवान ऋषभदेव से चरम परम पुरुष भगवान महावीर तक की पुराण-पर्वतो के बीच बहती पुण्य सलिला का दर्शन-स्पर्शन करते हुए, इतिहास रूप साक्ष्य पुरुष की आखो से देखा उत्तर कालीन ईतिवृत्त खरतरगच्छ की उज्ज्वल गरिमा मडित गाथाओ का अंकन प्रस्तुत है, एक सपूर्णता का स्पर्श लिये हुए

—'सरस'

रंग, बिरंगे सुगन्धित धूपवासित वस्त्र पहनते है। बिना नाथ के बैलो के सदृश स्त्रियो के आगे गाते हैं। आर्यिकाओ द्वारा लाये गये पदार्थ खाते है और तरह-तरह के उपकरण रखते है। सचित्त, जल, फल, फूल आदि द्रव्य का उपभोग करते है। दिन मे दो-तीन बार भोजन करते और ताम्बूल, लवगादि भी खाते है। ये लोग मुहूर्त निकालते है, निमित्त बतलाते है तथा भभूत देते हे। ज्यौनारो में मिष्ट आहार प्राप्त करते है। आहार के लिए खुशामद करते है और पूछने पर भी सत्य धर्म नही बतलाते। स्वय भ्रष्ट होते हुए भी आलोचन-प्रायश्चित्त आदि करवाते हैं। स्नान करते, तेल लगाते, शृगार करते और इत्र फुलेल का उपयोग करते है। अपने हीनाचारी मृत गुरुओ की दाहभूमि पर स्तूप बनवाते हैं। स्त्रियों के समक्ष व्याख्यान देते है और स्त्रियाँ उनके गुणो के गीत गाती है। सारी रात सोते, क्रय-विक्रय करते और प्रवचन के बहाने व्यर्थ बकवाद मे समय नष्ट करते है। चेला बनाने के लिए छोटे-छोटे बच्चो को खरीदते, भोले लोगो को ठगते और जिन-प्रतिमाओ का क्रय-विक्रय करते हैं। उच्चाटन करते और वैद्यक, मन्त्र-यन्त्र, गडा, तावीज आदि मे कुशल होते है। ये सुविहित साधुओ के पास जाते हुए श्रावको को रोकते है। शाप देने का भय दिखाते है, परस्पर विरोध रखते है और चेलो के लिए आपस में लड पडते है।"

चैत्यवास का यह चित्र आठवी शताब्दी का है। इसके पश्चात् तो चैत्यवासियो का आचार उत्तरोत्तर शिथिल होना ही गया और कालान्तर मे चैत्यालय भ्रष्टाचार के अड्डे बन गये तथा वे जैन-शासन के लिए अभिशाप रूप हो गये। ग्यारहवी शताब्दी के चैत्यवासियो की हीन स्थिति का दिग्दर्शन कराते हुए मुनि जिनविजयजी[1] लिखते है—

'इनके समय से श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय मे उन यतिजनो के समूह का प्राबल्य था जो अधिकतर चैत्यो अर्थात् जिन मन्दिरो मे निवास करते थे। ये यतिजन जैन देव मन्दिर, जो उस समय चैत्य के नाम से विशेष प्रसिद्ध थे, उन्ही मे अहर्निश रहते, भोजनादि करते, धर्मोपदेश देते, पठन-पाठनादि मे प्रवृत्त होते और सोते-बैठते। अर्थात् चैत्य ही उनका मठ या वासस्थान था और इसलिए वे चैत्यवासी के नाम से प्रसिद्ध हो रहे थे। इसके साथ उनके आचार-विचार भी बहुत से ऐसे शिथिल अथवा भिन्न प्रकार के थे जो जैन-शास्त्रो मे वर्णित निर्ग्रन्थ जैन-मुनि के आचारो से असगत दिखाई देते थे। वे एक तरह से मठपति थे।

'शास्त्रकार शान्त्याचार्य, महाकवि सूराचार्य, मन्त्रवादी वीराचार्य आदि प्रभावशाली, प्रतिष्ठा-सम्पन्न विद्वदग्रणी चैत्यवासी यतिजन उस जैन समाज के धर्माध्यक्षत्व का गौरव प्राप्त कर रहे थे। जैन समाज के अतिरिक्त आम जनता में और राजदरबार मे भी चैत्यवासी यतिजनो का बहुत बडा प्रभाव था। जैन धर्मशास्त्रो के अतिरिक्त, ज्योतिष, वैद्यक और मन्त्र-तन्त्रादि शास्त्रो और उनके व्यावहारिक प्रयोगो के विषय मे भी ये जैन यतिगण बहुत विज्ञ और प्रमाणभूत माने जाते थे। धर्माचार्य के खास कार्यो और व्यवसायो के सिवाय ये व्यावहारिक विषयो मे भी बहुत कुछ योगदान किया करते थे। जैन गृहस्थो के बच्चो की व्यावहारिक शिक्षा का काम प्राय इन्ही यतिजनो के अधीन था और इनकी पाठशालाओ मे जैनेतर गणमान्य सेठ साहूकारो एव उच्चकोटि के राज-दरबारी पुरुषो के बच्चे भी बडी उत्सुकतापूर्वक शिक्षालाभ प्राप्त किया करते थे। इस प्रकार राजवर्ग और जनसमाज मे इन चैत्यवासी यतिजनो की

---

१. कथाकोश प्रस्तावना, पृ० ३।

बहुत कुछ प्रतिष्ठा जमी हुई थी और सब बातो मे इनकी धाक जमी हुई थी। पर, इनका यह सब व्यवहार जैन शास्त्रो की दृष्टि से यतिमार्ग के सर्वथा विपरीत और हीनाचार का पोषक था।'

चैत्यवास की इस दुर्दशा को देखकर चैत्यवासी यतिजनो के मन मे भी क्षोभ उत्पन्न होता था, परन्तु उसका प्रतीकार करने का साहस विरले ही कर पाते थे। ऐसे साहसी और सच्चे यतियो/सुविहितो मे श्री वर्धमानाचार्य का नाम लिया जा सकता है जिन्होने ८४ चैत्यस्थानो के अधिकार और वैभव को छोडकर सच्चे साधु जीवन को बिताने का सकल्प लिया था। वे चैत्यवासी जीवन को छोडकर सुविहित अग्रणी उद्योतन सूरि के शिष्य बने और चैत्यवास का समूलोच्छेदन करने के लिए सक्रिय प्रयत्न किये। वे जिनेश्वरसूरि, बुद्धिसागरसूरि आदि अठारह साधुओ के साथ चैत्यवासियो के गढ अनहिलपुर पाटण आये। अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ झेलकर भी वहाँ के राजपुरोहित के माध्यम से वहा के तत्कालीन महाराजा दुर्लभराज के सम्पर्क मे आये। महाराज दुर्लभराज की अध्यक्षता मे ही पचासरा पार्श्वनाथ मन्दिर मे शास्त्रार्थ का आयोजन हुआ। चैत्यवासी प्रमुख आचार्य सूराचार्य आदि के साथ शास्त्रार्थ हुआ। शास्त्रार्थ आचार्य वर्धमान की उपस्थिति मे आचार्य जिनेश्वर ने किया और उन्होने प्रतिपादित किया कि वर्तमान चैत्यवासी आचार्यों यतियो का आचार पूर्णत शास्त्रविरुद्ध है। शास्त्र प्रमाणो के सम्मुख चैत्यवासी आचार्यगण निरुत्तर हो गये। आचार्य वर्धमान और जिनेश्वर आदि की चारित्रिक उत्कृष्टता, प्रखर तेजस्विता, स्पष्टवादिता आदि से देखकर महाराज दुर्लभराज प्रभावित हो गये और उन्होने कहा कि 'आपका मार्ग वास्तव मे खरतर है, पूर्णत सच्चा है।' यह शास्त्रार्थ विक्रम सवत् १०६६ से १०७८ के मध्य हुआ था। आचार्य वर्धमान की उपस्थिति मे शास्त्रार्थ जिनेश्वरसूरि ने किया था, अत तभी से इस सुविहित परम्परा मे खरतर गच्छ का उद्भव हुआ।

ऐसा प्रतीत होता है कि आचार्य जिनेश्वर से उद्भूत आचार विचार की इस परम्परा को, जहाँ इस परम्परा के अनुयायी लोग 'सुविहित' नाम प्रदान कर रहे थे, वहाँ उसके लिये एक-दूसरे नामकरण का भी विधान हो रहा था। यह तो स्पष्ट ही है कि तत्कालीन चैत्यवासियो के विपरीत यह एक उग्र, प्रखर और कट्टर सुधारवादी परम्परा थी, जो न केवल चैत्यवासियो से पृथक् थी वरन् उन वसतिवासियो के मार्ग से भी पृथक् थी जो तत्कालीन चैत्यवासी शिथिलता को चुपचाप सहन करते चले आ रहे थे। इसलिए स्वाभाविक था कि यह परम्परा अपनी उग्रता और कट्टरता की विशेषता को लेकर जनता मे प्रसिद्ध हो जाती, सम्भवत इसी आधार पर जनता ने इनको 'खरतर' कहना प्रारम्भ किया।

इतिहास मे ऐसे ही उदाहरण अन्यत्र मिलते हैं। ईसाई समाज मे 'प्यूरीटन' नाम की उत्पत्ति इसी प्रकार के उग्र सुधारवाद के वातावरण को लेकर हुई और अपने ही देश मे 'उदासी सम्प्रदाय' के नामकरण का आधार भी ऐसा ही प्रतीत होता है। इस प्रकार के नामो का जन्म स्वभावत उसी समय होता है, जब इन नामो की आधारभूत विशेषता सबसे अधिक आकर्षक, नवीन तथा विरोध प्राप्त होती है। जिनेश्वराचार्य की विचारधारा के लिये इस प्रकार का युग स्पष्टत उस समय से प्रारम्भ होता है जब वह चैत्यवासियो के दुर्भेद्य गढ "अणहिलपुरपत्तन" मे अपने प्रभाव को दिखलाते है। खरतरगच्छीय परम्परा के अनुसार 'खरतर' विरुद जिनेश्वराचार्य को तत्कालीन राजा दुर्लभराज द्वारा दिया गया था। इस बात को लेकर बहुत निराधार विवाद चला है, परन्तु इसमे विवाद के लिये कोई स्थान नही है। राजा ने यह विरुद दिया हो अथवा न दिया हो, आचार्य जिनेश्वर की विचारधारा की वह मूलभूत विशेषता जिसके कारण इस विरुद की कल्पना की जा सकती है, जनता के हृदय पर अवश्य ही अपना प्रभाव

जमा चुकी होगी और उसी के फलस्वरूप जनता ने उनका जो नामकरण किया, वह समाज के मस्तिष्क पर अमिट अक्षरों मे लिख गया। व्यक्ति चाहे वह चक्रवर्ती राजा ही क्यो न हो समाज-सागर का एक क्षुद्र बुद्-बुद् है, जो अपना क्षणिक अस्तित्व दिखाकर चला जाता है। परन्तु, समाज एक प्रवहमान सरिता है जो अक्षुण्ण रूप से अपनी युग-युग की सिद्धियो और स्मृतियो को समेटे चलता रहता है। इसलिए समाज के मानस-पटल पर आचार्य जिनेश्वर के सुधारवाद की खरतरता ने जो प्रभाव डाला उसकी स्थायी अभिव्यक्ति होना निश्चित था। चाहे कोई राजा उसको मानता या न मानता, चाहे कोई आचार्य या सम्प्रदाय उसको स्वीकार करता या नही करता। किसी विरुद के महत्व को बढाने के लिए राजमान्य होने की आवश्यकता नही। वसतिमार्ग को मान्यता किसने दी थी? चैत्यवासी नाम को रखने वाला कौन था? वर्तमान युग मे हवाई जहाज को चीलगाडी कहने वाला और मोटर सायकिल को फट-फटिया कहने वाला कौन था? इसका उत्तर यही है कि समाज या जनता। अतः इस प्रकार के नामकरणो के मूलकर्ता के विषय मे विवाद करना भाषा-विज्ञान के प्रति अनभिज्ञता प्रकट करना है।

जब यह कहा गया कि दुर्लभराज की राजसभा में "खरतरविरुद" की सृष्टि हुई, तो चाहे राजा ने अपने मुख से उस शब्द का उच्चारण किया हो या न किया हो, यह एक ऐसा सत्य कथन था जिससे कोई इनकार नही कर सकता, क्योकि जिस विशेषता ने जिनेश्वर की विचारधारा को "खरतर विरुद" दिया उसका सर्वप्रथम सफल और सार्थक विस्फोट यही हुआ था।

कुछ लोगो ने शका उठाई है कि दुर्लभराज की अध्यक्षता मे आचार्य जिनेश्वर और सूराचार्य का उक्त शास्त्रार्थ हुआ ही नही। इस प्रसंग मे प्रभावकचरितकार का मौन रहना भी प्रमाण रूप मे रखा जा सकता है, परन्तु प्रथम तो प्रभावकचरितकार से पूर्ववर्ती सुमतिगणि और जिनपालोपाध्याय के प्रबन्धो मे तथा उनके भी पूर्ववर्ती आचार्य जिनवल्लभ के पट्टधर युगप्रधान जिनदत्तसूरि प्रणीत गणधर सार्धशतक, गुरुपारतन्त्र्य स्तोत्र आदि काव्यो मे इस घटना का स्पष्ट उल्लेख मिलता है और दूसरे प्रभावक-चरितकार के लिए इस विषय मे मौन धारण करने के लिए एक उपयुक्त कारण भी था।

प्रभावकचरित अनेक प्रभावक चरित्रो के साथ-साथ सूराचार्य के चरित्र का भी वर्णन करता है जो उक्त शास्त्रार्थ मे जिनेश्वराचार्य के साथ पराजित हुए बताए जाते हैं, इसलिये यदि सूराचार्य के गौरव को घटाने वाली किसी घटना का इसमे उल्लेख किया जाता तो वह ठीक नही होता। इसके अतिरिक्त यह भी विचारणीय है कि प्रभावकचरितकार बहुत ही उदारमना होते हुए भी स्वय एक चैत्यवासी आचार्य थे। अत. सामाजिक शिष्टाचार की दृष्टि से भी उनके द्वारा चैत्यवासी प्रधानाचार्य की पराजय का उल्लेख किया जाना ठीक न होता। साथ ही मुनि जिनविजयजी के शब्दो मे "प्रभावकचरित के वर्णन से यह तो निश्चित ही ज्ञात होता है कि सूराचार्य उस समय चैत्यवासियो के एक बहुत प्रसिद्ध और प्रभाव-शील अग्रणी थे। ये पचासरा पार्श्वनाथ के चैत्य के मुख्य अधिष्ठाता थे। स्वभाव से बड़े उदग्र और वाद-विवादप्रिय थे। अत' उनका इस वाद-विवाद मे अग्ररूप से भाग लेना असभवनीय नही, परन्तु प्रासगिक ही मालूम देता है। शास्त्राधार की दृष्टि से यह तो निश्चित ही है कि जिनेश्वराचार्य का पक्ष सर्वथा सत्यमय था। अत उनके विपक्ष का उसमे निरुत्तर होना स्वाभाविक ही था। इसमे कोई सदेह नही कि राजसभा मे चैत्यवासी पक्ष निरुत्तरित होकर जिनेश्वर का पक्ष राज सन्मानित हुआ और इस प्रकार विपक्ष के नेता का मानभग होना अपरिहार्य बना। इसलिये सभव है कि प्रभावकचरितकार को सूराचार्य के इस मानभग का उनके चरित मे कोई उल्लेख करना अच्छा नही मालूम दिया हो और उन्होने

इस प्रसग को उक्त रूप मे न आलेखित कर अपना मौन भाव ही प्रकट किया हो[1]। अत यह ध्रुव सत्य है कि आचाय जिनेश्वर का सूराचाय के साथ दुलभराज की राजसभा मे शास्त्राथ हुआ और उसम सूराचाय पराजित हुए।

कुछ लोग अर्वाचीन पट्टावलियो के अनुसार इस वाद विवाद के समय के विषय मे भी निरथक वाद विवाद को खडा करते हैं। यह चर्चा किस सवत् म हुई थी? उसके सम्बध मे युगप्रधान जिनदत्तसूरि, जिनपालोपाध्याय, सुमतिगणि, प्रभावकचरितकार आदि मौन है। इसका कारण भी यही है कि सब ही प्रबधकारो ने जनश्रुति, गीतार्थश्रुति के आधार मे प्रबध लिखे हैं और वे भी सब १०० और २५० वष के मध्यकाल मे। वस्तुत समग्र लेखको ने सवत् के सम्बध म मौन धारण कर ऐतिह्यता की रक्षा की, अन्यथा सवत के उल्लेख म असावधानी होना सहज सभाव्य था। अत यह सहज सिद्ध है कि महाराज दुलभराज का राज्यकाल १०६६ से १०७८ तक का माना जाता है, उसी के मध्य मे यह घटना हुई है।

खरतरगच्छ की उत्पत्ति मूलत वधमानसूरि की अध्यक्षता म हुई थी अत इस खरतरगच्छ का सक्षिप्त परिचय आचाय वधमानसूरि से ही प्रारम्भ किया जा रहा है।

(१) आचाय वधमानसूरि

अभोहर दश म जिनचद्र नाम के चत्यवासी आचाय निवास करते थे और वे चौरासी स्थानो के अधिपति थे। उन्ही के शिष्य वधमान थे। जिनचद्राचाय ने उनको आचाय पद भी प्रदान कर दिया था। आचाय वद्ध मान शास्त्रविरुद्ध चत्यवासियो के आचार से अत्यन्त खिन्न रहते थे और अत मे गुर-आज्ञापूवक परम्परा को त्यागकर दिल्ली आए और शास्त्र सम्मत सयमी जीवन पालन करने वाले उद्योतनाचाय के शिष्य बने। उद्योतनाचाय ने भी उन्ह योग्य समझकर आचाय पद से विभूषित किया। इन्ही के नेतृत्व मे आचाय जिनेश्वर ने अणहिल पत्तन म शास्त्राथ म विजय प्राप्त की। खरतरविरुद प्राप्त किया। आचाय वद्ध मान ने सूरिमन्त्र की भी विशिष्ट साधना की और यह मन्त्र उनके लिए सस्फुरित हो गया था। अर्वाचीन पट्टावलियो के अनुसार आबू पवत पर महामन्त्री विमलकारित "विमलवसही" की प्रतिष्ठा भी इन्ही आचाय के करकमलो से हुई थी।

आचाय वद्ध मान भगवान महावीर की सौधर्मीय परम्परा म अडतीसवें पाट पर, कौटिकगण चद्र कुल, वज्रशाखा एव खरतरविरुदधारक थ।

इनका शिष्य समुदाय भी विशाल था और वे स्वय शास्त्रो के प्रौढ विद्वान थे। इनके द्वारा प्रणीत उपदेशपद टीका (रचना सम्वत् १०५५) उपदेशमाला वहत्वृत्ति, उपमिति भवप्रपच कथा समुच्चय एव कुछ स्तोत्र आदि प्राप्त होते है।

इनका समय अनुमानत ग्यारहवी शताब्दी के प्रथम चरण से १०८० तक माना जा सकता है। इनका स्वगवास आबू पवत पर ही हुआ था। इनके द्वारा विक्रम सवत् १०४६ म प्रतिष्ठित कटिग्राम की प्रतिमा प्राप्त है।

---

१ कथाकोप प्रस्ता० पृ० ४१

२ अर्वाचीन हिन्दी पट्टावलियो म स० १०८० का उल्लेख मिलता है तो किसी में १०२४ का, जो श्रवण परम्परा का आधार रखता है। इस परम्परा म भी ६००, ८०० वष क अन्तर म २४ वष का लेखन फरक रह जाय, यह स्वाभाविक है। इसे चर्चा का रूप देना निरथक ही है।

(२) जिनेश्वरसूरि

प्रभावकचरित के अनुसार ये मूलत मध्य देश (वर्तमान मे उत्तर प्रदेश का मध्य भाग) के निवासी थे। ये कृष्ण नामक ब्राह्मण के पुत्र थे, इनका नाम पहले श्रीधर था और इनके एक भाई था, जिसका नाम श्रीपति था। दोनो भाई बडे प्रतिभाशाली और मेधावी थे तथा वेद, वेदाग, इतिहास, पुराण, षट् दर्शनशास्त्र, स्मृतिशास्त्र आदि का इन दोनो ने विशेष अध्ययन किया था। विद्या पारगत होकर ये दोनो भाई धारा नगरी आये और वहाँ के जैन धर्मावलम्बी उदारमना सेठ लक्ष्मीपति के यहाँ आश्रय लिया। एकदा आचार्य वर्द्धमान विहार करते हुए धारा नगरी आये। सेठ लक्ष्मीपति ने इन दोनो भाइयो का साक्षात्कार वर्द्धमानाचार्य से करवाया। दोनो भाई आचार्य के तेज और तप से अत्यन्त प्रभावित हुए और आचार्य के पास दोनो भाइयो ने दीक्षा ग्रहण कर ली। श्रीधर जिनेश्वर बने और श्रीपति बुद्धिसागर। इन दोनो का प्रौढ वैदुष्य देखकर आचार्य वर्द्धमान ने इन दोनो को आचार्य पद प्रदान किया, तभी से ये दोनो जिनेश्वरसूरि और बुद्धिसागर सूरि के नाम से प्रसिद्ध हुए।

अपने गुरु की मनोभिलाषा को पूर्ण करने हेतु अपने गुरु के साथ ही विचरण करते हुए अनहिलपुर पत्तन आये और अपने अगाध पाण्डित्य के कारण राजपुरोहित सोमेश्वर के यहा आश्रय लिया। चैत्यवासी आचार्यो को जब भनक पडी कि यहाँ सुविहित साधु आये है तो उन्होने इनके निष्कासन के लिए षड्यत्र-पूर्वक अनेक प्रयत्न किए किन्तु वे सब निष्फल हुए। अन्त मे महाराजा दुर्लभराज की अध्यक्षता मे इनका सूराचार्य आदि विद्वानो के साथ शास्त्रार्थ हुआ। चैत्यवासी आचार्य शास्त्र-प्रमाणो के समक्ष निरुत्तर हुए। महाराजा दुर्लभराज ने इन्हे खरतरविरद दिया और इनके निवास-स्थान के लिए त्रिपुरुष प्रासाद नामक मुख्य शिव मन्दिर के पास ही कनहट्टी मे स्थान दिया। प्रभावकचरित के अनुसार तभी से वसतिवास की परम्परा प्रारम्भ हुई।[1]

इनके शास्त्रार्थ के बाद चैत्यवासियो का गढ ध्वस्त हो गया और वे राज सम्मानित होकर सर्वत्र नि सकोच होकर सुविहित मार्ग का प्रचार-प्रसार करने लगे।

इनकी बहन ने भी दीक्षा ग्रहण की थी, जिसका दीक्षा नाम कल्याणमति था। आचार्य वर्द्धमान-सूरि ने ही इन्हे श्रेष्ठ प्रवर्तिनी पद दिया था।

आचार्य जिनेश्वर सूरि का शिष्य समुदाय भी अत्यन्त विशाल था, जिनमे से प्रमुख-प्रमुख थे— जिनचन्द्र, अभयदेव, धनेश्वर, हरिभद्र, प्रसन्नचन्द्र, विमल, धर्मदेव, सहदेव, सुमति आदि। इनमे से जिन-चन्द्र, अभयदेव, धनेश्वर जिनका दूसरा नाम जिनभद्र था तथा हरिभद्र को आचार्य पद एव धर्मदेव, सुमति, विमल इन तीनो को उपाध्याय पद प्रदान किया था। धर्मदेव उपाध्याय और सहदेव गणि ये दोनो भाई थे। धर्मदेव उपाध्याय के शिष्य हरिसिह जो भविष्य मे आचार्य बने और सहदेव गणि ने पण्डित सोमचन्द्र को दीक्षित किया था, जो भविष्य मे युगप्रधान जिनदत्त सूरि बने। सहदेवगणि के शिष्य अशोकचन्द्र थे, वे परवर्तीकाल मे आचार्य बने। सुमतिगणि के शिष्य गुणचन्द्रगणि हुए, जो बाद में आचार्य बनने पर देवभद्राचार्य के नाम से प्रसिद्ध हुए। आचार्य जिनेश्वर ने अपने पाट पर जिनचन्द्रसूरि को स्थापित किया।

---

१. प्रभावकचरित के अभयदेवसूरि चरित के अन्तर्गत जिनेश्वरसूरि का चरित।

आचाय जिनेश्वर न केवल वाकचातुय और शास्त्रचर्चा के ही आचाय थे, अपितु लेखनी के भी प्रौढ आचाय थे। आपने प्रमालक्ष स्वोपज्ञवत्ति सहित, अष्टक प्रकरण टीका, [रचना सवत् १०८०] चैत्यवदनक [रचना स वत् १०९६], निर्वाण लीलावति कथा [रचना सवत् १०९२] कथा कोष प्रकरण स्वोपज्ञवत्ति सहित [रचना सवत् ११०८], पचलिंगी प्रकरण, षट स्थान प्रकरण आदि दाशनिक, सैद्धान्तिक एव कथा साहित्य की रचनाएँ की थी।

आचाय जिनेश्वरसूरि का स्वगवास कब और कहा हुआ, निश्चित नही है किन्तु आपकी सम्वत् ११०८ मे रचित कथाकोष स्वोपज्ञवृत्ति प्राप्त है, अत इसके बाद ही आपका स्वगवास हुआ होगा।

(३) जिनचन्द्रसूरि

आचाय जिनेश्वर के पश्चात् उनके पट्ट पर जिनचन्द्रसूरि हुए। आपके सम्बन्ध म कोई इति वृत्त प्राप्त नही है। इसम तो कोई सन्देह नही कि आप बहुश्रुत गीताथ थे। आपने अपन लघु गुरु-बन्धु गीताथ, विख्यात कीर्तियुक्त अभयदेवसूरि की अभ्यथना से 'सवेगरगशाला' नामक प्राकृत ग्रन्थ की १०,०५० श्लोक वहत् परिमाण म सवत् ११२५ म रचना पूर्ण की। यह ग्रन्थ मूल, गुजराती एव हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित हो चुके हैं। अनुवादको ने गच्छ कदाग्रह से इनको तपागच्छ का आचाय लिखा है, जो नितान्त भ्रामक है, क्योकि इसकी रचना ११२५ म हुई और तपागच्छ की उत्पत्ति १२८४ म हुई। सवेगरगशाला के अतिरिक्त श्रावकविधि दिनचर्या, धर्मोपदेश काव्य क्षपकशिक्षा प्रकरण आदि छोटी मोटी सात रचनाएँ प्राप्त है।

इनका स्वगवास कब हुआ, इस सम्बन्ध म कोई सकेत प्राप्त नही है।

(४) अभयदेवसूरि

जिनचन्द्रसूरि के पट्टधर गच्छनायक के रूप मे हम आचाय अभयदेवसूरि के दशन होते हैं। आपके प्रारम्भिक जीवन वृत्त के सम्बन्ध म हमे केवल प्रभावकचरित म ही किंचित् उल्लख प्राप्त होते हैं। इसके अनुसार आचाय जिनेश्वरसूरि सम्वत् १०८० के पश्चात् जाबालिपुर [जालौर] से विहार करते हुए मालवा प्रदेश [मध्य भारत] की तत्कालीन प्रसिद्ध राजधानी धारानगरी पधारे।

इसी नगरी म श्रेष्ठि महीधर रहते थे। धनदेवी इनकी पत्नी का नाम था और अभयकुमार इनका पुत्र था। आचाय जिनेश्वर के प्रवचना से प्रबुद्ध होकर अभयकुमार न दीक्षा ग्रहण की और दीक्षा नाम इनका हुआ—अभयदेव मुनि। आचाय जिनेश्वर ने आपकी योग्यता और प्रतिभा को देखकर आचाय पद प्रदान किया और वे आचाय अभयदेवसूरि के नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त हुए। इनका सवप्रथम टीका ग्रन्थ ११२० म रचित प्राप्त है। उसम स्वय के लिए सूरि शब्द का प्रयोग किया है अत यह निश्चित है कि ११२० से पूव ही ये आचाय बन चुके थे।

श्वताम्बर जैन साहित्य म जो ग्यारह अग मान जाते हैं उनम से केवल आचाराग सूत्र और सूत्रकृताग सूत्र पर आचाय शीलाक द्वारा रचित टीकाएँ प्राप्त थी। शेष नव अगा पर कोई विवेचन प्राप्त नहीं था। मूल पाठ भी लेखको की अशुद्ध परम्परा के कारण अशुद्धतर होते जा रह थे। वाचना भेदा की बहुलता मूल आगमा को कूट आगम सिद्ध कर रहे थे, जो कुछ वाचन मनन की प्रणाली थी, वह कूट पाठो की बहुलता से नष्ट होती जा रही थी। ऐसी परिस्थिति देखकर अभयदवसूरि ने अपनी समयज्ञता का परिचय दिया और अपनी बहुश्रुतता का उपयोग समाज के लिए हो, अत उन्होने शेष नव अगो

पर विवेचन लिखना प्रारम्भ किया। इस निर्माण कार्य हेतु वे प्राय कर ११२० के ११२८ तक अनहिलपुर पाटण मे रहे। नव अगो पर सम्यक् प्रकार से विवेचन लिखा। ११२४ मे धोलका रहे और वहाँ पंचाशक पर टीका लिखी। इन टीकाओ का संशोधन सुविहित साधुओ मे न कराकर उन्होने तत्कालीन चैत्यवासियो मे प्रमुख आचार्य द्रोणाचार्य से अनुरोध किया कि मेरी लिखी हुई टीकाओ का आप सशोधन कर दे। द्रोणाचार्य ने भी विशाल हृदय का परिचय दिया और प्रतिपक्षी का शिष्य न समझकर एक गीतार्थ का श्लाघ्य, प्रशस्य और सर्वोत्तम कार्य समझकर अभयदेवरचित समग्र टीकाओं का संशोधन कर उस पर प्रामाणिकता की मोहर लगा दी।

टीकाओ की रचना करते समय अहर्निश जागरण और अत्युग्रतप के कारण आचार्य का शरीर-व्याधि से ग्रस्त हो गया। व्याधिग्रस्त अवस्था मे प्रवास करते हुए खम्भात पधारे और सेढी नदी के किनारे 'जयतिहुअणवर' नामक नवीन स्तोत्र के द्वारा भगवान् पार्श्वनाथ की स्तुति की, उसी समय भगवान् पार्श्वनाथ का मूर्ति भूमि से स्वयमेव प्रकट हुई और वही मूर्ति खम्भात मे नूतन मन्दिर बनवाकर प्रतिष्ठित की गई। तभी से यह स्थान स्तम्भनक पार्श्वनाथ तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध है।

जिनपालोपाध्याय और सुमतिगणि इस घटना को नवागी टीकाओ की रचना के पूर्व मानते है, जबकि प्रभावकचरितकार टीका रचना के बाद मानते है। कुछ भी हो, यह निश्चित है कि स्तम्भनक पार्श्वनाथ तीर्थ की स्थापना आचार्य अभयदेवसूरि के द्वारा हुई थी।

आचार्य अभयदवसूरि की गणना आप्त टीकाकारो में की जाती है। ये परम गीतार्थ तो थे ही, अपितु प्रौढ व्याख्याता भी थे। इनके द्वारा निर्मित पचाशक टीका, षट्स्थान भाष्य, प्रज्ञापना तृतीय पद सग्रहणी, पच निर्ग्रन्थी प्रकरण, आराधना कुलक, आगम अष्टोत्तरी, नवपद प्रकरण भाष्य, सत्तरी भाष्य, बृहद् वन्दनक भाष्य, निगोद षट्त्रिंशिका, पुद्गल षट्त्रिंशिका एवं कई स्तोत्र प्राप्त है जो आपके अगाध वैदुष्य को प्रकट करते है।

आप केवल जैन आगमो के ही उद्भट विद्वान् नही थे अपितु तर्कशास्त्र और न्यायशास्त्र के भी प्रकाण्ड पण्डित थे। उस समय के प्रसिद्ध विद्वान् प्रसन्नचन्द्रसूरि, वर्द्धमान सूरि, हरिभद्र सूरि और देवभद्र सूरि ने आप ही के पास विद्याध्ययन किया था।

आपके प्रमुख शिष्य थे—वर्द्धमानसूरि, हरिश्चन्द्र सूरि और परमानन्द एव उपसम्पदा प्राप्त जिनवल्लभ गणि।

आचार्य अभयदेव का स्वर्गवास अनुमानत ११३६ के बाद ही हुआ होगा।

(५) जिनवल्लभसूरि

आचार्य अभयदेव सूरि के पट्ट पर जिनवल्लभसूरि हुए। स्वप्रणीत 'अष्टसप्ततिका' अपरनाम 'चित्रकूटीय-वीरचैत्य प्रशस्ति' के अनुसार वे कूर्चपुर गच्छीय चैत्यवासी आचार्य जिनेश्वराचार्य के शिष्य थे। ये मूलत आशिका (हाँसी) के निवासी थे। बाल्यावस्था मे ही इन्हे 'सर्पाकर्षणी और सर्पमोक्षणी दोनो विद्याएँ सिद्ध थी। अपने गुरु के पास रहकर इन्होने समस्त शास्त्रो का अध्ययन किया था। एक समय शास्त्रो का अध्ययन करते हुए इन्हे लगा कि हम लोगो का जीवन शास्त्रविहित नही है। शास्त्र-विहित मार्ग पर चलने से ही कल्याण हो सकता है।

जिनेश्वराचार्य ने अपने शिष्य जिनवल्लभ को सैद्धान्तिक आगम ग्रन्थो का अध्ययन करवाने के लिए सुविहिताग्रणी आचार्य अभयदेव के पास भेजा। आचार्य अभयदेव ने भी जिनवल्लभ को योग्य

समन्वकर उदारमना होकर एक चैत्यवासी यति को सहर्ष आगमों की वाचना दी। समस्त आगमों की वाचना प्राप्त कर जिनवल्लभ कृत कृत्य हो गये। उन्हीं के निकट रहते हुए इन्होंने ज्योतिष शास्त्र का भी विशिष्ट ज्ञान प्राप्त किया। विद्याध्ययन के पश्चात जिनवल्लभ वापस जाने लगे तो आचार्य अभयदेव ने कहा—"वत्स, सिद्धान्त के अनुसार जो साधुओं का आचार व्रत है, वह तुम सब समझ चुके, अतः उसके अनुसार आचरण कर सको, वैसा ही प्रयत्न करना।"

जिनवल्लभ ने आचार्य के हार्दिक उद्गारों को शिरोधार्य किया। वहाँ से चलकर प्रयाण करते हुए वे मरुकोट पहुँचे और वहाँ जिनालय में विधि चैत्य के नियमानुसार श्लोक उत्कीर्ण करवाये।

अपने चैत्यवासी गुरु जिनेश्वराचार्य से मिले और उनकी अनुमति प्राप्त कर वे वापस अभयदेवसूरि के पास पहुँचे और उनसे 'उपसम्पदा' ग्रहण की। उस समय इनके साथ इनके गुरुभ्राता जिनशेखर भी थे। आचार्य अभयदेव जिनवल्लभ को प्राप्त कर अत्यन्त प्रसन्न हुए, किन्तु वे स्वयं उन्हें अपने पट्ट पर आसीन न कर सके। उन्होंने इस कार्य के लिए प्रसन्नचन्द्राचार्य को संकेत किया—"जब भी अवसर मिले इन्हें आचार्य पद प्रदान कर मेरा पट्टधर घोषित करना।" किन्तु प्रसन्नचन्द्र भी समय पर इस कार्य को सम्पन्न न कर सके और उन्होंने अपने शिष्य देवभद्राचार्य को इस कार्य के लिए संकेत किया।

जिनवल्लभगणि विहार करते हुए चित्रकूट (चित्तौड) आये। वहाँ उन्हें रहने को चण्डिका का मठ मिला। गणिजी ने चण्डिका को प्रतिबुद्ध किया। चित्तौड में इनके तप त्याग, निर्भीकता आदि गुणों से वहाँ इनका प्रभाव छा गया। इनके अनेकों अनुयायी बने। चित्तौड में रहते हुए भगवान महावीर के शास्त्रसमर्थित पट्-कल्याणकों की मान्यता को पुनः प्रचारित किया।

भगवान पार्श्वनाथ और भगवान महावीर के दो विधि चैत्यों का निर्माण भी उनके उपदेश से हुआ और उन्होंने सं० ११६२ में प्रतिष्ठाएँ भी करवाई।[1] धाराधिपति महाराजा नरवर्मा भी इनके भक्त थे और महाराजा नरवर्मा ने चित्तौड के महावीर चैत्य के लिए दान भी दिया था।

संवत् ११६७ में आचार्य प्रसन्नचन्द्र के वचनों को स्मरण कर परम गीतार्थ देवभद्राचार्य ने इनको चित्तौड बुलाया और आषाढ सुदी छठ के दिन इनको आचार्य पद प्रदान कर नवांगी टीकाकार अभयदेव सूरि का पट्टधर घोषित किया। वागड देश में विहार कर आपने १०००० अजैनों को प्रतिबोध देकर जैन बनाया। छः मास के अल्पकाल में ही संवत ११६७ कार्तिक वदी बारस को आपका चित्तौड में ही स्वर्गवास हो गया।

जिन वल्लभसूरि प्राकृत और संस्कृत भाषा के उद्भट विद्वान् थे। साथ ही वे जैन दर्शन और इतर दर्शनों के भी प्रौढ विद्वान थे ही। साहित्य के धुरन्धर विद्वान थे ही। इनकी विद्वत्ता के सम्बन्ध में युगप्रधान जिनदत्तसूरि तो इन्हें महाकवि माघ कालिदास और वाक्पतिराज से भी बढकर मानते हैं।

इनके द्वारा विविध विषयों में निर्मित वर्तमान में ४८ कृतियाँ प्राप्त होती हैं, जिनमें से सैद्धान्तिक विषयों में सूक्ष्मार्थविचारसारोद्धार आगमिक वस्तुविचारसार, पिण्डविशुद्धि प्रकरण,

---

१ चित्तौड में आज दोनों ही मन्दिर प्राप्त नहीं हैं। महावीर चैत्य की शिलोत्कीर्ण प्रशस्ति अष्ट सप्तति/वीर चैत्य प्रशस्ति की प्रतिलिपि प्राप्त है। पार्श्वनाथ मन्दिर की प्रशस्ति का शिलापट्ट प्रशस्ति भी प्राप्त हो गई है।

औपदेशिक ग्रन्थो मे द्वादशकुलक, धर्मशिक्षा प्रकरण, द्वादशकुलक संघपट्टक आदि, काव्य ग्रन्थो मे शृंगारशतक, प्रश्नोत्तरैकषष्टिशतम् आदि एव स्तोत्र साहित्य प्राप्त है।[1]

आचार्य जिनेश्वर ने चैत्यवास के विरुद्ध जो शंखनाद किया था, उसको प्रबल वेग के साथ इन्होने आगे बढाया। न केवल विरोध ही अपितु उसका वैधानिक मार्ग भी प्रस्थापित किया। यही कारण है कि आचार्य जिनेश्वर से खरतरगच्छ सुविहित पक्ष के नाम से प्रसिद्ध था, वह जिनवल्लभ के समय मे विधि पक्ष के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

पट्टावलियो के अनुसार इनके स्वदीक्षित शिष्य अधिक न थे। मुख्यतया केवल रामदेवगणि का ही नाम प्राप्त होता है, जिनकी दो रचनाएँ प्राप्त हैं—सूक्ष्मार्थविचारसारोद्धार प्रकरण टिप्पण, षड्शीति टिप्पणक। इनके भक्त श्रावको मे नागौर निवासी धनदेव के पुत्र कवि पद्मानन्द भी अच्छे विद्वान् थे और इनकी रचित वैराग्यशतक कृति प्राप्त है।

(६) युगप्रधान दादा जिनदत्तसूरि

जन्म—११३२, दीक्षा—११४१, आचार्य पद ११६६, स्वर्गवास १२११। सौधर्मीय परम्परा मे ४४वे पाट पर जिनवल्लभसूरि के पट्टधर दादा शब्द से जैन जगत् मे विख्यात युगप्रधान जिनदत्तसूरि हुए। ये धोलका के निवासी थे। उनके माता-पिता के नाम थे—हुम्बड ज्ञातीय वाछिग एव बाहड देवी। इनका जन्म ११३२ मे हुआ था। विदुषी साध्वियो के उपदेशो से प्रतिबुद्ध होकर इन्होने संवत् ११४१मे धर्मदेव उपाध्याय के पास दीक्षा ग्रहण की। इनका दीक्षा नाम था—सोमचन्द्र। इनके शिक्षा गुरु थे—सर्वदेवगणि, अशोकचन्द्राचार्य और हरिसिंह आचार्य।

आचार्य जिनवल्लभसूरि के आकस्मिक देहावसान हो जाने से आचार्य देवभद्र ने संवत् ११६६ वैशाख शुदी एकम् को बडे महोत्सव के साथ आचार्य पद देकर उन्हे जिनवल्लभसूरि के पाट पर स्थापित किया। आचार्य पदारोहण के समय नाम परिवर्तन कर जिनदत्तसूरि नाम रखा।

आचार्य बनने के पश्चात् जिनदत्तसूरि चैत्यवास को निर्मूल करने मे कटिबद्ध हो गये और निर्भीकता एव प्रखरता के साथ चैत्यवास की मान्यताओ का खण्डन करते हुए सुविहित/विधि पक्ष का प्रबल प्रचार करने लगे। इनकी उत्कृष्ट चारित्रिक सम्पदा और तप-त्याग को देखकर बड़े-बडे चैत्यवासी आचार्य—जयदेवाचार्य, जिनप्रभाचार्य, विमलचन्द्रगणि, मन्त्रवादी जयदत्त, गुणचन्द्रगणि, ब्रह्मचन्द्रगणि आदि ने भी चैत्यवास का त्याग कर इनके पास दीक्षा ग्रहण की थी। अजमेर के तत्कालीन नृपति अर्णोराज, त्रिभुवनगिरि के महाराजा कुमारपाल आदि भी आपके भक्त थे और आपको उच्च सम्मान देते थे। त्रिभुवनगिरि के महाराजा कुमारपाल के साथ आपके चित्र की काष्ठपट्टिका आज भी जैसलमेर ज्ञान भडार मे विद्यमान है। अनेक स्थानो पर विचरण करते हुए अजमेर, त्रिभुवनगिरि आदि स्थानो पर विधिचैत्यो की प्रतिष्ठाएँ कराई थी। लगभग सहस्राधिक साधु-साध्वियो को दीक्षा दी थी। विक्रमपुर आदि स्थानो पर अनेक उपद्रवो को दूरकर एक लाख तीस हजार जैनेतरो को जैन बनाकर ओसवंश को समृद्ध किया था। आपके प्रतिबोधित गौत्रो की सख्या ५२ है।

महादेवी अम्बिका के द्वारा आपको युगप्रधान पद प्राप्त हुआ था। परम्परागत पट्टावलियो के अनुसार आप बडे चमत्कारी भी थे। प्रथम अनुयोग/मन्त्रग्रन्थ की प्राप्ति भी आपको हुई थी। चौसठ योगणियो को प्रतिबोध दिया था। ५२ वीर एवं ५ पीर भी आपकी सेवा मे उपस्थित रहते थे।

---

१ इनके कृतित्व और व्यक्तित्व का विशेष अध्ययन करने के लिए महोपाध्याय विनयसागर लिखित 'वल्लभ भारती' देखे।

विक्रम सवत १२११ आपाढ वदी ग्यारस (परम्परा के अनुसार आपाढ सुदी ग्यारस) को आपका स्वगवास अजमेर म हुआ था। आज भी आपके चमत्कार सवत्र देखे व सुने जाते ह, और आज भी आप भक्ता के मनोरथ पूण करते हैं।

आपके द्वारा निर्मित कोई बडी कृतिया तो प्राप्त नही है। गणधर साद्ध शतक, सन्देह दोलावली, उपदेश कुलक आदि छोटी मोटी ७७ कृतियाँ प्राप्त होती है। इनमें से चचरी, उपदश रसायन और काल स्वरूप कुलक अपभ्र श भाषा की रचनाएँ है, जो हिन्दी के आदि काल म महत्वपूण स्थान रखती हैं।

(७) मणिधारी जिनचन्द्रसूरि

जन्म—११९७, दीक्षा—१२०३ आचाय पद १२०५, गच्छनायक—१२११, स्वगवास—१२२३ ई

मणिधारी जिनचन्द्रसूरि के माता पिता सेठ रासल और देल्हण देवी थे। ये जैसलमेर के निकट विक्रमपुर के निवासी थे। इनका जन्म विक्रम सवत् ११९७ भादवा सुदी आठम को हुआ था। य जन्म स ही विलक्षण, अनेक शुभलक्षणा से युक्त, प्रतिभावान एव सस्कारयुक्त थे। माता पिता के साथ आचाय जिनदत्तसूरि के दशनाथ अजमेर पहुँचे और आचाय की देशना स प्रतिबुद्ध होकर अजमेर म ही सवत् १२०३ फागुन सुदी नवमी को आचाय से ही दीक्षा ग्रहण की। गणनायक जिनदत्तसूरि न इनकी विशिष्ट प्रतिभा और योग्यता को देखकर इनके जन्म स्थान विक्रमपुर म ही सवत् १२०५ म वैशाख सुदी छठ के दिन इन्ह आचाय पद प्रदान किया और नामकरण किया जिनचन्द्रसूरि। सम्भवत जैन समाज म यह प्रथम ही उदाहरण होगा जबकि अत्यल्प ६ वप की अवस्था म कोई व्यक्ति आचाय बना हो। गणनायक जिनदत्तसूरि का स्वगवास होने पर सवत् १२११ म ये गच्छनायक बने।

सवत् १२१४ मे इन्हाने त्रिभुवनगिरि म शान्तिनाथ मन्दिर के शिखर की प्रतिष्ठा की। इसके बाद हेमदेवी नाम की आर्या को प्रवर्तिनी पद दिया। सवत् १२१७ म मथुरा म नरपति आदि आठ मुमुक्षुओ को दीक्षा दी। इसी वप म क्षेमन्धर सेठ को प्रतिबोध दिया और वैशाख शुक्ला दसमी को मरुकोट में चन्द्रप्रभ स्वामी के विधि चत्य म कलश एव ध्वज दड की प्रतिष्ठा की। सवत् १२१८ म ऋपभदत्त आदि पाच साधु एव जगश्री आदि तीन साध्विया को दीक्षित किया। १२२१ म सागरपाट म पाश्वनाथ विधि चत्य मे देवकुलिका की प्रतिष्ठा की। वहा स अजमेर पधार कर श्री जिनदत्तसूरि के स्मारक स्तूप की प्रतिष्ठा की। तत्पश्चात बब्बेरक ग्राम मे गुणभद्रगणि आदि पाँच शिष्यो को दीक्षित किया। आशिका नगरी मे नागदत्त मुनि को वाचनाचाय पद दिया। महावन म अजितनाथ मन्दिर की प्रतिष्ठा की। इन्द्रपुर मे गुणचन्द्रगणि ने पितामह लाल श्रावक द्वारा बनाए हुए शान्तिनाथ विधि चत्य म दड, कलश और ध्वजा प्रतिष्ठित की। तगलाग्राम म अजितनाथ विधि चत्य की प्रतिष्ठा की। सवत् १२२२ म वादला नगर म पाश्वनाथ मन्दिर म दड, कलश, ध्वजा आदि की प्रतिष्ठा कर, अम्बिका शिखर पर स्वण कलश की स्थापना करवाई। नरपालपुर में एक अभिमानी ज्योतिषी को ज्योतिष शास्त्र म पराजित किया।

वहाँ से आचार्य जिनचन्द्र रुद्रपल्ली आये। रुद्रपल्ली म वहाँ राज्य सभा म पदमचन्द्राचाय के साथ तमोवाद पर शास्त्राथ हुआ और इस शास्त्र चर्चा म जिनचन्द्रसूरि न विजय प्राप्त की। इस विजय के कारण ही वहाँ के आचाय जी क भक्त जयतिहट्ट के नाम से प्रसिद्ध हुए।

विहार करते हुए चौरसिन्दानक ग्राम के पास श्रीसघ के साथ आचाय न पडाव डाला। वहाँ पर लूटपाट करते हुए म्लेच्छो के भय स सघ आकुल-व्याकुल हो गया। आचाय ने अपन तपोबल से सघ का यह कष्ट दूर किया। म्लेच्छ सनिक पास होकर निकल गए। वे सघ के पडाव को न देख सके।

आचार्य विचरण करते हुए दिल्ली के निकट पहुँचे। दिल्ली के मुख्य-मुख्य श्रावक अपने परिवारो के साथ वडे आडम्बर से आचार्य के दर्शन के लिए वहाँ जाने लगे। दिल्ली के तत्कालीन महाराजा मदनपाल (अनगपाल, जो कि पृथ्वीराज चौहान के नाना थे) भी आचार्य के दर्शन के लिए आचार्य की सेवा मे पहुँचे। सकेत और स्वय की अनिच्छा होते हुए भी दिल्लीनरेश और प्रमुख श्रेष्ठियो के अत्याग्रह को आचार्य टाल न सके, और दिल्ली आए तथा १२२३ का चातुर्मास दिल्ली मे ही किया। दिल्ली में ही अपने अनन्य भक्त कुलचन्द्र को एक यत्र पट्ट दिया, जिसकी उपासना से वह समृद्धिशाली सेठ वन गए। एकदा दिल्ली के वाहर जगल मे दो मिथ्यादृष्टि देवियो को मास के लिए लडते हुए देखा। करुणार्द्र हृदय सूरिजी ने अधिशाली नामक देवी को प्रतिबोध देकर मास वलि का त्याग करवाया और पार्श्वनाथ विधि चैत्य के दक्षिण स्तम्भ में रहने के लिए आवास प्रदान किया।

विक्रम सवत् १२२३ भादवा वदी चौदस के दिन इनका स्वर्गवास हुआ। शरीर त्यागते समय आचार्यश्री ने अपने पार्श्ववर्ती लोगो से कहा था "नगर से जितनी दूर हमारा दाह सस्कार किया जाएगा, नगर की आवादी उतनी ही दूर तक वढेगी।" इनका दाह-सस्कार महरोली मे किया गया, जहाँ आज भी इनका स्तूप विद्यमान है और चमत्कारो का केन्द्र है। जहाँ आज भी जैन, अजैन सभी उनके प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करने हेतु उनके समाधि स्थल के दर्शन करते है।

कहा जाता है कि आपके भालस्थल पर मणि थी, अत आप मणिधारी जिनचन्द्रसूरि के नाम से ही जैन समाज मे दूसरे दादा के नाम से विख्यात हुए।

आपने भी अनेक अजैनो को प्रतिवोध देकर महत्तियाण जाति की स्थापना कर जैन समाज की वृद्धि की थी।

इनके द्वारा रचित कोई विशिष्ट और विशाल कृति प्राप्त नही है। केवल लघुकायिक दो कृतियाँ प्राप्त है—व्यवस्था शिक्षा कुलक एव पार्श्वनाथ स्तोत्र। इनके पठनार्थ कागज पर लिखी हुई प्राचीनतम "ध्वन्यालोकलोचन" की प्रति जो जैसलमेर ज्ञान भण्डार की थी, वह आज राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर के सग्रहालय की शोभा वढा रही है। जिसमे इनके लिए विशेषण दिया गया है—"प्रतिवादिकरटिकरट विकटरद ··· ··· ··· विज्ञातसकल-शास्त्रार्थ।"

खरतरगच्छ एव इसकी अन्य सभी शाखाओ की आचार्य परम्परा मे चतुर्थ पाट पर जिनचन्द्र सूरि नाम रखने की प्रथा प्रारम्भ से ही प्राप्त होती है। कई विद्वानो के मतानुसार यह प्रथा सवेगरगशालाकार जिनचन्द्रसूरि से प्रारम्भ हुई, परन्तु अधिकाश विद्वानो का मत है कि यह चतुर्थ नाम की परम्परा मणिधारी जिनचन्द्रसूरि से ही प्रारम्भ हुई है।

(८) युगप्रवरागम जिनपतिसूरि

जन्म—विक्रम सवत् १२१०, दीक्षा—१२१७, आचार्य पद १२२३, स्वर्गवास १२७७।

मणिधारी जिनचन्द्रसूरि के पाट पर षट्त्रिशद्वादविजेता युगप्रवरागम जिनपतिसूरि हुए। मरुस्थल के विक्रमपुर निवासी माल्हू गोत्रीय श्रेष्ठि यशोवर्धन की भार्या सूहव देवी की कुक्षि से विक्रम संवत् १२१० चैत्र वदी आठम के दिन आपका जन्म हुआ था। आपका जन्म नाम नरपति था। विक्रम सवत् १२१७ फाल्गुन सुदी दसवी के दिन मथुरा में मणिधारी जिनचन्द्रसूरि ने इनको दीक्षा प्रदान की थी। जिनचन्द्र सूरि के स्वर्गवास के पश्चात् उन्ही के निर्देशानुसार विक्रम सवत् १२२३ कार्तिक सुदी तेरस को दिल्ली मे ही वडे महोत्सव के साथ इनको आचार्य पद प्रदान किया गया था। स्वर्गीय युगप्रधान जिनदत्तसूरि जी के वयोवृद्ध शिष्य जयदेवाचार्य के तत्वावधान मे यह महोत्सव सम्पन्न हुआ और इनका

नाम परिवतन कर जिनपतिसूरि घोषित किया गया। इसी महोत्सव के समय जिनभद्र को आचाय पद प्रदान किया गया। साथ ही आपने पदमचन्द्र और पूणचन्द्र को दीक्षा प्रदान की।

विक्रम सवत् १२२४ म आचाय जिनपतिसूरि ने विक्रमपुर म गुणधर आदि छ को दीक्षा प्रदान की और जिनप्रिय मुनि को उपाध्याय पद प्रदान किया। सवत् १२२५ मे पुष्करणी नगर म पत्नी सहित जिनसागर एव जिनपाल आदि आठ को दीक्षा प्रदान की। वहा से विहार कर विक्रमपुर म आये और जिनदेवगणि को दीक्षा दी। सवत् १२२७ म उच्चा नगरी म धमसागर आदि सात को दीक्षित किया। जिनहित मुनि को वाचनाचाय पद दिया। वहा से मरुकोट आये। मरुकोट मे शीलसागर, विनयसागर और उनकी बहिन अजितश्री को सयम व्रत प्रदान किया। १२२८ म सागरपाडा आये, वहा पर सेनापति आम्बड तथा सेठ साल्ह के बनवाये हुए अजितनाथ तथा शान्तिनाथ मन्दिरो की प्रतिष्ठा करवाई। वहा से बब्बेरक गाव पधारे, वहा आशिका नगर के श्री सघ के साथ आशिका के महाराजा भीमसिंह भी आचाय श्री के दशनाथ बब्बेरक आय। महाराजा के आग्रह से आचाय जी आशिका नगरी पधारे आशिका नगरी म ही महाप्रमाणिक दिगम्बर आचाय के साथ वाद विवाद हुआ और इस चचा म जिन पतिसूरि को विजय प्राप्त हुई।

सूरिजी वहा से १२२९ म धनपाली पहुँचे और वहा पर सम्भवनाथ स्वामी की प्रतिमा की स्थापना और शिखर की प्रतिष्ठा की। सागरपाट म पण्डित मणिभद्र के पट्ट पर विनयभद्र का वाचनाचाय का पद दिया। १२३० म स्थिरदेव आदि तीन साधु और अभयमति आदि चार साध्विया को दीक्षा प्रदान की। १२३२ फाल्गुन सुदी दसमी को विक्रमपुर म भाडागारिक गुणचन्द्र गणि के स्मारक स्तूप की प्रतिष्ठा की। वहा स पुन विहार कर आशिका नगरी पधारे, बडे महोत्सव के साथ नगर प्रवेश हुआ, उस समय आचायश्री के साथ ८० साधु थे। ज्येष्ठ सुदी तीज के दिन बडे विधि विधान के साथ पाश्वनाथ मन्दिर के शिखर पर ध्वजाकलश आरोपित किया। आशिका मे ही धमसागर गणि और धमरुचिगणिनी का सयमी बनाया। १२३३ आषाढ माह म कन्यानयन के विधि चत्यालय म आचायश्री के चाचा साह मानदेव कारित भगवान महावीर की प्रतिमा स्थापित की। व्याघ्र पुर मे पाश्वदेवगणि को दीक्षा प्रदान की। सवत् १२३४ म फलवर्धिका नगरी के विधिचत्य म पाश्वनाथ स्वामी की प्रतिमा स्थापित की। इसी वष जिनमत गणि को उपाध्याय पद और गुणश्री साध्वी को महत्तरा पद दिया और सवदेवाचाय और जयदेवी नाम की साध्वी को दीक्षा दी। सवत् १२३५ म आचायश्री का चातुमास अजमेर म हुआ। इसी वष दादा जिनदत्तसूरि के प्राचीन स्तूप का जीर्णोद्धार हुआ। देवप्रभ और उनकी माता चरणमति को दीक्षा प्रदान की। अजमेर म ही सवत् १२३६ मे सेठ पासट द्वारा बनवाई हुई महावीर मूर्ति की स्थापना की, अम्बिका शिखर की भी प्रतिष्ठा करवाई। यहाँ से सागरपाडा म आकर अम्बिका शिखर की स्थापना करवाई। सवत् १२३७ मे बब्बेरक गाँव म जिनदत्त को वाचनाचाय पद दिया। सवत् १२३८ मे पुन आशिका पधारे और दो बडी जिनप्रतिमाओ की प्रतिष्ठा की।

आचाय जिनपति सूरि १२३९ मे फलवर्धिका (फलोदी—मडता रोड) पधारे। उनके प्रभाव को सहन न कर वहा का निवासी उपकेशगच्छीय पद्मप्रभाचाय मात्सय एव ईर्ष्यावश अपलाप करने लगा। आचायश्री के विहार कर अजमेर पहुँचने के पश्चात् वहा के दोनो के भक्तदलो म सघष होने लगा और इस सघष का नतीजा हुआ अन्तिम हिन्दू सम्राट महाराजा पृथ्वीराज चौहान की राज्यसभा म शास्त्राथ। महाराजा पृथ्वीराज ने शास्त्राथ की तिथि कार्तिक शुक्ला दसवी निश्चित की और निश्चित समय पर महाराजा पृथ्वीराज नरानयन पर दिग्विजय कर वापस लौटे। कार्तिक सुदी दसवी के दिन आचाय

जिनपति सूरि श्री जिनमतोपाध्याय, पण्डित श्री स्थिरचन्द्र, वाचनाचार्य मानचन्द्र आदि मुनिवृन्द के साथ राज्यसभा मे पहुँचे। इधर पद्मप्रभ आचार्य भी भाट-चट्टो के साथ सभा मे पहुँचे। महाराजा पृथ्वीराज ने सिहासन पर बैठने के पश्चात् प्रधानमन्त्री कैमास को आज्ञा दी कि पण्डित वागीश्वर, जनार्दन गौड और विद्यापति आदि राजपण्डितो के समक्ष उन दोनो का शास्त्रार्थ होने दो। शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ। पद्मप्रभ को व्याकरण, साहित्य, दर्शन, छन्दशास्त्रो का पूर्णज्ञान न होने के कारण वह राजपण्डितो के समक्ष पराजित सा होने लगा, मरता क्या न करता, आखिर पद्मप्रभ ने इन्द्रजाल और अन्त मे मल्लयुद्ध के लिये आह्वान किया। जिनपतिसूरि के अनन्य भक्त सेठ रामदेव के साथ शास्त्रार्थ के बदले राज्यसभा मे मल्लयुद्ध भी हुआ। अन्त मे तिरस्कृत एवं अपमानित होकर राजकीय पुरुषो ने उसका गला पकडकर उसे राज्यसभा के बाहर निकाला।

आचार्यश्री के असाधारण ज्ञान को देखकर राजपडितो ने जिनपतिसूरि को विजयी घोषित किया। और महाराजा पृथ्वीराज आचार्यश्री के सौम्य और शान्त मुद्रा तथा अगाध पाडित्य को देखकर अत्यन्त प्रमुदित हुए और जयपत्र बडे महोत्सव के साथ हाथी के हौदे पर रखकर आचार्यश्री के पास भिजवाया गया। महाराजा पृथ्वीराज स्वय जयपत्र देने के लिए उपाश्रय पधारे थे। (इस शास्त्रार्थ का विशेष अध्ययन करने के लिए देखे —जिनपालोपाध्याय प्रणीत गुर्वावलि, पृष्ठ २५ से ३४।)

सूरिजी महाराज अजमेर से विहार कर १२४० मे विक्रमपुर आये, वहाँ चौदह मुनियो के साथ छ मास तक गणि योग तप किया। सवत् १२४१ मे फलौदी पधारे, वहाँ जिननाग आदि पाँच साधुओ एव धर्मश्री आदि दो साध्वियो को दीक्षा प्रदान की। फलवर्धि मे ही सवत् १२४२ माघ सुदी पूर्णिमा के दिन जिनमतोपाध्याय का स्वर्गवास हुआ। सवत् १२४३ का चातुर्मास खेड नगर किया, वहाँ से अजमेर पधारे। सवत् १२४४ मे अनहिलपुर पाटण का निवासी अभयकुमार नामक श्रावक महाराजा भीमसिह और उनके प्रधानमन्त्री जगदेव से 'खरतरसघ' के नाम से तीर्थयात्रा सघ निकालने का आदेश प्राप्त कर अजमेर आचार्य श्री के पास पहुँचा। अजमेरवासी श्री सघ की प्रार्थना स्वीकार कर आचार्यश्री ने तीर्थ यात्रा हेतु प्रस्थान किया। इधर आचार्य श्री के दो शिष्य जिनपाल गणि और धर्मशील गणि जो त्रिभुवनगिरि मे यशोभद्राचार्य के पास न्यायदर्शन शास्त्र का अध्ययन कर रहे थे, वे भी आचार्यश्री की आज्ञा प्राप्त कर शीलसागर और सोमदेव को साथ लेकर त्रिभुवनगिरि के श्रीसघ के साथ सघ में सम्मिलित हुए। यात्रा का आमत्रण प्राप्त कर विक्रमपुर, उच्चा, मरुकोट, जैसलमेर, फलौदी, दिल्ली, वागड और माण्डव्यपुर आदि नगरो के सघ भी इस यात्रा सघ मे आकर सम्मिलित हुए। सघ प्रयाण करता हुआ चन्द्रावती नगरी पहुँचा, वहाँ पूर्णिमा गच्छ के प्रामाणिक आचार्य अकलकसूरि पाँच आचार्यो के साथ आये और आचार्य जिनपतिसूरि के साथ उनका मिलन हुआ। आचार्य अकलक की आचार्य जिनपति के साथ जिनपति नाम को लेकर व्याकरणिक दृष्टि से चर्चा हुई और आचार्य जिनपति के असाधारण वैदुष्य से आचार्य अकलक प्रभावित हुए। साथ ही साधु तीर्थ यात्रा मे सघ के साथ जाये या नही आदि अनेक शास्त्रीय विषयो पर भी चर्चा हुई। अन्त मे अत्यन्त प्रसन्न होकर आचार्य अकलक ने कहा—'खरतराचार्य, आप वास्तव मे वादलब्धि सम्पन्न है।'

वहाँ से सघ के साथ आचार्यश्री चन्द्रावती नगरी पहुँचे। वहाँ पौर्णमासिक गच्छावलम्बी श्री तिलकसूरि के साथ नैयायिक दृष्टि से अनेक विषयो पर चर्चा हुई। इस पण्डित गोष्ठी से आचार्य तिलकप्रभ अत्यन्त प्रमुदित हुए और आचार्य जिनपति की अधिकाधिक प्रशसा करने लगे।

इसके बाद सघ वहाँ से चलकर आशापल्ली पहुँचा। वहाँ वादी-देवाचार्य की पोषधशाला मे विराजमान प्रद्युम्नाचार्य से सेठ क्षेमन्धर का वार्तालाप हुआ। वार्ता के मध्य सेठ क्षेमन्धर को पितृ-

परम्परागत मार्ग छोडकर खरतरगच्छ स्वीकार करने के विषय म प्रद्युम्नाचाय ने मेठ को उपालम्भ देते हुए खरतरगच्छ की मान्यताओ के सम्बन्ध म कुछ अपशब्द कहे और खरतराचाय जिनपतिसूरि के साथ आयतन-अनायतन सम्बन्धी विषय को लेकर शास्त्राथ के लिए तयारी भी दिखाई। आचाय जिनपति ने तीथ यात्राथ सघ की त्वरा देखकर वापसी म शास्त्राथ का आह्वान स्वीकार किया। वहा से मघ के साथ प्रस्थान कर आचायश्री ने खम्भात गिरनार आदि तीर्थों की यात्राएँ की। आगे मार्ग की गडबडी के कारण सघ शत्रुजय तीथ न जा सका।

जब सघ वापस लौटकर आशापल्ली पहुँचा और वहा पूव निणयानुसार आचाय जिनपति का प्रद्युम्नाचाय के साथ आयतन-अनायतन विषयक शास्त्राथ बडी गम्भीरता के साथ हुआ। शास्त्र प्रमाणो के सामने प्रद्युम्नाचाय टिक न सके और आचाय जिनपति ने विजय प्राप्त की। इस सम्बन्ध म प्रद्युम्नाचाय रचित 'वादस्थल' ग्रन्थ और उसके उत्तर के रूप म जिनपतिसूरि द्वारा रचित 'प्रबोधोदय वादस्थल' ग्रन्थ देखना चाहिए।

इस विजय से आचाय जिनपति की गुजरात म कीर्ति पताका फहराने लगी।

दण्डनायक अभयड का षडयन्त्र भी विफल हुआ।

वहा से सघ के साथ आचाय श्री अनहिलपुर पाटण पहुँचे, वहा पर जिनपतिसूरि ने अपने गच्छ के ४० आचार्यों को एकत्रित कर उनको सम्मानित किया। इसके बाद आचाय श्री सघ के साथ लवणखेटक (वतमान मे बालोतरा के पास खेड) गए। वहा पर पूणदेवगणि आदि तीन को वाचनाचाय पदवी प्रदान की। इसके बाद पुष्करणी नगरी मे जाकर सवत १२४८ फाल्गुन माह मे सूर प्रभ आदि ६ साधुओ और सयमश्री आदि तीनो को दीक्षित किया। सवत् १२४६ म श्रीपत्तन म महावीर प्रतिमा की स्थापना की।

सवत् १२४७ और १२४८ म लवणखेडा म रहकर मुनि जिनहित को उपाध्याय पद दिया। सवत् १२४६ म पुन पुष्करिणी आकर मलयचन्द्र को दीक्षा दी। सवत १२५० म विक्रमपुर पधारकर पदमप्रभ को आचाय पद दिया और नाम परिवर्तित कर सवदेवसूरि नाम रखा। सम्वत् १२५१ म माण्डव्य पुर पधारे।

वहाँ से अजमेर पाटण होकर भीमपल्ली (भीलडी) आए। लुहियप ग्राम म जिनपालगणि को वाचनाचाय पद दिया। लवण खेडा के राणा श्री केल्हण का विशेष आग्रह होने पर पुन लवणखेडा जाकर 'दक्षिणावत आरात्रिकावतारणत्व" बडी धूमधाम से बनाया। सवत् १२५२ म पाटण आकर विनयानन्द को दीक्षित किया। सवत् १२५३ म नेमिचन्द्र भण्डारी को प्रतिबोध दिया। मुसलमानो द्वारा पाटण नगर का विध्वस होने पर लाटी गाव म आकर चातुर्मास किया। १२५४ म धारानगरी मे जाकर शान्तिनाथ देव के मन्दिर म विधिमाग को प्रचलित किया। और वही महावीर नाम के दिगम्बर का तक सम्बन्धी परिष्कारो से अतिरजित किया। वहा पर रत्नश्री को दीक्षित किया जो भविष्य मे प्रवर्तिनी पद पर आरूढ हुई। नागद्रह म चातुर्मास किया। सवत् १२५६ चैत्र वदी पचमी के दिन लवणखेट म नेमिचन्द्र आदि चार को सयमी बनाया। सवत् १२५८ चत्रवदी पाचम को लवणखेडा के शान्तिनाथ मन्दिर म विधि पूवक मूर्ति स्थापना तथा शिखर प्रतिष्ठा भी करवाई। वही पर चैत्रवदी दूज के दिन वीरप्रभ तथा देव कीर्ति को भागवती दीक्षा दी।

१२६० आषाढ वदी छठ के दिन इन दोनो को बडी दीक्षा प्रदान की। यही वीरप्रभ भविष्य म आचाय के पट्टधर जिनेश्वरसूरि बने। इसी दिन सुमति गणि और पूणभद्र गणि को सयमी बनाया और आनन्दश्री नाम की साध्वी को महत्तरा पद दिया। तदनन्तर जसलमर के देवमन्दिर म फाल्गुन सुदी दूज को पाश्वनाथ स्वामी की प्रतिमा की स्थापना की। सवत् १२६३ म फाल्गुन वदी चौथ को लवणखेडा म

मह० कुलधर कारित महावीर प्रतिमा की स्थापना की। इसी स्थान पर नरचन्द्र आदि तीन और विवेकश्री आदि चार को सयम व्रत प्रधान किया और धर्मदेवी को प्रवर्तिनी पद से अलंकृत किया। सवत् १२६५ मे लवणखेडा मे ही मुनिचन्द्र, मानचन्द्र, सुन्दरमति और आशमति को मुनिव्रत मे दीक्षित किया। सवत् १२६६ मे विक्रमपुर मे भावदेव आदि तीन को सयमी वनाया, गुणशील को वाचनाचार्य पद दिया और ज्ञानश्री को दीक्षा प्रदान की। सवत् १२६९ मे जावालीपुर (जालौर) में मह० कुलधर कारित महावीर प्रतिमा को विधि-चैत्यालय मे वडे समारोह के साथ स्थापित किया। जिनपाल गणि को उपाध्याय पद और धर्मदेवी प्रवर्तिनी को महत्तरा पद देकर प्रभावती नामकरण किया। इसके अतिरिक्त महेन्द्र आदि तीन पुरुपो को व चन्द्रश्री आदि स्त्रियो को दीक्षा प्रदान की और वहाँ से विक्रमपुर की ओर विहार कर गए।

सवत् १२७० मे वागड श्रीसघ के अत्याग्रह से वागड देश पधारे। सवत् १२७१ मे बृहद्द्वार पधारे। वहाँ के श्री आशराज राणक और ठाकुर विजयसिह आदि ने आचार्यश्री का स्वागत किया। वहाँ आपने अपने उपदेशो से मिथ्याक्रिया को वन्द करवाया। स० १२७३ मे बृहद्द्वार मे ही लोक प्रसिद्ध गगा दशहरा पर्व पर गगा स्नान करने के लिए अनेक राणाओ के साथ नगरकोट के महाराजाधिराज पृथ्वीचन्द्र भी आए थे। उनके साथ काश्मीरी पडित मनोदानन्द को अपने पाडित्य का अभिमान था और उसने शास्त्रार्थ के लिए जिनपतिसूरि को प्रेरित किया। जिनपतिसूरि स्वय न जाकर उन्होने अपने शिष्य जिनपालोपाध्याय को धमरुचि गणि, वीरभद्र गणि, सुमति गणि और ठाकुर विजयसिह आदि के साथ शास्त्रार्थ हेतु भेजा। महाराजाधिराज पृथ्वीचन्द्र की सभा मे पडित मनोदानन्द के साथ जिनपालोपाध्याय का शास्त्रार्थ हुआ। 'जैन षड् दर्शनो से वहिभूत है' इस पर शास्त्रार्थ हुआ। उपाध्याय की तार्किकता के समक्ष पडित मनोदानन्द निरुत्तर हो गया। अपने पडित की पराजय को देखकर महाराजा पृथ्वीचन्द्र को अन्तर्दु ख तो अवश्य हुआ, किन्तु जयपत्र उपाध्यायजी को ही समर्पित करना पडा। इस उपलक्ष मे सवत् १२७३ जेठ वदी तेरस के दिन श्रावक समाज द्वारा एक वहुत वडा जयोत्सव मनाया गया।

संवत् १२७४ मे भावदेवमुनि को दीक्षा दी और दारिद्रेरक गाँव मे चातुर्मास किया। सवत् १२७५ मे जेठ सुदी वारस के दिन जालोर में भुवनश्री आदि तीन महिलाओ को और विमलचन्द्र आदि दो पुरुपो को साधुदीक्षा प्रदान की। सवत् १२७७ मे आचार्यश्री पालणपुर पधारे। वही पर आचार्य महाराज के नाभि के नीचे स्थान पर एक गाँठ पैदा हुई और साथ ही संग्रहणी रोग भी पैदा हो गया। अपना अन्तिम समय निकट जानकर अपने पाट पर वीरप्रभ गणि को स्थापित करने का निर्देश भी किया। संघ के साथ क्षमायाचना करते हुए समाधिपूर्वक आचार्यश्री का स्वर्गवास हुआ। सवत् १२७७ आषाढ शुक्ला दसवी के दिन पालणपुर मे ही आचार्यश्री का दाहसस्कार किया गया। इस अवसर पर जिनहितोपाध्याय भी जालौर से आ गए थे और उन्होने शोक विह्वल होकर दिवगत आचार्य के गुण-गरिमा की १६ श्लोको मे अपनी अन्तर्व्यथा को प्रकट किया।

आचार्य जिनपतिसूरि शास्त्रचर्चा मे वादीगज केशरी तो थे ही, साथ ही असाधारण प्रतिभा के धनी भी। इनके द्वारा निर्मित सघपट्टक बृहद्वृत्ति, प्रवोधोवादस्थल एव १३-१४ स्तोत्र प्राप्त हैं।

(९) जिनेश्वर सूरि (द्वितीय)

जन्म—सवत् १२४५, दीक्षा—१२५८, आचार्य पद १२७८, स्वर्गवास १३३१।

आचार्य जिनपतिसूरि के पाट पर द्वितीय जिनेश्वरसूरि हुए। ये मरुकोट निवासी भण्डारी नेमिचन्द्र के पुत्र थे। इनकी माता का नाम लक्ष्मणी था। सवत् १२४५ मिगसर सुदी ग्यारस को इनका

जन्म हुआ था। अम्बिका देवी के स्वप्नानुसार इनका जन्म नाम अम्बड रखा गया था। गच्छनायक जिनपतिसूरि के सदुपदेश से वैराग्यवासित होकर आचार्यश्री के करकमलों में संवत् १२५८ चैत्र वदी दूज खेड नगर में शान्तिनाथ भगवान के विधि चैत्यालय में दीक्षा ग्रहण की थी। इनका दीक्षा नाम वीरप्रभ रखा गया था।

जिनपालोपाध्याय का जो शास्त्रार्थ पण्डित मनोदानन्द के साथ हुआ था उस समय वीरप्रभ गणि भी जिनपालोपाध्याय के साथ थे। आचार्य जिनपतिसूरि ने अपने साध्य वेला के समय वीरप्रभ गणि को आचार्य पद पर स्थापित करने का संकेत किया था। तदनुसार ही संवत् १२७८ माघ सुदी छठ के दिन जालोर नगर में जिनहितोपाध्याय, जिनपालोपाध्याय आदि की उपस्थिति में आचार्य सर्वदेवसूरि ने संघ की सहमति के साथ इनको आचार्य पद पर स्थापित किया था। आचार्य पदारोहण के समय इनका नाम परिवर्तित कर जिनेश्वरसूरि रखा गया था।

संवत् १२८१ में श्री जिनेश्वरसूरि ने ठाकुर अश्वराज और सेठ राल्हा के सहयोग से उज्जयन्त, शत्रुञ्जय और स्तम्भनक आदि प्रमुख तीर्थों की यात्राएँ की। खम्भात में वादी यमदण्ड नामक दिगम्बर विद्वान से मिलन एवं वार्तालाप हुआ। खम्भात में आचार्यश्री का प्रवेश महोत्सव प्रसिद्ध महामन्त्री श्री वस्तुपाल ने ही करवाया था। संवत् १२८१ वैशाख सुदी दसवीं के दिन जालोर में अनेक साधु-साध्वी बनाये। जेठ वदी दूज रविवार के दिन विजयदेव को आचार्य पद से अलंकृत किया। संवत् १२८४ में संघहित को उपाध्याय पद दिया। संवत् १२८६ फाल्गुन वदी पंचमी को पालणपुर में प्रबोधमूर्ति को दीक्षा प्रदान की। ज्येष्ठ सुदी दशमी को पालणपुर में ही शान्तिनाथ भगवान की प्रतिष्ठा करवाई, जिसे पाटण में स्थापित की गई। १२८७ में पालणपुर में अनेकों को दीक्षा प्रदान की। १२८८ वैशाख माह में जालोर में मह० कुलधर ने जिनचैत्य पर स्वर्णमय दण्ड ध्वज का आरोपण किया। संवत् १२८६ प्रथम आश्विन मास की दूज के दिन महामन्त्री कुलधर ने आचार्यश्री से दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा के बाद महामन्त्री कुलधर का नाम कुलतिलक मुनि रखा गया था।

संवत् १३०४ वैशाख सुदी चौदस के दिन जिनेश्वरसूरि जी ने विजयवर्द्धन गणि को आचार्य पद प्रदान किया और इनका नाम जिनचन्द्राचार्य रखा। इसी दिन विवेकसमुद्र आदि अनेकों को दीक्षा प्रदान की। संवत् १३०५ आषाढ सुदी दसमी के दिन पालणपुर में अनेक तीर्थंकर प्रतिमाओं और नन्दीश्वर पट्ट की प्रतिष्ठा की।[1]

जिनेश्वरसूरिजी ने संवत् १३०६ जेठ सुदी तेरस के दिन श्री मालनगर में अनेक तीर्थंकर प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा की।

जैन शासन और खरतरगच्छ की प्रभावना करते हुए आचार्य जिनेश्वर संवत् १३३१ में जालोर पधारे और यह चातुर्मास जालोर में ही किया। चातुर्मास के मध्य में ही शारीरिक अस्वस्थता के कारण अपना अन्तिम समय निकट जानकर अपने करकमलों से ही संघ के समक्ष वाचनाचार्य प्रबोधमूर्ति गणि को संवत् १३३१ आश्विन वदी पंचमी को अपने पद पर स्थापित कर जिनप्रबोधसूरि नामकरण किया

१ इस समय की प्रतिष्ठित दो मूर्तियाँ—बोथरों के जिनालय में और दो धातु मूर्तियाँ चिन्तामणि मन्दिर भूमिगृह बीकानेर में विद्यमान हैं। और, दो प्रतिमाएँ आषाढ सुदी तेरस की प्रतिष्ठित चिन्तामणि मन्दिर भूमिगृह बीकानेर में विद्यमान हैं।

और पालणपुर में स्थित जिनरत्नाचार्य को संदेश भिजवाया कि चातुर्मास के पश्चात् इनका आचार्य पद स्थापना महोत्सव वडे आडम्वर के साथ करना। पश्चात् आचार्यश्री ने अनशन ग्रहण किया और आश्विन वदी छठ की रात्रि को इनका स्वर्गवास हुआ।

आचार्य जिनेश्वर शासन प्रभावक और उद्भट विद्वान् थे। इनके द्वारा निर्मित विशेष साहित्य तो प्राप्त नही है, किन्तु श्रावक धर्मविधि प्रकरण एव वारह स्तोत्र प्राप्त है।

इनके शासनकाल मे अनेको दिग्गज विद्वान् और साहित्य-निर्माता हुए, उनमे से कतिपय विद्वानो के नाम एव उनकी प्रमुख कृतियों का उल्लेख इस प्रकार है—

(१) सर्वराज गणि—गणधर-सार्धशतक एव पचलिगी लघु वृत्ति
(२) पूर्णकलश गणि—प्राकृत द्व्याश्रय काव्य टीका
(३) चन्द्रतिलकोपाध्याय—अभयकुमार चरित
(४) सूरप्रभाचार्य—कालस्वरूप कुलक वृत्ति
(५) जिनरत्नसूरि—निर्वाण लीलावती सार
(६) लक्ष्मीतिलकोपाध्याय—प्रत्येकवुद्ध चरित्र, श्रावकधर्म-वृहदवृत्ति आदि
(७) अभयतिलकोपाध्याय—सस्कृत द्व्याश्रय काव्य वृत्ति, न्यायालकार टिप्पण, पानी वादस्थल आदि
(८) प्रवोधचन्द्रसूरि—सदेहदोलावलि वृहद्वृत्ति
(९) धर्मातिलक गणि—लघु अजितशान्तिस्तव वृत्ति

(१०) जिनप्रवोधसूरि

जन्म—१२८५, दीक्षा—१२९६, आचार्य पद—१३३१, स्वर्गवास—१३४१।

द्वितीय जिनेश्वरसूरिजी के पट्ट पर आचार्य जिनप्रवोधसूरि हुए। आपका जन्म थारापद्र नगर में सवत् १२८५ श्रावण सुदी छठ को हुआ था। आपके पिता खीवड गोत्रीय श्रीचन्द्र थे और माता सिरिया देवी। सवत् १२९६ फाल्गुन वदी पाचम को पालणपुर मे आचार्य जिनेश्वरसूरि के करकमलो से दीक्षा ग्रहण की थी। प्रतिभासम्पन्न देखकर आचार्यश्री ने सवत् १३३० वैशाख वदी छठ को जालौर में आपको वाचनाचार्य पद प्रदान किया था। आप मे गच्छनायक की योग्यता देखकर जिनेश्वरसूरि ने ही अपने करकमलो से सक्षेप विधि-विधान के साथ सवत् १३३१ आश्विन वदी पचमी को अपने पद पर स्थापित किया था।

आचार्य जिनेश्वर के निर्देशानुसार पदस्थापना हेतु चातुर्मास समाप्त होने पर जिनरत्नाचार्य जालौर आए। इस प्रसग पर श्री चन्द्रतिलकोपाध्याय, श्री लक्ष्मीतिलकोपाध्याय प्रमुख साधु-साध्वी वृन्द भी जालौर आया। सघ द्वारा विशाल महोत्सव किया गया और सवत् १३३१ फाल्गुन वदी अष्टमी के दिन विस्तृत विधि विधान के साथ वयोवृद्ध जिनरत्नाचार्य ने जिनप्रवोधसूरि की पद स्थापना की।

आपके शासनकाल मे जो समय-समय पर अनेकानेक प्रतिष्ठाएँ, दीक्षाएँ, पदस्थापना एव विशिष्ट कृत्य हुए उनकी तालिका इस प्रकार है—

प्रतिष्ठायें—सवत् १३३२ जेठ वदी एकम को जालौर मे, जेठ वदी छठ और नवमी को स्वर्णगिरि पर, सवत् १३३४ वैशाख वदी पाचम को भीमपल्ली मे, सवत् १३३५ फाल्गुन वदी पाचम व फाल्गुन सुदी पाचम को चित्तौड मे, सवत् १३३६ वैशाख वदी छठ को वरडिया मे, स० १३३७ जेठ वदी पाचम को वीजापुर मे और स० १३४० वैशाख सुदी तीज को जैसलमेर मे।

संघयात्रा

संवत् १३३३ में सेठ विमलचन्द्र के पुत्र सेठ क्षेमसिंह और सेठ वाहड़ ने आचार्यश्री की उपस्थिति में विशाल तीर्थ यात्रा संघ निकाला था। यात्रा संघ में आचार्यश्री के साथ जिनरत्नाचार्य, लक्ष्मीतिलकोपाध्याय, विमलप्रज्ञोपाध्याय, वाचक पद्मदेव गणि आदि २८ साधु एवं प्रवर्तिनी ज्ञानमाला, प्र० कुशलश्री, प्रवर्तिनी कल्याणऋद्धि आदि २१ साध्वियों का समूह भी सम्मिलित था। यह तीर्थयात्रा संघ चैत्र वदी पाचम के दिन जालोर से रवाना होकर श्रीमाल, पालणपुर, तारंगा, बीजापुर, खम्भात, शत्रुञ्जय तीर्थ, गिरनार आदि तीर्थों की यात्रा करता हुआ सकुशल एवं सानन्द वापस जालोर पहुँचा था। संवत् १३३५ में जब आचार्य श्री चित्तौड़ आए थे, तो उनका प्रवेश महोत्सव बड़े आडम्बर के साथ हुआ था और वहाँ के प्रतिष्ठा आदि समस्त महोत्सवों में चित्तौड़ के महाराज कुमार अरिसिंह जी भी उपस्थित थे। संवत् १३३७ वैशाख वदी नवमी के दिन आचार्यश्री का बीजापुर में प्रवेश महोत्सव भी अनुपमेय हुआ था। उस समय बीजापुर के महाराजाधिराज सारंगदेव, महामात्य मल्लदेव मन्त्री बुद्धिसागर आदि की उपस्थिति में ही प्रतिष्ठा महोत्सव आदि विशिष्ट कृत्य सम्पन्न हुए थे जो अभूतपूर्व थे। १३३९ में विधि मार्ग अनुयायी संघों के साथ आचार्यश्री ने आबू की यात्रा की। तत्पश्चात् समियाणा के महाराजा श्री सोम के अत्याग्रह को स्वीकार कर वहाँ चातुर्मास किया। और चातुर्मास पश्चात् जैसलमेर के नरेश कर्णदेव के अत्याग्रह पर १३४० की फाल्गुन चौमासी जसलमेर की थी। जैसलमेर से विहार कर आचार्यश्री जालोर आए वहीं उनके शरीर में भयंकर दाह ज्वर उत्पन्न हुआ और अपने ही करकमलों से जिनप्रबोधसूरि जी ने संवत् १३४१ वैशाख सुदी तीज के दिन अपने पाट पर जिनचन्द्रसूरि को स्थापित किया और वैशाख सुदी अष्टमी के दिन इस पार्थिव देह को त्याग कर स्वर्ग की ओर प्रस्थान कर गए।

खरतरगच्छ बृहद् गुर्वावलि के अनुसार आपके द्वारा निर्मित वृत्तप्रबोध, पंजिका प्रबोध एवं बौद्धाधिकार विवरण आदि ग्रन्थों का उल्लेख प्राप्त होता है किन्तु वर्तमान में उनमें से कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है, तदपि आचार्य बनने के पूर्व संवत् १३२८ में रचित कातन्त्र दुर्गपदप्रबोध टीका अवश्य प्राप्त है।

आपके शासनकाल में विवेकसमुद्रोपाध्याय आदि अनेको गीतार्थ विद्वान् थे।

(११) कलिकाल केवली जिनचन्द्रसूरि

आचार्य जिनप्रबोधसूरि के पाट पर कलिकाल केवली जिनचन्द्रसूरि हुए। आपका जन्म संवत् १३२४ मिगसर सुदी चौथ के दिन सिवाणा में हुआ था। सिवाणा के मन्त्री देवराज आपके पिता थे और आपकी माता थीं कोमल देवी। इनका जन्म नाम खम्भराय था। जिनकुशलसूरि के पिता मन्त्री जिल्हागर खम्भराय के भाई थे अतः जिनकुशलसूरि जी के ये चाचा होते थे। संवत् १३३२ ज्येष्ठ सुदी तीज को स्वर्णगिरि से जिनप्रबोधसूरि ने इनको दीक्षा प्रदान कर क्षेमकीर्ति नामकरण किया था। जिनप्रबोधसूरि ने अपनी अन्तिम अवस्था में क्षेमकीर्ति को आचार्य/गणनायक पद के अनुरूप समझकर संवत् १३४१ वैशाख सुदी तीज के दिन बड़े समारोहपूर्वक अपने ही हाथों से अपने पाट पर स्थापित कर जिनचन्द्रसूरि नाम रखा।

इसके बाद जिनचन्द्रसूरि ने संवत् १३४२ वैशाख सुदी १० के दिन जालोर के महावीर चैत्य में २ क्षुल्लक और ३ क्षुल्लिकाओं को दीक्षा दी। उसी दिन वाचनाचार्य विवेकसमुद्र गणि को उपाध्याय पद, सर्वराज गणि को वाचनाचार्य पद और बुद्धिसमृद्धि गणिनी को प्रवर्तिनी पद दिया। इसी वर्ष ज्येष्ठ वदी ९ को सेठ क्षेमसिंह निर्मापित २७ अंगुल प्रमाण वाली रत्नजटित अजितनाथ प्रतिमा एवं अन्य श्रेष्ठी

वर्ग निर्मापित अनेक प्रतिमाओ की प्रतिष्ठा की थी। यह प्रतिष्ठा महोत्सव जालौर के महाराजा सामंत सिंह के नेतृत्व में हुआ था। ज्येष्ठ वदी ११ के दिन वाचनाचार्य देवमूर्तिगणि को उपाध्याय पद दिया।

सवत् १३४४ मिगसर सुदी १० को जालौर मे पडित स्थिरकीर्ति गणि को आचार्य पद देकर उनका नया नाम दिवाकराचार्य रखा। सवत् १३४५ आषाढ सुदी ३ के दिन २ दीक्षाएँ दीं। वैशाख वदी एकम् को २ साधु और २ साध्वियो को दीक्षित किया तथा इसी दिन राजदर्शन गणि को वाचनाचार्य पद से विभूषित किया।

सवत् १३५२ मे जिनचन्द्रसूरि की आज्ञा से वाचनाचार्य राजशेखर गणि ने वडगाँव के ठाकुर रत्नपाल सेठ चाहड, सेठ मूलदेव आदि श्रावक सघो के साथ पूर्व देश के तीर्थो की तीर्थयात्रा की।

इसी वर्ष आचार्यश्री ने भीमपल्ली से सेठ धनपाल के पुत्र सेठ भडसिंह तथा सामल श्रावक के द्वारा निकाले हुए श्रीसघ के साथ तीर्थयात्रा के लिए प्रयाण किया। शखेश्वर, श्रीपत्तन आदि तीर्थो की यात्रा की। इस वर्ष का चातुर्मास बीजापुर किया सवत् १३५३ मिगसर वदी पाचम को २ साधुओ को दीक्षा दी।

इसके वाद सघ की प्रार्थना से जिनचन्द्रसूरि जालौर आये। जालौर के सेठ सलखण के पुत्र सीहा तथा माण्डव्यपुर के सेठ झाझण के पुत्र मोहन ने तीर्थयात्रा सघ निकाला। इस सघ में आचार्यश्री सम्मिलित हुए। जालौर से आबू तक की यात्रा निर्विघ्न सम्पन्न कर वापस जालौर आये। सवत् १३५४ ज्येष्ठ वदी १० को जालौर मे दीक्षा एव मालारोपण महोत्सव हुआ, ६ साधुओं और १ साध्वी को दीक्षा दी। इसी वर्ष अषाढ सुदी २ को सिरियाणक गाँव मे महावीर मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाकर संवत् १३५५ मे महावीर प्रतिमा की स्थापना करवाई। यह महोत्सव सेठ भाण्डा के पुत्र जोधा ने किया।

सवत् १३५६ मे जैसलमेर महाराजाधिराज जैत्रसिह की प्रार्थना से मिगसर वदी ४ को जैसलमेर पधारे। आचार्यश्री की अगवानी करने के लिए स्वयं महाराजा ४ कोस सम्मुख आये थे। प्रवेश महोत्सव दर्शनीय व सस्मरणीय था। सवत् १३५७ मे २ को दीक्षित किया। सवत् १३५८ माघ सुदी १० को पार्श्वनाथ विधि चैत्य मे अनेक प्रतिमाओ की प्रतिष्ठा करवाई। सवत् १३५९ मे फाल्गुन सुदी ११ को एकादशी के दिन वाडमेर पधारे। सवत् १३६० माघ वदी दशमी को मालाधारणादि महोत्सव हुआ। वहाँ से सिवाणा पधारे। सवत् १३६१ वैशाख वदी ६ के दिन अनेक स्थानो से आये हुए सवा लाख मनुष्यो की उपस्थिति मे अनेक मूर्तियो की प्रतिष्ठा करवाई।[1] इसी अवसर पर पडित लक्ष्मीनिवास गणि और हेमभूषण गणि को वाचनाचार्य पद दिया।

एक वार पूज्यश्री सघ के साथ पुन सवत् १३७५ वैशाख वदी ८ के दिन नागौर पधारे। मत्रीदलीय कुलभूषण ठाकुर अचलसिंह श्रावक ने वादशाह कुतुवुद्दीन सुल्तान से सर्वत्र निर्विरोध यात्रा के लिए फरमान प्राप्त किया। जगह-जगह निमन्त्रण-पत्र भिजवाये गये। चारो तरफ के यात्रार्थी श्रीसघ नागौर आये। शुभमुहूर्त मे आचार्य जिनचन्द्रसूरि की अध्यक्षता मे यात्रोत्सव प्रारम्भ हुआ। वहाँ से सघ नरभट्ट पहुचा। वहाँ दादा जिनदत्तसूरि द्वारा प्रतिष्ठापित नवफना पार्श्वनाथ के दर्शन किये। वहाँ से वागड देश होते हुए कन्यानयन पधारे। यहाँ पर भी दादा जिनदत्तसूरि स्थापित महावीर स्वामी को नमन किया। वह से सघ प्रयाण करता हुआ हस्तिनापुर पहुँचा। वहाँ महोत्सव मनाया गया। वहाँ से सघ चलता हुआ दिल्ली के पास तिलपथ नामक स्थान पर पहुँचा। यहाँ के निवासी द्रमकपुरीयाचार्य ने मात्सर्यवश वादशाह कुतुवुद्दीन के सामने झूठी शिकायत की। वादशाह ने सघ का प्रयाण रोक दिया। सघनायक जिनचन्द्रसूरि

---

१. इसी समय की प्रतिष्ठित महावीर पंचतीर्थी, बीकानेर के चिन्तामणि मन्दिर (भूमिगृह) मे विद्यमान है।

को बुलाया। आचार्यश्री के तेजस्वी मुखमण्डल को देखकर वह प्रसन्न हुआ और संघ यात्रा को चालू रखने का आदेश दिया। द्रमकपुरीयाचार्य को झूठी शिकायत के कारण कैद कर लिया। आचार्य जिनचन्द्र सूरि ने सेठ तेजपाल, साह मेतसिंह, ठाकुर अचलसिंह और ठक्कर फेरु को बादशाह के पास भेजकर उस आचार्य को कैद से मुक्त कराया। वहाँ से प्रयाण करते हुए खडासराय स्थान पर पहुँचे। चातुर्मास निकट आ जाने से चातुर्मास वहीं किया। संघ के अग्रगण्या अचलसिंह आदि के अनुरोध पर चातुर्मास में ही मथुरा तीर्थ की यात्रा की। वहाँ से वापस लौटकर खडासराय में ही चातुर्मास पूर्ण किया। चातुर्मास में जिनचन्द्रसूरिजी महाराज के स्तूप की दो बार बड़े विस्तार से यात्रा की।

अकस्मात् ही आचार्यश्री के शरीर में कम्परोग उत्पन्न हुआ। अपने ध्यान-बल से अपना अन्तिम समय निकट जानकर राजेन्द्रचन्द्राचार्य के नाम पत्र लिखकर ठाकुर विजयसिंह के हाथ भिजवाया। इस पत्र में निर्देश दिया गया था कि मेरे पट्ट पर वा० कुशल कीर्ति गणि का अभिषेक करना। इधर मेड़ता नगर के राणा मालदेवजी का अनुरोधपूर्ण आमन्त्रण पाकर वहाँ से मेड़ता नगर के लिए विहार किया। मेड़ता पधारने पर राणा मालदेव ने बड़े ठाठ बाट से प्रवेशोत्सव कराया। वहाँ से कोसाणा पधारे। संवत् १३७६ आषाढ सुदी ९ के दिन ६४ वर्ष की उम्र में जिनचन्द्रसूरिजी ने इस विनाशशील पंच भौतिक शरीर को त्यागकर स्वर्ग में देवताओं का आतिथ्य स्वीकार किया। विधि विधान के साथ आपका वहाँ दाह संस्कार किया गया। तत्पश्चात् मन्त्रीश्वर देवराज के पौत्र मन्त्री माणकचन्द्र के पुत्र मन्त्री मुंधराज श्रावक ने चिता स्थान की जगह आचायश्री की चरणपादुका सहित एक सुन्दर स्तूप बनवाया।

(१२) दादा श्री जिनकुशलसूरि

प्रत्यक्ष प्रभावी युगप्रधान तीसरे या छोटे दादाजी के नाम से विख्यात जिनकुशलसूरि एक असाधारण महापुरुष थे। आपका जन्म सिवाणा में संवत् १३३७ मिगसर वदी तीज के दिन हुआ था। छाजेड़ गोत्रीय मन्त्री देवराज आपके पितामह थे और जेसल/जिल्हागर आपके पिता थे। आपका जन्म नाम कमण था। कलिकालकेवली जिनचन्द्रसूरि, जो कि संसार पक्ष में आपके चाचा होते थे, के उपदेश से प्रतिबोध पाकर उन्हीं के करकमलों से संवत् १३४७ फाल्गुन शुक्ला अष्टमी के दिन गढ़ सिवाणा में अर्थात् अपनी जन्मभूमि में ही दीक्षा ग्रहण की। आपका दीक्षित होने पर नाम रखा गया था कुशलकीर्ति। तत्कालीन गच्छ के वयोवृद्ध गीतार्थ विवेकसमुद्र के पास समस्त शास्त्रों का अध्ययन किया था। १३७५ माघ सुदी बारस को बड़े महोत्सव के साथ जिनचन्द्रसूरि ने कुशलकीर्ति गणि को नागौर में वाचनाचार्य पद प्रदान किया था। गच्छनायक जिनचन्द्रसूरि का स्वर्गवास हो जाने पर उनके निर्देशानुसार ही राजेन्द्रचन्द्राचार्य ने संवत् १३७७ ज्येष्ठ वदी ग्यारस के दिन अणहिलपुर पाटन में महामहोत्सव के साथ अनेक देशों के संघ के समक्ष वाचनाचार्य कुशलकीर्ति को आचार्य पद पर स्थापित किया और इनका नामकरण किया जिनकुशलसूरि। इस उत्सव का सारा आयोजन पाटण के सेठ तेजपाल रुद्रपाल ने किया था।

संवत् १३७८ का चातुर्मास भीमपल्ली में किया। वहाँ हेमभूषण गणि को उपाध्याय पद और मुनिचन्द्र गणि को वाचनाचार्य पद दिया और अनेकों को दीक्षा दी। विवेकसमुद्रोपाध्याय का आयुष्य निकट जानकर पुनः पाटण आये और उन्हें विधिपूर्वक अनशन करवाया। संवत् १३७८ ज्येष्ठ शुक्ला दूज को उनका स्वर्गवास हुआ। आषाढ शुक्ला तेरस के दिन पाटण में ही उनके स्तूप की प्रतिष्ठा करवाई। विवेकसमुद्रोपाध्याय ने ही तत्कालीन गणनायक कलिकालकेवली जिनचन्द्रसूरि, जिनरत्नाचार्य, राजेन्द्रचन्द्राचार्य, वाचनाचार्य चन्द्रदेव गणि, वाचनाचार्य सर्वराज गणि आदि अनेक मुनिगणों को आगम, व्याकरण, न्याय आदि शास्त्रों का अभ्यास करवाया था।

दिल्ली निवासी श्रीमालकुलोत्पन्न सेठ रयपति ने सम्राट गयासुद्दीन तुगलक से तीर्थयात्रा का फरमान प्राप्त किया कि "जिनकुशलसूरि जी महाराज की अध्यक्षता में सेठ रयपति श्रावक का सघ शत्रुंजय, गिरनार आदि तीर्थयात्रा के निमित्त जहाँ-जहाँ जाये वहाँ-वहाँ इसे सभी प्रान्तीय सरकारें आवश्यक मदद दे। और, संघ की यात्रा मे बाधा पहुचाने वाले लोगों को दण्ड दिया जाये।" फरमान प्राप्त करने के पश्चात् संघयात्रा के लिए सेठ रयपति ने आचार्यश्री से अनुमति चाही।

आचार्यश्री से तीर्थयात्रा का आदेश प्राप्त कर सेठ रयपति ने वैशाख वदी सातम को विशाल सघ के साथ दिल्ली से प्रस्थान किया। सघ कन्यानयन, नरभट, फलौदी होता हुआ पाटण पहुँचा। वहाँ सूरिजी से सघ मे साथ पधारने की प्रार्थना की। जिनकुशलसूरिजी भी अपने विशाल साधु समुदाय के साथ सघ यात्रा मे सम्मिलित हुए। सघ आषाढ वदी छठ को शत्रुंजय पहुँचा। वहाँ दो दीक्षाएँ हुईं। सप्तमी के दिन समवसरण, जिनपतिसूरि, जिनेश्वरसूरि आदि गुरुओं की प्रतिष्ठाएँ करवाईं आषाढ वदी नवमी के दिन व्रतग्रहण समारोह हुआ और उसी दिन सुखकीर्ति गणि को वाचनाचार्य पद प्रदान किया। यह विशाल यात्री सघ शत्रुंजय से प्रस्थान कर आषाढ सुदी चौदस को गिरनार पहुचा। यात्रा सम्पन्न कर सूरिजी पाटण पधार गये और सघ वहाँ से वापस दिल्ली की ओर प्रस्थान कर गया।

सवत् १३८१ वैसाख वदी पाँचम को पाटण के शांतिनाथ विधि चैत्य मे सूरिजी की अध्यक्षता मे विराट प्रतिष्ठा महोत्सव हुआ। इसमे अगणित जिनप्रतिमाए जिनप्रबोधसूरि, जिनचन्द्रसूरि, अम्बिका आदि मूर्तियो की प्रतिष्ठा करवाई। वैशाख वदी छठ के दिन जयधर्मगणि को उपाध्याय पद दिया।

भीमपल्ली के श्रावक वीरदेव ने सम्राट गयासुद्दीन से तीर्थयात्रा का आदेश प्राप्त कर सूरिजी की निश्रा मे जेठ वदी पाँचम को भीमपल्ली सघ निकाला। यह विराट सघ वायड, सेरीसा, सरखेज, आसापल्ली, खम्भात होता हुआ शत्रुंजय पहुँचा। वहाँ आदिनाथ मन्दिर के विधिचैत्य में नवनिर्मित चतुर्विंशति जिनालय एव देव कुलिकाओ पर कलश व ध्वज आदि का आरोपण हुआ। तीर्थ यात्रा सानन्द सम्पन्न कर सघ वापस लौटाता हुआ सेरीसा, शंखेश्वर, पाडल होते हुए श्रावण सुदी ग्यारस को भीमपल्ली पहुचा।

सवत् १३८२ वैशाख सुदी पाचम को भीनमाल में श्रावक वीरदेव ने महामहोत्सव किया जिसमे अनेक सघो की उपस्थिति में विनयप्रभ आदि अनेक साधु-साध्वियो को आचार्यश्री ने दीक्षा प्रदान की। वहाँ से सूरिजी साचोर, लाटहृद होकर बाड़मेर पधारे। वही जिनदत्तसूरि रचित 'चैत्यवंदन कुलक' पर विस्तृत टीका की रचना आपने की। सवत् १३८३ पोष सुदि पूनम को अनेको को दीक्षाएँ दी। वहाँ से लवणखेटक होकर समियाणा होते हुए जालौर पधारे। फाल्गुन वदी नवमी को विविध उत्सव हुए और अनेक जिनबिम्बो की प्रतिष्ठा[1] एवं अनेको को दीक्षित किया।

जिनकुशल सूरिजी ने अपने जीवनकाल मे ५० हजार नये जैन बनाए। शासन की महती प्रभावना की। आपकी रचित दो कृतियाँ प्राप्त है— चैत्यवदनकुलक टीका और जिनचन्द्रसूरि चतुसप्तति एवं संस्कृत भाषा मे नव स्तोत्र प्राप्त हैं।

---

१. इस समय की प्रतिष्ठित पार्श्वनाथ पचतीर्थी बीकानेर सुपार्श्वनाथ मन्दिर मे विद्यमान है।

जिस प्रकार अपन जीवनकाल मे जैनसघ के लिये ये परोपकारी थे वसे ही स्वगवास के पश्चात् भी आज भी भक्ता के मनोवाछित पूण करने म कल्पवृक्ष के सदृश हैं, हाजरा हजूर हैं। आज सारे भारत वप मे आपके जितने चरण, मूर्तिया व दादावाडियाँ हैं, अय किसी की नही। आपकी शिष्य परम्परा भी विशाल रही है। आपके शिष्य विनयप्रभ हुए। विनयप्रभ के पौत्र शिष्य क्षेमकीर्ति हुए। इन्ही के नाम से क्षेमकीर्ति उपशाखा निकली। इस शाखा म सैकडो प्रौढ विद्वान हुए, इनमे से उपाध्याय जयसोम, उपाध्याय गुणविनय आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इस शाखा म अतिम यति श्यामलालजी के शिष्य विजयचन्द्र हुए जो बीकानेर की गद्दी पर जिनविजयेन्द्रसूरि के नाम से प्रसिद्ध हुए। अब यह परम्परा लुप्त हो गई है।

आपके शासनकाल मे अनेको दिग्गज विद्वान हुए, जिनमे से कतिपय के नाम इस प्रकार है —
षडावश्यक बालावबोधकार, तरुणप्रभसूरि, लब्धिनिधान उपाध्याय, कवि पद्म, ठक्कर फेरु, धमकलश, सारमूर्ति, समधरू, राजशेखराचाय, दिवाकराचाय, गौतमरासकार विनयप्रभ आदि।

(१३) जिनपद्मसूरि

युगप्रधान दादा जिनकुशलसूरिजी के पटटधर जिनपद्मसूरि हुए। इनके पिता का नाम अम्ब देव या आम्बाशाह था। कहाँ के निवासी थे, माता का क्या नाम था, जन्म किस सवत् मे हुआ? कोई उल्लेख नही मिलता है। १३८४ माघ सुदी पाँचम को देवराजपुर मे जिनकुशलसूरिजी ने आपको दीक्षा प्रदान कर पद्ममूर्ति नाम रखा था। इस प्रसग म पदममूर्ति के लिए 'क्षुल्लक' शब्द का प्रयोग किया है। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि ८-१० वप की बाल्यावस्था म ही इन्होने दीक्षा ग्रहण की। आचायश्री के पास ही रहकर समस्त शास्त्रो का विधिवत् अध्ययन किया था।

जिनकुशलसूरिजी का स्वगवास हो जाने पर और उनके आदेशानुसार सवत् १३९० ज्येष्ठ सुदी छठ सोमवार को देवराजपुर (देरावर) के आदिनाथ विधि चैत्य म बडे विधि विधान एव महोत्सव के साथ तरुणप्रभाचार्य ने इनको आचाय पद पर बिठाया और जिनपद्मसूरि नाम घोषित किया। इस प्रसग पर महोपाध्याय जयधम, महोपाध्याय लब्धिनिधान आदि तीस साधु और अनेका साध्वियाँ उपस्थित थी इस पाट महोत्सव का आयोजन सेठ हरिपाल ने किया था। इसी समय जिनपद्मसूरि ने अनेक मुनियो को भागवती दीक्षा दी। इसी समय अमृतचन्द्र गणि को वाचनाचाय पद दिया।

जिनपदमसूरि के सम्बन्ध म यह जनश्रुति प्रसिद्ध है कि एक बार जब वे विवेकसमुद्रोपाध्याय आदि मुनियो के साथ बाडमेर गए हुए थे तो वहाँ लघुद्वार वाले मन्दिर मे विशालकाय भगवान महावीर की मूर्ति देखकर बाल्यस्वभाव से प्रेरित होकर ये शब्द कहे —

"बूहा णढा वसही वडडी अन्दरि किउ करि माणी।" अर्थात् इतने छोटे द्वार वाले मन्दिर के अन्दर इतनी विशाल मूर्ति कैसे लाई गई? इससे कितने ही श्रावको को असन्तोष व अरुचि भी पैदा हुई, किन्तु शीघ्र ही श्री विवेकसमुद्रोपाध्यायजी ने उसका समाधान कर दिया।

इसके बाद आप जब गुजरात के लिये विहार कर रहे थे, उस समय माग म सरस्वती नदी के किनारे ठहरे। तब एकान्त मे यह चिन्ता हुई कि "कल गुजरात पहुँच कर पत्तनीय सघ के सम्मुख धम देशना देनी है और मैं बालक हूँ कैसे धमदेशना दे सकूँगा?" तो सरस्वती नदी के किनारे ठहरने के कारण सरस्वती ने सन्तुष्ट होकर वरदान दिया और आपने प्रातःकाल पाटण पहुँचकर "अर्हन्ता भगवन्त

इन्द्रमहिता" इत्यादि शार्दूलविक्रीडितछन्दोबद्ध नवीन काव्य का निर्माण कर उसका ऐसा सुन्दर प्रवचन पत्तनीय सघ के सम्मुख किया कि सब आश्चर्यचकित हो गये और आपको "बालधवलकूर्चाल सरस्वती" इस उपाधि से सुशोभित किया। सोमकुन्जर कृत पट्टावली के अनुसार यह विरुद इन्हे पाटण से प्राप्त हुआ था।

संवत् १४०० वैशाख शुक्ला दशमी के दिन लघु अवस्था मे ही आपका स्वर्गवास हो गया था।

(१४) जिनलब्धिसूरि

आचार्य जिनपद्मसूरि के पट्टधर जिनलब्धिसूरि हुए। तरुणप्रभाचार्य कृत जिनलब्धिसूरि बहत्तरी के अनुसार आपका जीवनवृत्त इस प्रकार है :—

जैसलमेर निवासी नौलखा गोत्रीय धणसीह के ये पुत्र थे, इनकी माता का नाम खेताही था। सवत् १३६० मिगसर सुदी बारस के दिन अपने ननिहाल साचोर मे इनका जन्म हुआ था। जन्म नाम लखनसिह था। कलिकाल केवली जिनचन्द्रसूरि से प्रतिबोध पाकर सवत् १३७० माघ सुदी ग्यारस को अणहिलपुर पाटण में जिनचन्द्रसूरि के करकमलो से ही दीक्षा ग्रहण की। दीक्षावस्था का नाम था लब्धिनिधान। मुनिचन्द्र गणि, राजेन्द्रचन्द्राचार्य, तरुणप्रभाचार्य एव जिनकुशलसूरि के पास गहन अध्ययन कर स्वशास्त्र और परशास्त्र के परम निष्णात बने थे। सवत् १३८८ मिगसर सुदि ग्यारस के दिन देरावर मे जिनकुशलसूरिजी ने इन्हे उपाध्याय पद से विभूपित किया था।

सवत् १४०६ आश्विन सुदी बारस के दिन नागौर में आपका स्वर्गवास हो गया। श्री सघ ने आपके अग्नि सस्कार स्थान पर स्तूप का निर्माण करवाकर इनके चरणो की प्रतिप्ठा करवाई थी। आपकी निर्मित कृतियो मे चैत्यवदनकुलकवृत्ति पर टिप्पण एव कई जिनस्तोत्र प्राप्त हैं।

(१५) जिनचन्द्र सूरि

जिनलब्धिसूरि के पट्टधर जिनचन्द्रसूरि हुए। इनका जन्म कुसुमाण गाँव मे हुआ था। इनके पिता का नाम केल्हा था और माता का नाम सरस्वती था। जन्म नाम था पातालकुमार। सवत् १३८० आषाढ़ वदी छठ के दिन बड़े महोत्सव के साथ शत्रुजय तीर्थ पर दादा जिनकुशलसूरिजी के करकमलो से दीक्षा ग्रहण की थी। आपका मुनि अवस्था का नाम था यशोभद्र। अमृतचन्द्र गणि के पास आपने विद्याध्ययन किया था। अन्तिम समय मे जिनलब्धिसूरि ने इनको पाट पर बिठाने का सकेत किया था। तदनुसार ही तरुणप्रभाचार्य ने सवत् १४०६ माघ सुदी दशमी को जैसलमेर मे आपको गच्छनायक पद पर प्रतिप्ठित किया। गच्छनायक बनने पर आपका नामकरण किया गया जिनचन्द्रसूरि। आचार्य पद का महोत्सव सेठ हाथीशाह ने किया था। सवत् १४१४ आषाढ वदी तेरस के दिन आपका स्वर्गवास हुआ। वही कूपाराम मे आपका स्तूप बनवाया गया।

(१६) जिनोदयसूरि

जिनचन्द्रसूरि के पट्ट पर जिनोदयसूरि आरूढ हुए। आपका जन्म सवत् १३७५ मे पालनपुर निवासी मालू गोत्रीय शाह रुद्रपाल की पत्नी धर्मपत्नी धारलदेवी की कुक्षि से हुआ था। जन्म नाम समर

था। सवत् १३८२ भीमपल्ली के महावीर चैत्य मे पिता रुद्रपाल द्वारा कृत उत्सव से वहिन कील्हू के साथ आचार्य प्रवर जिनकुशलसूरि जी के पास दीक्षा ग्रहण की थी। दीक्षा नाम था सोमप्रभ। सवत् १४०६ जैसलमेर मे जिनचन्द्रसूरि ने इनको वाचनाचार्य पद प्रदान किया था। सवत् १४१५ जेठ बदी तेरस को खम्भात म अजितनाथ विधि चैत्य मे लूणिया गोत्रीय शाह जेसल अथवा सघवी रत्ना एव पूनी कृत नन्दी महोत्सव द्वारा तरुणप्रभाचार्य ने आपको आचार्य पद पर अभिषिक्त किया और जिनोदयसूरि नाम रखा। इसी वर्ष आपने खम्भात म अजितनाथ मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई और इसी वर्ष शत्रुजय तीर्थ की यात्रा की। पाच स्थानो पर पाच बडी प्रतिष्ठायें की। आपने २४ शिष्य और १४ शिष्याओ को दीक्षित किया एव अनेको को सघवी, आचार्य, उपाध्याय, वाचनाचार्य, महत्तरा आदि पदो मे अलकृत किया। इस प्रकार पचपर्व दिन (पाचो तिथि) उपवास करने वाले, बारह ग्रामो म अमारिघोषणा कराने वाले तथा अटठाइस साधुओ के परिवार के साथ अनेक देशो मे विहार करने वाले आचार्यश्री का सवत् १४३२ भाद्रपद वदी एकादशी को पाटणनगर म स्वर्गवास हुआ।

इनके विषय मे इन्ही के शिष्य मेरुनदनगणि न सवत् १४३१ म अयोध्या मे विराजमान लोकहिताचार्य को एक विज्ञप्ति पत्र भेजा। यह विज्ञप्ति पत्र बडा ही महत्वपूर्ण और ऐतिहासिक दस्तावेज के रूप म है। इसमे अपने गुरु जिनोदयसूरि की यात्रा का विस्तृत वर्णन दिया है।

आपके द्वारा रचित त्रिविक्रमरास (सवत् १४१५) और शाश्वत जिनस्तव प्राप्त हैं। आपके समय के विद्वानो मे ज्ञानकलश, मेरुनदन, विजयतिलक आदि एव गुणसमृद्धि महत्तरा प्रमुख हैं। आज भी आपके द्वारा प्रतिष्ठित अनेको मूर्तियाँ अनेको स्थलो पर प्राप्त हैं।

(१७) जिनराजसूरि

इनके जन्म सवत् स्थान आदि के सम्बन्ध मे कोई उल्लेख प्राप्त नही है। जिनराजसूरिरास के अनुसार इनके पिता का नाम तेजपाल मिलता है। जिनोदयसूरि का स्वर्गवास हो जाने के पश्चात् लोकहिताचार्य ने सवत् १४३३ फाल्गुन वदी छठ के दिन आचार्य पद प्रदान कर जिनराजसूरि नाम रखा और जिनोदयसूरि का पट्टधर घोषित किया। पट्टाभिषेक पदमहोत्सव सा० कडुआ धरना न किया था। इस पद महोत्सव के समय विनयप्रभोपाध्याय भी उपस्थित थे। आप सवालाख श्लोक प्रमाण न्यायग्रन्थो के अध्येता थे। आपने अपने करकमलो मे सुवर्णप्रभ, भुवनरत्न और सागरचद्र इन तीन मनीषियो को आचार्य पद प्रदान किया था। आपने सवत् १४४४ म चित्तौडगढ पर आदिनाथ मूर्ति की प्रतिष्ठा की थी। सवत् १४६१ म देवकुलपाटक (देलवाडा) मे आपका स्वर्गवास हुआ था। भक्तिवश आराधनार्थ देलवाडा के सा नान्हक श्रावक ने आपकी मूर्ति बनाकर उनके पट्टधर श्रीजिनवर्धनसूरि से प्रतिष्ठा करवाई थी, जो आज भी देलवाडा मे विद्यमान है। आपके करकमलो से प्रतिष्ठित मूर्तियाँ आज भी अनेक नगरो मे बडी सख्या म प्राप्त हैं। आपके द्वारा रचित शान्तिस्तव और शत्रुजय विनती दो लघु कृतियाँ प्राप्त हैं।

आपके शिष्यो म उद्भट विद्वान् जयसागरोपाध्याय हुए हैं। ये दरडागोत्रीय थे और १४६० के पूर्व ही इन्होंने दीक्षा ग्रहण की थी। इन्ही के भाई ने आबू तीर्थ पर खरतरवसही का निर्माण करवाया था। इनके द्वारा मौलिक टीकाग्रन्थ, स्तुति स्तोत्र आदि प्रचुर मात्रा म प्राप्त है। जिनम से विज्ञप्ति त्रिवेणी, पर्वरत्नावली, पृथ्वीचन्द्र चरित्र और जिनकुशलसूरि छन्द आदि उल्लेखनीय हैं।

(१८) जिनभद्रसूरि

आचार्यप्रवर जिनराजसूरि के पट्ट पर सागरचन्द्राचार्य ने जिनवर्धनसूरि को स्थापित किया था। किन्तु, उन पर देवी प्रकोप हो गया था अत १४ वर्ष पश्चात् गच्छ की उन्नति के निमित्त जिनराजसूरि के पट्ट पर सवत् १४७५ मे जिनभद्रसूरि को स्थापित किया गया। जिनवर्धनसूरि से खरतरगच्छ की पिप्पलक शाखा का उद्‌गम हुआ। अत उनके सम्बन्ध मे पिप्पलक शाखा के परिचय में लिखा जाएगा।

जिनभद्रसूरि का परिचय इस प्रकार है —

मेवाड देश के देउलपुर नगर मे छाजेड़ गोत्रीय श्रेष्ठी धीणिग रहते थे। उनकी पत्नी का नाम खेतलदेवी था। खेतलदेवी की कुक्षि से इनका जन्म सवत् १४४६ चैत्र शुक्ला (वदी) छठ को हुआ। आपका जन्म नाम राभणकुमार था। किन्ही पट्टावलियो मे इनका गोत्र छाजेड़ के स्थान पर भसाली प्राप्त होता है। सवत् १४६१ मे जिनराजसूरि के उपदेश से प्रतिवोध पाकर आपने दीक्षा ग्रहण की। मुनि अवस्था का नाम रखा गया कीर्तिसागर। वाचनाचार्य शीलचन्द्रगणि के पास रहकर इन्होने समस्त शास्त्रो का अध्ययन किया। सवत् १४७५ माघ सुदी पूनम को सागरचन्द्राचार्य ने कीर्तिसागर को आचार्य पद देकर जिनभद्रसूरि नाम रखा और जिनराजसूरि का पट्टधर घोपित किया। आचार्य पद का महोत्सव नाल्हिग शाह ने किया था।

उपाध्याय क्षमाकल्याण रचित पट्टावली के अनुसार पद स्थापना के समय सात भकारो का उल्लेख मिलता है '—१ भाणसोल नगर, २ भाणसालीव गोत्र, ३. भादो नाम, ४ भरणी नक्षत्र, ५ भद्राकरण, ६ भट्टारक पद, ७ भद्रसूरि नाम।

आचार्य वनने के पश्चात् आपने अपने जीवनकाल मे दो विशिष्ट कार्य किये। १ जिन मन्दिरो का निर्माण और प्रचुर प्रमाण मे अर्थात् सहस्राधिक जिन मूर्तियो की प्रतिष्ठा। २ ज्ञान भडारो की स्थापना।

आवू, गिरनार तीर्थो पर तो प्रतिष्ठाएँ करवाई ही, साथ ही जैसलमेर मे सहस्राधिक जिन मूर्तियो का निर्माण करवाकर प्रतिष्ठा करवाई। यही कारण है कि जैसलमेर तीर्थ स्वरूप को प्राप्त हो गया।

मुगलो के द्वारा ज्ञान भडारो की होली को देखकर हजारो शास्त्रो की प्रतिलिपियाँ करवाकर आपने देवगिरि, नागौर, जालौर, पाटण, माण्डवगड, आशापल्ली, करणावती, खम्भात और जैसलमेर आदि में ज्ञान भडारो की स्थापना करवाई। सुरक्षा और पर्यावरण की दृष्टि से सवत् १४९२ से १४९७ के मध्य जैसलमेर ज्ञान भडार की स्थापना करवाई। सैकडो प्राचीनतम ताडपत्रीय ग्रन्थो और उनकी प्रतिलिपियाँ करवाकर इस ज्ञान भडार को समृद्ध किया। प्रतिलिपियो का सशोधन स्वयं भी करते थे और अपने विद्वत् साधुमण्डल मे भी करवाते थे। जैसलमेर का ज्ञान भडार प्राचीनतम एव दुर्लभ ताड-पत्रीय ग्रन्थो के कारण भारत भर मे अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। इस 'जिनभद्रसूरि ज्ञान भडार' में ऐसी-ऐसी अप्राप्य एवं दुर्लभ सैकडो कृतियाँ है जो अन्यत्र अप्राप्त है। जैसलमेर को छोडकर आपके द्वारा स्थापित सात ज्ञान भडारो का अता-पता ही नही है। हाँ, उनके द्वारा लिखापित सैकडो कृतियाँ आज भी पाटण और खम्भात के ज्ञान भडारो से प्राप्त होती है। जैसलमेर के इस ज्ञान भडार के लिए

जैन समाज ही नही अपितु सारा साहित्य ससार भी आपका चिरकृतज्ञ है। आपके द्वारा प्रतिष्ठित, लेखाङ्कित शताधिक मूर्तिया आज भी विद्यमान हैं।

भावप्रभाचार्य और कीर्तिरत्नसूरि को आपने ही आचार्य पद से विभूषित किया था। कीर्तिरत्न सूरि ही नाकोडा तीर्थ के सस्थापक एव प्रतिष्ठापक थे और इन्ही से कीर्तिरत्नसूरि शाखा के नाम से एक उपशाखा प्रारम्भ हुई थी। इसी शाखा मे प्रसिद्धतम आचार्य जिनकृपाचन्द्रसूरि जी हुए। जयसागरजी को उपाध्याय पद भी आपने ही प्रदान किया था।

जैसलमेर नरेश राउल वरीसिंह और त्र्यबकदास जैसे आपके चरणो मे भक्तिपूर्वक प्रणाम करते थे। जयसागरोपाध्याय ने सवत् १४८४ मे नगरकोट (कागडा) की यात्रा के स्वरूप विज्ञप्ति त्रिवेणी' नामक महत्वपूर्ण विज्ञप्ति पत्र आपही को भेजा था। सवत् १४९४ और १५०६ मे जैसलमेर मे सभवनाथ एव चन्द्रप्रभ मन्दिरो की प्रतिष्ठा करवाई थी। श्री जिनभद्रसूरि शाखा मे अनेक दिग्गज विद्वान हुए हैं। आज भी आपकी शाखा मे कुछ यति विद्यमान हैं। खरतरगच्छ की वर्तमान मे उभय भट्टारकीय, आचार्यीय, भावहर्षीय एव जिनरगसूरि आदि शाखाओ के आप ही पूर्व पुरुष हैं।

सवत् १५१४ मिगसर वदी नवमी के दिन कुम्भलमेर मे आपका स्वर्गवास हुआ था। नाकोडा शान्तिनाथ मन्दिर मे आपकी प्राचीन मूर्ति विद्यमान है। और, कलकत्ता आदि अनेक दादावाडियो मे आपके चरण आज भी पूजित होते हैं।

(१९) जिनचन्द्रसूरि

महाप्रभावक युगप्रवर आचार्य जिनभद्रसूरि के पट्टधर श्री जिनचन्द्रसूरि हुए। इनका जन्म सवत् १४८७ मे जसलमेर मे हुआ था। इनके पिता का नाम चम्म गोत्रीय शाह वच्छराज था और माता का नाम था वाल्हादेवी। सोमकुजरकृत गुर्वावली मे साहूसाखा गोत्रीय बतलाया है और माता का नाम स्याणी लिखा है। आपका जन्म नाम करणा था। १४९२ मे आपने दीक्षा ग्रहण की थी और दीक्षा नाम था कनकध्वज। सवत् १५१५ जेठ वदी दूज के दिन कुम्भलमेरु निवासी कुकड चोपडा गोत्रीय शाह समरसिंहकृत नन्दी महोत्सव मे श्री कीर्तिरत्नसूरि ने आचार्य पद प्रदान कर जिनचन्द्रसूरि नाम रखा था। सवत् १५३७ मे जैसलमेर मे आपका स्वर्गवास हुआ था।

(२०) जिनसमुद्रसूरि

ये बाडमेर निवासी पारस गोत्रीय देकोशाह के पुत्र थे। देवलदेवी इनकी माता का नाम था। सवत् १५०६ मे इनका जन्म हुआ और सवत् १५२१ मे दीक्षा ग्रहण की। दीक्षानन्दी महोत्सव पुन्जपुर मे मण्डन दुर्ग के निवासी श्रीमालवशीय सोनपाल ने किया था। दीक्षा नाम कुलवर्धन था। सवत् १५३३ माघ सुदी त्रयोदशी के दिवस जसलमेर मे, सघपति श्रीमालवशीय सोनपालकृत नन्दिमहोत्सव मे श्रीजिनचन्द्रसरिजी ने अपने हाथ से पद स्थापना की थी। ये पच नदी के सोमयक्ष आदि के साधक थे। सवत् १५३६ मे जैसलमेर के अष्टापद प्रासाद मे आपने प्रतिष्ठा की थी। परम पवित्र चारित्र के पालक आचार्यश्री का सवत् १५५५ मिगसर वदी १४ (१५५४ माघ) को अहमदाबाद मे देवलोक हुआ।

आपके शासनकाल मे अनेक प्रौढ विद्वान् हुए हैं, जिन्होंने साहित्य सर्जना कर साहित्य के भडार को समृद्ध किया। इनमे से कुछ मुख्य-मुख्य विद्वानो के नाम इस प्रकार हैं—वाग्भटालकार, वृत्तरत्नाकर,

शीलोपदेशमाला, षष्टि शतक आदि १७ ग्रन्थो के बालावबोधकार, मेरुसुन्दरोपाध्याय, क्षेमराजोपाध्याय, षष्टिशतक टीकाकार तपोरत्न गणि, पुष्पमाला वृत्तिकार, साधु सोम उपाध्याय, हर्षराज, धर्मदेव, मुनिसोम; लक्ष्मीसेन आदि।

(२१) जिनहंससूरि

इनके पश्चात् गच्छनायक श्रीजिनहससूरिजी हुए। सेत्रावा नामक ग्राम मे चोपडा गोत्रीय साह मेघराज इनके पिता और श्री जिनसमुद्रसूरि जी की वहिन कमलादेवी माता थी। संवत् १५२४ मे इनका जन्म हुआ था। आपका जन्म नाम धनराज और धर्मरंग दीक्षा का नाम था। संवत् १५३५ मे विक्रमपुर मे दीक्षा ली थी। सवत् १५५५ मे अहमदावाद नगर मे आपकी आचार्य पद पर स्थापना हुई। तदनन्तर संवत् १५५६ ज्येष्ठ सुदी नवमी के दिन रोहणी नक्षत्र मे श्रीवीकानेर नगर मे वोहियरा गोत्रीय करमसी मत्री ने फीरोजी लाख रुपया व्यय करके पुन आपका पद महोत्सव किया और उसी समय शान्तिसागराचार्य ने आपको सूरिमन्त्र प्रदान किया। वही नमिनाथ चैत्य में विम्बों की प्रतिष्ठा करवाई। तदनन्तर एक वार आगरा निवासी सघवी डूगरसी, मेघराज, पोमदत्त प्रमुख सघ के आग्रहपूर्वक बुलाने पर आप आगरा नगर आये। उस समय वादशाह के भेजे हुए हाथी, घोडे, पालकी, बाजे, छत्र, चवर आदि के आडम्बर से आपका प्रवेशोत्सव कराया गया। जिसमे गुरुभक्ति, सघशक्ति आदि कार्य में दो लाख रुपये खर्च किये गे। चुगलखोरो की सूचना के अनुसार वादशाह ने आपको बुलाकर धवलपुर मे रक्षित कर चमत्कार दिखाने को कहा। तव आचार्य ने दैविक शक्ति से वादशाह का मनोरजन करके पाँच सौ वन्दीजनो (कैदियो) को छुडवाया और अभय घोषणा कराकर उपाश्रय मे पधार आये। तव सारे सघ को वडा हर्ष हुआ। तदनन्तर अतिशय सौभाग्यधारी, तीनो नगरो मे तीन प्रतिष्ठाकारी तथा अनेक संघपति—प्रमुखपद स्थापक श्रीगुरुदेव पाटन नगर मे तीन दिन अनशन करके सवत् १५८२ मे स्वर्गवासी हुए। सवत् १५८७ मे जिनमाणिक्यसूरि द्वारा प्रतिष्ठित आपके चरण जैसलमेर पार्श्वनाथ जिनालय मे विद्यमान है।

(२२) जिनमाणिक्यसूरि

श्री जिनहससूरिजी ने अपने पट्ट पर श्रीजिनमाणिक्यसूरिजी को स्थापित किया। इनका जन्म संवत् १५४९ मे कूकड चोपडा गोत्रीय शाह राउलदेव की धर्मपत्नी रयणादेवी की कोख से हुआ था। इनका जन्म नाम सारग था। सवत् १५६० वीकानेर में ग्यारह वर्ष की अल्पायु मे आपने आचार्य श्रीजिनहससूरि के पास दीक्षा ग्रहण की। इनकी विद्वत्ता और योग्यता देखकर गच्छनायक श्री जिनहससूरि ने स्वय १५८२ (माघ शुक्ला ५) भाद्रपद वदी त्रयोदशी को पाटण में वालाहिक गोत्रीय शाह देवराज कृत नन्दि महोत्सव पूर्वक आचार्य पद प्रदान करके पट्ट पर स्थापित किया था। आपने गुर्जर, पूर्वदेश, सिंध और मारवाड आदि देशो मे विहार किया।

एक प्राचीन पट्टावली के अनुसार आपने एक ही दिन मे ६४ साधुओ को दीक्षा दी। १२ मुनियो को उपाध्याय पद से विभूषित किया। अन्तिम समय में देराउर यात्रा मे भी आपके साथ २४ शिष्य थे।

(२३) अकबर प्रतिबोधक युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि

युगप्रधान श्री जिनचन्द्रसूरि के पिता रीहडगोत्रीय साह श्रीवत थे, जो तिमरी नगर के निकटस्थ वडली गाँव मे रहते थे। माता श्रीसिरियादेवी की कुक्षि से सवत् १५९८ मे आपका जन्म हुआ और

सवत् १६०४ मे केवल ६ वप की अवस्था मे ही, पूव-पवित्र सम्कारो के द्वारा तीव्र वैराग्य उत्पन्न होन के कारण दीक्षा-ग्रहण करली। आपके दीक्षा गुर श्रीजिनमाणिक्य सूरिजी थे। आपका पूव नाम सुलतान कुमार था और दीक्षानाम था सुमतिधीर। आचाय जिनमाणिक्यसूरि का देराउर से जैसलमेर आते हुए माग मे ही स्वगवास हो गया था। अत सवत् १६१२ भाद्रपद शुक्ला ६ गुरवार को जसलमेर नगर में राउल मालदेव द्वारा कारित नन्दिमहोत्सवपूवक आपको आचाय पद प्रदान कर, जिनचन्द्रसूरि नाम प्रख्यात कर श्री जिनमाणिक्यसूरि का पटटधर (गच्छनायक) घोषित किया गया। यह काम वेगडगच्छ (खरतरगच्छ की ही एक शाखा) के आचाय, श्रीगुणप्रभसूरिजी के हाथो से हुआ। उसी दिन रात्रि म श्रीजिनमाणिक्यसूरिजी ने प्रकट होकर समवसरण पुस्तक और जिनआम्नाय सहित सूरिमन्त्र पत्र श्रीजिनचन्द्रसूरिजी को दिखाया। आपका चित्त सवेग वासना से वासित था। गच्छ म शिथिलाचार देख कर आप सब परिग्रह का त्याग करन मन्त्री सग्रामसिह तथा मन्त्रीपुत्र कमचन्द्र क आग्रह से बीकानेर पधारे। वहाँ का प्राचीन उपाश्रय शिथिलाचारी यतियो द्वारा रुका हुआ देखकर मन्त्री न अपनी अश्व-शाला म ही आपका चातुमास कराया और बडी भक्ति प्रदर्शित की। वह स्थान आजकल रागडी चौक मे बडा उपाश्रय के नाम स प्रसिद्ध है।

गच्छ म फैले हुए शिथिलाचार को दखकर आप सहम गय। जिस आत्म सिद्धि के उद्देश्य स चारित्र धम का वेश ग्रहण किया गया उस आदश का यथावत् पालन न करना लोकवचना ही नही अपितु आत्मवञ्चना भी है। गच्छ का उद्धार करन क लिये गच्छनायक का क्रिया उद्धार करना अनिवाय है—इत्यादि विचारो के साथ ही आपक हृदय म क्रियोद्धार की प्रबल भावना उत्पन्न हुई। तदनुसार सवत् १६१४ चैत्र कृष्णा सप्तमी को आपन क्रियोद्धार किया। उसी दिवस प्रथम शिष्य रीहडगोत्रीय प० सकलचन्द्र गणि की दीक्षा हुई। बीकानर चातुर्मास के पश्चात् सवत् १६१५ का चातुर्मास महवा नगर म किया और श्री नाकोडा पाश्वनाथ प्रभु के सान्निध्य म छम्मासी तपाराधन किया। तप-जप के प्रभाव से आप मे योग शक्तिया विकसित होने लगी।

सवत् १६४७ का चातुर्मास पाटण कर अहमदाबाद होते हुए खम्भात पधारे।

इसी समय तत्कालीन सम्राट अकबर के आमन्त्रण स आप खम्भात से विहार कर सवत् १६४८ फाल्गुन शुक्ला द्वादशी क दिवस महोपाध्याय जयसोम, वाचनाचार्य कनकसोम, वाचक रत्ननिधान और प० गुणविनय प्रभृति ३१ साधुओ के परिवार सहित लाहौर म सम्राट से मिले। स्वकीय उपदेशो से सम्राट को प्रभावित कर आपने तीर्थो की रक्षा एव अहिसा प्रचार के लिये आषाढी अष्टाह्निका एव स्तम्भतीर्थीय जलचर रक्षा आदि कई फरमान प्राप्त किये।

एक बार नौरग खान द्वारा द्वारिका के मन्दिरो के विनाश की वार्ता सुनी तो जन तीर्थो और मन्दिरो की रक्षा के हेतु सम्राट स विज्ञप्ति की गई। सम्राट् न तत्काल फरमान लिखवाकर अपनी मुद्रा लगा के मन्त्रीश्वर को समर्पित कर दिया, जिसमे लिखा था कि "आज से शत्रुजय आदि समस्त जैन तीथ मन्त्री कमचन्द्र के अधीन हैं।" गुजरात के सूबेदार आजम खान को तीथ रक्षा के लिए सख्त हुक्म भेजा जिससे शत्रुजय तीथ पर म्लेच्छोपद्रव का निवारण हुआ।

एक बार कश्मीर विजय के निमित्त जाते हुए सम्राट न सूरि महाराज को बुलाकर आशीर्वाद प्राप्त किया और आषाढ शुक्ला ६ से पूर्णिमा तक बारह सूबो म जीवो को अभयदान दने क लिए १२ फरमान लिख भेजे। इसके अनुकरण म अन्य सभी राजाओ ने भी अपने-अपन राज्यो म १० दिन, १५ दिन, २० दिन, २५ दिन, महीना, दो महीना तक जीवो के अभयदान की घोषणा कराई।

सम्राट् ने अपने कश्मीर प्रवास मे धर्मगोष्ठी व जीवदया प्रचार के लिए वाचक महिमराज को भेजने की प्रार्थना की। मन्त्रीश्वर और श्रावक वर्ग साथ मे थे ही, अतः सूरिजी ने लाभ जानकर मुनि हर्षविशाल और पचानन महात्मा आदि के साथ वाचक महिमराजजी को भी भेजा। मिती श्रावण शुक्ला १३ को प्रथम प्रयाण राजा रामदास की वाडी मे हुआ। उस समय सम्राट्, सलीम तथा राजा, महाराजा और विद्वानो की एक विशाल सभा एकत्र हुई, जिसमे सूरिजी को भी अपनी शिष्य-मण्डली सहित निमन्त्रित किया। इस सभा मे समयसुन्दरजी ने "राजानो ददते सौख्य" वाक्य के १०२२४०७ अर्थ वाला 'अष्टलक्षी' ग्रन्थ पढकर सुनाया। सम्राट ने उसे अपने हाथ मे लेकर रचयिता को समर्पित करके प्रमाणीभूत घोषित किया।

कश्मीर विजय के पश्चात् आपके सामयिक अनन्त चमत्कारो, विशुद्ध गुणों और वैदुष्य को देखकर सम्राट् अकबर अत्यन्त प्रभावित हुए और बडे महोत्सव के साथ सवत् १६४९ फाल्गुन वदी दशमी के दिन अपने हाथो से जिनचन्द्रसूरि को युगप्रधान पद से अलंकृत किया। इसी दिन महिमराज को आचार्य पद देकर जिनसिंहसूरि नाम रखा और जयसोम एव रत्ननिधान को उपाध्याय पद तथा प० गुणविनय व समयसुन्दर को वाचनाचार्य पद से सुशोभित किया। युगप्रधान गुरु के नाम पर इस महोत्सव मे महामन्त्री कर्मचन्द्र बच्छावत ने एक करोड रुपये व्यय किये थे। सम्राट् ने लाहौर मे तो अमारी उद्घोषणा की ही, पर सूरिजी के उपदेश से समुद्र के असंख्य जलचर जीवो को भी वर्षपर्यन्त अभयदान देने का फरमान जारी किया था। सम्राट् अकबर के आग्रह पर सूरिजी ने संवत् १६५२ मे पच नदी की साधना कर पाँचो पीरो को वश मे किया था।

सवत् १६६७ का अहमदावाद और १६६८ का चातुर्मास पाटण मे किया। इस समय एक ऐसी घटना हुई जिससे सूरिजी को वृद्धावस्था मे भी सत्वर विहार कर आगरा आना पडा। बात यह थी कि एक समय सम्राट् जहाँगीर ने जब सिद्धिचन्द्र नामक व्यक्ति को अन्तःपुर मे दूषित कार्य करते देखकर, कुपित होकर समग्र जैन साधुओ को कैद करने तथा राज्य सीमा से बाहर करने का हुक्म निकाल दिया था, तब जैनशासन की रक्षा के निमित्त आचार्यश्री ने वृद्धावस्था मे भी आगरा पधारकर सम्राट् जहाँगीर (जो उनको अपना गुरु मानता था) को समझाकर इस हुक्म को रद्द करवाया।

सवत् १६६९ का चातुर्मास आगरा मे किया। इस चातुर्मास मे सूरिजी का सम्राट् जहाँगीर से अच्छा सम्पर्क रहा और शाही दरबार मे भट्ट को शास्त्रार्थ मे पराजित कर 'सवाई युगप्रधान भट्टारक' नाम से प्रसिद्धि प्राप्त की। चातुर्मास के पश्चात् विहार कर मेड़ता होते हुए विलाड़ा पधारे और संवत् १६७० का चातुर्मास वही किया। पर्युषण के पश्चात् सूरिजी के शरीर मे व्याधि उत्पन्न हुई। इन्होने अपना अन्तिम समय निकट जानकर अनशन ग्रहण किया और आश्विन वदी दूज के दिन इस नश्वर देह को त्यागकर स्वर्ग की ओर प्रयाण कर गये। दाह सस्कार के समय इनकी मुख-वस्त्रिका नही जली। अग्नि-सस्कार के स्थान पर स्तूप बनाकर आपके चरणो की प्रतिष्ठा की गई।

महान् प्रभावक होने से आप जैन समाज मे चौथे दादाजी के नाम से प्रसिद्ध हुए। आपकी चरणपादुका, मूर्तियाँ जैसलमेर, बीकानेर, मुलतान, खंभात, शत्रुजय आदि अनेक स्थानो मे प्रतिष्ठित हुईं। सूरत, पाटण, अहमदावाद, भरोंच, भाइखला आदि गुजरात में अनेक जगह आपकी स्वर्ग-तिथि "दादा दूज" कहलाती है और दादावाडियो में मेला भरता है।

सूरिजी के विशाल साधु-साध्वी समुदाय था। उन्होने ४४ नन्दि मे दीक्षा दी थी, जिससे २००० साधुओ के समुदाय का अनुमान किया जा सकता है। इनके स्वयं के ९५ शिष्य थे। प्रशिष्य समय-

सुदरजी जसा के ४४ शिष्य थे। और, इनके आज्ञानुवर्ती साधु सारे भारत म विचरते थे। उस समय खरतरगच्छ की और भी कई शाखाएँ थी जिनके आचाय व साधु समुदाय सवत्र विचरता था। साध्वियो की सख्या साधुओ से अधिक होती है अत समूचे खरतरगच्छ के साधुओ की सख्या उस समय पाच हजार से कम नही होगी।

आप स्वय गीताथ विद्वान् थे, आपका शिष्य समुदाय भी असाधारण वदुष्य का धारक था। आपके धम साम्राज्य म अद्वितीय प्रतिभासम्पन्न श्रमणो ने जो साहित्य सेवा की है वह वस्तुत अभूतपूव है। तत्कालीन प्रमुख प्रमुख विद्वानो के नाम इस प्रकार है —महोपाध्याय धनराज, महोपाध्याय पुण्य-सागर, उपाध्याय साधुकीर्ति, उपाध्याय जयसोम, उपाध्याय ज्ञानविमल उपाध्याय हीरकलश, उपाध्याय सरचन्द्र, उपाध्याय समयसुदर, उपाध्याय गुणविनय, उपाध्याय कुशललाभ, उपाध्याय सहजकीर्ति, पद्मराज कनकसोम, चारित्रसिंह आदि।

(२४) जिनसिंहसूरि

आचाय जिनसिंहसूरि युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि के पट्टधर थे और साथ ही थे एक असाधारण प्रतिभाशाली विद्वान्। इनका जन्म विक्रम सवत् १६२५ के मागशीष शुक्ला पूर्णिमा को खेतासर ग्राम निवासी चोपडा गोत्रीय शाह चापसी की धमपत्नी श्रीचाम्पलदेवी की रत्नकुक्षि स हुआ था। आपका जन्म-नाम मानसिंह था। सवत् १६२३ म आचाय जिनचन्द्रसूरि खेतासर पधारे थे, तब आचायश्री के उपदेश स प्रभावित होकर एव वराग्य वासित होकर आठ वष की अल्पायु म ही आपन आचायश्री के पास दीक्षा ग्रहण की। दीक्षावस्था का नाम महिमराज रखा गया था। आचायश्री न सवत् १६४० माघ शुक्ला ५ को जैसलमेर मे आपको वाचक पद प्रदान किया था। 'जिनचन्द्रसूरि अकबर प्रतिबोध रास" के अनुसार सम्राट अकबर के आमन्त्रण को स्वीकार कर सूरिजी न वाचक महिमराज या गणि समय सुदर आदि ६ साधुओ के साथ अपने से पूव ही लाहौर भेजा था। वहाँ सम्राट आपसे मिलकर अत्यधिक प्रसन्न हुआ था। सम्राट के पुत्र शाहजादा सलीम (जहाँगीर) सुरत्राण के एक पुत्री मूल नक्षत्र क प्रथम चरण म उत्पन्न हुई थी, जो अत्यत अनिष्टकारी थी। इस अनिष्ट का परिहार करन क लिए सम्राट की इच्छानुसार सवत् १६४८ चैत्र शुक्ला पूर्णिमा को महिमराजजी न अष्टोत्तरी शान्तिस्नात्र करवाया, जिसमे लगभग एक लाख रुपया व्यय हुआ था और जिसकी पूजा की पूर्णाहुति (आरती) के समय शाह जादा ने १००००/– रुपये चढाये थे।

कश्मीर विजय यात्रा के समय सम्राट की इच्छा को मान देते हुए आचायश्री न वाचक महिम-राज को हर्षविशाल आदि मुनियो के साथ कश्मीर भेजा था। उस प्रवास मे वाचक महिमराज की अवणनीय उत्कृष्ट साधुता और प्रासगिक एव मार्मिक चर्चाओ से अकबर अत्यधिक प्रभावित हुआ था। उसी का फल था कि वाचकजी की अभिलाषानुसार गजनी, गोलकुण्डा और काबुल पयन्त अमारि (अभयदान) उद्घोषणा करवाई और माग मे आगत अनेक स्थानो (सरोवर) के जलचर जीवो की रक्षा करवाई। कश्मीर विजय के पश्चात् भी नगर म सम्राट को उपदेश दकर आठ दिन की अमारी उद्घोषणा कराई थी।

वाचकजी के चारित्रिक गुणो से प्रभावित होकर सम्राट अकबर न आचायश्री को निवेदन कर बड़े ठाठ-बाट के साथ आपको सवत् १६४९ फाल्गुन कृष्णा दशमी क दिन आचायश्री क ही करकमलो

से आचार्य पद प्रदान करवाकर जिनसिंहसूरि नाम रखवाया। सूरचन्द्र कृत रास के अनुसार इस पद महोत्सव पर टाक गोत्रीय श्रीमाल राजपाल ने १८०० घोडे दान किये थे।

सम्राट् जहाँगीर भी आपकी प्रतिभा से काफी प्रभावित था। यही कारण है कि अपने पिता का अनुकरण कर सम्राट जहाँगीर ने आपको युगप्रधान पद प्रदान किया था।

सवत् १६७४ में आपके गुणो से आकर्षित होकर आपका सहवास एव धर्मबोध प्राप्त करने के लिए सम्राट जहाँगीर ने शाही स्वागत के साथ अपने पास बुलाया था। आचार्यश्री भी बीकानेर से विहार कर मेडता आये थे। दुर्भाग्यवश वही सवत् १६७४ पौष शुक्ला त्रयोदशी को आपका स्वर्गवास हो गया।

सवत् १६७१ में लवेरा मे वाचनाचार्य समयसुन्दर को उपाध्याय पद से विभूपित किया था।

आपकी चरण-पादुकाएँ बीकानेर रेलदादाजी और नाहटो की गवाड़ में ऋषभदेवजी के मंदिर मे विद्यमान है।

(२५) जिनराजसूरि

आप बीकानेर निवासी वोहिथरा गोत्रीय श्रेष्ठी धर्मसी के पुत्र थे। इनकी माता का नाम धारलदे था। सवत् १६४७ वैशाख सुदी ७ बुधवार, छत्रयोग, श्रवण नक्षत्र मे इनका जन्म हुआ था। इनका जन्म नाम खेतसी था। सवत् १६५६ मिगसर सुदी ३ को इन्होने आचार्य जिनसिंहसूरि के पास दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा नाम राजसिंह रखा गया, किन्तु वृहद् दीक्षा के पश्चात् इनका नाम राजसमुद्र रखा गया था। वृहद् दीक्षा यु० श्रीजिनचन्द्रसूरि ने दी थी। आसाउल मे उपाध्याय पद स्वय युगप्रधानजी ने सवत् १६६८ मे दिया था। जैसलमेर में राउल भीमसिंहजी के सन्मुख आपने तपागच्छीय सोमविजयजी को शास्त्रार्थ में पराजित किया था। आचार्य जिनसिंहसूरि के स्वर्गवास होने पर ये संवत् १६७४ फाल्गुन शुक्ला सप्तमी को मेडता मे गणनायक आचार्य बने। इनका पट्ट-महोत्सव मेड़ता निवासी चोपड़ा गोत्रीय सघवी आसकरण ने किया था। पूर्णिमा पक्षीय श्रीहेमाचार्य ने सूरिमन्त्र प्रदान किया था। अहमदाबाद निवासी सघपति सोमजी कारित शत्रुजय की खरतरवसही में सवत् १६७५ वैशाख शुक्ला १३ शुक्रवार को ७०० मूर्तियो की इन्ही ने प्रतिष्ठा की थी। जैसलमेर निवासी भणशाली गोत्रीय सघपति थाहरु कारित जैनो के प्रसिद्ध तीर्थ लौद्रवाजी की प्रतिष्ठा भी सवत् १६७५ मार्गशीर्ष शुक्ला १२ को इन्ही ने की थी। और इनकी ही निश्रा मे सघपति थाहरू ने शत्रुजय का सघ निकाला था। भाणवड पार्श्वनाथ तीर्थ के सस्थापक भी ये ही थे। आपने सवत् १६७७ ज्येष्ठ वदी ५ को चोपडा आसकरण कारापित शान्तिनाथ आदि मन्दिरो की प्रतिष्ठा की थी। और, बीकानेर, अहमदाबाद आदि नगरो मे ऋषभदेव आदि मन्दिरो की प्रतिष्ठा भी की थी। कहा जाता है कि अम्बिकादेवी आपको प्रत्यक्ष थी और देवी की सहायता से ही गांगाणी तीर्थ में प्रकटित मूर्तियो के लेख आपने बाँचे थे। आपकी प्रतिष्ठापित सैकडो मूर्तियाँ आज भी उपलब्ध है।

सवत् १६८६ मार्गशीर्ष कृष्णा ४ रविवार को आगरे मे सम्राट् शाहजहाँ से आप मिले थे और वहाँ वाद-विवाद मे ब्राह्मण विद्वानों को पराजित किया था एवं स्वदर्शनी लोगो के विहार का जहाँ कही प्रतिषेध था वह खुलवाकर शासन की उन्नति की थी। राजा गजसिंह जी, सूरसिंह जी, असरफखान, आलम दीवान आदि आपके प्रशसक थे।

सवत् १६७८ मे फाल्गुन वदी सप्तमी को रगविजय को दीक्षा दी थी और उपाध्याय पद भी दिया था। भविष्य मे इन्ही से जिनरगसूरि शाखा का उद्गम हुआ। सवत् १७०० मे चातुर्मास हेतु पाटण पधारे और जिनरत्नसूरि को अपने पटट पर स्थापित किया। इसी वर्ष आषाढ नवमी को पाटण मे ही आपका स्वर्गवास हुआ।

आप उच्च कोटि के साहित्यकार थे। नैषध काव्य पर ३६ हजार श्लोक परिमित 'जैन राजी' नाम की टीका की एव स्थानाग सूत्र विषम पदार्थ वृत्ति की रचना की थी। 'शालिभद्र चौपाई' आपकी प्रसिद्धतम कृति है जिसकी अनेक सचित्र प्रतियाँ प्राप्त होती हैं। छोटी मोटी कृतियाँ एव सख्याबद्ध स्तवन आदि अनेक प्राप्त हैं जिनका सग्रह जिनराजसूरि कृति कुसुमाजली के नाम से प्रकाशित हो चुका है।

(२६) जिनरत्नसूरि

आचार्य श्रीजिनराजसूरि के पट्ट पर आचार्य श्रीजिनरत्नसूरि विराजे। आप सेरणा ग्राम निवासी लूणीया गोत्रीय साह तिलोकसी के पुत्र थे। आपकी माता का नाम तारादेवी था। आपका जन्म सम्वत् १६७० मे हुआ था। आपका जन्म नाम रूपचद था। निर्मल वैराग्य के कारण आपने अपनी माता और भाई रतनसी के साथ सम्वत् १६८४ वैशाख सुदी ३ मे दीक्षा ग्रहण की थी। आपको जोधपुर मे आचार्यश्री से वासक्षेप की पुडिया मगाकर उपाध्याय साधुसुन्दर ने दीक्षा प्रदान की थी। भणसाली गोत्रीय मत्री सहसकरण के पुत्र मत्री जसवत ने दीक्षोत्सव किया था। दीक्षा के पश्चात् इन्होने यावज्जीव कढाई विगय का त्याग कर दिया था। भट्टारक श्री जिनराजसूरिजी ने बडी दीक्षा देकर 'रत्नसोम'' नाम प्रसिद्ध किया।

आपके गुणो से योग्यता का निर्णय कर जिनराजसूरिजी ने अहमदाबाद बुलाकर आपको उपाध्याय पद प्रदान किया। इस समय जयमाल, तेजसी ने बहुत-सा द्रव्य व्यय कर उत्सव किया। सम्वत् १७०० आषाढ शुक्ला नवमी को पाटण म आचार्य श्रीजिनराजसूरि ने स्वहस्त से ही सूरिमत्र प्रदान कर अपना पटटधर घोषित किया। पाटण से विहार कर जिनरत्नसूरिजी पाल्हणपुर पधारे। वहाँ सघ ने हर्षित हो उत्सव किया। वहाँ से स्वर्णगिरि के सघ के आग्रह स वहाँ पधारे। श्रेष्ठि पीथा ने प्रवेशोत्सव किया। वहाँ से मरुधर म विहार करते हुए सघ के आग्रह स बीकानेर पधारे। नयमल बेणे ने बहुत-सा द्रव्य व्यय करके प्रवेशोत्सव किया। वहाँ से उग्र विहार करते हुए सम्वत् १७०१ का वीरमपुर म सघाग्रह से चातुर्मास किया।

चातुर्मास समाप्त होते ही सम्वत् १७०२ म बाडमेर आये। सघ के आग्रह स चातुर्मास वही किया। वहाँ से विहार कर सम्वत् १७०३ का चातुर्मास कोटडा ने किया। चातुर्मास समाप्त होन पर वहाँ से जैसलमेर के श्रावको के आग्रह से जैसलमेर आये। साह गोपा न प्रवेशोत्सव किया। सघ के आग्रह से सम्वत् १७०४ से १७०७ तक के चार चातुर्मास आपने जैसलमेर ही किये। वहाँ से आगरा आये। मानसिंह ने बेगम की आज्ञा प्राप्त कर सूरिजी का प्रवेशोत्सव बडे समारोह से किया। सम्वत् १७०८ से १७११ चार चातुर्मास आगरा म ही किये। आप शुद्ध क्रिया चारित्र के अभ्यासी थे। आपने अनेक नगरो मे विहार करके जैन सिद्धान्तो का प्रचार प्रसार किया और सम्वत् १७११ श्रावण कृष्णा सप्तमी के दिन आगरा मे आप देवलोक पधारे। अन्त्येष्टि क्रिया के स्थान पर श्रीसघ ने स्तूप निर्माण करवाया था।

(२७) जिनचन्द्रसूरि

जिनरत्नसूरि के पट्ट पर जिनचन्द्रसूरि आसीन हुए। आपका बीकानेर निवासी गणधर चोपडा गोत्रीय साह सहसकिरण की पत्नी सुपियारदेवी की कुक्षि से सम्वत् १६६३ में जन्म हुआ था। आपका जन्म नाम हेमराज था। सम्वत् १७०५ मिगसर सुदी बारस को जैसलमेर मे आपकी दीक्षा हुई और आपका नाम रखा गया हर्षलाभ। सम्वत् १७११ मे जिनरत्नसूरि का स्वर्गवास होने पर उनकी आज्ञानुसार भादवा वदी सप्तमी के दिन राजनगर मे नाहटा गोत्रीय साह जयमल्ल तेजसी की माता कस्तूरबाई कृत महोत्सव द्वारा आपकी पद स्थापना हुई। गच्छवासी यतिजनो मे प्रविष्ट होती शिथिलता को दूर करने के लिए आपने सम्वत् १७१८ मिती आसोज सुदी दशमी को बीकानेर मे व्यवस्था पत्र लागू किया, जिससे शैथिल्य का परिहार हुआ।

आपने अपने शासनकाल में अनेको को दीक्षाएँ दी और अनेक स्थानो मे विचरण करते हुए सवत् १७६२ मे सूरत पधारे। संवत् १७६३ में आपका सूरत मे ही स्वर्गवास हुआ।

(२८) जिनसुखसूरि

आचार्य जिनचन्द्र के बाद श्रीजिनसुखसूरि पट्ट पर विराजे। ये फोगपत्तन निवासी साहलेचा बोहरा गोत्रीय साह रूपसी के पुत्र थे। इनकी माता का नाम सुरूपा था। इनका जन्म सवत् १७३९ मार्गशीर्ष शुक्ला १५ को हुआ था। सवत् १७५१ की माघ सुदी पचमी को आपने पुण्यपालसर ग्राम मे दीक्षा ग्रहण की। आपका दीक्षा नाम सुखकीर्ति था। दीक्षा नदि सूची के अनुसार आपकी दीक्षा सवत् १७५२ फाल्गुन वदी पाचम को बीकानेर मे कीर्तिनन्दि मे हुई थी। सूरत निवासी चौपडा गोत्रीय पारख सामीदास ने ग्यारह हजार रुपये व्यय करके संवत् १७६३ आषाढ सुदी एकादशी के दिन आपका पट्ट महोत्सव किया था।

सूरि पदप्राप्ति के अनन्तर कुछ वर्ष गुजरात मे विचरे और प्रचुर परिमाण मे दीक्षाएँ सवत् १७६५, १७६६, १७६७, १७६८ मे क्रमश. खंभात, पाटण और पालनपुरादि मे अनेक बार हुई। सवत् १७७० मे साचोर, राडधरा, सिणधरी, जालौर, थोभ, पाटोधी आदि में बहुत सी दीक्षाएँ हुई। सवत् १७७१ से १७७३ तक जैसलमेर, पोकरण मे तथा १७७४ से १७७९ उदरामपुर, बीकानेर, धडसीसर, नवहर तक अनेक नन्दियो मे बहुत-सी दीक्षाएँ हुई। संवत् १७७३ मे नवहर मे मिगसर ३ को इन्द्रपालसर के सेठिया भीमराज को दीक्षा देकर भक्तिक्षेम नाम से प्रसिद्ध किया।

फिर एक समय घोघाबिन्दर मे नवखण्डा पार्श्वनाथ की यात्रा करके आचार्य श्रीजिनसुखसूरि संघ के साथ स्तम्भतीर्थ जाने के लिए नाव मे बैठे। देवगति से ज्यो ही नाव समुद्र के बीच मे पहुँची कि उसके नीचे की लडकी टूट गई। ऐसी अवस्था मे नाव को जल से भरती देखकर आचार्यश्री ने अपने इष्टदेव की आराधना की। तब श्रीजिनकुशलसूरि की सहायता से एकाएक उसी समय एक नवीन नौका दिखाई दी। उसके द्वारा वे समुद्र को पार कर सके। फिर वह नौका वही अदृश्य हो गई।

इस प्रकार श्री शत्रुंजय आदि तीर्थो की यात्रा करने वाले, सब शास्त्रो के पारगामी तथा शास्त्रार्थ मे अनेक वादियो को परास्त करने वाले आचार्य श्रीजिनसुखसूरि तीन दिन का अनशन पूर्ण कर संवत १७८० ज्येष्ठ कृष्णा दशमी को श्रीरिणी नगर में स्वर्ग सिधारे। उस समय देवों ने अदृश्य रूप मे बाजे बजाये, जिनके घोष को सुनकर उस नगर के राजा तथा सारी प्रजा चकित हो गई थी। अन्त्येष्टि क्रिया के स्थान पर श्रीसंघ ने एक स्तूप बनाया था, जिसकी प्रतिष्ठा माघ शुक्ला षष्ठी को जिनभक्तिसूरि ने की थी।

आपकी रचित जैसलमेर चैत्य परिपाटी एव सवत् १७६७ म पाटण म रचित जैसलमेरी श्रावका के प्रश्नों के उत्तरमय सिद्धान्तीय विचार ग्रन्थ प्राप्त हैं।

(२९) जिनभक्तिसूरि

जिनसुखसूरि के पट्ट पर श्रीजिनभक्तिसूरि आसीन हुए। इनके पिता श्रेष्ठि गोत्रीय हरिचन्द्र थे, जो इन्द्रपालसर नामक ग्राम के निवासी थे। इनकी माता थी हरसुखदेवी। सवत् १७७० ज्येष्ठ सुदी तृतीया को आपका जन्म हुआ था। जन्म नाम आपका भीमराज था। और, सवत् १७७९ माघ शुक्ला सप्तमी को दीक्षा ग्रहण के बाद आपका दीक्षा नाम भक्तिक्षेम रखा गया था। सवत् १७८० ज्येष्ठ वदी तृतीया के दिन रिणीपुर मे श्रीसघकृत महोत्सव करके गुरुदेव ने अपने हाथ से इन्हें पट्ट पर बैठाया था। तदनन्तर आपने अनेक देशों मे विचरण किया।

सवत् १८०४ ज्येष्ठ सुदी चौथ को माण्डवी बन्दर मे आपका स्वर्गवास हुआ। जिस स्थान पर आपका दाह सस्कार किया गया था उस अग्नि-सस्कार की भूमि म उस रात्रि को देवों ने दीपमाला की। सवत् १८१२ म जैसलमेर स्थित अमृत धर्मशाला म वाचक क्षमाकल्याणजी ने आपके चरण स्थापित किये।

३० जिनलाभसूरि

आचार्य जिनभक्तिसूरि के पश्चात् उनके पट्ट पर जिनलाभसूरि आरूढ हुए। ये बीकानेर निवासी बोहिथरा गोत्रीय साह पचायनदास के पुत्र थे, पद्मादेवी इनकी माता थी। आपका जन्म सवत् १७८४ श्रावण सुदी पचम को वापेऊ ग्राम म हुआ था। जन्म नाम लालचन्द्र था। इन्होंने सवत् १७९६ ज्येष्ठ सुदी छठ को जैसलमेर म दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा नाम लक्ष्मीलाभ रखा गया। जिनभक्तिसूरि के स्वर्गवास के पश्चात् सवत् १८०४ ज्येष्ठ सुदी पचम को माण्डवी बदर म आपकी पद स्थापना हुई। इस अवसर पर आपका नाम जिनलाभसूरि रखा गया। पद स्थापना महोत्सव छाजहड गोत्रीय साह भोजराज ने किया।

इस प्रकार परम सौजन्य, सौभाग्यशाली महाउपकारी, अनेक सद्गुणों से सुशोभित, पाद विहारी, जिनलाभसूरि ने सवत् १८३४ आश्विन वदी दशमी के दिन बूढानगर म देवगति प्राप्त की। आपकी रचनाओं म आत्मप्रबोध प्रकाशित है तथा दो चौबीसियाँ व स्तवन आदि प्राप्त हैं। आपके शासन काल म कई प्रमुख विद्वान थे। इनमें से महोपाध्याय रामविजय (रूपचन्द्र गणि) शिवचन्द्रोपाध्याय, महोपाध्याय क्षमाकल्याण आदि प्रमुख हैं।

卐 卐

चार दादा गुरुओं का संक्षिप्त जीवन-परिचय

(१) युगप्रधान दादा श्री जिनदत्तसूरि

जन्म सवत्	११३२
जन्म गाँव	धुधुका (गुजरात)
जन्म नाम	सुलतान
पिता	वाछिग सा० मत्री
माता	वाहड़देवी
गोत्र	हुंबड
दीक्षा सम्वत्	११४१
गुरु नाम	श्री जिनवल्लभसूरि
आचार्यपद सम्वत्	११६९
स्वर्गवास	आषाढ शुक्ला ११, सम्वत् १२११
स्वर्ग-भूमि	अजमेर

(२) श्री मणिधारी दादा जिनचन्द्रसूरि

जन्म सम्वत्	११९७
जन्म गाँव	जैसलमेर
जन्म नाम	सूर्यकुमार
पिता	रासल
माता	देल्हण दे
गोत्र	महतीयाण
दीक्षा सम्वत्	१२०३
गुरु नाम	श्री जिनदत्तसूरि
आचार्यपद सम्वत्	१२०५
स्वर्गवास	भादवा कृष्णा १४, सम्वत् १२२३
स्वर्ग-भूमि	दिल्ली

(३) प्रकट प्रभावी दादा श्री जिनकुशलसूरि

जन्म सम्वत्	१३३७
जन्म गाँव	गढ़ सिवाणा
जन्म नाम	करमण
पिता	जेसल
माता	जयतश्री
गोत्र	छाजेड़
दीक्षा सम्वत्	१३४७
गुरु नाम	श्री कलिकाल केवली जिनचन्द्रसूरि
आचार्यपद सम्वत्	१३७७
स्वर्गवास	फाल्गुण कृष्णा अमावस्या, स १३८९
स्वर्गभूमि	देराउर

(४) अकबर प्रतिबोधक दादा श्री जिनचन्द्रसूरि

जन्म सम्वत्	१५९५
जन्म गाँव	खेतसर
जन्म नाम	सोमचन्द्र
पिता	जेल्हागर
माता	श्रियादेवी
गोत्र	रिहड
दीक्षा सम्वत्	१६०४
गुरु नाम	श्री जिनमाणिक्यसूरि
आचार्यपद सम्वत्	१६१२
स्वर्गवास	आसोज कृष्णा २, सम्वत् १६७०
स्वर्गभूमि	बालाड़ा

(दादा गुरुदेव : धुनपति दुकलिया से सादर)

● ●

—दर्शनाचार्य साध्वी शशिप्रभाश्री

(प्र० सज्जनश्री जी म० की सुशिष्या, आगम एवं दर्शनशास्त्र की विदुषी
प्रस्तुत अभिनन्दन ग्रन्थ की मुख्य सम्पादिका)

क्रान्ति के विविध रूप तथा धार्मिक क्रान्तिकारक

अनादि काल से इस जगत में परिवर्तन होता है। यहाँ सभी पदार्थ, कार्य-व्यवस्थाएँ भले ही वे व्यक्तिगत हों या सार्वजनिक हों, वैयक्तिक हो या सामाजिक हों, अथवा राजनैतिक हों या धार्मिक, उनमें परिवर्तन होता ही रहता है। आत्मा से लेकर जड़ पदार्थों में उत्थान पतन ह्रास विकासादि की क्रिया निरन्तर गतिशील रहती है। अनादिकालीन सनातन शाश्वत स्वभाव सभी पदार्थों—द्रव्यों का कभी परित्याग नहीं करता। जगत की यह स्वाभाविक स्थिति है। किन्तु यहाँ क्रान्ति सभी द्रव्यों में, भले वे जड़ हों या चेतन चलती रहती हैं।

क्रान्ति शब्द की व्युत्पत्ति और भावार्थ—भ्वादि गणीय "क्रमु" पादविक्षेपे धातु से "स्त्रियांक्तिन्" सूत्र से क्तिन् प्रत्यय लगाकर क्रान्ति शब्द की निष्पत्ति होती है जिसका सामान्य अर्थ होता है घूमना, चलना, भ्रमण करना, स्थानान्तरण करना, प्रगति करना। और इस क्रमु के उपसर्ग लगाने से तो भिन्न-भिन्न प्रकार के रूप बनकर अर्थ भी अनेक प्रकार के हो जाते हैं। जैसे उत्क्रान्त, विश्रान्त, उत्क्रम, पराक्रम, अपक्रम, अनुक्रम, आक्रमण, संक्रमण, परिक्रमण प्रतिक्रमण आदि अनेक शब्द हैं, जो पृथक् पृथक् अर्थों में प्रयुक्त होते हैं। धातु के मूल अर्थ में परिवर्तन हो जाता है। क्रान्ति कई प्रकार की होती है। यथा—भौतिक, सामाजिक, आर्थिक, पारिवारिक, वैयक्तिक, राजनैतिक, धार्मिक, नैतिक, आध्यात्मिक इत्यादि। वर्तमान व्यवस्था में परिवर्तन होना क्रान्ति है।

भौतिक—पंचभूत, पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश, इन पाँच तत्वों में दो प्रकार की क्रान्ति होती है। प्रथम स्वभाव से, दूसरी मनुष्य द्वारा प्रायोगिक। जैसा कि आज वैज्ञानिक कर रहे हैं और इन तत्वों में मनुष्यादि के लिए विभिन्न सुख-सुविधाएँ प्रदान करने वाले अनेकों का निर्माण भोज्यवस्तुएँ, औषधियाँ, पीने के पदार्थ, नवीन प्रकार के सुख देने वाली मनोरंजन करने वाली अनेक विधाएँ टेलीफोन, टेलीविजन, सिनेमा, नाटक, रेल, मोटर, वायुयान, अन्तरिक्षयान आदि का सृजन। यहाँ तक कि यन्त्र मानव रोबोट, टेस्ट ट्यूब में मानव शिशु बनाने तक में सफलता प्राप्त करली है। और मनुष्य के विचारों तक में

परिवर्तन कर देने वाली औषधियो और इजेक्शनो का निर्माण कर लिया है। जीव तथा जड, स्थावर जगम सभी को नष्ट कर देने वाले अनेक अस्त्र-शस्त्रो का निर्माण भी इस भौतिक क्रान्ति की देन है।

स्वाभाविक भौतिक क्रान्ति—अतिवृष्टि, वज्रपात, तूफान, भूकम्प आदि से होती है। किन्तु इससे उतनी क्रान्ति नही होती जितनी कि मनुष्य ने विज्ञान द्वारा करने की योजनाएँ बनायी है। क्योकि उन अस्त्रो से जगत् प्रलय होने मे एक मिनट भी नही लगेगा।

सामाजिक क्रान्ति—ससार मे निवास करने वाले भाँति-भाँति के रगरूपधारी मनुष्यादि देश-कालादि की परिस्थितियो के अनुसार अपना समाज—एक समूह बनाकर उसके रहन, सहन, आचार, व्यवहार आदि की एक आचार सहिता रचकर उसके अनुसार जीवन-यापन करते हैं। जिस व्यक्ति मे आचार सहिता का पूर्ण पालन नही होता, वह नियम भग करके स्वेच्छाधारी बना मनुष्य केवल अपना ही स्वार्थ सिद्ध करने लग जाता है। तब सामाजिक क्रान्ति होती है। कभी-कभी तो यह क्रान्ति उन्नति का कारण न बनकर मनुष्य जाति को अवनति के गहरे गर्त मे ढकेल देती है। जिससे मनुष्य का जीवन अत्यन्त अशान्त और दुखमय बन जाता है। आज का मनुष्य तो नैतिक और धार्मिक नियमो का भग करना ही क्रान्ति मान बैठा है।

आर्थिक क्रान्ति—जब अर्थ का एक स्थान या व्यक्ति मे पु जीकरण होने लगता है, जनता दीन, दरिद्र, अभावग्रस्त बन जाती है तो आर्थिक क्रान्ति होती है। प्राय यह क्रान्ति कभी-कभी तो मनुष्यो की हत्या या व्यक्ति की, स्वतन्त्रता का अपहरण कर उसे किसी व्यवस्थापक—शक्तिशाली के सर्वथा अधीन रहने को बाध्य कर देती है।

पारिवारिक क्रान्ति—परिवार का मुखिया या कोई सदस्य जब परिवार के प्रति अपना उत्तरदायित्व भूलकर स्वय की सुख-सुविधा का ही ध्यान रखता है या अनैतिक आकाक्षाओ की पूर्ति की ओर उन्मुख होकर वैसा आचरण करने लग जाता है तो परिवार के सदस्य उससे पराड्मुख हो जाते है। और व्यक्ति स्वय भी अकेला पड जाता है। परिवार मे भी विघटन होकर छिन्न-भिन्न होने लगता है। ऐसे कठिन समय मे परिवार का कोई बुद्धिमान, सदाचारी, विवेकी, विनयी व्यक्ति अपने मधुर व्यवहार द्वारा विघटन को रोककर परिवार के पुनर्गठन द्वारा सुव्यवस्थित बनाकर, वास्तविक क्रान्ति—उत्क्रान्ति कर लेता है अन्यथा परिवार भंग हो जाते है। और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता मे सुख खोजने वाले व्यक्ति अधिक परतन्त्र और परिवार से कटकर रहने के कारण स्वय को अकेला सा अनुभव करते हुए दिमागी टेन्शन में रहने के कारण रोगो से ग्रस्त हो, दुखी जीवन बिताने को बाध्य हो जाते है।

वैयक्तिक क्रान्ति—व्यक्ति जब अपने जीवन मे से समस्त दोषो विकारो, व्यसनो को निष्क्रान्त कर देता है, उत्तम विचारो, सद्गुणो और सत्कर्मो की ओर अग्रसर होता है तो वह व्यक्तिगत क्रान्ति होती है। वर्षो के ही नही अनन्तकाल से परिचित/सेवित कोधादि कषाय, इन्द्रियजनित सुख सामग्रियो, मन को भाने वाले सभी पदार्थो का परित्याग करना, सभी प्रकार के व्यसनो का क्षणमात्र मे त्याग कर देना वीर आतमाओ के लिए सामान्य कार्य है। ऐसो के इतिहास से भारतीय इतिहास के पत्र स्वर्णाक्षरो से भरे है।

राजनतिक क्रान्ति—अत्याचारी शासक के विरुद्ध जनता विद्रोह कर उसे सत्ता से विहीन कर देती है। या उसे कारागार मे डाल देती है। अथवा सशस्त्र क्रान्ति करे तो दोनो ओर से कई व्यक्ति मारे जाते हैं। जो अधिक बलवान् हो वह सत्ता हस्तगत कर शासक बन जाता है। सशस्त्र न हो तो बहुमत के अनुसार सत्ता मिल जाती है। और वही शासक बन जाता है।

धार्मिक क्रान्ति—धर्म के दो तत्व हैं। १ दर्शन २ आचार। दार्शनिक क्रान्ति जगत के और जगत म विद्यमान स्थावर जगम जीवो एव पचभूत आदि के उत्पत्ति, रक्षा और प्रलय के विषय को लेकर वचारिक क्रान्ति आदिकाल से होती रही है और वर्तमान म भी कई दार्शनिक है जो इस सम्बन्ध म अपने-अपने चिन्तन प्रस्तुत करते ह। ससार म दार्शनिको की प्राचीन अथवा अर्वाचीन मान्यताएँ, जो प्रत्यक्षादि प्रमाणो और तर्कों की कसौटी पर खरी उतरती हो अकाट्य प्रमाणो और तर्क द्वारा सिद्ध हो, जिनका वचन युक्तिपूर्ण हो वे ही दार्शनिक समाज मे अमर बनते हैं। और बुद्धिमान व्यक्ति उन्ही के वचनो पर विश्वास करके आत्मबल की साधना से अपना जीवन सफल कर लेते है। दूसरी आचार सम्बन्धी क्रान्ति तत्कालीन शिथिलाचार के विरुद्ध होती रही है। और अतीत से वह जगत के विभिन्न सम्प्रदायो मे होती रही है। और वर्तमान मे भी यह प्राय होती रहती है। कई बार तो क्रान्ति के नाम पर मूल दार्शनिक मान्यताओ और आगमिक सत्यो को भी स्वपूजाकाक्षीजन नकार जाते है। और मेरा सो सच्चा' की धुन म सर्वज्ञ निरूपित सिद्धान्तो को भी तथा तीर्थकर भगवन्त द्वारा आचरित कार्यों को भी पाप कहकर जनशासन के प्रति घोर अनीति करते भयभीत तक नही होते जन इतिहास मे वे निह्नव कहलाते ह।

शिथिलाचार के विरुद्ध क्रान्ति होती रही है। समय समय पर होने वाले क्रियोद्धार इसके साक्षी हैं। काल के प्रभाव से चतुर्विध सघ मे आचार, आहार, विहार व्यवहार सम्बन्धी शिथिलता आती रहती है। युगान्तरकारी पुरुष वे ही कहलाये जो स्वय सयम-तप के कठोर पथ पर चलते हुए जनता के सामने प्रत्यक्ष आदर्श उपस्थित करके उसे अपनी ओर उन्मुख किया तथा साथ ही विद्वत्ता के बल पर अपने आचार विचार और आगमिक ज्ञान सूत्र सिद्धान्तो की बातो को बड़े-बड़े नृपतियो व शासको के सामने अन्य दार्शनिको से वाद विवाद करके सिद्ध किया और विविध प्रकार के विरुद प्राप्त किये।

खरतर विरुद भी एक ऐसा ही विरुद है जिसे श्री उद्योतनसूरि के प्रशिष्य और श्री वर्द्धमान सूरि के शिष्य श्री जिनेश्वरसूरि ने प्राप्त किया था। श्री वर्द्धमान जिनेश्वरसूरि के समय अणहिलपुर पाटन के नृपति दुर्लभराज भीम पर चत्यवासी साध्वाभासो का बड़ा प्रभाव था। उन्होंने राजा से यह आज्ञा पत्र ले रखा था कि पाटण म हमारे अतिरिक्त कोई भी जैन साधु प्रवेश नही करेगा। चत्यवासी जन मन्दिर म रहते थे। और साध्वाचार के विपरीत उनके आचरण थे। सामान्य नीतिवान गृहस्थ स भी पतित अवस्था तक उनका पतन हो चुका था। यहाँ तक कि वेश्यागमन मद्यपान, द्यूतरमण आदि व्यसनो तक के सेवन म आकण्ठ मग्न हो गये थे। पवित्र जैन देरासर और उपाश्रय उनकी रामलीलाओ के क्रीडा गण बने चुके थे। देवद्रव्य का भक्षण करना उनका भोगो मे दुरुपयोग करना तो साधारण बात थी। मात्र अपने मन्त्र-तन्त्र और विद्याबल से उद्दण्ड बने बडे नृपो पर अपना प्रभाव जमा रखा था। पतित अवस्था की पराकाष्ठा यहाँ तक पहुँच चुकी थी कि मुनिवशधारी रत्नाकरसूरि को नगर के उपवन म भ्रमण करता हुआ एक मन्त्री ने वेश्या के साथ भ्रमण करते, पान का बीड़ा मुख म दबाये, इत्र पुष्पमाला आदि धारण किये हुए देखा और वाहन से उतरकर मन्त्री ने उन्ह सविधि वन्दन किया। जिससे उनकी आत्मा काँप

उठी और वैसे जीवन से भारी ग्लानि हो गई। वे श्री शत्रुञ्जय तीर्थाधिराज पर चले गये। पुन. सर्वविरति धारण कर घोर तपस्या द्वारा अपने पापो का प्रायश्चित्त किया। ऐसी अनेक घटनाओं से मध्यकालीन इतिहास भरा पडा है।

एक क्रान्तिकारी व्यक्तित्व—महान् शासन प्रभावक जिनेश्वर सूरि १०,११वी शताब्दी के प्रकाण्ड विद्वान, विशुद्ध सयमी आबू पर्वत पर विमल मंत्रीकारित विमल वसही मे प्रतिष्ठा कराने वाले श्री वर्द्धमान सूरि के शिष्य थे। जिन्होने इन चैत्यवासियों के प्रति जिहाद बोला चैत्यवासियों की धज्जियाँ उडा देने वाले सघ पट्टक ग्रन्थ के कर्त्ता श्री जिनवल्लभसूरि आपके ही चतुर्थ पट्टधर हुए हैं। गुरुजी भी तथा अनेक गुरुभाई बुद्धिसागर सूरि आदि साथ ही थे। उत्कृष्ट चारित्रपालन करने वाला यह साधुसमूह उस समय सारे जैन समाज में सुविहित पक्ष नाम से सुविख्यात था। इन्ही जिनेश्वरसूरि के व्यक्तित्व की विद्वत्ता, सयमदृढता और वाक्कुशलता ने पाटण की राजसभास्थित सुप्रसिद्ध चैत्यवासी सूराचार्य के साथ वाद-विवाद मे विजय माला धारणा करायी। सुप्रसिद्ध-विद्वान श्रीजिनविजयश्री ने इसी प्रसग को लेकर लिखा है—

"शास्त्रोक्त यतिधर्म के आचार और चैत्यवासी यतिजनो के उक्त व्यवहार मे परस्पर बडा असामञ्जस्य देखकर और श्रमण भगवान महावीर उपदिष्ट श्रमणधर्म की इस प्रकार प्रचलित दशा से उद्विग्न होकर श्री जिनेश्वरसूरि ने इसके प्रतिकार के निमित्त अपना एक सुविहित मार्ग प्रचारक तथा मुनिजनो का गण स्थापित किया और इन चैत्यवासियों के विरुद्ध एक प्रबल आन्दोलन शुरु किया। चौलुक्य नृपति दुर्लभराज की सभा में चैत्यवासी पक्ष के समर्थक अग्रणी सूराचार्य जैसे महाविद्वान और प्रबल सत्ताशील आचार्य के साथ शास्त्रार्थ कर उसमे विजय प्राप्त की। उनकी शिष्य सन्तति बहुत बड़ी और अनेक शाखाओ-प्रशाखाओ मे फैली हुई थी। उसमे बड़े-बडे विद्वान क्रियानिष्ठ और गुणगरिष्ठ आचार्य उपाध्याय आदि समर्थ साधु पुरुष हुए। नवांगवृत्तिकार श्री अभयदेवसूरि, सवेगरंगशाला आदि ग्रन्थों के प्रणेता श्री जिनचन्द्रसूरि, आदिनाथ चरित्र रचयिता श्री वर्द्धमान सूरि, पार्श्वनाथ चरित्र एव महावीर चरित्र के कर्ता गुणचन्द्र गणि (अपरनाम देवचन्द्रसूरि) सघ पट्टकादि अनेक ग्रन्थो के प्रणेता श्री जिनवल्लभसूरि इत्यादि अनेकानेक बडे-बडे धुरन्धर विद्वान और शास्त्रकार जो उस समय उत्पन्न हुए वे इन्ही जिनेश्वरसूरि के शिष्यों-प्रशिष्यो मे थे।

चैत्यवासियो के गढ पाटण (गुजरात) की राजसभा मे शास्त्रार्थ मे विजय प्राप्त करने और राजा द्वारा "आखरे-सच्चे हैं" कहने पर खरतर कहलाने लगे। और इन श्री जिनेश्वरसूरि का नाम मात्र पाटन मे ही नही अपितु समस्त गुजरात, मारवाड, मेवाड, मालव, पजाब, सिन्ध आदि देशो मे विख्यात हो गया। इस कार्य से अनेक चैत्यवासी आचार्य उपाध्याय और यति गणी आदि ने चैत्यवास का त्यागकर सुविहित मार्ग का अवलम्बन ले कठोर संयम का पालन करने मे तत्पर बने। इनमें से कितने ही आपके शिष्य बने ? कितने ही आचार्यो ने अपने गच्छ गुरुपरम्परा मे रहकर क्रियोद्धार किया। हजारो ही नही लाखो व्यक्तियो ने आपके व आपकी शिष्य परम्परा का त्याग, तप, सयम, और प्रभावशाली उपदेशो से चमत्कारी वासक्षेप से प्रभावित होकर जैनत्व धारण किया। मास, मदिरा, शिकार आदि व्यसनो का त्यागकर ओसवाल जाति में, श्रीमाल जाति मे, सम्मिलित हो गये। वर्द्धमान सूरि से लेकर शताब्दियो तक इस पट्ट परम्परा के आचार्यो ने जो जैन जाति में वृद्धि की वह जैन शासन को एक अनुपम और अभूतपूर्व

दन है। इतिहास तो इसका साक्षी है ही पर जीती, जागती, ओसवाल, श्रीमाल आदि कई जातियाँ इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। चैत्यवास उन्मूलन के साथ मन्दिर की व्यवस्थाओं, पूजा पद्धतियों में भी शास्त्रानुकूल परिवर्तन हुए। विधिचैत्य बने जिनमें रोशनियाँ, दण्डिया रास आदि तथा रात्रि जागरण निषिद्ध किये गये। तरुणी स्त्रियों को प्रभु की पूजा निषिद्ध की गई। सध्या की आरती होने के तुरन्त बाद जैन मन्दिरों के द्वार 'मगल' (बन्द) कर दिये जाते थे। मन्दिर की चौरासी आशातनाएँ न हों, इसका कठोरता से पालन होने लगा। सचमुच उस समय जैन शासन को, सघ को जिन प्रासादों को, पतन के गहरे गर्त में उद्धार करने और सनातन विशुद्ध श्रमण सस्कृति को पुन प्रतिष्ठित करने का भागीरथ कार्य स्वनामधन्य आचार्य जिनेश्वरसूरि ने किया, जो जैन इतिहास के स्वर्णाक्षरों में अंकित है। इस परम्परा के अनेक बहुश्रुत, कवि शासन प्रभावक, ग्रन्थकार साधु साध्वी और गृहस्थ विद्वान विश्वविख्यात हो चुके हैं।

इनमें से कुछ का सक्षिप्त परिचय प्रस्तुत छोटे से लेख में देने का लोभ सवरण नहीं किया जा सकता। अत इस परम्परा में सुप्रसिद्ध महान आचार्यों का युग प्रवर्तक महान् आत्माओं का परिचय इस प्रकार है। सुविहित खरतरगच्छ के महान आचार्य श्री जिनेश्वरसूरि थे। इनका परिचय ऊपर आ चुका है। ये साहित्यकार भी थे। इन्हीं के पट्टधर श्री अभयदेवसूरि थे। जिन्होंने श्री स्तम्भनक पार्श्वनाथ की प्रतिमा प्रकट की तथा नवांगी टीकाकार के नाम से जगविख्यात हैं। इन्हीं की पचाशक वृत्ति, उववाईसूत्र वृत्ति, प्रज्ञापना ततीय पद सग्रहणी षटस्थान, भाष्य, आगम अष्टोत्तरी, जयतिहुअण स्तोत्र आदि अनेक कृतियाँ उपलब्ध हैं। इन्हीं के गुरुभ्राता श्री जिनचन्द्रसूरि थे। इनकी रचनाएँ (सवेग-रगशाला) श्रावक विधि आदि अनेक हैं। इनके पद पर (श्री अभयदेवसूरि की आज्ञा से) श्री देवभद्रसूरि ने चित्तौड में श्री जिनवल्लभसूरि को पद पर आचार्य बनाया। इन्होंने बागड देश में विचरण कर १०,००० अजैनों को प्रतिबोध देकर जैन बनाया। इन्होंने पिण्डविशुद्धि, षडशीति चतुर्थ कर्म-ग्रन्थ, सघपट्टक, सूक्ष्मार्थ विचारसार आदि अनेक ग्रन्थों की रचना की। धारा नगरी के नृपति श्री नरवर्म को अपनी लोकोत्तर प्रतिभा से चमत्कृत किया।

इनके पट्टधर 'बड़े दादाजी" के नाम से सुविख्यात जिनदत्तसूरि ने एक लाख तीस हजार अजैनों को जैन बनाया। अम्बिकादेवी ने युग प्रधान पद दिया। सात राजाओं को प्रतिबोध देकर जैन बनाया। बावन वीर तथा चौसठ योगिनियाँ एव भैरव आपके आज्ञाकारी भक्त थे। इनके विषय में नाहटा बन्धु लिखित चरित्र देखना चाहिये। गुरुदेव ने कई ग्रन्थों का सृजन किया है जिनमें गणधर सार्द्ध शतक उपदेश रसायन सम्यक्त्व व्रतारोपण विधि (चैत्यवदन कुलक) गणधर सप्तति चर्चरी आदि प्रमुख हैं।

मणिधारी दादा के नाम से प्रसिद्ध श्री जिनचन्द्र सूरि इनके पट्टधर थे। जिन्होंने महत्तयाण जाति को जैन बनाया। महान सम्राट इन्द्रप्रस्थ के तोमरराज मदनपाल (अनगपाल) को प्रभावित किया था। क्योंकि इस समय अनगपाल दिल्ली के राजा थे, ऐसा इतिहासप्रसिद्ध है। (जैन साधु प्राय पर्याय-वाची शब्दों का या प्रचलित नाम की अपेक्षा उसका सस्कृत रूप ही अपनी रचनाओं में प्रयुक्त करते थे।) यह राजा आपका परमभक्त था।

अंतिम हिन्दू सम्राट पृथ्वीराज चौहान की राज्यसभा में तथा अन्यत्र ३६ बार विजय प्राप्त करने वाले श्री जिनपतिसूरि भी महान विद्वान और प्रतिभाशाली युगवर आचार्य थे। इन्होंने सघ पट्टक वृत्ति समाचारी आदि अनेक ग्रन्थों का सृजन किया। इनके पट्ट पर श्री जिनेश्वरसूरि द्वितीय विराजमान हुए। अनेक जिनबिम्बों की प्रतिष्ठा और कई भव्यात्माओं की भागवती दीक्षा आपके करकमलों में

सम्पन्न हुई । आपने "श्रावक धर्मविधि" नामक ग्रन्थ की रचना की । आपके पट्टधर जिनप्रबोधसूरि थे। इन्होंने "कातन्त्र-व्याकरण" पर "दुर्गपदप्रबोध" नामक वृत्ति का निर्माण किया ।

आपके पट्टाधीश 'कलिकाल केवली विरुदधारक, अनेक राजाओं के प्रतिबोधक कुतुबुद्दीन बादशाह को प्रभावित करने वाले सुविहित नामधेय जिनचन्द्र हुए । इन्होंने कई दीक्षाएँ, प्रतिष्ठाएँ, संघ यात्राएँ आदि धर्मकार्य करवाये । इनके समय के खरतरगच्छ सभी प्रकार से उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर विराजमान था । ये मारवाड, गुजरात सिन्धु, पंजाब, सपादलक्ष, मरुस्थल, बागड (हरियाणा), दिल्ली, मथुरा, हस्तिनापुर आदि प्रदेशों मे विचरे । इनके विषय मे श्री जिनकुशलसूरि जो इन्हीं के पट्टधर थे लिखते है कि ये .. ....

लद्धिये सिरि गोयम स्वाई गुणेहि वयरसामि गुरु ।

सीलेण थूलिभद्दो पभावणाए सुहत्थि ॥

अर्थात्– वे (कलिकाल केवली जिनचन्द्रसूरि) लब्धियों मे गौतम स्वामीरूप, विद्वत्ता आदि मे वज्रस्वामी, शील में स्थूलिभद्र और शासन प्रभावना मे आर्य सुहस्ति सूरि (सम्राट सम्प्रतिराजा के गुरु) जैसे थे ।

इनका जन्म स्थान समियाणा (सिवाणा) गोत्र छाजेड था । आठ वर्ष की बाल्यवय में मुनि बने थे । जन्म ति स. १३२४, दीक्षा १३३२ और आचार्य पद १३४१ मे हुआ था । १६ वर्ष की किशोरावस्था मे इतने विद्वान और सर्वगुण युक्त थे कि संघ की सर्वसम्मति से गुरु श्री प्रबोधसूरि ने इन्हे गच्छाधीश बना दिया था । अत्यन्त प्रभावशाली युगप्रधान आचार्य थे । इनके पट्ट पर स्थविराग्रणी आचार्य श्री राजेन्द्रसूरि ने सर्वगुण सम्पन्न कुशलकीर्तिगण को स्थापित किया । वे श्री जिनकुशलसूरि के नाम से प्रसिद्ध हुए । उस समय ७०० मुनिराज एवं २८०० साध्वियाँ खतरगच्छ मे आपके आज्ञानुवर्ती थे ।

इन्ही के समकालीन महाविद्वान कवि शिरोमणि श्री जिनप्रभसूरि लघु खरतर शाखा मे महाप्रभावशाली आचार्य थे । तत्कालीन तुगलक बादशाह फिरोजशाह और मोहम्मदशाह इनके परम भक्त थे । इनके बनाये विविध तीर्थ कल्प, विधिप्रथा तथा सैकडो स्तोत्र आज भी समुपलब्ध है नित्य अभिनव सुरचित स्तुति से प्रभु की स्तवना करके प्रत्याख्यान पारने की प्रतिज्ञा थी ।

इन्ही कुशलसूरि ने ५०,००० अजैनो को जैन बनाया था । इनका आचार्यपद पाटण (अणहिलपुर पट्टन) मे भारी समारोहपूर्वक हुआ था । आपका प्रामाणिक सम्पूर्ण चरित्र नाहटा बन्धुओं द्वारा लिखित सुप्राप्य है । इनका विहार क्षेत्र अधिकतर छोटी मारवाड-सिरोही, जालौर, सिवाणा आदि मरुस्थल, जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर, बाडमेर आदि प्रदेश तथा सिन्धु देश पंजाब आदि था । जैनदर्शन की प्रभावना करने मे भारी समर्थ आचार्य थे । आप आज भी छोटे दादाजी के नाम से प्रसिद्ध है। देराउर (सिन्धु प्रदेश) मे इनका स्वर्गवास वि० स० १३८९ मे फागुन कृष्णा ५ का होने का उल्लेख प्राचीन पट्टावलियो मे है । किन्तु प्रतिलिपिकारो के द्वारा अज्ञानवश ५ को १५ लिख दिया गया लगता है। और वर्तमान मे कई वर्षो से फागुन वदी अमावस्या ही प्रसिद्ध है । आप विद्वान, साहित्यकार और कवि थे । आपकी अनेक कृतियाँ उपलब्ध है । उनमे चैत्यवन्दन कुलकवृत्ति, शान्तिनाथ चरित्र (प्राकृत) जिनचन्द्र चतु सप्ततिका, पार्श्वस्तोत्र, यमक अलंकार युक्त आदिनाथ स्तोत्र, फलौदी पार्श्वनाथ स्तोत्र आदि मुख्य है । श्री जिनकुशलसूरि के चरण और मूर्तियाँ हजारो ग्राम-नगरो मे पूजी जाती है । देराउर तो पाकिस्तान में रह गया किन्तु मालपुरा मे तो आज भी उनका चमत्कारी

स्थान जन दादावाडी, दश विदेश मे विख्यान है। जहा वप भर सैकडो यात्री आते रहते हैं। और फागुन वदी अमावस्या को भारी मेला लगता है। पूजा रात्रि जागरण, वरघोडा, स्वधार्मिक वात्सल्य आदि वडी धूमधाम से होते है। आपका प्रभाव इस कलिकाल मे भी प्रत्यक्ष है। अनेक भक्तो के कष्ट निवारण करने के समाचार तो आज भी कई पत्रा मे प्रकाशित होते रहते हैं। इनके भक्ता द्वारा रचित हजारा स्तवन जन जन के मुख से सुन जाते हैं। इनकी महिमा के विषय मे कुछ लिखना तो सूय को दीपक दिखाने जसा है। अनुमानत पौन सात सौ वप हो जाने पर भी दादा श्री जिनकुशल सूरि का नाम जन जगन म सुविख्यात है। उनके जन्म की सप्तम शताब्दी उन्ही के जन्म स्थान सिवाणा म मनाई गई। पुरानी दादावाडी के स्थान पर नवीन जिनमन्दिर सहित दादावाडी का निर्माण हुआ है। मन्दिर म भगवान शखेश्वर पाश्वनाथ आदि की प्रतिमाएँ और दादावाडी मे सभी दादागुरुओ की मूर्तिया स्थापित हो गयी हैं।

पुरानी दादावाडियो, स्तूपा मूर्तियो एव चरणपादुकाओ की सख्या लगभग १० हजार है। और दिनानुदिन वृद्धिगत है। सैकडो गुरुदेव भक्तगण दादा के जाप पूजन गुणगान भक्ति कर रहे हैं। मना वाछित पूण करन म श्री दादागुरुदेव साक्षात् कल्पवृक्ष क ममान हैं। यदि एसा नही होना तो कोई उन्हे जानता तक नही। यह मब उनके महान् प्रभाव के साक्षात् प्रमाण हैं।

इमी परम्परा मे भडारा के सस्थापक, हजारा मूर्तिया की अजनशलाका (प्रतिष्ठाकारक) श्री जिनभद्रसूरि, नाकोडा तीथ सस्थापक श्री कीर्तिरत्नसूरि, बादशाह अकबर व जहागीर प्रतिबोधक, सकडा शिथिलाचारी साधुओ का मत्थेरण (गृहस्थी वस्त्र धारण) बना देने वाले महान् क्रियोद्धारक चतुथ दादा श्री जिनचन्द्रसूरि, आठ अक्षरो के दस लाख अथ करने वाले अदभुत विद्वान श्री समयसुन्दर जी गणि एक पूव का ज्ञान रखन वाले, द्रव्यानुयाग के, न्याय के, तत्त्वचर्चा के अनक गद्य पद्यमय ग्रन्था के रचयिता श्रीमद् देवचन्द्र गणि तथा योगिराज आनदघन आदि महापुरुष हुए हैं, जिनकी चरित्रतपानिष्ठता, विद्वत्तादि गुण सौरभ से वीरशासन उद्यान सुरभित है। आज तक अनेक शासन प्रभावक, मुनिराज, साध्विया, श्रावक, श्राविका आदि मे यह परम्परा समृद्ध रही है और भविष्य मे भी इस परम्परा को अखण्ड रखन वाले अनेक महानुभाव हागे।

इमी मगलमय भावनापूवक विरमित होती हूँ।

सज्जन वाणी —

१ जिन्हान सत्य को आचरण म उतारा है, जिनकी वाणी सत्य से ओत-प्रात है, जिनका मन भव्य चितन म लीन है वे समार के पूज्यवान माने जाते हैं।

२ जिन्होन अस्तेय व्रत धारण कर लिया, उन्ह सभी सम्पत्तियाँ अनायास मिलती हैं उनके जीवन म कभी दरिद्रता नही आती। और वे मभी के विश्वासपात्र बन जाते हैं।

□ मंजुल विनयसागर जैन

खरतरगच्छ की संविग्न साधु परम्परा का परिचय

यह निर्विवाद सत्य है कि यशोलिप्सा और शारीरिक सुविधावाद आदि ऐसी मानवीय दुर्बलताएँ है कि इसके घेरे मे आकर अच्छे से अच्छे व्रती और तपस्वी भी अपने आत्मिक मार्ग से फिसल जाते हैं। यह दुर्बलताएँ यह भेद नही करती कि यह साधु है या साध्वी, श्रावक है या श्राविका, व्रती है या अव्रती। तनिक-सी फिसलन भी क्रमश अपना व्यूह बनाकर बृहद् रूप धारण कर लेती है। फलत मानव उस फिसलन की गर्त मे धीमे-धीमे बढता जाता है और उसका ऐसा आदी हो जाता है कि उसको धर्म के आवरण में लपेटना चाहता है। इसी के प्रतिफलस्वरूप जीवन मे शिथिलाचार बढता जाता है। जिस शिथिलाचार का आचार्य वर्धमान और आचार्य जिनेश्वर ने सक्रिय विरोध किया था और सुविहित/संविग्न परम्परा की नीव रखी थी वह शताब्दियो तक फलती-फूलती रही। धीरे-धीरे शिथिलाचार ने इसमे प्रवेश करना प्रारम्भ किया। इसी के प्रतिकार रूप मे अकबर प्रतिबोधक युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि ने सवत् १६१४ मे क्रियोद्धार किया। पुन इसमे शिथिलता के बीज पैदा हुए। सवत् १६६१ में समयसुन्दरोपाध्याय ने क्रियोद्धार किया। धीमे-धीमे पुन इसमे विकृतियाँ आने लगी तो उसके प्रतिकारस्वरूप कई क्रियापात्र साधुओ ने समय-समय पर क्रियोद्धार किया। इन क्रियोद्धारक साधुवर्ग की परम्परा वर्तमान समय में सविग्न परम्परा कहलाई। इस समय मे यह सविग्न परम्परा ३ महापुरुषो के नाम से खरतरगच्छ में प्रसिद्ध है —

१ सुखसागरजी म० का समुदाय, २ कृपाचन्द्रजी म० का समुदाय और ३ मोहनलालजी म० का समुदाय। अत इन तीन समुदायो का यहाँ सक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करना अभीष्ट है।

सुखसागरजी म० का समुदाय

सुखसागरजी म की परम्परा मे यह एक विशेष बात है कि वे अपनी परम्परा को "क्षमा कल्याणजी म. की वासक्षेप" के नाम से मानती आ रही है, अत सुखसागरजी म. की परम्परा का वस्तुत अभ्युदय महोपाध्याय क्षमाकल्याणजी म से ही प्रारम्भ होता है। इसी कारण इस परम्परा का परिचय क्षमाकल्याणजी के दादागुरु उपाध्याय प्रीतिसागर गणि से प्रारम्भ करते है।

(१) उपाध्याय प्रीतिसागरगणि

प्रीतिसागर गणि आचार्य जिनभक्तिसूरि के शिष्य थे। आपका जन्म नाम प्रेमचन्द था। दीक्षा-

आर्यपुत्र
श्री उदयसागर सूरिजी
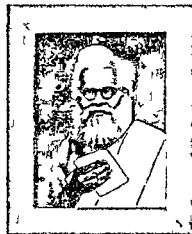
खरतरगणाधीश्वर
श्री सुखसागर सूरिजी

योगीन्द्र
श्री मज्जिन कवीन्द्रसागर सूरिजी

वीरपुत्र
श्री मज्जिन आनन्दसागर सूरिजी

युगप्रधान दादा
श्री जिनकुशल सूरिजी

तपस्वी
श्री छगनसागर सूरिजी

अनुयोगाचार्य
श्री जिनकान्तिसागर सूरिजी

शान्तमूर्त्ति
श्री मज्जिन हरीसागर सूरिजी

गणाधीश्वर
श्री हेमेन्द्रसागर सूरिजी
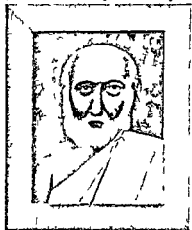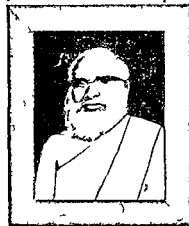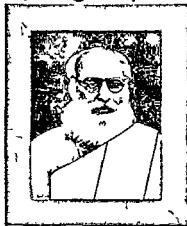
नन्दी सूची के अनुसार इनकी दीक्षा १७८८ माघ वदी तेरस को सिणधरी म हुई थी।[1] सवत् १८०१ म ये श्री जिनभक्तिसूरिजी के साथ राधनपुर मे थे। जिनभक्तिसूरि के स्वगवास के पश्चात् सवन् १८०४ से ये श्री जिनलाभसूरि के साथ भुजनगर, गूढा और जसलमेर मे रहे। सवत् १८०८ कार्तिक वदी तेरस को बीकानर मे आपका स्वगवास हुआ। सवत् १८५२ मे प्रतिष्ठित आपकी चरण पादुकाएँ जसलमेर म है।

(२) वाचक अमतधमगणि

आपका कच्छ निवासी ओस वशीय वृद्ध शाखा म जन्म हुआ था। आपका जन्म नाम अजुन था। सवत् १८०४ फागुन सुदी एकम को भुज नगर म श्री जिनलाभसूरि के कर कमलो से दीक्षित होकर श्री प्रीतिसागर गणि के शिष्य बन थे। अनक तीर्थों की यात्राएँ की थी। सिद्धान्तो के योगोद्वहन किये थे। सवत् १८२७ मे जिनलाभसूरि ने इनको वाचनाचाय पद दिया था। सवेग रग से आपकी आत्मा ओत प्रोत होने से सवत् १८३८ माघ सुदी पाचम को सवथा परिग्रह का त्याग कर दिया था। १८४० तक तत्कालीन आचाय जिनचन्द्रसूरि जी के साथ रहे। सवत् १८४३ म पूव देश की ओर विचरण किया तीथयात्राएँ की और धमप्रचार किया। आपके उपदेश से कई नवीन जिनालय बने कई प्रतिष्ठा आदि काय सम्पन्न हुए। सवत १८४८ म पटना मे स्थूलिभद्रजी की दहरी की प्रतिष्ठा करवाई। सवत १८५० का चातुर्मास बीकानेर म किया और १८५१ का चातुर्मास जैसलमर करने के पश्चात् माघ सुदी आठम को जसलमेर मे आपका स्वगवास हुआ। वहा आपके चरण प्रतिष्ठित हैं।

(३) उपाध्याय क्षमाकल्याण

बीकानेर के निकटवर्ती केसरदेशर गाव के मालू गोत्र म सवत १८०१ म इनका जन्म हुआ था। इनका जन्म नाम खुशालचन्द था। सवत १८१२ से अमृतधम गणि के पास रहकर अध्ययन करने लगे और सवत् १८१६ म आषाढ वदी दूज को जसलमेर मे श्री जिनलाभसूरि जी के करकमलो से दीक्षित होकर अमृतधम गणि के शिष्य बने। दीक्षा नाम क्षमाकल्याण रखा गया। इन्होने विद्याध्ययन उपाध्याय राजसोम और उपाध्याय रामविजय (रूपचन्द) के सान्निध्य मे रहकर किया था। इनका विचरण श्री जिनलाभसूरि व श्री जिनचन्द्रसूरि जी के साथ ही अधिकाशत हुआ। सवत १८२४ मे बीकानेर, १८२६ से १८३३ तक गुजरात, काठियावाड और १८३४ म आबू व मारवाड के तीर्थों की यात्रा करते हुए जसलमेर आये तथा १८४० तक वही रहे। १८४३ म बगाल और बालुचर म चातुर्मास किया। वहाँ भगवती सूत्र आगम की वाचना की। १८४८ तक पूव देश म विचरण कर धम प्रचार करते रहे।

सवत १८५५ म जिनचन्द्रसूरि जी ने आपको वाचक पद से और श्री जिनहषसूरि ने उपाध्याय पद से अलकृत किया। गच्छ मे वयोवृद्ध एव गीताथ होने के कारण यह महोपाध्याय कहलाये।

सवत् १८३८ म आपने क्रियोद्धार किया था और साधु परम्परा के लिये कई विशिष्ट नियम निर्धारित किये थे। सवत् १८७३ पौष वदी चौदस मगलवार को बीकानेर म आपका स्वगवास हुआ। बीकानेर की रेलदादाजी म आपकी चरण पादुका व सीमधर जिनालय तथा सुगनजी के उपाश्रय म मूर्तियाँ प्रतिष्ठित है।

आपके कई चमत्कार भी प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि जोधपुर के महाराजा ने जब जसलमेर पर आक्रमण किया था तथा जैसलमेर के महारावल की प्राथना पर क्षमाकल्याणजी ने सवतोभद्र यन्त्र लिखकर दिया था। इस यन्त्र के प्रताप से ही महारावल विजयी होकर आये थे। जैसलमेर के महारावल आपके परम भक्त थे।

आप अपने समय के परम गीतार्थ एवं चिन्तनशील धुरन्धर विद्वान थे। आपके द्वारा निर्मित संस्कृत व भाषा के स्वतन्त्र ग्रन्थ, प्रश्नोत्तर ग्रन्थ एवं टीका ग्रन्थ प्राप्त होते हैं जिनमें से मुख्य-मुख्य हैं—तर्क संग्रह फक्किका, गौतमीय काव्यवृत्ति, खरतरगच्छ पट्टावली, आत्मप्रबोध, सूक्तिरत्नावली सटीक, प्रश्नोत्तर सार्ध शतक, साधु एवं श्रावक विधि प्रकाश, यशोधर चरित्र एवं श्रीपाल चरित्र टीका तथा चातुर्मासिक, अष्टाह्निका आदि पाँच व्याख्यान।

आपके प्रमुख शिष्य थे—कल्याणविजय, विवेकविजय, विद्यानन्दन, और धर्मविशाल।

(४) धर्मविशालजी (धर्मानन्द)

इनकी दीक्षा संवत् १८७० ज्येष्ठ वदी छठ को जयपुर में हुई। इनका दीक्षा नाम धर्मविशाल रखा गया किन्तु ये धर्मानन्द के नाम से ही प्रसिद्ध रहे। आपने संवत् १८७४ आषाढ शुक्ल छठ को बीकानेर रेलदादाजी में क्षमाकल्याण उपाध्याय के चरण प्रतिष्ठित किये। इन्हीं के उपदेश से भाण्डासर मन्दिर के अहाते में सीमंधर स्वामी के जिनालय का निर्माण हुआ। संवत् १८८६ में माघ सुदी पांचम को बीकानेर में राजाराम को दीक्षित किया, रत्नराज नाम रखा। सम्भवतः यही भविष्य में राजसागरजी के नाम से प्रसिद्ध हुए। संवत् १९१२ में सुगुण को शिष्य बनाया और दीक्षा नाम सुमतिमंडन रखा। यह अच्छे विद्वान और कवि थे। इन्होंने पंचज्ञान, पंचपरमेष्ठी आदि दसों पूजाएँ बनाकर पूजा साहित्य की प्रशंसनीय अभिवृद्धि की थी। बीकानेर का स्थान आज भी सुगनजी के उपाश्रय के नाम से प्रसिद्ध है। इन्हीं के प्रयत्न से शिववाडी में मन्दिर की स्थापना हुई थी। संवत् १९२८ ज्येष्ठ वदी दूज को धर्मानन्दजी के चरण रेलदादाजी में सुमतिमण्डन द्वारा प्रतिष्ठित प्राप्त हैं। अतः इसके आसपास ही धर्मानन्दजी का स्वर्गवास हुआ होगा। अन्तिम व्यवस्था में धर्मानन्दजी के आचार-व्यवहार में कुछ शिथिलता आ गई थी।

(५) राजसागरजी

इनका जन्मनाम राजाराम था। धर्मानन्दजी के पास १८८६ माघ सुदी पांचम को दीक्षा ग्रहण की और राजसागर नाम प्राप्त किया। ये प्रौढ विद्वान् थे। इन्होंने अनेक मानवों को मांस-मदिरा का त्याग करवा कर दुर्व्यसनों से मुक्त कराया था और शुद्ध धर्म प्रदान किया था। इनके सम्बन्ध में विशेष इतिवृत्त प्राप्त नहीं है।

(६) ऋद्धिसागरजी

इनका भी कोई परिचय प्राप्त नहीं है। ये उच्चकोटि के विद्वान थे, साथ ही चमत्कारी मन्त्रवादी भी। वृद्ध जनों से ज्ञात होता है कि दैवीय मन्त्र-शक्ति से इन्हें ऐसी शक्ति प्राप्त थी कि वे इच्छानुसार आकाश गमन कर सकते थे। आबू तीर्थ की अंग्रेजों द्वारा आशातना देखकर इन्होंने विरोध किया था। राजकीय कार्यवाही में समय-समय पर स्वयं उपस्थित होते थे। और अन्त में तीर्थरक्षा हेतु गवर्नमेन्ट से ११ नियम प्रवृत्त करवाकर अपने कार्य में सफल हुए थे। त्रिस्तुतिक प्रसिद्ध आचार्य विजयराजेन्द्रसूरि और तपागच्छ के प्रौढ़ आचार्य झवेरसागरजी का जब चतुर्थ स्तुति के सम्बन्ध में शास्त्रार्थ हुआ तो उस शास्त्रार्थ के निर्णायकों में वाराणसी के दिङ्मण्डलाचार्य बालचन्द्राचार्य और ऋद्धिसागरजी ही थे। संवत् १९५२ में आपका स्वर्गवास हुआ।

(७) गणाधीश सुखसागरजी

इनका जन्म सरसा में १८७६ में हुआ था। दूगड़ गोत्रीय मनसुखलालजी इनके पिता थे और माता का नाम था जेतीबाई। युवावस्था में माता-पिता का वियोग हो जाने पर ये जयपुर में आकर

अपनी बहन के पास रहने लग थे और किरान का व्यापार करने लगे थे। कुछ ही दिनो म अपनी व्यावहारिक कुशलता के कारण जयपुर के प्रसिद्ध सेठ माणकचन्दजी गोलेच्छा के ये मुनीम नियुक्त हुए।

सवत् १९०६ मे जयपुर मे ही मुनि श्री राजसागरजी और ऋद्धिसागरजी का चातुमास हुआ। चातुर्मास के मध्य मुनिजनो के सम्पर्क म रहने के कारण इनका हृदय वराग्यवासित हो गया। इसी के फलस्वरूप सवत् १९०६ म ही भादवा सुदी पाचम के दिन इन्होने दीक्षा ग्रहण की, मुनि सुखसागर नाम रखा गया। दीक्षा का सारा महोत्सव सेठ माणकचन्दजी गोलेच्छा न किया था। राजसागरजी ने इस नव दीक्षित सुखसागर को ऋद्धिसागरजी का शिष्य घोषित किया था।

गहन शास्त्र अध्ययन करने के पश्चात साधुजीवन मे आई शिथिलता म उद्विग्न होकर सवत् १९१८ म क्रियोद्धार किया। इस समय आपके साथ आपके दो गुरु भाई भी थे, जिनके नाम पद्मसागरजी और गुणवन्तसागरजी थे। क्रियोद्धार के पश्चात् शत्रुजय तीर्थ की यात्रा कर फलौदी पधारे।

इधर साध्वी रूपश्री की शिष्याएँ उद्योतश्री जी धनश्री जी भी शिथिलाचार का त्याग कर १९२२ मे फलौदी आई और सविग्न सुखसागरजी को अपना गुरु मानकर उनकी आज्ञानुवर्तिनी हो गई। सवत् १९२४ मे लक्ष्मीश्रीजी की दीक्षा हुई, सम्वत् १९२५ म भगवानदास नामक भव्य पुरुष ने इनके पास दीक्षा ग्रहण की और यही भगवानसागर के नाम से प्रसिद्ध हुए।

कहा जाता है कि एक बार आपने स्वप्न म देखा कि पल्लवित बगीचे म कुछ बछडा के साथ गायो का झुण्ड घूम रहा है' इस स्वप्न के आधार पर इन्होने भविष्यवाणी की थी कि समुदाय का विस्तार अवश्य होगा किन्तु उसम साधु कम और साध्वियां अधिक होगी। उनकी यह भविष्यवाणी पूर्णत सफल हुई। आप आगम साहित्य के अच्छे विद्वान भी थे। जीवाजीव राशि प्रकाश, बासठ मागणा यन्त्र एवं अष्टक आदि कई कृतियां आपकी प्राप्त है।

सम्वत् १९४२ माघ बदी ४ (२३ जनवरी १८८६) के दिन प्रातःकाल फलौदी मे आपका स्वर्गवास हुआ। वर्तमान मे आपने जो सुविहित मार्ग का पुनरुद्धार किया था इसी कारण इनका समुदाय/परम्परा सुखसागर जी म के समुदाय के नाम से प्रसिद्ध हुआ जो आज भी प्रसिद्धि के शिखर पर है।

(८) गणाधीश भगवानसागर जी

ये रोहिणी गाँव के निवासी थे और जसाजी जाट के पुत्र थे। सुखसागरजी के उपदेश से प्रतिबोध पाकर आपने सम्वत् १९२५ मे दीक्षा ग्रहण की थी। सुखसागरजी का स्वर्गवास हो जाने पर आप समुदाय के गणाधीश बने। अन्तिम अवस्था मे आपने अपने भतीजे हरीसिंह के लिए छगनसागरजी को निर्देश दिया था कि इसको योग्य अवस्था मे दीक्षा प्रदान करना। सम्वत् १९५७ ज्येष्ठ कृष्णा चौदस को आपका स्वर्गवास हो गया। इनके सात शिष्य हुए, जिनम से प्रमुख तीन थे—सुमतिसागरजी त्रैलोक्य सागरजी और हरिसागरजी। इनके कार्यकाल म सात साधु और ४१ साध्वियां हुईं।

(९) तपस्वी छगनसागर जी

भगवानसागर जी के पश्चात् इस समुदाय के अधिपति छगनसागर जी हुए। इनका जन्म १८९६ म फलौदी मे हुआ था। आपके पिता का नाम था सागरमलजी गोलेच्छा और माता का नाम था चन्दन

बाई। अखेचन्दजी श्रावक की पुत्री चुन्नीबाई से आपका पाणिग्रहण हुआ था जिससे तीन पुत्र व एक पुत्री हुई थी।

साध्वीरत्नों के उपदेश व प्रयत्न से प्रतिबोध पाकर सम्वत् १९८३ वैशाख सुदि दशमी को पत्नी के साथ इन्होंने दीक्षा ग्रहण की। दीक्षादाता थे भगवानसागर जी। भगवानसागरजी ने इनको श्री राजसागर जी के पौत्र श्री स्थानसागरजी का शिष्य घोषित किया। ये सिद्धान्तों के अच्छे जानकार थे और महातपस्वी भी थे। भगवानसागरजी का स्वर्गवास हो जाने पर आपने इस समुदाय का भार सम्भाला। आपके कार्यकाल मे ६८ साध्वियों ने दीक्षा ग्रहण की। अन्त मे आपने ५२ उपवास किये जिसमे ४० उपवास जल के साथ थे और १२ उपवास निर्जल थे। इसी की पूर्णाहुति में सम्वत् १९६६ द्वितीय श्रावण सुदि छठ को लोहावट में आपका स्वर्गवास हो गया। सम्वत् १९७० मे लोहावट मे आपकी पादुकाएँ स्थापित की गयी।

महातपस्वी छगनसागर जी के स्वर्गवास के पश्चात् संघ ने भगवानसागरजी के प्रमुख शिष्य सुमतिसागरजी से (जो कि उस समय खान देश मे थे) गच्छभार संभालने का अनुरोध किया था, किन्तु सुमतिसागरजी ने अपनी अनिच्छा प्रदर्शित करते हुए त्रैलोक्यसागरजी को सौंपने का आग्रह किया।

(१०) त्रैलोक्यसागरजी

जैसलमेर राज्यान्तर्गत गिरासर निवासी पारख गोत्रीय जीतमलजी के पुत्र रूप मे इनका जन्म सम्वत् १९१८ मे हुआ। इनका जन्म नाम चुन्नीलाल था। इनकी बडी बहन पन्ना बाई थी, जो कि दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् पुण्यश्रीजी के नाम से प्रसिद्ध हुई थी। अपनी बडी बहन पुण्यश्रीजी के प्रयत्न से ही चुन्नीलाल जी ने सवत् १९५२ ज्येष्ठ सुदि सातम को भगवानसागरजी के पास दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा नाम रखा गया त्रैलोक्यसागर।

महातपस्वी छगनसागरजी का स्वर्गवास हो जाने पर एव अपने बडे गुरु भ्राता सुमतिसागरजी का आदेश प्राप्त कर इन्होंने समुदाय का आधिपत्य स्वीकार किया। स० १९६९ मे आपका कोटा मे चातुर्मास हुआ। वहाँ ज्ञानसुधारस धर्म सभा की स्थापना की। परासली तीर्थ यात्रा हेतु डग, गगधार और सीतामहु से तीन सघ निकलवाये। सवत् १९७० में विमलश्रीजी के प्रयत्न से जैसलमेर का सघ निकलवाया। सुजानगढ प्रतिष्ठा मे सम्मिलित हुए। लोहावट मे छगनसागर जैन पाठशाला खुलवाई। सवत् १९७४ श्रावण शुक्ला पूर्णिमा को लोहावट मे आपका स्वर्गवास हुआ। आपके समय मे इस समुदाय की साधु-साध्वियों की संख्या मे काफी अधिक वृद्धि हुई।

(११) जिनहरिसागरसूरि

इनका जन्म नागौर जिले के रोहिणा गाँव मे सवत् १९४९ मिगसर सुदि सातम को हुआ था। इनके पिता जमींदार झूरिया जाट हनुमन्तसिह जी थे और माता थी केसरदेवी। इनका जन्म नाम हरिसिंह था। ये पाच भाइयों में तीसरे नम्बर के थे। भगवानसागरजी म. के ये भतीजे होते थे। भगवानसागरजी ने अन्तिम समय मे अपनी इच्छा छगनसागरजी के सम्मुख जाहिर की थी कि 'इसको योग्य समय पर दीक्षा दे देना' तदनुसार निर्देश का पालन करते हुए छगनसागरजी ने संवत् १९५७ आषाढ वदि पाँचम के दिन फलौदी मे दीक्षा प्रदान की और दीक्षा नाम रखा हरिसागर तथा भगवानसागरजी का शिष्य घोषित किया। सवत् १९७४ में गणाधीश त्रैलोक्यसागरजी का स्वर्गवास हो जाने पर इन्होंने समुदाय का ` , संभाला।

आप इतिहास और साहित्य के प्रेमी, सरल स्वभावी और अच्छे विद्वान् थे। आपके समय में इस समुदाय में साधु साध्वियों की काफी बढ़ोतरी हुई। आपने अपने जीवनकाल में सभी प्रदेशों में विचरण किया, तीर्थ यात्राएँ की। प्रतिष्ठा, उद्यापन, संघयात्रा, साहित्य उद्धार आदि अनेक श्लाघनीय कार्य किये। शत्रुञ्जय तीर्थ पर नई खरतरवसही पर प्रयत्न करके आनन्दजी कल्याणजी की पेढी द्वारा वापस पाटिया लगवाया।

सुजानगढ जिनमन्दिर की, केलु ऋषभदेव पचायती मंदिर की, मोहनबाडी पार्श्वनाथ स्वामी की, हाथरस दादाबाडी की और लोहावट में गुरु मंदिर की आपने प्रतिष्ठायें करवाईं। आपके कार्यकाल में अनेकों उद्यापन महोत्सव हुये। आपके उपदेश से ही जिनदत्तसूरि ब्रह्मचर्याश्रम, पालीताणा, खरतरगच्छ ज्ञानमन्दिर जैनशाला, जामनगर, हरिसागर जैन पुस्तकालय, लोहावट और हरिसागर जैन ज्ञान मन्दिर बालुचर आदि अनेक संस्थाओं की स्थापना हुई।

संवत् १९९२ में आप शिष्य परिवार सहित अजीमगंज पधारे। उस समय में श्री संघ ने आपको आचार्य पद प्रदान किया। तभी से आप जिनहरिसागरसूरि के नाम से प्रसिद्ध हुए।

आपको मूर्ति लेख संग्रह का, ग्रंथों की प्रशस्तियों के संग्रह का और शास्त्रों की प्राचीन प्रतिलिपियों के आधार पर प्रतिलिपियाँ तैयार करवाने का बड़ा उत्साह था। कई प्रतिलिपिकार निरन्तर आपके पास रहकर प्रतिलिपि करते रहते थे और आप स्वयं उनका मिलान करते थे। सैकड़ों प्राचीन प्रतियों की आपने प्रतिलिपियाँ करवाकर अपने लोहावट के ज्ञान भण्डार को समृद्ध किया था। चारों दादा साहब की पूजायें और तपस्वी छगनसागरजी का जीवन चरित्र आदि आपकी कृतियें प्रकाशित हैं। फलौदी पार्श्वनाथ तीर्थ में पार्श्वनाथ विद्यालय की स्थापना भी की थी। संवत् २००६ पोष वदि आठम मंगलवार को फलौदी पार्श्वनाथ तीर्थ में ही आपका स्वर्गवास हुआ था।

(१२) जिनानन्दसागरसूरि

श्रीजिनहरिसागरसूरि जी म० के स्वर्गवास के पश्चात् गणनायक के रूप में श्री जिनानन्द सागरसूरिजी हुए। इनका जन्म संवत् १९४६ आषाढ सुदि बारस को सैलाना में हुआ था। इनके माता-पिता थे कोठारी तेजकरणजी और केसरदेवी। इनका जन्म नाम यादव सिंह था। प्रवर्तिनी श्री ज्ञानश्रीजी म० से प्रतिबोध पाकर बाईस वर्ष की अवस्था में तत्कालीन गणनायक श्री त्रैलोक्यसागरजी म० के पास आप दीक्षित हुए। दीक्षा महोत्सव दीवान बहादुर सेठ श्री केसरीसिंहजी बाफना ने किया था। इनका दीक्षा नाम आनन्दसागर था किन्तु वे वीर पुत्र के नाम से ही प्रसिद्धि को प्राप्त हुये।

आपका संस्कृत, हिन्दी, और अंग्रेजी पर अच्छा अधिकार था। अपने समय के आप प्रखर वक्ता थे। आपने ही प्रवर्तिनी श्री वल्लभश्रीजी, प्रवर्तिनी श्री प्रमोदश्रीजी एवं प्रवर्तिनी श्री विचक्षणश्रीजी आदि साध्वियों को प्रवचन शैली का अभ्यास कराकर प्रवचनपटु बनाया था। आपने अपने जीवन काल में सुखचरित्र, हिन्दी कल्पसूत्र, द्वादशपर्व, श्रीपाल चरित्र सप्त व्यसन निषेध, आगमसार आदि अनेक ग्रंथ लिखे थे' आनन्दविनोद' (स्तवनादि) एवं अनेक निबन्ध—विद्या विनय विवेक अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य अपरिग्रह आदि की रचना की थी। आगमसार आदि छोटी मोटी ४६ पुस्तकें प्रकाशित करवाई थी। सैलाना नरेश आपके सहपाठी थे, अतः उन्ही के अनुरोध पर सैलाना में आनन्दज्ञान मन्दिर की स्थापना

की थी। श्री जिनहरिसागरसूरि जी म० का स्वर्गवास हो जाने के बाद संवत् २००६ माघ सुदि पांचम को प्रतापगढ में खरतरगच्छ संघ द्वारा आपको आचार्य पद पर स्थापित किया गया था।

संवत् २०११ मे अजमेर मे आपकी ही अध्यक्षता में दादा श्री जिनदत्तसूरि अष्टम शताब्दी समारोह के समय साधु सम्मेलन हुआ था। आपकी ही प्रेरणा से अखिल भारतीय जिनदत्त सूरि सेवा संघ की स्थापना हुई। आपने अनेको को दीक्षा प्रदान की, प्रतिष्ठायें, अन्जनशलाका करवाई। तीर्थ यात्रा संघ आदि निकलवाये। यात्रा संघो में प्रमुख हैं—फलोदी से जैसलमेर, इन्दौर से माण्डवगढ़, माण्डवी से भद्रेश्वर तीर्थ और माण्डवी से सुथरी तीर्थ।

संवत् २०१६ वैशाख सुदि छठ को सिद्धाचल तीर्थ पर दादाजी की टोक पर नवनिर्मित देहरियो मे आप ही ने प्राचीन चरणो की स्थापना करवाई थी। संवत् २०१६ का चातुर्मास आपका पालीताणा में ही हुआ। उस समय वहाँ खरतरगच्छ के २६ मुनि एव ३२ साध्वियाँ विराजमान थी। इसी वर्ष जिनदत्तसूरि सेवा संघ का द्वितीय अधिवेशन भी हुआ। संवत् २०१७ पौष सुदि दशम को आपका पालीताणा मे ही स्वर्गवास हुआ।

(१३) जिनकवीन्द्रसागर सूरि

आपका जन्म पालनपुर मे संवत् १९६४ चैत्र सुदि तेरस के दिन हुआ था। आपके पिता थे निहालचन्द शाह और माता थी वब्बूबाई। दस वर्ष की अवस्था मे आपके पिताजी का स्वर्गवास हो गया। साध्वी श्री दयाश्रीजी की प्रेरणा से अध्ययन हेतु आप हरिसागरजी म० के पास कोटा आ गये। इनका हृदय वैराग्यवासित होने के कारण श्री हरिसागरजी म० ने संवत् १९७९ फाल्गुन वदि पांचम को जयपुर मे दीक्षा प्रदान की और दीक्षा नाम रखा मुनि कवीन्द्रसागर।

आप संस्कृत साहित्य के दिग्गज विद्वान् तो थे ही, साथ ही प्रतिभासम्पन्न आशु कवि भी थे। आपकी आवाज भी बुलन्द थी और वक्तृत्व शैली भी अनोखी थी। आपके द्वारा संस्कृत या हिन्दी भाषा मे कोई महाकाव्य या विशिष्ट बडी कृति तो प्राप्त नही है, किन्तु संस्कृत और हिन्दी भाषा मे स्तोत्र, चैत्यवन्दन, स्तुतियाँ और भजन आदि शताधिक संख्या मे प्राप्त हैं। आपके द्वारा निर्मित प्रमुख कृतियाँ हैं—रत्नत्रय पूजा, पार्श्वनाथ पंच कल्याणक पूजा, महावीर पूजा, चौंसठ प्रकारी पूजा, चैत्री पूर्णिमा व कार्तिकी पूर्णिमा विधि, उपधान तप, वीस स्थानक तप, वर्षी तप, छम्मासी तप आदि की देववन्दन विधि। चारो दादा साहब की पूजाएँ एव पचासो स्तवन इन्होंने गुरुभक्तिवश अपने पूज्य गुरुदेव के नाम से प्रकट की हैं। आप साधनाप्रिय भी थे और नगर के बाहर दादावाडियो आदि मे जाकर साधना भी किया करते थे। आपकी ही प्रेरणा से पालीताणा मे 'हरि विहार' की स्थापना हुई।

जिनानन्दसागरसूरि के स्वर्गवास के पश्चात् संवत् २०१७ चैत्र वदि सातम के दिन खरतरगच्छ संघ ने आपको आचार्य पद से विभूषित कर जिनकवीन्द्रसागरसूरि नाम रखा। यह महोत्सव अहमदाबाद मे सम्पन्न हुआ था। किन्तु, संघ का दुर्भाग्य था कि वे अधिक समय तक संघ की सेवा न कर सके। सम्वत् २०१७ फाल्गुन सुदि पांचम को अचानक हृदय गति बन्द हो जाने से बूटा मे आपका स्वर्गवास हो गया था।

(इनका विस्तृत जीवन वर्णन पृथक् लेख मे प्रकाशित है।)

(१४) महोपाध्याय सुमतिसागर जी

जसाकि पूव मे सकेत किया जा चुका है कि गणनायक भगवानसागर जी म के प्रमुख शिष्य सुमतिसागरजी थे। इनका जन्म स० १९१८ म नागौर म हुआ था। रेखावत गोत्रीय थे और नाम था सुजाणमल। शादी भी हुई थी। पुत्री भी थी, जिसका भविष्य मे विवाह धनराज जी बोथरा के साथ हुआ था। पुत्री की पुत्री का विवाह नागौर के ही सरदारमल जी समदडिया के साथ हुआ था। वराग्य रग लग जाने से २६ वष की अवस्था मे घर-बार, पत्नी एव पुत्री का त्याग कर स० १९४४ वशाख सुदी ८ के दिन सिरोही म भगवानसागरजी म के पास दीक्षा ग्रहण कर उनके शिष्य बने। दीक्षावस्था का नाम था—मुनि सुमतिसागर। तत्कालीन गणनायक छगनसागरजी म का स्वगवास होने पर सघ की बाग डोर सम्भालने के लिय सघ न सुमतिसागरजा से निवेदन किया था, किन्तु सुमतिसागरजी न जो कि उस समय खानदेश मे थे, अपने लघु गुरुभ्राता श्री त्रलोक्यसागरजी को गणनायक बनाने का अनुरोध किया। सम्वत् १९७२ म बम्बई म आचाय श्री कृपाचन्द्रसूरि ने सुमतिसागरजी का उपाध्याय पद प्रदान किया था और सम्वत् १९७६ म इन्दौर मे सुमतिसागरजी को महोपाध्याय पद से अलकृत किया था। सम्वत् १९९४ मे आपका अचानक हृदय गति रुक जाने से कोटा म ७६ वष की अवस्था म स्वगवास हुआ था।

(१५) जिनमणिसागरसूरि

महोपाध्याय सुमतिसागरजी के प्रमुख शिष्य थे जिनमणिसागरसूरि। सम्वत् १९४३ म वीसा पोरवाल जाति के परिवार मे आपका जन्म हुआ था। आपके पिता का नाम था गुलाबचन्दजी और माता का नाम था पानीबाई जो कि बाकडिया वडगाव के रहन वाले थे। इनका जन्म नाम था मनजी। सम्वत् १९६० मे जब मनजी पालीताणा की यात्रा पर गये तो यात्रा करत समय ही इनमे वराग्यरग जागृत हुआ और १९६० म ही वैशाख सुदी द्वितीया को सिद्धाचल तीथ पर ही सुमतिसागरजी के पास दीक्षा ग्रहण की। इनका दीक्षा नाम रखा गया मुनि मणिसागर। सम्वत् १९६४ म मुनि मणिसागरजी ने योगीराज चिदानन्दजी (द्वितीय) लिखित 'आत्मा भ्रमोच्छेदन भानु' नामक पुस्तक जो कि ८० पृष्ठ की थी, उसे विस्तृत कर ३५० पृष्ठो म पूण की और चिदानन्दजी के नाम से ही प्रकाशित की। यह थी आपकी साहित्य निश्छनता और निरभिमानता।

उन्ही दिनो सम्मेतशिखर महातीथ के लिये श्वेताम्बर और दिगम्बर समाज म केस चल रहा था। मणिसागरजी ने सम्मेतशिखर मे रहकर एक माह तक कठोर अनुष्ठान किया। फलत सम्मेत शिखर के केस म श्वेताम्बर समाज को सफलता प्राप्त हुई।

सम्वत १९६६ म मुनि विद्याविजयजी न खरतरगच्छ की मान्यताओ पर जब दोषारोपण किया तो मणिसागरजी ने प्रारम्भ म प्रत्युत्तर के रूप म एक छोटी सी पुस्तिका लिखी और उसी का विस्तार रूप 'बृहद् पयुषणा निणय' और 'षट्कल्याणक निणय' था। इन दोनो पुस्तको न खरतरगच्छ को मान्यताओ को सबल आधार दिया और शास्त्रानुसार स्थायी रूप दिया।

सम्वत् १९७२ म जब कृपाचन्द्रजी म को आचाय पद दिया गया। जिनकृपाचन्द्र सूरि न उस समय सुमतिसागरजी को उपाध्यायपद और मणिसागरजी को पण्डित पद प्रदान किया। इसी वष बम्बई म तपागच्छ के धुरन्धर विद्वान् श्री सागरानन्दसूरि और श्री वल्लभविजयजी (विजयवल्लभसूरि) आदि ने खरतरगच्छ की मान्यताओ पर आरोप करत हुए कई बुलेटिन निकाले।

पण्डित मणिसागरजी ने भी बुलेटिनो के द्वारा उनका सचोट उत्तर दिया और शास्त्रार्थ के लिये आह्वान किया। सप्रमाण सचोट उत्तर मिलने के कारण तपागच्छ के आचार्य उत्तर न दे सके और न शास्त्रार्थ के लिये आगे ही आये। इसी प्रकार इन्दौर मे जब सागरानन्दसूरि और विजयधर्मसूरि के बीच देव द्रव्य का विवाद चल रहा था तब पण्डित मणिसागरजी ने विजयधर्मसूरि को भी शास्त्रार्थ के लिये ललकारा और इसी समय इसी प्रसग पर उन्होने 'देव द्रव्य निर्णय' नामक पुस्तक लिखी। इन्दौर मे ही मुखवस्त्रिका के प्रसग को लेकर स्थानकवासी समाज के प्रमुख विद्वान् और प्रसिद्ध वक्ता मुनि चौथमल जी को भी शास्त्र चर्चा के लिये आमन्त्रित किया, किन्तु वे भी समक्ष न आये। अन्त मे पण्डित मणिसागर जी 'मुख पर मुखवस्त्रिका बाँधना अशास्त्रीय है।' का प्रतिपादन करने वाली 'आगमानुसार मुहपत्ती का निर्णय' पुस्तक प्रकाशित की। इसी प्रकार जब मुनि ज्ञानसुन्दरजी ने 'साध्वियों को व्याख्यान देने का अधिकार नही है' पुस्तिका लिखी तो इसके प्रत्युत्तर मे शास्त्रीय प्रमाणो के आधार पर इन्होने पुस्तिका लिखी थी 'साध्वी व्याख्यान निर्णय।'

इनके उपदेश से कोटा मे श्री हिन्दी जैनागम प्रकाशक सुमति कार्यालय और जैन प्रिंटिंग प्रेस की स्थापना हुई। कल्पसूत्र आदि पाँच-छह आगमो के हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित हुए।

सम्वत् १९९८ का इनका चातुर्मास जयपुर मे हुआ था और यही पर इन्होने सुखसागरजी म. के समुदाय मे सर्वप्रथम उपधान तप करवाया था। सम्वत् १९९९ मे ही श्री कल्याणमलजी गोलेच्छा को बडी कठिनता से समझा कर उनकी पत्नी को नयमलजी के कटले में ही बडे महोत्सव के साथ दीक्षित किया था और दीक्षा नाम सज्जनश्री जी रखा था, जो कि इस समय प्रवर्तिनी पद को सुशोभित कर रही हैं और जिनका इस समय अभिनन्दन महोत्सव होने जा रहा हैं।

सम्वत् २००० का आपका चातुर्मास बीकानेर मे हुआ। यहाँ भी उपधान तप करवाया, उपधान तप के मालारोपण महोत्सव के प्रसग पर आचार्य जिनऋद्धिसूरिजी म ने सम्वत् २००० पौष वदी एकम को उनको आचार्य पद से सुशोभित किया था।

सम्वत् २००७ माघ वदी अमावस ६ फरवरी १९५१ को अकस्मात् ही आपका स्वर्गवास हो गया।

उनके प्रथम शिष्य थे मुनि विनयसागर जो बाद मे गृहस्थ हो गये। उनके एक शिष्य और थे श्री गौतमसागरजी और गौतमसागरजी के शिष्य अस्थिर मुनिजी। इन दोनो का ही स्वर्गवास हो चुका है।

(१६) जिनउदयसागरसूरि

श्री जिनकवीन्द्रसागर सूरिजी के स्वर्गवास के पश्चात् समुदाय का भार गणि श्री हेमेन्द्रसागर जी के कन्धो पर आया। वे उसे सुचारु रूप से कार्यान्वित करते रहे। उनका भी सूरत में स्वर्गवास हो जाने के पश्चात् समाज मे यह अभाव विशेष रूप से खलने लगा कि गच्छ मे कोई आचार्य ही नही है। फलत अखिल भारतीय जैन श्वेताम्बर खरतरगच्छ महासघ ने निर्णय लिया कि अब आचार्य पद रिक्त न रखकर दोनो ही मुनि गणो को आचार्य बना दिया जाय। फलत. सन् १९८२ मे जयपुर मे आचार्य पद महोत्सव हुआ और सघ ने एक साथ दो आचार्य बनाये —जिनउदयसागरसूरि एवं जिनकान्तिसागरसूरि। आप दोनो का सक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है :—

जिनउदयसागरसूरिजी का गृहस्थावस्था का नाम था देवराज भडारी। इनके माता पिता का नाम था श्री सुल्तानकरणजी भडारी एव श्रीमती जतन देवी। इनका जन्म स० १९६० फाल्गुन वदि अमावस को सोजत म हुआ था। विक्रम सवत् १९८८ माघ सुदि पाचम का बीकानेर मे २८ वष की अवस्था मे ही वीर पुत्र आनन्दसागरजी (जिनआनन्दसागरसूरि) के पास दीक्षा ग्रहण कर उनके शिष्य बन। दीक्षा नाम मुनि उदयसागर रखा गया था। १३ जून १९८२ को जयपुर नगर म श्री सघ न आपको आचाय पद से विभूपित किया। तभी से आप जिनउदयसागरसूरि के नाम से प्रसिद्ध हैं और तभी से इस सुख-सागरजी महाराज के समुदाय के गणनायक पद का भार सभाला और समुदाय का नेतत्व कर रह हैं।

आप गुजराती, हिंदी, अँग्रेजी, उदू आदि भापाआ के अच्छ जानकार हैं। आपका विचरण क्षेत्र मुख्यत राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश विहार बगाल और उत्तर प्रदेश रहा है। आपने अनक स्थलो पर प्रतिष्ठा, अजनशलाका आदि महोत्सव कराये है। आपके नेतृत्व म कई उद्यापन भी हुए हैं। कई स्थानो पर नई दादावाडियो का निर्माण और कई का जीर्णोद्धार भी करवाया है। कई पुस्तका का पुनप्रकाशन भी करवाया है जिसम पचप्रतिक्रमण सूत्र सविधि आदि मुख्य हैं। आप सरल स्वभावी हैं। वतमान म आप अपने शिष्यो—उपाध्याय महोदयसागरजी, पूर्णानन्दसागरजी पीयूपसागरजी के साथ सिवनी मे विराज रह है।

(१७) जिनकान्तिसागरसूरि

सन् १९८२ म जयपुर म जो दूसरे आचाय बने थे वे जिनकान्तिसागरसूरि। इनका जन्म विक्रम सवत १९६८ माघ वदि एकादशी को रतनगढ मे हुआ था। आपके पिता का नाम मुक्तिमलजी सिंघी था और माता का नाम था सोहनदेवी। आपका जन्म था तेजकरण/तोलाराम। रतनगढ म तेरापथी सप्रदाय का प्राचुय एव प्रभाव होन के कारण इनके माता पिता तेरापथी परम्परा का ही मानते थ। तत्कालीन तेरापथी समुदाय के अष्टम आचाय कालूगणि के पास इन्होन अपने पिता के साथ ही (तेजकरण) दस वप की बाल्यावस्था मे ही दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा सवत था १९७८।

तेरापथ म दीक्षित होने पश्चात् इन्होन शास्त्र अध्ययन किया। प्रखर बुद्धि तो थी ही, साथ ही चिंतन भी प्रौढ था। फलत मूर्तिपूजा, मुखवस्त्रिका, दया, दान आदि के सम्बन्ध म तरापथ सप्रदाय की मान्यताएँ इन्ह अशास्त्रीय लगी और तेरापथ सप्रदाय का त्याग कर सवत् १९८९ ज्येष्ठ सुदि तेरस के दिन अनूप शहर म गणनायक हरिसागरजी महाराज (जिनहरिसागरसूरिजी) के करकमला स भागवती दीक्षा अगीकार की। तभी स आप मुनि कान्तिसागरजी क नाम स प्रसिद्ध हुए।

आप प्रखर वक्ता थे। वाणी मे ओज था। श्रोताओ का मत्र मुग्ध करन की आप म कला थी। भाषणो म कुरान शरीफ, बाइबल, गीता और जैन साहित्य का पुट दते हुए सुदर प्रवचन दते थे। फलत आपकी ख्याति बढती ही गई।

आगम ज्ञान के अतिरिक्त आप सस्कृत, प्राकृत, हिंदी, गुजराती, मारवाडी का भी अच्छा ज्ञान रखते थे, साथ ही कवि भी थे। हिंदी और राजस्थानी भापा में आपन स्तवन साहित्य और रास साहित्य की कई रचनाएँ की हैं, जिनम से प्रमुख हैं —भजनारास, मयणरहारास, प्रतिभाप्रहार, पतीस बोल विवरण आदि।

आपका विचरण क्षत्र राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, उत्तरप्रदेश, बिहार, बगाल हरियाणा, जम्मू कश्मीर, मध्यप्रदश, कर्नाटक, केरल और तमिलनाडु रहा।

आपने अनेक स्थानो पर प्रतिष्ठाएँ करवाई। दादावाड़ियो का निर्माण करवाया। अनेको उपधान तप करवाये। नाकोडा तीर्थ जैसे क्षेत्र मे खरतरगच्छ का डका बजवाया। और, बाडमेर से शत्रुजय का जो पैदल यात्री सघ निकाला था, वह वास्तव मे वर्णनीय था। उस यात्रा मे एक हजार व्यक्ति थे। लगभग १०० वर्ष के इतिहास मे खरतरगच्छ के लिए यह पहला अवसर था कि इतनी दूरी का और इतने समूह का एक विशाल यात्री सघ निकला। आपने कई सस्थाये भी निर्माण की। खरतरगच्छ की वृद्धि के लिए आप सतत प्रयत्नशील रहते थे।

१३ जून १९८२ को जयपुर मे श्री सघ ने आपको आचार्य पद से विभूषित किया, तभी से आप जिनकान्तिसागर सूरि के नाम से विख्यात हुए।

सवत् २०४२ मिगसर वदि ७ को माण्डवला मे अकस्मात हृदय गति रुक जाने से आपका स्वर्गवास हो गया।

आपके शिष्यो मे गणि मणिप्रभसागरजी, मनोज्ञसागरजी, मुक्तिप्रभसागरजी, मुयशप्रभसागरजी, महिमाप्रभसागरजी, ललितप्रभसागरजी, चन्द्रप्रभसागरजी, आदि विद्यमान है। गणि मणिप्रभसागरजी अच्छे विद्वान है, व्यवहारपटु है, कार्य दक्ष है और खरतरगच्छ की सेवा मे सलग्न है। मुनि महिमाप्रभसागरजी अपने दो शिष्यो—ललितप्रभसागर और चन्द्रप्रभसागर को योग्य विद्वान बनाने मे प्रयत्नशील है।

२. श्रीजिनकृपाचन्द्रसूरिजी का समुदाय

नाकोडातीर्थ के सस्थापक और प्रतिष्ठापक आचार्य कीर्तिरत्नसूरि से उनके नाम पर एक परम्परा चली जो खरतरगच्छ की एक उपशाखा के रूप मे कीर्तिरत्नसूरि शाखा के नाम से प्रसिद्ध हुई। इसी परम्परा मे मूलत कृपाचन्द्रसूरि थे। इनका जन्म जोधपुर राज्य के चातु गाँव मे सं० १९१३ मे हुआ था। इनके पिता का नाम बाफना मेघराजजी था और माता का नाम था अमरा देवी। यतिवर्य मुक्तिअमृत के पास यति दीक्षा सन् १९३६ मे ग्रहण की थी। यति अवस्था मे रहते हुए जब उन्हे अनुभव हुआ कि हमारा आचार-व्यवहार शास्त्र युक्त नही है और यति वर्ग मे परम्परा के दुराग्रह को लेकर द्वन्द्व-युद्ध एव लट्ठालट्ठी देखी तो उन्होने क्रियोद्धार करने का निश्चय किया। यति अवस्था मे बीकानेर मे इनके पास प्रचुर सम्पत्ति थी। उस सब का त्यागकर क्रियोद्धार कर सविग्न साधु बने। आपने क्रियोद्धार करने के पश्चात खेरवाडा आदि स्थानो पर प्रतिष्ठाएँ करवाई। कच्छ मे उपधान तप करवाये। अनेक स्थानो से आपकी उपस्थिति मे सघ निकले और अनेक भव्य जीवो को प्रतिबोध देकर आपने साधु धर्म में दीक्षित किया।

सवत १९७२ मे आपका चातुर्मास बम्बई लालबाग मे था। उसी समय सघ ने बड़े महोत्सव के साथ इनको आचार्य पद पर अभिषिक्त किया। सूरिमंत्र श्री पूज्य श्री जिनचारित्रसूरिजी ने आपको प्रदान किया। सूरत मे जिनदत्तसूरि ज्ञान भडार की स्थापना की। सवत् १९८२ मे बाडमेर में एक दिन मे ही ४०० व्यक्तियो की मुँहपत्ती तुडवा कर जिन प्रतिमा के प्रति श्रद्धावान बनाया। जैसलमेर ज्ञान भंडार के अनेक ताडपत्रीय ग्रन्थो का जीर्णोद्धार करवाया। आपके उपदेशो से इन्दौर, सूरत, और बीकानेर आदि मे ज्ञान भडार, पाटशालाये एव कन्याशालाओ का निर्माण हुआ था। पालीताणा मे कल्याण भवन, चादभवन आदि धर्मशालाये तथा जिनदत्तसूरि ब्रह्मचर्याश्रम आदि सस्थाओ की स्थापनाओ मे मुख्य प्रेरणा स्रोत आप ही थे।

आप आगम साहित्य के धुरधर विद्वान थे। अनेक चातुर्मासो मे भगवती सूत्र का वाचन किया था। अनेक आगम कठाग्र थे। साधु समुदाय को आगमो की वाचना देते थे। आपने कल्पसूत्र, द्वादशपर्व व्याख्यान एव श्रीपालचरित्र आदि के हिंदी अनुवाद भी किये थे। आप अच्छे कवि भी थे। आपके द्वारा निर्मित गिरनार पूजा एव कृपाविनोद इसके प्रमाण हैं। जिनदत्तसूरि पुस्तकोद्धार फड से अनेक प्राचीन ग्रन्थो का प्रकाशन भी करवाया। आपने अनेक शिष्य प्रशिष्यो को दीक्षित किया था। आपकी उपस्थिति मे लगभग ३५ साधुओ का समुदाय था। आपका उत्कृष्ट चारित्रधर्म अन्य साधुओ के लिए सर्वदा अनुकरणीय रहा।

सवत १९९४ माघ सुदि ग्यारस के दिन पालीताणा मे आपका स्वर्गवास हुआ। उस समय आपका साधु साध्वी समुदाय ७० के लगभग था।

अनेक स्थानो पर आपकी प्रतिमाएँ स्थापित की गई थी।

(१) जिनजयसागरसूरि

श्रीजिनकृपाचन्द्रसूरि के आप पट्टधर आचार्य थे। इनका जन्म सवत १९४३ मे हुआ था। १९५६ मे दीक्षा ग्रहण की थी। सम्वत् १९७६ मे सूरत मे कृपाचन्द्रसूरिजी ने इनको उपाध्याय पद प्रदान किया था और सवत् १९९० मे कृपाचन्द्रसूरिजी ने ही अपने कर-कमलो से इनको आचार्य पद प्रदान किया था। आपके द्वारा निर्मित साहित्य मे जिनदत्तसूरि चरित्र दो भाग गणधरसार्धशतक भाषान्तर, जिनकृपाचन्द्रसूरि चरित्र (सस्कृत) आदि प्राप्त हैं। सिद्धान्तो के प्रौढ विद्वान थे। इनका जीवन पूर्णरूपेण विशुद्ध था और दृढ सयमी थे तथा ठाम चौविहार करते थे। अनेक स्थानो पर आपने प्रतिष्ठाए करवाईं थी। आपके ग्रन्थो का सग्रह गढसिवाना की दादावाडी में सुरक्षित है। बीकानेर मे आपका स्वर्गवास हुआ।

(२) उपाध्याय सुखसागरजी

श्रीजिनकृपाचन्द्रसूरि के प्रमुख शिष्यो मे आपकी गणना है। आप मूलत इन्दौर के निवासी थे और मराठा जाति के थे। सेठ कानमलजी के परिचय मे आने के बाद इन्होने कच्छ मे जाकर दीक्षा ग्रहण की थी। श्रीजिनकृपाचन्द्रसूरि ने ही इन्दौर मे आपको प्रवर्तक पद प्रदान किया था। १९९२ मे आपको उपाध्याय पद प्राप्त हुआ था। अनेक जगह आपने प्रतिष्ठाएँ करवाई, उपधान तप करवाये और आपके गुरुश्री ने जो साहित्य प्रकाशन का कार्य प्रारम्भ किया था उसे वेग के साथ आगे बढाया और पचासो प्राचीन ग्रन्थ प्रकाशित करवाये। गुजरात कच्छ, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, बिहार एव बगाल प्रदेश और उत्तर प्रदेश मे विचरण कर, चातुर्मास कर शासन की महती प्रभावना की।

सवत् २०२४ वैशाख सुदि नवमी को पालीताणा मे आपका स्वर्गवास हुआ। आपके प्रमुख शिष्य थे मुनि मगलसागर जी और मुनि कान्तिसागरजी।

(३) मुनि कान्तिसागरजी

उपाध्याय सुखसागरजी के लघु शिष्य मुनि कान्तिसागरजी थे। मूलत ये जामनगर के निवासी थे और जैनेतर कुल मे उत्पन्न हुए थे। सवत् १९९२ मे इन्होने दीक्षा ग्रहण की थी।

ये प्रतिभा के धनी और सिद्धहस्त लेखक थे। लेखन के साथ वक्तृत्व कला पर भी आपका पूर्ण अधिकार था। आपकी लिखित 'खण्डहरों का वैभव' और "खोज की पगडंडियाँ" ये दो पुस्तकें तो संस्कृति एवं कला की दृष्टि से अद्वितीय हैं। पुरातत्व और कला के भी आप अधिकारी विद्वान् थे। जैन धातु प्रतिमा लेख, नगरवर्णनात्मक हिन्दी पद्य संग्रह, आयुर्वेदना अनुभूत प्रयोगों और सर्वज्ञों आदि आपकी कृतियाँ प्रकाशित हुईं। नागदा और एकलिंग जी पर आपने विस्तृत शोधपूर्ण पुस्तक लिखी थी, वह आपके स्वर्गवास के पश्चात् अन्धकार की गुफा में विलीन हो गई।

आपका जीवन संघर्षपूर्ण रहा और अनेक विकट परिस्थितियों का आपको सामना करना पड़ा। २८ सितम्बर १९६९ को आपका जयपुर में स्वर्गवास हुआ।

संवत् १९९४ के आसपास कृपाचन्द्रसूरिजी के समुदाय में लगभग ७० साध्वियाँ थीं, किन्तु खेद है कि आज इस समुदाय का एक भी साधु विद्यमान नहीं है और जो कुछ १५-२० साध्वियाँ शेष हैं वे मोहनलालजी म० की परम्परा के जयानन्दमुनिजी की निश्रा में संयम पालन कर रही हैं।

३. श्रीमोहनलालजी म० का समुदाय

श्री मोहनलालजी महाराज का नाम आज भी तपागच्छ और खरतरगच्छ में परम सम्मान और श्रद्धा के साथ लिया जाता है। ये मूलतः नागौर निवासी यतिवर्य ऋद्धिशेखर (रूपचन्दजी) के शिष्य थे। इनकी यति परम्परा में पूर्वज कीर्तिवर्धन (कर्मचन्दजी) जिनसुखसूरि के शिष्य थे। इनका मूल नाम मोहनलाल था। संवत् १९०० ज्येष्ठ सुदि तेरस को जिनमहेन्द्रसूरि के कर-कमलों से इनकी दीक्षा हुई थी। दीक्षा नाम मानोदय था।

मूलतः ये मथुरा के निकट चन्द्रपुर ग्राम के निवासी थे। सनाढ्य ब्राह्मण बादरमलजी के पुत्र थे और इनकी माता का नाम सुन्दरबाई था। संवत् १८९४ में इनके मातापिता ने नागौर आकर यतिवर्य रूपचन्दजी को समर्पित कर दिया था। यतिजी के पास रहकर ही विद्याभ्यास किया था। संवत् १९३० में अजमेर में क्रियोद्धार कर कठिन साध्वाचार का पालन करने लगे। संविग्न साधु बनने के बाद इन्होंने मारवाड, गुजरात, सौराष्ट्र आदि अनेक स्थानों पर विचरण कर चातुर्मास किये। १९४९ में शत्रुञ्जयतीर्थ की तलहटी में मुर्शिदाबाद निवासी रायबहादुर धनपतसिंह दूगड द्वारा धनवसही की आप ही ने प्रतिष्ठा करवाई। बम्बई में सर्वप्रथम आप ही पधारे थे। इससे पूर्व कोई भी संविग्न साधु वहाँ नहीं गया था। तत्पश्चात् तो बम्बई क्षेत्र साधुओं के लिए खुल गया और सर्वदा नियमित रूप से साधुओं के वहाँ चातु-र्मास होने लगे।

आप बड़े समदर्शी थे। गच्छ का आग्रह आपकी दृष्टि में नगण्य था। यही कारण है कि आपने अपने विशाल शिष्य समुदाय को सहज भाव से यह स्वीकृति दे दी थी कि जो जिस गच्छ की भी क्रिया करना चाहे प्रसन्नता से कर सकता है। यही कारण है कि आपकी शिष्य परम्परा दो भागों में विभक्त हो गई—एक खरतरगच्छ की क्रिया करने वाले और दूसरी तपागच्छ की क्रिया करने वाले।

आप बड़े तेजस्वी, शान्तस्वभावी, निर्मल चारित्र के धारक थे। बम्बई आदि में आपका अत्यधिक प्रभाव रहा। आज भी गुजरात और बम्बई आदि में सैकड़ों धर्मस्थानों पर मोहनलालजी महाराज के फोटो प्राप्त होते हैं। साधु समुदाय में सर्वप्रथम यही आचार्य बने। सम्वत् १९६४ वैशाख वदी चौदस को सूरतनगर में आपका स्वर्गवास हुआ।

(१) जिनयशःसूरि

वचनसिद्ध मोहनलालजी महाराज की खरतरगच्छ परम्परा में जिनयशःसूरिजी पहले आचार्य थे।

इनका जन्म सम्वत् १६१२ में जोधपुर के साड गोत्रीय पूनमचन्द जी की धर्मपत्नी मागीबाई की कुक्षि से हुआ था। इनका जन्म नाम जेठमल था। पिता के स्वर्गवास हो जाने पर अहमदाबाद जाकर ये नौकरी करने लगे। श्री जीतविजयजी म० के प्रयत्न से परामवा ग्राम (कच्छ) में जाकर धर्माध्यापक का कार्य करने लगे। १५ वर्ष पश्चात् जब वे कच्छ से जोधपुर लौटे, उस समय अपनी माता को जिनप्रतिमा के प्रति श्रद्धालु बनाया। जोधपुर में ही इन्होंने ५१ दिन की दीर्घ तपस्या की, जिसका पारणा दीवान कुन्दनमलजी ने अपने घर ले जाकर करवाया था।

सम्वत् १६४१ जेठ सुदी पाचम को आपने मोहनलालजी महाराज के पास दीक्षा ग्रहण की। उस समय आपका नाम यश मुनि रखा गया। सम्वत् १६५४ से ५६ तक पन्यास दयाविमलजी के पास ४५ आगमों का योगोद्वहन किया और पन्यास पद प्राप्त किया। १६५७-५८ में सूरत व बम्बई चातुर्मास कर आपने हर्ष मुनिजी को पन्यास पद दिया था जो कि बाद में तपागच्छ परम्परा में चले गये थे। अनेक स्थानों पर विचरण कर आपने शासन की महती प्रभावना की। ऋद्धिमुनि, रत्नमुनि, लब्धिमुनि आदि को आपने ही दीक्षा प्रदान की थी। सं० १६६८ में गुमानमुनि ऋद्धिमुनि केसर मुनि को आपने पन्यास पद दिया था। अनेक तीर्थों की यात्राएँ की थी। सम्वत् १६६६ ज्येष्ठ सुदी छठ के दिन आपको आचार्य पद प्रदान किया गया था। आप दीर्घ और उग्र तपस्वी थे। सम्वत् १६७० मिगसर सुदी तीज को पावापुरी में आपका स्वर्गवास हुआ।

(२) जिनऋद्धिसूरि

चुरू के यतिवर्य श्री चिमनीरामजी के आप शिष्य थे। रामकुमार आपका नाम था और आप जाति से ब्राह्मण थे। वैराग्यवासित मन होने के कारण गद्दी की जजाल में नहीं पडे और वहा से चल कर नाल दादाजी के दर्शन किये और एक यतिजी के साथ गिरनार और सिद्धाचल तीर्थ की यात्रा की। सम्वत् १६४१ आषाढ सुदी छठ को मोहनलालजी महाराज के पास दीक्षा ली और रामकुमार से ऋद्धि-मुनि बने। यशमुनिजी के शिष्य कहलाये। योगोद्वहन के पश्चात् सम्वत् १६६६ मिगसर सुदी तीज को ग्वालियर में यशमुनिजी ने आपको पन्यास पद प्रदान किया। सम्वत् १६६५ में बम्बई में आचार्य पद प्राप्त कर जिनयश सूरिजी के पट्टधर के रूप में विख्यात हुए। सम्वत् १६६७ में रत्नमुनिजी को आचार्य पद देकर जिनरत्नसूरि बनाया और लब्धिमुनिजी को उपाध्याय पद से अलकृत किया।

आप बडे सरल और शात स्वभावी थे निश्छल हृदयी थे और साधनारत रहते थे। घण्टाकर्ण महावीर का आपको इष्ट था। स्थान-स्थान पर जैन शासन की प्रभावना के अनेक कार्य किये। अनेक मन्दिरों एव मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवायी। कई सघो के वैमनस्य को दूर करने में सफल हुए थे। कई जगह जैन बोर्डिंग स्थापित करवाये थे और कई स्थानों पर आयम्बिल खाते खुलवाये थे।

थाणा में श्रीपाल चरित्र के कलापूर्ण भित्ति चित्रों के साथ भव्य एव विशाल जिनमन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई थी। अनेक नवीन उपाश्रय बनवाए थे। कई मन्दिरों के जीर्णोद्धार आपके उपदेश से हुए थे। बोरीवली का सभवनाथ मन्दिर का निर्माण भी आप ही के उपदेश से प्रारम्भ हुआ था। घण्टाकर्ण महावीर का इष्ट होने के कारण स्थान-स्थान पर घण्टाकर्ण महावीर की मूर्तियाँ स्थापित करवाई। स० २००८ में आपका स्वर्गवास हुआ था। आपके मुख्य शिष्य थे गुणवमुनि और प्रशिष्य थे महोदयमुनि। दोनों का ही स्वर्गवास हो चुका है। आपके सम्बन्ध में उपाध्याय लब्धिमुनिजी ने सस्कृत भाषा में 'जिन-ऋद्धिसूरि चरित' लिखा है जो अभी तक अप्रकाशित है।

(३) जिनरत्नसूरि

आपका जन्म संवत् १९३८ मे लायजा मे हुआ था। जन्म नाम देवजी था। बाल्यावस्था में ही बम्बई आकर अपने पिता की दुकान मे सहयोगी बनकर काम कर रहे थे। इधर बम्बई मे मोहनलालजी महाराज का चातुर्मास होने से देवजी भाई अपने मित्र लधाभाई के साथ प्रतिदिन व्याख्यान सुनने के लिए जाते थे। प्रतिबोध पाकर दोनो ने दीक्षा ग्रहण करने की इच्छा प्रकट की। मोहनलालजी महाराज ने इन दोनो को राजमुनिजी के पास रेवदर भेज दिया। राजमुनिजी ने इन दोनो को सवत् १९५८ चैत्र वदी तीज को भागवती दीक्षा दी। देवजी भाई का नाम रत्नमुनि रखा और लधाभाई का नाम लब्धिमुनि रखा। यशमुनिजी के पास मे इन्होने योगोद्वहन किया और गणि पद को प्राप्त किया। जिनऋद्धिसूरिजी ने सवत् १९९७ मे बम्बई मे आपको आचार्य पद प्रदान कर जिनरत्नसूरि नाम रखा।

आप बडे धीर प्रकृति के श्रमण थे, सयममार्ग मे दृढ थे और आपने राजस्थान, मालवा, गुजरात, कच्छ, महाराष्ट्र आदि अनेक स्थानो पर भ्रमण कर कई विशिष्ट धार्मिक कार्य सम्पन्न करवाये। आपके वरदाहस्तो से अनेक जिनमन्दिरो की प्रतिष्ठाएँ हुई, अजनशलाकाएँ हुई, उपधान तप हुए। कई स्थानो पर नवीन दादाबाडियाँ निर्माण करवाई। कई दादाबाडियो के जीर्णोद्धार करवाये। अनेक स्थलो पर गुरुदेव के चरणो की प्रतिष्ठा करवाई और अनेक उपाश्रयो का जीर्णोद्धार करवाया।

आपने कई भव्य आत्माओ को सयमपथ पर आरूढ किया था। गणि श्री प्रेममुनिजी, मुक्तिमुनिजी, भद्रमुनिजी आदि प्रमुख शिष्य थे। भद्रमुनिजी ही आत्मपथिक बनने के पश्चात् योगीराज सहजानन्दजी के नाम से प्रसिद्ध हुए थे। संवत् २०११ माघ सुदी प्रतिपदा को अजार मे आपका स्वर्गवास हुआ।

आपके बचपन के साथी और दीक्षा मे भी साथी लब्धिमुनिजी उपाध्याय आशु कवि थे। सस्कृत मे इन्होने कई चरित्र काव्य और कई ग्रन्थ लिखे है जिनमे चारो दादाओ के जीवन चरित्र, जिनरत्नसूरि चरित्र, जिनयश सूरि चरित्र, जिनऋद्धिसूरि चरित्र, द्वादश पर्व कथा, सुसढचरित्र एव स्तुति स्तोत्रादि प्रमुख है। आपका संवत् २०२३ मे आसम्बिया मे स्वर्गवास हुआ।

(४) गणिवर्य श्री बुद्धिमुनिजी

आपका जन्म जोधपुर क्षेत्र के गंगाणी तीर्थ के निकट बिलारे गाँव मे हुआ था। जन्मत आप चौधरी (जाट) वश के थे। पन्यास श्रीकेसरमुनिजी का सुसयोग मिलने के कारण सवत् १९६३ मे ९ वर्ष की अल्प आयु में ही दीक्षा ग्रहण की। जन्म नाम नवल था और आपका दीक्षा नाम हुआ बुद्धिमुनि। सं० १९९५ मे जिनरत्नसूरिजी ने आपको गणि पद से विभूपित किया था।

आप उत्कृष्ट साध्वाचार के पालक थे, कठोर नियमो एवं अनुशासन मे रहना इनको अधिक प्रिय था। सस्कृत और प्राकृत भाषा के उद्भट विद्वान् थे। रात-दिवस साहित्यसाधना मे व्यतीत करना ही इनका मुख्य व्यसन था। अनेको ग्रन्थो का आपने सम्पादन किया था और अनेक चर्चात्मक पुस्तको का लेखन भी किया था। तपस्वी भी थे। अनेक स्थानो पर जिनमन्दिरो, जिनप्रतिमाओ, गुरुचरणो आदि की प्रतिष्ठाएँ करवाई थी। कई उद्यापन आपकी अध्यक्षता में हुए थे। अन्तिम अवस्था मे आप अत्यधिक रुग्ण रहे तथापि तनिक भी साध्वाचार के नियमो का उल्लघन नही किया और एक मिनट भी व्यर्थ न खोकर छोटे-मोटे ग्रन्थो का संपादन करते रहे। सं० २०१८ श्रावण सुदी अष्टमी को आपका स्वर्गवास हुआ। आपके शिष्यो मे मुनि जयानन्दजी म० विद्यमान है जो अपने शिष्य मुनि कुशाल मुनि जी के साथ विचरण कर रहे है। ये विद्वान व क्रियापात्र मुनि है। एक राजेन्द्रमुनि जी (जिनरत्नसूरि शिष्य) भी हैं जो वृद्धावस्था में होने से ठाणापति है।

□ *सन्तोष विनयसागर जैन*

सुखसागरजी महाराज के समुदाय की साध्वी परम्परा का परिचय

जिस प्रकार शिथिलाचार परिहारी क्रियोद्धारक संविग्न साधु परम्परा का प्रारम्भ १६वीं शताब्दी में उपाध्याय प्रीतिसागर गणि से मानकर उनकी परम्परा का इतिवृत्त दिया है/परिचय दिया है। उसी प्रकार साध्वी वर्ग ने भी इन मुनि वृन्दों के साथ क्रियोद्धार अवश्य किया होगा, किन्तु इसका कोई प्रामाणिक उल्लेख प्राप्त नहीं है। क्रियोद्धारिका के रूप में सर्वप्रथम १६वीं शताब्दी में उद्योतश्रीजी का ही नाम प्राप्त होता है। वर्तमान में समुदाय की परम्परा भी उद्योतश्रीजी की ही शिष्या परम्परा है अतः उद्योतश्रीजी से ही परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

(१) उद्योतश्रीजी

इनका निवास स्थान फलोदी था। नाम नानीबाई था। बाल्यावस्था में ही फलोदी के ही रतनचन्दजी गोलेछा के साथ विवाह हुआ था। अशुभकर्मोदय के कारण इनके पति का स्वर्गवास हो गया। वैधव्य जीवन बिता रही थीं। पति के अचानक स्वर्गवास से मन संसार से विरक्त हो गया था। इन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि 'मक्सी तीर्थ की यात्रा करने के पश्चात् घी का प्रयोग करूँगी।' तीर्थ यात्रा हेतु ही जोधपुर आई। वहीं संयोग से राजसागरजी महाराज की शिष्या रूपश्री जी से इनका मिलन हुआ और इनकी विरक्त भावना जागृत हो गई। तीन पुत्र, पाच पौत्र और तीन पौत्रियाँ आदि परिवार के स्नेह बंधन से मुक्त होकर सम्वत् १६१८ के माघ सुदी पाँचम को राजश्री जी के पास दीक्षा ग्रहण की, नाम उद्योत श्री रखा गया। सम्वत् १६१६ का जोधपुर, सम्वत् १६२० का अजमेर, १६२१ का किशनगढ और १६२२ का चातुर्मास फलोदी में किया। फलोदी में ही इन्हें सद्गुरु का सहयोग मिला। सद्गुरु थे क्रियोद्धारक सुखसागरजी। सुखसागर जी की उत्कृष्ट क्रिया पात्रता देखकर उद्योतश्री जी ने भी क्रियोद्धार किया और उनकी आज्ञानुयायिनी बन गई।

दीक्षा के पश्चात् भी कई वर्षों तक पूर्वगृहीत अभिग्रह पूर्ण नहीं हुआ था, तब तक आपने घृत का प्रयोग नहीं किया था। कई वर्षों बाद मक्सी तीर्थ की यात्रा सानन्द की और इनका अभिग्रह पूर्ण हुआ। इन्होंने ४ साध्वियों को दीक्षा देकर अपने साध्वी समुदाय की वृद्धि की। चारों साध्वियाँ थीं—धनश्री, लक्ष्मीश्री, मगनश्री और पुण्यश्री। लक्ष्मीश्री जी को संवत् १६२४ में और मगनश्री जी को संवत् १६३० में दीक्षा प्रदान की थी।

साध्वियो को शिक्षा-दीक्षा देती हुई अनेक स्थानो पर विचरण करती रही। सवत् १९४० के बाद ही फलोदी में ही आपका स्वर्गवास हुआ।

इनकी शिष्याओ लक्ष्मीश्री जी और शिवश्रीजी की शिष्याओ मे अत्यधिक मात्रा मे वृद्धि होने के कारण उद्योतश्री जी की परम्परा दो भागो मे विभक्त हो गई। एक लक्ष्मीश्री जी की परम्परा और दूसरी शिवश्री जी की परम्परा।

(२) प्रवर्तिनी लक्ष्मीश्रीजी

इनका निवास स्थान फलोदी था। जीतमल जी गोलेछा की सुपुत्री थी और कनीरामजी श्रावक के पुत्र सरदारमलजी की पत्नी थी। इनका नाम लक्ष्मीवाई था। वालविधवा हो जाने से आपकी भावना वैराग्य की ओर अग्रसर हुई। मुखसागर जी महाराज की देशना से प्रतिवोध पाकर संवत् १९२४ मिगसर वदी १० को दीक्षा ग्रहण की। दीक्षानन्तर सवत् १९२५ का जयपुर, १९२६ का फलोदी, १९२७ का वीकानेर और १९२८ का पाटण मे चातुर्मास किया। पाटण से शत्रुंजय तीर्थ की यात्रा कर १९२९ का चातुर्मास अहमदावाद किया और १९३० का चातुर्मास नागोर मे किया। इन्होने अनेक महिलाओ को दीक्षा दी थी। सवत् १९३१ में पुण्यश्री को दीक्षा दी थी। आप कव तक विद्यमान रही, कव स्वर्गवास हुआ और कहाँ हुआ? इसका कोई उल्लेख प्राप्त नही है।

(३) प्रवर्तिनी पुण्यश्री जी

जैसलमेर के निकट गिरासर नामक गाँव मे पारख गोत्रीय जोतमलजी रहते थे। उनकी धर्म-पत्नी का नाम कुन्दनदेवी था। दो लड़के और एक लडकी के पश्चात् जव कुन्दनदेवी ने गर्भधारण किया तो सिंह का स्वप्न देखा था। सवत् १९१५ वैशाख सुदी छठ को कुन्दनदेवी ने वालिका को जन्म दिया, नाम रखा पन्नीवाई। ११ वर्ष की उम्र में ही विवाह की वातचीत चली, पन्नीवाई ने अपनी माँ से स्पष्ट शब्दो में कहा कि 'मैं दीक्षा लेना चाहती हूँ विवाह करना नही।' पिता के समक्ष पन्नीवाई की न चली और सवत् १९२७ आषाढ वदी ७ को फलोदी निवासी दौलतचन्द श्रावक के साथ विवाह हुआ। किन्तु, यह सौभाग्य अधिक दिनो तक न रह सका और विवाह के १८ दिन पश्चात् ही पन्नीवाई को दुर्दैव से वैधव्य जीवन स्वीकार करना पड़ा। तदनन्तर अपनी वड़ी वहन मूनीवाई के साथ आकर फलोदी रहने लगी और कस्तूरचन्द जी लूणीया के पास से धार्मिक संस्कार प्राप्त करने लगी। विवाह के पूर्व ही दीक्षा की भावना थी, वह भावना अव वेग पकड़ने लगी। पितृपक्ष और श्वसुरपक्ष ने दीक्षा की आज्ञा न दी। पन्नीवाई ने आज्ञा हेतु अन्न-पानी का त्याग कर दिया। वड़ी कठिनता मे दीक्षा की अनुमति प्राप्त हुई और सवत् १९३१ वैशाख सुदी ११ को फलोदी मे ही महोत्सव के साथ गणनायक सुखसागरजी महाराज के हाथो पुनीत दीक्षा ग्रहण कर लक्ष्मीश्रीजी की शिष्या वनी और इनका नाम रखा गया पुण्यश्री।

सवत् १९३१ से लेकर १९७६ तक ४५ वर्ष पर्यन्त स्थान-स्थान पर विचरण करती हुई, धर्मोपदेश देती हुई शासन की सेवा और खरतरगच्छ की वृद्धि मे सतत् सलग्न रही।

इनकी दैदीप्यमान आकृति थी, आँखो में तेज था, वाणी मे ओज और माधुर्य। गुरुजनो के पास रहकर आगम साहित्य आदि का अच्छा अध्ययन किया था। व्याख्यान शैली भी रसोत्पादक थी। यही कारण है कि आपके उपदेशो से अनेक भव्य महिलाओ ने दीक्षा ग्रहण की। सर्वप्रथम सवत् १९३६ में फलोदी मे दो को दीक्षाएँ देकर अपनी शिष्याएँ वनाई थी। वे थी—अमरश्री और शृंगार-श्री। संवत् १९३६ से लेकर १९७६ तक के काल मे आपकी निश्रा मे ११६ दीक्षाएं विभिन्न स्थानो पर हुई और वे भी वडे महोत्सव के साथ। इन ११६ दीक्षाओ मे से ४९ तो इन्ही की शिष्याएँ थी और

पच प्रवर्तिनी

पुण्यशालिना श्रा पुण्यश्रा जा महाराज

प्रवर्तिना सुवर्णश्री जी महाराज

प्रवर्तिना ज्ञानश्रा जा महाराज

प्रवतिनी विचक्षणश्रा जा महाराज

प्रवतिना सज्जनश्रा जा महाराज

शेष अपनी शिष्याओ की और प्रशिष्याओ की शिष्याएँ बनी थी। गणनायक सुखसागरजी महाराज का वह स्वप्न कि "कुछ बछडा के साथ गाया का झुण्ड देखा" वह पुण्यश्री के समय म साकार रूप ले गया।

सुखसागरजी महाराज के समुदाय के साधुओ की वृद्धि के लिए भी ये सतत् प्रयत्नशील रही और अनेका को साधुमार्ग की ओर आकर्षित कर दीक्षाएँ दिलवाकर खरतरगच्छ की अभिवृद्धि म अपना एक विशिष्ट स्थान बनाया। महातपस्वी छगनसागरजी भी आपकी ही प्रेरणा से सवत १९८३ मे दीक्षित हुए। महोपाध्याय सुमतिसागरजी भी जिनका नाम सुजानमल रेखावत था, नागोर निवासी थे, आपकी ही प्ररणा से उन्होने भी स १९४४ वशाख सुदी ८ को सिरोही म भगवानसागरजी महाराज के पास दीक्षा ग्रहण की थी। अपने भाई चुन्नीलाल को भी प्रेरित कर सवत् १९५३ मे पाटण म दीक्षा दिलवाई थी, जो कि बाद म गणनायक त्रैलोक्यसागरजी बन थे। पूर्णसागरजी और क्षेमसागरजी भी आपकी प्रेरणा स ही सवत् १९६३ मे दीक्षित हुये। यादवसिंह कोठारी भी प्रज्ञानश्रीजी के प्रयत्नो और पुण्यश्रीजी की प्रेरणा से ही सवत् १९६८ म रतलाम म दीक्षित हुए थे, यही भविष्य मे वीर पुत्र आनन्द सागरजी/जिनानन्दसागरजी बने थे।

आर्यारत्न पुण्यश्री जी का जसा नाम था वैस ही पुण्य की पुज थी, गुणधारक थी। इनके कार्यकाल म जो विशिष्ट धार्मिक कृत्य सम्पन्न हुए उनकी तालिका इस प्रकार है —

स १९३७ म नागौर के सघ के साथ इन्होंने केसरियाजी की यात्रा की। १९४० म फलोदी म मदिर पर कलशारोपण व उद्यापन हुआ। १९४० म कुचेरा म जिनमदिर के ताले लग गये थे, काँटो की बाड लगा दी गई थी उसका निवारण कर वहाँ सत्ताधिक कुटुम्बो को मदिरमार्गी बनाया था। १९४४ म नागोर स सघ के साथ मक्सुजी तीर्थ की यात्रा की थी। मार्ग मे जगल म एक अश्वारोही ने शृगारश्री को लावण्यवती देखकर अपनी वासना का शिकार बनाना चाहा। उस समय पुण्यश्रीजी न कडकती आवाज म उसको अनिष्ट की ओर सकेत किया। उसको दिखाई देने बद हो गया, फलत उसन क्षमा याचना की और भविष्य के लिए कुवासनाओ से बचने की प्रतिज्ञा की। उसे पुन दिखाई दने लगा। सवत् १९४८ म फलोदी म नवनिर्मापित आदिनाथ मदिर की प्रतिष्ठा हुई। प्रतिष्ठाकारक थे श्री ऋद्धिसागरजी महाराज। इस प्रतिष्ठा अवसर पर भगवानसागरजी, सुमतिसागरजी, छगनसागरजी आदि भी विद्यमान थ। सवत् १९४८ में फलोदी म ही ऋद्धिसागर जी महाराज के पास से पुण्यश्रीजी न भगवती सूत्र की वाचना ग्रहण की। सवत् १९५१ म जसलमेर की यात्रा की। १९५१ ५२ म खीचन के मूल निवासी तत्कालीन लश्कर-ग्वालियर नरेश के कोषाध्यक्ष सेठ नथमलजी गोलच्छा न सिद्धाचल का सघ निकालन का निर्णय किया और पुण्यश्रीजी से विनती की। इसी सघ के साथ इन्होन सिद्धाचल की यात्रा की। सघ की अध्यक्षा थी सेठ नथमलजी की बहन जवाहरबाई। सवत् १९५६ में केसरियाजी की यात्रा की। स० १९६३ म कालिन्द्री के सघ म जो वमनस्य था उसे समाप्त करवाया। १९६८ म रतलाम म दीवान बहादुर सेठ केसरीसिंहजी बाफना न विशाल व दर्शनीय उद्यापन महोत्सव करवाया था। इस उत्सव म यशमुनिजी महाराज (जिनयशसूरिजी) उपस्थित थे। १९६५ म मक्सी तीर्थ की यात्रा की। १९६६ में इन्दौर निवासी सेठ पूनमचद सामसुखा न माण्डवगढ का सघ निकाला था। १९६६ में रघुनाथपुर के जागीरदार कुवर भानुप्रतापसिंह एव ठकुरानी को उपदेश देकर मांस का त्याग करवाया था। १९६६ म ग्वालियर नरेश को भी उपदेश दिया था और राजमाता महारानियो को पत्र तिथि पर मद्य मास का त्याग करवाया था।

१९७० से १९७८ के चातुर्मास आपने जयपुर में ही हुए। अन्तिम अवस्था में आप जयपुर आई। जयपुर का पानी आपको लग गया। परन्तु असाध्य

रहने लगी, शरीर व्याधिग्रस्त और जर्जर हो गया। धर्माराधन और शास्त्रश्रवण करती हुई संवत् १९७६ फाल्गुन सुदी १० को जयपुर मे ही आप स्वर्गवासिनी हुई। मोहनवाडी मे आपका दाह-संस्कार किया गया। और वहीं शिवजीरामजी महाराज की छतरी के पास आपकी छतरी बनाकर चरण पादुका स्थापित की गई।

आपकी स्वहस्त दीक्षित शिष्याओं में से महत्तरा वयोवृद्धा चम्पाश्रीजी का १०५ की अवस्था मे इसी वर्ष स्वर्गवास हुआ है। और प्रशिष्याओ मे वयोवृद्धा रतिश्रीजी आदि अभी विद्यमान है। आपकी साध्वीपरम्परा मे आज भी ९० और १०० के भीतर शिष्याएँ विद्यमान है, धर्म प्रभावना करती हुई शासन की सेवा कर रही हैं।

(४) प्रवर्तिनी सुवर्णश्रीजी

प्रवर्तिनी पुण्यश्रीजी के स्वर्गवास के पश्चात् उन्ही के निर्देशानुसार प्रवर्तिनी सुवर्णश्रीजी हुई। ये अहमदनगर निवासी सेठ योगीदास जी बोहरा की पुत्री थी। माता का नाम दुर्गादेवी था। इनका जन्म संवत् १९२७ ज्येष्ठ वदी १२ के दिन हुआ था। सुन्दरबाई नाम रखा गया था। ११ वर्ष की अवस्था मे संवत् १९३८ माघ सुदी ३ के दिन नागोर निवासी प्रतापचन्दजी भंडारी के साथ इनका शुभ विवाह हुआ। संवत् १९४५ मे पुण्यश्रीजी के सम्पर्क से वैराग्यभावना जागृत हुई। बडी कठिनता से अपने पति से दीक्षा की आज्ञा प्राप्त कर संवत् १९४६ मिगसर सुदी ५ को दीक्षा ग्रहण की। केसरश्रीजी की शिष्या बनी अर्थात् पुण्यश्रीजी के प्रपौत्र शिष्या बनी। साध्वी अवस्था मे नाम रखा गया सुवर्णश्री। बडी तपस्विनी थी। निरन्तर तपस्या करती रहती थी। घण्टो तक ध्यानावस्था मे रहा करती थी। अनेक वर्षो तक पुण्यश्रीजी महाराज के साथ ही रह कर उनकी सेवा शुश्रूषा मे लगी रहती थी। २२वाँ चौमासा अपनी जन्मभूमि अहमदनगर मे किया था। वहाँ से चौवीसवाँ चौमासा बम्बई मे किया था।

पुण्यश्रीजी के सान्निध्य में सुवर्णश्रीजी की दीक्षा बारहवें नम्बर पर हुई थी। इनके दीक्षित होने के पश्चात् साध्वियों की दीक्षाओ में अत्यधिक वृद्धि हुई। संवत् १९९१ तक यह संख्या लगभग १४० को पार कर गई। पुण्यश्रीजी का यह मानना था कि इस सुवर्ण के आने से यह वंश वृद्धि वेग से हुई। पुण्यश्रीजी का इन पर अत्यधिक स्नेह था। स्वर्गवास के पूर्व इन्ही को गणनायिका के रूप मे घोषित किया था। संवत् १९७६ से सुवर्णश्रीजी ने प्रवर्तिनी पद का भार सकुशलता के साथ निर्वाह किया। इनकी स्वयं की १८ शिष्याएँ थी, प्रशिष्याएँ आदि भी बहुत रही।

आपके समय मे जो विशिष्ट धार्मिक कृत्य हुए उनकी सूची इस प्रकार है—

हापुड़ मे मोतीलालजी सुराणा द्वारा नवमंदिर का निर्माण हुआ। आगरा मे दानवीर सेठ लक्ष्मीचन्दजी वेद ने बेलनगंज मे भव्य मन्दिर व विशाल धर्मशाला बनाई। सौरीपुर तीर्थ का उद्धार करवाया। महिला समाज की उन्नति हेतु दिल्ली में साप्ताहिक स्त्री सभा प्रारम्भ की। संवत् १९८४ कार्तिक सुदी ५ के दिन जयपुर मे धूपियो की धर्मशाला मे श्राविकाश्रम की स्थापना की। जो राजरूपजी टांक आदि के सतत् प्रयत्नो से वीर बालिका महाविद्यालय के रूप मे विद्यमान है। बीकानेर मे बीस स्थानक उद्यापन महोत्सव करवाया।

अन्तिम अवस्था मे साध्वी समुदाय की प्रवर्तिनी का पद भार अपने हाथो से ज्ञानश्रीजी को प्रवर्तिनी बनाकर सौंपा।

संवत् १९८९ माघ वदी ९ को बीकानेर मे इनका स्वर्गवास हुआ। रेलदादाजी मे इनका दाह-संस्कार किया गया और वहाँ स्वर्ण समाधि स्थल स्थापित किया गया।

(५) प्रवर्तिनी ज्ञानश्रीजी

प्रवर्तिनी स्वर्णश्रीजी के स्वर्गवास के पश्चात्

...मानश्रीजी प्रवर्तिनी हुई। इनका जन्म सम्वत् १९४२ कार्तिक वदी १३ के दिन फलोदी में हुआ था। इनका नाम था गीताकुमारी। केवलचंदजी गोलेछा की ये सुपुत्री थीं। मारवाड़ की पुरानी परम्परा के अनुसार गीता/गोथा का विवाह नौ वर्ष की अवस्था में ही भीकमचन्दजी वैद के साथ कर दिया था। दुर्भाग्य से एक वर्ष में ही भीकमचन्दजी वैद का स्वर्गवास हो गया और आप बाल विधवा हो गईं। साध्वी रत्नश्रीजी के सम्पर्क से वैराग्य का बीज पनपा और आखिर में सवत् १९५५ पौष सुदी ७ को गणनायक भगवानसागरजी तपस्वी छगनसागरजी त्रैलोक्यसागरजी की उपस्थिति में फलोदी में ही इनकी दीक्षा हुई। पुण्यश्रीजी की शिष्या घोषित कर मानश्री नामकरण किया।

इन्होंने ८० वर्ष तक विभिन्न प्रांतों—मारवाड़, मेवाड़, मालवा, गुजरात, काठियावाड़ आदि में विचरण कर धर्म का प्रचार किया। शत्रुंजय, गिरनार, आबू, तारंगा, खम्भात, धूलेवा, माण्डवगढ़, मांगी और हस्तिनापुर आदि तीर्थों की यात्राएँ कीं। सम्वत् १९८६ में इन्हें प्रवर्तिनी पद दिया गया। तब से पुण्यश्री महाराज के समुदाय का सफलतापूर्वक नेतृत्व करती रहीं। आपने अनेकों को शिक्षाएँ प्रदान कीं। जिनमें पूज्य सज्जनश्रीजी आदि ११ शिष्याएँ हुईं। सम्वत् १९९४ में शारीरिक अस्वस्थता और अशक्तता के कारण जयपुर में ही स्थिरवास किया। आपका स्वभाव बड़ा शान्त था। प्रकृति बड़ी विनम्र थी। विवादों से दूर रहकर जप ध्यान करती रहती थीं और शासन प्रभावना के कार्यों में दत्तचित्त रहती थीं। सम्वत् २०२३ चैत्र वदी १० को जयपुर में आपका स्वर्गवास हुआ। मोहनबाड़ी में इनका अग्नि-संस्कार किया गया।

(६) उपयोगश्रीजी

आप फलोदी निवासी [illegible] की पत्नी थीं। केसरबाई नाम था। इनका विवाह गुजराजजी वरड़िया के साथ हुआ था। छोटी अवस्था में ही विधवा हो गई थीं। ज्ञानश्रीजी के उपदेश से १९७४ माघ सुदी १३ को फलोदी में दीक्षा ग्रहण की थी। शिष्या अवश्य ही पुण्यश्रीजी की कहलाईं। किन्तु सारा जीवन ज्ञानश्रीजी की सेवा में बीता। उदारहृदया और सेवाभाविनी थीं। सम्वत् २०१६ में जयपुर में इनका अकस्मात ही स्वर्गवास हो गया था।

(७) प्रवर्तिनी विचक्षणश्रीजी

जैन कोकिला प्रखरवक्ता विदुषी विचक्षणश्रीजी का जन्म १९६९ आषाढ़ वदी एकम् के दिन अमरावती में हुआ था। इनके पिता का नाम था मिश्रीमलजी मूथा और माता का नाम था रूपादेवी। मूथा जी मूलतः नागौर के रहने वाले थे किन्तु व्यापार हेतु अमरावती में निवास कर रहे थे। इस बालिका का जन्म नाम था दाखीबाई। दाख के अनुसार ही बाल्यावस्था से लेकर साध्य वेला तक व्यवहार मधुर ही रहा। छोटी सी अवस्था में ही इस बाला की सगाई पन्नालालजी सुराना के साथ कर दी गई थी। सवत् १९७० में दाखा के पिता मिश्रीमलजी का अचानक स्वर्गवास हो गया। स्वर्णश्रीजी के सम्पर्क में आने के कारण माता और पुत्री दोनों ही दीक्षा की इच्छुक हो गईं। ससुराल से आये आभूषणों का त्याग न पहनना अस्वीकार कर दिया। घर की मांगलिक में भी सम्मिलित नहीं हुईं। इससे इनके परिवारी जन क्रुद्ध हुए। माता-पुत्री के द्वारा दीक्षा की अनुमति चाहने पर उन्होंने अस्वीकार कर दी, उसी प्रकार ससुराल ने स्वीकार भी किया। [illegible] दाखा ने मना कर दिया। और आखिर में शिवराज ठाकुर के यहाँ इसका फैसला हुआ। शिवराज ठाकुर ने दाखा की परीक्षा करने के पश्चात् दीक्षा की स्वीकृति दे दी। [illegible] ज्ञानश्रीजी [illegible] आदि [illegible]। इनकी उपस्थिति में सवत् १९८१ [illegible] दीक्षा [illegible]। दोनों के नाम—माता [illegible] का नाम विज्ञानश्री

और दाखां का नाम विचक्षणश्री रखा गया। और दोनो को स्वर्णश्रीजी महाराज की शिष्या घोषित किया। इन दोनो को वडी दीक्षा गणनायक हरिसागरजी महाराज ने दी और विचक्षणश्रीजी को जतनश्रीजी की शिष्या घोषित किया।

दीक्षा ग्रहण के पश्चात् शास्त्रो का अध्ययन करने लगी। प्रखर बुद्धि थी ही और प्रतिभा भी थी। कुछ ही समय मे अच्छी विदुषी वन गई।

आपकी वाणी मे श्रोता को मुग्ध करने का जादू था। वडी-वडी विशाल सभाओ मे निर्भीकता के साथ भाषण/प्रवचन देती थी। वड़े-वडे जैनाचार्यो के समक्ष भी भाषण देने मे कभी भी हिचकिचाई नही। तपागच्छ के प्रसिद्ध आचार्य युग दिवाकर विजय वल्लभसूरिजी ने तो इनके भाषणो मे मुग्ध होकर इन्हे "जैन कोकिला" से सम्बोधित किया था। प्रवर्तिनी ज्ञानश्रीजी महाराज के स्वर्गवास के पश्चात् इस समुदाय का भार इन्ही के कन्धो पर आ गया और इन्होने सफलतापूर्वक निभाया।

अपनी समाज की गरीव महिलाओ के पोषण हेतु इन्होने प्रयत्न करके अखिल भारतीय सुवर्ण सेवा फण्ड अमरावती और जयपुर मे स्थापित करवाये और दिल्ली मे सोहनश्री, विज्ञानश्री कल्याण केन्द्र की स्थापना करवाई। इन तीनो संस्थाओ से आर्थिक स्थिति से कमजोर महिलाओ को प्रत्येक प्रकार से गुप्त रूप से सहयोग दिया जाता है। रतलाम मे सुखसागर जैन गुरुकुल की स्थापना करवाई।

आपने अपने उपदेशो से अनेक वालिकाओ, महिलाओ को प्रतिवोध देकर वैराग्य की ओर प्रेरित किया और पचासो को दीक्षा प्रदान की। आपकी दीक्षित शिष्याओ मे सर्वप्रथम दीक्षित अविचलश्री जी आज भी प्रधानजी पद को सुशोभित कर रही है। इनको संवत् १९९१ में दीक्षा दी। कई शिष्याएँ विदुषी हैं, व्याख्यान पटु है और आपके नाम को दीपित करती हुई शासन की सेवा मे सलग्न हैं।

सवत् २०३३ मे आपके सीने पर अकस्मात ही कैंसर की गाँठ हो गई। वह गाँठ वढती ही गई, गाँठ के साथ वेदना भी वढती ही गई। आपने कभी उपचार नही करवाया। अशुभ कर्मो का उदय समझकर शात भाव से सहन करने मे ही अपना कुशल क्षेम समझा। देह भिन्न और आत्मा भिन्न है इस विभेद ज्ञान को साकार रूप से अपने जीवन मे चरितार्थ किया। "तन में व्याधि मन मे समाधि" धारण कर एक अनुपम आदर्श प्रस्तुत किया। अन्तिम दिनों मे तो गाठ के फूट जाने से जो असीम वेदना होती थी उसे वे शात भाव से सहन करती रही और सवत् २०३७ वैशाख सुदी को श्रीमाला की दादावाडी, जयपुर मे इस नश्वर देह का त्याग कर स्वर्ग की ओर प्रस्थान किया। मोहनवाडी मे वडे उत्सव के साथ इनका दाह-सस्कार किया गया। मोहनवाड़ी मे ही इनका विशाल एव भव्य समाधि मन्दिर वना है।

विचक्षणश्रीजी ने अपना उपनाम 'कोमल' रखा था। आपके द्वारा रचित भजन साहित्य प्रचुर संख्या मे प्राप्त हैं उसमे कई स्थल पर 'कोमल' का प्रयोग किया है। हृदय से जैसी कोमल थी, मधुर थीं वैसी ही अनुशासन प्रिय भी थी। यही कारण है कि इनकी दीक्षित समुदाय मे तव तक अनुशासन वना रहा। अन्तिम समय के पूर्व आपने वड़ी बुद्धिमानी और वैचक्षण्य का कार्य किया कि सज्जनश्रीजी को प्रवर्तिनी पद देने का निर्देश दिया और अपनी साध्वी समुदाय के लिए उनका नेतृत्व अपनी प्रथम शिष्या अविचलश्रजी को प्रधान पद देकर उनके कंधो पर डाल दिया।

आज भी आपकी साध्वी समुदाय लगभग ५१ है और वह इस समय अनेक स्थानो पर विचरण कर रहा है।

(८) प्रवर्तिनी सज्जनश्रीजी

गुलावी नगरी जयपुर मे ही जन्मी, यही खेली,

वडी हुई, यही विवाहित जीवन जीया, यही दीक्षा ग्रहण की और यही अब आपका अभिनदन समारोह होने जा रहा है। अभिनन्द्यमान सज्जनश्रीजी का विस्तार से परिचय अयत्र दिया गया है अत उसका यहा पिष्ट पेषण करना उपयुक्त नही है।

सवत् २०३७ से प्रवर्तिनी पद को सुशोभित कर रही हैं। अभी आपकी आज्ञा म निम्नाकित साध्वी समुदाय विचरण कर रहा है —

१ शशिप्रभाश्रीजी आदि १२ ठाणा, सज्जनश्रीजी महाराज की ही शिष्याए हैं।

२ स्वर्गीया चपाश्रीजी महाराज की शिष्याएँ जितेन्द्रश्रीजी, १२ ठाणा से विचरण कर रही ह।

३ विचक्षण मण्डल की ५१ साध्विया अनेक स्थानो पर विचरण कर रही है।

४ रतिश्रीजी ७ ठाणा के साथ फलोदी म विराजमान हैं।

५ स्वर्गीया पवित्रश्रीजी की शिष्याओ म दिव्यप्रभाश्रीजी ८ ठाणा के साथ हैं।

अत म प्रवर्तिनी सज्जनश्रीजी महाराज दीर्घजीवी हो और शासन तथा खरतरगच्छ के अभ्युदय म निरतर सहयोग देती रह, यही हार्दिक शुभकामना है।

(२) *शिवश्रीजी महाराज का समुदाय*

उद्योतश्रीजी महाराज की लघु शिष्या थी शिवश्रीजी। इनके सम्बन्ध मे किसी भी प्रकार की जानकारी अभी तक प्राप्त नही हो सकी है। किंतु आपका साध्वी समुदाय भी विशाल होने के कारण यह समुदाय शिवश्रीजी के समुदाय के नाम से प्रसिद्ध है। अनको को दीक्षा दी होगी, किंतु जिनकी बाद मे परम्परा चली वे मुख्यत ५ हुई थी। उन पाचो के नाम इस प्रकार हैं —

प्रतापश्रीजी, देवश्रीजी, ज्ञानश्रीजी, प्रेमश्रीजी और विमलश्रीजी। अब इन पाचो के परिवार का सक्षिप्त ब्यौरा इस प्रकार है —

(१) प्रवर्तिनी प्रतापश्रीजी

शिवश्रीजी के स्वगवास के पश्चात् ये प्रवर्तिनी बनी। इनकी दीक्षा सवत् १९४८ मिगसर वदी दूज को हुई थी। गृहस्थावस्था मे य सूरजमलजी श्रावक की पत्नी थी और नाम ज्योतिबाई था। आपने अनक शिष्याएँ बनाई थी इनम से दिव्यश्रीजी, मोहनश्रीजी आदि आज विद्यमान हैं।

(२) प्रवर्तिनी देवश्रीजी

इनके सम्बन्ध मे किसी भी प्रकार की जानकारी प्राप्त नही हैं। प्रतापश्रीजी के स्वगवास के पश्चात् इस समुदाय का नेतृत्व इन्होंने सभाला था और इन्होने प्रवर्तिनी पद प्राप्त किया था। चन्द्रकाताश्रीजी आदि कुछ साध्विया इनकी परम्परा मे विद्यमान हैं।

(३) प्रवर्तिनी प्रेमश्रीजी

प्रवर्तिनी देवश्रीजी के पश्चात् प्रेमश्रीजी न प्रवर्तिनी पद प्राप्त किया था। फलोदी म ही इनका स्वगवास हुआ था। इनकी परम्परा म निम्नांकित साध्वियाँ विद्यमान हैं —

१ विकासश्रीजी ठाणा ३

२ विनोदश्रीजी

३ विदुषी साध्वी हेमप्रभाश्री जी ठाणा १४ जिनके उपदेश स दस वर्ष बीकानेर मे उपधान तप हुआ था। शास्त्रो की अच्छी जानकार हैं और अच्छी वक्ता है।

४ सुलोचनाश्रीजी ठाणा ६।

(४) प्रवर्तिनी वल्लभश्री जी

प्रेमश्रीजी महाराज के स्वर्गवास के पश्चात् साध्वी समुदाय का नेतृत्व वल्लभश्रीजी के कन्धों पर आया, प्रवर्तिनी बनी। वल्लभश्री जी ज्ञानश्री जी महाराज की शिष्या थी। ज्ञानश्रीजी प्रेमश्रीजी से बडी थी किन्तु स्वर्गवास पूर्व हो जाने के कारण प्रवर्तिनी पद प्रेमश्रीजी को प्राप्त हुआ था और तत्पश्चात् वल्लभश्रीजी को। वल्लभश्रीजी अच्छी विदुषी थी, आगमो की जानकार थी, उपदेश देने मे पटु थी। आपका स्वर्गवास भी फलोदी मे हुआ था। इनकी शिष्या-प्रशिष्याओ मे लगभग ३५ अभी विद्यमान हैं। जिनका विवरण इस प्रकार है :—

१ प्रवर्तिनी जिनश्रीजी ६ ठाणा अमलनेर

२ निपुणाश्रीजी आदि

३ छत्तीसगढशिरोमणि मनोहरश्रीजी १६ ठाणा। ये अच्छी विदुषी साध्वी हैं। इनकी समस्त साध्वियाँ व्याख्यान देने मे पटु है।

४ कुसुमश्रीजी आदि।

(५) प्रवर्तिनी प्रमोदश्रीजी

प्रवर्तिनी वल्लभश्रीजी के स्वर्गवास के पश्चात् प्रवर्तिनी पद पर प्रमोदश्रीजी की स्थापना हुई। प्रमोदश्रीजी शिवश्रीजी महाराज की प्रशिष्या और विमलश्रीजी की शिष्या थी। इनका जन्म सं० १९५५ कार्तिक सुदी ५ को फलौदी मे हुआ था। गोलेछा गोत्रीय सूरजमलजी की पत्नी जेठीबाई की पुत्री थी। इनकी दीक्षा सं० १९६४ माघ सुदी ५ को फलौदी मे हुई थी। ये भी आगम और साहित्य की अच्छी जानकार थी। इनकी साध्वी परम्परा में प्रकाशश्री जी, विजयेन्द्रश्रीजी, और विद्युतप्रभाश्रीजी ठाणा ७ आदि विद्यमान है। विद्युतप्रभाश्री जी अच्छी लेखिका है और अभी डाक्टरेट के लिए शोध प्रबन्ध लिख रही है। प्रमोदश्रीजी महाराज का २०३६ पौष वदी १० को बाडमेर मे स्वर्गवास हुआ।

(६) प्रवर्तिनी जिनश्रीजी

प्रमोदश्रीजी के पश्चात् प्रवर्तिनी पद पर प्रवर्तिनी वल्लभश्रीजी महाराज की शिष्या जिनश्री जी विभूषित हुई। इनका जन्म संवत् १९५७ आश्विन सुदी ८ को निवरी मे हुआ था। पिता का नाम बूरड लाधूरामजी और माता का नाम धुणी-देवी था। सवत् १९७६ मे मिगसर सुदी ५ को आपने वल्लभश्रीजी महाराज के पास दीक्षा ग्रहण की थी। २०४० वैशाख शुक्ला दूज को आपने प्रवर्तिनी पद प्राप्त किया था। ८८ वर्ष की वृद्धा-वस्था और शारीरिक अस्वस्थता के कारण अभी आप ६ ठाणो से अमलनेर मे विराजमान है। शिव-श्रीजी समुदाय की लगभग ९० साध्वियो का आप नेतृत्व कर रही हैं।

उपसंहार—शिवश्रीजी महाराज के समुदाय का ब्यौरेवार इतिहास समय और सामग्री के अभाव के कारण नही लिखा जा सका। यथाशीघ्र ही समय निकाल कर इसकी अवश्य ही पूर्ति की जायेगी।

सज्जन वाणी

१. जिन्होने सत्य को आचरण मे उतारा है, जिनकी वाणी सत्य से ओत-प्रोत है, जिनका मन भव्य चिंतन मे लीन है। वे संसार के पूज्य बन जाते हैं।

२. जिन्होने अस्तेय व्रत धारण लिया, उन्हे सभी सम्पत्तियाँ अनायास मिलती हैं उनके जीवन मे कभी दरिद्रता नही आती। और वे सभी के विश्वास-पात्र बन जाते हैं।

□ साध्वी सम्यग्दर्शनाश्रीजी

स्व० आचार्य श्री जिनकवीन्द्रसागर सूरिजी म०सा०

इस अनादिकालीन चतुर्गत्यात्मक ससार कानन म अनन्त प्राणी स्व-स्व-कर्मानुसार विचित्र विचित्र शरीर धारण करके कर्मविपाक को शुभाशुभ रूप से भोगते हुए भ्रमण करत रहते हैं। उनम से कोई आत्मा किसी महान् पुण्योदय मे मानव शरीर पाकर सद्गुरु सयाग से स्वरूप का भान करके विरक्ति की ओर गमन करते हैं। जन्म-जरा मरण से छूटकर वास्तविक मुक्ति सुख प्राप्त करने के लिए, तप सयम की साधनापूर्वक स्व-पर-कल्याण साधते हैं। ऐसे ही प्राणियो म से स्वर्गीय आचार्यदेव थे, जिन्होंने बाल्यावस्था से आत्मविकास के पथ पर चलकर मानव-जीवन को कृतार्थ किया।

वश परिचय व जन्म—आपश्री के पूर्वज सोनीगरा चौहान क्षत्रिय थे और वीर प्रसविनी मरुभूमि के घनाणी ग्राम मे निवास करते थे। वि० स० ६०५ में श्री देवानन्द सूरि से प्रतिबोध पाकर जैन ओस वाल बने और अहिंसाधर्म धारण किया। पूर्व पुरुष जगाजी शाह रानी आकर रहने लगे। रानी से पाटण और फिर व्यापारार्थ इनके वशज श्रीमलजी वि० १६१६ म लालपुरा चले गये थे। वहाँ भी स्थिति ठीक न होने से इनके वशज शेषमलजी पालनपुर आये और वहीं निवास कर लिया। इसी वश म ऊचर भाई के सुपुत्र श्री निहालचन्द्र शाह की धर्मपत्नी श्रीमती कस्तूरबाई की रत्नकुक्षि से वि० स० १९६४ की चैत्र शुक्ला १३ को शुभ स्वप्न सूचित एक दिव्य बालक ने अवतार लिया। पिता माता के इससे पूर्व कई बालक बाल्यावस्था मे ही काल कवलित हो चुके थ। अत उन्होंने विचार किया कि यह बालक जीवित रहा तो इस शासन सेवार्थ समर्पित कर देंगे। 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' के अनुसार यह बालक शैशवावस्था से ही तेजस्वी और तीव्र बुद्धि था।

जब हमारे यह दिव्य पुरुष केवल १० वर्ष के ही थ तभी पिता की छत्रछाया उठ गई। और यह प्रसग इस बालक के लिए वैराग्योद्भव का कारण बना।

शोकग्रस्त माता पुत्र अपनी अनाथ दशा से अत्यन्त दुःखी हो गये। 'दुःख म भगवान याद आता है' यह कहावत सही है। कुछ दिन तो शोकाभिभूत हो व्यतीत किये। बालक धनपत ने कहा, माँ मैं दीक्षा लूँगा। मुझे किसी अच्छे गुरुजी को सौंप दें।

माता ने विचार किया अब एक बार बड़ी बहिन के दर्शन करने चलना चाहिए। माताजी की बड़ी बहिन जिनका नाम जावीबाई था, स्वनामधन्या प्रसिद्ध विदुषी आर्यारत्न पुण्यश्री जी म० सा० के पास दीक्षा लेकर साध्वी बन गई थी, उनका नाम था दयाश्रीजी म०। वे उस समय रत्नाश्रीजी म० सा० के साथ मारवाड़ म विचरती थीं, वहीं माता पुत्र दर्शनार्थ जा पहुँचे।

रत्नश्री जी म० सा० ने इस बुद्धिमान तेजस्वी बालक की भावना को वैराग्यमय आख्यानो से परिपुष्ट किया और गणाधीश्वर श्री पूज्य हरिसागरजी म० सा० के पास धार्मिक शिक्षा-दीक्षा लेने को कोटा भेज दिया। वही रहकर शिक्षा प्राप्त करने लगे। थोड़े दिनो मे उन्होने जीव विचार, नवतत्व आदि प्रकरण एव प्रतिक्रमण-स्तवन-सज्झाय आदि सीख लिये।

गणाधीश महोदय कोटा से जयपुर पधारे। वही वि० स० १९७६ के फाल्गुन मास की कृष्णा पचमी को १२ वर्ष के किशोर बालक धनपतशाह ने शुभ मुहूर्त मे बडी धूमधाम से ४ अन्य वैरागियो के साथ दीक्षा धारण की। इनका नाम 'कवीन्द्रसागर' रखा गया और गणाधीश महोदय के शिष्य बने।

अध्ययन—अपने योग्य गुरुदेव की छत्रछाया मे निवास करके व्याकरण, न्याय, काव्य, कोश, छन्द, अलकार आदि शास्त्र पढे एव सस्कृत, प्राकृत, गुर्जर आदि भाषाओ का सम्यग्ज्ञान प्राप्त किया व जैन शास्त्रो का भी गम्भीर अध्ययन किया। यथानाम तथागुण के अनुरूप आप सोलह वर्ष की आयु से ही काव्य प्रणयन करने लग गये थे। स्वल्पकाल मे ही आशु कवि बन गये। आपने संस्कृत और राष्ट्र भाषा मे काव्य साहित्य की अनुपम वृद्धि की है। दार्शनिक एव तत्वज्ञान से पूर्ण अनेक चैत्यवन्दन, स्तवन, स्तुतियाँ, सज्झाएँ और पूजाएँ बनाई है जो जैन साहित्य की अनुपम कृतियाँ है। जैन साहित्य के गम्भीर ज्ञान का सरल एव सरस विवेचन पढकर पाठक अनायास ही तत्त्वज्ञान को हृदयगम कर सकता है और आनन्द समुद्र मे मग्न हो सकता है। आधुनिक काल मे इस प्रकार तत्वज्ञानमय साहित्य बहुत कम दृष्टिगोचर होता है। जैन-समाज को आप से अत्यधिक आशाएँ थी, किन्तु असामायिक निधन से वे सब निराशा मे परिवर्तित हो गई।

आपने ४२ वर्ष से सयमी जीवन मे ३० वर्ष गुरुदेव के चरणो मे व्यतीत किये और मारवाड, कच्छ, गुजरात, उत्तर प्रदेश, विहार, बगाल मे विहार करके तीर्थयात्रा के साथ धर्म प्रचार किया। जयपुर, जैसलमेर आदि कई ज्ञान भण्डारो को सुव्यवस्थित करने, सूचीपत्र बनाने मे गुरुवर्य महोदय की सहायता की।

आप ही के अदम्य साहस और प्रेरणा से वि० सं० २००६ में मेडतारोड फलोदी पार्श्वनाथ तीर्थ में गुरुदेव श्री जिनहरिसागरसूरीश्वरजी म० सा० के कर-कमलो मे श्री पार्श्वनाथ विद्यालय की स्थापना हुई। उसी वर्ष गुरुदेव ने मेडतारोड मे उपधान मालारोहण के अवसर पर मार्गशीर्ष शुक्ला १० के दिन आपको उपाध्याय पद से विभूषित किया। आपके गुरुदेव का पक्षाघात से उसी वर्ष पोष कृष्णा अष्टमी को स्वर्गवास हो जाने पर उपस्थित श्रीसंघ ने आपश्री को आचार्य पद पर विराजमान होने की प्रार्थना की, किन्तु आपश्री ने फरमाया हमारे समुदाय मे परम्परा से बड़े ही इस पद को अलकृत करते है। अत. यह पद वीर पुत्र श्रीमान् आनन्दसागरजी महाराज सा० सुशोभित करेगे। मुझे जो गुरुदेव बना गये हैं, वही रहूँगा। कितनी विनम्रता और नि स्पृहता।

योग साधना—आपको आत्मसाधना के लिए एकान्त स्थान अत्यधिक रुचिकर थे। विद्याध्ययनान्तर आपश्री योगसाधना के लिए कुछ समय ओसिया के निकट पर्वत गुफा मे रहे थे, एव लोहावट के पास की टेकड़ी भी आपका साधना स्थल रहा था। जयपुर मे मोहनवाडी नामक स्थान पर भी आपने कई बार तपस्यापूर्वक साधना की थी। वहाँ आपके सामने नागदेव फन उठाये रात्रि भर बैठे रहे थे। यह दृश्य कई व्यक्तियो ने आँखो देखा था। आप हठयोग की आसन, प्राणायाम, मुद्रा, नेति, धौति आदि कई क्रियाये किया करते थे।

तपश्चर्या—प्राय देखा जाता है कि ज्ञानाभ्यासी साधु साध्वी वर्ग तपस्या से वंचित रह जाते हैं। किन्तु आप महानुभाव इसके अपवादरूप थे। ज्ञानार्जन, एव काव्य प्रणयन के साथ ही तपश्चर्या भी समय-समय पर किया करते थे। ४० वर्ष के संयमी जीवन में आपने मास क्षमण, पक्ष क्षमण, अट्ठाइयाँ, पचौले आदि किये। तेला की तो गिनती ही नही लगाई जा सकती।

साहित्य सेवा—आपने सैकडो छोटे मोटे चैत्यवन्दन, स्तुतियाँ, स्तवन, सज्झाय आदि बनाये। रत्नत्रय पूजा, पार्श्वनाथ पचकल्याणक पूजा, महावीर पंचकल्याणक पूजा चौंसठ अष्ट कर्म प्रकारी पूजा तथा चारो दादागुरुओ की पृथक् पृथक् पूजाएँ एव चैत्री पूर्णिमा, कार्तिक पूर्णिमा विधि उपधान विंशति-स्थानक, वर्षी तप, छमासी तप आदि के देववन्दन आदि विशिष्ट रचनाएँ की है। आप संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी मे समान रूप से रचनाएँ करते थे। बहुत सी रचनाओ मे आपने अपना नाम न देकर अपने पूज्य गुरुदेव का, गुरुभ्राताओ का एव अन्यो का नाम दिया है। इस सारे साहित्य का पूर्ण परिचय विस्तार भय से यहाँ नही दिया जा रहा है।

आपकी प्रवचन शैली ओजस्वी व दार्शनिक ज्ञानयुक्त थी। भाषा सरल सुबोध और प्रसाद गुण युक्त थी, रचनाओ मे अलकार स्वभावत ही आ गये है। इस प्रकार आपको एक प्रतिभाशाली कवि भी कहा जा सकता है।

आचार्य पद—विक्रम स० २०१७ की पौष शुक्ला १० को प्रखरवक्ता व्याख्यान वाचस्पति वीर पुत्र श्री जिनआनन्दसागर सूरीश्वरजी म० सा० के आकस्मिक स्वर्गगमनानन्तर सारी समुदाय ने आप ही को समुदायाधीश बनाया। अहमदाबाद मे चैत्र कृष्णा ७ को श्री खरतरगच्छ संघ द्वारा आपको महोत्सवपूर्वक आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया गया।

आप श्री स्वभाव से ही मिलनसार और गम्भीर थे। दयालुता और हृदय की विशालता आदि सद्गुणो से सुशोभित थे। आप श्री के अन्त करण मे शासन, गच्छ व समुदाय के उत्कर्ष की भावनाएँ सतत जागृत रहती थी। पालीताना मे निर्माणमान श्री जिन हरि विहार भी आपश्री की सत्प्रेरणा का कीर्ति स्तम्भ है।

आपश्री के कई शिष्य हुए पर वर्तमान मे केवल श्री कल्याणसागरजी म० सा० तथा मुनिवर्य श्री कैलाश सागर जी महाराज ही विद्यमान है।

समुदाय के दुर्भाग्य से आपश्री पूरे एक वर्ष भी आचार्य पद द्वारा सेवा नही कर पाये कि कराल काल ने निर्दयतापूर्वक इस रत्न को समुदाय से छीन लिया। उग्र विहार करते हुए स्वस्थ सबल देहधारी ये महान् पुरुष अहमदाबाद से केवल २० दिन मे मन्दसौर के पास बूढा ग्राम फा० सुदी एकम को सध्या समय पधारे। यहाँ प्रतिष्ठा कार्य व योगोद्वहन कराने पधारे थे, परन्तु फा० सुदी ५ शनिवार की रात्रि को १२ ३० बजे अकस्मात हृदय गति के रुक जाने से नवकार का जाप करते एव प्रतिष्ठा कार्य के लिए ध्यान मे अवस्थित ये महानुभाव संघ व समुदाय को निराधार निराश्रित बनाकर देवलोक मे जा विराजे। दादा गुरुदेव व शासनदेव इस महापुरुष की आत्मा को शान्ति एव समुदाय को उनके पदानुसरण की शक्ति प्रदान करे। यही हार्दिक अभिलाषा है।

☐ डॉ० शिवप्रसाद
(शोध छात्र—पार्श्वनाथ विद्याश्रम, वाराणसी)

खरतरगच्छीय साध्वी परम्परा

समाज की सृष्टि मे नारी का विशिष्ट योगदान है। समाज का अर्थ ही है नर और नारी। उसका अर्थ न तो नर ही है और न केवल नारी। नारी के बिना सृष्टि की रचना, समाज का सगठन, जातीय कार्यकलाप, गृहस्थ जीवन सभी अधूरे है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र, चाहे वह धार्मिक आदर्श हो, चाहे समाज-सुधार अथवा राजनीति हो, मे नारी का सक्रिय योगदान रहा है।

जहाँ तक नारियो के सन्यास या प्रव्रज्या का प्रश्न है, वैदिक युग मे नारियो के लिये ऐसी कोई व्यवस्था नही थी। वृहदारण्यक उपनिषद[1], रामायण[2] और महाभारत[3] मे नारियों के सन्यास लेने के प्रसग मिलते है। इन नारियो ने पति के सन्यास लेने, उसकी मृत्यु अथवा योग्य वर न मिलने पर संन्यास का आश्रय लिया था। श्रमण परम्परा के जैन और बौद्ध दोनो धर्मों में इन कारणो के साथ-साथ वैराग्य के कारण भी स्त्रियो के सन्यास लेने की व्यवस्था दृष्टिगत होती है।

जहाँ तक जैन धर्म में स्त्रियो की प्रव्रज्या का प्रश्न है, सूत्रकृताग के द्वितीय श्रुतस्कन्ध[4] से ज्ञात होता है कि पार्श्वनाथ की परम्परा महावीर से भिन्न थी। उत्तराध्ययनसूत्र २३/८७ में तो पार्श्वापत्यीय श्रमणो और श्रमणियो के लिए पचमहाव्रतो को स्वीकार करवाकर ही महावीर के संघ में सम्मिलित करने का उल्लेख है। इसी प्रकार स्पष्ट है कि महावीर के पूर्व ही जैन धर्म मे भिक्षु-भिक्षुणी सघ की स्थापना हो चुकी थी। आचारागसूत्र मे श्रमण एव श्रमणियो के आचार सम्बन्धी नियमो की चर्चा से स्पष्ट है कि जैनधर्म मे श्रमण सघ और श्रमणी सघ दोनो की ही साथ-साथ स्थापना हुई थी।

समाज के प्रत्येक वर्ग की महिलाओ के प्रवेश के लिए जैन श्रमणी सघ का द्वार खुला हुआ था। स्थानागसूत्र और उसकी टीका[5] मे १० विभिन्न कारणो का उल्लेख है, जिनके कारण ही स्त्रियाँ दीक्षा

---

१. वृहदारण्यकोपनिषद, ४-४
२. रामायण २-२९-१३, ३-७३-२६, ३-७४-३
३. महाभारत, आदिपर्व ३-७४-१०
४. सूत्रकृताग २,७,७१-८०
५ स्थानाग १०-७१२, टीका भाग-५, पृ० ३६५-६६

ग्रहण करती थी। ये कारण मुख्य रूप से सामाजिक, पारिवारिक एवं आर्थिक हैं। सामान्यत नारी अपने पति, पुत्र, भाई या अन्य किसी प्रिय सम्बन्धी की मृत्यु या प्रव्रज्या ग्रहण करने पर स्वयं भी प्रव्रजित हो जाती थी। कभी कभी धर्माचार्यों के उपदेश से भी स्त्रियां द्वारा प्रव्रज्या लेने का उल्लेख मिलता है।[1]

जैन परम्परा मे प्रारम्भ से ही स्त्रियो को समान धार्मिक अधिकार दिये गये और चतुर्विध सघ म साधु के साथ साध्वी तथा श्रावक के साथ श्राविका भी सम्मिलित किये गये। जन धम के दोना सम्प्रदायो और उनकी शाखाओ मे आज भी बडी सख्या मे साध्वियाँ विद्यमान हैं। इस लेख मे श्वेताम्बर सम्प्रदाय की एक प्राचीन और महत्वपूर्ण शाखा—खरतरगच्छ की साध्वी परम्परा पर प्रकाश डाला गया है। विक्रम सवत् की ग्यारहवी शताब्दी म अपने अभ्युदय से लेकर आज भी यह गच्छ जैन धम के लोक कल्याणकारी सिद्धान्तो का पालन कर विश्व के समक्ष एक उज्ज्वल आदश उपस्थित कर रहा है।

खरतरगच्छ म अनक प्रभावक आचाय उपाध्याय विद्वान साधु एव साध्विया तथा बडी सख्या म तन्त्र मन्त्र के विशेषज्ञ ज्योतिर्विद, वैद्यक शास्त्र के ज्ञाता यतिजन हो चुके है जिन्होने न केवल समाजोत्थान बल्कि सस्कृत प्राकृत, अपभ्रंश और देश्य भाषाओ मे साहित्य-सृजन कर उसे समृद्ध बनाने म महान् योग दिया है। चत्यवास का उन्मूलन कर सुविहितमाग को पुन प्रतिष्ठित करना खरतरगच्छीय आचार्यो की सबसे बडी देन है।[3]

खरतरगच्छ बृहद्गुर्वावली[4] म इस गच्छ के महान् आचार्यो के दीक्षा, विहार साधु साध्वी समुदाय, स्थानीय श्रावको के नाम, राजाओ के नाम, प्रतिद्वन्द्वी धर्माचार्यों से शास्त्रार्थ, तीर्थोद्धार आदि अनक बातो पर विशद् प्रकाश डाला गया है। सम्प्रति लेख म इसी गुर्वावली के आधार पर खरतरगच्छीय साध्वी परम्परा की एक झाकी प्रस्तुत है।

वधमानसूरि खरतरगच्छ के आदिम आचाय माने जाते हैं। उनके शिष्य जिनेश्वरसूरि ने चौलुक्य नरेश दुर्लभराज की राजसभा म चत्यवासी आचाय को शास्त्रार्थ म पराजित कर गुजरधरा म सुविहितमार्गीय मुनियो के विहार को सम्भव बनाया। आचाय जिनेश्वरसूरि द्वारा दीक्षित जिनचन्द्रसूरि, अभयदेवसूरि, जिनभद्र अपर नाम धनेश्वरसूरि, हरिभद्रसूरि, प्रसन्नचन्द्रसूरि, धमदेव, सहदेव आदि अनेक मुनियो का उल्लेख तो हम मिलता है, परन्तु इनके द्वारा किसी महिला को दीक्षा देने का उल्लेख नही मिला है। खरतरगच्छबृहद्गुर्वावली से ज्ञात होता है कि इन्होने स्वगच्छीय मरुदेवी प्रवर्तिनी को आशापल्ली म उसके सथारा के समय सल्लेखना पाठ सुनाया था। जिनेश्वरसूरि के शिष्य उपाध्याय धमदेव की आज्ञानुवर्तिनी साध्विया द्वारा धोलका निवासी भक्त वाछिग और उसकी पत्नी वाहडदेवी के पुत्र सोमचन्द्र को सवलक्षणो से युक्त देखकर उसे दीक्षा प्राप्त करने का उल्लेख मिलता है।[6] यही बालक आगे चलकर जिनदत्तसूरि के नाम से खरतरगच्छ का नायक बना।

---

१ जैन और बौद्ध भिक्षुणी सघ, डा० अरुणप्रतापसिंह, पृ० १२ १३

२ खरतरगच्छ का इतिहास (प्रथम खण्ड) महोपाध्याय विनयसागर, भूमिका पृ० ४ ५

३ खरतरगच्छ का इतिहास (प्रथम खण्ड) महोपाध्याय विनयसागर भूमिका पृष्ठ ४ ५।

४ यह ग्रन्थ मुनि जिनविजय जी के सपादकत्व म सिंघी जैन ग्रन्थमाला के अन्तर्गत १९५६ ई० में प्रकाशित हो चुका है।

५ जिनविजय जी, सपा० खरतरगच्छबृहद्गुर्वावली पृ० ५ (बम्बई-१९५६)

६ जिनविजयजी, सपा० खरतरगच्छबृहद्गुर्वावली पृ० १४ १५ बम्बई १९५६

जिनचन्द्रसूरि और अभयदेवसूरि द्वारा दीक्षित साध्वियों का उल्लेख तो नहीं मिलता है, परन्तु इनके समय मे भी खरतरगच्छ में साध्वी संघ की विद्यमानता को अस्वीकार नही किया जा सकता है।

जिनवल्लभसूरि का अत्यधिक समय विधिमार्ग के प्रसार मे ही व्यतीत हुआ। उनके उपदेशों से गुजरात, राजस्थान और मालवा के अनेक स्थानो पर विधिचैत्यों का निर्माण हुआ। आचार्य पद पर प्रतिष्ठित होने के कुछ माह पश्चात् ही उनका स्वर्गवास हो गया, तत्पश्चात् सोमचन्द्रगणि को जिनदत्तसूरि के नाम से जिनवल्लभ का पट्टधर बनाया गया।[1]

जिनदत्तसूरि द्वारा अनेक साधु-साध्वियो को दीक्षा देने का उल्लेख मिलता है। उनके करकमल से वागड़ देश मे श्रीमति, जिनमति, पूर्वश्री, ज्ञानश्री और जिनश्री को साध्वी दीक्षा प्राप्त हुई।[2] जिनदत्त सूरि अत्यन्त विद्यानुरागी आचार्य थे, इसीलिए उन्होने अपने गच्छ के साधु-साध्वियो की शिक्षा पर अत्यधिक बल दिया। श्रीमति, जिनमति और पूर्वश्री इन तीन साध्वियो को अन्य स्वगच्छीय मुनियों के साथ उन्होंने अध्ययनार्थ धारा नगरी भेजा था।[3] उनकी ही शिष्या गणिनी शान्तिमति ने वि० सं० १२१५ मे प्रकरणसग्रह की प्रतिलिपि की, जो जैसलमेर ग्रन्थ भण्डार मे सुरक्षित है।[4]

आचार्य जिनदत्तसूरि के स्वर्गारोहण के पश्चात् मणिधारी जिनचन्द्रसूरि खरतरगच्छ के नायक बने। इनके अल्पकाल के नायकत्व मे भी खरतरगच्छ मे अनेक साधु-साध्वियों को दीक्षा हुई। वि० सम्वत् १२१४ मे इन्होने त्रिभुवनगिरि मे शान्तिनाथ जिनालय पर भव्य महोत्सव के साथ सुवर्णध्वज और कलश का आरोपण किया और साध्वी हेमादेवी को प्रवर्तिनी पद से विभूषित किया।[5] वि०सं० १२१८ मे उच्चानगरी मे उन्होने ५ मुनियो के साथ जगश्री, गुणश्री और सरस्वती को साध्वी दीक्षा प्रदान की।[6] वि०सं० १२२१ मे आचार्यश्री ने देवभद्र और उसकी पत्नी को अन्य ४ साधुओं के साथ दीक्षित किया।[7] वि०सं० १२२३ भाद्रपद वदी चतुर्दशी को दिल्ली मे आचार्यश्री का स्वर्गवास हो गया, तत्पश्चात् आचार्य जिनपतिसूरि को उनके पट्ट पर प्रतिष्ठित किया गया। जिनपतिसूरि ने वि० सं० १२२७ मे उच्चानगरी मे धर्मशील और उसकी माता को ५ अन्य व्यक्तियो के साथ दीक्षित किया।[8] इसके पश्चात् वे विहार करते हुए मरुकोट पधारे, जहाँ अजितश्री ने उनसे प्रव्रज्या ली।[8] वि० सं० १२२९ मे फलवर्धिका मे अभयमति, आसमति और श्रीदेवी ने उनसे साध्वीदीक्षा प्राप्त की।[9] यही वि०सं० १२३४ मे साध्वी गुणश्री ने महत्तरा पद और जगदेवी ने साध्वी दीक्षा ली।[10] इसी नगरी मे वि०सं० १२४१ धर्मश्री और धर्मदेवी को उन्होंने श्रमणीसंघ मे सम्मिलित किया।[11] वि०सं० १२४५ मे पुष्करणी नगरी मे संयमश्री, शान्तमति एवं रत्नमति को साध्वी दीक्षा दी गयी।[12] वि० सं० १२५४ में धारा नगरी मे उन्होंने साध्वी रत्नश्री को दीक्षित

---

१. जिनविजयजी, संपा० खरतरगच्छबृहद्गुर्वावली पृ० १५ (बम्बई १९५६)
२. खरतरगच्छबृहद्गुर्वावली पृ० १८
३. खरतरगच्छबृहद्गुर्वावली पृ० १८
४. श्री जैसलमेरदुर्गस्थ जैन ताडपत्रीय ग्रन्थ भण्डार सूची-पत्र, संपा० मुनिपुण्यविजय, क्रमांक १५४ पृ० ५१-५२।
५. खरतरगच्छबृहद्गुर्वावली पृ० २०
६. खरतरगच्छबृहद्गुर्वावली पृ० २०
७. खरतरगच्छबृहद्गुर्वावली पृ० २०
८. खरतरगच्छबृहद्गुर्वावली पृ० २३
९. खरतरगच्छबृहद्गुर्वावली पृ० २३
१०. खरतरगच्छबृहद्गुर्वावली पृ० २४
११. खरतरगच्छबृहद्गुर्वावली पृ० २४
१२. खरतरगच्छबृहद्गुर्वावली पृ० ३४

किया ।[1] यही साध्वी रत्नश्री आगे चलकर गच्छ प्रवर्तिनी बनी । वि०स० १२६० म आचार्यश्री ने लवणखेड में आर्या आनन्दश्री को महत्तरा पद प्रदान किया । इसी नगरी म वि०स० १२६३ में विवेकश्री, मगलमति, कल्याणश्री और जिनश्री ने उनके करकमल से भागवती दीक्षा ली और साध्वी धमदेवी ने प्रवर्तिनी पद प्राप्त किया ।[3] लवणखेड में ही वि०स० १२६५ म आसमति और सुन्दरमति तथा वि०स० १२६६ म विक्रमपुर में ज्ञानश्री ने उनसे साध्वी दीक्षा ली[4] । वि०स० १२६६ में चन्द्रश्री और केवलश्री को साध्वी दीक्षा दी गयी और साध्वी धमदेवी को महत्तरा पद प्रदान कर उन्हें प्रभावती के नाम से प्रसिद्ध किया गया ।[5] वि०स० १२७५ में आचार्यश्री ने भुवनश्री, जगमति और मगलश्री को भागवती दीक्षा देकर श्रमणीसघ म प्रविष्ट कराया ।[6] इस प्रकार स्पष्ट है कि आचार्य जिनपतिसूरि के समय खरतरगच्छीय श्रमणीसघ म पर्याप्त साध्वियाँ थी ।

आचार्य जिनपतिसूरि के स्वर्गारोहण के पश्चात् जिनेश्वरसूरि (द्वितीय) खरतरगच्छ के प्रधान आचार्य बने ।[7] इनके समय में भी अनेक महिलाएँ साध्वीसघ म प्रविष्ट हुई । इन्होंने वि०स० १२७८ मे श्रीमालपुर मे ज्येष्ठ सुदी १२ को चारित्रमाला, ज्ञानमाला और सत्यमाला को साध्वी दीक्षा दी ।[8] वि०स० १२७९ माघ सुदी पचमी को आपने विवेकश्री गणिनी शीलमाला गणिनी और विनयमाला गणिनी को सयम प्रदान किया ।[9] वि०स० १२८० माघ सुदि द्वादशी को श्रीमालपुर में पूर्णश्री तथा हेमश्री और वि०स० १२८१ वैशाख सुदी ६ को जावालिपुर म कमलश्री एव कुमुदश्री को साध्वी दीक्षा प्रदान की गई ।[10] वि०स० १२८३ माघ वदि ६ को वागसेर म आर्यामगलमति प्रवर्तिनी पद पर प्रतिष्ठित की गयी ।[11] वि०स० १२८४ मे बीजापुर म वासुपूज्य जिनालय म प्रतिमा प्रतिष्ठा के अवसर पर श्रावकों द्वारा भव्य महोत्सव का आयोजन किया गया ।[12] इसी नगरी म वि०स० १२८४ आषाढ सुदी द्वितीया को आचार्यश्री ने चारित्रसुन्दरी और धर्मसुन्दरी को साध्वी दीक्षा प्रदान की ।[13] वि०स० १२८५ ज्येष्ठ सुदी द्वितीया को बीजापुर म ही उदयश्री ने भगवती दीक्षा ग्रहण की ।[14] वि०स० १२८७ फाल्गुन सुदि ५ को पालनपुर में कुलश्री और प्रमोदश्री साध्वी सघ म सम्मिलित हुई ।[15] वि०स० १२८८ भाद्रपद सुदि १० को आचार्यश्री ने जावालिपुर म स्तूपध्वज की प्रतिष्ठा की ।[16] इसी वर्ष इसी नगरी में पौष शुक्ल एकादशी को धर्ममति, विनयमति, विद्यामति और चारित्रमति खरतरगच्छीय श्रमणीसघ म दीक्षित की गई ।[17] वि०स० १२८९ ज्येष्ठ सुदी १२ को चित्तौड म राजीमती हेमावली कनकावली, रत्नावली और मुक्तावली को आचार्यश्री ने प्रव्रज्या दी ।[18] चित्तौड म इसी वर्ष आषाढवदी २ को आचार्यश्री ने ऋषभनाथ, नेमिनाथ और पार्श्वनाथ के नवनिर्मित जिनालयो म प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा की ।[19] वि०स० १२९१ वैशाख सुदी १० को जावालिपुर में शीलसुन्दरी और चन्दनसुन्दरी ने प्रव्रज्या ली ।[20] वि०स०

---

१ खरतरगच्छबृहद्गुर्वावली पृ० ३४
२ वही पृ० ३४
३ वही पृ० ३४
४ वही, पृ० ३४
५ वही पृ० ३४
६ वही पृ० ३४
७ वही पृ० ४४
८ वही पृ० ४४
९ वही पृ० ४४
१० वही पृ० ४४
११ वही पृ० ४४
१२ वही पृ० ४४
१३ वही पृ० ४४
१४ वही पृ० ४४
१५ वही पृ० ४४
१६ वही पृ० ४४
१७ वही पृ० ४४
१८ वही पृ० ४६
१९ वही पृ० ४६
२० वही पृ० ४६

१३०९ मार्गशीर्ष शुक्ल द्वादशी को मुक्तिसुन्दरी को साध्वी दीक्षा दी गयी।[1] वि०स० १३१३ फाल्गुन सुदी चतुर्दशी को जावालिपुर में जयलक्ष्मी, कल्याणनिधि, प्रमोदलक्ष्मी और गच्छवृद्धि इन चार नारियो को श्रमणी दीक्षा दी गयी।[2] वि०स० १३१५ आषाढ सुदी १० को पालनपुर में बुद्धिसमृद्धि, ऋद्धिसमृद्धि, ऋद्धिसुन्दरी और रत्नसुन्दरी को आचार्यश्री द्वारा साध्वी दीक्षा दी गयी।[3] वि०स० १३१६ माघ सुदी चतुर्दशी को जालौर में आचार्यश्री ने प्रवर्तिनी पद पर प्रतिष्ठित किया।[4]

वि० स० १३१९ माघ वदी पचमी को विजयश्री तथा वि० स० १३२१ फाल्गुन सुदी २ को चित्तसमाधि एव शान्तिसमाधि को पालनपुर मे आचार्यश्री के हाथो साध्वी दीक्षा प्रदान की गई।[5] विक्रमपुर मे वि० स० १३२२ माघ सुदी चतुर्दशी को मुक्तिवल्लभा, नेमिवल्लभा, मगलनिधि और प्रियदर्शना तथा वि० स० १३२३ वैशाख सुदी ६ को वीरसुन्दरी की प्रव्रज्या हुई।[6] इसी वर्ष विक्रमपुर मे ही मार्गशीर्ष सुदी पचमी को विनयसिद्धि और आगमसिद्धि को साध्वीदीक्षा दी गयी।[7]

वि० स० १३२४ अगहन वदी २ शनिवार को जावालिपुर मे अनन्तश्री, व्रतलक्ष्मी, एकलक्ष्मी और प्रधानलक्ष्मी तथा वि० स० १३२५ वैशाख सुदी १० को पद्मावती ने भागवती दीक्षा अगीकार की।[8]

वि० स० १३२६ मे आचार्यश्री ने श्रेष्ठिवर्ग की प्रार्थना पर २३ साधुओ तथा लक्ष्मीनिधि महत्तरा आदि १३ साध्वियो के साथ शत्रुजय तीर्थ की यात्रा की।[9]

वि० स० १३२८ ज्येष्ठ वदी चतुर्थी को जावालिपुर मे हेमप्रभा को साध्वी दीक्षा तथा वि० स० १३३० वैशाख वदी ६ को कल्याणऋद्धि गणिनी को महत्तरा पद दिया गया।[10] वि० स० १३३१ में आचार्य जिनेश्वरसूरि (द्वितीय) का स्वर्गवास हुआ।[11]

आचार्य जिनेश्वरसूरि के स्वर्गारोहण के पश्चात् वि० स० १३३१ फाल्गुन वदि ८ को आचार्य जिनप्रबोध सूरि ने खरतरगच्छ का नायकत्व प्राप्त किया। आपके वरदहस्त से अनेक मुमुक्षु महिलाओ ने दीक्षा प्राप्त की, जिसका विवरण इस प्रकार है—

आचार्यश्री ने वि० स० १३३१ फाल्गुन सुदी ५ को केवलप्रभा, हर्षप्रभा, जयप्रभा, यशप्रभा इन चार महिलाओ को दीक्षा प्रदान कर श्रमणीसघ मे सम्मिलित किया। दीक्षा महोत्सव जावालिपुर मे सम्पन्न हुआ।[12]

वि० स० १३३२ ज्येष्ठ वदी प्रतिपदा शुक्रवार को जावालिपुर मे ही लब्धिमाला और पुण्यमाला को साध्वीदीक्षा प्रदान की गयी।[13] वि० स० १३३३ माघ वदी १३ को आचार्यश्री ने गणिनी कुशलश्री को प्रवर्तिनी पद पर प्रतिष्ठित किया।[14]

वि० स० १३३४ चैत्र वदी ५ को आचार्यश्री शत्रुञ्जय तीर्थ की यात्रा पर गये। इस यात्रा मे

---

१. खरतरगच्छबृहद्गुर्वावली पृ० ५०
२. वही पृ० ५१
३. वही पृ० ५१
४. वही पृ० ५१.
५. वही पृ० ५२
६. वही पृ० ५२.
७ वही पृ० ५२
८. वही पृ० ५२.
९. वही पृ० ५२
१०. वही पृ० ५२.
११ वही पृ० ५४
१२ वही पृ० ५४.
१३. वही पृ० ५५.
१४. वही पृ० ५५.

उनके साथ २७ मुनि तथा प्रवर्तिनी कल्याणऋद्धि आदि १५ साध्विया भी थी ।[1] शत्रुजय तीथ पर ही आचाय श्री ने ज्येष्ठ वदी ७ को भगवान् आदिनाथ की प्रतिमा के समक्ष पुण्यमाला, यशोमाला, धममाला और लक्ष्मीमाला को साध्वी दीक्षा प्रदान की ।[2]

वि० स० १३३४ मागशीष सुदी १२ को जालोर में गणिनी रत्नश्री को आचाय जिनप्रबोधसूरि ने प्रवर्तिनी पद प्रदान किया ।[3] वि० स० १३४० ज्येष्ठ वदी ४ को जावालिपुर म ही आपने कुमुदलक्ष्मी और भुवनलक्ष्मी को दीक्षा प्रदान की ।[4] अगले दिन अर्थात् ज्येष्ठ वदी ५ को आपने साध्वी चन्दनश्री को महत्तरा पद प्रदान किया ।[5]

वि० स० १३४१ ज्यष्ठ सुदी ४ का आचायश्री के वरदहस्त से जसलमेर म पुण्यसुन्दरी, रत्न सुदरी, भुवनसुदरी और हपसुन्दरी को साध्वी दीक्षा प्राप्त हुई ।

इसी वप फाल्गुन वदी ११ को आचायश्री ने जसलमेर म ही धमप्रभा और हेमप्रभा को उनकी अल्पायु के कारण साध्वी दीक्षा न देकर क्षुल्लक दीक्षा दी ।[6] वि० स० १३४१ वशाख सुदी ३ अक्षय तृतीया को आपन जिनचद्रसूरि को ही अपना पट्टधर घोपित कर वशाख सुदी ११ को दवलोक प्रयाण किया ।

आचाय जिनचद्रसूरि (द्वितीय) ने भी अनक मुमुक्षु महिलाओ को साध्वी दीक्षा प्रदान कर खरतरगच्छीय श्रमणीसघ के गौरव की वृद्धि की ।

आपके वरदहस्त से वि० स० १३४२ वैशाख सुदी १० को जावालिपुर म जयमजरी, रत्नमजरी और शीलमजरी को क्षुल्लक दीक्षा तथा गणिनी बुद्धिसमृद्धि को प्रवर्तिनी पद प्रदान किया गया ।[8] इस दीक्षा महोत्सव म प्रीतिचन्द और सुखकीर्ति को भी क्षुल्लक दीक्षा दी गयी ।[9]

वि० स० १३४५ आपाढ सुदी ३ को जावालिपुर म ही चारित्रलक्ष्मी को साध्वी दीक्षा दी गयी ।[10] इसी नगरी में वि० स० १३४६ फाल्गुन सुदी ८ को रत्नश्री एव वि० स० १३४७ ज्यष्ठ वदी ८ को मुक्तिलक्ष्मी और युक्तिलक्ष्मी को आचायजी के वरदहस्त स साध्वी दीक्षा प्राप्त हुई ।[11] वि० स० १३४७ मागशीष सुदी ६ को पालनपुर मे आपन साधु-साध्विया को बडी दीक्षा प्रदान की ।[12]

वि० स० १३४८ चैत्र वदी ६ को बीजापुर म मुक्तिचद्रिका तथा इसी वप वशाख सुदी ६ को पालनपुर म अमृतश्री को साध्वी दीक्षा प्रदान की गयी ।[13] वि० स० १३५१ माघ वदी ५ को पालनपुर म ही हमलता को साध्वी दीक्षा दी गयी ।[14] वि० स० १३५४ ज्येष्ठ वदी १० को जावालिपुर म आचायश्री न जयसुदरी को दीक्षा देकर श्रमणीसघ मे सम्मिलित किया ।[15]

वि० स० १३६६ ज्येष्ठ वदी १२ को आचाय जिनचद्रसूरि शत्रुञ्जय, गिरनार आदि तीर्थों की यात्रा पर निकले । इस यात्रा मे आपके साथ प्रवर्तिनी रत्नश्री गणिनी आदि ५ साध्वियाँ तथा कुछ मुनि भी थे ।[16] तीथयात्रा पूण कर आप भीमपल्ली पधारे जहा दृढधर्मा और व्रतधर्मा को दो अन्य व्यक्तियो क

---

१ खरतरगच्छबृहद्गुर्वावली पृ० ५५

२ वही पृ ५५ ३ वही पृ ५६ ४ वही पृ ५८

५ वही पृ ५८ ६ वही पृ ५८ ७ वही पृ ५८

८ वही पृ० ५६ ९ वही पृ० ५६ १० वही पृ० ५६

११ वही पृ० ५६ १२ वही पृ० ६० १३ वही पृ० ६०

१४ वही पृ० ६१ १५ वही पृ० ६२ १६ वही पृ० ६२

साथ क्षुल्लक दीक्षा प्रदान की।[1] इसी अवसर पर गणिनी प्रियदर्शना को प्रवर्तिनी पद तथा गणिनी रत्नमंजरी को महत्तरा पद प्रदान किया।[2]

वि० स० १३६६ मार्गशीर्ष वदी ६ को आपने पाटण मे गणिनी केवलप्रभा को प्रवर्तिनी पद प्रदान किया।[3]

वि० स० १३७१ फाल्गुन सुदी ११ को भीमपल्ली मे प्रियधर्मा, यशोलक्ष्मी और धर्मलक्ष्मी को भागवती दीक्षा प्रदान की गयी।[4] इसी वर्ष ज्येष्ठ वदी १० को जावालिपुर में पुष्पलक्ष्मी, ज्ञानलक्ष्मी, कनकलक्ष्मी और मतिलक्ष्मी ने प्रव्रज्या ली।[5]

प्राकृत भाषामय अंजनासुन्दरीचरित (रचनाकाल वि० सं० १४०७) की रचयिता और प्राकृत भाषा की एकमात्र लेखिका साध्वी गुणसमृद्धि महत्तरा आप की शिष्या थी।[6]

वि० सं० १३७५ माघ सुदी १२ को नागौर मे एक भव्य समारोह मे शीलसमृद्धि, दुर्लभसमृद्धि और भुवनसमृद्धि को साध्वी दीक्षा तथा गणिनी धर्ममाला एवं गणिनी पुण्यसुन्दरी को प्रवर्तिनी पद प्रदान किया गया।[7] इसी अवसर पर आचार्यश्री ने प० कुशलकीर्ति को अपना उत्तराधिकारी (पट्टधर) घोषित कर उन्हे वाचनाचार्य पद दिया।[8] सवत् १३७६ आषाढ सुदी ६ को ६५ वर्ष की आयु मे आचार्य जिनचन्द्रसूरि का निधन हो गया।[9] गच्छनायक आचार्य के निधन के पश्चात् गच्छ के ज्येष्ठ मुनिजनो, साध्वियो एवं श्रावको ने एक सभा आयोजित कर स्वर्गीय आचार्य के पूर्वआदेशानुसार गणि कुशलकीर्ति को पाटन मे जिनकुशलसूरि के नाम से उनके पट्ट पर आसीन कराया।[10]

आचार्य जिनकुशलसूरि ने वि० स० १३८१ वैशाख वदी ६ को पाटन मे धर्मसुन्दरी और चरित्रसुन्दरी को साध्वी दीक्षा दी।[11] वि० स० १३८३ वैशाख वदी ५ को कमलश्री और ललितश्री की दीक्षा हुई।[12]

वि० स० १३८६ को देवराजपुर मे कुलधर्मा, विनयधर्मा और शीलधर्मा ने साध्वी दीक्षा ग्रहण की[13]। इसी नगरी में वि० स० १३८८ मे जयश्री और धर्मश्री को क्षुल्लिका दीक्षा दी गयी।[14] इस प्रकार

---

१. खरतरगच्छबृहद्गुर्वावली पृ० ६३ २ वही पृ० ६४. ३ वही पृ० ६४
४. वही पृ० ६४ ५ वही, पृ० ६४
६. सिरिजेसलमेरपुरे विक्कमचउदसहसतुत्तरे वरिसे।
वीरजिणजम्मदिवसे कियमजणसुन्दरीचरियं ॥५०३॥
जो आसायण कुणई अणंत ससारु भमई सो जीवो।
जो आसायण रक्खइ सो पासइ सासय ठाणं ॥५०४॥
इति श्री अंजणासुन्दरी महासती कथानक समाप्तम्।
कृतिरियं श्रीजिनचन्द्रसूरिशिष्यणी श्रीगुणसमृद्धिमहत्तराया ॥छ॥
'श्री जैसलमेर दुर्गस्थ जैन ताडपत्रीय ग्रन्थ भण्डार सूचीपत्र' संपा० मुनिपुण्यविजयजी अहमदावाद, १९७२ ई० क्रमांक—१२७८ पृ. २८२-२८३
७ खरतरगच्छबृहद्गुर्वावली पृ० ६५ ८. वही पृ० ६५ ९. वही पृ० ६८
१०. वही पृ० ७० ११. वही पृ० ७७ १२. वही पृ० ८०
१३. वही पृ० ८२ १४. वही पृ० ८५

स्पष्ट है कि खरतरगच्छ में इस समय भी साध्वियों की बड़ी संख्या थी। वि० स० १३८९ फाल्गुन वदी ५ को आचार्य श्री जिनकुशलसूरि का स्वर्गवास हुआ।[1]

दिवंगत आचार्य जिनकुशलसूरि के पूर्व आदेशानुसार क्षुल्लक पद्ममूर्ति को जिनपद्मसूरि नाम से वि० स० १३९० ज्येष्ठ सुदी ६ को आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया गया।[2] यह पट्टमहोत्सव देवराजपुर स्थित विधिचैत्य में स्वगच्छीय साधु साध्वियों तथा समाज के स्वपक्षीय श्रावकों के समक्ष बड़े धूम धाम से सम्पन्न हुआ।[3]

आचार्य जिनपद्मसूरि ने वि० स० १३९१ पौष वदी १० को लक्ष्मीमाला नामक गणिनी को प्रवर्तिनी के पद पर प्रतिष्ठित किया।[4] वि० स० १३९४ चैत्र शुक्ल पूर्णिमा को आप १५ मुनियों तथा जयर्द्धि महत्तरा आदि ८ साध्वियाँ और कुछ श्रावकों के साथ अर्बुदतीर्थ की यात्रा पर गये।[5] जिनपद्मसूरि द्वारा किसी महिला को साध्वी दीक्षा देने का उल्लेख नहीं मिलता। वि० स० १४०४ वैशाख शुक्ल चतुर्दशी को अल्पायु में ही इनका दुःखद निधन हो गया।[6]

बाद की शताब्दियों में भी खरतरगच्छ में साध्वियों की पर्याप्त संख्या रही। नाहटाजी द्वारा संकलित और सम्पादित "बीकानेर जैनलेख संग्रह" में भी १८ साध्वियों का उल्लेख मिलता है।[7] अन्य लेख संग्रहों में भी खोजने पर कई साध्वियों का नाम मिल सकता है।

खरतरगच्छीय श्रमणीसंघ में यद्यपि बड़ी संख्या में साध्वियाँ थी परन्तु उन्होंने स्वयं को धार्मिक अनुष्ठानों तक ही सीमित रखा। जहाँ इस गच्छ मे अनेक साहित्योपासक मुनि हो चुके हैं, वहाँ श्रमणीसंघ मे मात्र ४ ५ विदुषी साध्वियों का उल्लेख प्राप्त होता है।[8] श्री अगरचन्दजी नाहटा ने नारी शिक्षा का अभाव इसका प्रमुख कारण बतलाया है।[9] जो सत्य प्रतीत होता है।

वर्तमानयुग मे नारी शिक्षा के उत्तरोत्तर प्रचार के कारण श्वेताम्बर दिगम्बर दोनों सम्प्रदायों की सभी शाखाओं में आज अनेक विदुषी साध्वियाँ है जो तपश्चरण के साथ साथ स्वाध्याय में भी समान रूप से रत हैं। खरतरगच्छ में साध्वी सज्जनश्री ऐसी विदुषी साध्वी हैं जो अपनी विद्वत्ता के कारण ही प्रसिद्ध हैं। वस्तुतः नारी शिक्षा के प्रचार के कारण मध्यकाल की अपेक्षा आज खरतरगच्छ ही नहीं वरन् सम्पूर्ण जैन श्रमणीसंघ का भविष्य उज्ज्वल है।

---

१ खरतरगच्छबृहद्गुर्वावली पृ० ८५। २ वही पृ० ८५ ३ वही पृ० ८६

४ वही पृ० ८७ ५-६ वही पृ० १७७ ७ द्रष्टव्य—परिशिष्ट—ख, पृ० ३८

८ नाहटा, अगरचन्द—कतिपय श्वे० विदुषी कवयित्रियाँ चन्दाबाई अभिनन्दन ग्रंथ (आरा, बिहार १९५४) पृ० ५७० और आगे।

९ वही पृ० ५७१।

□ हजारीमल बांठिया, कानपुर

खरतरगच्छ की गौरवमयी परम्परा

यदि खरतरगच्छ के सस्थापक पूर्वाचार्यो ने चैत्यवास पर चोट नही की होती तो, यह निश्चित था कि जैनधर्म भी, बुद्धधर्म की तरह भारत की धरती से लुप्त हो जाता। चैत्यवासी परम्परा ने भगवान् महावीर के सिद्धान्तो को तिलाजलि देकर सुविधाधर्म वन लिया था। अपने तन्त्र-मन्त्र-विद्या के सहारे तत्कालीन राजाओ व मन्त्रियो पर अपना अक्षुण्ण प्रभाव जमा लिया था। खरतरगच्छ के आदि सस्थापक आचार्य वर्द्धमान सूरि और उनके शिष्य जिनेश्वर सूरि से लेकर जिनपतिसूरि इतने दिग्गज विद्वान हुए जिन्होने राज-सभाओ मे शास्त्रार्थ कर चैत्यवासियो पर विजय प्राप्त की। स्वनामधन्य विद्वान स्व० अगरचन्दजी नाहटा ने ठीक ही लिखा है—

"पाँच सौ-सात सौ वर्षो से जो चैत्यवास ने श्वेताम्बर सम्प्रदाय मे अपना इतना प्रभाव विस्तार कर लिया था, वह जिनेश्वरसूरि से लेकर जिनपतिसूरि जी तक के आचार्यो के जवरदस्त प्रभाव से क्षीण-प्राय हो गया।" अत. सुविहित मार्ग की परम्परा को पुन. प्रतिष्ठित और चालू रखने मे "खरतरगच्छ' की महान देन है। प्राचीन जैन साहित्य-इतिहास-पुरातत्व जो भी वर्तमान मे उपलब्ध है उसका पचास प्रतिशत भाग खरतरगच्छ के जैन मुनियो, श्रावको आदि ने रचित किया है। पुरातत्वाचार्य स्व० मुनि जिनविजयजी तो खरतरगच्छ के साहित्य से इतने प्रभावित थे कि उन्होने निरपक्ष भाव और मुक्त हृदय से लिखा है—

"खरतरगच्छ मे अनेक वडे-वडे आचार्य, वडे-वडे विद्यानिधि उपाध्याय, वडे-वड़े प्रतिभाशाली पडित मुनि और वडे-वड़े मान्त्रिक, तान्त्रिक, ज्योतिर्विद्, वैद्यक विशारद आदि कर्मठ यतिजन हुए जिन्होने अपने समाज की उन्नति, प्रगति और प्रतिष्ठा के वढाने मे वडा योग दिया है। सामाजिक और साम्प्रदायिक उत्कर्ष के सिवाय खरतरगच्छ अनुयायियो ने संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एव देश भाषा के साहित्य को भी समृद्ध करने मे असाधारण उद्यम किया और इसके फलस्वरूप आज हमे भाषा, साहित्य, इतिहास दर्शन, ज्योतिष, वैद्यक आदि विविध विषयो का निरूपण करने वाली छोटी-वडी सैकडो हजारो पुस्तके और ग्रन्थ आदि कृतियाँ जैन भंडारो मे उपलब्ध हो रही हैं। खरतरगच्छीय विद्वानो द्वारा की हुई यह उपासना न केवल जैन धर्म की दृष्टि से ही महत्व वाली है, अपितु सम्मुच्चय भारतीय सस्कृति के गौरव की दृष्टि से भी उतनी ही महत्ता रखती है।

"साहित्योपासना की दृष्टि से खरतरगच्छ के विद्वान यति मुनि वड़े उदारचेता मालूम देते है। इस विषय मे उनकी उपासना का क्षेत्र, केवल अपने धर्म या सम्प्रदाय की वाड से वद्ध नही है। वे जैन और जैनेतर वाङ्मय का समान भाव से अध्ययन-अध्यापन करते रहे है। व्याकरण, काव्य, कोष, छन्द, अलंकार, नाटक, ज्योतिष, वैद्यक और दर्शनशास्त्र तक के अगणित अजैन ग्रन्थो पर उन्होने अपनी

पांडित्यपूर्ण टीकाएँ आदि रचकर तत्तद् ग्रन्थों और विषयों के अध्ययन कार्य में बड़ा उपयुक्त साहित्य तैयार किया है।"

खरतरगच्छ के गौरव को प्रदर्शित करने वाली ये सब बातें मैं यहाँ पर बहुत ही संक्षेप रूप में, केवल सूत्र रूप में ही उल्लेखित कर रहा हूँ।

खरतरगच्छ में योग अध्यात्म की अनूठी परम्परा रही है। योगीराज आनन्दघन, चिदानन्दजी श्रीमद् देवचन्द जी, मस्तयोगी ज्ञानसागरजी (नारायण बाबा) अध्यात्मयोगी सहजानन्दघन आदि इसी परम्परा में हुए हैं। वर्तमान में माता धनबाई भी हम्पी की गुफाओं में अलख जगा रही हैं। जैनतीर्थों में शत्रुंजय, गिरनार, राणकपुर, कापरडा, नाकोडा और उत्तर पूर्व भारत में दिल्ली से लेकर गौहाटी तक सभी कल्याणक तीर्थ या मन्दिर खरतरगच्छ के आचार्यों व मुनियों की देन हैं। इनके निर्माण व जीर्णोद्धार में इसी गच्छ के मुनियों व श्रावकों ने योगदान दिया है। संक्षिप्त में यूँ कहा जावे—चौबीसों तीर्थंकरों की कल्याणक भूमियों को तीर्थरूप देने में इसी गच्छ के आचार्यों व मुनियों की सूझ-बूझ थी।

सही मायनों में 'युगप्रधान" शब्द को सार्थक करने वाले चारों दादा इसी गच्छ की परम्परा के हैं जिनके नाम की माला समस्त जैन व अनेकों जैनेतर प्रतिदिन जपते हैं। समस्त भारत में जहाँ भी श्वेताम्बर जैनों के घर हैं, जैन दादावाडियाँ बनी हुई हैं जो आज करोडों-अरबों की जैन-सम्पत्ति है। इसी "युगप्रधान" शब्द व "दादावाडी" का चमत्कार देखकर अन्य जैन समाज भी इन्हीं दोनों का प्रयोग कर अपने को धन्य मान रही है।

नवांगी टीकाकार श्री अभयदेवसूरि की आगम टीकाएँ, उपाध्याय जसमाम की "युगप्रधानाचार्य गुर्वावली", आचार्य श्री जिनप्रभसूरि का 'विविध तीर्थ कल्प" आचार्य अभयदेवसूरि का "जयंतविजय" श्री जिनचन्द्रसूरि की 'सम्वेग रंगशाला" महाकवि समयसुन्दर की "अष्ट लक्षी" आदि ग्रन्थ विश्व साहित्य के अजोड ग्रन्थ हैं। बाबा आनन्दघन के चौबीसी और पद तो अपने आप में अनूठे हैं ही।

खरतरगच्छ के श्रावक श्राविकाओं ने अनेक धर्मकार्य किये मन्दिर मूर्तियाँ बनाई तीर्थों के जीर्णोद्धार करवाये, हजारों हस्तलिखित प्रतियाँ लिखवाई। विविध धर्म प्रभावना के कार्य किये। उनका अपना महत्त्व है। संघपति सामजी शाह नरे-रतन सेठ, मोतीचन्द नाहटा मन्त्रीश्वर कर्मचन्द बच्छावत दीवान अमरचन्द सुराणा, देशभक्त अमरशहीद अमरचन्द बांठिया, सेठ सिरेमल बापना, जगत सेठ परिवार की माणकदेवी, नवलखा परिवार के राजा भारमल आदि अनेक श्रावक श्राविकाएँ हुई हैं जिन्होंने जैनशासन की अनुपम सेवा की है। विद्वान श्रावकों में इस युग में स्व० अगरचन्द जी नाहटा का अकेला ही ऐसा नाम है जिन्होंने अपनी पचास वर्ष की साहित्य-साधना से माँ भारती के ज्ञान भंडार का अनुपम ज्ञान रत्नों से भर दिया और "विश्व के महान-पुरुषों के सन्दर्भ कोष" में उनका नाम आदर से जुड गया, जो अमेरिका से प्रकाशित हुआ है।

इसी गौरवमयी परम्परा में खरतरगच्छ के वर्तमान में साधु-साध्वियाँ यद्यपि संख्या में अत्यन्त अल्प हैं फिर भी वे अपनी त्याग-तपस्या एवं विद्वता से जैन एवं जैनेतर समाज में अपना विशिष्ट प्रभाव जमाये हुए हैं। ऐसी खरतरगच्छ की गौरवमयी परम्परा की आगमज्ञा विदुषीवर्या, शान्त सरल स्वभाव यथानाम तथागुण को सार्थक करने वाली प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री जी महाराज सादर का अभिनन्दन कर अपने को कृत-कृत्य मान रहे हैं। उनके चरणों में शतशः नमन-अभिनन्दन। ●

□ श्री भँवरलाल नाहटा

खरतरगच्छ के तीर्थ व जिनालय

आर्यावर्त्त मे तो तीर्थ शब्द अत्यन्त श्रद्धास्पद है ही, समस्त विश्व मे भी महत्वपूर्ण धार्मिक स्थानो या महापुरुषो मे सम्बन्धित अधिस्थानो को सभी धर्मो मे आदरणीय माना जाता है। 'तीर्यते अनेन यत्तत्तीर्थ' अर्थात् जिसके द्वारा तिरा जाय उसे तीर्थ कहते है। यह शब्द जैन परम्परा मे प्रवचन या चतुर्विध सघ का द्योतक होने से उसके कर्त्ता तीर्थंकर कहलाते हैं। यो तीर्थ शब्द तद्विषयक पारगामित्व के कारण ही व्याकरणतीर्थ, न्यायतीर्थ, काव्यतीर्थ आदि मे प्रयुक्त होता है एव इसी प्रकार गगा, त्रिवेणी, मागध आदि तीर्थ—तिरने के घाट भी लोक प्रसिद्ध हैं। यहाँ और अधिक स्पष्टीकरण के लिए 'तीर्यते संसार सागरो येन तत् तीर्थम्' परिभाषा द्रष्टव्य है। तीर्थ दो प्रकार के होते हैं—एक जंगम और दूसरा स्थावर। जंगमतीर्थ हैं आत्मस्थ महापुरुष आचार्य, उपाध्याय और साधुजन एवं स्थावर तीर्थ हैं वे स्थान, जहाँ पर तीर्थंकर भगवंतो का च्यवन, जन्म दीक्षा एव केवलज्ञान और निर्वाण हुआ है। आचारांग सूत्र, आवश्यक निर्युक्ति और भाष्यादि प्राचीनतम आगमो मे इन तीर्थो का उल्लेख पाया जाता है, जो कल्याणक भूमि अथवा भगवान के विचरण द्वारा पवित्रित है। आचारागनिर्युक्ति की गाथा ३२९ से ३३२ तक कल्याणक-भूमियों, देवलोक के विमान, असुरादि के भवन, मेरुपर्वत व नन्दीश्वर के चैत्यों व भूमिस्थ व्यन्तर नगरो मे वर्त्तमान जिनप्रतिमाओ तथा अष्टापद, उज्जयन्त, गजाग्रपद धर्मचक्र, पार्श्वनाथतीर्थ, रथावर्त्त और चमरोत्पात तीर्थों को नमस्कार किया गया है।

इन गाथाओ मे निर्युक्तिकार भद्रबाहु स्वामी चतुर्दश पूर्वधर श्रुतकेवली द्वारा शाश्वत चैत्यो के साथ अशाश्वत सात तीर्थों का वन्दन किया है। अत शास्त्र एव इतिहास प्रमाण से तीर्थो का अस्तित्व एव उनकी उपादेयता निर्विवाद अनादिकालीन सिद्ध है।

चैत्यवंदन कुलक की गाथा मे १ मंगल, २ निश्रागत, ३ अनिश्रागत, ४ भक्तिचैत्य और ५ शाश्वत चैत्यो का प्रकार जिनेश्वर भगवान् द्वारा उपदिष्ट बतलाया है। मंगलचैत्य मन्दिरो व सद्गृहस्थो के द्वार पर, निश्राकृत व्यक्तिगत अधिकार वाले गृहचैत्यालय, अनिश्राकृत सार्वजनिक जिनालय, भक्तिचैत्य पाँच कल्याणक व तपोभूमि पर, शाश्वत चैत्य नंदीश्वरद्वीप, मेरुपर्वतादि तथा देवविमान व भवनो के अकृत्रिम चैत्य हैं। शाश्वतचैत्यों मे स्वर्ग के देव, जघाचरण विद्याचरणादि मुनि व लब्धिधारी और उन के साहाय्य प्राप्त जन दर्शन-पूजन करते हैं जिससे अनादिकालीन जिनप्रतिमा का दर्शन-पूजन स्वतःसिद्ध है।

मूर्ति आदि के अवलम्बन बिना ध्यानसिद्धि व निरालम्बध्यानश्रेणि प्राप्त करना असभव है । इतिहास प्रमाण व शास्त्रप्रमाण से मूर्त्ति के बहाने मूर्तिमान की पूजा है और उसके प्रति श्रद्धान्वित हुए बिना सम्यक्दर्शन और मोक्षप्राप्ति तीन काल मे भी सभव नही ।

भगवान के समवशरण मे तीनो दिशाओ मे भगवान के बिम्ब होते थे, अर्थात् नौ पर्षदाएँ तो उन्ही के दर्शन से सम्यक्त्व प्राप्त करते थे, केवल पूर्वाभिमुख भगवान् के साक्षात् दर्शन तीन पर्षदाओ को होते थे । श्रीदेवचन्दजी महाराज ने लिखा है कि मुनि अपने स्थान से जिनवन्दन, ग्रामान्तर विहार, आहार हेतु गोचरी और स्थडिल भूमि—इन चार कारणो से ही उठते हैं । महानिशीथ सूत्रानुसार यदि मुनि जिनवन्दनार्थ, जहा जिनालय हो न जाय तो उसे पाच उपवास का दण्ड आता है । मूर्त्तिपूजा के कट्टर विरोधी मुस्लिम भी तीर्थयात्रा (हज) को महत्त्व देते है।

सम्राट मुहम्मद तुगलक सुप्रसिद्ध खरतरगच्छाचार्य श्रीजिनप्रभसूरि से इतना प्रभावित था कि उसने भगवान् महावीर की प्रतिमा को अपने उच्च अधिकारियो के कधे पर चढाकर आदर सहित बुलाया एव दिल्ली मे जिनालय, उपाश्रय और जनबस्ती (मुलतानसराय भट्टारकसराय) आदि को राज्य की ओर से निर्माण कराया । इतना ही नही सम्राट स्वय सूरिजी के साथ शत्रुजय यात्रार्थ गया । जैन अमूर्त्तिपूजक वीतराग देव के मन्दिरो को अमान्य कर हृदय की माग को बालीजी, भैरोजी रामदेवजी आदि ही नही पीरो तक को मानकर पूर्ण करता है । जबकि अनादिकाल से मान्य जिनप्रतिमा को पाँच सौ वर्ष पूर्व तक किसी ने अमान्य नही किया । कई लोग बडे आडम्बर का कारण कहकर बहाना बनाते हैं पर सचमुच मे देखा जाय तो आज का आडम्बर उस चैत्यवासी युग के अविधि मार्ग मे बढकर कुछ भी नही । मन्दिरो मे वेश्यानृत्य पानचर्वण रात्रि मे अनुष्ठान, गद्दे-तकिये लगाना मठधारी के लिए सामान्य था । जिसका विरोध हरिभद्रसूरिजी से लगाकर श्री वर्द्धमानसूरि जिनेश्वरसूरि, जिनवल्लभसूरि, जिनदत्तसूरि जिनचन्द्रसूरि, जिनपतिसूरि आदि आचार्यो ने विधि मार्ग प्रचारित कर चैत्यवासियो के विरोध द्वारा जनधर्म को बौद्धो की भाति, तिरोभाव होने से बचा लिया । इन महान आचार्यो ने विधिचैत्यो की प्रतिष्ठा की अविधिवर्जित आज्ञा को शिलोत्कीर्णित किया और त्याग वैराग्य भाव वाले चैत्यवासियो को उपसम्पदा देकर सुविहित मार्ग मे प्रविष्ट कराया ।

जैन तीर्थो पर चैत्यवासियो का प्रभाव अल्प ही था फिर भी दुष्प्रभाव न बढे इसलिए विधि चैत्य और खरतरवसही निर्माण का कार्य यथावश्यक चालू रहा । अणहिलपुर पाटण मे दुर्लभराज की सभा मे शास्त्रार्थ कर चैत्यवासियो को पराभूत करने से पूर्व तो सुविहित साधुओ का चतुप्रवेश भी गुजरातादि मे नही था । स्वय वर्द्धमानसूरि, जिनेश्वरसूरि आदि १८ ठाणा को ठहरने तक का स्थान चैत्यवासियो के आतक के कारण नही मिला था । उनके अधिकृत स्थानो मे दर्शन-पूजन भक्तिभाव मे विघ्न बाधा की उपस्थिति के कारण स्थान स्थान पर विधिचैत्यो ने प्रतिष्ठित होकर तीर्थ का रूप धारण किया ।

सम्यक्त्व सप्तति टीकादि के अनुसार आबूतीर्थ के निर्माता विमलमन्त्री और तिलकमञ्जरी के कर्त्ता कवि धनपाल का सम्बन्ध वर्द्धमानसूरि और जिनेश्वरसूरि से था । आबू की सुप्रसिद्ध कलापूर्ण विमलवसही की प्रतिष्ठा स० १०८८ मे वर्द्धमानसूरि आदि आचार्यो ने करवायी थी । जिसका उल्लेख प्रबन्धो व पट्टावलियो मे सप्राप्त है । वृद्धाचार्य प्रबन्धावली के अनुसार आबू की प्राचीन प्रतिमा श्रीवर्द्धमानसूरिजी द्वारा ही प्रगट हुई थी । 'वद्धमाणसूरिहिं तित्थ पयडिय' अर्थात् वर्द्धमानसूरि ने आबूतीर्थ को प्रगट किया ।

स्तभन पार्श्वनाथ भगवान् की सातिशय प्रतिमा नवागीवृत्तिकारक अभयदेवसूरिजी द्वारा जयतिहुअण स्तोत्र की रचना/स्तवना से प्रगट हुई और प्रभु के न्हवण जल से आचार्यश्री का रोग उपशान्त हो गया। आज यह तीर्थ खभात नगर मे सप्रभावी है। उनके पट्टधर श्रीजिनवल्लभसूरि ने चित्तौड, नागौर आदि अनेक नगरो में विधिचैत्यो की स्थापना करवायी और चित्रकूटीय प्रशस्ति उत्कीर्ण करवाकर विधिचैत्यो के नियम लिखवाये। इस अष्टसप्तति का विशद परिचय महोपाध्याय विनयसागर जी द्वारा लिखित श्रीजिनदत्तसूरि सेवा सघ की स्मारिका मे प्रकाशित किया गया है।

परम पितामह युगप्रधान श्री जिनदत्तसूरिजी ने अजमेर, कन्यानयन, विक्रमपुर, नरहड आदि अनेक स्थानो में विधिचैत्य स्थापित करवाये। जागलू तथा अजयपुर में एक ही दिन मे प्रतिष्ठित प्रतिमाएँ है जिनमे विधिचैत्य का नाम है। यह अवश्य ही जिनदत्तसूरि द्वारा प्रतिष्ठित हैं। उनके पट्टधर मणिधारी श्रीजिनचन्द्रसूरिजी ने भी कई प्रतिष्ठाएँ कराई थी।

वादि विजेता श्रीजिनपतिसूरिजी ने कन्नाणा मे अपने चाचा साह मानदेव कारित जिस महावीर प्रभु की प्रतिमा की प्रतिष्ठा की वह भी अपने अतिशय के कारण तीर्थरूप मे मान्य हुई और श्रीजिनप्रभसूरिजी को मुहम्मद तुगलक वादशाह ने भेट की और मन्दिर-निर्माण कराके प्रतिष्ठित की, वह मन्दिर सतरहवी शती तक विद्यमान होने के प्रमाण मिलते है। विविध तीर्थकल्प के दो कल्पो मे इनके चमत्कारो का विशद वर्णन है।

युगप्रधानचार्यगुर्वावली के अनुसार आचार्य श्रीजिनपतिसूरिजी महाराज अजमेर से अनेक नगरो के विशाल सघ के साथ तीर्थयात्रा हेतु निकले और चन्द्रावती आदि होते हुए आशापल्ली पधारे। वहाँ सेठ क्षेमंधर के पुत्र प्रद्युम्नाचार्य से शास्त्रार्थ का उपक्रम चला और इसी वीच स्तभन, गिरनारादि यात्रा करके आये। इस यात्रा का विस्तृत वर्णन नही मिलता। यह प्राप्त प्रमाणानुसार स० १२४४ की सघ यात्रा थी।

स० १३२६ मे स्वर्णगिरि से भुवनपाल के पुत्र अभयचद्र तथा देदा आदि के सघ सहित श्रीजिनेश्वरसूरि, जिनरत्नसूरि, चन्द्रतिलकोपाध्याय आदि १३ साधु और १३ ठाणा लक्ष्मीनिधि महत्तरादि साध्वियों के साथ पधारे। शत्रुञ्जय मे वीस हजार और उज्जयन मे १७ हजार भण्डार में आमदनी हुई।

इन दिनो स्वर्णगिरितीर्थ बड़ी उन्नति पर था। वहाँ जिनालयो की प्रतिष्ठा, दीक्षादि अनेक उत्सव हुए। बीजापुर, पालनपुर आदि मे सर्वत्र प्रतिष्ठाएँ हुई। श्रीजिनप्रबोधसूरिजी ने तारगा, स्तभन तीर्थ, भरौच आदि की सघ सहयात्रा की। स० १३३४ मे भीलड़ियाजी मे दीक्षा और प्रतिष्ठा महोत्सव हुए। चित्तौड में भी प्रतिष्ठा स्वर्णगिरि मे भी हुई।

स० १३३७ मे वीजापुर के वासुपूज्य विधिचैत्य मे अनेक दीक्षा प्रतिष्ठादि उत्सव हुए जिसमे वहाँ तीस हजार की आमदनी हुई। गढसिवाणादि के बाद स० १३४० में जैसलमेर, विक्रमपुर आदि तीर्थो मे प्रभावना कर जावालिपुर मे महती धर्मप्रभावना करके श्रीजिनप्रबोधसूरि स० १३४१ मे स्वर्गवासी हुए।

कलिकालकेवली श्रीजिनचन्द्रसूरिजी के उपदेश से स० १३५२ में वा० राजशेखर सुबुद्धिराज, हेमतिलक, पुण्यकीर्ति आदि गणिवरो ने वडगाँव मे विहार किया। वहाँ के श्रावको के साथ कौशाम्बी, वाराणसी, काकन्दी, राजगृह, पावापुरी नालदा, क्षत्रियकुण्ड, अयोध्या रत्नपुर यात्रा करते हुए हस्तिना-

पुर तक यात्रा कर वापस आये और विहार नगर में चातुर्मास किया। इधर आचार्यश्री अनेक स्थानों, तीर्थों, पाटण, साचौर, शंखेश्वरजी आदि में विचर कर ध्वजारोहण, उद्यापना उत्सव कराके भीमपल्ली आये और बीजापुर में चौमासा कर जावालिपुर आये।

सं० १३५४ ज्येष्ठ वदी १० को जावालिपुर में अनेक महोत्सव हुए। सिरियाणक गाँव में महावीर प्रासादोद्धार कर बड़े ठाठ से सं० १३५५ में महावीरप्रभु स्थापित किए। सं० १३५८ जसलमेर के पार्श्वनाथ विधिचैत्य में समेतशिखरादि बिम्बों की प्रतिष्ठा की। सं० १३६१ में शांतिनाथ विधिचैत्य में व० सु० ६ को जावालिपुर नवालक्ष देश के संघ की उपस्थिति में श्रीपार्श्वनाथादि नाना बिम्बों की प्रतिष्ठा की।

सं० १३६६ में खंभात के सा० जेसल ने अपने बड़े भाई तालिय के संघपति पद और लघुभ्राता सा० लाग् के पृष्ठरक्षक पद संभालने पर श्रीपत्तन, भीमपल्ली वाहडमेर शम्यानयनादि के संघ एकत्र होने पर स्तंभ तीर्थ से देवालय प्रचलन महोत्सव किया। आचार्यश्री जिनचन्द्रसूरिजी साधु-साध्वियों सहित पीपराउली गाँव से शत्रुंजय महातीर्थ पर्वत का अवलोकन करते हुए पहुँचे। सा० सलखण के पुत्र मोहन ने इन्द्रपद महोत्सव विस्तारपूर्वक किया। शत्रुञ्जय यात्रा के पश्चात् वटकापद्रव रहते हुए श्री सौराष्ट्र में भ० नेमिनाथ और अंबिकादेवी के सान्निध्य में सुखपूर्वक गिरनारजी की तलहटी में पहुँचे। सा० फुलचन्द्र के पुत्र बीजड ने इन्द्र पद लिया। भगवान् नेमिनाथ को नमस्कार कर संघ सहित खम्भात पहुँचे। सा० जेसल ने देवालय और पूज्यश्री आदि का प्रवेश महोत्सव कर चातुर्मास कराया। बीजापुर में सं० १३६७ में वासुपूज्य स्वामी को वंदन किया। मिती माघ कृष्णा ६ को श्रीमहावीर स्वामी आदि के शैलमय बिम्बों की बड़े समारोह से प्रतिष्ठा की।

इसके पश्चात् भीमपल्ली के सेठ सामल ने अनेक नगरों के संघ को आमंत्रित कर बड़े विस्तार से तीर्थ यात्री संघ का आयोजन श्रीजिनचन्द्रसूरिजी महाराज के नेतृत्व में किया। चैत्र शुक्ला १३ को देवालय के साथ संघ का प्रस्थान हुआ। श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ तीर्थ में वन्दना कर आठ दिन पर्यन्त महामहोत्सव का आयोजन कर भक्ति की। वहां पाटला ग्राम के श्री नेमिनाथ तीर्थपति को नमस्कार कर १६ साधु और १५ साध्वियां सहित संघ शत्रुंजय गिरिराज की यात्रा कर समारोहपूर्वक गिरनार तीर्थ पहुँचे। गीत-गान और वादित्रादि के साथ तीर्थों की यात्रा की। स्वधर्मीवात्सल्य और अवारित सत्र चालू थे। भिन्न भिन्न श्रावकों व संघपति आदि ने जो लाभ लिया वह गुर्वावली में विस्तार से वर्णित है। वायड गाँव में श्री महावीर (जीवित) स्वामी की यात्रा बड़े विस्तार से करके श्रावण कृष्णपक्ष में भीमपल्ली में प्रवेशोत्सव हुआ।

श्रीजिनचन्द्रसूरिजी महाराज भीमपल्ली से जावालिपुर पधारे। ज्येष्ठ वदी १० को दीक्षा माला रोपणादि अनेक महोत्सव हुए। इसके पश्चात् म्लेच्छों द्वारा जावालिपुर का भंग होने से आप ग्रामों में संघ को सन्तुष्ट कर रुणापुर से ३०० गाड़ों में संघ सहित श्रीफलवर्धी तीर्थयात्रार्थ पधारे। म्लेच्छ व्याकुल समय में दयाल्पी खार समुद्र में भगवान् पार्श्वनाथ की अमृतकूप तुल्य यह समारोहपूर्वक यात्रा महोत्सव हुआ। फिर नागौर संघ की विनती से नागौर पधारे।

इसके पश्चात् सिन्धु देश के ग्राम नगरों में विचरकर फिर संवत् १३७४ में शहर में लौटे। कन्यानयन-वागड़ देश और सपादलक्ष देश के संघसह द्वितीय बार फलवर्द्धि तीर्थ की यात्रा की। अवारित

सत्र और स्वधर्मी वात्सल्यादि का बड़ा ठाठ रहा। फिर तीसरी बार दिल्ली, हरियाणा-बागड़ सवालख, मरुधर देश के संघ सहित अत्यन्त ठाट-बाट से यात्रार्थ पधारे।

संवत् १३७५ वैशाख वदी ८ को मन्त्रीदलीय ठा० प्रतापसिंह के पुत्र अचल ने सुल्तान कुतुबुद्दीन से फरमान प्राप्त कर नागौर, रूण, कोसवाणा, मेड़ता, नौहा, झुंझनूं, नरहड़, कन्यानयन, आसिका (हाँसी), दिल्ली, धामइना, यमुनापार नाना स्थान वास्तव्य संघ के साथ हस्तिनापुर, मथुरा यात्रार्थ श्रीजिनचन्द्रसूरि सपरिकर यात्रा की। श्री महावीर जी, कन्नाणा तीर्थ में आठ दिन तक अठाई महोत्सवादि महान् धर्मप्रभावक कार्य किये। यमुना पार बागड़ देशीय संघ के ४०० घोड़े, ५०० गाड़ियाँ, ७०० वृषभ थे। चातुर्मास खंडासराय में करने को रुके फिर मथुरा तीर्थ की यात्रा भी बड़े विस्तार से की। मथुरा में सुपार्श्व, पार्श्व और महावीर तीर्थंकरों की यात्रा हुई। अवारित सत्र और स्वधर्मीवात्सल्यादि का बड़ा ठाठ रहा। दिल्ली में दादा श्रीजिनचन्द्रसूरि स्तूप की दो बार समारोहपूर्वक यात्रा की। लौटते हुए फिर कन्यानयनीय महावीर जी आदि तीर्थों की यात्रा कर ११ मास ठहरे फिर २४ दिन मेड़ता में रुक-कर कोसवाणा पधार कर स्वर्गवासी हुए।

सं० १३७९ में गुजरात की राजधानी पाटणतीर्थ में शान्तिनाथ विधिचैत्य में बड़े भारी समारोह से प्रतिष्ठोत्सव हुआ। इसी दिन शत्रुंजय तीर्थ पर आदिनाथ विधिचैत्य का निर्माण आरम्भ हुआ। वहाँ के लिए भी पाषाण, रत्न और धातुमय अनेक जिनबिम्ब, गुरुमूर्तियों आदि की प्रतिष्ठा श्रीजिनकुशलसूरिजी महाराज ने की। बीजापुर के वासुपूज्य तीर्थ की यात्रा करने पधारे। तीसरा चौमासा भी पाटण में हुआ।

शत्रुंजय के मानतुंग विहार-खरतरवसही के मूलनायक हेतु २७ अंगुल की अति उज्ज्वल बिम्ब निर्माण हुआ और अनेक पाषाण व धातुमय बिम्ब गुरुमूर्तियों की प्रतिष्ठा हेतु शत्रुंजय गिरराज यात्रा की, कुंकुम पत्रिकाएँ भेजी गईं और दिल्ली के रयपति आदि अनेक श्रावक श्रीजिनकुशलसूरिजी का आदेश प्राप्त कर सुलतान गयासुद्दीन तुगलक के फरमान के साथ सभी नगर प्रान्तों के संघसहित पाटण आये। उन्हें श्रीजिनकुशलसूरिजी १७ साधु और १९ साध्वियों का साथ/सान्निध्य प्राप्त हो गया। यह संघ कन्यानयन के श्रीमहावीरजी, नरभट के नवफणा पार्श्वनाथ, फलौदी पार्श्वनाथ, जालौर-स्वर्णगिरि आदि मार्गवर्ती तीर्थों की यात्रा करके आया था। पाटण से मार्ग में श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ की यात्रा कर आषाढ वदी ६ के दिन सूरिजी श्री शत्रुंजय महातीर्थ पहुंचे। श्री जिनकुशलसूरिजी ने विद्वत्तापूर्ण नव्यस्तोत्र-स्तुति रचना द्वारा प्रभु को नमस्कार किया। प्रतिष्ठा महोत्सव अभूतपूर्व उत्साह से समारोहपूर्वक हुआ। मिती आषाढ वदी ७ को जलयात्रा करके आदिनाथ भगवान् के मूल मन्दिर में नेमिनाथस्वामी आदि के अनेक बिम्ब व अनेक गुरुमूर्तियाँ समवशरणादि की प्रतिष्ठा वदी ९ को हुई। हजारों स्त्री-पुरुषों ने नवमी के दिन नन्दि महोत्सवपूर्वक व्रत ग्रहण किये।

संघ ने बड़े आडम्बरपूर्वक प्रयाण किया और निरुपद्रव श्री गिरनार जी पहुँचे। यहाँ भी आषाढ चौमासी के दिन तीर्थपति नेमिनाथ भगवान् की नवनिर्मित स्तुति स्तोत्रों से वन्दन किया। श्रावकों ने तलहटी में आकर तीन दिन तक स्वर्णाभरण, वस्त्रादि प्रचुर परिमाण में वितरित किये। फिर समस्त संघ निराबाध रूप से श्रावण शुक्ल १३ को पाटण नगर के उपवन में पहुँचे। संघ के समाधान हेतु १५ दिन विराजकर बड़े भारी समारोह से भाद्रपद वदी ११ के दिन पाटण नगर में प्रवेश किया।

स० १३८८ मिती वैशाख वदी ५ को पाटण के शान्तिनाथ विधिचैत्य मे श्रीजिनकुशलसूरिजी द्वारा विराट प्रतिष्ठा महोत्सव सम्पन्न हुआ जिसमे अनेक नगरो के मुख्य श्रावक सघ की उपस्थिति थी। इसम जालोर के लिए महावीर प्रतिमा, देरावर के लिए आदिनाथ, शत्रुजय की वूल्हावसही के लिए श्रेयासनाथ, शत्रुजय के अष्टापद प्रासाद के लिए चौबीस जिन बिम्ब आदि २५० पाषाण व पित्तल की अगणित मूर्तिया एव उच्चापुर के लिए श्रीजिनदत्तसूरि पाटण व जालौर के लिए जिनप्रबोधसूरि देरावर के लिए जिनचद्रसूरि अम्बिका तथा स्व भडारयोग्य समोशरण की प्रतिष्ठा की।

भीमपल्ली (भीलडियाजी) के सुप्रसिद्ध श्रावक वीरदेव न सम्राट गयासुद्दीन से शत्रुजय यात्राथ फरमान प्राप्त कर देश विदेश के सघ को आमन्त्रित किया। ज्येष्ठ वदी ५ को श्रीजिनकुशलसूरि जी ठा० १२ व प्र० पुण्यसुन्दरी आदि साध्वीवृन्द सहित भीमपल्ली से साथ चले। वायड मे श्री महावीर स्वामी, सेरिसा म श्री पार्श्वनाथ आदि विविध तीर्थों म ध्वजारोप पूजा सरखेज देवालय प्रवेशाकोत्सव से आशापल्ली म युगादिदेव वदनकर मालारोपण महोत्सव किया। फिर पूज्यश्री सघ के साथ खभात पधारे। स्तभन पार्श्वनाथ और अजितनाथ भगवान् की यात्रा की। यहा आठ दिन तक वीरदव ने अनेक प्रकार के महोत्सव किय फिर धधुका महानगर म अनेक सघवात्सल्यादि हुए। शत्रुजय पहुचकर दूसरी बार यात्रा की। आठ दिन तक अनक उत्सव हुए। युगादिदेव विधिचत्य मे नवनिर्मित चतुर्विंशति जिनालय पर कलश ध्वजारोप समारोहपूवक हुआ। शत्रुञ्जय से लौटते शेरीषा पार्श्वनाथ यात्रा कर शखेश्वरजी आकर चार दिन महापूजा, अवारित सत्र, स्वधर्मीवात्सल्य, महाध्वजारोपकर पाडलालकार नेमिनाथजी की यात्रा की। फिर भीलडिया/भीमपल्ली पहुँचकर समस्त सघ को अपन-अपन स्थान विदा किया। अनेक प्रकार के उत्सव हुए। साचौर तीथ की यात्रा की, एक मास रह। नागहृद म महावीर स्वामी को वदन किया, पद्रह दिन सघ को सतुष्ट कर वाहडमेर पधारे। फिर लवणखेडा जावालिपुर समियाणा गये।

स० १३८३ फाल्गुन वदी ९ को अनक उत्सवो के आयोजन के साथ महातीथ श्रीराजगृह म मत्रीदलीय ठा० प्रतापसिंह के पुत्र अचलसिंह कारित वैभारगिरि के चतुर्विशति जिनालय के योग्य श्री महावीर स्वामी आदि अनक पाषाण व धातुमय बिम्ब, गुरुमूर्तियाँ, अधिष्ठायकादि की प्रतिष्ठा सम्पन्न की। इसी दिन प्रतिष्ठित एक प्रतिमा बीकानेर के सुपार्श्वनाथ जिनालय म है।

श्रीजिनकुशलसूरिजी महाराज न जैसलमेर महा तीथ पधारकर सिन्धु देश की ओर विहार किया। उन दिनो सिन्ध के अनेक नगरो मे प्राचीन व प्रभावशाली जिनालय एव जना की वस्ती प्रचुर प्रमाण मे थी। देवराजपुर, उच्चनगर, क्यासपुर, बहरामपुर, मलिकपुर, परशुरोर कोट विचरते हुए अनेक प्रतिष्ठादि उत्सव आयोजित हुए जिसमे पाषाण व धातुमय मूर्त्तिया की प्रतिष्ठा की। स० १३८९ तक पांच छ वष सिन्धु देश म धम प्रचार करते हुए वही स्वगवासी हुए।

श्रीजिनपद्मसूरिजी न भी आदिनाथ भगवान् और गुरुमूर्तियो की प्रतिष्ठाएँ की। स० १३९१ माघ सुदी १५ को पाटणनगर म सेठ जाल्हण के पुत्र तेजपाल (बोथरा) ने भ० ऋषभदेव आदि ८०० जिनबिम्बो की प्रतिष्ठा करवाई।

बूजद्री म सेठ छज्जन के पुत्र मोखदेव न राजा उदयसिंह के साथ जाकर सूरिजी से आबूतीथ यात्राथ विनती की। आचायजी न शातिनाथ भगवान् के रथाकार नवीन देवालय की प्रतिष्ठा की।

पन्द्रह साधु और आठ साध्वियों के साथ मारवाड़ और आमन्त्रित संघों के साथ नाणा, तीर्थवन्दन कर आबू, आरासण, चन्द्रावती, तारगा—तृशृङ्गम आदि की यात्रा की।

सुलतान मुहम्मद तुगलक श्रीजिनप्रभसूरि से बड़ा प्रभावित था। कन्यानयनीय महावीरस्वामी की प्रतिमा के चमत्कार स्वयं देख चुका था। सम्राट ने सूरिजी से पूछा—ऐसी ही प्रतिमा और कहीं चमत्कार पूर्ण है ? सूरिजी ने शत्रुंजयतीर्थ का कहा तो सम्राट सूरिजी को संघ सहित लेकर शत्रुंजय गया। रायण वृक्ष से दुग्ध वृष्टि का चमत्कार देखकर शत्रुंजयतीर्थ को कोई नुकसान न पहुँचावे—ऐसा फरमान निकाला। फिर गिरनारजी पर जाकर प्रतिमा पर घन घाव किए। प्रतिमा से अग्नि स्फुलिंग निकलने पर क्षमायाचना कर स्वर्णमुद्राएँ भेंट की। शत्रुञ्जय से नीचे उतरने पर सम्राट ने सभी देवों से उत्कृष्ट जिनेश्वर देव को प्रमाणित किया। जिनप्रभसूरिजी के जीवन-चरित्र और स्तवनों के अनुसार उन्होंने सभी तीर्थों की यात्रा की और स्तोत्र रचना तथा तीर्थों के ऐतिहासिक कल्प लिखे थे। जिनप्रभसूरिजी ने संघपति देवराज के संघ सहित सं० १३७६ जेठ वदी १३ को शत्रुंजय तथा ज्येष्ठ सुदी १५ को गिरनारजी की यात्रा की। सं० १३८२ में फलवर्द्धितीर्थ की यात्रा की थी।

सं० १४१२ में विहार निवासी महत्तियाण मण्डन के पुत्र ठक्कुर चन्दराज ने विपुलगिरि (राजगृह) पर पार्श्वनाथ भगवान् का जिनालय निर्माण कराया और श्री भुवनहितोपाध्याय ने हरिप्रभ मोदमूर्त्ति, पुण्यप्रधानगणि के साथ पूर्व देश में तीर्थयात्रा के हेतु विचर कर उक्त मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई जिसकी ३८ श्लोक की महत्वपूर्ण प्रशस्ति नाहरजी के लेखांक २३३ में प्रकाशित है।

जैसलमेर के सर्वप्राचीन श्री पार्श्वनाथ जिनालय के निर्माता राका परिवार की एक प्रशस्ति जैसलमेर भंडार सूची क्रमांक ४२६ में प्रकाशित है जो संदेहविषौषधि शास्त्र की है। उसमें पारिवारिक स्त्री-पुरुषों के नामोल्लेख सह उनके विशिष्ट धर्मकार्यों का विवरण दिया है। जैसल के पुत्र आंबराज द्वारा जो संघ देरावर यात्रार्थ गया था वह श्रीजिनोदयसूरिजी के उपदेश से गया था। सं० १४२७ में जो प्रतिष्ठोत्सव हुआ वह उच्चानगर में हुआ था। सं० १४५४ में भावसुन्दर का दीक्षोत्सव किया। सं० १४४६ में शत्रुंजय-गिरनार आदि तीर्थों की यात्रा की। जिनराजसूरिजी द्वारा मालारोपण हुआ। धन्नाधामा ने ज्ञानपंचमी का उद्यापन किया और श्रीजिनेश्वरसूरिजी के पास बहिन सरस्वती ने दीक्षा ली जिसका नाम चारित्रसुन्दरी हुआ।

सं० १४३० के पूर्व श्रीलोकहिताचार्यजी महाराज ने पूर्व देश के तीर्थों की यात्रा करके अयोध्या में चातुर्मास किया। इस यात्रा में जो प्रतिष्ठा, व्रतग्रहणादि अनेक धर्मकृत्य हुए उनके विवरणात्मक एक महत्वपूर्ण पत्र उन्होंने श्रीजिनोदयसूरिजी महाराज के पास भेजा था, वह अभी तक कहीं से भी उपलब्ध नहीं हो सका है। सौभाग्य से उसके प्रत्युत्तर में श्रीजिनोदयसूरिजी द्वारा प्रेषित विज्ञप्ति-महालेख सम्प्राप्त हुआ है जिसमें उनके समाचारों का समर्थन और मारवाड, मेवाड़, गुजरात, सौराष्ट्र आदि स्थानों की तीर्थयात्रा व धर्मोन्नायक कार्यों का सविस्तार वर्णन है। इससे ज्ञात होता है कि श्री लोकहिताचार्यजी को मंत्रीदलीय ठ० चन्द्र के पुत्र ठ० राजदेव सुश्रावक ने मगधदेश के तीर्थों व ग्राम नगरों में विचरण कराया। उन्होंने विपुलाचल, वैभारगिरि आदि की यात्रा की और विचरण कर ब्राह्मणकुण्ड, क्षत्रियकुण्ड भी पधारे। राजगृह के उपर्युक्त दोनों पहाड़ों पर उन्होंने बड़े विस्तार से जिनबिम्बादि की प्रतिष्ठा कराई थी। पुरातत्त्वाचार्य श्रीजिनविजयजी ने लिखा है कि यह पत्र बहुत ही सुन्दर और प्रौढ साहित्यिक भाषा में बाण, दण्डी और धनपाल जैसे महाकवियों द्वारा प्रयुक्त गद्य-

शैली के अनुकरणरूप एक आदर्श रचना है। आलंकारिक भाषा की शब्द छटा के साथ इसमें ऐतिहासिक घटना निदर्शक वर्णनों का भी सुन्दर पुट सम्मिश्रित है।

इस विज्ञप्ति महालेख से ज्ञात होता है कि श्रीजिनोदयसूरिजी ने नागौर में मालारोपण उत्सव कराये व तीन बार फलौदी तीर्थ की यात्रा की। कोसवाणा में श्रीजिनचन्द्रसूरिजी के चरण स्तूप वन्दना कर सोजत, नाडोल होते हुए मेवाड पधारे। मेवाड से केलवाडा और करहेडा पार्श्वनाथ पधारे। सेठ रामदेव और दूसरे बहुत से श्रावकों के नामोल्लेखपूर्वक तन सम्पन्न धर्मकार्यों का विशद वर्णन विज्ञप्ति महालेख में है। इस समय कल्याणविलास, कीर्तिविलास कुशलविलास मुनि और मतिसुन्दरी, हर्षसुन्दरी साध्वियों का दीक्षा महोत्सव हुआ। सेठ रामदेव ने सात आठ दिन पर्यन्त स्वधर्मी वात्सल्य तथा विपन्न साधर्मियों की सहायता के साथ पांच दिन तक अमारि उद्घोषणा करवायी थी। मिती फाल्गुन शुक्ला ८ सोमवार को अमृतसिद्धि योग में श्री सीमंधर युगमंधर बाहु, सुबाहु विहरमान तीर्थंकर तथा श्री जिनरत्नसूरि प्रतिमा की प्रतिष्ठा करवायी। उस समय मेवाड में म्लेच्छोपद्रव और व्यन्तरोपद्रव होते हुए भी दीक्षा और प्रतिष्ठा के उत्सव निर्विघ्न तथा सम्पन्न हुए।

श्रीजिनोदयसूरिजी ने पाटण के मन्त्री वीरा और मन्त्री सारंग आदि की विनती से गुजरात की ओर विहार किया। वे नागह्रद ईडर, वडनगर सिद्धपुर होकर पाटण पधारे। वहां से गुजरात मेवाड, मारवाड सिंध, कौशल आदि देश के संघ सहित शत्रुंजय, गिरनार की यात्रा की। शत्रुंजय के मानतुंग खरतर विहार में ध्वजारोपणादि उत्सव हुए। मूल मन्दिर में ज्येष्ठ वदी के ३ दिन ६८ प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा की।

विज्ञप्ति त्रिवेणी से विदित होता है कि सं० १४८३ का चातुर्मास मम्मणवाहणपुर में करके नगरकोट महातीर्थ का यात्री संघ निकला। उस समय सिंध के अनेक स्थान खरतरगच्छीय महापुरुषों के प्रतिष्ठित तीर्थरूप में प्रसिद्ध हो गये थे। उपाध्यायजी ने फरीदकोट आकर ब्रह्मक्षत्रिय और ब्राह्मणों आदि को प्रतिबोध देकर जैन बनाया था। यहाँ एक यात्री से समाचार ज्ञात हुआ कि अनेक तीर्थ नष्ट हो जाने पर भी सुशर्मपुर नगरकोट का सप्रभाव तीर्थ आज भी अखण्ड है। उपाध्यायजी महाराज के उपदेश से वहां के लिए संघ निकालने की तय्यारियां होने लगीं। इसी बीच उन्होंने मालपुर जाकर बड़े ठाठ के साथ श्री आदिनाथ स्वामी की प्रतिष्ठा की। वहां श्रावकों के सौ घर थे। फिर विशाल यात्री संघ निकला जिसने ज्येष्ठ सुदी ५ को नगरकोट पहुँचकर साधु क्षेमसिंह के बनवाये हुए शान्तिनाथ जिनालय के दर्शन किये जो खरतरगच्छाचार्य श्री जिनेश्वरसूरि प्रतिष्ठित था। दूसरा मन्दिर राजा रूपचन्द का बनवाया हुआ था, जिसमें महावीरस्वामी की स्वर्णमय प्रतिमा थी। तीसरा मन्दिर युगादिदेव का था जिनको वन्दन कर दूसरे दिन पहाड़ी पर कांगडा किले के अनादियुगीन आदिनाथ भगवान् के सुन्दर तीर्थ के दर्शन किये। राजा नरेन्द्रचन्द्र ने संघ का स्वागत किया। लोगों ने बताया कि यह तीर्थ श्री नमिनाथ स्वामी के समय में राजा सुशर्म ने स्थापित किया था। अम्बिका देवी के प्रक्षालन का जल और हजारों घड़े पानी से अभिषेक किया हुआ भगवान् का न्हवण जल परस्पर मिलता नहीं और दरवाजा बन्द कर देने पर भी क्षणमात्र में सूख जाता है। इस चमत्कारी तीर्थ की यात्रा कर उपाध्यायजी ने राजा नरेन्द्रचन्द्र के आमन्त्रण से राजसभा में उपदेश दिया। राजा जैन था, उसने अपने देवागार में रहे स्फटिक आदि विविध रत्नों की प्रतिमाओं के दर्शन कराये। वहां से गोपाचलपुर तीर्थ में सं० धिरिराज के बनवाये हुए शान्तिनाथ मन्दिर के दर्शन किये। नन्दवनपुर (नादौन) में महावीर स्वामी व कोटिल ग्राम में पार्श्वनाथ भगवान् की यात्रा की। देवपालपुर, कोठीपुर आदि में अपने शिष्यों को चातुर्मास के

लिए छोडा और स्वय स० १४८४ का चातुर्मास मलिकवाहण में किया। सिन्ध व पंजाब प्रान्त में उस समय खरतरगच्छ का वडा प्रभाव था, गाँव-गाँव मे मन्दिर व श्रावको के घर थे। खरतरगच्छ की रुद्र-पल्लीय शाखा के मुनिगणो का भी वहाँ चातुर्मास होता था।

सीमा प्रान्त मे देरा गाजीखान, देरा इसमाइल खान, हाजीखान देरा, नन्नू आदि सर्वत्र जैनों की वस्ती थी। सिन्ध के मुलतान नगर मे तथा अन्य अनेक नगरो मे जैनो की भरपूर वस्ती थी। खरतरगच्छ के यति-मुनियो का विचरण होता था। मरोट तथा देरावर में सर्वत्र जिनालय और दादावाडियाँ थी। लाहौर पजाव के गुरुमुकुट स्थान मे मन्त्रीश्वर कर्मचन्द वच्छावत निर्मित दादावाड़ी थी। पाकिस्तान हो जाने पर सीमा प्रान्त के मन्दिरो से प्रतिमाएँ जैन श्रावक ले आये। कराची, हाला आदि सर्वत्र जिनालय थे। हाला वाले तो अपने मन्दिर को मूर्तियाँ और ज्ञानभडार आदि ले आये। वाकी वहुत से मन्दिर आदि पाकिस्तान हो जाने पर वही रह गये। गुजरावाला में भी वडी वस्ती जिनालय व दादा साहव के चरणो के मैने स्वय दर्शन किये हैं। श्री विजयवल्लभसूरिजी महाराज वहाँ के जैनो को सुरक्षित भारत में ले आये। पजाव के भारतीय नगरो में सर्वत्र जिनालय, उपाश्रय आदि है। समाणा मे दादावाड़ी प्रसिद्ध है। हरियाणा के सिरसा, हिसार आदि नगरो मे जैनो की पर्याप्त वस्ती है। सिरसा में दो जिनालय एव दादावाडी भी है जिसके पीछे नहर किनारे लाखो की जमीन है जिस पर अन्यगच्छीय यति का जैनेतर कुटुम्वी कब्जा किये वैठा है।

स० १५५०-६० के वीच वीकानेर के मन्त्रीश्वर वच्छराज के सघ सहित यात्रा का वर्णन साधु-चन्द्रकृत चैत्य परिपाटी में है। मन्त्री वरसिह ने मुजफ्फरशाह से छ मास का फरमान प्राप्त कर शत्रुञ्जय, आवू, गिरनार का सघ निकाला। इसी प्रकार सग्रामसिह आदि का भी सघ निकला था। स० १६४४ मे युगप्रधान श्री जिनचन्द्रसूरिजी के तत्त्वावधान मे सघपति सोमजी ने शत्रुञ्जय का संघ निकाला था। इत पूर्व स० १६१६ में भी वीकानेर से शत्रुञ्जय का सघ निकला जिसका विस्तृत वर्णन गुणरगकृत चैत्य परिपाटी मे है।

स० १६५७ में लिगागोत्रीय सघपति सतीदास ने सघ निकालकर मूलमन्दिर की द्वितीय प्रदक्षिणा मे जिनालय निर्माण कराया था। श्रीमद्देवचन्द्रजी ने वहा ३६ प्रतिमाएँ होने का उल्लेख किया है। इसी वर्ष तलहटी मे वर्तमान माताघर के सामने 'सतीवाव'' नामक सुन्दर वापी वनवाई जिसे इतिहास-कारो ने शिलालेख लगा होने पर भी अहमदावाद के सेठ शांतिदास कारित लिखने की गम्भीर भूल की है।

स० १६७१ मे वीकानेर से शत्रुञ्जय का सघ निकला जो सघपति आसकरण चोपड़ा के सघ से जा मिला। विशेष जानने के लिए वीकानेर जैन लेख सग्रह देखना चाहिए।

श्रीजिनरत्नसूरिजी के पट्टधर श्री जिनचन्द्रसूरिजी के समय जोधपुर के साह मनोहरदास के सघ मे सूरिजी ने यात्रा कर उनके वनाये हुए चैत्यशृंगार मे २४ तीर्थकरो की प्रतिष्ठा की।

श्रीक्षमाकल्याण जी महाराज के समय मे स० १८६६ मे श्रीतिलोकचन्द लूणिया एव राजाराम गिडीया ने शत्रुञ्जय का सघ निकाला था। उसी समय पालीताने का सुप्रसिद्ध वडा—जहाँ वर्षी तप के पारणे होते है, निर्माण कराया गया था। जैसलमेर के सुप्रसिद्ध पटवो का सघ वहुत ही शानदार ढग से निकला जिसमे कई राज्यो की सेनाएँ तथा विशाल यात्री सघ था। इस सघ में ८० लाख रुपये व्यय हुए थे।

अजीमगज—मुर्शिदाबाद से भी अनेकश सघ निकले। सम्मेतशिखरजी आदि पूर्व देश के तीर्थों के संघ निकलते ही रहते थे। शत्रुञ्जय पर खरतरगच्छ सघ द्वारा अनेक मन्दिरादि बने तथा तलहटी के विशाल धनवसही मन्दिर भी स्वनामधन्य श्रीमोहनलालजी महाराज के हाथ से प्रतिष्ठित हैं।

श्रीमद् देवचन्द्रजी महाराज अनेक बार कचरा कीका आदि के सघसह सिद्धाचलजी पधारे और उनके उपदेश से अनेक मन्दिरो का जीर्णोद्धार हुआ जिनके अनेक शिलालेख मिलते हैं। उनके गुरु श्रीदीपचन्दजी ने भी वहा प्रतिष्ठाएँ कराई थी। श्री आनन्दजी कल्याणजी की पेन्ढी की स्थापना और शत्रुञ्जय पर कौओ का आना बन्द किया। नगर के बीच यतिजी का वडा और दादावाडी आदि हैं। पहले खरतरवसही आदि के जीर्णोद्धार वहीवट खरतरगच्छ सघ के अधीन था और यतिजी की पूरी सेवाएँ थी वाद मे अब तो सब कुछ शेष हो गया।

जैसलमेर तीर्थ तो प्रारम्भ से ही खरतरगच्छ के कीर्तिकलाप से मण्डित है। इसके बसने के पूर्व लौद्रवपुर राजधानी थी वहाँ के राजवश को प्रतिवोध देकर महान् गुरुओ ने भणशाली गोत्रादि प्रतिबोध दिये थे। यहाँ किले के सभी मन्दिर अद्भुत कलाधाम हैं जो खरतरगच्छानुयायियो द्वारा निर्मापित और प्रतिष्ठित हैं। जसलमेर का सर्वप्रथम पार्श्वनाथ जिनालय सेठ जगद्धर का बनवाया हुआ था। इनके पूर्वज आषाढ सेठ वडे धर्मात्मा थे जो पहले महेश्वर धर्म को मानने वाले थे। इन्होने व्यास की दुष्टता देखकर माहेश्वरत्व छोडकर उपकेशपुर मे आर्हत्धर्म स्वीकार कर लिया, उनका पुत्र जासुणाग और उसका पुत्र वोहित्थ था। इन्ही से वोथरा वश प्रसिद्ध हुआ। वोहित्थ के पद्मदेव और वोल्ह नामक पुत्र थे। पद्मदेव ने नागौर के पास कुडलू गाँव मे जिनालय निर्माण कराया। उनके पुत्र सुप्रसिद्ध सेठ क्षेमधर हुए जिन्होने मणिधारीजी से विधिमार्ग स्वीकार किया और स० १२१८ मे वैशाख सुदी १० को मरुकोट मे धर्कटवशीय सेठ पार्श्वनागपुत्र गोल्लक के निर्मापित चन्द्रप्रभ जिनालय मे ध्वजा दण्डकलशारोहण के समय पाच सौ द्रम देकर माला ग्रहण की। उस समय राजा सिंहबल का राज्य था। सेठ क्षेमधर के दो पुत्र महेन्द्र और प्रद्युम्न इत पूर्व चैत्यवासी परम्परा मे दीक्षित हो चुके थे। अजयपुर के विधिचैत्य के मण्डप निर्माण हेतु सोलह हजार रुपये प्रदान किये तथा हजारो पारुत्थक व्यय कर अपने कुल के श्रेयार्थ तीर्थयात्राएँ की। स० १२४४ मे अपने पुत्र प्रद्युम्नाचार्य को प्रतिबोध देने, सुविहित मार्ग मे लाने के लिए आशापल्ली मे श्रीजिनपतिसूरिजी से शास्त्रार्थ कराया था।

सेठ क्षेमधर के यशोदेवी और हसिनी नामक दो भार्याएँ थी। यशोदेवी के पुत्र जगद्धर ने ही जेसलमेर मे देव विमान तुल्य पार्श्वनाथ जिनालय का निर्माण कराया। इसी मन्दिर को सुलतान अलाउद्दीन खिलजी के समय यवन राज्य मे तोड फोड डाला गया। जगद्धर की स्त्री साढलही के पुत्र यशोधवल, भुवनपाल और सहदेव थे। यशोधवल प्रतिदिन देशान्तर से आये हुए श्रावकों की भोजनादि से भक्ति करते। भुवनपाल छ मास भूमिशयन, एकाशन, स्नान त्याग, षडावश्यक, नवकार जाप और ब्रह्मचर्य पालक थे। स० १२८८ मे आश्विन सुदी १० को पालनपुर मे श्री जिनपतिसूरि स्तूपरत्न पर ध्वजारोपण किया। श्री भीमपल्लीतीर्थ मे सौध शिखरी प्रासाद निर्माण किराया स० १३१७ मे जिनेश्वरसूरिजी द्वारा महावीर स्वामी प्रतिष्ठित कराये। इनकी पत्नी पुण्यिनी के त्रिभुवनपाल व धीदा पुत्र हुए। उनके पुत्र क्षेमसिंह और अभयचन्द्र हुए। श्री जिनेश्वरसूरिजी की सघ यात्रा मे सेनापति वने थे। सेठ जगद्धर ने श्रीमाल नगर मे समोशरण प्रतिष्ठा की और शान्तिनाथ स्वामी स्थापित किये। जैसलमेर का मुख्य जिनालय राका सेठ आम्वा द्वारा निर्मापित है। आम्वा ने स० १४२५ मे विस्तार से दरावर तीर्थयात्रा

तथा स० १४२७ मे श्री जिनोदयसूरि द्वारा प्रतिष्ठोत्सव करवाया था। स० १४३६ मे यात्री सघ निकालने तथा मोहन के पुत्र कीहट द्वारा स० १४४६ मे शत्रुजय गिरनार तीर्थ का सघ निकालने का उल्लेख है। स० १४५६ व स० १४७३ की दो प्रशस्तियाँ लगी है जिसमे "खरतरप्रासाद चूडामणि" तथा वास्तुशास्त्र के अनुसार श्रीनन्दिवर्द्धमान प्रासाद नाम लिखा है।

दूसरा मन्दिर श्रीसभवनाथ भगवान् का स० १४९४ मे चोपडागोत्रीय सा० हेमराज पूना-दीता-पाचा के पुत्र परिवार सहित वनवाकर स०१४९७ में श्री जिनभद्रसूरिजी द्वारा प्रतिष्ठित कराया। इस अवसर पर ३०० जिनविम्बो की अजनशलाका हुई। यह जिनालय भी अत्यन्त सुन्दर कलापूर्ण है जिसके नीचे तलघर में विश्वविश्रुत ताडपत्रीय ग्रन्थो का श्री जिनभद्रसूरि ज्ञान भडार है।

तीसरा अष्टापद प्रासाद व उसके ऊपर शान्तिनाथ जिनालय है। अष्टापद प्रासाद के मूलनायक कुन्थुनाथ स्वामी है। इन दोनो प्रासादो का चोपडा लाखण व सखवाल खेता ने मिलकर निर्माण कराया था। सखलाल खेता की मा गेल्ही श्राविका चोपडा पाचा की पुत्री अर्थात् लाखण की वहिन थी। ऊपर वाले प्रासाद मे ४५ पक्तियो की महत्वपूर्ण प्रशस्ति उत्कीर्णित है जिसमे सखवाल परिवार के द्वारा सम्पन्न धर्मकार्यो का राजस्थानी भाषा मे विशद वर्णन है। यह प्रतिष्ठा स० १५३६ मे हुई थी। पार्श्वनाथ जिनालय से ऊपर पुल द्वारा मार्ग है, नीचे राजमार्ग है। इस पुल पर दशावतार सहित श्रीलक्ष्मीनारायणजी की मूर्ति गवाक्ष मे विराजमान है।

प्रशस्ति मे निर्माता के धर्मकार्यो का इस प्रकार उल्लेख है—

(१) कोचरशाह ने कोरटा और सखवाली गाँव मे उत्तुग तोरणयुक्त जिनालय वनवाये। आवू, जीरावला तीर्थ की सघ सहयात्रा की, अपना समस्त धन दान कर कर्ण विरुद पाया।

(२) स० आसराज ने शत्रुजय महातीर्थ का सघ निकाला। धर्मपत्नी गेली जो चोपडा पाचा की पुत्री थी, शत्रुजय, गिरनार, आवू तीर्थो की यात्रा की। शत्रुजय पट्ट, नेमिनाथ स्वामी का सतोरण विव कराके सभवनाथ जिनालय मे स्थापित किया। तपापट्टिका वनवाई।

(३) स० खेता ने स० १५११ मे शत्रुजय गिरनार की सघ यात्रा प्रतिवर्ष करते हुए स० १५२४ मे तेरहवी यात्रा कर छहरी पालते हुए प्रभु पूजा की। छट्ठ तपपूर्वक दो लाख नवकार का जाप किया, चतुर्विध सघ की भक्ति की। अपने मामा चोपडा लाखण के परिवार सह जैसलमेरगढ पर द्विभूमिक अष्टापद प्रासाद कराके स० १५३६ फागुन सुदी ३ को जिनसमुद्रसूरिजी से प्रतिष्ठा करवायी। अनेक जिन प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित कराई। सारे मारवाड मे समकित के लड्डू और रुपयो की प्रभावना की। स्वर्णाक्षरी कल्पसूत्र लिखवाये। शातिसागरसूरि की पद स्थापना कराई। दोनो प्रासाद के दोनो तल्लो पर भमती मे जिनविव स्थापित किए।

(४) स० बीदा ने शत्रुजय, आवू, गिरनार की सपरिवार यात्रा की समकित के लड्डू व खाड की लाहण की। जिनहसमूरिजी की वर्षगाँठ महोत्सव करके प्रत्येक घर में अल्ली मुद्रा बाँटी, पंचमी तप उद्यापन व स्वर्णमुद्रादि अनेक वस्तुएँ चढाई, पाँच वार लाख नवकार जाप किया।

(५) स० सह समाज के शत्रुजय, गिरनार, राणपुर, वीरमगांव, पाटण, पारकरयात्राकर खाड व अल्ली की लाहण की। वीदा ने यात्रा से आकर प्रत्येक घर में दस-दस सेर घी की प्रभावना की।

जिनालय के द्वारों की चौकी, पउडसाणा म जाली युक्त चौदह स्वप्न कराये। खेता व सरस्वती की मूर्ति हाथियो पर बनवाइ। स० १५८१ म जिनालयो के ऊपर पुल बनवाया। ६ आवली कोट्र, कुतेक बनवाये। हजार गायें, घृत, गुड अन, रूई अनेक बार ब्राह्मणो को बाँटे।

शीतलनाथ जिनालय—यह जिनालय डागा गोत्रीय श्रावकों का बनाया हुआ है। इसका निर्माणकाल शिलालेख प्रशस्ति के अभाव म निर्माता का नामादि निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता। वृद्धिरत्नमाला के अनुसार स० १५०८ और लक्ष्मीचद सेवक कृत तवारीख के अनुसार स० १५०६ म डागा लूणसा मूणसा न कराया था। अब मूलनायक प्रतिमा भी स० १५६६ प्रतिष्ठित शातिनाथ स्वामी की है और काष्टमय परिकर पर ताम्रजटित है।

(६) चन्द्रप्रभ जिनालय—यह तिमजिला मन्दिर चौमुख चन्द्रप्रभ स्वामी की प्रतिमाएँ हैं। शिलालेख प्रशस्ति के अभाव म मूलनायक प्रतिमा पर स० १५०६ कार्तिक सुदी १३ के अनुसार इसके निर्माता भणशाली जयसिंह के पुत्र वीदा और सा० मेरा, रणधीर के पुत्र देवराजवत्सराज आदि परिवार ने निर्माण कराके जिनभद्रसूरिजी से प्रतिष्ठित कराया था। स० ५५० मे हेमध्वज रचित स्तवनानुसार मेघनादमण्डप श्रेष्ठि गुणराजकारित है।

(७) श्री ऋषभदेव जिनालय—यह जिनालय स० १५३६ फा० सु० ५ के दिन जिनभद्रसूरिजी के पट्टधर श्री जिनचन्द्रसूरिजी ने कराई थी और निर्माता गणधर चोपडा सच्चू और उसके भतीज जयवत द्वारा निर्मापित है। इस जिनालय म नवनिर्मित दादादेहरी स० १६८० म गणिवयरत्नमुनिजी महाराज की उपस्थिति म यतिवय वृद्धिचन्द्रजी द्वारा प्रतिष्ठित है।

ये सात मन्दिर दुग पर एक स्थान पर सलग्न बने हैं, आठवा मन्दिर चौगाना पाडे मे है।

(८) श्री महावीर स्वामी का मन्दिर—इसे चत्य परिपाटी के अनुसार बरधिया साह दीपा ने निर्माण कराया था। वृद्धिरत्नजी ने स० १५८१ म प्रतिष्ठित होने का उल्लेख किया है। जैसलमेर नगर म उल्लेखनीय कलापूण सुपार्श्वनाथ जिनालय है जो स० १८६६ मे तपागच्छीय सघ न निर्माण कराके श्री दीपविजय, नगविजय से प्रतिष्ठित कराया था।

दादावाडियाँ—जैसलमेर खरतरगच्छ का प्रधान केन्द्र होन के कारण नगर के चतुर्दिक् दादा वाडिया बनी हुई हैं। देदानसर, कालानसर, गडीसर, गजरूपसागर, गगासागर आदि का विशेष परिचय न देकर बेगड शाखा के महत्वपूण शिलालेख स० १६६३ का ही उल्लेख करता हूँ जहाँ छाजहड मत्री कालू द्वारा रायपुर म मन्दिर कराया लिखा है।

अमरसागर—लौद्रवाजी के माग म अमरसागर नामक सुन्दर स्थान है जहाँ आदीश्वर भगवान के ३ जिनालय हैं जिसम एक पचायती मन्दिर स० १६०३ प्रतिष्ठित है। अवशिष्ट दोनो बाफना सेठो द्वारा निर्मापित हैं। सेठ सवाईरामजी का मन्दिर छोटा है जो स १८६७ म जिनमहेन्द्रसूरि प्रतिष्ठित है। इसकी प्रतिमाएँ विक्रमपुर से आई हुई हैं जो जिनभद्रसूरि प्रतिष्ठित युल्ल गोत्र की और दूसरी सख वाल गोत्र की है। तीसरा विशाल कलापूण मन्दिर सेठ हिम्मतरायजी का तालाब के किनारे है। इसका निर्माण १६२८ म होकर जिनमुक्तिसूरि द्वारा प्रतिष्ठित है। इस मन्दिर म राजस्थानी भाषा म स १८६६ की ६६ पक्ति की ऐतिहासिक प्रशस्ति है। दूसरी प्रशस्ति २६ पक्ति की स० १६४५ की लगी हुई है। हिम्मतरायजी के पिता प्रतापचन्दजी की सपत्नीक मूर्ति सामन पश्चिमाभिमुख चौतरे मे स्थापन का उल्लेख है। मूलनायक आदिनाथ भगवान और द्वितल पर पार्श्वनाथजी और बीस विहरमान हैं। दाहिनी ओर दादा साहब के मन्दिर मे स० १६१७ प्रतिष्ठित व सामने अश्वारोही जीवनरामजी की मूर्ति स० १६२८ की है।

लौद्रव-पार्श्वनाथ तीर्थ—जैसलमेर से १० मील पश्चिम की ओर लौद्रवाजी तीर्थ है जहाँ प्राचीन काल में भाटियो की राजधानी थी। सं० १२१२ मे जैसलमेर बसने के बाद एकदम उजड़ गया। सगर राजा के पुत्र श्रीधर और राजधर ने जैन बनकर जिनालय बनवाया। फिर विप्लव में नष्ट हो जाने से सेठ खमसी ने जीर्णोद्धार कराया। पुत्र जूनसी ने जो १७वी पीढी में था, उसके पौत्र थाहरूशाह भनशाली ने सं० १६०५ में जीर्णोद्धार कराया। एक विशाल कोट मे पचमेरु या पचअनुत्तर विमान के प्रतीकस्वरूप मंदिर बने। इसकी प्रतिष्ठा श्री जिनराज सूरिजी ने कराई। चारो ओर के मन्दिर सं० १६६३ मे प्रतिष्ठित हुए। शतदल पद्म यत्र और पट्टावली पट्टक बडे महत्वपूर्ण हैं। भमती के शिखर के बाह्य भाग मे अधिष्ठाता नागराज धरणेन्द्र की बाँवी है, जो कभी-कभी स्वय भक्तो को दर्शन देते है। अष्टापदजी पर धातुमय कल्पवृक्ष विशाल और दर्शनीय है। दादावाडी सलग्न धर्मशाला मे है।

ब्रह्मसर—यह स्थान जैसलमेर से उत्तर की ओर चार कोश पर है, जहाँ स्वनामधन्य श्री मोहनलालजी महाराज के सदुपदेश से सं० १९४८ में बागरेचो द्वारा निर्मापित जिनालय है। एक मील दूरी पर दादाजी का स्थान है। लूणिया परिवार को सुरक्षित देरावर से निकालकर लाने की चमत्कारिक घटना प्रसिद्ध है।

देवीकोट—यह जैसलमेर से १२ कोश दक्षिण-पूर्व की ओर है। अब जैनो की बस्ती नही रही। जिनालय स० १८६० मे जिनहर्षसूरिजी द्वारा प्रतिष्ठित है। गाँव से बाहर दादाजी का स्थान है। जो स० १८७४ मे प्रतिष्ठित है।

पोकरण—यहाँ तीन जिनालय है। अब ओसवाल लोग बाहर जाकर बस गये, थोड़े से माहेश्वरी जैन धर्मावलम्बी हैं। मन्दिरो की व्यवस्था जैसलमेर लौद्रवा तीर्थ की पेढी के अन्तर्गत है। उपाश्रय मे दादाजी के चरण और ज्ञानभडार भी है।

फलौदी—यह नगर खरतरगच्छ का केन्द्र होने से पचासो साधु-साध्वी इसी पुण्यभूमि से खरतर-गच्छ में दीक्षित हुए। मन्दिर व दादावाड़ियो आदि का प्रभाव पर्याप्त प्रसिद्ध है। यहाँ से अनेकश. यात्री संघ भी तीर्थयात्रा हेतु निकले हैं।

खीचन—यहाँ भी खरतरगच्छ का पर्याप्त प्रभाव रहा है। मन्दिर उपाश्रय आदि है, दादावाडी भी हैं।

लोहावट—यहाँ के मन्दिर उपाश्रय ज्ञान-भडारादि प्रसिद्ध हैं। खरतरगच्छ के अनेक घर बाहर जा बसे है फिर भी गच्छ का अच्छा प्रभाव है, चातुर्मासादि होते रहते है।

ओसियांतीर्थ—यहाँ का प्राचीन जिनालय ओसवालो की उत्पत्ति होने से पर्याप्त प्रसिद्ध है। मन्दिर का जीर्णोद्धार स्वनामधन्य मोहनलाल जी महाराज के उपदेश से हुआ। यहाँ का प्रसिद्ध विद्या-धाम खरतरगच्छ की महिमामण्डित है।

जोधपुर—यह राजस्थान का प्रमुख नगर है, खरतरगच्छ की अच्छी वस्ती है। कई जिनालय, ज्ञान-भंडार और दादावाडियाँ अवस्थित है। साधु-साध्वियो के चातुर्मास होते रहते हैं।

कापरड़ाजी—जोधपुर से ३० मील सुप्रसिद्ध सौधशिखरी जिनालय वाला तीर्थ है। सुप्रसिद्ध राज्याधिकारी भानाजी भंडारी ने इसे तीन मजिल ऊँचा निर्माण कराया। अब यहाँ जैनो के घर न रहने से राजस्थान के नगरों की कमेटी ही व्यवस्था करती है।

गांगाणी—यहा एक मन्दिर है, जैनो की बस्ती न रहने से मन्दिर खाली है। स० १६६२ मे यहा भूमिगृह से अति प्राचीन मूर्तिया प्राप्त हुई थी जो सम्राट सम्प्रति और चन्द्रगुप्त द्वारा निर्मापित थी। यहा अर्जुनहेम (प्लेटिनम) की मूर्ति भी मिली थी, इससे अर्जुनपुरी नाम प्रसिद्ध था। प्राचीन अभिलेखो की लिपि अम्बिका देवी की सहायता से जिनराजसूरि ने पढी थी।

पाली—यह स्थान भी खरतरगच्छ का केन्द्र और आद्यपक्षीय खरतरगच्छ के श्रीपूज्यो की गादी रही है। मन्दिर, उपाश्रय, दादावाडी आदि हैं। साधु-साध्वियो के चातुर्मास, उपाधान आदि होते हैं।

बालोतरा—यहा खरतरगच्छ की अच्छी बस्ती और भावहर्षीय शाखा के श्रीपूज्यो की गद्दी रही है। मन्दिर, उपाश्रयादि सभी है।

बाड़मेर—यहाँ खरतरगच्छ के सहस्राधिक घर हैं और पर्याप्त सम्पन्न हैं। जिनालयादि सभी धर्मस्थान पर्याप्त प्रसिद्ध है।

नाकोडाजी तीर्थ—यह महातीर्थ पहाडो के बीच अत्यन्त प्रभावशाली है जहा श्रीकीर्तिरत्नसूरिजी के कुटुम्बी सखवाल (मखलेचा) श्रावको के आवास थे। अधिष्ठायक नाकोडा भैरव प्रत्यक्ष चमत्कारी हैं। सामने ही कीर्तिरत्नसूरि जी की मूर्त्ति विराजमान है। दो दादावाडियाँ व पहाडी पर नेमिनाथ भगवान हैं। राजस्थान के तीर्थों मे सर्वाधिक आमदनी वाला और सुव्यवस्थित है, जहा से लाखो रुपया बाहर के मन्दिरो के जीर्णोद्धारादि मे, साहित्य प्रकाशन आदि मे लगते रहते हैं। पहले इसकी व्यवस्था बालोतरा वालो के हाथो मे थी।

नागौर—यह भी अति प्राचीन नगर है जहाँ खरतरगच्छ का अच्छा प्रभाव रहा है। श्री जिनवल्लभ सूरिजी प्रतिष्ठित प्राचीन मन्दिर था। अन्य मन्दिर, दादावाडी और उपाश्रयादि प्रसिद्ध हैं।

फलोदी पार्श्वनाथ तीर्थ—यह तीर्थ मेडता रोड स्टेशन के पास है। यह अति प्राचीन है। यहाँ सभी गच्छो का प्रभाव रहा है। खरतरगच्छ युगप्रधानाचार्य गुर्वावली के अनुसार यहाँ श्री जिनपतिसूरि ने भी प्रतिष्ठा स० १२३४ मे कराई थी जो मुस्लिमो द्वारा उपद्रवित होने पर भी होना सम्भव है। यहा हरिसागरसूरि जी का स्वर्गवास हुआ, उन्होने छात्रालय स्थापित किया व दादावाडी भी है।

मेडता—यह प्राचीन नगर जैनो की पर्याप्त बस्ती वाला रहा है। चोपडा आसकरण के परिवार द्वारा निर्मापित शान्तिनाथ जिनालय की प्रतिष्ठा श्री जिनराजसूरि—जिनसागरसूरि ने करवाई थी। जिनसिंह सूरिजी महाराज का स्वर्गवास यही पर हुआ था। सुप्रसिद्ध योगिराज श्री आनन्दघन जी महाराज का जन्म और महाप्रयाण भूमि भी यही है। श्री कलापूर्णसूरि जी उनका स्मारक निर्माण का प्रशसनीय कार्य कर रहे हैं। स्टेशन के निकट दादाजी का स्थान है।

बिलाड़ा—यह अकबर प्रतिबोधक श्री जिनचन्द्रसूरि चतुर्थ दादा की स्वर्गवासभूमि है। उपाश्रय, मन्दिरादि नगर मे है। अभी प्र० श्री विचक्षणश्री जी म० की प्रेरणा से नई दादावाडी, जिनालय व यात्रियो के ठहरने के कमरे आदि बने हैं। श्री कान्तिसागरजी महाराज ने उसकी प्रतिष्ठा करवाई। आश्विन वदी २ को मेला भरता है।

अजमेर—यह दादा श्री जिनदत्तसूरिजी की निर्वाण भूमि है। यहाँ अष्टम शताब्दी के पश्चात् काफी उन्नति हुई है। आषाढ सुदी ११ को मेले मे हजारो की उपस्थिति होती है। भोजनशाला व छात्रो के रहने की व्यवस्था है। वृद्धाश्रम भी खोला गया है। नगरो मे उपाश्रय मन्दिर आदि हैं। उत्साही कार्यकर्त्ता श्री अमरचन्द जी लूणिया, महेन्द्र पारख आदि अच्छी सेवायें दे रहे हैं।

बीकानेर—राजस्थान के सभी नगरो मे खरतरगच्छ का वर्चस्व रहा है। बीकानेर बसने से पूर्व भी कई स्थान अतिप्राचीन थे। रिणी, राजलदेसर, नौहर, भटनेर, छापर, परलू आदि अनेक स्थानो मे जिनालय प्रसिद्ध थे। पूगल, सोरुडा, छापर, ददरेवा, पल्लू आदि मे अब मन्दिर नही रहे है। राव बीकाजी ने बीकानेर बसाया तभी से मन्दिरो का निर्माण होना प्रारम्भ हो गया था। सोलहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में चार मन्दिर बने जिनमें तीन मन्दिर खरतरगच्छीय महानुभावो ने के एक कवलागच्छ का था। सोलहवी शताब्दी मे चिन्तामणिजी, भाण्डासरजी और नमिनाथजी तीनों मन्दिर शिल्पकला की दृष्टि से उच्च कोटि के थे। भांडासर जी का मन्दिर तो त्रैलोक्य दीपक नाम से प्रसिद्ध था। सतरहवी शताब्दी मे समयसुन्दर जी ने बीकानेर नगर की तीर्थरूप मे गणना की है– बीकानेरज वंदिये, चिरनंदिये रे अरिहंत देहरा आहे। तीरथ ते नमु रे। ये चार मन्दिर १७वी शती मे बने। बाद मे १६वी शताब्दी मे सब मिलाकर ३५ मन्दिर हो गये। जागल देश की राजधानी जागलू थी जिसका अजयपुर उपनगर था। वहाँ की एक ही मिती मे प्रतिष्ठित दो प्रतिमाएँ स० ११७६ मिती मिगसर वदी ६ के विधिचैत्यो की हैं। विक्रमपुर प्राचीन नगर भी बीकानेर रियासत के भूभाग मे है जहाँ सवालाख नव्य जैन प्रतिबोध मे मन्दिर प्रतिष्ठाएँ आदि श्रीजिनदत्तसूरि जी महाराज ने की थी। द्वितीय दादा की जन्मभूमि भी वही है जहाँ अब कुछ भी पुरातत्व नही बचा है। बीकानेर रियासत मे चूरु, सुजानगढ आदि के जिनालय कलापूर्ण व दर्शनीय है। श्रीचिन्तामणिजी के भूमिगृह मे ११०० जिनप्रतिमाएँ इतिहास की अमूल्य निधि हैं। विशेष जानने के लिए हमारा "बीकानेर जैनलेख सग्रह" ग्रन्थ द्रष्टव्य है।

बीकानेर से अनेकश. महातीर्थो के सघ निकले है। बीकानेरी संघ द्वारा निर्माण कराये हुए जिनालय तीर्थो मे सर्वत्र है। सम्मेतशिखर, शत्रुजय, सौरीपुर, गिरनार आदि मे उसके प्रमाण विद्यमान है। शत्रुजय पर खरतरजयप्रासाद, तलहटी की सतीवाव स. १६५७ मे लिगागोत्रीय सेठ सतीदास की अमरकीर्ति है। खरतरवसही तो कर्मचन्द्र बच्छावत के पूर्वजो द्वारा निर्मापित है। मंत्रीश्वर कर्मचन्द्र के पूर्वजो ने पाटण, भीलडियाजी, कुडलू, जैसलमेर, लाहौर, अमरपुर, बीकानेर, ताल, फलोदी, सीरोही, तोसाम, सागानेर आदि स्थानो मे अनेक जिनालय व दादाबाडियो का निर्माण कराया था। सम्राट अकबर ने समस्त तीर्थ मन्त्रीश्वर के अधीन कर दिये थे—"मन्त्री साच्चक्रिरे नून, पु डरीकाचलादय" (कर्मचन्द्र मत्रि वश प्रबन्ध)। सुजानगढ का मन्दिर पनाचन्दजी सिंघी के परिवार द्वारा बनवाया हुआ है। बीकानेर के ज्ञान-भण्डारो मे हस्तलिखित ग्रन्थ अच्छे परिमाण मे उपलब्ध है।

कोटा, बूँदी, अलवर, भरतपुर आदि अनेक नगर खरतरगच्छ के ऐतिहासिक महापुरुषों की सेवा से ओतप्रोत है। जयपुर तो राजस्थान की राजधानी है। वहाँ की सेवाये भी कम नही है। सागानेर, मालपुरा आदि स्थान तथा राजस्थान के सैकडो गाँव अपने इतिहास मे स्वस्थान मे अधिवास करने वाले धर्मप्राण श्रावको की सेवा अपने ज्ञात-अज्ञात इतिवृत्त मे स्वर्णाक्षरो से मण्डित है। सीमित स्थान मे उनका उल्लेख करना कठिन है। अलवर का रावण पार्श्वनाथतीर्थ का शिलालेख अरड़क सोनी गोत्र के खरतरगच्छीय श्रावक की यशोगाथा वर्णन करता है।

चूरू का मन्दिर, दादाबाडी और उपाश्रय यतिवर्य ऋद्धिकरणजी की त्यागभावना का ज्वलन्त उदाहरण है। स्थली प्रदेश मे सर्वत्र जिनालय, दादाबाडियाँ है पर साधुओ के विहार के अभाव मे अमूर्तिपूजक हो गए।

मालव प्रदेश, वागड़ आदि सभी स्थान खरतरगच्छ के केन्द्र थे। उज्जैन, इन्दौर, धार, सैलाना,

रतलाम, महीदपुर तथा छोटे मोटे सभी गाव नगरो मे खरतरगच्छीय साधु साध्विया तथा यतिजनो के चातुर्मास होते रहे हैं। तीर्थस्थानो मे भी सवत्र उनके कीर्तिकलाप विद्यमान हैं। मेवाड के सभी नगरो का प्राचीन इतिहास खरतरगच्छ से ओत प्रोत है। श्रीजिनवर्द्धनसूरि परम्परा के मुनिजन उधर विचरते थे। धीरे धीरे अनेक गाँव अमूर्तिपूजको द्वारा तिमिराच्छन्न हो गये। श्री केशरियाजी तीर्थ तो राज-मान्य एव सर्वमान्य है। मेवाड और तत्रस्थ तीर्थों की उन्नति मे जसलमेर के पटवा सेठो की महान् सेवाओ से उपकृत है। चित्तौड, उदयपुर का प्राचीन इतिहास खरतरगच्छ इतिवृत्त आलोकित है।

आगे गुजरात की ओर बढें तो अकेले अहमदाबाद के ही दस बारह मन्दिर केवल सामजीशिवा द्वारा निर्मापित हैं। यहा खरतरगच्छीय आचार्यों उपाध्यायो वाचनाचार्यो की विचरण भूमि मुख्यत थी। पाटण नगर तो खरतरगच्छ के गुजरात प्रवेश का विजय स्तम्भ ही रहा है। खम्भात, सूरत, आदि नगर भी खरतरगच्छ की महान् सेवाओ के मुख्य स्थल रहे हैं। श्रीजिनचन्द्रसूरि, समयसुन्दरोपाध्याय, कविवर जिनहर्ष कविवर विनयचन्द तथा श्रीमद्देवचन्द्र जी महाराज की सेवाएँ चिरकाल तक सप्राप्त हुईं। इन सभी महापुरुषो की महाप्रयाण भूमि भी यही थी। श्रीमद् देवचन्द्रजी महाराज ने शत्रुजय तीर्थोद्धार के लिए अपने जीवन के ३५ वष गुजरभूमि की शासन-सेवा और महातीर्थ के उद्धार मे व्यतीत किये। जहा अमूर्तिपूजक प्रचार मे गुजरात सौराष्ट्र मे अन्धकार प्रसरित हो गया था वहाँ आपश्री ने अपने उपदेशो द्वारा अहमदाबाद, सूरत, ध्रागधा, लींबडी भावनगर, जामनगर चूडा आदि मे विचरण कर श्रावको को जिनभक्ति के श्रद्धालु बनाकर अनेक स्थानो मे जिनालयो की प्रतिष्ठा कराई। उजडते हुए शत्रुञ्जय तीर्थ को आबाद कर दिया। पालीताना जूनागढ आदि सवत्र खरतरगच्छ का जबरदस्त प्रभाव रहा है।

बम्बई का प्रारम्भिक इतिहास देखें तो वहाँ जो ७ मन्दिर थे उनमे से एक अचलगच्छ का था और अवशिष्ट सभी नाहटा मोतीशाह, जो राजस्थान से ही खभात सूरत आदि स्थानो मे होते हुए अगासी (बम्बई) मे आकर पेढी खोली, चीन आदि देशो से जहाजी व्यापार बहुत बडे पैमाने पर किया। गौडीजी की प्रतिमा जी वे राजस्थान से साथ ही लाये थे। भायखला, कोट, चिन्तामणिजी (भोइवाडा) आदि सभी मन्दिर उनके द्वारा बनवाये गये थे। चिन्तामणिजी के मन्दिर मे बीकानेर का कोठारी परिवार साथी था। इसी कोठारी परिवार द्वारा स० १८५६ मे पूना की दादावाडी निर्मापित है। यतिवर्य अमरसिंधुर जी ने आठ वष तक चातुर्मास कर चिन्तामणि पार्श्वनाथ प्रभु के चरणो मे अपनी सेवाएँ दी थी। बम्बई मे साधु विहार खरतरगच्छ भूषण श्री मोहनलालजी महाराज ने ही खोला था, जहा साधु लोग अनार्य देश समझ कर आने से कतराते थे। मोहनलालजी महाराज गच्छवाद मे निराग्रही थे। उनके शिष्य भी क्रिया विधि मे स्वतन्त्र और अनाग्रही थे पर उनकी दीक्षा मे परम्परा खरतरगच्छ की ही प्रव्रजित की जाती है।

अब मैं कच्छ देश, जो अब गुजरात के अन्तर्गत ही है उसके सम्बन्ध मे कुछ विचार करता हूँ। कच्छ देश भद्रेश्वर नामक प्राचीनतम तीर्थ के कारण अत्यन्त प्रसिद्ध है। राजस्थान के जसलमेर की तरफ से आकर बसे हुए ओसवाल आदि जन जातियाँ यहाँ धर्म और अर्थ मे काफी प्रसिद्ध हैं। तीर्थराज सिद्धाचल जी पर यहाँ के अधिवासियो के मन्दिरादि /टोकें बनी हुई है। बम्बई मे भी इनके मन्दिर उपाश्रय प्रसिद्ध हैं। अब सम्मेतशिखरजी मे भी जिनालय व धर्मशाला आदि हो गये हैं। यहाँ के चार मुख्य नगरो मे खरतरगच्छ का सघ नियोग करता है वे हैं—भुज, माण्डवी अजार और मुद्रा। यहाँ दादावाडी और मन्दिर आदि भी हैं। बडाला, नवली आदि मे भी घर थे पर साधु समुदाय का विचरण न होने से

अव नही रहे। भद्रेश्वर तीर्थ मे भी सुन्दर दादावाडी है। मजल गाँव में भी दादा साहव की चार मूर्त्तियाँ है। यहाँ के जन्मे हुए चारित्रात्माओ ने खरतरगच्छ को सुशोभित किया है। उनमे जिनरत्नसूरि जी, उ लब्धिमुनि जी, और योगीन्द्र युगप्रधान श्री सहजानन्दजी महाराज उल्लेखनीय हैं। वर्त्तमान मे श्री मोहनलालजी महाराज के सघाडे में श्री जयानन्द मुनिजी हैं।

गुजरात में जामनगर में खरतरगच्छ के ८० घर, उपाश्रय, मन्दिर व ज्ञान भंडारादि है। पादरा मे दादावाडी है। पहले खरतरगच्छ के घर थे। अव तो सर्वत्र तपागच्छ है पर लगभग ३०-४० साध्वियाँ खरतरगच्छ मे दीक्षित है।

श्रीपूज्यो के पुराने दफ्तरो में सैकडो गाँवो के श्रावक वर्ग के नाम पाये जाते हैं जो खरतरगच्छानुयायी थे। अव ये साधु-साध्वियो की सत्संग मिलने के अभाव मे भिन्न सम्प्रदाय या गच्छो मे परिवर्तित हो गये है।

मद्रास नगर भारत के समृद्धिशाली नगरो मे है, वहाँ भी प्राचीन मन्दिर विद्यमान हैं, मद्रास की दादावाडी सेठ मोतीशाह नाहटा की ही देन है। मोतीशाह का व्यापार कलकत्ता मे भी था और किसी की साझेदारी मे था। वम्बई मे तो आपके जिनालय, दादावाडी, पीजरापोल आदि द्वारा वहुत वडी देन है।

दक्षिण भारत में राजस्थान से गये हुए लोगो ने अपने पैर जमाये और धर्मध्यान के हेतु मन्दिर, दादावाडी आदि निर्मित कराये। श्रमणवर्ग का भी विहार क्षेत्र वढा और विविध प्रकार से कार्यकलापो मे अभिवृद्धि हुई। कुनूर, वेगलौर, मैसूर इत्यादि सर्वत्र दादावाडियाँ व मन्दिर वने। खरतरगच्छ के साधु-साध्वियाँ भी उधर गये और अपने उपदेशो द्वारा सेवाएँ दी।

चैत्यवास का उन्मूलन कर विधिवाद प्रचारित करने के हेतु स्थान-स्थान पर विधिचैत्य प्रतिष्ठित हुए। विधिमार्ग या खरतरगच्छ एक दूसरे के पर्याय है। शत्रुजय मे खरतरवसही जो मानतुंग प्रासाद था, निर्माण के पूर्व ही वहाँ कई मन्दिर खरतरगच्छाचार्यो द्वारा प्रतिष्ठित विधिचैत्य थे। पुरानी खरतरवसही विमलवसही का अधिकाश भाग था। शुभशीलगणि ने स० १५२१ मे रचित पचशती प्रवन्ध मे १०५४ प्रतिमाओ का उल्लेख किया है–"तत खरतरवसहिकया १०५४ जिनान्" शत्रुजय पर वूल्हावसही, श्रेयासनाथ मदिर, अष्टापद प्रासाद आदि १३वी, १४वी शती के खरतरगच्छीय मदिर थे। सोलहवी शताब्दी के प्राग्वाट कर्णसिहकृत चैत्य परिपाटी रास की १७वी गाथा मे १४५८ विम्व और स्थान-स्थान पर कौतुकपूर्ण मण्डप होने का उल्लेख है। यह जिनालय कर्मचद्र वच्छावत के पूर्वज तेजपाल रुद्रपाल निर्मापित था। नगरकोट कागडा की खरतरवसही श्री जिनपतिसूरिजी के कुटुम्ब मे माल्हू गोत्रीय विमलचन्द ने वनवायी और उनके पुत्र क्षेमसिह ने वासुपूज्य स्वामी आदि के विम्व विराजमान कराये। स० १३३३ मे क्षेमसिंह ने शत्रुजय का सघ निकाला था।

आबू तीर्थ पर विमलवसही तो वर्द्धमानसूरि प्रतिष्ठित थी ही, उन्होने ही तीर्थ प्रगट किया था। वहाँ सर्वोच्च तीन मजिला पार्श्वनाथ जिनालय भी खरतरवसही है जिसका निर्माण उ जयसागरजी के भ्राता मण्डलीक आदि ने निर्माण कराया था, ये दरडा गोत्रीय महर्द्धिक श्रावक थे।

स० १५११ के लिखे एक पत्र मे जयसागरोपाध्याय के सम्वन्ध में अनेक ऐतिहासिक वाते है। गिरनार तीर्थ की खरतरवसही लक्ष्मीतिलक प्रासाद जब नरपाल सघपति ने वनाना प्रारम्भ किया तो अम्बादेवी श्रीदेवी आदि आपके प्रत्यक्ष हुए थे। सेरिसा पार्श्वनाथ जिनालय मे धरणेन्द्र पद्मावती प्रत्यक्ष हुए।

मेवाड के नागद्रह मे नवखण्डा पार्श्व जिनालय मे श्री सरस्वती की प्रसनता प्राप्त की थी। गिरनार के अभिलेखा की खोजकर नरपाल सघपति का विशेष परिचय प्रकाश मे लाना चाहिए।

राणकपुर म भी खरतरवसही है जिसके निर्माता का इतिहास प्रकाश म आना आवश्यक है। देलवाडा (देवकुलपाटक मेवाड) मे राणाकुम्भा के मन्त्री नवलखा रामदेव ने खरतरवसही बनवाई थी। देलवाडा गाव आबू के देलवाडा से भी प्राचीन है। कवि धनपाल ने यहा के प्राचीन मन्दिरा को यवना द्वारा भग होने का लिखा है। श्रीरामदेव मन्त्री का वश मेवाड म बहुत प्रसिद्ध था। आहड (आघाट-मेवाड) के सम्राट सम्प्रति कारापित प्रासाद का जीर्णोद्धार, करहेडा पार्श्वनाथ तीर्थ म भी प्रतिष्ठादि कराने का उल्लेख मिलता है। उदयपुर नगर के सुप्रसिद्ध पद्मनाभ जिनालय का भी निर्माण आपके वशजो ने ही करवाया था।

कन्नाणा म सुप्रसिद्ध महावीर स्वामी की प्रतिष्ठा जिनपतिसूरिजी ने करवायी थी। यह मन्दिर उनके बाबा सेठ मानदेव माल्हू द्वारा निर्मापित था। पाटण म शातिनाथ जिनालय सोलहवी शताब्दी म तथा वाडी पार्श्वनाथ जिनालय १७वी शती मे बनवाने वाले खरतरगच्छ के महान श्रावक थे। चौदहवी शती म दादा जिनकुशलसूरि का पट्टाभिषेक व शत्रुजय की खरतरवसही मानतुग विहार के निर्माताओ ने भी पाटण म जिनालय निर्माण कराया था।

शत्रुजय पर मरुदेवी टोक पर नयी खरतरवसही का निर्माण अहमदाबाद के सेठ सोमजी, शिवा, रूपजी परिवार ने गगनचुम्बी शिखर वाला निर्माण कराया था जिसमे ६८ लाख रुपये लगे, मीराते अहमदी के अनुसार ८४००० रुपये की ता रस्सियाँ ही लगी थी।

स १७८७ प कर्मा डोसी के जीर्णोद्धार के समय प्रतिष्ठित एक प्रतिमा मैंने श्रीजिनमाणिक्य सूरि द्वारा प्रतिष्ठित देखी थी।

दिल्ली भारत की राजधानी थी, यहाँ प्रारम्भ से ही खरतरगच्छ का प्रभाव था। मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरिजी के द्वारा दिल्लीपति मदनपाल को प्रतिबोध देने व उनके स्वर्गवास भी यही होने की घटना इतिहासप्रसिद्ध है। महरोली का दादातीर्थ प्रसिद्ध है। वहा शत्रुजय तीर्थ की स्थापना अपने आप मे एक महत्वपूर्ण कीर्तिकलाप है। अभी वहा सम्मेतशिखरजी तीर्थ की स्थापना करने का आयोजन है। छोटी दादावाडी (साउथ एक्सटेन्शन) मोठ की मस्जिद इलाका म जिनालय और विशाल दादाजी का मदिर, उपाश्रयादि हैं। नगर म कई मन्दिर विद्यमान हैं। लखनऊ गद्दी का उपाश्रय व नौघरे का सुमतिनाथ जी का जिनालय काफी प्रसिद्ध है। बीकानेर के यतिजन जहाँ चौमासा करते थे, वहाँ भ० पार्श्वनाथ स्वामी का जिनालय है।

हस्तिनापुर तीर्थ मे श्वे० जैन मन्दिर कलकत्ता के प्रतापचन्दजी पारसान द्वारा निर्मापित था अब वहाँ जीर्णोद्धार होकर विशाल मन्दिर, धर्मशाला, दादावाडी आदि बने हैं। निशियाजी के प्राचीन स्थान का भी जीर्णोद्धार हो रहा है।

मेरठ, हाथरस आगरा आदि मे जिनालयादि प्रसिद्ध हैं। मथुरातीर्थ की यात्रा के लिए सघ आदि जाते थे जिनका इतिहास मिलता है। जिनप्रभसूरि और बाद म कई खरतरगच्छाचार्य वहाँ पधारे थे। सौरीपुर तीर्थ नेमिनाथस्वामी की जन्म भूमि है वहाँ अकबर प्रतिबोधक श्री जिनचन्द्रसूरिजी आदि ने यात्रा की है एव धर्मशाला मन्दिरादि प्राचीनकाल मे है। विमलनाथ स्वामी की जन्मभूमि कम्पिल

पर्याप्त प्रसिद्ध है। अभी वहाँ जीर्णोद्धार, धर्मशाला, अस्पताल आदि निर्माण कर प्रतिवर्ष नेत्र शिविर आदि द्वारा बहुत सेवाएँ दी जा रही है। कानपुर का मन्दिर काच जटित मीने के काम का सुप्रसिद्ध है। वाराणसी तो महातीर्थ है। यहाँ श्रीहीरधर्मोपध्याय ने जहा काशी मे मन्दिर नही बनाने देते थे, वहाँ शास्त्रार्थ मे पण्डितों पर राजसभा मे विजय पाकर कई मन्दिर बनवाये। रामघाट उपाश्रय में संलग्न तिमंजिले जिनालय मे बहुत सी प्रतिमाएँ तथा ज्ञान भण्डार है। यहीं के विद्वान और त्यागी परम्परा मे बालचन्द्रसूरि, नेमिचन्द्रसूरि, हीरचन्द्रसूरिजी की बहुत बडी सेवाएँ है। धर्मनाथ भगवान की जन्मभूमि रत्नपुरी, अयोध्या, भेलूपुर भदैनीघाट तथा सिहपुरी चन्द्रावती—तीर्थों की व्यवस्था भी ये ही गुरुजन निस्वार्थ सेवा देते थे।

मिर्जापुर में दो मन्दिर एव दादावाडी प्रसिद्ध है। खरतरगच्छीय महानुभावो की ही निर्मापित है। मिथिलातीर्थ विच्छेद होने का कारण यात्रीगणो के आवागमन की कमी के कारण ही था। भागलपुर के मन्दिर में चरण, मूर्तियाँ वहा से आये हुए है जो श्रीजिनहर्षसूरि द्वारा प्रतिष्ठित है। अभी नमिनाथ स्वामी व मल्लिनाथ स्वामी के चार-चार कल्याण की पवित्रभूमि होने से निकटस्थ नेपाल की राज्य सीमा मे दिगम्बर भाइयो ने तीर्थ स्थापन हेतु भूमि प्राप्त की है। यहाँ भी श्वेताम्बर तीर्थ स्थापन होना अत्यावश्यक है।

जौनपुर जिसका जउणापुर प्राकृत रूप का सस्कृत पर्याय यमुनापुर है। जैनो की अच्छी बस्ती तिमजिला मदिर था जो बाद मे मस्जिद बन गया है। जिनवर्द्धनसूरिजी के समय ५२ संघपतियों का विशाल तीर्थयात्री सघ निकला था। ओसवाल श्रीमाल और महत्तियाण खरतरसघ का केन्द्र था।

चैत्यवास की जडे हिलने पर सुविहित श्रमणवर्ग भारत के विभिन्न क्षेत्रो को सभालने के लिए विचरने लगा। खरतर विरुद प्राप्ति तो गुजरात जाने पर हुई पर पहले से ही उनका विहार उत्तरप्रदेश और विहार प्रान्त मे था ही। यही कारण है कि खरतरगच्छ की शाखाएँ वहाँ जब तक कायम रही क्षेत्रो को सम्भालती रही। विहार की महत्तियाण (मन्त्री दलीय) जाति अपने को सर्व प्राचीन भगवान ऋषभदेव के पुत्र भरत चक्रवर्ती के मत्री श्रीदल सतानीय मानती हुई जैन धर्म का पालन खरतरगच्छ के पूर्वाचार्यो के सान्निध्य मे करती थी। मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरिजी ने जब उनका शैथिल्य दूरकर चुस्त जैन बनाये तो उनकी "महत्तियाणडा दुई नमइ, कइ जिणकइ जिणचन्द" अथवा 'जिन नमामि वा जिनचद्रगुरु नमामि" उद्घोष प्रसिद्ध हो गया। जिनवल्लभसूरि के शिष्य जिनशेखर सूरि रुद्रपल्ली (रुदोली) के थे अत उन्होने भी उत्तरप्रदेश तथा पजाब के क्षेत्रो को सभाला। दूगड, नाहर आदि अनेक गोत्रो के अभिलेख उन्ही से सम्बन्धित थे पर उनका नामशेष हो जाने पर अन्य गच्छो का उधर वर्चस्व छा गया। श्री जिनेश्वरसूरि द्वितीय ने श्रीजिनसिहसूरि को वह क्षेत्र सौपा। अयोध्या, जौनपुर आदि मे उनके चातुर्मास होना ग्रन्थ रचना आदि से सिद्ध है। जब वह शाखा कुछ निर्बल पड गई तो श्री जिनराजसूरि के पट्टधर श्री जिनरंग अनेक क्षेत्रो को सम्भालने लगे।

नालदा, राजगृह आदि उनके प्रभाव क्षेत्र थे। जालोर से प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित होकर भेजी गईं। साधुओ के चातुर्मास, उपधान तप आदि नालदा मे हुए जिसके उल्लेख मिलते है। विहार शरीफ का महत्तियाण मुहल्ला के लिए तो पावापुरी गॉव मन्दिर का शिलालेख डके की चोट उस जाति के बीसो गोत्रो के निवास का विवरण देता है। वहाँ नालदा मे १७ मन्दिर थे। राजगृह नगर के पाँचो पहाडो में ८१ से ऊपर जिनालय थे। विपुलाचल और वैभारगिरि के उल्लेख व स० १४१२ का शिलालेख अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एतद्विषयक सूचना देते है।

पावापुरी का शिलालेख स्पष्ट बतलाता है कि पटना आदि में ओसवाल संघ जाने से पूर्व महत्तियाण संघ ही तीर्थ में निर्माण-जीर्णोद्धार आदि कराता रहा है। क्षत्रियकुण्ड, काकन्दी नालंदा, राजगृह के शिलालेख स्पष्ट सूचना देते हैं।

राजगृह गाँव के मन्दिर में जिनभद्रसूरिजी के प्राचीन चरण जयसागरोपाध्याय प्रतिष्ठित हैं। मूलनायक प्रतिमा जिनदास श्रावक के घिसे हुए अभिलेख में महत्तियाण जाति का कर्तृत्व सूचक है। यह जाति ओसवाल, श्रीमाल व अग्रवालों में मिल गई मालूम होती है। मारवाड, गुजरात व बम्बई से दक्षिण भारत में महाराष्ट्र में जाकर उस जाति के कुछ प्रमाण मिले, मैंने मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरि चरित्र में इस बात का उल्लेख किया है।

राजगृह—जैन दृष्टिकोण से राजगृह बिहार प्रान्त का अतिप्राचीन और महत्वपूर्ण स्थान है। भगवान महावीर १६वें भव में विशाखनन्दी और १८वें भव में त्रिपृष्ठ वासुदेव यही हुए थे। बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रत स्वामी के लाखों वर्ष पूर्व यही चार कल्याणक हुए थे। भगवान महावीर के १४ चातुर्मास, गणधरों, निर्वाणभूमि तथा जम्बूस्वामी शालिभद्र, कयवन्ना मेतार्य पूणिया श्रावक, अभयकुमार आदि अनेक महापुरुषों से सम्बन्धित यह तीर्थस्थान है। महाराजा श्रेणिक जो आगामी चौबीसी के प्रथम तीर्थंकर पद्मनाभ होंगे, यहीं के सम्राट और भगवान महावीर से पारिवारिक सम्बन्ध के साथ उनके परम भक्त थे। महाराजा कोणिक के राजधानी चम्पानगर कर देने पर राजगृह उजड जाने पर भी उसके महत्व में कोई कमी नहीं आई। यहाँ की गुफाओं में, प्रतिमाओं पर उत्कीणित प्राचीन लिपि अपना सम्बन्ध आज तक अनेक साक्ष्य लुप्त हो जाने, नष्ट हो जाने पर भी संजोये हुए हैं।

उपनगर नालन्दापाडा और बिहार शरीफ के अधिवासी जैन बस्ती यहां से बराबर सम्बन्धित रही। प्राचीन तीर्थमालाएँ राजगृह और उसके पाँचों पहाडों का वर्णन अत्यन्त गौरव के साथ कीर्त्ति गाथाओं का उद्घोष करती है। सोन भंडार का पूर्वगुप्तकाल का अभिलेख गुफा में अर्हत् प्रतिमा प्रतिष्ठित करने की गौरव गाथा गाती है तथा वहां की कलापूर्ण अद्वितीय जिन प्रतिमाएँ जैन संस्कृति और कला की अमूल्य निधि है।

युगप्रधानाचार्य गुर्वावली के अनुसार कलिकाल केवली श्री जिनचन्द्रसूरिजी की आज्ञा से वा राजशेखर गणि ने सं० १३५२ में राजगृह नालंदा, क्षत्रियकुण्डादि की यात्रा करने के राजगृह के बाद निकट-वर्ती उद्दंड विहार (बिहार शरीफ) में चातुर्मास किया था। वहां नंदि महोत्सव, मालारोपण आदि धार्मिक अनुष्ठान हुए। सं० १३६४ में राजशेखर गणि को श्री जिनचन्द्रसूरि जी ने आचार्य पद से अलंकृत किया था। सं० १३८३ में जालोर में मिती फाल्गुन वदी ६ को श्री जिनकुशलसूरिजी महाराज ने मन्त्रिदलीय ठ० प्रतापसिंह के पुत्र ठ० अचलसिंह कारित वैभारगिरि के चतुर्विंशति जिनालय के मूलनायक योग्य श्री महावीर स्वामी आदि के अनेक पाषाण व धातुमय बिम्ब, गुरुमूर्त्तियां व अधिष्ठायकों की प्रतिष्ठा की थी।

सं० १४१२ की काव्यमय ३२ पंक्तियां वाली विस्तृत प्रशस्ति बिहार निवासी महत्तियाण ठ० मण्डन के वंशज वत्सराज और देवराज ने राजगृह के विपुलाचल पर श्री पार्श्वनाथ स्वामी का ध्वजदण्ड मण्डित विशाल जिनालय निर्माण करवाकर आषाढ़ वदी ६ को खरतरगच्छ नायक श्री जिनलब्धिसूरिजी के पट्ट प्रभाकर श्री जिनचन्द्रसूरिजी की आज्ञा से उपाध्याय श्रीभुवनहित गणि के पास प्रतिष्ठा करवायी थी।

इस महत्वपूर्ण प्रशस्ति मे दिल्लीश्वर फीरोजशाह के मण्डलेश्वर मलिकवय नामक मगधशासक के सेवक से इस पुण्यकार्य मे बड़ा साहाय्य मिलने का उल्लेख है।

सं० १४३१ मे अयोध्या स्थित श्री लोकहिताचार्य के प्रति अणहिल्लपुर पत्तन से श्री जिनोदयसूरि प्रेषित 'विज्ञप्ति महालेख' से विदित होता है कि श्री लोकहिताचार्य जी इतःपूर्व मन्त्रीदलीय वंशोद्भूत ठ० चन्द्रराज सुश्रावक राजदेव तथा इतर मन्त्रिदलीय समुदाय के निवेदन से विहार व राजगृह मे विचरे व विपुलाचल पर श्रावको द्वारा नव निर्मापित जिन प्रासादो को वन्दन किया था। सूरिजी वहाँ से ब्राह्मण कुण्ड व क्षत्रियकुण्ड जाकर पुन. विहार होते हुए राजगृह पधारे और विपुलाचल व वैभारगिरि पर बड़े समारोह से जिनबिम्बादि की प्रतिष्ठा की थी।

पन्द्रहवी शताब्दी मे विज्ञप्ति त्रिवेणी रचयिता प्रकाण्ड विद्वान श्री जयसागरोपाध्यायजी भी राजगृह और उद्दड़ विहार मे विचरे थे। (देखिए ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह पृ० ४०)। स० १५०४ मे जिनवर्द्धनसूरि, जिन्होने अपनी तीर्थयात्रा मे राजगृह यात्रा का विशद वर्णन किया है—के प्रशिष्य जिनसागरसूरिजी की आज्ञा से यहाँ अनेक जिनबिम्बो की प्रतिष्ठा करवायी थी। उस समय की प्रतिष्ठित कितनी ही प्रतिमाएँ वैभारगिरि के खण्डहर, स्वर्णगिरि, राजगृह, काकन्दी और नालन्दा के मन्दिरों मे अब भी पूज्यमान है।

स० १५२४ मे श्री जिनभद्रसूरि पट्ट प्रभावक श्री जिनचन्द्रसूरिजी की आज्ञा से उत्तराध्ययन वृत्तिकार श्री कमलसंयमोपाध्यायजी ने श्रीमाल श्रावक छीतमल्ल द्वारा निर्मापित वैभारगिरि शिखरस्थ धन्ना-शालिभद्रमूर्ति, एकादश गणधर चरण पादुका तथा स्वगुरु श्री जिनभद्रसूरिजी के चरणो की प्रतिष्ठा की थी। सं० १५२५ मे लिखित आवश्यकसूत्र तथा दशवैकालिक टीका की प्रशस्तियो मे भी राजगृह और क्षत्रियकुण्ड यात्रादि का वर्णन पाया जाता है।

स० १५६५ मे कवि हंस सोम ने अपनी तीर्थयात्रा मे राजगृह के वैभारगिरि पर मुनिसुव्रत प्रभृति २४ प्रासादो मे ७०० जिनबिम्ब और अन्य सभी स्थानो पर पहाडो के मन्दिरो का वर्णन किया है। सतरहवी शती के कवि विजयसागर ने पांचो पहाडो पर १५० मन्दिर व ३०३ जिनबिम्ब तथा ११ गणधर आदि अन्य उल्लेखनीय वर्णन किये है। शीलविजयजी ने स० १७४६ मे तीर्थमाला में सभी दर्शनीय स्थानो का वर्णन किया है। सं० १७५० मे सौभाग्यविजयजी ने ८१ जिनालय की संख्या लिखी है।

श्री क्षमाकल्याणोपाध्यायजी इस देश से विचरे और उनके गुरु श्री अमृतधर्मजी ने अतिमुक्तक मुनि की विपुलाचल पर प्रतिष्ठा की थी। श्री जिनचन्द्रसूरिजी ने सं० १८३४-३५-३६ मे समस्त तीर्थों की यात्रा के साथ राजगृह यात्रा कर राजा बच्छराज नाहटा के आग्रह से लखनऊ में तीन चातुर्मास किये थे।

दानवीर द्वितीय जगडूशाह के पिता वर्द्धमान और उनके भ्राता पद्मसिंह के चरित्र मे अचल गच्छ के अचलगच्छाचार्य अमरसागरसूरिजी ने सं० १६९१ मे ८वे सर्ग में पूरब देश के समस्त तीर्थों की यात्रा कर लाखो रुपया व्यय करने का उल्लेख किया है।

सं० १७०७ में विहार के खरतरगच्छीय महत्तियाण चोपड़ा तुलसीदास के पुत्र सग्राम व गोवर्द्धन ने विपुलगिरि पर वा० कल्याणकीर्ति के उपदेश से जीर्णोद्धार कराया जिसका अभिलेख दिगम्बराधिकृत जिनालय के नव ग्रह दशदिग्पाल पट्टिका पर खुदा है। तीन वर्ष मुकदमावाजी के पश्चात्

मन्दिरा का बँटवारा परस्पर शातिपूर्वक कर लिया था। तदनुसार प्राचीन मन्दिरादि श्वे० के पास रहे। दि० ने गाव म नवीन धमशाला मदिरादि निर्माण करा लिए।

स० १८१६ से १८२६ तक पहाडो के अनेक मदिरा का जीर्णोद्धार हुगली निवासी गाधी बुलाकी दास के पुन माणकचन्द ने करवाये जिनके लेख चरण पादुकादि पर खुदे हुए हैं। स० १५२४ मे वैभार गिरि पर धन्ना शालिभद्र की मूर्तियां श्री कमलसयमापाध्याय द्वारा प्रतिष्ठित हैं। स० १८३० म जगतसेठ फतचन्द्र गलडा के पौत्र जगत सेठ महतावराय की पत्नी शृगारदेवी ने ग्यारह गणधर पादुका वभारगिरि पर विराजमान की। स० १८७४ म जिनहर्षसूरि प्रतिष्ठित मदिरो का जीर्णोद्धार स० १९३८ म राय धनपतसिंह जी ने कराया था। म० १९ ० मे लखनऊ वाले श्रीपूज्य जिननन्दीवर्द्धन सूरि जी के समय मुनि कीर्त्युदय ने कई चरणा की प्रतिष्ठा करवाई। श्रीजिनमहेन्द्रसूरिजी द्वारा प्रतिष्ठित गौतम स्वामी की टूक की प्रतिष्ठा स० १९११ म हुई थी। स० १९८५ म श्री जिनचारित्रसूरिजी द्वारा दादा जिनदत्त सूरि की चरण प्रतिष्ठा की है।

राजगृह म जो प्राचीनतम मन्दिर थे वे ध्वस्त हा गये। तेरहवी चौदहवी, पन्द्रहवी शती में खरतरगच्छीय प्रतिष्ठित प्रतिमाएँ अब एक भी प्राप्त नही हैं। मदिर जहा पहाडा पर सकडा थे, अब गिनती के रह गये। अनेक प्रतिमाएँ, अभिलेख भूगर्भ म समा गये। इस शताब्दी मे ता मूर्ति चोरा के कारनामे भी कम नही हैं।

अब राजगृह गाँव म धमशाला के पास नया विशाल शिखरवद्ध मदिर एव पृष्ठ भाग मे गुरु मदिर बन गया है। जिनालय म प्राचीन प्रतिमा प्रतिष्ठित करने की वात थी पर सर्वानुमति विना शीघ्रतावश नवीन प्रतिमा के अग्रभाग म प्राचीन प्रतिमा विराजमानकर आशातना का कारण बन गया है। अब जो हो गया सो हा गया, आशातना मिटाकर सही मार्ग अपनाने म ही श्रेयस् है।

नालदा म द्वितल मदिर और दादाजी का मदिर प्राचीन है। जहाँ १७ मन्दिर थे अब एक ही रहा है। धमशाला टूटी फूटी हालत म समृद्ध जैन समाज के लिए लज्जास्पद है। मन्दिर म प्राचीनतम प्रतिमाएँ अवश्य ही आह्लादकारी हैं। पर जिनालय गाव मे पक्की सडकहीन स्थान म है अन्यथा नालदा जैसे विश्वविश्रुत स्थान म आये हुए निकटवर्ती स्थान म सकडा व्यक्ति दर्शनार्थ आ सकते हैं। जैन समाज अपनी धमशाला के लोगो को दर्शन कराने म ही भलाई समझकर प्रचार से मुँह माडे बैठा है।

पावापुरी—भगवान महावीर की निर्वाण भूमि पावापुरी महातीर्थ पटना जिले मे सदा से प्रसिद्ध रहा है। यहा का गाव मन्दिर जो हस्तिपाल राजा की जीर्ण शुल्कशाला था, भगवान ने अन्तिम चातुर्मास किया और कार्तिक वदी १५ की रात्रि म पिछले प्रहर मे निर्वाण को प्राप्त हुए। अत इस स्थान म १६ प्रहर तक देशना देते हुए सिद्धगति को गये। भाव-उद्योत का विलय होने से लोक मे द्रव्य-उद्योत रूप दीवाली पर्व प्रसिद्ध हुआ। तभी से दीवाली पर पावापुरी तीर्थ म दीपावाली का मेला लगता है।

भगवान का प्रथम देशना स्थल खेता के बीच महसेतवन म था जहाँ स्तूप और प्राचीन कुँआ था। लगभग ३५ वर्ष पूर्व जैनाचार्य श्री विजयरामचन्द्रसूरिजी के उपदेश से भण्डार से जमीन ग्रहणकर निर्माण के पश्चात् पावापुरी भण्डार की पढी को सौंप देने की शर्त स अधिगृहीत की थी। वहा विशाल सगमरमर का कलापूर्ण मन्दिर व धमशाला एव जिनालय निर्मित हो गया है।

भगवान महावीर की निर्वाण भूमि गाव मन्दिर भी जीर्णोद्धारित होकर अनुयोगाचार्य श्री कवि-

सागर मुनि राज (वाद में आचार्य) के हाथ से प्रतिष्ठित हो गया। जैसलमेर से स० १५३६ मे श्री जिनभद्रसूरिजी के पट्टधर श्री जिनचन्द्रसूरिजी महाराज के कर कमलो से प्रतिष्ठित दो प्रतिमाएँ भी प्राप्त हो गई। मन्दिर विशाल हो गया, धर्मशाला के वगल मे नवरतन सज्ञक विशाल धर्मशाला है और उसके पृष्ठ भाग मे भी भूखण्ड क्रयकर और विशाल करने का आयोजन है।

पहले यहाँ विहार के महत्तियाण सघ द्वारा जीर्णोद्धारित स० १६९८ का मन्दिर था जिसके नीचे भी पुरानी नीव आदि के चिन्ह देखे गये थे। यही तीर्थ को जैन श्वेताम्वर पेढी है। अति प्राचीनकाल से यहाँ खरतरगच्छ का वर्चस्व रहा है। विहार के महत्तियाण मुहल्ले मे उनका मन्दिर व सैकड़ो घरो की वस्ती थी। कालान्तर मे आज एक भी घर नही रहा तो वहाँ के मन्दिर से प्रतिमाएँ उत्थापितकर केवल अधिष्ठाता भैरोजी रहे हैं। विहार शरीफ मे जिनालय और दादावाडी है जिसकी व्यवस्था वहाँ के निवासी श्री धन्नूलालजी सुचन्ती तथा वाद मे लक्ष्मीचन्दजी सुचन्ती करते थे। अव ट्रस्टियो का चुनाव होता है।

जल मन्दिर—यह विशाल तालाव/कमल सरोवर के वीच अत्यन्त सुन्दर कलापूर्ण सगमरमर निर्मित जिनालय है। लाल पत्थर की विशाल ६०० फुट लम्वे पुल को पार कर मन्दिर मे पहुँचते है। मध्यवर्त्ती मन्दिर मे वीच मे भगवान महावीर के प्राचीन चरण और दोनो ओर गणधर गौतम स्वामी, सुधर्मास्वामी के चरण है। यहाँ दीपावली के दिन निर्वाण के लड्डू हजारो यात्रीगण चढ़ाते है। चारो ओर गुम्वद वने है जिनमे १६ सती, ११ गणधर, दादा जिनकुशलसूरि और दीपविजय गणि के चरण हैं जो खरतरगच्छ की जिनरगसूरि शाखा के थे। गाँव मन्दिर की धर्मशाला मे खरतरगच्छ की रगसूरि शाखा का उपाश्रय है। जल मन्दिर के पास मुर्शिदावाद धर्मशाला, नाहरजी, दुधोडियाजी तथा गुईवाडू की धर्मशाला है। जल मन्दिर के सामने महताव वीवी का द्वितल मन्दिर और पुराने चरण स्थापित समवशरण मन्दिर है। गाँव मन्दिर की सडक पर जल मन्दिर के पास भव्य दादावाडी है जिसमे चारो दादा साहव की प्रतिमाएँ श्री उदयसागरजी द्वारा प्रतिष्ठित हुई है। जल मन्दिर से सडक के किनारे पर जिनयश सूरिजी महाराज का समाधि मन्दिर है जिसमे उनकी प्रतिमा विराजमान है। उन्होने ५३ उपवास करके पावापुरी मे ही स्वर्गगति प्राप्त की थी।

पावापुरी के सभी मन्दिर, दिगम्वर मन्दिर और धर्मशाला तथा सभी स्थान तीर्थ भण्डार की भूमि पर निर्मित है। जैन सघ द्वारा नाहरजी की दानशाला मे प्रतिवर्ष चावल, कम्वले आदि गरीवो को वाँटा जाता है। दीवाली के दिन गाव मन्दिर से भगवान की सवारी निकलती है।

पटना—यह प्राचीन पाटलीपुत्र नगर और विहार प्रान्त की राजधानी है। यहाँ पर सुदर्शन सेठ के शील प्रभाव से शूली का सिंहासन हुआ था और कोशा वेश्या के यहाँ स्थूलिभद्र स्वामी का चातुर्मास हुआ था। गुलजार वाग मे ये दोनों मन्दिर वने हुए है। नगर मे जैन श्वे० मन्दिर और धर्मशाला है। महाराज कोणिक-अजातशत्रु के वाद राजा उदायी ने इसे मगध की राजधानी वनाया। अगदेश भी इसी के अन्तर्गत था। यहाँ १४ पूर्वधर भद्रवाहु स्वामी, वज्रस्वामी आदि अनेक महान् जैनाचार्यो ने विचरण किया है।

गुणायाजी—नवादा स्टेशन से पावापुरीजी जाते एक मील पर सडक के पास ही यह तीर्थ है। तालाव के वीच मे सुन्दर श्वेताम्वर जैन मन्दिर वना हुआ है। धर्मशाला मे से पुल द्वारा जाने का मार्ग है। मन्दिर मे प्राचीन चरण पादुकाएँ तथा प्रतिमाएँ है। यहाँ गौतम स्वामी को केवलज्ञान हुआ था।

क्षत्रियकुण्ड—नवादा से जमुई रोड पर सिकन्दरा गाव से दो मील पर लिछुआड नामक गाव मे इस तीर्थ की तलहट्टिका रूप धर्मशाला व महावीर स्वामी का जिनालय है। यहाँ धर्मशाला मे ठहरने की सुविधा है तथा रसोडा भोजनशाला भी चालू है। यहा से ३ मील जाने पर कुण्डघाट बाध और नदी के दोना ओर भगवान के दीक्षा व च्यवन कल्याणक के प्राचीन मन्दिर है। सात पहाडी का चढाव पार करने पर भगवान के जन्म स्थान का भव्य मन्दिर आता है जहा ढेढ हजार वर्ष प्राचीन महावीर स्वामी की मनोज्ञ प्रतिमा है। लोधामानी जो यहाँ से दो मील है सिद्धार्थ राजा के महल के खण्डहर है जहाँ भगवान का जन्म हुआ था। क्षत्रियकुण्ड पहाड पर जीर्णोद्धार, कराके श्री कन्हैयालालजी बद ने कमरे, स्नान घर और सुन्दर बगीचा बना दिया है।

काकन्दी—ये जमुई से चार मील दूर प्राचीन गाव है जहा नौवें तीर्थंकर श्री सुविधिनाथजी की जन्म कल्याणक भूमि है। मन्दिर व धर्मशाला का जीर्णोद्धार हो रहा है। यहा स० १५०४ की प्रतिमा है। एक अति प्राचीन १८०० वर्ष प्राचीन प्रतिमा महापण्डित राहुल साकृत्यायन ने देखी थी जो बहुत वर्ष पूर्व ही गायब हो गई थी। अनेक तीर्थमालाओ मे इस तीर्थ का उल्लेख है।

चम्पापुरी—यह वासुपूज्य भगवान के पच कल्याणक का महातीर्थ है। स्टेशन भागलपुर और नाथनगर से निकट है। कोणिक ने अग मगध की राजधानी कायम की थी। चम्पानाले के पास धर्मशाला मे दो मन्दिर व दादाजी का स्थान भी है। भगवान की निर्वाण भूमि मन्दारहिल बतायी जाती है जो यहाँ से ३० मील है, वहाँ दिगम्बर जैन मन्दिर भी है।

भागलपुर—लूप लाइन के स्टेशन के सामने ही जैन धर्मशाला मे दूगड परिवार का बनाकर जैन सघ को समर्पित किया हुआ जैन मन्दिर भी है। भागलपुर जैन सघ देख-रेख रखता है। मिथिलानगरी नमिनाथ स्वामी एव मल्लिनाथ स्वामी की चार कल्याणक भूमि है। वहा की प्रतिमा व चरण पादुकाएँ लाकर भागलपुर मन्दिर मे रख देने से तीर्थ विच्छेद हो गया है। अब नेपाल की भूमि मे दिगम्बर समाज तीर्थ स्थापन कर रहा है। श्वेताम्बर समाज को भी तीर्थ स्थापन करना आवश्यक है। श्री जिनरूपसूरिजी महाराज के प्रतिष्ठित मूर्ति चरणो के मिथिला तीर्थ मे प्रतिष्ठित करना आवश्यक है।

बराकड—यह गिरीडीह से सम्मेतशिखरजी के मार्ग मे भगवान महावीर स्वामी की केवलज्ञान भूमि है जहाँ धर्मशाला मे मन्दिर ऋजुबालुका (बराकड) नदी के तट पर बना हुआ है। दादा साहब के चरण भी प्रतिष्ठित हैं।

गिरीडीह—स्टेशन के सामने जैन धर्मशाला मे दुधाडिया परिवार द्वारा निर्मापित जिनालय है। अब धर्मशाला दूगड परिवार की निजी सम्पत्ति घोषित हो गई है।

सम्मेतशिखर महातीर्थ—पारसनाथ पहाडी नाम से प्रसिद्ध यह पवित्र स्थान २० तीर्थंकरो की निर्वाण भूमि है। यहा से असख्य मुनि मोक्ष गये हैं। बीस तीर्थंकरो की निर्वाण स्मृति मे प्राचीन काल से टूँके बनी हुई हैं जिनका समय-समय पर जीर्णोद्धार होता रहा है। सबमे प्रभु के चरण पादुके प्रतिष्ठित हैं। गौतमस्वामी की टूक पहले आती है। जलमन्दिर नामक स्थान मे विशाल मन्दिर मे प्रभु प्रतिमाएँ हैं। जलमन्दिर को दो सौ वर्ष पूर्व अजीमगज के गोलेछा सुगालचद आदि ने बनवाया था जिनके द्वारा अजीमगज मे भी दानशालादि आदि के स्थान बने थे। मन्दिर की प्रतिमाएँ गोलेछा परिवार ने सूरत मे हुई प्रतिष्ठा के समय अजीमगज रखके मँगवाई थी। पार्श्वनाथ स्वामी की टूक पर बनारस के राय बहादुर प्रताप सिंह दुगड ने सौध शिखरी सरीखा जिनालय निर्माण कराया था। जगत सेठ भी ... तथा जलमन्दिरादि अभी स० २०१७ मे साध्वीजी रजनश्रीजी के सदुपदेश से जीर्णोद्धारित हुए थे। सम्मेत

शिखरजी पर यात्री संघ सैकड़ो वर्षो से आता रहा है जिनमे खरतरगच्छ के जैनाचार्य श्रीजिन वर्द्धनसूरिजी के पधारने का विवरण प्राचीन है और भी अनेक संघ आये। यह पहाड सम्राट अकबर द्वारा हीरविजयसूरिजी को दिए गए फरमानो मे श्वेताम्बर समाज के अधिकार मे रहा है। बाद में जगत सेठजी को भी फरमान मिले। उनकी माता माणक देवी के संघ का विशद वर्णन मिलता है।

पहले संघ पालगंज आकर गिरिराज पर जाता था। पालगंज राजा के संरक्षक साथ रहते थे। वहाँ जैनमन्दिर भी श्वेताम्बर-दिगम्बर सम्प्रदाय का संयुक्त बना हुआ है। जब पहाड को रायबद्रीदास बहादुर और मोतीचंदजी नखत आदि के प्रयत्नो से आनंदजी कल्याणजी की पेढी ने क्रय कर लिया तब से श्वेताम्बर समाज की ही सम्पत्ति रही है। जमींदारी उन्मूलन द्वारा अधिकांश भूमि सरकार ने अधिगृहीत कर ली है।

मधुवन तलहटी मे श्वेताम्बर कोठी मे बहुत से मन्दिर हैं जिनमे कलकत्ता, अजीमगंज, बीकानेर, मिर्जापुर आदि के संघ द्वारा निर्मापित मन्दिर है। कोठी के सामने तथा पृष्ठ भाग मे दादावाड़ी बनी हुई है। विशाल धर्मशाला के मध्य जिनालयो का समूह है। धर्मशाला के बाहर श्री भोमियाजी महाराज का अतिप्राचीन कलापूर्ण मन्दिर है। श्वेताम्बर यात्रीगण सदा से भोमियाजी महाराज के दर्शन करके ही गिरिराज की यात्रा प्रारंभ करते थे। आज भी भोमियाजी महाराज की भक्ति में श्वेताम्बर समाज अग्रगण्य है। अब धर्म मंगल विद्यापीठ मे मन्दिर एवं छात्रावास आदि इमारते हो गई है। भोमियाजी भवन में भी मंदिर व भोजनशाला आदि निर्माणाधीन है। लगभग एकसौ दस वर्ष पर्यन्त कोठी का वही वट दूगड परिवार के हस्तगत रहा। अब संघ के ट्रस्टी चुने जाकर व्यवस्था करते हैं। दूगड जी से पूर्व पूरणचन्द्रजी गोलेछा तथा जगतसेठ के परिवार के साथ मुर्शिदाबाद का संघ व्यवस्था करता था। तीर्थ को बचाने मे श्रीमणिसागरजी महाराज ने श्री गुलाबचंद जी ढढा आदि के साथ आकर ७५ वर्ष पूर्व अनुष्ठान द्वारा सफलता प्राप्त की थी। खरतरगच्छ के अनेक आचार्य, उपाध्याय, एवं यति मुनियो द्वारा तीर्थ सेवा मे प्रशंसनीय योगदान किया था।

कलकत्ता—यों तो बंगाल का मुख्य धर्म ही जैनधर्म था। उसके बाद बौद्ध, वैष्णव आदि आये हैं। बंगाल के पुराने अनेक स्थानो मे खण्डित अखंडित जैन प्रतिमाएँ व भग्नावशेष जैनमन्दिर पाये जाते हैं पर बंगाल मे आकर बसे हुए जैनो का इतिहास मुगल काल व ब्रिटिश शासन के साथ-साथ कलकत्ता के विकास का इतिहास है।

कलकत्ता मे सं० १८७१ माघ सुदी १० को स्वतन्त्र पंचायती मन्दिर का निर्माण होकर खरतर गच्छ नायक श्री जिनहर्षसूरि जी द्वारा प्रतिष्ठित हुआ था। इत:पूर्व दादावाड़ी (माणिकतल्ला) का निर्माण होकर १ स्थूलिभद्र स्वामी २ दादा जिनदत्तसूरि ३ दादा मणिधारी जिनचन्द्रसूरि ४ दादा जिनकुशल सूरिजी तथा ५ जिनभद्रसूरिजी के चरण प्रतिष्ठित हुए थे। दादावाड़ी के परिसर में राय बद्रीदास जी के बगीचे मे शीतलनाथ स्वामी का विश्वविश्रुत जिनालय है जहाँ देश-विदेश के दर्शनार्थियो का मेला लगा रहता है। सं० १९२४ मे यह निर्मित-प्रतिष्ठित हुआ था।

श्री महावीर स्वामी का जिनालय सं० १९३६ मे बडा संगीन और विशाल बना हुआ है। श्री चन्दाप्रभु जी मन्दिर सं० १९५२ में श्री कपूरचन्द जी खारड ने बनवाकर श्री जिनरत्नसूरि जी द्वारा प्रतिष्ठित कराया था।

आदिनाथ जिनालय—कुमारसिंह हाल (४९ इण्डियन मीररस्ट्रीट) में सन् १९१६ प्रतिष्ठित है।

यहा स्फटिक रत्न की तीन विशाल जिन प्रतिमाएँ है। कुमारसिंह हाल म गुलाबकुमारी लायब्रेरी एव श्री पूरणचद्र जी नाहर का पुरातत्व सग्रहालय है। यहा सभाएँ तथा पयुषण के व्याख्यान भी होते हैं।

मनमोहन पाश्वनाथ जिनालय—यह भवानीपुर म शिखरबद्ध विशाल जिनालय और पास ही तीन मजिल मे उपाश्रय साधु-साध्वियो के चातुर्मास और धमध्यान का उत्तम साधन है।

१० हसपोखरिया वद्ध मान भवन म शातिनाथ देहरासर, ६,विटिल रसल स्ट्रीट म हरखचद जी काकरिया का देहरासर, भवानीपुर के मेहता बिल्डिग पर तथा १८, हिदुस्तान रोड, बालीगज म छोटूलाल जी सुराणा का पाश्वनाथ चत्यालय दशनीय हैं।

बिहार प्रान्त मे राची, टाटानगर, फारबिशगज, प्रतापगज मे तथा बगाल म सथिया, खड्गपुर, लिलुआ मे जिनालय है। हुगली चिन्सुरा मे कलकत्ता बसने से पूव जिनालय, दादावाडी व भरुजी का मदिर था। अब दिगम्बर मदिर और अधिष्ठाता भरजी का मदिर पार्टिशन हटाकर धमशाला मे सलग्न है। दादावाडी गायब है, केवल खुली जमीन पडी है। बगाल की पुरानी बस्तिया दस्तूरहाट, जगीपुर, कासिम बाजार आदि अनेक स्थानो के मदिर उठ गये हैं। मुर्शिदाबाद जिले के अजीमगज, जीयागज म पर्याप्त बस्ती थी। अब अनेक लोग की कलकत्ता आदि म आ गए हैं। यहा प्राचीन उपाश्रय, मन्दिर और समृद्ध जमीदारो, की राजवाडिया हैं। वहा के मन्दिरो का उल्लेख किया जाता है—

अजीमगज—यहा १ नेमिनाथ का मदिर, खरतरगच्छ उपाश्रय के बगल म है, ज्ञान भडार भी है। २ चितामणि का मदिर ३ सुमतिनाथ जिनालय—यह सिताबचन्दजी नाहर का निर्मापित है। ४ गौडी पाश्वमन्दिर—धनपतसिह जी दुगड का बनवाया हुआ है। ५ पद्मप्रभ जिनालय—खरतरगच्छीय प्रतापचन्द जी निर्मापित है। ६ सभवनाथ जिनालय नगर से दूर धनपतजी दुगड निर्मापित है। यहा की अधिकाश प्रतिमाएँ पालीताना भेज दी गई हैं। ७ शान्तिनाथ जिनालय—सुमेरचन्दजी वद्य की धमपत्नी गुलाबकुमारी बीबी निर्मापित है।

रामबाग मे दादावाडी म,जिनदत्त सूरिजी व जिनकुशल सूरिजी क चरण पादुके हैं। यहाँ कासिम बाजार से नेमिनाथ भगवान, जीयागज व जगीपुर से आये सहस्र फणा पाश्वनाथ हैं, सावालिया पाश्वनाथ व अष्टापदजी का मदिर भी है।

जीयागज—गगापार मे जीयागज व बालूचर बसा हुआ है। यहा जैन समाजकी कई सस्थाएँ हैं। (१) सभवनाथजी का पचायती मदिर—इसम दादावाडी तथा पृष्ठ भाग म खरतरगच्छ का उपाश्रय है। (२) विमलनाथ जिनालय—यह श्रीपतसिह जी दूगड के पूवजो का निर्मापित है। सलग्न धमशाला, उपाश्रय आयबिलशाला व दादा साहब का मन्दिर भी है। (३) आदिनाथ मदिर—इसके बगल म तपागच्छ का उपाश्रय ह। (४) दादावाडी—कीरतबाग म दादाजी का तथा भगवान का मदिर भी है।

जीयागज से ४ मील महिमापुर मे जगतसेठ जी का सुप्रसिद्ध कसौटी मन्दिर है। इसमे दादा साहब के चरण दो सौ वष प्राचीन हैं।

काठगोला—यहा दूगड परिवार के सुप्रसिद्ध विशाल बगीचे म जिनालय दादावाडी एव दशनीय कोठी बनी हुई है। कूच बिहार मे जिनालय व दादावाडी है।

उत्तर बगाल जो पहले पाकिस्तान और बाद मे बगलादेश हो गया, वहाँ रगपुर, माहीगज, नबाबगज म जिनालय व दादावाडी है। सिराजगज म दादावाडी है। दिनाजपुर मे नाहर परिवार द्वारा बनाया जिनालय है।

आसाम प्रान्त मे १ गवालपाडा व २ तेजपुर म पाश्वनाथ जिनालय है। माणकचर मे दादावाडी है तथा गौहाटी म घर देहरासर रूप मे चरणादि हैं। □

३ श्री ऋषभदेवजी भगवान का मदिर एव दादावाडी—(मोहनबाडी)

यह शहर का सर्वाधिक रमणीय स्थान वन गया है। वतमान मे खूबसूरत लान व बगीचे के निर्माण हो जाने से यह लोगो के सामाजिक कार्यों का प्रमुख केन्द्र है। इसम नवनिर्मित 'श्री विचक्षण समाधि अपने आप मे एक आकषण है जहा शहर व बाहर के दशनार्थी अपूव आनन्द का लाभ लेते हैं। भविष्य मे मोहनवाडी को और भी आकषक बनान की कई याजनाय विचाराधीन है।

४ श्री चदाप्रभुजी का मदिर एवम दादावाडी, आमेर

जयपुर की पुरानी राजधानी म स्थित श्री चन्द्राप्रभुजी का भव्य मदिर व दादावाडी है। मदिर की मूर्ति अत्यन्त ही मनोरम व आकषक हैं। कहते है, पूरे भारत म श्री चन्दाप्रभु भगवान की ऐसी सुन्दर छवि की मूर्ति कही नही है। मदिरजी मे जीर्णोद्धार काय का लाभ एक सधर्मी भाई ले रहे हैं जिससे प्राचीन मदिर मे और चार चाँद लग जावेंगे।

५ श्री सागानेर मदिरजी व दादावाडी

सागानेर मदिरजी के अन्दर का काय पूरा हो चुका है। यह मदिर भी प्राचीन मदिरो मे से एक भव्य मदिर है और यहाँ की कला भी काफी आकषक है।

सागानर दादावाडी मे छतरियो के जीर्णोद्धार काय हो जान से पुरानी भव्यता पुन लौट आई है। दादावाडी मे एक सुन्दर बगीचा भी विकसित किया जा रहा है।

६ श्री चाक्सू मदिरजी

यह भी एक प्राचीन मदिर है और यहा सालाना पूजा का आयाजन किया जाता है।

७ श्री आदीश्वर भगवान का मदिर (नथमलजी का कटला)

यह शहर के पास है और इसका आवश्यक जीर्णोद्धार करवाया गया है। परमपूज्य प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री जी म० सा० के दीक्षा के समय इस मदिर की प्रतिष्ठा हुई थी और उनके परिवार के सदस्य श्रीमान कल्याणमलजी गोलेच्छा ने इस मदिर को श्री खरतरगच्छ सघ को भेंट दे दिया था। इस सम्बन्ध म पूज्य म० सा० का पूण योगदान रहा। इसी वष कुछ नवीन मूर्तियो की प्रतिष्ठा व दादा गुरु देव के चरण स्थापित किये गये हैं।

८ श्री महावीर भगवान का मदिर—(टोंक फाटक)

यहा शहर के बाहर बसे कोलोनियो के लोगो के दशन व पूजा करन वालो की सख्या म निरन्तर वृद्धि हो रही है। मदिर के नवीनीकरण की योजना विचाराधीन है।

९ श्री विचक्षण विद्या विहार—छात्रावास

यह टोंक फाटक पर स्थित है। विभिन्न जगहो के समाज के छात्रो के यहा रहने का प्रबध है। छात्रो को विद्याध्ययन के अलावा शुद्ध भोजन व धार्मिक प्रवति का यहाँ लाभ प्राप्त होता है।

१० महिला विभाग

यह विभाग आयंबिलशाला व उपाश्रय की व्यवस्था मे कायरत है। आयबिलशाला का नवीनीकरण हो चुका है। आयबिलशाला नियमित रूप से प्रगति कर रही है।

११ श्री विचक्षण स्मृति भवन

इसका निर्माण जोरो से चल रहा है। नीचे की मंजिल व तहखाने का काय पूरा हो चुका है।

भवन पुरा होने पर यह जयपुर की भव्य इमारतो में से एक होगा और जनसाधारण के उपयोग में आवेगा।

१२. मालपुरा दादावाड़ी—मालपुरा

यह मालपुरा मे स्थिन चमत्कारिक स्थान है। दादा गुरुदेव के दर्शन हेतु समस्त भारत के लोग यहाँ आते है। यहाँ आवास व भोजन की समुचित व्यवस्था है।

देहली वाले सेठ श्री अमृतलालजी की तरफ से एक वगीचे की व्यवस्था की जा रही है जो इस स्थान की शोभा वढाने के अलावा पूजा हेतु फूल भी उपलव्ध कराता है। दादा गुरुदेव की छतरी के नवीनीकरण व दादावाड़ी के विस्तार की योजना विचाराधीन है।

१३ श्री खोह मदिर जी·

जयपुर के पास खोह गाँव मे स्थित यह प्राचीन मदिर है। इसके जीर्णोद्धार की योजना विचाराधीन है।

१४ श्री वालचद फूलचद थूपिया जैन श्वेताम्वर धर्मशाला :

वर्तमान मे यहाँ एक धर्मादा चिकित्सालय सेवा प्रेमी वधुओ की तरफ से चल रहा है।

१५ श्री ज्ञान भण्डार :

श्री ज्ञान-भण्डार मे दुर्लभ ग्रन्थ व पुस्तके उपलव्ध है, जिसका लाभ साधु-साध्वियो के अलावा समाज को भी प्राप्त होता है।

परम श्रद्धेय श्री सज्जनश्रीजी म० सा० व पूज्य श्री शशीप्रभाश्रीजी म० सा० के अथक प्रयास से इसको नवीन स्वरुप प्रदान किया जा रहा है।

१६. वर्तन भण्डार

सामाजिक व धार्मिक कार्यो के उपयोग हेतु सभी प्रकार के वर्तन व अन्य सामान की व्यवस्था है। धार्मिक सस्थाओ को वर्तन वगैरा नि शुल्क दिये जाते है। इन वर्षो मे काफी नये वर्तन खरीदकर इसको और उपयोगी वनाया गया है।

१७ साधर्मी भक्ति·

समय-समय पर वाहर से आने वाले दर्शनार्थियो के आवास व भोजन की व्यवस्था सघ द्वारा सुचारु रूप से की जाती है। □

सज्जनवाणी

१. व्रह्मचर्य व्रत धारण करने वाले व्यक्तियो की देवता भी सहायता करते है। व्रह्मचर्य व्रत के प्रभाव से सभी प्रकार की आपत्तियाँ दूर हो जाती है, उन पर आये हुए सकट क्षणमात्र मे दूर हो जाते है।

२ अपरिग्रह व्रत-धारी जगत मे परम पूज्य पद प्राप्त करते है। वड़े-वड़े शक्तिशाली सम्राट उनके चरणों मे झुकते है। और वह सदा निर्भय रहता है।

३ सत्य जव व्यवहार मे आता है तभी उससे स्वयं का और सम्पर्क मे आने वालो का कल्याण होता है।

४ कामना और सकल्प मे वड़ा भारी अन्तर है। कामनाओ से केवल अशान्ति वढती है, भौतिक वस्तुओ की प्राप्ति की इच्छा को कामना कहते है। कामनाओ का त्याग किये विना अध्यात्म साध. । नही हो सकती। □

प्रवर्तिनी सिंहश्रीजी म० के साध्वी-समुदाय का परिचय

☐ *साध्वी हेमप्रभाश्रीजी*

जैन धम परम्परा मे—मोक्ष की राह पर चलन का नारी व पुरुष को समान अधिकार है। आत्मसमानता के सगायक भगवान महावीर ने साधना के क्षेत्र मे जाति भेद, वग भेद और रग भेद आदि को कभी नही स्वीकारा। उनका सदा उद्घोष रहा कि साधना करन का आत्मविकास करन का, मुक्ति प्राप्त करने का सबको समान अधिकार है। आत्म प्रधान दशनो म परस्पर विभेद रेखायें हो ही नही सकती। जो अनन्त गुण युक्त आत्मज्योति पुरुष मे है वैसी ही आत्मज्योति नारी म है। अत साधना के क्षेत्र म पुरुष नारी का कोई भेद नही। यही कारण है कि चतुर्विध सघ की स्थापना मे साधु के साथ साध्वी और श्रावक के साथ श्राविका को भी उन्होने समान स्थान दिया। नेतृत्व की दृष्टि से यद्यपि साध्वियाँ पीछे हैं। सामान्य स्थिति मे सघ का नेतृत्व कभी उनके हाथो नही आया, तथापि सयम-साधना शासन प्रभावना विद्वत्ता आदि की दृष्टि से सघ मे उनका स्थान गौरवपूण रहा, और है। साहस व सकल्प की दृष्टि से देखा जाय तब तो कभी-कभी नारी-पुरुष की प्रेरणा बनने का दिव्य और भव्य सौभाग्य प्राप्त कर चुकी है। ब्राह्मी, सुन्दरी, राजीमती, याकिनी महत्तरा, नागिला आदि इसके अनुपम उदाहरण हैं। उन्होंने अपनी राह मे डगमगाते साधको को स्थिर ही नही किया उन्हाने महान् त्यागी व सयमी बनाकर मुक्ति का पथिक बनाया। इतना ही नही, साधको की सयम रक्षा हेतु उन्होंने अपने जीवन का उत्सग तक कर दिया। साध्वी चन्दुमती, इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

भगवान महावीर के समय म विद्यमान साध्वी प्रमुखा आर्या चन्दनबालाजी से लेकर साध्वियों की यह गौरवपूण परम्परा आज तक अविच्छिन्न रूप से चली आ रही है। इस परम्परा म कई सयमी, तपस्वी, विदुषी, कवयित्री एव लेखिका आर्यायें हुइ और वर्तमान मे हैं, जिनकी गौरवगाथा प्रकाशस्तम्भ की तरह आज भी मानव-जाति का दिशा निर्देश करती हैं।

इस परम्परा मे खरतरगच्छीय साध्वी मडल सयमनिष्ठा, विद्वत्ता, वक्तृत्व, लेखन आदि की दृष्टि से अपना विशिष्ट स्थान रखता है। आज भी इस परम्परा म, कम सख्या मे होते हुए भी, उच्चकोटि की सयम-साधिकायें, वक्ता कवयित्री, लेखिका आदि बडी विदुषी साध्वियाँ हैं, जो आत्म-साधना करती हुई अपन ज्ञान एव प्रतिभा के द्वारा जन-जन तक भगवान महावीर का दिव्य सन्देश पहुँचा रही हैं।

समय के प्रवाह के साथ यह परम्परा कई शाखा-उपशाखाओ से समृद्ध बनी। प० पू० खरतर-

गच्छाधिपति सुखसागरजी म. के समुदाय में वर्तमान में साध्वियो की दो समृद्ध परम्परायें हैं जो पुण्य-मण्डल और शिवमण्डल के नाम से प्रसिद्ध है। पुण्य-मण्डल की प्रमुखा है, पुण्यश्लोका पुण्यश्रीजी म० सा० एव शिवमण्डल की नेत्री है, प० पू० स्वनामधन्या सयममूर्ति शिवश्रीजी म० सा०। दोनो का मूल एक ही है, दोनो ही प० पू० लक्ष्मीश्रीजी म० सा० की शिष्याये है।

शिष्या-प्रशिष्या का परिवार बढने के साथ स्वाभाविक है कि दो गुरुबहिनो का विहार-प्रचार इत्यादि अलग-अलग दिशा मे हो जाता है, किन्तु एक बात समझ नही आती कि ऐसी क्या आवश्यकता हुई, ऐसी कौन सी परिस्थितियाँ बनी कि सर्वोपरि अनुशासन एक होते हुए भी प्रवर्तिनी की व्यवस्था अलग-अलग की गई। प० पू० लक्ष्मीश्रीजी म० जैसी सयमनिष्ठ, जिनाज्ञासमर्पित गुरुवर्या के नेतृत्व मे फलने-फूलने वाला अनुशासनप्रिय साध्वी-मण्डल मे दो प्रवर्तिनियो की आवश्यकता किस कारण हुई, एकता के बँधे हुए साध्वी-मण्डल ने कालान्तर में अलगाव पैदा करने वाले इस निमित्त को क्यो स्वीकार किया। व्यवस्था और अनुशासन की दृष्टि से भी दो प्रवर्तिनी वाली बात का यहाँ कोई औचित्य नही लगता। कारण साध्वियो की सख्या इतनी अधिक थी ही नही।

वर्तमान साध्वी-समुदाय का मूल

प० पू० लक्ष्मी स्वरूपा

लक्ष्मी श्रीजी म. सा.

लक्ष्मीश्रीजी म० सा० वास्तव मे गच्छ के लिए लक्ष्मीस्वरूपा सिद्ध हुई। आपकी परमकृपा का सुपरिणाम है कि आज दोनो मण्डल सुयोग्य साध्वियो से समृद्ध है। आप फलौदी निवासी जीतमलजी गुलेछा की सुपुत्री थी। आपकी शादी उस समय के रिवाज के अनुसार छोटी उम्र मे ही श्रावक परिवार मे हुई। जिनका जीवन मुक्त होने के लिए निर्मित हुआ वह कब बन्धन-बद्ध रह सकती थीं। कुछ समय बाद ही अचानक आपके पति की मृत्यु हो गई। छोटी उम्र, धर्मरुचि, पारिवारिक सुविधा ने आपको सत्संग से जोड दिया। प० पू० खरतरगणाधीश सुखसागरजी म० सा० के त्याग, वैराग्यपूर्ण प्रवचन एव प० पू० गुरुवर्या श्री उद्योतश्रीजी म० सा० की सत्प्रेरणा से आप विरक्ता बनी और वि० स० १९२४ की मिगसर वदी १० को दीक्षा ग्रहण की। पू० गुरुदेव एव गुरुवर्याश्री की निश्रा में शास्त्राध्ययन कर आपने विद्वत्ता प्राप्त की थी। आप विदुषी होने के साथ प्रखरव्याख्यात्री, तपस्विनी, सयम एव प्रभावशालिनी थी। आपकी दो शिष्याये थी १. प० पू० मगनश्री जी म० सा० २ शिवश्रीजी म० सा०। खरतरगच्छ मे शिवमण्डल के नाम से प्रसिद्ध साध्वी मण्डल आपकी ही परम्परा मे है।

आदर्श त्यागप्रतिमा प० पू०

सिंहश्रीजी म०सा०

आपका नाम शिवश्रीजी और सिंहश्रीजी दोनो मिलते है। आपके लिये दोनो ही नाम सार्थक हैं। आपका जीवन मोक्ष (शिव) की प्राप्ति के साधनभूत ज्ञान और क्रिया वस्तुत उनके जीवन की अनुपम 'श्री' थे। साहस सिंह से कम नही था। अत सिंहश्रीजी भी नाम सार्थक है। आपका जन्म वि स १९१२ मे फलोदी मे हुआ था। पिता का नाम लालचन्द्रजी और माता अमोलक देवी थी। अमोलक देवी की कुक्षि से यह अमोलक रत्न १९१२ मे पैदा हुआ था। आपका नाम शेरू था। तभी तो छोटी उम्र मे आये वैधव्य

के दुख को शेर की तरह साहस से झेलकर, २० साल की भर युवानी में १९३२ की अक्षयतृतीया को प पू लक्ष्मीश्रीजी म के चरणो मे सयम स्वीकार कर समर्पित हो गई। आप साहस व सयम की धनी थी। ज्ञान और क्रिया दोनो ही समान रूप से आपके जीवन म ओतप्रोत थे। आपका प्रवचन बडा ही प्रभावशाली, रोचक व प्रेरक था। यही कारण है कि आपने कई आत्माओ को प्रतिबोध दे सयमी बनाया। दूसरो की भावना को अपने विचारो से अनुप्राणित कर देने की क्षमता प्राप्त कर लेना, बहुत बडी उपलब्धि है। आप ही का पुण्य प्रभाव है कि आज आपकी परपरा सुयोग्य-साध्वियो से समृद्ध है, और शिव मण्डल के नाम से प्रसिद्ध है। आपकी ७ शिष्यायें प्रसिद्ध है। १ प्रतापश्रीजी म० २ देवश्रीजी म० ३ प्रेमश्रीजी म० ४ ज्ञानश्रीजी म० ५ वल्लभश्रीजी म० ६ विमलश्रीजी म० ७ प्रमोदश्रीजी म०। आप वि स १९६५ पो शु १२ को अजमेर म दिवगत हुइ।

इन सात पूज्याओ का विशाल शिष्या प्रशिष्या परिवार शिव मण्डल है। रग विरगे पुष्पो से जैसे वाटिका महकती है, वैसे गुण-सौरभ सपन्न ८५ ९० साध्विया से यह शिव मण्डल का बगीचा महक रहा है।

परमप्रतापी पू० प्रतापश्रीजी म०सा०

आपका जन्म वि स १९२५ पौषसुद १० को फलोदी म हुआ था। आपके पिता मुकनचदजी लूकड एव माता सुकन देवी थी। आपका नाम आसीबाई था। १२ वर्ष की अल्पायु म सूरजमलजी श्रावक के साथ आपका विवाह हुआ किन्तु आपका गृहस्थ-जीवन लम्बे समय तक नही चला। कुछ वर्षो म ही आपका सौभाग्य छिन गया।

जो आत्मायें साधक जीवन जीने हेतु ही जन्मी हैं, उनके लिये ये घटनाये अधिक महत्व नही रखती, व इन्हें अपने ही कर्मों का प्रसाद मानकर हसते-हसते सह लेती हैं। व्यर्थ के आर्त्त ध्यान से नये कर्मों का बधन नही करती। किन्तु अवसर का उचित लाभ उठाकर अपने जीवन को सार्थक कर लेती हैं।

आसीबाई 'बीती ताहि बिसार दे आगे की सुध लेय' के अनुसार जो कुछ हुआ उसे भूलकर, आगे क्या करना है, उस प्रयास मे जुट गई। सर्वप्रथम उन्होने श्रावकोचित सूत्रो का अध्ययन प्रारम्भ किया। धर्माराधना मे मन पिरोया। इससे उन्हें वेदना म विश्राम मिला। शान्ति एव सात्वना मिली। कर्मबधन से ऊबा मन मुक्ति की साधना की राह खोजने लगा। ठीक इसी समय आदर्श त्याग प्रतिमा विशुद्ध सयमी शिवश्रीजी म०सा० का आपको सुयोग मिला। उनकी प्रेरणा से आसीबाई मे पूर्ण साधनामय सयमी जीवन-जीने का दृढ सकल्प बना और वि०स० १९४७ मिगसर वदी १० को आपने दीक्षा ग्रहण की। पू शिवश्रीजी म०सा० की प्रधानशिष्या बनने का गौरव प्राप्त किया।

आपका जीवन शात सरल एव गुरुसेवा समर्पित था। ज्ञानाभ्यास के साथ आप तपस्विनी थी। आपने १२ शिष्याओ की गुरुपद के साथ शिवमण्डल के प्रवर्तिनी पद को भी कई वर्षों तक सुशोभित किया। वास्तव में आपका जीवन तप-त्याग के प्रताप से पूर्ण था।

द्वादश पर्वव्याख्यान, सस्कृत के चैत्यवन्दन स्तुति, आनन्दघन चौबीसी देवचन्द्र चौबीसी आदि आपके उपयोगी प्रकाशन है।

यू तो आपकी सभी शिष्यायें योग्य थी किन्तु प पू सतयश्रीजी म परमविदुषी महान् शासन-प्रभाविका थी।

देवीतुल्या देवश्रीजी म. सा.

वास्तव मे आप देवीस्वरूपा थी । प्रकृति से गम्भीर, शान्त एव शुचिमना थी । आपका जन्म वि स. १९२८ चै शु " को फलोदी मे हुआ था । वैधव्य के पश्चात् पू० गुरुवर्या सिहश्रीजी म. सा. के सान्निध्य मे दीक्षा ग्रहण की । आप उच्चकोटि की विद्वत्ता तो नही प्राप्त कर सकी, परन्तु विनय एव सेवा के क्षेत्र मे अग्रगण्य रही । गुरु एव गुरुवहिनो के प्रति आपका जो सेवा-शुश्रूपा एवं स्नेह भाव था, वह अन्यत्र मिलना दुर्लभ है । अपनी गुरुवहिनो का कार्य स्वय करके उन्हे अध्ययन का अवसर देना आपकी महानता का परिचायक है । जहाँ पारस्परिक प्रतिस्पर्धा होना स्वाभाविक है, वहाँ गुरुवहिनो को आगे बढाने मे प्रेमपूर्वक सहयोग करना, आपकी महान् विशिप्टता है । स्नेह के साथ आप मे अनुशासन की कुशलता भी थी । स्नेह और अनुशासन, एक अच्छी सरक्षिका के दोनो ही गुण आपमे मौजूद थे । आपके इन्ही सद्गुणो को देखकर वि स १९९७ माघ वदी १३ को प्रवर्तिनी पद से विभूपित किया गया ।

आप १०-११ शिप्याओ के गुरुपद को सुशोभित करती थी । आपकी शिप्याओ मे प पू. विदुपी-रत्ना वा ब्र हीराश्रीजी म० सा० "यथानामा तथागुणा" ही थी । आपका स्वर्गवास वि. स. २०१० भादवा वदी १३ को फलोदी मे हुआ ।

आदर्श प्रेम-प्रतिमा प. पू. प्र. श्री प्रेमश्रीजी म. सा.

आपश्री का व्यक्तित्व असीम था । उसे शव्दो की सीमा मे वाँधना कठिन है । जिसका जीवन प्रेम-स्वरूप हो, जिसके हृदय मे स्नेह का अजस्र झरना वहता हो, जिसका अन्तर् और वाह्य प्रेम मे पगा हो, उस व्यक्तित्त्व को शव्दों के चौखटे मे नही ढाला जा सकता । मात्र उसका अनुभव ही किया जा सकता है । आपके सान्निध्य मे रहने का सौभाग्य यद्यपि वहुत ही छोटी उम्र में मिला था, तथापि उनके जीवन की कुछ स्मृतियाँ हृदय में यथावत् अंकित है ।

पूज्यवर्या का जन्म फलोदी मे छाजेड कुलदीपक किशनलालजी एव अ० सौ० लाभूदेवी की रत्न-कुक्षि से वि० स० १९३८ की शरद-पूर्णिमा को हुआ था । एक चॉद आकश मे चमक रहा था तो दूसरा दुनियाँ को प्रकाश देने धरती पर अवतीर्ण हुआ था । आपका नाम धूलि रखा । मानो रत्नधूलि मे ही पकते हैं । धर्मसस्कारो मे पली योग्य शिक्षा-दीक्षा सम्पन्न 'धूलि' को १३ वर्ष की उम्र मे, अईदानजी गुलेछा के साथ, विवाहसूत्र मे वॉध दिया । किन्तु कुदरत को कुछ और ही मंजूर था । राग तोडने के लिये जन्मी धूलि, राग का पोषण कैसे कर सकती थी ? जिसका जीवन सर्वजनहिताय एवं सर्वजनसुखाय था । वह एक से वँधकर कैसे रह सकती थी जिसका जीवन मुक्ति की साधना के लिये था, वह ससार के कीचड मे कैसे फँस सकती थी । शादी को साल भर पूरा न हुआ, पति की मृत्यु हो गई, दुख होना स्वाभाविक था, किन्तु भगवान् ने कहा है—'अज्ञान खलु महाकप्टम् ।" दुख का कारण जीव का अपना अज्ञान है । ज्योही अज्ञान का अन्धेरा दूर होता है सुख का सवेरा स्वत हो जाता है । भगवान का यह कथन सत्य है यथार्थ है । तपे हुए लोहे पर की गई चोट उसे वाछित आकार मे वदल देती है । आवश्यकता है विवेकपूर्वक ढालने की ।

उस समय धूलिवाई एक दुधमुही वाला थी । कुछ आत्माये वय से छोटी, किन्तु ज्ञान से परिपक्व होतीं हैं, जरा-सा निमित्त पाकर उनके अज्ञान की झिल्ली टक-टूक हो जाती है । पू. गुरुवर्या विशुद्ध

सयमी सिंहश्रीजी म सा के सुयोग एव सदुपदेश मे धूलिबाई के हृदय मे सम्यग्ज्ञान की ज्योति प्रज्वलित हुई। धीरे धीरे चिरसचित वैराग्यभावना को पोषण मिला। समार मे होने वाले कमबन्धन के चिन्तन से वे काप उठी। आखिर गुरुवर्याश्री के चरणा म सयम लेन की प्रवल भावना जाग उठी। सुयोग्य पात्र देखकर गुरुवर्याश्री ने भी उन्ह सहष स्वीकृति दे दी। १६ वप की उम्र मे वि स १६५४ मि वदी १० को आपने वडे समारोहपूर्वक दीक्षा ग्रहण की। आपके जीवन म प्राणीमात्र के प्रति प्रेम का माधुय छलकता देखकर गुरुवर्याश्रीजी न आपका अन्वथक नाम 'प्रेमश्रीजी' रखा। तीक्ष्ण बुद्धि, प्रखर प्रतिभा, गुरु समपण, अटूट-लगन, सेवाभाव, सयमनिष्ठा, निस्पृहता आदि अलौकिक गुणो ने आपको नानी प्रखर व्याख्यात्री, विशुद्ध सयमी एव ध्यानी वना दिया। आपकी आवाज वडी मधुर पर बुलन्द थी। जब बोलती लगता था वीणा के तार झकृत हो उठे हो। मुख पर अपूव तेज था। आपके दशन कर अच्छे अच्छे अभिभूत हो जाते थे।

आप प्राकृत सस्कृत, न्याय-दशन की अच्छी विदुषी थी। बडे-बडे विद्वानो के साथ धारा प्रवाह सस्कृत मे वार्तालाप करती, ऐसा लगता मानो देहधारिणी सरस्वती हो। प्रवचन दती तो ऐसा लगता मानो हिमालय के उत्तुग शृ ग से कल कल नादिनी गगा प्रवाहित हो रही हो। आपके प्रवचन म हृदय परिवतन की अपूव क्षमता थी। नास्तिक जसे व्यक्ति भी आपका प्रवचन श्रवण कर आस्थावान् बन जाते थे। सात्त्विकता के अभाव म तात्त्विकता अपूण है। आपका जीवन तात्त्विक ही नही पूण सात्त्विक था।

आप मौन ध्यान प्रिय थी, साय प्रतिक्रमण के पश्चात् मौन ग्रहण करती वह दूसरे दिन प्रात १० बजे खोलती। प्रात ६ बजे ध्यानस्थ होती १० बजे बाहर आती चाहे कितना भी आवश्यक काय हो, कैसा भी वडा व्यक्ति क्यो न आया हो, आपके नियम म किसी प्रकार का कोई परिवतन नही होता। जिस समय आप ध्यान करके बाहर पधारती आपके चेहरे और आँखो मे वह तेज होता कि सहसा उनके सामन देखने का साहस नही होता। मौन और ध्यान की उपलब्धि उनके अन्तमुखी व्यक्तित्व के साथ बाहर मे वचन सिद्धि के रूप मे हुई। उनकी वचनसिद्धि के साक्षी कई व्यक्ति आज भी मौजूद हैं।

आहार शुद्धि एव नियमितता के प्रति आपका पूर्ण लक्ष्य था। अपने युवावस्था म भी कम म कम द्रव्यो का नियम, वृद्धावस्था म तो मात्र ५ द्रव्य और ३ विगय ही खुली रखी थी। आपका प्रत्येक चिन्तन आत्मकेन्द्रित होता था।

आप वास्तव म एक वीरागना थी। मध्य प्रदश की बात, पू गुरुवर्या को दीक्षा देकर जावरा के आस-पास के क्षेत्र म विहरण कर रही थी। उन दिनो उस इलाके मे डाकुआ का बडा उपद्रव था। आये दिन गाँव लूटे जा रह थे। आप अपनी आठ आदश शिष्याओ के साथ जगल से गुजर रही थी कि पीछे स घोडा की टॉप सुनाई दी। पीछ मुडकर देखा तो दूर-दूर घुडसवारा का पूरा दल था। आपकी पारखी आँखो को स्थिति समझते देर नही लगी। उन्ह भरोसा था प्रभु के ध्यान पर, उन्ह आस्था थी अपने शुद्ध, शील, सयम पर। युद्ध के मैदान मे खडे कमाण्डर की तरह आपने अपनी शिष्याओ को आदेश दिया—सावधान! जब तक डाकुओ का उपद्रव शान्त न हो, शरीर और उपधि को वोसिराकर काउस्सग्गध्यान मे खडे होकर, भगवान महावीर, गजसुकुमाल, खधर, मेताय आदि महामुनियो के आदश जीवन का चिन्तन करिये। महावीर के अनुयायी जीना जानते हैं तो मरना भी जानते हैं। कितना धय? कितना साहस? शिष्याओ न गुरु आज्ञा तहत्ति की।

दस्युदल नजदीक आता जा रहा था। पर यह समूह बेखबर ध्यान लीन था। एक ही सकल्प था कि उपसर्ग होगा तो मृत्यु का वरण करेंगे। उपद्रव शान्त हो जायगा तो संयम की साधना करते हुए शासन-प्रभावना करेंगे। किन्तु यह क्या ? साध्वी-मडल के नजदीक आकार डाकू दल अन्धो की तरह भ्रमित हो गया। आगे की राह ही नही सूझ पाई। आखिर दिशा बदलनी पड़ी। पुन वही नीरवता छा गयी। साध्वीमडल ने आँख खोली, सुदूर-सुदूर क्षितिज पर लौटते हुए डाकुओ की धूल उडती दिखाई दी। सयम-शील की विजय से आर्या-मण्डल की आँखे चमक उठी और वे वीरागनाएँ पुन नमस्कार मन्त्र का ध्यान करती हुई अपनी राह पर चल पडी।

ध्यानावस्था मे कभी-कभी आपको भावी घटनाओ का पूर्वाभास हो जाता था। आपने कई घटनाओ का पहिले से सकेत किया था और वे सत्य निकली थी। आपने अपनी मृत्यु का भी ३ माह पूर्व सकेत दे दिया था। जघाबल क्षीण होने की स्थिति मे आप १५ साल फलोदी मे स्थानापन्न रही।

वि० स० २०१० की भादवा शु० १५ को अनिच्छा से आपको प्रवर्तिनी पद से विभूषित किया गया। अपने पूर्व सकेतानुसार आ० कृ० १३ को मानो वस्त्र परिवर्तन कर रही हो, इस तरह पूर्ण तैयारी-पूर्वक हँसते-हँसते मृत्यु का वरण किया। आपने गच्छ व शासन को १७ विदुषी, विशुद्धसयमी, शासन-प्रभाविका, प्रखर व्याख्यात्री शिष्याओ की अपूर्व भेट दी। जिनके द्वारा की गई शासन सेवा एव वर्तमान मे २५ प्रशिष्याओ द्वारा हो रही शासनसेवा के लिये गच्छ को बड़ा गौरव है। आपके यशश्रीजी म., शान्तिश्रीजी म , क्षमाश्रीजी म०, अनुभवश्रीजी म०, शुभश्रीजी म०, तेजश्रीजी म० आदि अनेक शिष्याये हुई। वर्तमान मे साध्वीश्री विनोदश्रीजी म०, प्रियदर्शनाश्रीजी म०, विकासश्रीजी म०, हेमप्रभाश्रीजी, सुलोचनाश्रीजी म० आदि विचरण कर रहे है।

प. पू सौजन्यमूर्ति ज्ञानश्रीजी म. सा.

आप लोहावट निवासी पारख गोत्रीय मुकनचन्दजी एव कस्तूरदेवी की सुपुत्री थी। आपका जन्म वि० स० १९२८ की श्रावण शुक्ला ३ को हुआ था। आपका नाम जडाव था। वास्तव मे आपका जीवन सुसंस्कार एव सद्गुणो से जडा हुआ था। आपका विवाह लोहावट मे ही लक्ष्मीचन्द जी सा० चौपडा के साथ हुआ। किंतु काल ने १२ वर्ष की अल्प अवधि मे ही सस्कारी युगल को वियुक्त कर दिया। जडाववाई विधवा हो गई। जिस हृदय मे वास्तव मे धर्म रमा है, वहाँ कर्म आते तो है किंतु प्रभाव नही जमा सकते। दुख आता है किंतु विकल नही कर सकता। प्रत्युत प्रेरक बनता है। जडाववाई का भी यही हाल था। पतिवियोग की व्यथा उनकी आत्मोन्नति में प्रेरक बनी। इसे सफल बनाने का काम किया पू श्रीसिंहश्रीजी म० के सदुपदेशो ने। ५ वर्ष के अथक प्रयास से आखिर सफलता मिली और वि० स० १९६१ की मार्गशीर्ष शुक्ला पंचमी के दिन दीक्षा ग्रहण की। ज्ञानश्रीजी के नाम से प्रसिद्ध हुई। बडी उम्र मे दीक्षा लेकर भी आपकी पढने की रुचि अद्वितीय थी। यही कारण है कि आपने बडी उम्र मे अच्छा अध्ययन किया। आपकी ज्ञानरुचि ने ही लोहावट फलोदी आदि मे कन्या पाठशाला खुलवाई। आपके उपदेश मे खीचन, जैसलमेर का सघ निकला। वल्लभश्री श्री जी म जैसी महान् साध्वी-रत्न आपकी ही देन है। धर्मशालाओं का निर्माण हुआ। १९९६ वै० सु० १३ को फलोदी मे आप समाधिपूर्वक दिवगत हुई। आप १३ सुयोग्य शिष्याओ की गुरुणी थी। प. पू शासन दीपिका मनोहर श्रीजी म० सा० आपकी ही प्रशिष्या है।

प पू जन-मन वल्लभा श्री वल्लभश्रीजी म० मा०

विद्वत्ता के साथ सरलता एव नम्रता से वल्लभ वास्तव मे सबकी वल्लभ थी। आपका जन्म लोहावट मे पारख गोत्रीय सूरजमलजी की धर्मपत्नी श्रीमती गोगादेवी की कुक्षि से वि० स० १६५१ पौष कृष्णा ७ को हुआ था। १० वर्ष की उम्र मे ही भुवाजी (ज्ञानश्रीजी म) द्वारा प्रदत्त सस्कार प पू गुरुवर्या श्री सिंहश्रीजी म के प्रभावशाली, वैराग्यमय प्रवचनो से अकुरित हुए। भुवाजी के साथ दीक्षा लेने का सकल्प कर लिया। व्यक्ति सघर्ष करता है। किन्तु ममता के साथ सघर्ष करना कठिन ही नही अति कठिन है।१० वर्ष की उम्र म उन्हे बडा सघर्ष करना पडा किंतु जहाँ सकल्प है, वहा सिद्धि है। आखिर भुवाजी के साथ ही १६६१ मार्गशीर्ष शुक्ला ५ को महान तपस्वी छगनसागर जी म० मा० के कर-कमलो से दीक्षित हो भुआ भतीजी की यह अलबेली जोडी पू० गुरुवर्या सिंहश्रीजी म मा का शिष्यत्व स्वीकार कर कृतार्थ बनी। छोटी उम्र, तीक्ष्ण बुद्धि, दृढ लगन, अध्ययन रुचि से आप थोडे वर्षों म ही महान् विदुषी बन गइ। पू गुरुवर्या का सान्निध्य तो आपको ४ वर्ष ही मिला, किन्तु गुरुबहनें विशेषकर प पू प्रवर्तिनी जी प्रेमश्रीजी म० मा० की आप सर्वाधिक कृपा-पात्र रही। या विनय, सेवाभाव, सरलता के कारण आप सभी की प्रेम पात्र थी। १० वर्ष तक आप गुरुबहिना के साथ विचरण करती रही। तत्पश्चात् अपनी ,परमोपकारिणी ज्ञानश्रीजी म० के साथ सुदूर प्रदेशो म भ्रमण किया। शास्त्रो का गम्भीर अध्ययन, प्रभावी प्रवचन शैली से राजा महाराजा एव ठाकुरो ने प्रभावित होकर अहिंसक जीवन स्वीकार किया था। प पू प्रेमश्रीजी म सा के दिवगत होने के पश्चात उनकी परम कृपा-पात्र आपको छोटी सादडी म वि० स० २०१० शरदपूर्णिमा को भव्य समारोह के साथ शिव मण्डल का नेतृत्व रूप प्रवर्तिनी पद से विभूषित किया। आपके हाथो शासन प्रभावना के अनेको कार्य हुए। अत मे जघाबल क्षीण होने पर अमलनेर महाराष्ट्र म ६ साल स्थानापन्न रही। असाता के उदय म आपकी समता गजब की थी। तन वेदनाग्रस्त होता किंतु मन प्रभु म मस्त रहता। आप वि० स० २०१८ फा० सु० १४ को समाधिपूर्वक स्वर्ग सिधारी। आपके विशाल शिष्या प्रशिष्या परिवार म कई साध्वियाँ बडी विदुषी, अच्छी व्याख्यात्री, लेखिका एव कवयित्री हैं। आपश्री ने करीब २० पुस्तको का लेखन सपादन व प्रकाशन करवाया था। वर्तमान म शिव मडल का नेतृत्व आपकी शिष्या प्रवर्तिनी श्री जिनश्रीजी म कर रहे हैं। उनका परिचय इस प्रकार है—

प पू वर्तमान प्रवर्तिनीजीश्री जिनश्रीजी म मा

आप वर्तमान मे शिव मडल की प्रवर्तिनी पद पर प्रतिष्ठित प० पू० प्र० श्री वल्लभश्रीजी म० सा० की प्रधान शिष्या है। आपका जन्म वि० स० १६५७ आश्विन शु० ८ को तिवरी (राज०) म हुआ था। आपके पिता श्री लादुराम जी बुरड एव मातुश्री घूडी देवी थी। आपका नाम 'जेठीबाई' था। १४ वर्ष की उम्र मे आपका विवाह राजमलजी श्रीमाल के साथ हुआ था किन्तु डेढ वर्ष के बाद ही आप विधवा हो गई। कभी-कभी दुख सुख के लिए होता है। अन्धकार मे प्रकाश की किरण चमक जाती है। वि० स० १६७६ म प० पू० ज्ञानश्रीजी प० पू० वल्लभश्रीजी म० तिवरी पधारी। आप भी गुरुवर्याओ के दर्शनार्थ गई। कुछ ही क्षणो के ससर्ग ने जेठीबाई की चेतना को जगाया। गुरुवर्या श्री तो दूसरे दिन जोधपुर की ओर विहार कर गइ किन्तु जेठीबाई के दिल म हलचल बढती गई। उनके ही पुण्य से किसी पू० गुरुवर्या का वह चातुर्मास तिवरी म ही हो गया। जेठीबाई की मनोकामना सफल बनी। पू० गुरुवर्या

के सान्निध्य से उन्होने अध्ययन के साथ-साथ अपने आतमवल एव वैराग्य-भावना को दृढ वनाया। चातुर्मास वाद वि० स० १९७६ मि० सु० ५ को दीक्षा ग्रहण कर पू० वल्लभश्रीजी म० सा० की प्रधान शिष्या वनी। अध्ययन के साथ आप सामुदायिक विचार-विमर्श, देखभाल आदि का उत्तरदायित्व निभाने में अपनी गुरुवर्या का पूर्ण सहयोग करने लगी। आपकी सूझ-वूझ इतनी विवेकपूर्ण थी कि विगड़ती वात वना लेती थी। पूज्या प्रवर्तिनी जी के पास आपका पद सदा 'मन्त्री' जैसा ही रहा। गुरुसेवा आपके जीवन का सर्वस्व था। शिष्य का विनय, गुरु के वात्सल्य को खीचता है। जहा ये दोनो होते हैं, वहाँ आनन्द का पूछना ही क्या ? आपने अपने समूचे अस्तित्व को गुरु मे विलीन कर दिया था। उनकी अपनी इच्छा, भावना कुछ भी नही है, सव कुछ गुरु समर्पित है। आप उन शिष्यो मे थी, जो गुरुहृदय मे वसकर 'धन्यतम' की कोटि मे आते है। इसी के परिणामस्वरूप प० पू० प्रमोदश्रीजी म. सा के स्वर्गवास के वाद शिव-समुदाय का सचालन आपके हाथो सौंपा गया। आज आपकी उम्र ८८ वर्ष की है फिर भी अपने उत्तरदायित्व को वडी कुशलता के साथ निभा रही हैं। आपकी दीर्घायु की कामना के साथ शासन देव से प्रार्थना है कि आपके सफल नेतृत्व मे, समुदाय अधिकाधिक रत्नत्रय की आराधना करती, शासन प्रभावना करती हुई समृद्ध वने।

वर्तमान मे विचरण कर रही साध्वी श्री कुसुमश्रीजी म०, निपुणश्रीजी म०, कमलप्रभाश्रीजी म० आदि प्रवर्तिनी श्री वल्लभश्रीजी म० सा० की ही विदुषी शिष्याये हैं।

प. पू. प्रवर्तिनीजी विमलश्रीजी म० सा०

आपका जन्म स्थान एव समय उपलव्ध न हो सका। आप शिवश्रीजी म०सा० की शिष्या थी। आपका सवसे वडा योगदान है प पू प्र श्रीप्रमोद श्रीजी म०सा० जैसे व्यक्तित्व का निर्माण करना। पू. शिवश्रीजी म०सा० तो मातापुत्री (पू० जयवन्तश्रीजी म., प्रमोदश्रीजी म) को दीक्षा देकर उनकी शिक्षा-दीक्षा का सारा उत्तरदायित्व पू विमलश्रीजी म. को सौपकर अजमेर पधार गई थी। करीव ११ महिनो वाद आपका स्वर्गवास भी हो गया था। अत वालसाध्वीजी प्रमोदश्रीजी, विचक्षण बुद्धि और विलक्षण प्रतिभा को सफल वनाने का सारा उत्तरदायित्व आप पर ही था। आपने उसको वखूवी निभाया और एक तेजस्वी व्यक्तित्व का निर्माण कर शासन की अपूर्व सेवा की। आपका यह योगदान सदा अविस्मरणीय रहेगा।

प. पू. प्रवर्तिनीजी प्रमोदश्रीजी म० सा०

जहाँ पधारती वहाँ का कण-कण प्रमुदित हो जाता। धरती का कण-कण प्रमोद मधुर वन जाता। शारीरिक सौन्दर्य से वाह्य-व्यक्तित्व एव ज्ञान की आभा से आपका आन्तरिक व्यक्तित्व देदीप्यमान था। आप फलोदी मे सूरजमलजी गुलेछा की सद्धर्मपरायण पत्नी जेठी देवी की कुक्षि से वि स. १९५५, कार्तिक शु ५ को जन्मी थी। आपका नाम लक्ष्मी था। वास्तव मे आप रुवरूप एवं गुण से लक्ष्मी ही थी। ज्ञानपचमी को जन्मी लक्ष्मी शायद ज्ञान साधना के लिए ही न अवतरित हुई हो। युवावस्था मे ही पति की मृत्यु हो जाने मे लक्ष्मी की माता का झुकाव धर्म की ओर वढने लगा। प. पू गुरुवर्या श्रीसिंह श्रीजी म०सा० के सम्पर्क ने उनमे एक नई चेतना, नई-स्फूर्ति और नया जीवन जीने की तीव्र आकाक्षा पैदा कर दी। राग के स्थान पर उनके मन मे वैराग्य घोल दिया। इधर लक्ष्मी की सगाई ढाँई साल की उम्र मे ही, सपन्न ढढ्ढा परिवार के सपूत श्रीलालचन्दजी से कर दी गई थी। जैसे-जैसे वड़ी होती गई, माता के साथ उसका भी गुरुवर्या से सम्पर्क वढता गया। ९ वर्ष की उम्र होते-होते तो पूर्वजन्म के सस्कार

एव वतमान के वातावरण के कारण लक्ष्मी पूण विरक्ता बन गई। बुद्धि इतनी तीव्र थी कि एक बार सुन लिया सदा के लिए हृदयगम हो गया। प्रतिभा इतनी प्रखर कि कैसा भी प्रश्न क्यो न हो, तुरन्त जवाब तैयार, साहस इतना कि बडो-बडा को नैहिचक जवाब दे देती। माता से अधिक जल्दी थी उन्हे दीक्षा ग्रहण की। दादाजी, नानाजी एव श्वसुरपक्ष तीना की ममता का केन्द्र लक्ष्मी के लिए इतना आसान नही था घर छोडना। किन्तु जहा सकल्प है वहा सिद्धि है। एक सुनहरा प्रभात आ ही गया, माता-पुत्री के सयम ग्रहण का। वि स १९६४ माघ सु ८ को दाना सिंहश्रीजी म सा का शिष्यत्व स्वीकार शासन को समर्पित हो गई। माता का नाम जयवन्तश्रीजी रखा। उन्होंने पुत्री के रूप मे जो अनमोल रत्न शासन को समर्पित किया, उनका यह त्याग सदा अविस्मरणीय रहेगा। होनहार थी ही योग्य निमित्तो ने उन्हे महान विदुषी बना दिया।

आप कई विषयो म निष्णात थी किन्तु आगम अध्ययन के प्रति आपकी विशेष रुचि एव प्रयास रहा। यही कारण था कि आपका आगम ज्ञान अगाध एव मार्मिक था। आपने अपनी विलक्षण प्रतिभा एव सतत चिन्तन के आधार पर चालू कई मान्यताओ को नया मोड दिया। कई बार वे शास्त्रीय चर्चा मे अच्छे भले विद्वान मुनिवरा को विषय की अतल गहराई म ले जाकर चकित कर देती थी। आप ओजस्वी प्रवचनकार थी, आपकी प्रवचन शली इतनी निराली एव रसपूण थी कि एक एक शब्द से अमृत रस झरता था। आपका आगमिक उच्चारण स्पष्ट शुद्ध एव प्रवाहयुक्त था। आगम ज्ञान एव चिन्तन को स्थायित्व आपके द्वारा किये गये शासन प्रभावना के महान काय, मन्दिर, दादावाडी, पाठशाला आयबिल भवन धम प्रचार एव सुयोग्य शिष्या-मण्डल आपकी स्मृति को सदा ताजी रखेगा। आप केवल विदुषी ही नही तपस्विनी भी थी। ७४ वप की उम्र मे आपन मास क्षमण जैसी महान तपस्या की। सब कुछ होते हुए भी एक बात के लिए तो हम अपना दुर्भाग्य समझेंगे कि आपकी प्रतिभा से भावी-पीढी लाभान्वित हो सके ऐसा कोई कृतित्व समुपलब्ध नही हो सका। मात्र वराग्य शतक का सक्षिप्त विवेचन या रत्नत्रय विवेचन आपके द्वारा लिखित उपलब्ध होता है। आपकी १३ १४ शिष्यायें हैं।

आप अन्तिम अवस्था मे अस्वस्थता के कारण बाडमेर मे स्थानापन्न हो गई थी। वहाँ वि स २०३९ की पौष १० को समाधिपूवक आपका स्वगवास हुआ। ज्ञानपचमी को जन्म, पो० १० को स्वगवास मानो प्रकृति ने आपके लिए मुहूत्त निकालकर रखा हो।

वतमान म साध्वी श्रीराजेन्द्रश्रीजी म, श्रीचन्द्रयशाश्रीजी म, श्री चन्द्रोदयश्रीजी म, श्री चपक श्रीजी म, आदि आपकी प्रखर शिष्याओ मे से थी। वतमान मे साध्वी श्री प्रकाशश्रीजी म विजयेन्द्रश्रीजी म, स्वयप्रभाश्रीजी म, कोमलश्रीजी म, रतनमालाश्रीजी म, विद्युत्प्रभाश्रीजी म आदि आपकी शिष्या समूह रूप साध्वीमण्डल विचरण कर रहा है।

□□

खरतरगच्छाचार्यों द्वारा प्रतिबोधित गोत्र; जिनका मूल गच्छ खरतर है।

□ राजेन्द्र कुमार श्रीमाल जयपुर

ओस्तवाल	आयरिया	कटारिया	कठोनिया	कवाड
ककुचौपडा	कांकरिया	कूकडा	कुभट	कोटेचा
कोठारी	खटोड	खजाची	खीवसरा	गणधर चौपड़ा
गांधी	गिडिया	गोलेच्छा	गोडवाड़ा	गुलगुलिया
गधैया	गाग	गेलडा	गडवाणी	घोडावत
घेवरिया	घीया	चौपडा	चतुर	चौपड
चोरडिया	चडालिया	चौधरी	चपलोत	छाजेड
छजलानी	जोगिया	जडिया	जिन्दानी	जीरावला
झावक	झांट	झाडचूड	टोडरवाल	टाटिया
टाक	टूकलिया	डूगरेचा	डागा	डोशी
डाकलिया	ढड्ढा	ढोर	ढेलडिया	तातेड़
दुगड	कास्टिया	दुधेडिया	दक	दमाणी
दासोत	दुसाज	दफ्तरी	दातेवाडिया	धूपिया
धाडीवाल	नाहटा	नाहर	नवलखा	नावडिया
पटवा	पारख	पुनमिया	पुगलिया	पालरेचा
पोकरण	पालावत	पगारिया	पीचा	फोफलिया
वरडिया	वूवकिया	वाठिया	वाफना	वव
वलाई	वुच्चा	वोहरा	वोथरा	वच्छावत
वुरड	वावेल	वदलिया	वेगानी	वडेरा
वागरेचा	वालड	वोकडिया	वोरूदिया	भूतेडिया
भूरा	भटनेरा चौधरी	भसाली	भीडकच्या	भडारी
भडगतिया	भाडावत	भाचावत	मूदडा	मरोटी
मालू	मुकीम	मेडतवाल	मुणोत	महिमवाल
मोघा	महतियाण	मडोवरा	मरडिया	मीठडिया
मोदी वैताला	मेहता	मुथा	रांका	राखेचा
रामपुरिया	रातडिया	राणावत	रेड़	लूणिया
लूणावत	लालाणी	लोढा	लूकड	ललवानी
वरमेचा	वडेर	वठ	वुच्चा	वाघमार
शाह	शेखावत	सचेती	साड	सावनसूखा
सीपानी	सखलेचा	सोलंकी	सेठिया	सोनीगरा
साखला	सुराणा	सियाल	सालेचा	सिंघी
सिंघवी	सोनावत	समदडिया	हाकिम	हरकावत
हुंडिया	हुंवड़	श्रीश्रीमाल	भसाली चील मेहता	

खण्ड ४

धर्म दर्शन एवं अध्यात्म चिन्तन

४. धर्म, दर्शन और अध्यात्म-चिन्तन

कहते हैं—धर्म की उत्पत्ति सरल हृदय मे आचरण की सगति से होती है, तो दर्शन की उत्पत्ति मस्तिष्क मे तर्क और चिन्तन के मिलन से । धर्म मनुष्य की श्रद्धा और क्रिया का विषय है, दर्शन प्रज्ञा, और मनन का ।

धर्म और दर्शन—दो भिन्न छोर प्रतीत होते है किन्तु पूरब-और पश्चिम की भाति इनकी मिलन-रेखा एक ही है । जिस रेखा पर पूरब का अन्तिम छोर है उसी रेखा से पश्चिम का प्रथम चरण प्रारम्भ होता है और इन दोनो की मिलन-रेखा का नाम है- अध्यात्म ।

अध्यात्म मे धर्म भी समाहित हे और दर्शन भी । सस्कृति और साधना, कला और कर्तव्य-बोध सभी कुछ अध्यात्म के विशाल तट पर मिल जाते हे । प्रस्तुत खड मे धर्म, दर्शन, अध्यात्म, कला, कर्तव्यबोध, आदि सब कुछ समाहित है और यही तो उसकी परिपूर्णता है ।

जिस प्रकार शरीर के सातो अग मिलकर हाथी को परिपूर्णता देते है, उसी प्रकार धर्म, दर्शन, कला, सस्कृति, कर्तव्य, बोध, साहित्य और साधना, यह सब कुछ मिलकर अध्यात्म को परिपूर्ण रूप प्रदान करते है ।

प्रस्तुत खड मे इन्ही विषयो पर विशेषज्ञ विद्वानो द्वारा प्रस्तुत विचार-चिन्तन हमे धर्म, दर्शन और अध्यात्म का सम्यक स्वरूप बोध करायेगा ।

अर्हं का विराट् स्वरूप

—सघ प्रमुख श्री चन्दन मुनि

(सस्कृत प्राकृत के उद्भट विद्वान, कवि
एव अध्यात्मयोगी साधक)

अर्हमित्यक्षर ब्रह्म , वाचक परमेष्ठिन ।
सिद्धचक्रस्य सद्बीज, सवत प्रणिदध्महे ॥ —ऋषिमण्डलस्तोत्र ३

अर्हं बडा चामत्कारिक मन्त्र है। उसे अक्षर-ब्रह्म कहा गया है। जो कभी क्षर नही होता, क्षययुक्त नही होता, मिटता नही, उसे अक्षर कहा जाता है—"न क्षरतीति अक्षरम"। अर्ह परमेष्ठी का वाचक है। परमेष्ठिन् शब्द मे अर्हत्, सिद्ध आचाय, उपाध्याय और साधु—इन पाँचो का समावेश हो जाता है। इन पाचो को जन-दशन मे परमेश्वर रूप म स्वीकार किया गया है। जैन परम्परा मे सिद्धचक्र यन्त्र का बहुत महत्व है। उसकी विधिवत् पूजा, आराधना होनी है। "अर्ह" का उसके बीज मन्त्र के रूप मे स्वीकार किया गया है। इसीलिए इसे "सिद्धचक्रस्य सद्बीजम"—विशेषण से विभूषित किया गया है। ऋषि कहते है "सवत प्रणिदध्महे"—हम सवतोभावेन इसका प्रणिधान यानी जप आदि के द्वारा आराधना करते हैं। यहाँ एक गहरी बात है—क्रिया मे उत्तम पुरुष के बहुवचन के वतमान का प्रयोग इसलिए किया गया है कि हम निरन्तर सर्वांगीण दृष्टि से इसका ध्यान करते रहे हैं, करते हैं। इसी अर्हं की व्याख्या के लिए एक विशेष गीत की रचना की गई है—

ॐ अर्ह अर्ह गाएजा ।
अर्ह अर्ह गा गाकर इस मन को विमल बनाएजा ॥ ध्रुव ॥
अर्ह-अर्ह रटन लगाते, भव भव के बन्धन कट जाते ।
अन्दर के और बाहर के क्लेशो को दूर हटाये जा ॥ १ ॥
ॐ अर्ह-अर्ह गाएजा ॥

अर्ह-अर्ह मन्त्रलयलीन होने से मन निमल बनता है। मन को निमल बनाना ही साधक का उत्कृष्ट लक्ष्य है। जप वास्तव म अन्त शुद्धि का काय करता है। वचन और काया की शुद्धि अन्याय

साधनो के द्वारा भी हो सकती है, किन्तु मन को शुद्ध बनाने के लिए, मन का मैल धोने के लिए जप को ही उत्तम साधन माना गया है। प्राचीन आचार्यो ने बडा सुन्दर लिखा है—

अभेददर्शनं ज्ञान, ध्यान निर्विषय मन ।
स्नान मनोमलत्याग., शौचमिन्द्रियनिग्रहः ॥

इस श्लोक के चार चरणो मे चार व्याख्याएँ दी गई हैं। ज्ञान की व्युत्पत्तिपरक व्याख्या है—"ज्ञायते परिच्छिद्यते वस्तु येन तद् ज्ञानम्" जिसके द्वारा वस्तु जानी जाती है, अन्य वस्तुओं के साथ उसका पार्थक्य किया जाता हे, उसे ज्ञान कहते हैं। लेकिन यहाँ ज्ञान को सूक्ष्म व्याख्या के साथ प्रस्तुत किया गया है। आचार्य कहते है— "अभेददर्शनम् ज्ञानम्" ज्ञान वास्तव मे वह है, जो अभेददर्शन कराता है। जहाँ स्व-पर का भेद मिट जाता है, तू-मैं का विभाजन समाप्त हो जाता है, वही सच्चा ज्ञान है। जब तक दृष्टि में भेद विद्यमान है तब तक ज्ञान केवल पुस्तकीय ज्ञान है। वह सम्यक्ज्ञान नही है। इसी प्रकार कहा गया—"ध्यान निर्विषय मन" मन का निर्विषय हो जाना ध्यान है। केवल आँखें मूँदकर, आसन लगाकर बैठना ध्यान नही हे, जब तक मन विषयों मे उपरत न हो जाए। यदि मन सर्वथा निर्विषयी है तो चाहे कही किसी स्थिति में बैठे हो, ध्यान सधता जाता है।

आचार्य आगे लिखते है "स्नान मनोमलत्याग." जिसके द्वारा मन के मल का विसर्जन हो, वह स्नान है। ऊपरी मैल को धोना केवल बाह्य स्नान है। किन्तु अन्त शुद्धि वास्तविक स्नान है। चौथा चरण है—"शौचमिन्द्रियनिग्रहं" इन्द्रियो का निग्रह ही शौच है। यदि आप शुचि-पवित्र रहना चाहते हैं तो इन्द्रिय-सयम करना होगा। इन्द्रियो के असयम से ही हम अपवित्र बनते है। इसीलिए यह उक्ति प्रसिद्ध है--"ब्रह्मचारी सदा शुचिः"। ब्रह्मचारी निरन्तर पवित्र बना रहता है। वह कभी अपवित्र नही होता। अत. मनोमल की शुद्धि के लिए जप उत्कृष्ट साधन है।

जप की एक विशेषता और हे—"अन्दर के और बाहर के क्लेशो को दूर हटाता है।" दो प्रकार के क्लेश है—अन्दर के क्लेश काम, क्रोध, मोह आदि है तथा बाहर के क्लेश रोग, शोक, व्याधि, प्रतिकूलता आदि है। ससारी जीव इन दोनो प्रकार के क्लेशो से निरन्तर उत्पीडित बने रहते है। इस अर्ह जप के द्वारा वे सब प्रकार के क्लेशो को दूर हटा सकते है। यहाँ एक रहस्य और है। जीभ जप के साधन के रूप मे प्रयुक्त होती है। रचना की दृष्टि से उसका कुछ भाग बाहर है और कुछ भाग कण्ठ के भीतर चला गया है। सन्तजन कहते है—

रामनाम मणिदीप धरु, जीभ देहरी द्वार ।
तुलसी भीतर बाहिरो, जो चाहसि उजियार ॥

जिस प्रकार कमरे की देहली में रखा दीपक अन्दर के कमरे को तथा बाहर के आगन को समान रूप से प्रकाशित करता है, उसी प्रकार इस जीभ को देहली मानकर इससे प्रभु-नाम का जप करे तो दोनो ओर प्रकाश होगा। अन्तर्-बाह्य दोनो प्रकार के सक्लेशो से छुटकारा होगा। यहाँ "मणिदीप" का प्रयोग भी विशिष्ट अर्थ मे हुआ है। तेलादि से जलने वाले दीप हवा के झोके मे बुझ जाते है, तेल समाप्त होने पर बुझ जाते हैं पर जो स्वत. प्रकाशित रत्न होते हैं, उनके बुझने का कोई खतरा नही। समग्र उपद्रवो के बावजूद वे प्रकाश देते रहते है। यह प्रभु-नाममय मणिदीप हमें अखण्ड प्रकाश देता है। यह अर्हं का जप भी एक प्रकार का मणिदीप ही है। अब हम यह चिन्तन करेगे कि इस अर्हं शब्द की निष्पत्ति कैसे हुई तथा वस्तुत यह शक्ति क्या है ?

अह के आदि म अकार का प्रयोग हुआ है और अन्त मे "ह" आया है। "र" इन दानो के मध्य ऊध्वगामी बना है।

अकार अपने आप म बडा प्रभावापन्न अक्षर माना गया है। गीता म यागश्वर कृष्ण ने तो यहा तक कह दिया है—

"अक्षराणामकारोऽस्मि" —गीता १०/३३

हे अजु न ! अक्षरा म मैं अकार हूँ।

अह की व्याख्या करते हुए प्राचीन आचाय कहते हैं—

अकार प्रथम त व, सवभूताभयप्रदम ।
कण्ठदेश समाश्रित्य, वतते सवदेहिनाम ॥
सर्वात्मक सवगत, सवव्यापि सनातनम ।
सवसत्त्वाश्रित दिव्य, चिंतित-पापनाशनम ॥
सर्वेषामपि वर्णानां, स्वराणां च धुरिस्थितम ।
यजनेषु च सर्वेषु, ककारादिषु सस्थितम ॥

अकार प्रथम तत्त्व ह। सब भूता को अभय प्रदान करन वाला है। यह सभी देहधारिया के कण्ठ देश को आश्रित कर विद्यमान है। व्याकरणकार भी कहते हैं—"अकुहविसर्गा कण्ठ्या" अकार का उच्चारण स्थान कण्ठ है। यह सर्वात्म, सवगत, सवव्यापि सनातन तत्त्व माना गया है। यह समस्त सत्त्वो पर, सद्गुणो पर आश्रित, दिव्य, सुचिन्तित तथा पापनाशक है। सभी वर्णो म, स्वरा मे यह अग्रसर है—प्रथम स्थान पर है। 'क' आदि सभी व्यजना मे सवप्रथम यही प्राण रूप मे वतमान रहता है। तन्त्र मन्त्रादि प्रयोगो मे समग्र विद्याओ मे इसका विशिष्ट स्थान है।

अह का मध्याक्षर "र' अग्नि वीज है। वैदिक वाङ मय म उल्लेख है—"र बीज वह्नि ध्यायेत"। "रकार" को अग्नि-तत्त्व का प्रतीक माना गया है। मन्त्र-वत्ता आचाय कहते हैं—

दीप्तपावकसकाश सर्वेषा शिरसि स्थितम ।
विधिना मन्त्रिणा ध्यात, त्रिवगफलद स्मृतम ॥
यस्य देवाभिधानस्य, मध्ये ह्य तद् व्यवस्थितम ।
पुण्य पवित्र मागल्य, पूज्योऽसौ तत्त्वदर्शिभि ॥

"र" कार अग्नि के समान दीप्त तथा सब अक्षरा के सिर पर स्थित है। जो विधिवत् इसका ध्यान करता है त्रिवग—धम अथ काम रूप फल प्राप्त कर लेता है। जिस देवता के नाम म, यह मध्य मे स्थित हो जाता है, तत्त्वदर्शियो का कथन है, यह पूजनीय 'रकार" तदनुरूप पुण्य, पवित्र, मागलिक सिद्ध होता है। इसीलिए राम हरि, हर, वीर, पाश्व आदि शक्तिसम्पन्न नामो म ' र" का अस्तित्व विद्यमान है।

अन्त मे प्रयुक्त ' ह" वण आकाश तत्त्व का सूचक है। आचाय कहत हैं —

सर्वेषामपि भूतानां, नित्य यो हृदि सस्थित ।
पय ते सववर्णानां, सकलो निष्कलस्तया ॥
हकारो हि महाप्राण, लोकशास्त्रेषु पूजित ।
विधिना मन्त्रिणा ध्यात, सवकार्यप्रसाधक ॥

वैयाकरणो की दृष्टि मे हकार को महाप्राण के रूप मे स्वीकार किया गया है। यह सभी भूतो के हृदय मे स्थित है तथा सभी वर्णो मे सकल होता हुआ निष्कल रूप मे व्यवस्थित है। यदि कोई साधक इसका विधिपूर्वक ध्यान करता है तो यह सर्वसिद्धि प्रदान करने वाला है।

"अर्हं" मे वर्णो का अद्भुत सयोजन हुआ है। आदि मे अकार और अन्त मे हकार का समायोजन अपने आप में अनूठा है। आपने ध्यान दिया होगा, ट्रेन मे सबसे आगे इंजन लगा होता है। चालक वही से सारी गति नियन्त्रित करता है। किन्तु अन्त मे जो गार्ड का डिब्बा लगा होता है, उसका भी गति-नियन्त्रण मे महत्त्वपूर्ण स्थान है। दोनो का दायित्व लगभग समान होता है। यहाँ अन्त मे हकार की स्थिति गार्ड-परिरक्षक जैसी है। ह के ऊपर लगा चन्द्र बिन्दु (ँ) भी अनुपम शक्तिस्रोत है। मन्त्राक्षरो में प्राय चन्द्र-बिन्दु की योजना की जाती है, जो अलौकिक नाद उत्पन्न करता हुआ बीजाक्षरो को शक्ति प्रदान करता है। इसलिए कहा गया है—

त्रीण्यक्षराणि बिन्दुश्च, यस्य देवस्य नाम वै।
स सर्वज्ञ. समाख्यातः, अर्हं तदितिपण्डितैः॥

अर्हं की एक दूसरी व्याख्या और की गई है, जिसके अनुसार इसमें अकार से विष्णु, रकार से ब्रह्मा तथा हकार से हर का समावेश है। लिखा है—

अकारेणोच्यते विष्णुः, रेफे ब्रह्माव्यवस्थितः।
हकारेण हर. प्रोक्त., तदन्ते परमं पदम्॥

यह अर्हं शब्द की निर्युक्ति है। वास्तव मे यह बहुत प्रभावशाली बीजाक्षर है। कालिकालसर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र द्वारा रचित "सिद्धहेम शब्दानुशासन" व्याकरण का तो पहला सूत्र ही अर्हं है।

एक अन्य दृष्टिकोण से भी अर्ह शब्द का संयोजन विशेष महत्वपूर्ण है।

सस्कृत में अर्ह धातु पूजा के अर्थ मे है। कहने का आशय है—पूजनीय—पूजायोग्य अर्हं का उपासक नरेन्द्रो, देवेन्द्रो द्वारा पूजनीय बन जाता है। एक दूसरा अर्थ है—अर्हं—योग्य होना—ज्ञान-दर्शन मे योग्य बन जाना, सक्षम हो जाना। जैसे ज्ञानार्हं, दर्शनार्हं इत्यादि। अरिहन्त देव अनन्तज्ञान, अनन्त-दर्शन, अनन्तचारित्र तथा अनन्तबल—इन चार अनन्तताओ के योग्य बन गये हैं। सारी सीमाएँ लाँघकर वे असीम/अपार बन गये है। साधक का ध्यान जब सर्वथा अन्तर्मुखी बन जाता है तो वह सिद्धि-गमन की अर्हता प्राप्त कर लेता है, तद्योग्य बन जाता है। ध्यान की गहराई मे उतरे बिना विशिष्ट योग्यता प्राप्त नही हो सकती। अर्हं शब्द अपनी योग्यता उभारने का सूचक है।

O C

पीत्वा ज्ञानामृत भुक्त्वा क्रिया-सुरलता फलम्।
साम्यताम्बूलमास्वाद्य तृप्ति याति परा मुनिम्॥

ज्ञानरूपी अमृत का पानकर और क्रियारूपी कल्पवृक्ष के फल खाकर
समतारूपी ताम्बूल चखकर साधु परम तृप्ति का अनुभव करता है।

—ज्ञानसार १/७३

अप्पा सो परमप्पा

(आत्मा ही परमात्मा है)

—डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल
(प्रसिद्ध विद्वान एव ओजस्वी वक्ता)
(टोडरमल स्मारक भवन
ए ४, बापू नगर, जयपुर ३०२०१५)

जनदर्शन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह कहता है कि सभी आत्मा स्वय परमात्मा हैं। स्वभाव से तो सभी परमात्मा हैं ही, यदि अपने को जान, पहचान और अपने म ही जम जायें, रम जायें तो प्रगटरूप से पर्याय म भी परमात्मा बन सकते हैं।

जब यह कहा जाता है तो लोगों के हृदय म एक प्रश्न सहज ही उत्पन्न होता है कि जब सभी परमात्मा हैं तो परमात्मा बन सकते हैं'—इसका क्या अर्थ है ? और यदि 'परमात्मा बन सकते हैं'—यह बात सही है तो फिर 'परमात्मा हैं'—इसका कोई अर्थ नही रह सकता है, क्योंकि बन सकना और होना—दोनो एक साथ सभव नही हैं।

भाई, इसम असभव तो कुछ भी नहीं है, पर ऊपर से देखने पर भगवान होने और हो सकने म कुछ विरोधाभास अवश्य प्रतीत होता है, किन्तु गहराई से विचार करने पर सब बात एकदम स्पष्ट हो जाती है।

एक सेठ था और था उसका पाँच वर्ष का इकलौता बेटा। घर म दो ही प्राणी थे। जब सेठ का अतिम समय आ गया तो उसे चिन्ता हुई कि यह छोटा-सा बालक इतनी विशाल सम्पत्ति को कैसे सभालेगा ? अत उसने लगभग सभी सम्पत्ति बेचकर एक करोड़ रुपये इकट्ठे किये और अपने बालक के नाम पर बैंक म बीस वर्ष के लिए सावधि जमायोजना (फिक्स्ड डिपाजिट) के अन्तर्गत जमा करा दिये। सेठ ने इस रहस्य को गुप्त ही रखा, यहाँ तक कि अपने पुत्र को भी नहीं बताया, मात्र एक अत्यन्त घनिष्ठ मित्र को इस अनुरोध के साथ बताया कि वह उसके पुत्र को यह बात तब तक न बताये जब तक कि वह पच्चीस वर्ष का न हो जाय।

पिता के अचानक स्वर्गवास के बाद वह बालक अनाथ हो गया और कुछ दिनो तक तो बची-खुची सम्पत्ति से आजीविका चलाता रहा, अन्त मे रिक्शा चलाकर पेट भरने लगा। चौराहे पर खडे होकर जोर-जोर से आवाज लगाता कि दो रुपये मे रेलवे स्टेशन, दो रुपये मे रेलवे स्टेशन,......।

अब मैं आप सबसे एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ कि वह रिक्शा चलाने वाला बालक करोडपति है या नही ?

क्या कहा ?

नही ।

क्यो ?

क्योकि करोडपति रिक्शा नही चलाते और रिक्शा चलाने वाले बालक करोड़पति नही हुआ करते ।

अरे भाई, जब वह व्यक्ति ही करोडपति नही होगा, जिसके करोड रुपये बैंक मे जमा हैं तो फिर और कौन करोडपति होगा ? पर भाई, बात यह है कि उसके करोडपति होने पर भी हमारा मन उसे करोडपति मानने को तैयार नही होता, क्योकि रिक्शावाला करोडपति हो—यह बात हमारे चित्त को सहज स्वीकार नही होती। आज तक हमने जिन्हे करोडपति माना है, उनमे से किसी को रिक्शा चलाते नही देखा और करोडपति रिक्शा चलाये—यह हमे अच्छा भी नही लगता, क्योकि हमारा मन ही कुछ इस प्रकार का बन गया है ।

'कौन करोडपति है और कौन नही है ?'—यह जानने के लिए आज तक कोई किसी की तिजोरी के नोट गिनने तो गया नही। यदि जायेगा भी तो बतायेगा कौन ? बस, बाहरी ताम-झाम देखकर ही हम किसी को करोडपति मान लेते है। दस-पॉच नौकर-चाकर, मुनीम-गुमाश्ते और बगला, मोटरकार, कल-कारखाने देखकर ही हम किसी को करोडपति मान लेते है, पर यह कोई नही जानता कि जिसे हम करोडपति समझ रहे है, हो सकता है वह करोडो का कर्जदार हो। बैंक से करोडो रुपये उधार लेकर कल-कारखाने चल निकलते है और बाहरी ठाठ-बाट देखकर अन्य लोग भी सेठजी के पास पैसे जमा कराने लगते है। इस प्रकार गरीबो, विधवाओ, ब्रह्मचारियो द्वारा उनके पास जमा कराये गये करोडो रुपयो से निर्मित बाह्य ठाठ-बाट से हम उसे करोडपति मान लेते है ।

इस सभावना से भी इन्कार नही किया जा सकता कि जिसे हम करोडपति साहूकार मान रहे है, वह लोगो के करोडो रुपये पचाकर दिवाला निकालने की योजना बना रहा हो ।

ठीक यही बात सभी आत्माओ को परमात्मा मानने के सन्दर्भ में भी है। हमारा मन इन चलते-फिरते, खाते-पीते, रोते-गाते चेतन आत्माओ को परमात्मा मानने को तैयार नही होता। हमारा मन कहता है कि यदि हम भगवान होते तो फिर दर-दर की ठोकर क्यो खाते फिरते ? अज्ञानांधकार मे डूबा हमारा अन्तर् बोलता है कि हम भगवान नही है, हम तो दीन-हीन प्राणी है, क्योकि भगवान दीन-हीन नही होते और दीन-हीन भगवान नही होते ।

अब तक हमने भगवान के नाम पर मन्दिरो मे विराजमान उन प्रतिमाओ के ही भगवान के रूप मे दर्शन किये है, जिनके सामने हजारो लोग मस्तक टेकते है, भक्ति करते है, पूजा करते है। यही कारण है कि हमारा मन डॉटे-फटकारे जाने वाले जनसामान्य को भगवान मानने को तैयार नही होता।

हम सोचने हैं कि ये भी कोई भगवान हो सकते हैं क्या ? भगवान तो वे हैं, जिनकी पूजा की जाती है, भक्ति की जाती है। सच बात ता यह है कि हमारा मन ही कुछ ऐसा बन गया है कि उसे यह स्वीकार नही कि कोई दीन-हीन जन भगवान बन जाये। अपने आराध्य को दीन-हीन दशा म देखना भी हम अच्छा नही लगता।

भाई, भगवान भी दो तरह के हाने हैं—एक ता व अरहंत और सिद्ध परमात्मा जिनकी मूर्तियाँ मन्दिरो म विराजमान हैं और उन मूर्तियो के माध्यम से हम उन मूर्तिमान परमात्मा की उपासना करते हैं, पूजन भक्ति करत है, जिस पथ पर व चले उस पथ पर चलने का सकल्प करत हैं, भावना भाते हैं। ये अरहंत और सिद्ध कार्यपरमात्मा कहलाते हैं।

दूसरे देहदेवल म विराजमान निज भगवान आत्मा भी परमात्मा है, भगवान हैं इन्हे कारण-परमात्मा कहा जाता है।

जो भगवान मूर्तियो के रूप म मन्दिरो म विराजमान हैं वे हमारे पूज्य हैं परमपूज्य हैं अत हम उनकी पूजा करते हैं भक्ति करते है गुणानुवाद करते हैं किन्तु देहदेवल म विराजमान निज भगवान आत्मा श्रद्धेय है ध्येय है, परमज्ञेय है, अत निज भगवान का जानना, पहचानना और उसका ध्यान करना ही उसकी आराधना है। सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र की उत्पत्ति इस निज भगवान आत्मा के आश्रय स ही होती है, क्योकि निश्चय से निज भगवान आत्मा को निज जानना ही सम्यग्ज्ञान है उसे ही निज मानना, 'यही मैं हूँ'—ऐसी प्रतीति होना सम्यग्दर्शन है और उसका ही ध्यान करना, उसी म जम जाना, रम जाना लीन हो जाना सम्यक्चारित्र है।

अष्टद्रव्य से पूजन मन्दिर म विराजमान 'परभगवान' की की जाती है और ध्यान शरीररूपी मन्दिर म विराजमान 'निजभगवान' आत्मा का किया जाता है। यदि कोई व्यक्ति निज आत्मा को भगवान मानकर मन्दिर म विराजमान भगवान के समान स्वय की भी अष्ट द्रव्य से पूजन करने लग तो उसे व्यवहार विहीन ही माना जायेगा, वह व्यवहारकुशल नही, अपितु व्यवहारमूढ ही है।

इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति आत्मोपलब्धि के लिए ध्यान भी मन्दिर म विराजमान भगवान का ही करता रहे तो उसे भी विकल्पो की ही उत्पत्ति होती रहेगी, निर्विकल्प आत्मानुभूति कभी नही होगी, क्योकि *निर्विकल्प आत्मानुभूति निजभगवान आत्मा के आश्रय स ही होती है।* निर्विकल्प आत्मानुभूति के बिना सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्र की उत्पत्ति भी नही होगी। इस प्रकार उस सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र की एकतारूप मोक्ष मार्ग का आरम्भ ही नही होगा।

जिस प्रकार वह रिक्शा वाला बालक रिक्शा चलाते हुए भी करोडपति है उसी प्रकार दीन हीन हालत मे होने पर भी हम सभी स्वभाव स ज्ञानानन्द स्वभावी भगवान हैं, कारण परमात्मा हैं—यह जानना मानना उचित ही है।

इस सदर्भ मे मैं आपसे एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ कि भारत म अभी किसका राज है ?

क्या कहा काग्रेस का ?

नहीं भाई ! यह ठीक नहीं है, काग्रेस तो एक पार्टी है भारत म राज तो जनता जनार्दन का है क्योकि जनता जिसे चुनती है, वही भारत का शासन चलाता है अत राज जनता-जनार्दन का ही है।

उक्त सन्दर्भ मे जब हम जनता को जर्नादिन (भगवान) कहते है तो कोई नही कहता कि जनता तो जनता है, वह जर्नादिन अर्थात् भगवान कैसे हो सकती है ? पर जब तात्त्विक चर्चा में यह कहा जाता है कि हम सभी भगवान है तो हमारे चित्त मे अनेक प्रकार की शकाएँ-आशकाएँ खडी हो जाती है, पर भाई, गहराई से विचार करे तो स्वभाव से तो प्रत्येक आत्मा परमात्मा ही है—इसमें शंका-आशका को कोई स्थान नही है।

प्रश्न—यदि यह बात है तो फिर ये ज्ञानानन्दस्वभावी भगवान आत्मा वर्तमान मे अनन्त दु खी क्यो दिखाई दे रहे हैं ?

उत्तर—अरे भाई, ये सब भूले हुए भगवान है, स्वयं को—स्वय की सामर्थ्य को भूल गये है, इसी कारण सुखस्वभावी होकर भी अनन्तदु खी हो रहे हैं। इनके दु ख का मूल कारण स्वय को नही जानना, नही पहचानना ही है। जब ये स्वय को जानेंगे, पहचानेंगे एव स्वय मे ही जम जायेंगे, रम जायेंगे, तब स्वय ही अनन्तसुखी भी हो जावेंगे।

जिस प्रकार वह रिक्शा चलाने वाला बालक करोडपति होने पर भी यह नही जानता है कि 'मैं स्वय करोडपति हूँ'—इस कारण दरिद्रता का दु ख भोग रहा है। यदि उसे यह पता चल जाये कि मैं तो करोडपति हूँ, मेरे करोड रुपये बैंक मे जमा है तो उसका जीवन ही परिवर्तित हो जावेगा। उसी प्रकार जब तक यह आत्मा स्वय के परमात्मस्वरूप को नही जानता—पहचानता है, तभी तक अनन्त-दु खी है, जब यह आत्मा अपने परमात्मस्वरूप को भलीभाँति जान लेगा, पहचान लेगा तो इसके दु ख दूर होने मे भी देर न लगेगी।

कगाल के पास करोडो का हीरा हो, पर वह उसे काँच का टुकडा समझता हो या चमकदार पत्थर मानता हो तो उसकी दरिद्रता जाने वाली नही है, पर यदि वह उसकी सही कीमत जान ले तो दरिद्रता एक क्षण भी उसके पास टिक नही सकती, उसे विदा होना ही होगा। इसी प्रकार यह आत्मा स्वय भगवान होने पर भी यह नही जानता कि मै स्वयं भगवान हूँ। यही कारण है कि यह अनन्त काल से अनन्त दु ख उठा रहा है। जिस दिन यह आत्मा यह जान लेगा कि मै स्वय भगवान ही हूँ, उस दिन उसके दु ख दूर होते देर न लगेगी।

इससे यह बात सहज सिद्ध होती है कि होने से भी अधिक महत्व जानकारी होने का है, ज्ञान होने का है। होने से क्या होता है ? होने को तो यह आत्मा अनादि से ज्ञानानन्दस्वभावी भगवान आत्मा ही है, पर इस बात की जानकारी न होने से, ज्ञान न होने से ज्ञानानन्दस्वभावी भगवान होने का कोई लाभ इसे प्राप्त नही हो रहा है। होने को तो वह रिक्शा चलाने वाला बालक भी गर्भश्रीमन्त है, जन्म से ही करोडपति है, पर पता न होने से दो रोटियो की खातिर उसे रिक्शा चलाना पड रहा है। यही कारण है कि जिनागम में ज्ञान के गीत दिल खोलकर गाये है। कहा गया है कि—

"ज्ञान समान न आन जगत मे सुख कौ कारण।
इह परमामृत जन्म-जरा-मृतु रोग निवारण ॥[1]

इस जगत में ज्ञान के समान अन्य कोई भी पदार्थ सुख देने वाला नही है। यह ज्ञान जन्म, जरा और मृत्यु रूपी रोग को दूर करने के लिये परम-अमृत है, सर्वोत्कृष्ट औषधि है।"

---

१ पण्डित दौलतराम · छहढाला, चतुर्थ ढाल, छन्द ४।

और भी देखिये—

"जे पूरव शिव गये जाहिं अरु आगे जहैं।
सो सब महिमा ज्ञानतनी मुनिनाथ कहै हैं ॥[1]

आज तक जितने भी जीव अनन्त सुखी हुए हैं अर्थात् मोक्ष गये ह या जा रह ह अथवा भविष्य मे जावेगे, वह सब ज्ञान का ही प्रताप है—ऐसा मुनियो के नाथ जिनेन्द्र भगवान कहते हैं।

सम्यग्ज्ञान की तो अनन्त महिमा है ही पर सम्यग्दशन की महिमा जिनागम म उससे भी अधिक बताई गई है, गाई गई है।

क्यो और कैसे ?

मान लो रिक्शा चलाने वाला वह करोडपति बालक अब २५ वष का युवक हो गया है। उसके नाम से जमा करोड रुपया की अवधि समाप्त हो गई है, फिर भी कोई व्यक्ति बक मे रुपये लेने नही आया। अत बक ने समाचार-पत्रो म सूचना प्रकाशित कराई कि अमुक व्यक्ति के इतने रुपये बक मे जमा हैं, वह एक माह के भीतर नही आया तो लावारिस समझकर रुपये सरकारी खजाने म जमा करा दिये जावेंगे।

उस समाचार को उस नवयुवक न भी पढा और उसका हृदय प्रफुल्लित हो उठा पर उसकी वह प्रसन्नता क्षणिक साबित हुई, क्योकि अगले ही क्षण उसके हृदय मे सशय के बीज अकुरित हो गये। वह सोचन लगा कि मेरे नाम इतन रुपये बक म कसे हो सकते है ? मैंने तो कभी जमा कराये ही नही। मेरा तो किसी बक म कोई खाता भी नही है। फिर भी उसने वह समाचार दुबारा बारीकी म पढा तो पाया कि वह नाम तो उसी का है, पिता के नाम के स्थान पर भी उसी के पिता का नाम अकित है कुछ आशा जागृत हुई किन्तु अगले क्षण ही उसे विचार आया कि हो सकता है, इसी नाम का कोई दूसरा व्यक्ति हो और सहज सयोग से ही उसके पिता का नाम भी यही हो। इस प्रकार वह फिर शकाशील हो उठा।

इस प्रकार जानकर भी उसे प्रतीति नहीं हुई इस बात का विश्वास जागृत नही हुआ कि ये रुपये मेरे ही है। अत जान लेने पर भी कोई लाभ नही हुआ। इससे सिद्ध होता है कि प्रतीति बिना, विश्वास बिना जान लेन मात्र से भी कोई लाभ नही होता। अत ज्ञान से भी अधिक महत्व श्रद्धान का है, विश्वास का है, प्रतीति का है।

इसी प्रकार शास्त्रो म पढकर हम सब यह जान तो लेते हैं कि आत्मा ही परमात्मा है (अप्पा सा परमप्पा) पर अतर् मे यह विश्वास जागृत नही होता कि मैं स्वय ही परमात्मस्वरूप हूँ, परमात्मा हूँ, भगवान हूँ। यही कारण है कि यह बात जान लेने पर भी कि मैं स्वय परमात्मा हूँ, सम्यक्श्रद्धान बिना दुख का अन्त नही होता, चतुर्गतिभ्रमण समाप्त नही होता, सच्चे सुख की प्राप्ति नही होती।

समाचार-पत्र म उक्त समाचार पढकर वह युवक अपने साथियो को भी बताता है। उन्हे समाचार दिखाकर कहता है कि 'देखो मैं करोडपति हूँ। अब तुम मुझे गरीब रिक्शेवाला नही समझना।'

---

१ पडित दौलतराम छहढाला, चतुर्थ ढाल, छद ८।

इस प्रकार कहकर वह अपना और अपने साथियो का मनोरजन करता है, एक प्रकार से स्वय अपनी हँसी उडाता है। इसी प्रकार शास्त्रो मे से पढ-पढकर हम स्वय अपने साथियों को भी सुनाते हैं। कहते हैं— 'देखो, हम सभी स्वय भगवान हैं, दीन-हीन मनुष्य नही।' इस प्रकार की आध्यात्मिक चर्चाओ द्वारा हम स्वय का और समाज का मनोरंजन तो करते हैं, पर सम्यक्श्रद्धान के अभाव मे भगवान होने का सही लाभ प्राप्त नही होता, आत्मानुभूति नही होती, सच्चे सुख की प्राप्ति नही होती, आकुलता समाप्त नही होती।

इस प्रकार अज्ञानीजनो की आध्यात्मिक चर्चा भी आत्मानुभूति के विना, सम्यग्ज्ञान के विना, सम्यक्श्रद्धान के विना वौद्धिक व्यायाम वनकर रह जाती है।

समाचार-पत्रो मे प्रकाशित हो जाने के उपरान्त भी जव कोई व्यक्ति पैसे लेने वैंक मे नही आया तो वैंकवालो ने रेडियो स्टेशन से घोषणा कराई। रेडियो स्टेशन को भारत में आकाशवाणी कहते है। अत. आकाशवाणी हुई कि अमुक व्यक्ति के इतने रुपये वैंक मे जमा है, वह एक माह के भीतर ले जावे, अन्यथा लावारिस समझकर सरकारी खजाने में जमा करा दिये जावेगे।

आकाशवाणी की उस घोषणा को रिक्शे पर वैठे-वैठे उसने भी सुना, अपने साथियो को भी सुनाई, पर विश्वास के अभाव मे कोई लाभ नही हुआ। इसी प्रकार अनेक प्रवक्ताओ से इस वात को सुनकर भी कि हम सभी स्वय भगवान है, विश्वास के अभाव मे वात वही की वही रही। जीवन भर जिनवाणी सुनकर भी, पढकर भी, आध्यात्मिक चर्चायें करके भी आत्मानुभूति से अछूते रह गये।

समाचार-पत्रो मे प्रकाशित एव आकाशवाणी मे प्रसारित उक्त समाचार की ओर जव स्वर्गीय सेठजी के उन अभिन्न मित्र का ध्यान गया, जिन्हे उन्होंने मरते समय उक्त रहस्य की जानकारी दी थी, तो वे तत्काल उस युवक के पास पहुँचे और वोले—

"वेटा! तुम रिक्शा क्यो चलाते हो?"

उसने उत्तर दिया—"यदि रिक्शा न चलायें तो खायेंगे क्या?"

उन्होंने समझाते हुए कहा—"भाई, [तुम तो करोडपति हो, तुम्हारे तो करोडो रुपये वैंक मे जमा है।"

अत्यन्त गमगीन होते हुए युवक कहने लगा—

"चाचाजी, आपसे ऐसी आशा नही थी, सारी दुनिया तो हमारा मजाक उडा ही रही है, पर आप तो वुजुर्ग है, मेरे पिता के वरावर है, आप भी ।"

वह अपनी वात समाप्त ही न कर पाया था कि उसके माथे पर हाथ फेरते हुए अत्यन्त स्नेह से वे कहने लगे—

'नही भाई, मैं तेरी मजाक नही उडा रहा हूँ। तू सचमुच ही करोडपति है। जो नाम समाचार-पत्रो मे छप रहा है, वह तेरा ही नाम है।"

अत्यन्त विनयपूर्वक वह वोला—"ऐसी वात कहकर आप मेरे चित्त को व्यर्थ ही अशान्त न करें। मैं मेहनत-मजदूरी करके दो रोटियाँ पैदा करता हूँ और आराम से जिन्दगी वसर कर रहा हूँ। मेरी महत्वाकाक्षा को जगाकर आप मेरे चित्त को क्यो उद्वेलित कर रहे है। मैंने तो कभी कोई रुपये वैंक मे जमा कराये ही नही। अत मेरे रुपये वैंक मे जमा कैसे हो सकते है?"

अत्यन्त गद्गद् होते हुए वे कहने लगे —"भाई तुम्हें पैसे जमा कराने की क्या आवश्यकता थी ? तुम्हारे पिताजी स्वयं बीस वर्ष पहले तुम्हारे नाम एक करोड रुपये बैंक में जमा करा गये थे जो अब ब्याज सहित तीन करोड हो गये होंगे। मरते समय यह बात वे मुझे बता गये थे।"

यह बात सुनकर वह एकदम उत्तेजित हो गया। थोडा-सा विश्वास उत्पन्न होते ही उसमें करोडपतियों के लक्षण उभरने लगे। वह एकदम गर्म होते हुए बोला—"यदि यह बात सत्य है तो आपने अभी तक हमें क्यों नहीं बताया ?"

वे समझाते हुए कहने लगे— उत्तेजित क्यों होते हो ? अब तो बता दिया। पीछे की जाने दो, अब आगे की सोचो।"

"पीछे की क्या जाने दो ? हमारे करोडों रुपये बैंक में पडे रहे और हम दो रोटियों के लिये मुँहताज हो गये। हम रिक्शा चलाते रहे और आप देखते रहे। यह कोई साधारण बात नहीं है जो यों ही छोड दी जाय आपको इसका जवाब देना ही होगा।"

"तुम्हारे पिताजी मना कर गये थे।"

"आखिर क्यों ?"

"इसलिए कि बीस वर्ष पहले तुम्हें रुपये तो मिल नहीं सकते थे। पता चलने पर तुम रिक्शा भी न चला पाते और भूखों मर जाते।"

"पर उन्होंने ऐसा किया ही क्यों ?"

"इसलिए कि नाबालिगी की अवस्था में कहीं तुम यह सम्पत्ति बर्बाद न कर दो और जीवन भर के लिए कंगाल हो जाओ। समझदार होने पर तुम्हें ब्याज सहित तीन करोड रुपये मिल जावें और तुम आराम से रह सको। तुम्हारे पिताजी ने यह सब तुम्हारे हित में ही किया है। अतः उत्तेजना में समय बर्बाद मत करो। आगे की सोचो।"

इस प्रकार सम्पत्ति सम्बन्धी सच्ची जानकारी और उस पर पूरा विश्वास जागृत हो जाने पर उस रिक्शेवाले युवक का मानस एकदम बदल जाता है दरिद्रता के साथ का एकत्व टूट जाता है एवं मैं करोडपति हूँ' ऐसा गौरव का भाव जागृत हो जाता है आजीविका की चिन्ता न मालूम कहाँ चली जाती है चेहरे पर सम्पन्नता का भाव स्पष्ट झलकने लगता है।

इसी प्रकार शास्त्रों के पठन, प्रवचनों के श्रवण और अनेक युक्तियों के अवलम्बन से ज्ञान में बात स्पष्ट हो जाने पर भी अज्ञानीजनों को इस प्रकार का श्रद्धान उदित नहीं होता कि ज्ञान का घन पिण्ड, आनन्द का रसकन्द, शक्तियों का संग्रहालय, अनन्त गुणों का गोदाम भगवान आत्मा मैं स्वयं ही हूँ। यही कारण है कि श्रद्धा के अभाव में उक्त ज्ञान का कोई लाभ प्राप्त नहीं होता।

काललब्धि आने पर किसी आसन्नभव्य जीव को परमभाग्योदय से किसी आत्मानुभवी ज्ञानी धर्मात्मा का सहज समागम प्राप्त होता है और वह ज्ञानी धर्मात्मा उसे अत्यन्त वात्सल्यभाव से समझाता है कि हे आत्मन् ! तू स्वयं भगवान है, तू अपनी शक्तियों को पहचान, पर्याय की पामरता का विचार

मत कर, स्वभाव के सामर्थ्य को देख, सम्पूर्ण जगत पर से दृष्टि हटा और स्वय मे ही समा जा, उपयोग को यहाँ-वहाँ न भटका, अन्तर् मे जा, तुझे निज-परमात्मा के दर्शन होगे।

ज्ञानी गुरु की करुणा-विगलित वाणी सुनकर वह निकट भव्य जीव कहता है—

"प्रभो ! यह आप क्या कह रहे है, मैं भगवान कैसे हो सकता हूँ ? मैंने तो जिनागम में वताये भगवान वनने के उपाय का अनुसरण आज तक किया ही नही है। न जप किया, न तप किया, न व्रत पाले और न स्वय को जाना-पहचाना—ऐसी अज्ञानी-असयत दशा मे रहते हुए मैं भगवान कैसे हो सकता हूँ ?"

अत्यन्त स्नेहपूर्वक समझाते हुए ज्ञानी धर्मात्मा कहते है—

"भाई, ये वनने वाले भगवान की वात नहीं है, यह तो वने-वनाये भगवान की वात हैं। स्वभाव की अपेक्षा तुझे भगवान वनना नही है, अपितु स्वभाव से तो तू वना-वनाया भगवान ही है। ऐसा जानना-मानना और अपने मे ही जम जाना, रम जाना पर्याय मे भगवान वनने का उपाय है। तू एक वार सच्चे दिल से अन्तर् की गहराई से इस वात को स्वीकार तो कर, अन्तर् की स्वीकृति आते ही तेरी दृष्टि पर-पदार्थों से हटकर सहज ही स्वभाव-सन्मुख होगी, ज्ञान भी अन्तरोन्मुख होगा और तू अन्तर् मे समा जायगा, लीन हो जायगा, समाधिस्थ हो जायगा। ऐसा होने पर तेरे अन्तर् मे अतीन्द्रिय आनन्द का ऐसा दरिया उमडेगा कि तू निहाल हो जावेगा, कृतकृत्य हो जावेगा। एक वार ऐसा स्वीकार करके तो देख !"

"यदि ऐसी वात है तो आज तक किसी ने क्यो नही वताया ?"

"जाने भी दे, इस वात को, आगे की सोच।"

"क्यो जाने दे ? इस वात को जाने विना हम अत्यन्त दुख उठाते रहे, स्वय भगवान होकर भी भोगो के भिखारी वने रहे, और किसी ने वताया तक नही।"

"अरे भाई, जगत को पता हो तो वताये, और ज्ञानी तो वताते ही रहते है, पर कौन सुनता है उनकी, काललब्धि आये विना किसी का ध्यान ही नही जाता इस ओर। सुन भी लेते है तो इस कान से सुनकर उस कान से वाहर निकाल देते है, ध्यान नही देते। समय से पूर्व वताने से किसी को कोई लाभ भी नही होता। अत अव जाने भी दो पुरानी वातो को, आगे की सोचो। स्वय के परमात्मस्वरूप को पहचानो, स्वय के परमात्मस्वरूप को जानो और स्वय मे समा जावो। सुखी होने का एकमात्र यही उपाय है।

कहते-कहते गुरु स्वय मे समा जाते है और भव्यात्मा भी स्वयं मे समा जाता है। जव उपयोग वाहर आता है तो उसके चेहरे पर अपूर्व शान्ति होती है, संसार की थकान पूर्णत. उतर चुकी होती है, पर्याय की पामरता का कोई चिन्ह चेहरे पर नहीं होता, स्वभाव की सामर्थ्य का गौरव अवश्य झलकता है।

आत्मज्ञान, श्रद्धान एवं आशिक लीनता से आरम्भ मुक्ति के मार्ग पर आरूढ वह भव्यात्मा चक्रवर्ती की सम्पदा और इन्द्रो जैसे भोगो को भी तुच्छ समझने लगता है। कहा भी है—

"चक्रवर्ती की सम्पदा अरु इन्द्र सारिखे भोग।
कागवीट सम गिनत है सम्यग्दृष्टि लोग।।"

यद्यपि अभी वह वही मैला-कुचैला फटा कुर्ता पहने है, मकान भी टूटा-फूटा ही है, क्योकि ये सब तो तब बदलेंगे, जब रुपये हाथ में आ जावेंगे। कपडे और मकान श्रद्धा-ज्ञान से नही बदल जाते, उनके लिए तो पैसे चाहिए, पैसे, तथापि उसके चित्त मे आप कही भी दरिद्रता की हीन भावना का नामोनिशान भी नही पायेंगे।

उसी प्रकार जीवन तो सम्यक्चारित्र होने पर ही बदलेगा, अभी तो असंयमरूप व्यवहार ही ज्ञानी-धर्मात्मा के देखा जाता है, पर उनके चित्त मे रचमात्र भी हीन भावना नही रहती, ये स्वय को भगवान ही अनुभव करते हैं।

जिस प्रकार उस युवक के श्रद्धा और ज्ञान में तो यह बात एक क्षण मे आ गई कि मैं करोडपति हूँ, पर करोडपतियो जैसे रहन-सहन मे अभी वर्षो लग सकते है। पैसा हाथ मे आ जाय, तब मकान बनना आरम्भ हो, उसमे भी समय तो लगेगा ही। उस युवक को अपना जीवन-स्तर उठाने की जल्दी तो है, पर अधीरता नही, क्योकि जब पता चल गया है तो रुपये भी अब मिलेंगे ही, आज नही तो कल, कल नही तो परसो, बरसो लगने वाले नही है।

उसी प्रकार श्रद्धा और ज्ञान तो क्षणभर मे परिवर्तित हो जाते है, पर जीवन मे संयम आने मे समय लग सकता है। सयम धारण करने की जल्दी तो प्रत्येक ज्ञानी-धर्मात्मा को रहती ही है, पर अधीरता नही होती, क्योकि जब सम्यग्दर्शन-ज्ञान और सयम की रुचि (अश) जग गई है तो इसी भव मे, इस भव मे नही तो अगले भव मे, उसमे नही तो उससे अगले भव मे, सयम भी आयेगा ही, अनन्तकाल यो ही जाने वाला नही है।

अत हम सभी का यह परम पावन कर्तव्य है कि हम सब स्वय को सही रूप मे जाने, सही रूप मे पहचाने, इस बात का गहराई से अनुभव करे कि स्वभाव से तो हम सभी सदा से ही भगवान ही है—इसमे शका-आशका के लिए कही कोई स्थान नही है। रही बात पर्याय की पामरता की, सो जब हम अपने परमात्मस्वरूप का सम्यग्ज्ञान कर उसी मे अपनापन स्थापित करेंगे, अपने ज्ञानोपयोग (प्रगटज्ञान) को भी सम्पूर्णत उसी मे लगा देंगे, स्थापित कर देगे और उसी मे लीन हो जावेंगे, जम जावेंगे, रम जावेंगे, समा जावेंगे, समाधिस्थ हो जावेंगे तो पर्याय मे भी परमात्मा (अरहंतसिद्ध) बनते देर न लगेगी।

अरे भाई! जैनदर्शन के इस अद्‌भुत परमसत्य को एक बार अन्तर् की गहराई से स्वीकार तो करो कि स्वभाव से हम सभी भगवान ही हैं। पर और पर्याय से अपनापन तोडकर एक बार द्रव्यस्वभाव मे अपनापन स्थापित तो करो. फिर देखना अन्तर् मे कैसी क्रान्ति होती है, कैसी अद्‌भुत और अपूर्व शान्ति उपलब्ध होती है, अतीन्द्रिय आनन्द का कैसा झरना झरता है।

इस अद्‌भुत सत्य का आनन्द मात्र बातो से आने वाला नही है, अन्तर् मे इस परमसत्य के साक्षात्कार से ही अतीन्द्रिय आनन्द का दरिया उमडेगा। उमडेगा, अवश्य उमडेगा, एक बार सच्चे हृदय से सम्पूर्णत समर्पित होकर निज-भगवान आत्मा की आराधना तो करो, फिर देखना क्या होता है?

बातो से इससे अधिक कुछ नही कहा जा सकता है। अत. यह मगलभावना भाते हुए विराम लेता हूँ कि सभी आत्माएँ स्वय के परमात्मस्वरूप को जानकर, पहचानकर स्वय मे ही जमकर, रमकर अनन्त मुख-शान्ति को शीघ्र ही प्राप्त करे। ●

जैन दर्शन मे कर्मसिद्धान्त

—पन्यासप्रवर श्री नित्यानन्दविजय जी

[जन तत्त्व विद्या के अधिकारी विद्वान
प्रसिद्ध प्रवचनकार धर्म प्रभावक सन्त]

भारतीय दशनो म कम-दशन का महत्वपूण स्थान है। यद्यपि पृथ्वी के सभी भागो म, सभी दशनकारो ने कमवाद माना है, परन्तु भारतीय दशनो म परस्पर मतभेद होते हुए भी कमवाद के अमोघत्व को सभी न स्वीकार किया है।

विश्व के कवि मनीषी कम-फल क विषय म एकमत है। अग्रेजी के महान् साहित्यकार शक्सपीयर न कम फल के विषय म कहा है 'My deeds upon my head' कवि शिल्हन मिश्र शान्ति शतकम्' म कहते हैं

आकाशमुत्पततु गच्छतु वा दिगन्त—
मम्भोनिधि विशतु तिष्ठतु वा यथेष्टम्।
जन्मान्तरार्जितशुभाशुभकृन्नराणा
छायेव न त्यजति कमफलानुबन्धि ॥८२॥

आप आकाश म चले जाएँ दिशाओ के उस पार पहुँच जाएँ, समुद्र के तल म घुस जाएँ या चाहे जहाँ चले जाएँ, परन्तु जन्मान्तर मे जो शुभाशुभ कम किये हैं, उनके फल तो छाया के समान साथ ही साथ रहगे, वे तुम्हे कदापि नही छोडेंगे। जैनाचाय श्रीमद अमितगति कहते हैं—

स्वय कृत कम यदात्मना पुरा,
फल तदीय लभते शुभाशुभम्।
परेण दत्त यदि लभ्यते स्फुट
स्वय कृत कम निरथक तदा ॥ —सामायिक पाठ ३०

(अपने पूर्वकृत् कर्मों का शुभाशुभ फल भोगना ही पड़ता है। यदि अन्यकृत कर्मों का फल हमें भोगना पड़ता हो तब हमारे स्वकृत कर्म निरर्थक ही रहे।)

जैनमतानुसार प्राणिमात्र को कर्म का फल भोगना ही पड़ता है। फलोत्पत्ति के लिए कर्मफल-नियन्ता ईश्वर का बीच मे कोई स्थान नहीं है।

भौतिक सस्कृति मे पले हुए लोग कर्मफल मे विश्वास नहीं करते। उनकी शका है कि "पापी मनुष्य सुखी और सज्जन दु खी क्यो दिखाई देते हैं?"

जैनदर्शन के अनुसार कर्म का फल तो अवश्य ही मिलता है उसके मिलने में कभी अधिक विलम्ब भी हो सकता है, परन्तु कर्म का फल न मिले यह तो असम्भव है।

जैनमतानुसार हिंसक मनुष्य की समृद्धि और सज्जन पुरुष की दरिद्रता का कारण क्रमश पूर्व-जन्मकृत पापानुबन्धी पुण्यकर्म और पुण्यानुबन्धी पापकर्म है। हिंसा और सज्जनता का क्रमशः अशुभ और शुभ फल अवश्य मिलता है, चाहे जन्मान्तर मे ही क्यो न मिले।

अनन्त लब्धिनिधान गणधर गौतम स्वामी भगवान महावीर स्वामी से पूछते हैं

"दुक्खे केण कडे?"

(दु ख किसने पैदा किया)

भगवान ने बताया

"जीवेण कडे पमाएण"

(स्वयं जीव ने ही दु ख उत्पन्न किये है)।

गौतम स्वामी ने फिर प्रश्न किया

'दु ख पैदा कर आत्मा ने अपना अनिष्ट क्यो किया?'

प्रभु ने उत्तर दिया -

'प्रमादवश।'

प्रमादवश जीव शरीर को आत्मा मानकर भोगो की ओर प्रवृत्त होता है। शारीरिक सुख के लिए वह हिंसा, शोषण आदि दुष्कर्मों मे लिप्त होता है। यह उसकी घोर अज्ञान दशा प्रकट होती है। प्रमाद के कारण जीव राग-द्वेष, क्रोध, मान, माया और लोभ रूपी कालुष्य से कलुषित हो जाता है, अत जीव को अपनी आत्म-शक्ति का बोध होना आवश्यक है।

सम्यक्त्व, स्वाध्याय, सत्संगति, शुद्ध चरित्र आदि से जीव की विभाव दशा मिट जाती है और वह बहिर्मुखता से अन्तर्मुखता की ओर मुड जाता है।

अन्तर्मुखी आत्मा अपने अन्तर्गत विद्यमान अनन्त चतुष्टय—अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्त-सुख और अनन्तवीर्य को अपनी निर्मल साधना से प्रकट करके परमानन्द मे निवास करती है।

जैनदर्शन का कर्मवाद भाग्यवाद को स्वीकार नहीं करता। उसके अनुसार जीव स्वय अपने भाग्य का निर्माता है। इस निर्माण मे जीव का पुरुषार्थ महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। यदि जीव मैत्री, प्रमोद, करुणा और माध्यस्थभाव चतुष्टय से विभूषित होकर सत्कर्म मे पुरुषार्थ करे तो उसके अन्तर् के कपाट खुल जायेंगे और वह मानस-मन्दिर में विराजमान करुणासागर वीतराग परमात्मा के दर्शन कर सकेगा।

O

स्वास्थ्य पर धर्म का प्रभाव

—युवाचार्य महाप्रज्ञ

[सुख्यात दार्शनिक, बहुश्रुत विद्वान तथा
प्रेक्षाध्यान योग के अनुभवी साधक एवं प्रवक्ता]

卐

मनुष्य इस विश्व का सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। इसकी श्रेष्ठता का मानदण्ड है—विकसित नाडीतन्त्र। मनुष्य को जैसा नाडीतन्त्र उपलब्ध है, वैसा किसी अन्य प्राणी को उपलब्ध नहीं है। इस गरिमामय उपलब्धि के लिये उसे सर्वश्रेष्ठ कहा जा सकता है। उसके मस्तिष्क की संरचना बहुत जटिल है। उसका मेरुदण्ड बहुत शक्तिशाली है। उसे अस्थि मज्जा की विशिष्टता प्राप्त है। अस्थि रचना केवल एक ढांचा नहीं है, केवल एक आधार नहीं है। उसमें अनेक विशेषताएँ छिपी हुई हैं। सुदृढ़ अस्थिरचना वाला व्यक्ति ही मन पर नियन्त्रण कर सकता है, मानसिक एकाग्रता को साध सकता है। अस्थिरचना के साथ स्वास्थ्य का भी गहरा सम्बन्ध है। अपने आप में रहने वाला स्वस्थ (स्वास्मिन् तिष्ठति इति स्वस्थ) कहलाता है। स्वस्थ की यह व्युत्पत्ति दूसरे नम्बर की है। उसकी पहले नम्बर की व्युत्पत्ति है—जिसकी अस्थियाँ अच्छी होती हैं वह स्वस्थ (सुष्ठु अस्थि यस्य स स्वस्थ) होता है। मनुष्य के संस्कार अस्थि और मज्जा में अन्तर्निहित होते हैं। जैसा संस्कार वैसा विचार, व्यवहार और आचार।

स्वास्थ्य का सम्बन्ध केवल शरीर से नहीं है। शरीर, मन और भावना—इन तीनों का समीचीन समन्विति का नाम स्वास्थ्य है। बहुत लोग स्वस्थ रहने के लिये पोषक द्रव्यों पर ध्यान केन्द्रित किए हुए हैं। यह शारीरिक स्वास्थ्य का एक बिन्दु हो सकता है। शरीर अकेला नहीं है, वह एक समन्वय है। अकेला शरीर स्वस्थ नहीं रह सकता। मन स्वस्थ है तो शरीर भी स्वस्थ है। यदि मन स्वस्थ नहीं है तो शरीर कैसे स्वस्थ रहेगा? हजारों हजारों वर्ष पहले आयुर्वेद के आचार्यों ने इस सचाई का अनुभव किया था—रोग शारीरिक और मानसिक—दोनों प्रकार के होते हैं। वर्तमान आयुर्विज्ञान के अनुसार मनोकायिक रोगों की तालिका बहुत लम्बी है। मनोकायिक रोग मन और शरीर—दोनों की रुग्णता से होने वाला रोग है। कायिक रोगों की चिकित्सा

औषधि के द्वारा की जा सकती है। मनोकायिक रोग के लिये औषधि पर्याप्त नही है। मनोभावो को बदले बिना उसकी चिकित्सा सम्भव नही होती।

स्वास्थ्य का मूलस्रोत है—भावो की विशुद्धि। हमारा पूरा जीवन भावधारा के द्वारा सचालित है। भाव से मन प्रभावित होता है और मन से शरीर प्रभावित होता है। जितने निषेधात्मक भाव हैं, वे सब रोग को निमत्रित करने वाले है। क्रोध निषेधात्मक भाव है। उसका वेग अनेक रोगो को निमंत्रित करता है। उच्च रक्तचाप, हृदय रोग आदि के लिये वह विशेष उत्तरदायी है। लोभ भी निषेधात्मक भाव है। उसके वेग मे आहार के प्रति अरुचि, अग्निमाद्य आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। भावों से उत्पन्न होने वाले रोगो का लम्बा विवरण आयुर्वेद के ग्रन्थो मे मिलता है। आज वैज्ञानिक भी भाव और रोग के सम्बन्ध की खोज में काफी आगे बढे है।

स्वास्थ्य के पाँच लक्षण है —

१ शारीरिक धातुओ और रसायनो का सन्तुलन
२ प्राण का सन्तुलन
३ इन्द्रियो की प्रसन्नता
४ मन की प्रसन्नता
५ भावो की प्रसन्नता

सन्तुलित आहार से धातुओ और रसायनो का सन्तुलन बनता है। इस सन्तुलन का सम्बन्ध आहार मे है—यह स्पष्ट है। इसका सम्बन्ध धर्म से है—यह बहुत अस्पष्ट है। आहार का संयम करना एक तपस्या है और तपस्या धर्म है। जो व्यक्ति कोलेस्टेरोल बढाने वाली वस्तुएँ अधिक मात्रा मे खाता है वह धमनिकाठिन्य और हृदय रोग से मुक्त नही रह सकता। जो व्यक्ति अधिक मात्रा मे नमक खाता है, वह उच्च रक्तचाप और गुर्दे की बीमारी से कैसे बच सकता है? अधिक मात्रा मे सफेद चीनी खाने वाला क्या अम्लता और मधुमेह को निमन्त्रित नही कर रहा है? हमारे शरीर के लिये आहार जितना जरूरी है, उतना ही जरूरी है आहार का सयम अथवा अस्वाद का व्रत।

जीवन-यात्रा के लिये मन की चचलता जरूरी है। वह सीमा से आगे बढ जाती है तब उससे स्वास्थ्य प्रभावित होता है। पहले मानसिक स्वास्थ्य फिर शारीरिक स्वास्थ्य। चचलता को कम करना केवल मानसिक शान्ति की ही साधना नही है, वह शारीरिक स्वास्थ्य की साधना है। मन की एकाग्रता धर्म का आन्तरिक तत्त्व है। वह स्वास्थ्य का भी एक महत्वपूर्ण अग है।

आहार, नीद और ब्रह्मचर्य—ये तीन स्वास्थ्य के आधार माने जाते है। आहारसयम की भाँति नीद का सयम भी आवश्यक है। बहुत नीद लेना स्वास्थ्य के लिए हितकर नही है। सामान्यत दिन मे सोना अच्छा नही है। यदि आवश्यक हो तो बहुत कम समय के लिए। बहुत है, आधा घण्टा। एक घण्टा तो बहुत ज्यादा है। रात में भी अवस्था अनुपात मे पाँच, छ या सात घण्टा नीद लेना पर्याप्त है। जागरूकता धर्म का महत्वपूर्ण अग है।

सुकरात से पूछा गया—सभोग कितनी बार करना चाहिये?
सुकरात—जीवन मे एक बार।
यह सम्भव नही हो तो?
वर्ष में एक बार।

यह भी सम्भव न हो तो ?
महीने में एक बार।
यह भी सम्भव न हो तो ?
सुकरात ने कहा—कफन सिरहाने रख लो फिर चाहे जैसे करो।

आहार-संयम, निद्रा संयम, ब्रह्मचर्य और विधायक भाव ये सब धर्म के प्राण तत्व हैं। इनकी आराधना धर्म की आराधना है और स्वास्थ्य की साधना भी।

आज धर्म की आराधना कम होती है सम्प्रदाय की आराधना अधिक होती है। साम्प्रदायिक आचार-संहिता को धर्म मानने वाले लोग अधिक हैं। धर्म का मूल तत्व भिन्न नहीं हो सकता। उसमें देश-काल का भेद भी नहीं होता। यदि त्याग और तपस्या के प्रयोग जीवन में किये जाएँ तो साम्प्रदायिकता की समस्या भी कम हो सकती है, स्वास्थ्य भी अच्छा रह सकता है।

कुछ रोग आगतुक होते हैं। चोट लगी हड्डी टूट गई। कुछ संक्रामक होते हैं। कुछ रोग कर्मज होते हैं। ये सभी स्वास्थ्य को कमजोर बना देते हैं। इस बहुसंक्रामी युग में कोई आदमी अकेला रहता नहीं, अप्रभावित हुए बिना भी नहीं रह सकता। इस स्थिति में स्वास्थ्य के मूल तत्व की खोज आवश्यक होती है। वह है प्राण।

शरीर की अतिरिक्त चंचलता—
वाणी की अतिरिक्त चंचलता
मन की अतिरिक्त चंचलता
श्वास की तेज गति
आहार का असंयम
भोग का असंयम
निषेधात्मक भाव

ये सब प्राण को क्षीण करते हैं। आयुर्विज्ञान की भाषा में रोग निरोधक क्षमता और आत्मरक्षा प्रणाली को अव्यवस्थित बना देते हैं। फलतः बीमारियों के बीज को पनपने का मौका मिल जाता है।

धर्म की आराधना का प्रत्यक्ष उद्देश्य है—भावना की विशुद्धि, मन की एकाग्रता और आत्मा की अनुभूति। उसका परोक्ष परिणाम है—प्राण को प्रबल बनाना। प्राण प्रबल होता है स्वास्थ्य की धारा अपने आप प्रवाहित हो जाती है।

□ □

पूर्णता या परोपाधेः सा याचितकमण्डनम्।
या तु स्वाभाविकी सैव जात्यरत्नविभानिभा।

पराई वस्तु (पुद्गलों) से जो पूर्णता मानी जाती है वह तो उधार माँगकर पहने हुए आभूषण के समान है। जैसे कि रत्न की अपनी अलौकिक कान्ति उसकी अपनी होती है वैसे ही आत्म भावों से प्राप्त पूर्णता आत्मा की वास्तविक पूर्णता है। —ज्ञानसार १/२
(विवेचक—मुनिश्री भद्रगुप्तविजय जी)

जैन धर्म में मनोविद्या

—गणेश ललवाणी (कलकत्ता)

(धर्म एव दर्शन के क्षेत्र मे जाने-माने क्रान्तिकारी चिन्तक,
हिन्दी-सस्कृत-बगला-अंग्रेजी आदि अनेक भाषाविज्ञ लेखक)

●

जीव तत्व की आलोचना करते हुए जैन मनीषियो ने मनोविद्या नामक ऐसे तत्व की आलोचना की है, विश्लेषण किया है जिसे कि आज हम 'साइकोलाजी' कहते हैं।

जीव के गुणो मे चेतना एवं उपयोग को प्रधान माना गया है। किन्तु चेतना क्या है? यह समझना उतना आसान नही है क्योकि यह अनुभूति का विषय है। फिर भी चेतना की अभिव्यक्ति किन-किन रूपो मे होती है इस पर प्रकाश डाला गया है। यह अभिव्यक्ति तीन प्रकार से होती है, यथा—(१) सुख-दुख की अनुभूति से, (२) कार्य करने की शक्ति से (३) ज्ञान की अनुभूति से। जैन दर्शन के अनुसार स्थावर जीव भी सुख-दुख अनुभव करता है, पर कार्य करने की शक्ति अनुभव नही करता जबकि निम्नस्तरीय त्रस जीव सुख-दुख की अनुभूति के साथ कार्य करने की शक्ति को अनुभव करता है, लेकिन उसे ज्ञान की अनुभूति नही होती। ज्ञान की अनुभूति तो होती है मात्र मनुष्य जैसे उच्च स्तरीय जीवो को ही। इन तीन प्रकार की अनुभूतियो को पूर्ण चैतन्य के विकास क्रम के तीन स्तर भी मान सकते हैं—प्रथम स्तर है सुख-दुख के अनुभव का, द्वितीय कार्यशक्ति का, तृतीय ज्ञानशक्ति का। इससे यह फलित हुआ कि जिसे साधारणतया अचेतन पदार्थ समझा जाता है उन मृत्तिकादि मे भी चेतना शक्ति तो है, किन्तु है अविकसित रूप मे। उस चेतना की अभिव्यक्ति होती है मात्र सुख-दुख के अनुभव मे। पाश्चात्य क्रम-विकासवादी मनोवैज्ञानिको ने भी आज इस तथ्य को स्वीकार कर लिया है। वे कहने लगे हैं कि मनुष्येतर जीवो मे भी एक प्रकार का निम्न स्तरीय चैतन्य रहता है। वे केवल अचैतन्य वस्तु पिण्ड मात्र ही नही है।

जीव का दूसरा गुण है उपयोग। उसके भी दर्शन और ज्ञान के भेद से दो प्रकार बताए गए है। वस्तु का सामान्य अनुभव है दर्शन। दर्शन मे तो मात्र इतनी ही उपलब्धि होती है 'कुछ है'। उदाहरण-

स्वरूप एक गाय को लीजिए। आपने गाय देखी। दर्शन से आपको इतना ही अनुभव हुआ 'गाय कुछ है' पर क्या है इसकी विशेष जानकारी नही होती। उसके सींग है, पूँछ है, वह घास खाती है, दूध देती है यह सब ज्ञान नही होता। ज्ञान तो उपयोग का दूसरा प्रकार है जिसका उदय होता है दर्शन के बाद। और यह किस प्रकार उदय होता है, आगे जाकर इसकी चर्चा करेंगे।

शास्त्रो मे दर्शन के चार प्रकार बताए गए हैं। चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, केवल-दर्शन। आखो से देखकर जब यह अनुभव होता है कि 'कुछ है' तो उसे चक्षुदर्शन कहते हैं और जो अनुभव आख के अतिरिक्त नाक, कान, जीभ और त्वचा से होता है उसे कहते हैं अचक्षुदर्शन। अवधि-दर्शन का अर्थ है एक सीमा के मध्य रूपी द्रव्यो का सामान्य-सा अनुभव और केवलदर्शन का विश्व के समस्त पदार्थों का सामान्य अनुभव।

उपयोग का दूसरा लक्षण है 'ज्ञान'। ज्ञान के पाच भेद हैं—मति, श्रुत, अवधि, मन पर्यव और केवल। इनमे प्रथम दो मति और श्रुत ज्ञान को जैन दर्शन मे परोक्ष एवं शेष तीन को प्रत्यक्ष माना है। अन्य दर्शन मति अर्थात् इन्द्रियलब्ध ज्ञान को ही प्रत्यक्ष मानता है। किन्तु जैनदर्शन ऐसा नही मानता। वह कहता है जो ज्ञान आत्मा द्वारा होता है वही ज्ञान प्रत्यक्ष है और जो इन्द्रिय तथा मन के सहारे से उत्पन्न होता है वह परोक्ष है। क्योकि जो ज्ञान सीधा आत्मा से होता है उसमे भ्रान्ति हो नही सकती। कारण वह स्व का ज्ञान है। पर जो ज्ञान अन्य की सहायता से उत्पन्न होता है वह भ्रान्तियुक्त हो सकता है। इस भ्रान्त ज्ञान को ही जैनदर्शन 'मिथ्याज्ञान' कहता है और इसके विपरीत ज्ञान को सम्यक् ज्ञान। मति के मिथ्याज्ञान को कुमति, श्रुत के मिथ्याज्ञान को कुश्रुत कहा जाता है।

अवधिज्ञान आत्मिक होने पर भी उस समय मिथ्या हो सकता है जब कि वह अवधि की पूर्ण सीमा तक का पूर्ण ज्ञान न होकर आशिक रूप मे उत्पन्न होता है। इस अपूर्ण अवधिज्ञान को विभग ज्ञान कहते हैं। भगवान महावीर के समय के कुछ ऐसे व्यक्तियो का उल्लेख हम शास्त्रो मे पाते हैं जिन्हे यह विभगज्ञान हुआ था और भगवान के समीप जाने पर उनके द्वारा उस भ्रान्त ज्ञान का निरसन किया गया था।

दर्शन के बाद सर्वप्रथम जिस ज्ञान का उद्भव होता है वह है मतिज्ञान। यह ज्ञान मन और इन्द्रियो के सहारे से ही उत्पन्न होता है। मतिज्ञान के भी तीन प्रकार हैं—उपलब्धि, भावना उपयोग। किन्तु इनकी व्याख्या निष्प्रयोजन है। इनका स्वरूप तो नाम से ही प्रकट है। यथा—उपलब्धि अर्थात् ज्ञान का अनुभव भावना—उस ज्ञान का चिन्तन उपयोग—वैसी ही परिस्थिति मे पुन उसका प्रयोग। इसी प्रक्रिया को और अधिक स्पष्टीकरण करने के लिए कुछ जैन दार्शनिको ने मतिज्ञान को पाँच भागो मे विभक्त किया है। जैसे—मति, स्मृति, सज्ञा, चिन्ता, अभिनिबोध।

दर्शन से 'कुछ है' यह बोध होने के पश्चात् ही ज्ञान की जो क्रिया प्रारम्भ होती है उसका नाम है उपलब्धि या मति। पाश्चात्य दर्शन मे इसे सेन्स इन्ट्यूइसन (sense intuition) या परसेप्सन (perception) कहते हैं। जो मतिज्ञान केवल इन्द्रियो की सहायता से होता है उसे इन्द्रियनिमित्त मतिज्ञान कहते हैं और जो ज्ञान अनिन्द्रिय अर्थात् मन की अपेक्षा रखता है उसे अनिन्द्रिय मतिज्ञान कहते हैं। पर ये दोनो ज्ञान एक ही विषय के दो रूप हैं। आपने आँख से गाय देखी पर जब तक मन उसको ग्रहण नही करता तब तक उसका बोध नही होता। राह चलते हम हजारो वस्तुएँ देखते हैं पर मन का

सयोग नही होने के कारण वे हमारे ज्ञान का विषय नही बनती। ज्ञान का विषय वही बनता है जिसके साथ हमारे मन का सयोग होता है। 'लक' ने इसे (idea of sensation) और (idea of reflection) कहा था। आज के पाश्चात्य दार्शनिकगण इसे बहिरानुशीलन (extrospection) और अन्तरानुशीलन (introspection) कहते है।

इन्द्रियो के भेद से मतिज्ञान के भी पाँच भेद है। यथा—आँखजनित मतिज्ञान, कानजनित मतिज्ञान, नाकजनित मतिज्ञान, जिह्वाजनित मतिज्ञान और त्वचाजनित मतिज्ञान।

मतिज्ञान या उपलब्धि परसेप्शन (perception) हमे जिस प्रकार होती है अर्थात् उनमें जो-जो चित्तवृत्तियाँ काम करती है उसका विवरण आज के वैज्ञानिकगण जिस प्रकार दे रहे है उसे जैन दार्शनिको ने हजारो वर्ष पूर्व ही दे दिया था। जैन दर्शन ने उन चित्तवृत्तियो को चार नाम दिये है—(१) अवग्रह, (२) ईहा, (३) अवाय, (४) धारणा। दर्शन और अवग्रह मे कुछ अधिक अन्तर नही है। कारण अवग्रह से भी 'कुछ है' इतनी ही प्रतीति होती है, उसके विषय मे सुनिश्चित या सविशेष रूप में कोई ज्ञान नही होता। जैसा कि हमने गाय के उदाहरण से स्पष्ट किया था। पाश्चात्य वैज्ञानिक इसे सेन्सेशन (sensation) या प्रिमियम कगनितम (premium cognitum) कहते है। विषय को स्पष्ट करने के लिये इसकी तुलना हम किसी नायक-नायिका के प्रथम दर्शन से कर सकते है। प्रथम होता है मात्र दर्शन। फिर यह जानने की इच्छा होती है, 'वह कौन है ?' इस इच्छा का नाम ही है ईहा। पाश्चात्य दर्शन मे इसे परसेप्चुअल एटेन्शन (perceptual attention) कहते है। वह कौन है यह जानने की व्यग्रता के फलस्वरूप वे जानकारी हासिल करते है कि वह अमुक है। बस इसी प्रक्रिया का नाम है 'अवाय'। पाश्चात्य दार्शनिको की परिभाषा मे यह परसेप्चुअल डिटरमिनेशन (perceptual determination) है। अर्थात् वह अमुक का पुत्र है, अमुक की कन्या है आदि आदि। अवाय मे मतिज्ञान पूर्णता प्राप्त कर लेता है। पर यह अवाय भी किस काम का यदि वह ज्ञान चित्त मे स्थिरता प्राप्त न करे। इतना सब कुछ होने के पश्चात् भी यदि नायक-नायिका एक दूसरे को भूल जाएँ तो वह समस्त व्यर्थ है। अत जिस चित्तवृत्ति के आधार पर यह स्थिरता प्राप्त होती है उसे 'धारणा' कहते है। पाश्चात्य दार्शनिकगण इसे परसेप्चुअल रिटेन्शन (perceptual retension) कहते है।

अवग्रह से धारणा तक मतिज्ञान का प्रथम क्षेत्र है। धारणा मे जो वस्तु बैठ जाती है वह स्मृति का विषय बन जाती है। पूर्वानुभूत विषय के स्मरण का नाम है स्मृति। पाश्चात्य विज्ञान इसे रिकलेक्शन (recollection) या रिकग्निशन (recognition) कहता है। रिकग्निशन या रिकलेक्शन का तात्पर्य है देखी हुई वस्तु को मन मे लाना और उसकी सहायता से जो वस्तुएँ देखी जाती है उन्हे पहचानना। हमने गाय देखी। वह देखना चित्त मे स्थिर हो गया। स्थिर होते ही उसकी स्मृति बन गयी। अत जब हम गाय को देखते है तो उसी स्मृति के आधार पर हम कहते है यह गाय है। 'हब्स' 'हिउम' आदि पाश्चात्य दार्शनिको का यह मत था कि जिसे हम स्मृति कहते है वह क्षीयमान मतिज्ञान ही है। परन्तु यह गलत है। कारण, इसमे कुछ ऐसी विशेषता भी है कि जिसके कारण उसे कभी नही भूलते एव देखने मात्र से ही उसकी स्मृति हो आती है। जैसे कि गाय को देखते ही आप दस वर्ष की उमर मे भी यही कहेगे 'यह गाय है' और पचास वर्ष की उमर मे भी यही कहेगे—'यह गाय है'। स्मृति यदि क्षीयमान मति ही होती तो आप उसे भूल जाते। अत 'हब्स' एव 'हिउम' के मत का आज के 'रीड' आदि पाश्चात्य दार्शनिको ने

परित्याग कर दिया है। उनका कहना है कि स्मति मति पर आधारित होने पर भी इसकी कुछ अपनी विशेपता है जिससे स्मरण सदा बना रहता है।

स्मति सदव नही रहती इसके उदाहरणस्वरूप कहा जा सकता है कि किसी पूव देखे व्यक्ति को कुछ समय पश्चात् पुन देखते है तो कभी कभी याद नही कर पाते। ठीक है यह। किन्तु, इसका कारण यह नही कि स्मृति आपको धोखा दे गयी। इसका वास्तविक कारण यह था कि उस व्यक्ति के प्रति आपकी धारणा मे कमी थी। आपने उसे सरसरी निगाह से देखा था। मन म कोई स्थायी रूप नही दिया गया था। धारणा पक्की नही होने के कारण आप उसे भूल गये थे।

मनोविज्ञान म ही नही, योग दशन म भी धारणा (जिसका दूसरा नाम है भावना) का बहुत बडा महत्व है। मनोवज्ञानिक चिकित्सा का जो मम है वह इसी धारणा पर प्रतिष्ठित है। उदाहरणत जो हरदम महसूस करता है कि मैं बीमार हूँ वह सदैव बीमार रहता है। कारण, यह उसकी धारणा बन जाती है और वह सचमुच ही बीमार हो जाता है। मनोवज्ञानिक चिकित्सा इस निराशा से आपको मुक्त करने का प्रयत्न करती है ताकि आप स्वस्थ और सबल बन सकें।

फिर भी स्मृति अपने आप मे पूण नही है। आपने गाय देखी थी आपके मस्तिष्क मे उसकी स्मृति बन गई। किन्तु बाद म जब भी आप गाय को देखते हैं तो इसमें मात्र स्मृति ही काम नही करती। आपने पूव मे जो गाय देखी थी उसका सादृश्य आप इसमे खोजते हैं। इस सादृश्य अनुसन्धान का नाम है प्रत्यभिज्ञा या सज्ञा। पाश्चात्य देशो म इसे एसिमिलशन (assimilation) कम्पारिजन (comparison) या कन्सेप्सन (conception) कहते हैं। प्रत्यभिज्ञा चार प्रकार की होती है। गाय के उदाहरण से इसे स्पष्ट कर रहे हैं। (१) गाय जसी है अत गाय है। यह प्रत्यभिज्ञा सादृश्य से हुई। पाश्चात्य वज्ञानिक इसे एसोसिएशन बाई सिमिलरिटि (association by similarity) कहते है। (२) गाय भस जैसी नही है। भस के भी गाय की ही भाति सीग है, पूँछ है वह भी घास खाती है दूध देती है फिर भी वह गाय नही है। अत गाय का जो यह ज्ञान हुआ वह भस के बसादृश्य से हुआ। इसीलिये पाश्चात्य विज्ञान इसे एसोसिएशन बाई कन्ट्रास्ट (association by contrast) कहता है। (३) निरन्तर देखते देखते गाय के विषय मे आपको जो विशेष ज्ञान हो जाता है उस विशेष ज्ञान को पाश्चात्य दशन में कन्सेप्शन (conception) कहा जाता है। इस प्रकार विश्व के अन्य सभी द्रव्यो से गाय का जो विशेषत्व है उसे जानने की प्रक्रिया को जन परिभाषा मे तियक्-सामान्य और पाश्चात्य परिभाषा मे स्पेसिज आइडिया (species idea) कहते हैं। (४) इसी प्रकार भिन्न भिन्न द्रव्यो मे जिस एक्य की उपलब्धि होती है उस पर आप जो दृष्टि डालते हैं उसे जैन दशन म ऊध्वता सामान्य और पाश्चात्य दशन म सब्सट्राटम (substratum) या एसी (esse) कहा गया है। इस दृष्टि मे गाय को गायत्व के विशेष धर्म स न देखकर जीव धम से देखते हैं। इसको और स्पष्ट करने के लिये अलकारो का उदाहरण लीजिये। हार, माला, अगूठी आदि मे जब उनके विशेषत्व को न देखकर केवल सुवण को देखते ह तो वह ऊध्वतासामान्य की दृष्टि मे ही देखते हैं। वस्तुत द्रव्य का इन चार प्रकारो से जो ज्ञान होता है वह प्रत्यभिज्ञा ही है।

चिन्ता—चिन्ता को ऊह या तर्क कहा गया है। तक का सहज अथ है विचार। प्रत्यभिज्ञा या सज्ञा मे हम गाय की एक सज्ञा बना लेते हैं जिसे हम गोत्व कहते हैं। फिर गोत्व और गाय म एक अविनाभाव सम्बन्ध भी स्वीकार कर लेते हैं, अर्थात् जहा गोत्व है वहाँ गाय है। आज हम जिसे गाय कहते

है वह इस तर्क या विचार पर ही कहते है। कारण हमने गाय की जो सज्ञा प्रस्तुत की थी वह सत्र इममें है। पाश्चात्य विज्ञान इसे इन्डक्शन (induction) कहते है। और वे भी जैन दार्शनिको की भाँति ही इन्डक्शन को आवजरवेशन (observation) या भूयोदर्शन का परिणाम मानते है। साथ ही जैनाचार्यों की भाँति यह भी मानते है कि गाय और गोत्व का जो सम्बन्ध है वह इनवेरियेवल (invariable) व अन-कन्डिशनल (unconditional) है। जैन दर्शन इसे अविनाभाव या अन्यथानुपपत्ति कहता है।

अभिनिवोध—तर्कलब्ध विषय की सहायता से अन्य विषय के ज्ञान को अभिनिवोध कहते है। इसका दूसरा नाम है अनुमान। अनुमान को पाश्चात्य विज्ञान में डिडक्शन (deduction) कहते है। न्यायशास्त्र मे इसका एक प्रचलित उदाहरण है 'पर्वतो वह्निमान धूमात्'। पर्वत से धूम या धुआँ निकलते देखकर हम अनुमान करते हैं कि पर्वत पर आग लगी है। यह अनुमान तर्क पर प्रतिष्ठित है। आग एव धुएँ मे जो अविनाभाव सम्वन्ध है वह तर्क से ही प्राप्त हुआ था। जहाँ-जहाँ हमने आग देखी, वहाँ-वहाँ धुँआ देखा। अत यह सोच लेते है कि पहाड मे जब धुँआ निकल रहा है तो अवश्य ही वहाँ आग है।

वास्तव में अनुमान तर्कशास्त्र का प्राण है। यह प्रत्यक्षमूलक होने पर भी ज्ञान के आहरण मे अपना विशिष्ट स्थान रखता है। कारण, अनुमान के आधार पर ही हम ससार के अधिकतम व्यवहार चला रहे है और अनुमान के आधार पर ही तर्कशास्त्र का विशाल भवन खडा है।

अनुमान कार्य-कारण के सम्वन्ध से ही उद्भूत होता हे। अग्नि से धूम की उत्पत्ति होती हे। अग्नि के अभाव में धूम उत्पन्न नही होता। इस प्रकार कार्य-कारणभाव व्याप्ति का अविनाभाव सम्वन्ध कहलाता है। इसका निश्चय तर्क से होता है जैसा कि हम ऊपर कह आए है। अविनाभाव निश्चित हो जाने पर कारण को देखते ही कार्य का वोध हो जाता है। यह वोध ही अनुमान है। जिस प्रकार धूम को दखकर ही अदृष्ट अग्नि का अनुमान हम कर लेते है इसी प्रकार जव हम किसी शब्द को सुनते ही अनुमान कर लेते है कि यह आवाज पशु की है या मनुष्य की। फिर मनुष्य की भी है तो अमुक मनुष्य की, पशु की है तो अमुक पशु की। स्वर से स्वर वाले को पहचान लेना अनुमान का ही फल है।

अनुमान के भी दो भेद है—स्वार्थानुमान, परार्थानुमान। आप जव अपनी अनुभूति से यह ज्ञान प्राप्त करते है तो वह स्वार्थानुमान होता है। पर वाक्य के प्रयोग द्वारा जव वह अन्य को समझाया जाता है तो उसे परार्थानुमान कहा जाता है। परार्थानुमान का शाब्दिक रूप कैसा होगा इस विषय में न्याय दर्शन ने इन पाँच अवयवो को माना है

१ पर्वत मे अग्नि है (प्रतिज्ञा)
२ क्योकि वहाँ धूम है (हेतु)
३ जहाँ-जहाँ धूम है, वहाँ-वहाँ अग्नि है (व्याप्ति)
४ पर्वत में धूम है (उपनय)
५ अत पर्वत मे अग्नि है (निगमन)

प्रसगवश प्रमाण के विषय मे यहाँ दो शब्द उपस्थित किए जाते है। प्रमाण चार प्रकार के होते है। यथा—(१) प्रत्यक्ष, (२) अनुमान, (३) आगम प्रमाण, (४) उपमान प्रमाण। प्रत्यक्ष प्रमाणो की आलोचना मति आदि ज्ञान की आलोचना मे हो जाती है, अनुमान का उपरोक्त आलोचना मे। आगम प्रमाण का वर्णन श्रुतज्ञान की व्याख्या मे करेगे। उपमान प्रमाण वहाँ है जहाँ प्रसिद्ध पदार्थ के सादृश्य

मे अप्रसिद्ध पदार्थ का बोध होता है। गवय एक पशु है जो कि गाय जैसा होता है। यह ज्ञान जिन लोगों ने सुन रखी है वे गाय के सदृश पशु को देखते ही समझ जायेंगे कि यह गवय है। इस प्रकार दर्शन और स्मरण के निमित्त से होने वाला सादृश्यता का ज्ञान ही उपमान है।

श्रुतज्ञान—सामान्यतः श्रुत का अर्थ है सुना हुआ। वक्ता द्वारा प्रयुक्त शब्द को सुनकर वाच्य-वाचक सम्बन्ध से श्रोता को जो शब्दबोध होता है वह श्रुतज्ञान कहलाता है। इस परिभाषा से यह स्पष्ट है कि श्रुतज्ञान के पूर्व मतिज्ञान होना अनिवार्य है। ज्ञान के द्वारा श्रोता को शब्दों का जो ज्ञान होता है, वह श्रुतज्ञान है। अतः मति और श्रुत ज्ञान में कार्य कारण का सम्बन्ध है। मतिज्ञान कारण है और श्रुतज्ञान कार्य। मतिज्ञान के अभाव में श्रुतज्ञान पैदा नहीं होता। यद्यपि ये दोनों ज्ञान एक साथ रहने वाले हैं परोक्ष हैं, फिर भी उनमें भिन्नता है। मतिज्ञान मूक है श्रुतज्ञान मुखर है। मतिज्ञान वर्तमान विषय का ग्राहक है तो श्रुतज्ञान त्रिकाल विषय का ग्राहक है। श्रुतज्ञान से ही हमें प्राचीन इतिहास आदि का अपनी भवितव्यता का ज्ञान होता है। अभिप्राय यह है कि इन्द्रिय मनोजन्य दीर्घ कालीन ज्ञान धारा का प्राथमिक अपरिपक्व अंश मतिज्ञान है। और उत्तरकालीन परिपक्व अंश श्रुतज्ञान है। जब यह श्रुतज्ञान किसी को पूर्ण मात्रा में प्राप्त हो जाता है तो उसे श्रुतकेवली कहते हैं।

श्रुतज्ञान के दो भेद हैं—(१) द्रव्यश्रुत (२) भावश्रुत। भावश्रुत ज्ञानात्मक है द्रव्यश्रुत शब्दात्मक है। द्रव्यश्रुत ही आगम है।

अनेक भारतीय धर्मों की भाँति जैन धर्म भी आगम के प्रामाण्य को स्वीकार करता है। कारण जैन धर्म के अनुसार अनेकान्त दृष्टि के प्रवर्तक अखण्ड सत्य के द्रष्टा केवलज्ञानी तीर्थंकरों ने समस्त जीवों पर करुणा कर प्रवचन कुसुमों की वृष्टि की। और तीर्थंकरों के महान मेधावी गणधरों ने उन्हें अपनी बुद्धिपट पर झेलकर प्रवचनमाला गूँथी। अतः जैनपरम्परा में इन प्रवचन मालाओं को आगम प्रमाण रूप में माना जाता है। तब थक जाता है सब कुछ जगमगाता लगता है चित्त चंचल हो उठता है तब आप्त प्रणीत आगम ही मुमुक्षुजनों का एकमात्र आधार बनता है। यह आगम ही द्रव्यश्रुत कहलाता है और इसके सहारे उत्पन्न होने वाला ज्ञान भावश्रुत है।

मतिज्ञान की भाँति जैनाचार्यों ने श्रुतज्ञान को भी लब्धि भावना उपयोग और नय इन चार भागों में विभाजित किया है। परन्तु वास्तव में वह विषय समूह का व्याख्यान भेद मात्र है। इस व्याख्यान प्रणाली के साथ पाश्चात्य तर्क विद्या के एक्सप्लेनेशन (explanation) का सादृश्य है। किसी वस्तु का उसके साथ सम्बन्धयुक्त वस्तु की सहायता से निर्देश करने का नाम है 'लब्धि'। उदाहरणतः जब हम गाय शब्द को सुनते हैं तो प्रथम गाय का सामान्य सा अनुभव होता है और वह भी पूर्व देखी हुई गाय के सादृश्य से। इसे ही हम लब्धि कहते हैं। तत्पश्चात उसकी प्रकृति स्वरूप कार्य आदि की जो धारणा बनी हुई थी वह समक्ष आती है। इसी का नाम है 'भावना'। भावना प्रयोग कर जब गाय का अर्थ अवधारित करते हैं उसे 'उपयोग' कहा जाता है। पर 'नय' कुछ विशेष है। इसमें हम गाय शब्द के अर्थ को और भी परिष्कृत करते हैं। जैसे गो शब्द को लीजिए। 'गो' शब्द के अर्थ हैं गाय धरती वाक् आदि आदि। अर्थात जो चलती है वह गो है। किन्तु गो का तात्पर्य हम गाय करते हैं तो उसका चलनारूप सामान्य धर्म का त्याग करके उसके विशेष धर्म दूध देने पर दृष्टि निबद्ध करते हैं। यह नहीं गाय है नय का।

मति और श्रुत ज्ञान के साथ-साथ परोक्ष ज्ञान की आलोचना समाप्त होती है। ये दोनो ज्ञान संसारी जीवो को रहते है। किन्तु अब जो प्रत्यक्ष ज्ञान विवृत करने जा रहे हैं, वे ऐसे नही हैं। जहाँ तक मनुष्य और तिर्यंचो का सम्बन्ध है उन्हे अवधिज्ञान साधना द्वारा ही प्राप्त होता है। जिनमे जन्म से यह ज्ञान देखा जाता है वह उनकी पूर्वजन्मार्जित साधना का परिणाम ही मानना पडेगा।

अवधिज्ञान—अवधि का अर्थ है सीमा या मर्यादा। जब आत्मा मन और इन्द्रियो की सहायता के बिना ही साक्षात् आत्मिक शक्ति के द्वारा रूपी पदार्थो को मर्यादित रूप में जानने लगती है तो उसे अवधिज्ञान कहते हैं।

मन पर्याय ज्ञान—मन पर्याय ज्ञान तो विशिष्ट साधक को ही प्राप्त होता है। जिसने सयम की उत्कृष्टता प्राप्त की है, जिसका अन्त करण अत्यन्त निर्मल हो चुका है, वही इस ज्ञान का अधिकारी होता है। इस ज्ञान के द्वारा प्राणी की चित्तवृत्तियो को, मनोभावो को, एक निर्दिष्ट सीमा मे जाना जा सकता है।

अवधि एव मन पर्याय दोनो ज्ञान ही यद्यपि अपूर्ण है तथापि यह असाधारण हैं। आधुनिक विज्ञान जिसे क्लेअरवायेन्स (clairvoy ance) कहते है उसके साथ अवधि एव टेलीपैथी या माइण्ड-रीडिंग (telepathy or mind-reading) के साथ मन पर्याय ज्ञान की कथचित् तुलना की जा सकती है।

केवलज्ञान—जिस ज्ञान से त्रिकालवर्ती और त्रिलोकवर्त्ती समस्त वस्तुएँ एक साथ जानी जा सकती है उस सर्वोत्तम ज्ञान को केवलज्ञान कहा जाता है। थियोजाफिस्टगण इस ज्ञान को ओम्नीसाएन्स (omniscience) कहते हैं। इस ज्ञान की प्राप्ति होने पर आत्मा सर्वज्ञ, सर्वदर्शी और परम चिन्मय बन जाती है। यह मनुष्य की साधना का चरम फल है। इस फल की प्राप्ति होने पर आत्मा जीवन्मुक्त हो जाती है और पूर्ण सिद्धि के सन्निकट पहुँच जाती है।

□□

ज्योतिर्मयीव दीपस्य क्रिया सर्वाऽपि चिन्मयी।
यस्यानन्यस्वभावस्य तस्य मौनमनुत्तरम् ॥

जिस तरह दीपक की समस्त क्रियाएँ (ज्योति का ऊँचा-नीचा होना) प्रकाशमय होती है, ठीक उसी तरह आत्मा की सभी क्रियाएँ ज्ञानमय होती है उस अनन्य स्वभाव वाले (एक आत्म स्वभाव मे लीन) मुनि का मौन अनुत्तर (सर्वश्रेष्ठ) होता है।

—उपाध्याय यशोविजय जी कृत —ज्ञानसार ८/१०४
—विवेचन · पन्यासप्रवर श्री भद्रगुप्तविजय जी

❋ ❋

धर्म-साधना के तीन आधार

—उपाचार्य श्री देवेन्द्र मुनि
(व० स्था० श्रमणसंघ के उपाचार्य,
शताधिक ग्रन्थों के लेखक,
बहुश्रुत विद्वान विचारक)

- दया/करुणा/अनुकम्पा
- सम्यग्दर्शन/ज्ञान/चारित्र
- विनय

धर्म क्या है ? और दर्शन क्या है ? यह जान लेने के बाद, हर साधक को यह जानना उपयोगी होता है कि आखिर इन दोनों की जड़ क्या है ? अर्थात्, धर्म और दर्शन की शुरुआत कहाँ से होती है ? इस जिज्ञासा को लेकर जब जैन वाङ्मय में भ्रमण किया जाता है, तो यह पता चलता है कि यहाँ पर धर्म के मूल की तलाश में तीन आचार्यों ने अपने दृष्टिकोण प्रकट किये हैं। ये हैं —

१ 'दया' धर्म की जड़ है। प्राणियों पर अनुकम्पा करना दया है। यह दिगम्बर आचार्य जिनसेन का दृष्टिकोण[1] है।

२ तीर्थंकरों ने अपने शिष्यों को उपदेश दिया है कि धर्म की शुरुआत दर्शन से होती है। यह सिद्धान्त अध्यात्मवादी आचार्य कुन्दकुन्द[2] ने स्पष्ट किया है।

३ दशवैकालिक[3] में, श्वेताम्बर आचार्य शय्यम्भव ने बतलाया है कि धर्म का मूल 'विनय' है। क्योंकि 'विनय' से मोक्ष प्राप्त होता है।

---

१ दयामूलो भवेद्धर्मो दया प्राण्यनुकम्पनम्। —महापुराण, २१।८।६२

२ दंसणमूलो धम्मो उवइट्ठो जिणवरेहिं सिस्साणं। —दर्शनपाहुड २

३ एवं धम्मस्स विणओ मूलं परमो से मोक्खो। —दशवैकालिक, ९।२।२

दया का हार्द

आचार्य जिनसेन के दृष्टिकोण के समर्थन में आचार्य पद्मनन्दी ने[1] बड़ी साफ-साफ बात कही है और दया को धर्म का मूल बतलाते हुए उसकी प्रशसा भी की है। वे कहते हैं—'प्राणिदया' धर्मरूपी वृक्ष की जड़ है, सारे व्रतो मे मुख्य व्रत है, सम्पत्ति का और गुणो का भी भण्डार है। इसलिए हर प्राणी को अपने हृदय मे दया को धारण करना चाहिए। जो ऐसा करते है, वस्तुत वे विवेकवान है।

यह सच है कि जिनेन्द्र भगवान का उपदेश करुणारूपी अमृत से लबालब भरा है।[2] और उसका प्रथम स्रोत दया-करुणा प्रेरित ही है। जो इस धर्म के वास्तविक अनुयायी है, उनके चित्त मे करुणा तो अवश्य ही होनी चाहिए। क्योकि प्रत्येक जिन का धर्मोपदेश देने के पीछे यह आशय रहता आया है—जिस मार्ग/साधन से मैंने स्वयं की आत्मा को सासारिक बन्धनो से निकालकर यहाँ तक पहुँचाया है, उसी तरह, ससार के तमाम दु खी जीव भी मेरे द्वारा अपनाये गये रास्ते पर चले और स्वय को मुक्त बनावे। क्योकि जिनेन्द्र भगवान की आत्मा, 'जिन' बनने के साथ ही करुणा के, दया के सागर को अपने आप मे पूरा का पूरा समेट लेती है। यानी, उनमे दया का परिपूर्ण स्वरूप अवतरित हो जाता है। फिर भला वे दु खी-दीन जनो को देखकर, द्रवित क्यो नही होगे ? इसलिए, उनके द्वारा जो भी उपदेश शिष्यो को दिया जाएगा, उसके एक-एक शब्द मे करुणा का अमृत-सिन्धु भरा मिलेगा। जरूरत है, उस करुणामृत की तलाश की, पहचान की।

यह दया या करुणा किसी भी प्राणी मे बाहर से नही आती। यह तो उसके भीतर रहने वाला एक ऐसा तत्त्व है, जो उनसे कभी भी अलग रह ही नही सकता। क्योकि यह करुणा या दया, न तो इस धरती पर पैदा होती है, और न ही किसी भौतिक पदार्थ मे से उसे ढूँढ कर निकाला जा सकता है। यह तो 'चेतना' का अपना एक मौलिक गुण/धर्म है।

अनुकम्पा

करुणा/दया का समानार्थक एक और शब्द, जैनधर्म व दर्शन मे प्रयोग किया गया मिलता है। वह है—'अनुकम्पा'। इस शब्द का अर्थबोध भी आचार्यो ने अलग-अलग ढग से दिया है।

बृहत्कल्पसूत्रवृत्ति मे आचार्य मलयगिरि ने लिखा है "अनु—पश्चात् दु खितसत्वकम्पनादनन्तर यत्कम्पन सा अनुकम्पा" (१३७०)। आचार्य हेमचन्द्र ने योगशास्त्र स्वोपज्ञवृत्ति मे लिखा है—दु खियो को निहार कर बिना पक्षपात के दु ख को दूर करने की इच्छा अनुकम्पा है (२/१५)। ये ही भाव त्रिषष्टि-शलाकापुरुषचरित्र में भी अभिव्यक्त हुए है। (१/३/६१५-६१६)

तीन भेद अनुकम्पा के

भगवती आराधना मे अनुकम्पा को तीन भागो मे विभाजित कर दिया गया है। ये विभाग है—धर्मानुकम्पा, मिश्रानुकम्पा और सर्वानुकम्पा।

सयमी मुनियो पर दया करना 'धर्मानुकम्पा' है। यह धर्मानुकम्पा जब किसी व्यक्ति के अन्त करण मे उत्पन्न होती है, तब वह विवेकवान सद्गृहस्थ श्रमणो—निर्ग्रन्थो को योग्य अन्न, जल, निवास,

---

१ मूल धर्मतरोराद्या व्रताना धाम सम्पदाम्।
गुणाना निधिरित्यगि दया कार्या विवेकिभिः ॥
—पद्मनदि पचविंशतिका, ३८

२. प्रश्नव्याकरण सवरद्वार।

औषधि आदि पदाथ देकर उनकी सेवा करता है। साथ ही, अपनी पूरी सामर्थ्य के अनुसार मुनियो के उपसग आदि का दूर करने म प्रवृत्त होता है। कभी कोई मुनि उसे भटका हुआ मिलता है ता वह उन्ह सही रास्ता बतला कर अपने भाव को साकार करता है। सभाओ आयोजना आदि सामूहिक गोष्ठिया म वह उन मुनिजना के गुणो की प्रशसा करता है और चाहता है कि साधुओ/मुनियो का सत्सग उसे हमेशा मिलता रहे।

आशय यह है कि साधु/मुनि के गुणा की प्रशसा करना अनुमोदन करना, और अनुसरण करना आदि समस्त भाव, 'धर्मानुकम्पा' के अन्तगत है।

गृहस्थ व्यक्तिया पर जो दया की जाती है, उसे मिश्रानुकम्पा' कहत हैं। क्योकि गृहस्था म अधिकाशत ऐसे होते है, जो जीवा पर दया ता करते हैं किन्तु दया के समग्र स्वरूप का व नही जानते। इनके अलावा, उन लोगो पर भी, जो जिन सूत्र से बाहर है, पाखण्डी गुरु की अचना/उपासना करते हैं, इन सब पर कृपाभाव रखना 'मिश्रानुकम्पा मानी गई है। जा व्यक्ति गृहस्थधम का पालन कर रहे ह किन्तु अन्य धर्मो का पालन करने वाला के प्रति दया/अनुकम्पा की भावनाएँ रखते हैं ऐसे गृहस्था पर अनुकम्पा का भाव भी मिश्रानुकम्पा' है।

'मृदुता' चेतना का मौलिक गुण है। वह जिस तरह एक सम्यग्दृष्टि म स्वभावत मौजूद रहती है, उसी तरह मिथ्यादृष्टि मे भी उसको सहजता से देखा जा सकता है। यह दाना ही प्रकार क व्यक्ति समस्त प्राणियो पर दया/अनुकम्पा भी करते रहत ह। इन दोना की यह 'अनुकम्पा', चूकि हर प्राणी के प्रति समान व्यवहार के साथ हाती है। इसलिए, इन दोना की अनुकम्पा को सर्वानुकम्पा' के अन्तगत माना जाता है।

निष्कष रूप म यह कह सकते ह कि जब 'अनुकम्पा' का विषयभूत जीव/प्राणी धम-क्षेत्र मे सम्बधित हागा, तब उस धार्मिक व्यक्ति/जीव के प्रति होने वाला करुणाभाव 'धर्मानुकम्पा' कहा जाएगा। इसी तरह, अनुकम्पा का विषय जब कोई एसा प्राणी हो जा सयतासयत' के दर्जे मे आता हो, तो उसके प्रति होने वाला दया/करुणा भाव 'मिश्रानुकम्पा होगा। और जिस अनुकम्पा का विषय हर प्राणी/जीव बन सकता हो, यानी समस्त जीवा को अपना विषय बनाने वाली करुणा/अनुकम्पा का 'सर्वानुकम्पा' कहा जाएगा।[1]

'अनुकम्पा' के इस स्वरूप विश्लेषण के साथ जब 'दया' या 'करुणा' के स्वरूप का मिलाकर विचार किया जाता है तब यह निष्कष सामने आता है कि, जिसे हम 'दया' कहते हैं वह चाह ता 'करुणा' के नाम से पुकारी जाय, अथवा 'अनुकम्पा' के नाम स, इनम कोई मौलिक भेद नही है। क्योकि इन तीना म 'नाम' भर की भिन्नता, भले ही दिखलाई पड रही हो, वस्तुत यह तीना ही शब्द आत्मा के जिस विशेष भाव को व्यक्त करते है वह भाव हर जीवात्मा म, उसके अन्य मौलिक गुणा के साथ सहज ही मौजूद रहता है। और जब भी उसे अनुकूल वातावरण मिलता है, प्रकट हो उठता है।,

१ विशष जानकारी क लिए देखें—भगवती आराधना की विजयोदया टीका—१८३४।

सम्यग्दर्शन

आचार्य कुन्दकुन्द ने 'सम्यग्दर्शन' को धर्म का मूल माना है। क्योकि इसके विना 'ज्ञान' ज्ञान नही रहता, ज्ञान के विना चारित्र नही पनप पाता, चारित्रहीन को मोक्ष नही मिलता, और मोक्ष के अभाव मे निर्वाण नही प्राप्त होता।[1] मगर, वह 'दर्शन' है क्या ? इस वारे में जैनाचार्यो ने अलग-अलग ढग से अपने मत प्रकट किये है।

उमास्वाति का कहना है—अपने-अपने स्वभाव मे स्थित तत्त्वार्थो का श्रद्धान, 'सम्यग्दर्शन'[2] है। इन्होने जीव, अजीव, आस्रव, वन्ध, सवर, निर्जरा और मोक्ष, यह सात तत्त्व माने हैं। आचार्य हेमचद्र आदि ने भी ये ही सातो तत्त्व वतलाये है। उत्तराध्ययन में, इन सातो के साथ पुण्य और पाप को मिलाकर नौ तत्त्व[3] कहे है। जिन आचार्यो ने सात तत्त्व माने है, वे पुण्य और पाप को वध के अन्तर्गत मानते है।

अन्य कुछ आचार्यो ने पदार्थो के विपरीत अभिनिवेश रहित श्रद्धान[4] को सम्यग्दर्शन वतलाया है, तो कुछ ने पदार्थो के यथावस्थित स्वरूप का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन माना है। सूत्रपाहुड मे उक्त तत्त्वो के प्रति हेय व उपादेय बुद्धि[5] को सम्यग्दर्शन कहा है तो मोक्षपाहुड में तत्त्वरुचि[6] को सम्यग्दर्शन वतलाया गया है।

नियमसार मे सम्यक्त्व की चर्चा के सम्वन्ध मे वतलाया गया है—आप्त, आगम और तत्त्वो की श्रद्धा से सम्यक्त्व[7] होता है। यानी इन तीनो पर श्रद्धा करना सम्यग्दर्शन है। रत्नकरण्डक श्रावकाचार मे इसी कथन को कुछ और स्पष्ट किया गया है—तीन प्रकार की मूढता और आठ प्रकार के मद से रहित होकर, सत्यार्थ देव, शास्त्र और गुरु पर आठो अगो सहित श्रद्धान करना[8] सम्यग्दर्शन है।

---

१ नादंसणिस्स नाण नाणेण विना न हु ति चरणगुणा।
अगुणिस्स नत्थि मोक्खो नत्थि अमोक्खस्स निव्वाण ॥

—उत्तराध्ययन, २८/३०

२ तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शनम्। जीवाजीवास्रव-वध-सवर-निर्जरा-मोक्षास्तत्त्वम्।

—तत्त्वार्थसूत्र, १/२, ४

३ जीवाजीवा य वधो य पुण्ण पावाऽसवो तहा।
सवरो निज्जरा मोक्खो सते ए तहिया नव ॥

—उत्तराध्ययन, २८/१४

४ (क) पञ्चास्तिकाय—तात्पर्याख्यावृत्ति, १०७
(ख) पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, २२
(ग) समयसार, १५५

५. सुत्तत्थ जिणभणिय जीवाजीवादि वहुविह अत्थ।
हेयाहेय च तहा जो जाणइ सो हु सद्दिट्ठी ॥

—सूत्रपाहुड, ५

६ तच्चरुई सम्मत्त।

—मोक्षपाहुड, ३८

७ अत्तागमतच्चाण सद्दहणादो हवेइ सम्मत्त।

—नियमसार, ५

८ श्रद्धान परमार्थानामाप्तागमतपोभृताम्।
त्रिमूढापोढमष्टाङ्ग सम्यग्दर्शनमस्मयम् ॥

—रत्नकरण्डक श्रावकाचार, ४

तीन वग

इन सारे लक्षणा का निचाड यदि निकाला जाये तो मुख्य रूप से इनके तीन वग बनते ह । पहला वग है, तत्त्वार्थों/पदार्था का श्रद्धान दूसरा—देव, शास्त्र व गुरु तथा धम पर श्रद्धान, तथा तीसरा वग—स्व-पर के भेदविज्ञान के साथ शुद्धात्मा की उपलब्धिरूप श्रद्धान ।

इन लक्षणा म जहा पर आप्त आगम व तत्त्वा की श्रद्धा को सम्यकदशन बतलाया गया है वहाँ पर पूव के दो वर्गों का सम्मिलित रूप लिया गया है। क्योकि यह दोना ही वग, सम्यग्दशन के व्यवहार पक्ष का लेकर किये गये हैं। जहाँ तत्त्वरुचि' को सम्यग्दशन कहा गया है वह कथन, उपचारवश किया गया समझना चाहिए। क्योकि रुचि कहते हैं—'इच्छा' को या 'अनुराग' को। जिनका माह नष्ट हो जाता है उनमे तो 'रुचि' का अभाव हा जाता है। अत तत्त्वरुचि' या 'अतीन्द्रिय सुख की रुचि' अथवा 'शुद्धात्मरुचि' का सम्यग्दशन मानेंगे तो एसे सम्यग्दृष्टि म 'मोह' की सत्ता माननी पडेगी। मोह की उपस्थिति म 'सम्यक्त्व' को कसे स्वीकार किया जायेगा ? क्योकि, सम्यक्त्व के अभाव म न तो 'सम्यग्दशन ही हा पाता है, और न ही सम्यग्ज्ञान'। इसलिए जहा भी 'रुचि' को सम्यग्दशन के लक्षण के साथ जोडा गया है वह प्रयाग, उपचारवश माना जाना चाहिए और तत्त्वरुचि' के प्रसग मे उसे 'अशुद्धतर नय' की[1] अपेक्षा मे कहा गया जानना चाहिए ।

पूव म जो तीन वग बनाये हैं उन वर्गो का परस्पर न ता काइ सद्धान्तिक भेद है, न ही अलगाव। बल्कि, यह भिन्नता, भिन्न भिन्न स्तरा को लक्ष्य म रखकर, भिन्न भिन्न दृष्टिया से ही मानी जानी चाहिए। इसी बात को यहा विशेष रूप से स्पष्ट किया जा रहा है।

एक सम्यग्दृष्टि जीव को, उनका जसा श्रद्धान होता है वसा श्रद्धान मिथ्यादृष्टि जीव का कभी नही हाता। क्योकि मिथ्यादृष्टि जीव, अपन पक्ष के मोहवश अहन्त दव आदि का श्रद्धान करता है। अहन्त दव आदि के यथाथ स्वरूप की पहचान, चूँकि एक मिथ्यादृष्टि जीव को नही होती अत उसका अहन्तदेव आदि के प्रति जो पक्षमोहवश श्रद्धान होता है वह यथाथ श्रद्धान नही होता। यथाथ श्रद्धान तो उसे तभी हो पाएगा, जब वह इन अहन्त आदि के यथाथ स्वरूप की पहचान कर सकेगा। जिनके यथाथ श्रद्धान हाता है, उन्ह अहन्तदेव आदि के यथाथ स्वरूप का भी श्रद्धान हाता है। क्योकि, अहन्त देव आदि के यथाथ स्वरूप की जिसे पहचान है, उसे जीव आदि तत्त्वा के यथाथ स्वरूप की पहचान होगी ही। इन दोनो बातो को परस्पर मे अविनाभावी जानना चाहिए। इसी वजह से अहन्तदेव आदि के श्रद्धान को 'सम्यक्त्व' या 'सम्यग्दशन' कहा गया है।

'तत्त्व श्रद्धान' को सम्यग्दशन माने मे भी अहन्तदेव आदि के श्रद्धान की बात गर्भित है। तत्त्व समूह म 'मोक्ष तत्त्व' सर्वोत्कृष्ट है। और मोक्ष की प्राप्ति के पूव 'अहन्त' पद की प्राप्ति अवश्यम्भावी है। ऐसा एक भी उदाहरण नही है, जिससे यह स्पष्ट हो सके, कि बिना अहन्त हुए कोई जीवात्मा मोक्ष लाभ कर सका है। अत मोक्ष म श्रद्धान मे होने पर 'अहन्त' म श्रद्धान अनिवायत होता है।

मोक्ष के कारण हैं—सवर और निजरा तत्त्व। ये दोनो उन मुनिया के सम्भव होते है जो निग्रन्थ हैं वीतरागी हैं। यानी जो मुनि, सवर निजरा के धारक हांगे, वास्तव म वे ही सच्चे गुरु' मान

---

1 अथवा तत्त्वरुचि सम्यक्त्वम् अशुद्धतरनय-समाश्रयणात् । —षट्खडागम—पुस्तक १, पृष्ठ १५१

जा सकते है। इन गुरुजनो पर श्रद्धान होने का अर्थ होता है—सवर निर्जरा तत्त्वो पर श्रद्धान होना। और सवर-निर्जरा तत्त्वो पर श्रद्धान होने का मतलब होता है सच्चे गुरु पर श्रद्धान होना। पूर्व की भांति, ये दोनो भी, परस्पर अविनाभावी या अन्योन्याश्रित माने जा सकते है।

इसी प्रकार, राग आदि से रहित भाव को 'अहिंसा'[1] कहते है। 'अहिंसा' को ही उपादेय धर्म माना गया है। अत रागादि से रहित भावरूप धर्म को 'सच्चा धर्म' कहा जा सकता है। इसी पर श्रद्धान करना, सच्चे धर्म का श्रद्धान होगा।

इस प्रकार, 'तत्त्व श्रद्धान' मे अर्हन्तदेव आदि का श्रद्धान और 'अर्हन्त देव आदि के श्रद्धान' मे तत्त्वश्रद्धान का भाव अन्तर्निहित है।

विनय

विनय से ज्ञान-लाभ, आचार विशुद्धि और सम्यगाराधना की सिद्धि होती है। और, अन्त मे मोक्षसुख[2] भी मिलता है। अत, विनय की भावना अवश्य ही करनी चाहिए। 'विनय' की इस महत्ता को देखते हुए दशवैकालिक मे इसे धर्म का परममूल' कहा गया है। उत्तराध्ययन के प्रथम अध्ययन मे विनय की सविस्तृत व्याख्या है। भगवती, स्थानाङ्ग और औपपातिक में विनय के विविध प्रकार बताये है। पर विस्तारभय से हम उन सबकी चर्चा यहाँ कर नही रहे है। भावपाहुड मे भी, विनय के माहात्म्य को स्वीकार करके, साधु/मुनि को सलाह देते हुए कहा गया है—'हे मुनि! पाँच प्रकार की विनय को मन, वचन व काय से पालन करो। क्योकि, विनय से रहित व्यक्ति, सुविहित मुक्ति को प्राप्त नही करते[3] है।' इस कथन की पुष्टि वसुनन्दि श्रावकाचार[4] मे भी की गई है।

विनय के पाँच प्रकार यह है —दर्शनविनय, ज्ञानविनय, चारित्र-विनय, तपविनय व उपचार-विनय। यह पाँचो, मोक्षगति के नायक माने गये है।[5] भगवती आराधना[6] और वसुनन्दि श्रावकाचार[7]

---

१ रागादीणमणुप्पा अहिंसगत्त त्ति भासिद समये।
तेसिं चेदुप्पत्ती हिंसे त्त जिणेहि णिद्दिट्ठा॥ —सर्वार्थसिद्धि, ७/२२ पर उद्धृत

२ ज्ञानलाभाचारविशुद्धि सम्यगाराधनाद्यर्थ विनयभावनम्। ततश्च निवृत्ति सुखमिति विनयभावनं क्रियते। —राजवार्तिक, ९/२३/७

३ विणयं पचप्पयार पालहि मणवयणकायजोएण।
अविणयणरा सुविहिय तत्तो मुत्ति ण पावति॥ —भावपाहुड, १०२

४ वसुनन्दिश्रावकाचार, ३३५

५ मूलाचार, ३६४

६ विणओ मोक्खद्दार विणआदो सजमो तवो णाणं।
णिगएणाराहिज्जइ आयरिओ सव्वसघो य॥ ....
कित्ती मेत्ती माणस्स भंजण गुरुजणे य वहुमाणो।
तित्थयराणा आणा गुणाणुमोदो य विणयगुणा॥ —भगवती आराधना, १२९-१३१

७ देविंद चक्कहर मडलीयरायाइज सुह लोए।
त सव्व विणयफल णिव्वाणसुह तहा चेव॥ —वसुनन्दि श्रावकाचार, ३३४

में भी, विनय से प्राप्त होने वाले उन तमाम गुणों की विस्तृत विवेचना की गई है, जो इस लोक के व्यवहार में, और परलोक में सुख की प्राप्ति में सहयोगी बनकर उसे परम-प्रतिष्ठा दिलाते हैं।

इन सारे कथनों का सार-संकेत करते हुए पण्डित प्रवर आशाधर ने कहा है—मनुष्य भव का सार आर्यता, कुलीनता आदि है। इनका भी सार जिनलिंग धारण है। इसका भी सार जिनागम की शिक्षा है। और इस शिक्षा का भी सार, यह विनय है। क्योंकि, इस विनय के प्रकट होने पर सज्जन पुरुषों के गुण भली भांति स्फुरायमान होने लगते हैं।[1]

यह है विनय का माहात्म्य। इसे गहराई से देखा जाय तो यह सहज ही बोध होता है कि 'विनय' को जिस तरह लौकिक सम्पदाओं की प्राप्ति में सहयोगी बतलाया है, उसी तरह इसे मोक्षमार्ग में सहयोगी मानने में कोई शंका शेष रह जाती है क्या? विनय तप की व्यावहारिकता को देखकर, कोई यह अनुमान नहीं कर सकता कि इसका मोक्ष प्राप्ति में कोई सीधा सम्बन्ध बनता है।

मोक्ष की प्राप्ति में सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को मूल कारण मानना जैनशास्त्रों का निचोड़ है। इस त्रितय में ज्ञान का अपना महत्त्व है। ज्ञान के बिना सम्यक् श्रद्धान और सम्यक्-चारित्र में परिपूर्णता नहीं आ पाती। यह जितना सच है, उतना ही सच यह है कि सम्यग्ज्ञान, आगमों के सर्वांगीण अध्ययन मनन और चिन्तन के बिना सम्भव नहीं होता।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि शास्त्रों के चिन्तन और मनन की सामग्री उनके अध्ययन की परिपक्वता पर आधारित रहती है। यदि शास्त्रों का अध्ययन, सच्चे गुरु के द्वारा सही पद्धति से न हो पाये, तो उस अधीत शास्त्र विषय पर चिन्तन मनन का आधार नहीं बन पाता। इस दृष्टि से शास्त्रों की जो महत्ता ज्ञान के प्रसंग में आंकी गई है, इससे कम मूल्य सच्चे गुरु का नहीं माना गया है। बल्कि गुरु की परिपक्वता को अधिक महत्त्व दिया गया है।

ऐसे गुरु के प्रति, हर मुमुक्षु का, या ज्ञान की इच्छा रखने वाले का श्रद्धा भक्ति रखना एक अनिवार्य कार्य माना गया है। इसे 'गुरु भक्ति' या 'गुरु विनय' के नाम से ग्रन्थों में बतलाया गया है। गुरु भक्ति की प्रशंसा करते हुए, रयणसार, राजवार्तिक भगवती आराधना पद्मनन्दिपंचविंशतिका, आदि में कहा गया है— गुरु भक्ति से अज्ञान अंधकार का नाश होता है। अज्ञान के विनाश से सम्यग्ज्ञान का उदय होता है और सम्यग्ज्ञान के उदय विकास और परिपूर्णता से चारित्र पुष्ट होता है। तब मोक्षरूपी फल को प्राप्त करना सम्भव होता है।'

इस कथन से साफ-साफ पता चलता है कि 'गुरु-भक्ति या गुरु विनय' को मोक्ष प्राप्ति में परम्परा से, किन्तु एक सीधा कारण माना गया है। इसी तरह दर्शन, चारित्र आदि विनयों का भी मोक्ष से परम्परया, सीधा सम्बन्ध जुड़ा है।

आशय यह है कि, पांचों प्रकार की विनय को मोक्ष से सीधा जुड़ा होने के कारण दशवैकालिक आदि आगमों में उसे 'धर्म का मूल' माना गया है।

---

१ सारं सुमानुषत्वेऽर्हद्रूप सम्पदिहार्हती।
शिक्षास्या विनयः सम्यगस्मिन् काम्या सतां गुणाः ॥ —अनगार धर्मामृत, ७/६२

सामान्य रूप से तो पूज्य पुरुषो का आदर करना,[1] 'विनय' है। मोक्ष के साधनभूत जो सम्यग्ज्ञानादि है, उनमे, तथा उनके साधको—गुरु आदि के प्रति भी, योग्य रीति से सत्कार आदि देना, तथा कपायो की निवृत्ति आदि करना,[2] 'विनयसम्पन्नता' माना गया है। रत्नत्रय को धारण करने वाले व्यक्तियो के प्रति नम्रता धारण करने को,[3] अधिक या उत्कृष्ट गुण वाले व्यक्तियो के प्रति नम्र-वृत्ति धारण करने[4] को और इंद्रियो को नम्र करने[5] को भी 'विनय' माना गया है।

यह लक्षण, विनय के नम्रता अर्थ को लेकर किये गये है। किन्तु, कुछ आचार्यो ने, इस अर्थ से भिन्न अर्थ करते हुए, विनय के कुछ और ही लक्षण माने है। जिनमे मे यह लक्षण मुख्य है —

दर्शन, ज्ञान और चारित्र के द्वारा जो विशुद्ध परिणाम[6] होता है, वही उनकी विनय है। कर्ममल को जो नाश करता[7] है, वह विनय है। ज्ञान, दर्शन एव चारित्र के अतिचार रूप जो अशुभ क्रियाये है, उनको हटाना[8] विनय है। अपने निश्चय रत्नत्रय की शुद्धि[9] निश्चयविनय है। और उसके आधारभूत पुरुषो—आचार्य आदि की भक्ति मे उत्पन्न होने वाले जो परिणाम हैं, वे व्यावहारिक विनय हैं।

इस सबसे अधिक स्पष्ट और सरल भाषा मे विनय का यह लक्षण है —मोक्ष की इच्छा रखने वाले व्यक्ति, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र, तथा सम्यक्तप के दोषो को दूर करने के लिए, जो कुछ प्रयत्न करते है,[10] उसको विनय कहा गया है। और, इस प्रयत्न करने मे, अपनी शक्ति को न छिपाकर, शक्ति अनुसार भक्ति करते रहना, 'विनयाचार' है।

इस समस्त विवेचना का आशय यह है कि 'विनय' शब्द 'वि' उपसर्गपूर्वक नी—नयने धातु से बना है। विनयतीति विनय । यहाँ पर, 'विनयति' इस शब्द के दो अर्थ हो सकते है—दूर करना और

---

१ पूज्येष्वादरो विनय । —सर्वार्थसिद्धि, ६/२०

२, सम्यग्ज्ञानादिषु मोक्षसाधनेषु तत्साधकेषु गुर्वादिषु च स्वयोग्यवृत्त्या सत्कार आदर कषायनिवृत्तिर्वा विनयसम्पन्नता। —राजवार्तिक, ६/२४/२

३ रत्नत्रयवत्सु नीचैर्वृत्तिर्विनयः। —धवला, १३/५-४-२६

४ गुणाधिकेषु नीचैर्वृत्तिर्विनय । —कषायपाहुड, १/१-१/६०

५. चारित्रसार, १४७

६ दसणणाणचरित्ते सुविसुद्धो जो हवेइ परिणामो ।
वारस भेदे वि तवे सो च्चिय विणओ हवे तेसिं ॥ —कार्तिकेयानुप्रेक्षा, ४४७

७. यद्विनश्यत्यपनयति च कर्मासित्तं निराहुरिह विनयम् ।
शिक्षाया फलमखिलक्षेमफलश्चेत्ययकृत्य ॥ —अनगार धर्मामृतम्, ७/६१

८. ज्ञानदर्शनचारित्रतपसामतीचारा अशुभ क्रियाः। तासामपोहन विनय ।
—भगवती आराधना विजयोदया, ६/३२

९. स्वकीय निश्चयरत्नत्रयशुद्धिर्निश्चयविनय । तदाधारपुरुषेषु भक्ति परिणामो व्यवहारविनय. ।
—प्रवचन० -तात्प० वृ-२२५

१०. सुदृग्धीवृत्त तपसां मुमुक्षोर्निर्मलीकृतौ ।
यत्नो विनय आचारो वीर्याच्छुद्धेपु तु ॥ —सागार धर्मामृतम्, ७/३५

विशेप रूप से (किसी वस्तु को) प्राप्त करना। विनय साधनामाग म रुकावट बनकर खडे अप्रशस्त कर्मों को दूर करती है, और जिन वचन के ज्ञान को प्राप्त कराती है। जिसका फल मोक्ष है अर्थात् 'विनय' मे वह सब सामर्थ्य छिपी हुई है, जिसकी कामना करते हुए एक वैदिक ऋषि कहता है—

असतो मा सद्गमय।
तमसो मा ज्योतिर्गमय॥
मृत्योर्मा अमृत गमय॥।

भारतीय संस्कृति का हर शास्त्र इस बात से सहमत है कि विद्या (ज्ञान) विनय की दात्री है। विनय से व्यक्ति म वह पात्रता आती है जिसस वह धम को धारण करने लायक बनता है। और, धम को धारण करने से सुख प्राप्त होता है।

निष्कर्ष रूप म यह कहा जा सकता है कि आचाय जिनसेन ने दया' को कुन्दकुन्द ने 'सम्यग् दशन' को, और दशवैकालिक आदि आगमो म विनय' को धम का मूल कहा स जो विरोध या विसगति देखी जा रही है वह अतात्त्विक है। इन आचार्यों की यह दृष्टिभिन्नता, विवाद का विषय नही है। बल्कि, यह समर्थन के लिए ह कि चाहे तो हम 'दया' को परिपूर्ण बनाकर अपना चरित्र उत्तम बनाएँ चाहे तो 'सम्यग्दृष्टि' के माध्यम स स्वय को उन्नत बनाएँ, अथवा विनय' के माध्यम स हम अपने आचार विचार को इतना विशुद्ध/पवित्र बनाएँ जिसस हम उस धम तत्त्व के मम को समझ सकें। अपने चरित्र म उसे उतार सकें। यह दृष्टिभेद देखकर विवाद म उलझना, धम के मम का छेदन जैसा होगा। क्योकि, दया, सम्यक्त्व और विनय, तीनो म ही समान रूप से वह सामर्थ्य समाया हुआ है, जो इनके आराधक को धम के दरवाजे तक सहज ही पहुँचा सकता है।

○ ○

जत्थ य विसय विराओ कसाय चाओ गुणसु अणुराओ।
किरियासु अप्पमाओ, सो धम्मो सिवसुहो लोयओ।

जिसम विषय स विराग, कषायो का त्याग गुणो म प्रीति और क्रियाओ म अप्रमादीपन है वह धम ही जगत् म मोक्ष सुख देन वाला है।

—प्राकृत सूक्ति कोष १४३
(उपाध्याय चन्द्रप्रभसागर जी)

卐 卐

जैनधर्म विश्वधर्म वन सकता है

—(स्व०) काका कालेलकर

(मूर्धन्य गांधीवादी विचारक, चिन्तक
तथा प्रसिद्ध लेखक)

जैनधर्म का, और भगवान महावीर का, मैं भक्त हूँ (विद्वान नहीं)। जैन-समाज का प्रेमी हूँ। जैनसमाज के पुरुपार्थ के प्रति मेरे मन मे आदर है किन्तु एक सनातनी ब्राह्मण अपने को जैनी कैसे कहला सकता है ? तो भी, जेन-समाज के कई अच्छे-अच्छे सेवक मेरे प्रति प्रेम और आत्मीयता रखते हैं और मेरे विचार सुनने के लिए उत्सुकता वताते है। इसीलिये मैंने चार शब्द वोलने का स्वीकार किया है। जो वाते आपको अच्छी लगे अपनाइये। आप लोगो मे क्षमावृत्ति है। मतभेद सहन करने की आपको आदत है, इसलिये, चार शब्द वोलने की हिम्मत करूँगा।

इस अपने वहुभापी, वहुवशी और वहुधर्मी देश मे जैनियो के अनेकान्तवाद का स्वीकार और आचार सवको करना ही पडता है। इस देश मे धर्म-समाजो के झगडे कभी नही हुए सो नही, लेकिन कुल मिलाकर हमारा राष्ट्र सहजीवन जीने को और मतभेद सहन करने को काफी सीखा है।

आज मुझे यही वात आपके सामने और आपके द्वारा भारत के सामने रखनी है कि, स्याद्वाद की दार्शनिक दृष्टि मान्य करके, अनेकान्तवाद के उदार हृदय की प्रेरणा से प्रेरित होकर ही, भारत के सामने अव अपने को और सारे विश्व को सर्व-समन्वय-वृत्ति सिखाने के दिन आ गये है।

इस देश में अधिकाश लोकसख्या सनातनी वृत्ति वाले हिन्दुओ की है। उन्ही का प्रतिनिधि होने से, मैं अपने समाज की गलतियो को अच्छी तरह से समझ सका हूँ, और उन गलतियो का स्वीकार करने में सकोच नही करूँगा। मुझे डर है कि हमारी चन्द गलतियाँ जैन समाज मे भी पायी जा सकती हैं। उन्हे पहचान कर उनसे मुक्त होने के लिये आपको भी अन्तर्मुख वनना पडेगा और सवके साथ युगानुकूल सुधार करने के लिये तैयार रहना पडेगा।

हमारा समाज, हजारो वरसो से छोटी-छोटी जातियो मे वँटा हुआ है और जातियो का मुख्य लक्षण है रोटी-वेटी व्यवहार की सकुचितता। इस प्रधान दोप के कारण इतना वडा समाज हजारो वर्प गुलाम रहा, और महा मुश्किल से स्वतन्त्र होने के वाद भी यह सकुचितता हम छोड नही सके है। ऐसी सकुचितता न होने के कारण ही इस्लाम और ईसाई धर्म हमारे देश मे फैल गये। हमारे यहाँ का वौद्ध-

धर्म, विश्वधर्म बनने की महत्त्वाकांक्षा धारण करके श्रीलंका, ब्रह्मदेश, तिब्बत, चीन जापान आदि अनेक देशों में फैल गया।

हमारे देश में बौद्ध और जैन दोनों धर्म विश्वधर्म बनने की योग्यता रखते हैं। इनमें भी जैन-धर्म की अपनी अहिंसा और समन्वयवृत्ति के कारण यह धर्म विश्वधर्म बनने की अधिक से अधिक योग्यता रखता है। लेकिन शायद भारत के वातावरण के कारण जैन समाज एक संकुचित जाति बन गया है। शायद रोटी-बेटी व्यवहार के बंधन के कारण यह संकुचितता आयी हो।

मेरे इस निरीक्षण का और टीका का मुख्य स्पष्टीकरण करना जरूरी है। दूसरा का हम पर बुरा असर होगा, उस डर को हद से अधिक महत्त्व देकर, आपने अपने साधुओं के लिये भारत के बाहर न जाने का सख्त नियम बनाया था।

साधु लोगों का मुख्य कार्य धर्म का उत्तम पालन करना और उसका प्रचार करना यही हो सकता है। तब वे भारत से बाहर जाकर प्रचार क्यों न करें? वहीं तो प्रचार की अधिक जरूरत है।

अपने बचपन में जब मैंने सुना कि जैन साधु भारत के बाहर जा नहीं सकते और गये तो वे भ्रष्ट माने जाते हैं तब मेरे मन में सवाल पूछने लगा—क्या जैनियों की अहिंसा धर्म केवल भारत के ही लिये है? भारत के बाहर का मांसाहार और हिंसा जैनियों को मान्य है? विश्वधर्म बनने के लिये बना हुआ धर्म, ऐसा लाचार कैसे बना?

भगवान महावीर ने अहिंसा के साथ स्याद्वाद यानि अनेकान्तवाद का जोरों से प्रचार किया। अहिंसा का वह अत्यन्त योग्य और सार्वभौम होने लायक रूप है।

जैनधर्म एक सार्वभौम जीवनदृष्टि

अनेकान्तवाद पर आपके सामने व्याख्यान देने यहां नहीं आया हूँ। मुख्य काम इतना ही कहना है कि सारी दुनिया में धर्म धर्म के बीच जो ईर्ष्या, असूया और विरोध पाये जाते हैं उनकी जगह मानव जाति के सब वर्णों में, सब धर्मों में और संस्कृतियों में (ईर्ष्या, मत्सर और झगड़ा टालकर उनके बीच) समन्वय लाने का, आदान प्रदान और निष्काम सेवा को स्थापन करने का, भारतमाता के मिशन का समर्थन महावीर स्वामी के अनेकान्तवाद में ही मैं देखता हूँ।

भारतमाता और समस्त मानव जाति भविष्य में लिए महावीर के उपदेशों द्वारा ही प्रतिस्पर्धा टालकर कौटुम्बिक भाव और पारिवारिक सम्बन्ध स्थापित कर सकेगी।

मैं यही कहने आया हूँ कि विविध समन्वय के द्वारा युद्धों को टालकर, धर्मों धर्मों के बीच, गोरे-काले आदि वर्णों के बीच जो प्रतिस्पर्धा अथवा होड़ चलती है, उसे टालकर विश्व-समन्वय यानि कौटुम्बिक भाव स्थापित करने के लिए ही विश्वव्यापी बनने के लायक जैनधर्म है।

ईसाई और इस्लामी धर्म प्रचार में हम साथ देंगे लेकिन उनका पूरा अनुकरण नहीं करेंगे। उनके मिशन प्रतिस्पर्धा को मानते हैं और हम तो प्रतिस्पर्धा को हिंसारूप पाप समझते हैं। हम तो दुनिया के सब राष्ट्रों में, वर्णों में, संस्कृतियों में और धर्मों में अनेकान्तवादी विश्व समन्वय मूलक कौटुम्बिक भाव को फैलाना है।[1] [6]

---

१ धर्मचर्चा परिषद् दिल्ली में १५ सितम्बर १९७४ को प्रदत्त भाषण से।

अनिर्वचनीय आनन्द का स्रोत : स्वानुभूति

—मुनिश्री अमरेन्द्रविजय जी

(अध्यात्मप्रधान अनेक पुस्तको के लेखक

तत्त्वचिन्तक तथा ओजस्वी प्रवचनकार)

अनुभव : जीवनमुक्ति का अरुणोदय

निज अनुभव लवलेश से, कठिन कर्म हो नाश ।
अल्पभव मे भवि लहे, अविचलपुर का वास ॥[1]

उपर्युक्त कथन मे यह बात प्रकट होती है कि स्व-स्वरूप का 'अनुभव' भव-भ्रमण की दीर्घ परम्परा को अत्यन्त लघु कर देता है। अनुभव मे ऐसा क्या जादू है कि उसे प्राप्त करने वाला व्यक्ति अल्पभव मे ही मुक्ति प्राप्त कर ले ? इसका रहस्य यह है कि 'अनुभव' द्वारा एक पल मे आत्मा का प्रत्यक्ष ज्ञान मिलता है। निज की यह अनुभूति व्यक्ति की जीवनदृष्टि मे एक जबर्दस्त क्रान्ति लाती है। श्रुत—श्रवण, वाचन आदि—के द्वारा प्राप्त हुआ बौद्धिक स्तर का ज्ञान ऐसी आमूलचूल क्रान्ति का सर्जन नही कर सकता।

मोहनाश का अमोघ उपाय

श्रुत द्वारा स्वरूप का बोध होने से एव उससे चित्त भावित होने से, क्रमश मोह की पकड ढीली होती जाती है, और विषय-कषाय के आवेग कुछ शिथिल हो जाते है। किन्तु विषयो का रस—विषयो मे अनादि से रही सुख-भ्रान्ति—केवल श्रुत से नही टलती[2], यह भ्रान्ति 'अनुभव' से मिटती है। अनुभव द्वारा निज के निरुपाधिक आनन्द का आस्वादन मिलने पर विषयेन्द्रियो के भोग वास्तव में ही नीरस

---

१ चिदानन्द जी महाराज, स्वरोदय ज्ञान, दोहा-५३।

२ उपाध्याय यशोविजय जी, अध्यात्मोपनिषद्, ज्ञानयोग, श्लोक-४।

लगते हैं।[1] इतना ही नहीं, सब पुद्गल खेल इन्द्रजाल के समान लगने लगते हैं। इससे आत्मज्ञानी के लिए जगत की घटनाओं का महत्त्व स्वप्न की घटनाओं से कुछ भी अधिक नहीं रहता,[2] अर्थात् 'अनुभव' जीवन विषयक समग्र दृष्टिकोण ही बदल देता है।

बौद्धिक प्रतीति विचार-विमर्श से पैदा होती है, किन्तु विचार स्वयं ही अविद्या पर निर्भर है।[3] अत आत्मस्वरूप की निर्भ्रान्त प्रतीति विचार विमर्श के द्वारा प्राप्त नहीं होती, यह प्रतीति विचार शान्त होने पर ही मिलती है। मन की उपशान्त अवस्था अथवा उसका नाश यह उन्मनी अवस्था है। इस अवस्था में 'अनुभव' मिलता है।[4] इसलिए आत्मज्ञान की—अनुभव की प्राप्ति के इच्छुक मुमुक्षु को चाहिए कि वह प्रथम चंचल चित्त को अपनी इच्छानुसार प्रवर्तन करने की सामर्थ्य प्राप्त करे और फिर एकाग्र बन इस चित्त को आत्मविचार में लगाकर उसका नाश करे। मोहनाश का यह अमोघ उपाय है।[6]

अनुभव क्या है ?

चिदानन्द जी महाराज ने 'अनुभव' का परिचय देते हुए कहा है—

> आपोआप विचारत, मन पाये विश्राम।
> रसास्वाद सुख ऊपजे अनुभव ताको नाम॥
> आतम अनुभव तीर से मिटे मोह अंधार।
> आपरूप में झलझले नहिं तस अन्त अपार॥[7]

सिद्ध परमात्मा या श्री जिनेश्वरदेव के अथवा अपने ही शुद्ध स्वरूप का चिन्तन मनन और ध्यान करते किसी धन्य क्षण में आत्मा शान्त हो जाता है एवं ध्याता, ध्येय के साथ तदाकार बन शुद्ध आत्म स्वरूप में लीन होकर स्वयं के यथार्थ स्वरूप का एवं निजी अन्तरंग ऐश्वर्य का 'दर्शन' प्राप्त करता है। खुद के अलौकिक, शाश्वत आनन्दस्वरूप की उस अनुभूति से मोह अन्धकार के नष्ट हो जाने से ध्याता को तत्काल आत्मज्ञान का प्रकाश प्राप्त होता है। इस अपूर्व घटना को शास्त्रीय परिभाषा में 'आत्मज्ञान' अथवा 'अनुभव' की संज्ञा दी गई है।

---

१ (क) योगदृष्टि समुच्चय, श्लोक—६६।
(ख) अध्यात्म सार, ध्यानस्तुत्यधिकार, श्लोक—२।

२ (क) समाधि शतक, दोहा—४।
(ख) अध्यात्मोपनिषद् ज्ञानयोग, श्लोक—६।

३ द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशिका, २३ श्लोक—६।

४ (क) अध्यात्मोपनिषद्, ज्ञानयोग, श्लोक—२४।
(ख) योगशास्त्र 'सटीक' प्रकाश—१२, श्लोक—३६।

५ योगशास्त्र, प्रकाश—१२, श्लोक—५, टीका।

६ (क) अध्यात्मसार, अनुभवाधिकार, श्लोक १७ १६।
(ख) योगशास्त्र, प्रकाश—१२, श्लोक—४०।

७ अध्यात्म बावनी।

सूर्योदय से जिस प्रकार अरुणोदय प्रकट होकर रात्रि के अन्धकार को हटा देता है, उसी प्रकार केवल-ज्ञान के सूर्य का उदय हो, उससे पहले अनुभव रूपी अरुणोदय आकर मोह के अन्धकार को हटा देता है। सवेरे प्रकाश आकर पूरी रात की प्रगाढ निद्रा अथवा स्वप्नमाला का एक क्षण में अन्त कर देता है, उसी प्रकार अनुभव का आगमन देह एव कर्मकृत व्यक्तित्व से अनादि के अपने तादात्म्य को एक ही पल मे चीर डालता है। यह देह और इसमे वसने वाला 'मै'—ये दोनो एक ही आकाश प्रदेश के वासी होने के कारण सामान्य रूप से एक ही महसूस होते है, किन्तु वास्तव मे दोनो है बिल्कुल अलग-अलग। अनुभव के प्रकाश मे यह हकीकत, मात्र बौद्धिक समझ न रहकर जीवन्त सत्य बन जाती है। पहने हुए कपडे स्वय से अलग है, यह भान प्रत्येक मनुष्य को जितना स्पष्ट है, उतनी स्पष्टता से आत्मानुभवयुक्त देह को स्वय से अलग अनुभव करता है।

जिनको अपरोक्ष अनुभव नही हुआ, अथवा इसकी झलक भी प्राप्त नही हुई, उनको स्वानुभूति की दशा वाणी द्वारा समझाना मुश्किल है। जन्मान्ध को रगो के भेद वाणी द्वारा कैसे समझाए जा सकते है? जिन्होने कभी घी अथवा मक्खन चखा तक नही, उन्हे घी अथवा मक्खन का स्वाद वाणी द्वारा किस तरह बताया जाए? अनुभव की अवस्था की जानकारी देने का प्रयास करते हुए अनुभवियो को यही उलझन रहती है। जो स्थिति भाषा से परे है, उसे वाणी द्वारा किस प्रकार व्यक्त करना? अत अनुभव-विषयक कोई भी निरूपण अधूरा लगना स्वाभाविक है। फिर भी इससे अनुभव अवस्था का जरा-सा भी ख्याल जिज्ञासुजन पा रहे हो तो इससे अच्छा और क्या?

ज्ञानियो ने अनुभव को 'तुरीय', अर्थात् चौथी अवस्था कहा है। नीद एव जागृति, इन दो अवस्थाओ से हम सब परिचित है। जागृत अवस्था मे हमारा मन एव इन्द्रिया बाहरी जगत के साथ के सम्बन्ध मे रहकर हमे उसका ज्ञान कराती है। नीद मे बाह्य जगत का सम्पर्क छूट जाता है। इन्द्रियाँ एव मन अपना काम बन्द कर आराम करते है एव हम शून्यता मे खोये हुए रहते है। कितनी ही बार शून्यता मे खो जाने के बजाय, हम स्वप्न देखते है, यह इस बात का द्योतक है कि मन की प्रवृत्ति सर्वथा रुकी नही। स्वप्नावस्था मे इन्द्रियाँ बाह्य जगत् को ग्रहण नही करती, शरीर निश्चेष्ट पडा होता है, परन्तु मन गतिशील रहता है। इस प्रकार अपने परिचय की तीन अवस्थाएँ हुई—जागृत, गहरी नीद एव स्वप्न। अनुभव की चौथी अवस्था इन तीनो से भिन्न है, इसका अपना अनोखा व्यक्तित्व है। गहरी नीद मे बाह्य जगत भुला जाता है। उसके साथ ही जागृति भी चली जाती है, जबकि तुरीय के इस अनुभव के समय, बाह्य जगत् का भान न होते हुए भी, सावधानी—जागृति पूर्ण होती है और स्वय की आनन्द-पूर्ण अस्तित्व-सत्ता प्रबलता से अनुभव में आती है।[1] एक सन्त इस अवस्था का परिचय इस प्रकार देते है—

"जागृति मे भी प्रगाढ निद्रा, अर्थात् इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, अहकार—सभी निद्राधीन है एव देह मे परमेश्वर जागता है।"

१　(क) योगशास्त्र, प्रकाश-१२, श्लोक—४७-४९।

(ख) उपाध्याय यशोविजय जी कृत अध्यात्मोपनिषद्, ज्ञानयोग, शुद्धि० श्लोक—२४-२५।

जब यह अनुभव आता है, तब अकस्मात् आता है। अचानक ही चित्त विचार-तरगो से रहित होकर शान्त हो जाता है, देह का भान जाता रहता है एव आत्मप्रकाश झिलमिलाने लगता है। मेघो से आच्छादित अँधेरी रात मे जैसे अनजाने मार्ग पर खडे पथिक को अचानक दमकती बिजली की कौंध मे अपने आस पास का दृश्य दिखाई दे जाता है। उसी प्रकार, इस अनुभव से साधक को एक पल मे ही आत्मा के निश्चय शुद्धस्वरूप का 'दर्शन' हो जाता है, अपने अकल, अबद्ध शाश्वत, शुद्धस्वरूप का अनुभव होता है—इसकी प्रतीति मिलती है। श्रुत की तरह यहा क्रमश ज्ञान की अभिवृद्धि नही होती, किन्तु क्षणभर मे ही पूर्व के अज्ञान का स्थान आत्मा का निर्भ्रान्त ज्ञान ले लेता है। वर्षों के शास्त्र अध्ययन से प्राप्त हो, उससे अधिक स्पष्ट, निश्चित एव सूक्ष्म ज्ञान उन अल्प क्षणो मे प्राप्त हो जाता है।

यह अनुभव अत्यन्त सुखकर होता है। उस समय वचनातीत शान्ति मिलती है किन्तु अकेली शान्ति अथवा आनन्द के अनुभव को ही स्वानुभूति का लक्षण नही कहा जा सकता। चित्त थोडा भी स्थिर हुआ कि शान्ति एव आनन्द का अनुभव तो होगा, किन्तु यहा ज्ञाता एव ज्ञेय का भेद नही रहता, और ध्याता ध्येय के साथ एकाकार बना रहता है, परमात्मतत्त्व के साथ ऐक्य का अनुभव रहता है आनन्द वचनातीत होता है, विद्युत की कौंध की भाति एकाएक ज्ञानप्रकाश प्रवाहित हो उठता है एव साधक को अपने समस्त विश्व का रहस्य खुल गया सा प्रतीत होता है एव उसे यह ज्ञान विश्वास तथा निश्चय हो जाता है कि भविष्य अधकारमय नही, किन्तु उज्ज्वल है। इस विश्वास के साथ मृत्यु का भय ही निनष्ट हो जाता है। मृत्यु से परे स्वय का शाश्वत अस्तित्व है, इसकी उसे अचल प्रतीति मिलती है एव उसके अन्तर मे समस्त विश्व का आलिंगन करने वाला प्रेम उमड पडता है। ये है अपरोक्षानुभूति के समय के कुछ विशेष अनुभव।

डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन के शब्दो मे कहा जाय तो—

"इस दर्शन—साक्षात्कार के साथ निरवधि आनन्द आता है बुद्धि की पहुँच के परे का ज्ञान उपलब्ध हो जाता है, स्वय जीवन से भी तीव्रतर सवेदन होता है, एव अपार शान्ति तथा आनन्द का अनुभव होता है इस शाश्वत तेज के स्मरण का स्थायी असर रह जाता है एव ऐसा अनुभव फिर से प्राप्त करने को मन छटपटाता है।"[1]

स्वानुभूति की अभिव्यक्ति

यहाँ यह याद रहे कि शब्द द्वारा अनुभव के विषय मे हम जो कुछ जान सकते हैं, वह अनुभव का अपने मन से बनाया गया चित्र है। अनुभव के समय ज्ञाता ज्ञेय का भेद करने वाला मन सोया हुआ रहता है, एव आत्मा ज्ञेय के साथ तदाकार रहती है। बाद मे मन जागृत होता है तब अनुभव के समय जो हुआ, उसको याद करने का वह प्रयास करता है, जिसमे वह कठिनता से ही सफल होता है।

जागृत होने के बाद चित्त अनुभव को स्मरण करे एव उसका वर्णन दूसरो के सामने प्रस्तुत करे, उसमे—

---

१ डॉ राधाकृष्णन् 'धर्मोनु मिलन,' पृ० २६७ (भारतीय विद्या भवन, बम्बई—७)

(१) अनुभव करने वाले व्यक्ति की अनुभव की घटना से पहले की मानसिक रचना।

(२) उसके आस-पास की परिस्थिति—देशकाल।

(३) अपने अनुभव की बात वह जिनके समक्ष व्यक्त कर रहा हो, उस जन-समूह की मानसिक, बौद्धिक एव आध्यात्मिक भूमिका।

(४) उस व्यक्ति की स्वय की अभिव्यक्ति की क्षमता (expression power)।

इन सबकी—चारो की छाप, इस वर्णन में आये बिना नही रहती। अत मन द्वारा वाणी मे अनुभव का जो चित्र अंकित किया जाता है, वह कोई रम्य नैसर्गिक दृश्य का मात्र दो-चार रेखाओ से अकित 'स्केच' जैसा भी मुश्किल से ही हो सकता है।

जिन्होने इस दशा का अनुभव किया है, वे सभी यही कहते है कि उसे वे वाणी द्वारा व्यक्त करने मे स्वय असमर्थ है। अत इस अपरोक्षानुभव को पूर्ण रूप से समझने के लिए उसका स्वय अनुभव लेना ही आवश्यक है, शब्द तो इसका सकेत मात्र ही कर सकते है। फिर भी, जैसे अगुली से वृक्ष की डाली की ओर सकेत कर दूज का चन्द्रमा बताया जाता है, उसी प्रकार, शब्द का सकेत करके आत्मानुभव की ओर श्रोताओ की दृष्टि ले जाने का प्रयास होता रहता है।

बहुधा ऐसे सकेत सूत्रात्मक शैली से पद्य मे—काव्य मे हुए है। अभिव्यक्ति मे परे की इन अनुभूतियो को गणित के समीकरण या भौतिक विज्ञान के नियमो की तरह स्पष्ट शब्दो के दायरे मे बाँधा नही जा सकता, काव्य का प्रवाही माध्यम ही, आध्यात्मिक अनुभूति ही अभिव्यक्ति के लिए अधिक रहता है। अत साधको तथा अनुभवियो ने भजनो एव पदो मे, ऐसे ही अन्य काव्य-प्रकारो में अपनी अनुभूति के कुछ सकेत दिये है। कई महान कवियो ने भी अपनी उत्तम काव्यकृतियो मे इस अनुभूति के सकेत दिये है। फिर भी, काव्यमय भाषा मे अक्षराकित इन त्रुटक सकेतो मे से अनुभव की मूल काया का पूर्ण चित्र उपस्थित करना कठिन होता है। अत पद्यो मे दिये हुए इन सकेतो से सामान्य जन अनुभव के समय की—साधक की आन्तरिक स्थिति का स्पष्ट बोध प्राप्त नही कर पाता।

अनुभव क्या है, इसकी कुछ स्पष्ट कल्पना जिज्ञासु पाठक कर सके, इसके लिए अनुभव-प्राप्त दो-तीन महानुभावो के उद्गार उन्ही के गद्य-शब्दो मे यहाँ दिये जा रहे है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि ये महानुभाव पिछले सौ वर्षो मे हमारे बीच रहे हुए व्यक्तियो मे से है।

योगियो के अनुभव-कथन मे सभव है कि बुद्धिवादी पाठको को मात्र अतिशयोक्ति या उर्मिलता का आवेग ही दिखाई दे, इसलिए पहले एक बुद्धिजीवी—अमेरिकन डाक्टर का अनुभव, उसके स्वयं के ही शब्दो मे आपके सामने प्रस्तुत है। 'अमेरिकन मैडिको साइकॉलॉजिक ऐसोसियेशन' के तथा 'ब्रिटिश मेडिकल ऐसोसियेशन' के साइकॉलॉजिकल विभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष डा० रिचार्ड मोरिस बक, एम० डी० स्वय का अनुभव बताते हुए लिखते है—

"अकस्मात् बिना किसी पूर्व सूचना के अग्नि की लपटो-जैसे रग के बादलो से उसने[1] अपने आपको घिरे हुए देखा—उसके मन मे एक क्षण के लिए विचार चमक गया आग का—बड़े शहर मे अचानक प्रगटे हुए किसी दावानल का। दूसरे ही क्षण, उसे लगा कि प्रकाश तो उसके अन्दर ही था।

---

१. इस आलेखन मे डा० बक ने स्वयं का उल्लेख अन्य पुरुष के सर्वनाम से किया है। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि उस समय वे व्यक्तित्व भावना मे कितने ऊपर उठे हुए थे।

इसके बाद तुरन्त ही वह परमानन्द मे डूब गया। अमर्याद आनन्द। इसके साथ या इसके पीछे जो बौद्धिक ज्ञानप्रकाश उभरा, उसे वाणी मे किस प्रकार से व्यक्त किया जाए, इसका वर्णन करना अशक्य है। उसके दिमाग में ब्राह्मी ऐश्वर्य की एक विद्युत्‌रेखा भी प्रस्तुत हो गई, जिसका प्रकाश इसके बाद उसके सारे जीवन को आलोकित करता रहा। उसके हृदय पर ब्रह्मामृत की एक बूँद गिरी जो मुक्तिसुख का आस्वाद सदा के लिए छोड गई।"[1]

इस अनुभव के बाद डा० बक एस अनुभव से भलीभांति परिचित एक ऐसे व्यक्ति के सम्पर्क में आये, जिनके साथ की बातचीत ने, उन्हे स्वयं को जो अनुभव हुआ था, उसके रहस्य पर अत्यन्त प्रकाश डाला। इसके बाद उन्होने इस विषय मे संशोधन करके एक ग्रन्थ की रचना की, जिसका नाम है—Cosmic Consciousness'—'विश्वचेतना'। स्वयं के उपर्युक्त विषय के अनुभव में इस ग्रन्थ में विशेष विवरण देते हुए वे लिखते है—

" उसका यह दावा है कि इस अनुभव में पूर्व महीनों अथवा वर्षों के अभ्यास द्वारा जितना ज्ञान उसको मिला होगा, उसके बनिस्बत अधिक ज्ञान उसको इस अनुभव के थोड़े से ही क्षणों में मिल गया—कुछ ऐसा ज्ञान, जो चाहे जितने अभ्यास के द्वारा प्राप्त होना संभव न था। यह प्रचण्ड ज्ञान प्रकाश थोडे ही क्षणों तक रहा किन्तु उसका असर स्थायी रहा। उन क्षणों में उसने जो देखा एवं जाना, उसे वह कभी भी भूल नहीं सकता। इसी प्रकार उस समय उसके चित्त के समक्ष जो प्रगट हुआ उसमें उसने कभी शंका नही उठाई—शंका उठ ही नही सकती।"

दक्षिण भारत के विश्व विख्यात सन्त श्री रमण महर्षि को इस जीवन के किसी भी प्रयत्न अथवा साधना के बिना अचानक ही आत्मानुभूति प्राप्त हुई थी। हाईस्कूल के अन्तिम वर्ष में वे अभ्यास कर रहे थे। उस समय मात्र सत्रह वर्ष की आयु मे एक दिन अचानक उनको यह असाधारण अनुभूति हुई। शरीर पूर्ण स्वस्थ होते हुए भी एक दिन सहसा मृत्यु के भय ने उनको घेर लिया। किसी बाहरी निमित्त के बिना ही उन्हे ऐसी प्रतीति हुई मानो मृत्यु ने अपना पंजा उनकी ओर फैला दिया है। शरीर को शव की भाँति निश्चेष्ट बनाकर वे सो गये—मानो शरीर निष्प्राण हो गया हो, ऐसा उन्होने अभिनय किया। किन्तु शरीर की स्थिति शव-जैसा होते हुए भी, भीतर 'मैं' का भान तो पूर्ववत् ही चालू रहा, इससे उन्होंने मन-ही मन प्रश्न किया—'मैं' कौन ? और आवरण हट गया। उस समय की अपनी अनुभूति का ब्यौरा उन्होने स्वयं इस प्रकार दिया है—

मदुरा से सदा के लिए रवाना होने से पहले लगभग छह सप्ताह पूर्व मेरे जीवन में यह महान परिवर्तन आया। मेरे चाचा के मकान पर पहली मंजिल पर कमरे में मैं अकेला बैठा हुआ था। मुझे कभी कोई बीमारी नहीं हुई थी एवं उस दिन भी मेरा स्वास्थ्य बिल्कुल ठीक था। किन्तु एकाएक मृत्यु के भीषण भय ने मुझे घेर लिया। मृत्यु के भय के आघात के कारण मैं अन्तर्मुख हुआ एवं मेरे मन में अनायास ही विचार उभरने लगे, 'अब मृत्यु आ पहुँची है। इसका अर्थ क्या ? मृत्यु किस की ? यह शरीर

---

१ Proceedings and Transactions of the Royal Society of Canada Series II Vol 12 pp 159 196

२ Dr Richard Maurice Bucke, M D, Cosmic Consciousness, p 10 (E P Dutton and Co, Newyork)

अव नही रहेगा' एव मैंने एकाएक मृत्यु का अभिनय करना शुरू किया। मेरे अगो को स्थिर रखकर मैं भूमि पर लेट गया। श्वास को मैंने रोक लिया और अपने ओठ कसकर वन्द कर लिये, ताकि मैं कोई भी आवाज अपने मुख से न निकाल सकूँ। शव का मैंने हूवहू अनुकरण किया, जिससे इस खोज के अन्तस्तल तक मैं पहुँच सकूँ। इसके वाद मैं स्वय विचारने लगा कि 'मेरा यह शरीर मृत है, लोग इसे उठाकर श्मशान-घाट ले जाएगे और इसे जला देगे, तव यह राख हो जाएगा। किन्तु क्या इस शरीर की मृत्यु से मेरी मृत्यु हो जाएगी ? क्या मैं शरीर हूँ ? मेरा शरीर मौन और जड पडा है, किन्तु मैं मेरे व्यक्तित्व को पूर्णरूप से अनुभव कर रहा हूँ और मेरे भीतर उठती 'मैं' की आवाज को भी मैं अनुभव कर रहा हूँ। अर्थात् मैं शरीर से परे आत्मा हूँ। शरीर की मृत्यु हो जाती है, किन्तु आत्मा को मृत्यु स्पर्श तक भी नही कर सकती, अर्थात् 'मैं' अमर आत्मा हूँ।' यह कोई शुष्क विचार-प्रक्रिया नही थी, जीवित सत्य की भाँति अत्यन्त स्पष्टतापूर्वक ये विचार मेरे मन मे विजली की तरह कौंध गये। विना किसी विचार के मुझे सत्य का प्रत्यक्ष दर्शन हो गया। 'अह' ही वास्तविक सत्ता थी, और शरीर से सम्वद्ध समस्त हलचल इस 'अह' पर ही केन्द्रित थी। मृत्यु का भय सदा के लिए नष्ट हो चुका था। इसके आगे आत्मकेन्द्रित ध्यान अविच्छिन्न रूप से जारी रहा।

"इस नई चेतना के परिणाम मेरे जीवन मे दृष्टिगोचर होने लगे। सर्वप्रथम मित्रों और सम्वन्धियो मे रस लेना मैंने वन्द कर दिया। मैं मेरा अध्ययन यात्रिक भाव से करने लगा। मेरे सम्वन्धियो को सन्तोष देने के लिए मैं पुस्तक खोलकर वैठ जाता, किन्तु वस्तुस्थिति यह थी कि मेरा मन पुस्तक मे जरा भी नही लगता था। लोगो के साथ के व्यवहार मे मैं अत्यन्त विनम्र एव शान्त वन गया। पहले अगर मुझे दूसरे लडको के वनिस्वत अधिक काम दिया जाता था तो मैं इसकी शिकायत किया करता था और अगर कोई लडका मुझे परेशान करता तो मैं उसका वदला लेता। कोई लडका मेरे साथ उच्छृङ्खल वरताव करने का अथवा मेरी मजाक उडाने का साहस नही करता था। अव सव कुछ वदल चुका था। मुझे जो भी काम सौपा जाता, मैं उसे खुशी से करता। मुझे चाहे जितना परेशान किया जाता, मैं उसे शान्ति से सहन कर लेता। विक्षोभ एव वदला लेने की वृत्ति वाले मेरे अह का लोप हो चुका था। मित्रो के साथ वाहर खेलने जाना मैंने वन्द कर दिया और एकान्त पसन्द करने लगा। अधिकतर ध्यानावस्था मे वैठ जाता और आत्मा मे लीन हो जाता।[1] मेरा वडा भाई मेरी मजाक उडाया करता था और व्यंग्य से 'साधु' अथवा 'योगी' कहकर मुझे वुलाता, एव प्राचीन ऋषियो की तरह वन मे चले जाने की सलाह दिया करता था। मुझमे दूसरा परिवर्तन यह हुआ कि भोजन के सम्वन्ध में मेरी कोई रुचि-अरुचि नही रही। जो कुछ भी मेरे सम्मुख परोसा जाता—स्वादिष्ट या अस्वादिष्ट, अच्छा या वुरा—मैं उसे उदासीन भाव से निगल जाता।

"एक और परिवर्तन मुझमे यह हुआ कि मीनाक्षी के मन्दिर के प्रति मेरी धारणा वदल गई। पहले मैं मन्दिर मे कभी-कभी मित्रो के साथ मूर्तियो के दर्शन करने तथा मस्तक पर पवित्र विभूति एव

---

१ इस घटना के करीव दो महीने वाद घर का त्याग करके वे अरुणाचल गये। वहाँ ध्यान मे वाहर का कोई विक्षेप न रहे, इसलिए एकान्त स्थान ढूँढते हुए मन्दिर का एक तलघर उनकी नजरो मे चढा, उसमें घुसकर वे ध्यान मे वैठ गये। इस वीरान तलघर मे जीव-जन्तुओ ने उनकी जघाओ को काट खाया। उनमे जख्म हो गये, तथा उन से रक्त एव पीव वहने लगे। यह होते हुए भी उन्हे इसका जरा-सा भी भान न हुआ। इससे यह प्रतीत होगा कि उस समय वे देहभावना से परे होकर आत्मा मे कितने लीन रहते थे।

सिन्दूर लगान के लिए जाया करता था और बिना किसी आध्यात्मिक प्रभाव के मैं घर वापस आ जाया करता था। किन्तु जागरण के बाद मैं प्राय प्रतिदिन सन्ध्या के समय वहा जान लगा। मै मन्दिर म अकेला जाना और शिव, मीनाक्षी या नटराज एव तिरसठ सन्तो की मूर्तियो के ममक्ष अविचल भाव से खडा हो जाता। मेरे हृदय-मागर म भावना की लहरें उठन लगती प्राय मैं किसी भी प्रकार की प्राथना नही करता था, किन्तु निज की अतल गहराइया मे विद्यमान अमृतप्रवाह का अनन्त सत्ता की ओर प्रवाहित होन देता। मेरी आखा म म आसुओ की अजस्र धारा बहन लगती और आत्मा को उसमे सराबार कर देती।

" यह अनुभव मुझ प्राप्त हुआ, इसके पहल भव भ्रमण से मुक्त होने की अथवा वासनाशून्य होन की कोई उत्कट इच्छा मुझम नही उठी थी। मैंन ब्रह्म, ससार अथवा ऐसे किसी अन्य तत्त्व के विषय म कभी कुछ सुना नही था। बाद म तिरूवन मलाई म जब मैंन विभु गीता और अन्य धार्मिक ग्रन्थ पढे तब मुझे ज्ञात हुआ कि धार्मिक ग्रन्थो मे उस अवस्था का विश्लेषण एव नामोल्लेख है जिस मैं बिना किसी भी विशेषण या नाम के मुझ म स्फुरण रूप से अनुभव कर रहा था।"[1]

श्री रमण महर्षि के अनुभव की एक विलक्षणता यह थी कि उनका अनुभव क्षणिक नही था। सामान्य रूप से जब ऐसी अनुभूति मिलती है तब साधक परमानन्द का अनुभव करता है किन्तु यह आनन्द कुछ क्षण ही टिकता है। उन क्षणो के बाद वह पुन सामान्य मनुष्य की भाँति ससार क द्वन्द्वा म उलझ जाता है जबकि श्री रमण महर्षि न बताया है कि इस अनुभव के बाद उन्हे आत्मा का अनुसन्धान निरन्तर रहन लगा था।

ऐसा क्षणिक अनुभव मिलना भी कोई नगण्य प्राप्ति नही। इसका प्रभाव भी व्यक्ति के समग्र जीवन को छू जाता है। अनुभव प्राप्ति के समय की ध्येय साथ की तन्मयता आनन्द, आश्चय कृतकृत्यता तथा आत्मदशन द्वारा प्राप्त मोहविजय की खुमारी की कुछ झलक उपाध्याय श्री यशोविजय जी महाराज के निम्नलिखित उद्गारो म स पाठक प्राप्त कर पायेंगे—

> हम मगन भये प्रभु ध्यान म, ध्यान म प्रभु ध्यान मे।
> बिसर गई दुविधा तन मन की, अचिरासुत गुण-गान मे॥१॥
> हरिहर ब्रह्म पुरन्दर की रिद्धि, आवत नाहि कोई मान म।
> चिदानन्द की मौज मची है, समता रस के पान मे॥२॥
> इतने दिन तूँ नाहि पिछाण्यो, मरो जनम गया सो अजान म।
> अब तो अधिकारी होई बैठे, प्रभुगुण अखय खजान म॥३॥

---

१ Arthur Osborne, 'Raman Maharshi And the Path of Self Knowledge, pp 18 24 (Rider and Co London and Jaico Publishing House Mahatma Gandhiji Road, Bombay) [हिन्दी अनुवाद वेदराज वेदालकार, 'रमण महर्षि एव आत्मज्ञान का माग', पृष्ठ ६ १२ (शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी अस्पताल रोड, आगरा ३)]

२ श्री रमण महर्षि ने 'अपने' के स्थान पर 'मेरे' शब्द का प्रयोग किया है। उन्ही के शब्द यहाँ दिये हैं, इसलिए परिवतन नहीं किया, जैसे—'मेरे अगों को स्थिर रखकर लेट गया'—के स्थान पर 'अपने अगो को स्थिर करके लेट गया' होना चाहिए।

गई दीनता अब सबही हमारी, प्रभू ! तुज समकित दान में ।
प्रभु गुण अनुभवरस के आगे, आवत नाहिं कोउ मान में ॥४॥

जिनही पाया तिनहि छिपाया न कहे कोउ के कान में ।
ताली लागे जब अनुभव की, तब समझे कोई सान में ॥५॥

प्रभुगुण अनुभव चन्द्रहास ज्यों, सो तो न रहे म्यान में ।
वाचक 'जश' कहे मोह महाअरि, जीत लियो है मैदान में ॥६॥

अनुभूति से आता हुआ मूल्यपरिवर्तन

बहुधा प्रारम्भिक अनुभव थोडे ही पलो का होता है—मानो बिजली की कौंध की भाँति एक क्षण मे परमात्मा के दर्शन होते है और उसी प्रकार वे अलोप हो जाते हैं। किन्तु ये थोडे-से ही क्षण व्यक्ति की मानसिक वृत्ति मे क्राति ला देते है। 'अगे होय इन्हा अविनाशी, पुद्गल जाल तमाशी'—इस उक्ति मे उपाध्याय श्री यशोविजयजी महाराज अनुभवयुक्त व्यक्ति का चित्र स्पष्ट रूप से उभारते हैं। किसी भयानक सपने मे भयभीत बने सोये हुए व्यक्ति की मानसिक अवस्था एव नीद खुल जाने पर भय रहित होकर स्वय मे हल्कापन अनुभव करते उस व्यक्ति की मानसिक अवस्था मे जो अन्तर है, ठीक वही अन्तर अनुभव प्राप्त करने वाले व्यक्ति की, अनुभव के पूर्व की एव अनुभव के बाद की मानसिक स्थिति मे पड जाता है। नीद मे जगे हुए व्यक्ति को यह ज्ञान हो जाता है कि स्वप्न की सृष्टि मात्र अपना मानसिक भ्रम था, यह होते ही उसके मन मे स्वप्न की घटना का कोई महत्त्व नही रहता। इसी प्रकार आत्मा के ज्ञान-आनन्दमय शाश्वत स्वरूप की स्वानुभवसिद्ध प्रतीति मिलते ही भव की भ्राति मिट जाती है एवं बाह्य जगत स्वप्न के तमाशे-जैसा ही निस्सार प्रतीत होता है।

शक्ल अलग, 'बिरादरी' एक

अनुभव मे गहराई एव स्थायित्व का तारतम्य होता है।[1] किसी का अनुभव गहरा एवं स्थायी होता है, तो किसी का क्षणजीवी होता है। आत्मानुभव मिलने के बाद किसी के बाह्य जीवन मे जबर्दस्त परिवर्तन आता है, तो किसी का बाह्य जीवन पहले की तरह ही व्यतीत होता हुआ दृष्टिगोचर होता है। अनुभव के बाद व्यक्ति के बाह्य जीवन मे कोई परिवर्तन आये या न आये, किन्तु उसका आन्तरकलेवर अवश्य बदल जाता है, जीवन एवं जगत विषयक उसकी दृष्टि मे तो जडमूल परिवर्तन होता ही है, क्षणिक अनुभव भी व्यक्ति के मानस पर अपना प्रभाव अचूक छोड़ जाता है। अनुभव प्राप्त व्यक्ति अनुभव के पूर्व की और उसके बाद की अपनी दृष्टि मे इतना भारी फर्क अनुभव करता है कि उसने मानो नया ही जन्म लिया हो, ऐसा अनुभव करता है।

यह नही कि अनुभव ध्यान के समय ही प्राप्त हो, हो सकता है कि कोई भव्य हृदयस्पर्शी काव्य, उच्च सगीत या ज्ञानियो के किसी वचन का मनन करते हुए चित्त स्तब्ध हो जाए, देह का भान जाता रहे एव आत्मज्योति झिलमिला उठे। ऐसा भी होता है कि मनुष्य किसी भयानक विपत्ति मे फँसा हुआ हो—

---

१ योगशास्त्र, प्रकाश-१२, श्लोक-१३।
इस प्रकार का एक प्रसिद्ध उदाहरण अरुणाचल, तिरुवन्नमलाई, तमिलनाडु (दक्षिण भारत) के आत्मनिष्ठ सत श्री रमण महर्षि का है। यह असाधारण अनुभूति उन्हे अचानक ही कैसे मिली, यह वृत्तान्त आप पहले पढ चुके हैं।

निराशा, विषाद एवं उदासीनता से वह बेतरह घिर गया हो—उस दरम्यान यह अनुभव अकस्मात् आये एकाएक निराशा विषाद उदासीनता इत्यादि सभी हट जाएँ एवं वह अपनी परिस्थिति का निर्लेप साक्षी रह जाए। जन्मान्तर की साधनाओं के संस्कार जाग जाने पर, किसी को इस जीवन के कुछ भी प्रयत्न, बिना किसी पूर्व तैयारी अथवा बिना किसी बाह्य निमित्त के ही तत्त्वदर्शन की प्राप्ति हो जाती है। कई बार तो जिसका बाह्य जीवन पाप एवं अनाचार के पंकिल मार्ग में अग्रसर रहा हो, ऐसे व्यक्ति को भी, इस तरह एकाएक ही आत्मानुभव मिलता है एवं उसके जीवन की दिशा बदल जाती है, और भयंकर गुनहगार महान सन्त बन जाता है।

चाहे जिस प्रकार से अनुभव मिला हो किन्तु सभी अनुभवियों की बिरादरी एक ही है। देश काल एवं मानव द्वारा रचित जाति, रंग या मत पंथों के बाह्य भेदों को बींध कर वे एक दूसरे की अनुभव की भाषा को पहचान लेते हैं। किसी उच्च शिखर पर पहुँचने के लिए, तलहटियों से भिन्न भिन्न मार्गों से जाने वाले यात्री उदाहरणार्थ कदम्बगिरि की ओर से घेटी की तलहटी की ओर से अथवा पालीताणा के पास की तलहटी से सिद्धगिरि पर चलने वाले—ज्यों-ज्यों ऊपर चढ़ते जाते हैं त्यों त्यों वे एक दूसरे के करीब आते जाते हैं, एवं शिखर पर पहुँचने पर तो सभी एक ही स्थल पर आकर मिल जाते हैं ठीक वैसा ही आध्यात्मिक पथ पर भी होता है। जिन जिन को आत्मतत्त्व का अपरोक्ष अनुभव प्राप्त होता है उन-उन में एक मूलभूत साधर्म्य आ जाता है। अपनी तात्त्विक सत्ता देह एवं जगत से परे है और इस सत्ता में अवस्थित होना यही मुक्ति है—*यह बात प्रत्येक 'अनुभवी' के अन्तर में बस जाती है।* अतः परिभाषा के भेद को छोड़कर, वे एक दूसरे के मन्तव्यों में रहा हुआ साम्य परख सकते हैं। इससे कोई अदृश्य तन्तु इनके बीच बंधुभावना की गांठ बांध देता है। अपनी स्वायत्तसत्ता के अनुभव के परिणामस्वरूप जीवन दृष्टि का प्रभाव प्रायः उनके समग्र जीवन व्यवहार पर पड़ता है। नये उन्नत आदर्शों के क्षितिज उनके समक्ष खुलते हैं। दृष्टि की विशालता एवं आशावादी जीवनदृष्टि अनुभवशील व्यक्ति का प्रमुख लक्षण बन जाता है। उनकी दृष्टि छिछली न रहकर तत्त्वग्राही बन जाती है बाह्य प्रदर्शनों से भरमाती नहीं, और न वह अंधानुकरण करती है। वह धर्म, नीति देश प्रेम, जीवन पद्धति आदि किसी भी बात विषयक प्रचलित मान्यताओं और व्यवहारों को अपनी विवेक बुद्धि से कसकर देखती है। शास्त्रवचनों के रहस्य का भी वह शीघ्र ग्रहण कर पाती है। निरर्थक वाद विवादों में उसे रस नहीं रहता। अतः अन्य लोग जहाँ उग्र चर्चाओं में उलझ जाते हैं वहां वह शांत रहता है।

आत्मज्ञान की उषा

जैसे सूर्योदय से पहले रात्रि के अंधकार की गहनता को चीरती हुई उषा आती है, वैसे ही आध्यात्मिक साधकों के जीवन में, अनुभव के आगमन से पहले बहिरात्म भाव को मन्द करती हुई आत्म ज्ञान की प्रभा फैलती है। इस झलमल प्रकाश में भी मुमुक्षु का स्वरूप का कुछ भान जरूर होता है परन्तु जब अनुभव के द्वारा उसे स्वरूप की पक्की प्रतीति मिलती है, तभी उसकी बहिरात्मदृष्टि पूर्ण रूप से निराधार बनकर हटती है एवं अन्तर्दृष्टि खिल उठती है। कहा गया है—

> नानतणी चादरणी प्रगटी तब गई कुमति रयणी रे।
> अकल अनुभव उद्यान हुओ जब सकल कला पिछाणी रे॥

□ □

जैन दर्शन और योग दर्शन में कर्म-सिद्धान्त

—रत्नलाल जैन (जैन दर्शन—शोध छात्र)

(एम ए , एम. एड)

भारत भूमि दर्शनो की जन्म-भूमि है, पुण्यस्थली है। इस पुण्यभूमि पर न्याय, सांख्य, वेदान्त, वैशेषिक, मीमासा, वौद्ध और जैन आदि अनेक दर्शनो का आविर्भाव हुआ। यहाँ के मनीषी दार्शनिको ने आत्मा, परमात्मा, लोक और कर्म-पाप-पुण्य आदि महत्वपूर्ण तत्वो पर वडी गम्भीरता से चिन्तन-मनन और विवेचन किया है।

जैनदर्शन मे 'कर्म' शव्द जिस अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है, उस अर्थ मे अथवा उससे मिलते-जुलते अर्थ मे अन्य दर्शनो मे भी इन शव्दो का प्रयोग किया गया है। माया, अविद्या, प्रकृति, अपूर्व, वासना, आशय, धर्माधर्म, अदृष्ट, सस्कार, दैव, भाग्य आदि।

'माया', 'अविद्या' और 'प्रकृति' शव्द वेदान्त दर्शन मे उपलव्ध है। 'अपूर्व' शव्द मीमांसा दर्शन मे प्रयुक्त हुआ है। "वासना" शव्द वौद्धदर्शन मे विशेष रूप से प्रसिद्ध है। "आशय" शव्द विशेषत योग और साख्य दर्शन मे उपलव्ध है। "धर्माधर्म", "अदृष्ट" और "सस्कार" शव्द न्याय एव वैशेषिक दर्शनो में प्रचलित है। "दैव", "भाग्य", "पुण्य", "पाप" आदि अनेक ऐसे शव्द है जिनका साधारणतया सव दर्शनो मे प्रयोग किया गया है। जैन और योग दर्शनो मे कर्मवाद का विचित्र समन्वय मिलता है।

कर्म की जैन परिभाषा—प्रसिद्ध आचार्य देवेन्द्रसूरि कर्म की परिभाषा करते हुए लिखते है—"जीव की क्रिया का जो हेतु है, वह कर्म है।" प० सुखलाल जी कहते है—"मिथ्यात्व, कषाय आदि कारणो से जीव के द्वारा जो कुछ किया जाता है, वही कर्म कहलाता है। जव प्राणी अपने मन, वचन अथवा तन से किसी भी प्रकार की प्रवृत्ति करता है, तव चारो ओर से कर्म योग्य पुद्गल-परमाणुओ का आकर्षण होता है। आत्मा की राग-द्वेषात्मक क्रिया से आकाश प्रदेशो मे विद्यमान अनन्तानन्त कर्म के सूक्ष्म पुद्गल चुम्वक की तरह आकर्षित होकर आत्मप्रदेशो से सश्लिष्ट हो जाते है, उन्हे कर्म कहते है।" जैन लक्षणावली मे लिखा है—"अजनचूर्ण से परिपूर्ण डिव्वे के समान सूक्ष्म व स्थूल आदि अनन्त पुद्गलो से परिपूर्ण, लोक मे जो कर्मरूप मे परिणत होने योग्य नियत पुद्गल जीव-परिणाम के अनुसार वन्ध को

प्राप्त होकर ज्ञान-दर्शन के घातक (ज्ञानावरण व दर्शनावरण तथा सुख-दुःख शुभ-अशुभ आयु नाम, उच्च व नीच गोत्र और अन्तराय रूप) पुद्गलों को कर्म कहा जाता है।

पातंजल योग दर्शन में कर्माशय—महर्षि पतंजलि लिखते हैं—'क्लेशमूलक कर्माशय'—कर्म-संस्कारों का समुदाय वर्तमान और भविष्य दोनों ही जन्मों में भोगा जाने वाला है।" कर्मों के संस्कारों की जड़—अविद्या, अस्मिता, राग-द्वेष और अभिनिवेश ये पाँच क्लेश हैं। यह क्लेशमूलक कर्माशय जिस प्रकार इस जन्म में दुःख देता है, उसी प्रकार भविष्य में होने वाले जन्मों में भी दुःखदायक है। जब चित्त में क्लेशों के संस्कार जमे होते हैं, तब उनसे सकाम कर्म उत्पन्न होते हैं। बिना रजोगुण के कोई क्रिया नहीं हो सकती। इस रजोगुण का जब सत्त्व गुण के साथ मेल होता है तब ज्ञान, धर्म, वैराग्य और ऐश्वर्य के कर्मों में प्रवृत्ति होती है। इस रजोगुण का जब तमोगुण से मेल होता है तब उसके उल्टे अज्ञान, अधर्म, अवैराग्य और अनैश्वर्य के कर्मों में प्रवृत्ति होती है। ये ही दोनों प्रकार के कर्म शुभ-अशुभ, पाप-पुण्य या शुक्ल-कृष्ण कहलाते हैं।

जैन दर्शन की आठ कर्म प्रकृतियाँ—जिस रूप में कर्म-परमाणु आत्मा की विभिन्न शक्तियों के प्रकटन को अवरुद्ध करते हैं और आत्मा का शरीर से सम्बन्ध स्थापित करते हैं तथा जिन कर्मों से बद्ध जीव संसार भ्रमण करता है, वे आठ हैं —

१ ज्ञानावरणीय कर्म—यह कर्म जीव की अनन्त ज्ञान शक्ति के प्रादुर्भाव को रोकता है।
२ दर्शनावरणीय कर्म—यह कर्म जीव की अनन्त दर्शन शक्ति को प्रकट नहीं होने देता।
३ मोहनीय कर्म—यह कर्म आत्मा की वीतराग दशा/स्वरूपरमणता को रोकता है।
४ अन्तराय कर्म—यह कर्म अनन्तवीर्य को प्रकट नहीं होने देता।
५ वेदनीय कर्म—यह कर्म अव्याबाध सुख को रोकता है।
६ आयुष्य कर्म—यह कर्म शाश्वत स्थिरता को नहीं होने देता है।
७ नाम कर्म—यह कर्म अरूपी अवस्था नहीं होने देता।
८ गोत्र कर्म—यह कर्म अगुरुलघुभाव को रोकता है।

घाति और अघाति कर्म

घाति कर्म—जो कर्म आत्मा के साथ बँध कर उसके स्वाभाविक गुणों का घात करते हैं। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय घाति कर्म हैं।

अघाति कर्म—जो आत्मा के प्रधान गुणों की हानि नहीं पहुँचाते। वेदनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र अघाति कर्म हैं।

योग दर्शन में विपाक—जाति, आयु और भोग

जब तक क्लेश रूप जड़ विद्यमान रहती है तब तक कर्माशय का विपाक अर्थात् फल जाति, आयु और भोग होता है।

क्लेश जड़ है। उन जड़ों से कर्माशय का वृक्ष बढ़ता है। इस वृक्ष में जाति, आयु और भोग तीन प्रकार के फल लगते हैं। कर्माशय वश उसी समय तक रहता है जब तक अविद्यादि क्लेशरूपी उसकी जड़ विद्यमान रहती है।

जैन दर्शन में बन्ध का स्वरूप—जीव और कर्म के संयोग को बन्ध कहते हैं। और अनादि [illegible]

से कर्म-योग्य पुद्गलो को ग्रहण करता है। इन ग्रहण किए हुए कर्म-पुद्गल और जीव-प्रदेशो का वन्धन—सयोग ही वन्ध है।

श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती लिखते हैं—जिन चैतन्य परिणाम से कर्म वँधता है, वह भाव-वन्ध है, तथा कर्म और आत्मा के प्रदेशो का प्रवेश, एक दूसरे मे मिल जाना, एकक्षेत्रावगाही हो जाना, द्रव्यवन्ध है। कलिकालसर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र सूरि लिखते हैं—"जीव कपाय के कारण कर्मयोग्य पुद्गलो को ग्रहण करता है, यह वन्ध है। वह जीव की अस्वतन्त्रता का कारण है।" आचार्य पूज्यपाद के अनुसार जीव और कर्म के इस सश्लेप को दूध और जल के उदाहरण से समझा जा सकता है।

योग और कपाय—वन्ध के हेतु

दूसरे रूप मे—"योग प्रकृतिवन्ध और प्रदेशवन्ध का हेतु है, और कपाय स्थितिवन्ध और अनुभाग वन्ध का हेतु है।" इस प्रकार योग और कपाय—ये दो वन्ध के हेतु वनते है। तीसरी दृष्टि से—"मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग, ये वन्ध के हेतु है।" इन चार वन्धहेतुओ से सत्तावन भेद हो जाते है।

धर्मशास्त्र, आगम मे प्रमाद को भी वन्ध हेतु कहा है। श्री उमास्वाति ने पाँच वन्ध हेतु माने है—मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कपाय और योग।

इस प्रकार जैनदर्शन मे वन्ध-हेतुओ की सख्या पाँच आस्रवो के रूप मे मान्य है।

समन्वय— कर्म-वन्ध के हेतुओ की दृष्टियो का समन्वय इस प्रकार किया गया है—"प्रमाद एक प्रकार का असयम ही है। इसलिये वह अविरति या कपाय मे आ जाता है। सूक्ष्मता से देखने से मिथ्यात्व और अविरति ये दोनो कषाय के स्वरूप से भिन्न नही इसलिए कपाय और योग—ये दो ही वन्ध के हेतु माने है।"

कर्म-वन्ध के हेतु—पाँच आस्रव

पाँच आस्रव—मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग वन्ध के हेतु है। जैन धर्म-शास्त्रो—आगमो मे कर्म-वन्ध के दो हेतु कहे गये है—१. राग और २ द्वेप। राग और द्वेप कर्म के वीज है। जो भी पाप कर्म है, वे राग और द्वेष से अर्जित होते है। टीकाकार ने राग से माया और लोभ को ग्रहण किया है, और द्वेप से क्रोध और मान को ग्रहण किया है।

एक वार गौतम स्वामी ने भगवान् महावीर से पूछा "भगवन्! जीव कर्मप्रकृतियो का वन्ध कैसे करते है?" भगवान् ने उत्तर दिया—"गौतम! जीव दो स्थानो से कर्मो का वन्ध करते हैं—एक राग से और दूसरे द्वेप से। राग दो प्रकार का है—माया और लोभ। द्वेष भी दो प्रकार का है—क्रोध और मान।"

क्रोध, मान, माया और लोभ—इन चारो का सग्राहक शब्द कषाय है। इस प्रकार एक कषाय ही वन्ध का हेतु होता है।

योग दर्शन मे वन्ध के मूल कारण—पाँच क्लेश—सब वन्धनो और दुःखो के मूल कारण पाँच क्लेश है—अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेप और अभिनिवेश। ये पाँचो वाधनारूप पीडा को पैदा करते है। ये चित्त मे विद्यमान रहते हुए सस्काररूप गुणो के परिणाम को दृढ करते है इसलिये इनको क्लेश के नाम पुकारा जाता है।

सांख्य दर्शन की भाषा म इन पाचो—अविद्या को तमस, अस्मिता को मोह, राग को महामोह, द्वेष का तमिस्र और अभिनिवेश को अन्धतामिस्र के नामो मे अभिहित किया गया है।

आचार्य पूज्यपाद ने लिखा है— मूढ आत्मा जिसम विश्वास करता है, उससे अधिक कोई भयानक वस्तु नही। मूढ आत्मा जिससे डरता है, उससे बढकर शरण देने वाली वस्तु इस ससार म नही है।"

भयकर वस्तु म विश्वास करना और अभयदान करने वाली वस्तुओ स दूर भागना—यह उस समय होता है जब आत्मा मूढ हो, दृष्टिकोण मिथ्या हो, अविद्या और अज्ञान और मोह से व्यक्ति ग्रसित हो।

मिथ्यात्व और अविद्या—

मिथ्यात्व—मिथ्यात्व का अर्थ है मिथ्यादर्शन, जो कि सम्यग्दर्शन से उलटा होता है। जो बात जैसी हो, उसे वैसा न मानना या विपरीत मानना मिथ्यात्व है।

मिथ्यात्व के दस रूप—मिथ्यात्व विपरीत तत्व श्रद्धा के दस रूप बनते हैं—

१ अधर्म म धर्म सज्ञा। २ धर्म म अधर्म सज्ञा। ३ अमार्ग म मार्ग सज्ञा। ४ मार्ग म अमार्ग सज्ञा। ५ अजीव मे जीव सज्ञा। ६ जीव म अजीव सज्ञा। ७ असाधु म साधु सज्ञा। ८ साधु म असाधु सज्ञा। ९ अमुक्त म मुक्त सज्ञा। १० मुक्त म अमुक्त सज्ञा।

अविद्या—जिसम जो धर्म नही है, उसम उसका भान होना अविद्या का सामान्य लक्षण है।

अविद्या के पाद—योग दर्शन के अनुसार पशु के तुल्य अविद्या के भी चार पाद है—

१ अनित्य मे नित्य का ज्ञान। २ अपवित्र म पवित्रता का ज्ञान। ३ दुःख म सुख का ज्ञान। ४ अनात्म (जड) म आत्म का ज्ञान।

अविरति—विरति का अभाव, व्रत या त्याग का अभाव, दोषो से विरति न होना। पौद्गलिक सुखो के लिये व्यक्त या अव्यक्त पिपासा।

मनोविज्ञान ने मन के तीन विभाग किये हैं—

१ अदस् मन (Id), २ अह मन (Ego) ३ अधिशास्ता मन (Super Ego)।

अदस मन—इसम आकाक्षाएँ पैदा होती हैं। जितनी प्रवृत्त्यात्मक आशा अकाक्षाएँ और इच्छाएँ हैं वे सभी इसी मन म पैदा होती है।

अह मन—समाज व्यवस्था से जो नियन्त्रण प्राप्त होता है उससे आकाक्षाएँ यहाँ नियन्त्रित हो जाती हैं और वे कुछ परिमार्जित हो जाती हैं। उन पर अकुश जैसा लग जाता है। अह मन इच्छाओ को क्रियान्वित नही करता है।

अधिशास्ता मन—यह अह पर भी अकुश रखता है और उसे नियन्त्रित करता है।

अविरति अर्थात् छिपी हुई चाह, सुख-सुविधा को पाने की चाह और कष्ट को मिटाने की चाह। यह जो विभिन्न प्रकार की आतरिक चाह है आकाक्षा है—इसे धर्मशास्त्र की भाषा म अविरति आस्रव कहा है। इसे मनोविज्ञान की भाषा म अदस् मन कहा गया है।

कषाय—राग और द्वेष

उमास्वाति कहते है—"कषाय भाव के कारण जीव कर्म के योग्य पुद्गलो को ग्रहण करता है, वह वन्ध कहलाता है।"

आत्मा मे राग या द्वेष भावो का उद्दीप्त होना ही कषाय है। राग और द्वेष—दोनो कर्म के वीज है। जैसे दीपक अपनी ऊष्मा से वत्ती के द्वारा तेल को आकर्षित कर उसे अपने शरीर (लौ) के रूप मे वदल लेता है, वैसे ही यह आत्मा रूपी दीपक अपने रागभावरूपी ऊष्मा के कारण क्रियाओ रूपी वत्ती के द्वारा कर्म-परमाणुओ रूपी तेल को आकर्षित कर उसे अपने कर्म शरीररूपी लौ मे वदल देता है।

राग-क्लेश—सुख भोगने की इच्छा राग है—जीव को जव कभी जिस-जिस किसी अनुकूल पदार्थ मे सुख की प्रतीति हुई है या होती है, उसमे और उसके निमित्तो मे उसकी आसक्ति-प्रीति हो जाती है, उसी को राग कहते है। वाचकवर्य श्री उमास्वाति कहते हैं—इच्छा, मूर्च्छा, काम, स्नेह, गृद्धता, ममता, अभिनन्द—प्रसन्नता और अभिलाषा आदि अनेक राग भाव के पर्यायवाची शब्द है।

द्वेष क्लेश—पातजल योग-दर्शन में लिखा है कि दु ख के अनुभव के पीछे जो घृणा की वासना चित्त मे रहती है, उसे द्वेष कहते है। जिन वस्तुओ अथवा साधनो से दु ख प्रतीत हो, उनसे जो घृणा या क्रोध हो, उनके जो सस्कार चित्त मे पडे हो उसे द्वेष—क्लेश कहते हैं।

प्रशमरति मे लिखा है—"ईर्ष्या, रोष, द्वेष, दोष, परिवाद, मत्सर, असूया, वैर, प्रचण्डन आदि शब्द द्वेषभाव के पर्यायवाची शब्द हैं। प्रमाद, अस्मिता और अभिनिवेश का समावेश भी राग-द्वेष मे हो जाता है।

चार कषाय के वावन नाम

कषाय चार है—क्रोध, मान, माया और लोभ। समवायाग—५२ मे चार कषाय रूप मोह के ५२ नाम कहे गए है—जिन मे क्रोध के दस, मान के ग्यारह, माया के सत्रह, और लोभ के चौदह नाम वताए गए है जो इस प्रकार है—

क्रोध—१ क्रोध, २. कोप, ३ रोष, ४ दोष, ५ अक्षमा, ६ सज्वलन, ७ कलह, ८ चाडिक्य, ९ भडण और १० विवाद।

मान—१ मान, २ मद, ३ दर्प, ४ स्तम्भ, ५ आत्मोत्कर्ष, ६ गर्व, ७ पर-परिवाद, ८ आक्रोश, ९ अपकर्ष, १० उन्नत और ११ उन्नाम।

माया—१ माया, २ उपाधि, ३ निकृति, ४ वलय, ५ ग्रहण, ६ न्यवम, ७ कल्क, ८ कुरूक, ९ दम्भ, १० कूट, ११ वक्रता, १२ किल्विष, १३ अनादरता, १४ गूहनता, १५ वंचनता, १६ परिकुन्चनता, १७ सातियोग।

लोभ—१ लोभ, २ इच्छा, ३ मूर्च्छा, ४ काक्षा, ५ गृद्धि, ६ तृष्णा, ७ भिध्या, ८ अभिध्या, ९ कामाशा, १० भोगाशा, ११ जीविताशा, १२ मरणाशा, १३ नन्दी और १४ राग।

आस्रव और कर्माशय—आस्रव काय, वचन और मन की क्रिया योग है। वही कर्म का सम्बन्ध कराने वाला होने के कारण आस्रव कहलाता है।

कपाय सहित और रहित आत्मा का योग क्रमश साम्परायिक और ईर्यापथ कम का वध हेतु आस्रव होता है।

जिन जीवा म क्रोध मान-माया-लाभ आदि कपाया का उदय हो, वह कपाय सहित हैं।

पहले से दसवें गुणस्थान तक के जीव न्यूनाधिक माना म कपायसहित हैं और ग्यारहवें-आदि आग के गुणस्थाना वाले जीव कपाय रहित हैं।

कर्माशय क्लेशमूल—

पाच क्लेश जिसकी जड है, ऐसी कम की वासना वतमान और भविष्य म होन वाले दोना जन्मो म भागा जाने के योग्य है। जिन महान योगिया ने क्लेशा को निर्वीज समाधि द्वारा उखाड दिया है, उनके कम निष्काम अथात् वासनारहित केवल कतव्य मात्र रहते हैं इसलिए उनको इसका फल भोग्य नही है। जब क्लेशा के सस्कार चित्त मे जमे हो तब उनसे सकाम कम उत्पन्न होते हैं।

शुभ अशुभ आस्रव—पुण्य पाप कम— शुभ योग पुण्य का बध हेतु है और अशुभ योग पाप का बध हेतु है। पुण्य का अथ है जो आत्मा को पवित्र करे। अशुभ पाप कर्मों स मलिन हुई आत्मा क्रमश शुभ कर्मों का—पुण्य कर्मो का अजन करती हुई पवित्र होती ह स्वच्छ होती है।

आचाय कुन्दकुन्द लिखते हैं—'जिसके मोह राग-द्वेष होते हैं, उसके अशुभ परिणाम होते है। जिसके चित्त प्रसाद—निमल चित्त होता है, उसके शुभ परिणाम होते हैं। जीव क शुभ परिणाम पुण्य हैं और अशुभ परिणाम पाप। शुभ अशुभ परिणामा म स जीव के जा कम-वगणा याग्य पुद्गला का ग्रहण होता है, वह क्रमश द्रव्य पुण्य द्रव्य पाप है।

याग दशन के अनुसार 'व जन्म, आयु और भोग—सुख दु ख फल के देन वाल होत हैं, क्योकि उनके पुण्य कम और पापकम दोना ही कारण हैं।"

आठ कर्मों म पुण्य-पाप प्रकृतियाँ—

प्रत्येक आत्मा म सत्तारूप से आठ गुण विद्यमान हैं—

१ अनन्त ज्ञान	५ आत्मिक सुख
२ अनन्त दशन	६ अटल अवगाहन
३ क्षायिक सम्यक्त्व	७ अमूर्तिकत्व
४ अनन्तवीय	८ अगुरुलघुभाव

कर्मावरण के कारण ये गुण प्रकट नहीं हो पाते। जीव द्वारा बाँधे जाने वाले आठ कम है—ज्ञानावरणीय दशनावरणीय, मोहनीय, अन्तराय, वेदनीय, आयुष्य नाम और गोत्र—य ही क्रमश आत्मा के आठ गुणा का प्रकट होने नहीं देते।

कर्मों की मूल प्रकृतिया उत्तरप्रकृतिया म पुण्य पाप का विवचन निम्न प्रकार मिलता है—

मूल प्रकृतियाँ	उत्तर प्रकृतिया	पाप प्रकृतिया	पुण्य प्रकृतियाँ
१ ज्ञानावरणीय	५	५	—
२ दर्शनावरणीय	९	९	—
३. वेदनीय	२	१ (असाता)	१ (साता)
४ मोहनीय	२८	२६	२
५ आयुष्य	४	१ (नरक)	३ (देव, मनुष्य, तिर्यन्च)
६ नाम	४२	३८	८ (उच्च)
७ गोत्र	२	१ (नीच)	१ (उच्च)
८ अन्तराय	५	५	—
	९७	८२	१५

पुण्य-शुभ कर्म है, किन्तु अकाम्य है, हेय है :—

योगीन्दु कहते है—"पुण्य से वैभव, वैभव मे अहकार, अहकार मे बुद्धिनाश और बुद्धिनाश से पाप होता है, अत हमे वह नही चाहिये।" आचार्य कुन्दकुन्द कहते है—"अशुभ कर्म कुशील है—बुरा है और शुभ कर्म सुशील है—अच्छा है, ऐसा जगत् मानता है। परन्तु जो प्राणी को ससार मे प्रवेश कराता है, वह शुभ कर्म सुशील, अच्छा कैसे हो सकता है ? जैसे लोहे की बेड़ी पुरुष को बाँधती है और सुवर्ण की भी बाँधती है, उसी तरह शुभ और अशुभ कृत कर्म जीव को बाँधते हैं। अत जीव ! तू दोनो कुशीलो से प्रीति अथवा ससर्ग मत कर। कुशील के साथ ससर्ग और राग से जीव की स्वाधीनता का विनाश होता है। जो जीव परमार्थ से दूर है, वे अज्ञान से पुण्य को अच्छा मानकर उसकी कामना करते हैं। पर पुण्य ससार गमन का हेतु है, अत तू पुण्य कर्म मे प्रीति मत कर।"

पुण्य काम्य नही है। पुण्य की कामना पर-समय है। योगीन्दु कहते है—"वे पुण्य किस काम के जो राज्य देकर जीव को दु ख परम्परा की ओर धकेल दे। आत्म-दर्शन की खोज मे लगा हुआ व्यक्ति मर जाए—यह अच्छा है, किन्तु आत्मदर्शन की खोज मे विमुख होकर पुण्य चाहे—वह अच्छा नही है।"

सुखप्रद कर्माशय भी दु ख है—महर्षि पतजलि लिखते है—"परिणाम-दु ख, ताप-दु ख और संस्कार-दु ख—ये तीन प्रकार के दु ख सब मे विद्यमान रहने के कारण और तीनो गुणों की वृत्तियो मे परस्पर विरोध होने के कारण विवेकी पुरुष के लिये सब के सब कर्मफल दु ख रूप ही है।" परिणाम-दु ख जो कर्म विपाक भोग काल में स्थूल दृष्टि से सुखद प्रतीत होता है, उसका परिणाम दु ख ही है। जैसे स्त्री प्रसग के समय मनुष्य को सुख भासता है, परन्तु उसका परिणाम—बल, वीर्य, तेज, स्मृति आदि का ह्रास प्रत्यक्ष देखने मे आता है। इसी प्रकार दूसरे भोगों में भी समझ लेना चाहिये।

गीता में भी कहा है—"जो सुख विषय और इन्द्रियो के संयोग से होता है, वह यद्यपि भोग काल मे अमृत के सदृश भासता है, परन्तु परिणाम मे विष के तुल्य है, इसलिये वह सुख राजस कहा गया है।" विवेकी पुरुष परिणाम-दु ख, ताप-दु ख, सस्कार-दु ख तथा गुणवृत्तियो के निरोध से होने वाले दु ख को विवेक के द्वारा समझता है। उसकी दृष्टि मे सभी कर्म विपाक दु ख रूप है। साधारण जनसमुदाय जिन भोगो को सुखरूप समझता है विवेकी के लिये वे भी दु:ख ही है। गीता में लिखा है—"इन्द्रियो और विषयो के सयोग से उत्पन्न होने वाले जितने भी भोग है, वे सब के सब दु:ख के ही कारण है।" ज्ञानी कहते हैं—काम-भोग शल्यरूप है, विषरूप है, जहर के सदृश है।

सवर—आस्रव का निरोध,

योग—चित्त वत्ति का निरोध—

सवर—वाचक उमास्वाति लिखते है—"आस्रव द्वार का निरोध करना सवर है।" आचार्य पूज्यपाद लिखते है—"जो शुभ-अशुभ कर्मो के आगमन के लिये द्वार रूप है, वह आस्रव है, जिसका लक्षण आस्रव का निरोध करता है, वह सवर है।"

आचाय हेमचन्द्र सूरि का कथन है—"जो सब आस्रवो के निरोध का हेतु है, उसे सवर कहते है।"

"जिस तरह नौका म छिद्रो से जल प्रवेश पाता है और छिद्रो को रूँध देने पर थोडा भी जल प्रविष्ट नही होता, वसे ही योगादि आस्रवो का सवत अवरुद्ध कर देने पर सवत जीव के प्रदेशो म कर्म द्रव्यो का प्रवेश नही होता।"

योग चित्तवत्तियों का निरोध—महर्षि पतजलि लिखते है—योगश्चित्तवत्तिनिरोध "चित्त की वत्तियो का रोकना योग है।" चित्त की वत्तिया जो बाहर को जाती हैं उन बहिमुख वृत्तियो को सासारिक विषयो से हटाकर उससे उल्टा अर्थात् अन्तमुख करके अपने कारण चित्त म लीन कर देना योग है।

चित्त मानो अगाध परिपूर्ण सागर का जल है। जिस प्रकार वह पृथ्वी के सम्बन्ध से खाडी, झील आदि के आन्तरिक तदाकार परिणाम को प्राप्त होता है, उसी प्रकार चित्त आन्तर-राग द्वेष काम क्रोध, लोभ मोह, भय आदि रूप आकार से परिणत होता रहता है तथा जिस प्रकार वायु आदि के वेग से जलरूपी तरग उठती है, इसी प्रकार चित्त इन्द्रियो द्वारा बाह्य विषयो मे आकर्षित होकर उन जैसे आकारो म परिणत होता रहता है। ये सब चित्त की वृत्तिया कहलाती है, जो अनन्त हैं और प्रतिक्षण उदय होती रहती है।

'वृत्तिया पाच प्रकार की है—क्लिष्ट अर्थात् राग-द्वेषादि क्लेशो की हेतु और अक्लिष्ट अर्थात् राग द्वेषादि क्लेशो का नाश करने वाली।" "पाच प्रकार की वृत्तियाँ इस प्रकार हैं—प्रमाण विपयय, विकल्प, निद्रा और स्मृति।"

पाँच महाव्रत एव पाँच सावभौम यम

जैनदशन म आत्मसाधना—आस्रवनिरोध के लिये पाच महाव्रतो की पालना के लिये विधान है, इसी प्रकार योग दशन मे योग की साधना के लिये पाँच सावभौम यमो की प्रतिष्ठा की गई है। हिंसा असत्य, चोरी, मथुन और परिग्रह से (मन, वचन और काय द्वारा) निवृत्त होना व्रत है। 'अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचय और अपरिग्रह—ये पाच यम हैं।'

मन से, वचन से और शरीर से (कम से) सभी प्राणियो की किसी प्रकार से (करना, कराना, अनुमोदन करना) हिंसा—कष्ट न पहुँचाना अहिंसा है। "भगवान महावीर ने कहा है—हे मानव! तू दूसरे जीवो की आत्मा को भी अपनी ही आत्मा के समान समझकर हिंसा काय म प्रवृत्त न हो। हे पुरुष! जिसे तू मारने की इच्छा करता है, विचार कर वह तेरे जसा ही सुख-दु ख का अनुभव करने वाला प्राणी है। जो हिंसा करता है उसका फल बाद मे वसा ही भोगना पडता है। अत मनुष्य किसी भी प्रकार प्राणी की हिंसा करने की कामना न करे।"

इसी प्रकार सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचय और अपरिग्रह महाव्रतो, यमो को तीन करण व तीन योग—मन, वचन और काय से पालना करनी चाहिए।

निर्जरा के बारह भेद, अष्टांग योग :—

निर्जरा-तप—भगवान महावीर ने कहा है—जिस तरह जल आने के मार्ग को रोक देने पर बड़ा तालाब पानी के उलीचे जाने और सूर्य के ताप से क्रमशः सूख जाता है, उसी प्रकार आस्रव—पाप कर्म के प्रवेश मार्गों को रोक देने वाले संयमी पुरुष के करोड़ो जन्मो के संचित कर्म तप के द्वारा जीर्ण होकर झड़ जाते हैं। निर्जरा तप के बारह (छह बहिरंग और छह आभ्यन्तर) अंग है—

१ अनशन—	उपवास आदि तप
२. ऊनोदरी	कम खाना, मिताहार
३ भिक्षाचरी—	जीवन निर्वाह के साधनो का संयम
४ रस-परित्याग—	सरस अहार का परित्याग
५. कायक्लेश—	आसनादि क्रियाएँ
६ प्रतिसंलीनता—	इन्द्रियो को विषयो से हटाकर अन्तर्मुखी करना
७ प्रायश्चित्त—	पूर्वकृत दोष विशुद्ध करना
८ विनय—	नम्रता
९ वैयावृत्य—	साधकों को सहयोग देना
१० स्वाध्याय—	पठन-पाठन
११ ध्यान—	चित्तवृत्तियो को स्थिर करना
१२ व्युत्सर्ग—	शरीर की प्रवृत्ति को रोकना।

अष्टांग योग—महर्षि पतंजलि ने लिखा है—"योग के अंगो का अनुष्ठान करने से—आचरण करने से अशुद्धि का नाश होने पर ज्ञान का प्रकाश विवेकख्याति तक प्राप्त होता है।"

योग दर्शन मे योग के आठ अंग माने गये है—

१ यम २ नियम ३ आसन ४ प्राणायाम ५ प्रत्याहार ६ धारणा ७ ध्यान ८ समाधि।

यम—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, और अपरिग्रह ये पाँच यम हैं।

नियम—शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान—ये पाँच नियम है।

आसन—निश्चल—हलन-चलन से रहित सुखपूर्वक बैठने का नाम आसन है।

प्राणायाम—श्वास और प्रश्वास की गति का नियमन प्राणायाम है।

प्रत्याहार—अपने विषयो के सम्बन्ध से रहित होने पर इन्द्रियो का चित्त के स्वरूप मे तदाकार हो जाना प्रत्याहार है।

धारणा—किसी एक देश मे चित्त को ठहराना धारणा है।

ध्यान—चित्त मे वृत्ति का एकतार चलना ध्यान है।

समाधि—जब ध्यान मे केवल ध्येय मात्र की प्रतीति होती है और चित्त का निज स्वरूप शून्य सा हो जाता है, तब वही ध्यान समाधि हो जाता है।

केवलज्ञान और विवेक जन्य ज्ञान और मोक्ष—

केवलज्ञान—वाचक उमास्वाति लिखते है—"मोह कर्म के क्षय से तथा ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्मो के क्षय से केवलज्ञान प्रकट होता है।

प्रतिब धक कम चार ह, इन म से प्रथम मोहनीय कम क्षीण होता है, नदन्तर अ तर्मुहूत्त वाद ही ज्ञानावरणीय, दशनावरणीय और अन्तराय—इन तीन कर्मो का क्षय होता है। इस प्रकार मोक्ष प्राप्त होन से पहले केवल उपयोग—गामा य और विशेप दोना प्रकार का सम्पूण नाध प्राप्त होता है। यही स्थिति सवज्ञत्व और सवदर्शित्व की है।

विवेकज य तारक ज्ञान—

महर्षि पतजलि लिखते हैं—"जो समार समुद्र से तारन वाला है सब विपयो को, सब प्रकार से जानन वाला है और बिना क्रम के जानन वाला है वह विवेक जनित ज्ञान है।"

"बुद्धि और पुरुप—इन दोना की जब समभाव से शुद्धि हो जानी है, तब कवल्य हाना है।"

इस प्रकार ब धहेतुआ के अभाव और निजरा से कर्मों का आत्यतिक क्षय होता है। सम्पूण कर्मो का क्षय होना ही मोक्ष है]।

पता—मत्री आय समाज
जन धमशाला के पास
हासी (हिसार) १२५०३३

卐 卐

नाव रहेगी तो पानी मे ही रहेगी। आप और हमको, जब तक मोक्ष नही होगा मोक्ष की साधना ससार मे रहकर ही करनी होगी। ससार इतना बुरा नही है। तीथकर, सत माधुपुरप, सब इस ससार मे ही तो जन्मे हैं। उ होने समार मे रहकर ही तो साधना की है। यही रहकर तीथकर बने सन्त बने, महापुरुप बन ब्रह्मचारी बने, सदाचारी बन। सच तो यह है कि बाह्य ससार इतना बुरा नही है। अन्दर का समार बुरा है। ससार बुरा नही है, ससार का भाव बुरा है। हम समार म भले रह कि तु ससार हमार अ दर नही रहना चाहिए। ससार का अन्दर रहना ही बुरा है। पाप का कारण है, कम-ब धन का हेतु है। नाव पानी म रहती है, बठने वाले को तिरानी है, स्वय भी तिरती है। जब तक नाव पानी के ऊपर बहती रहती है, तब तक बैठने वाले को कोई खतरा नही। नाव पानी मे भले रहे, किन्तु पानी नाव म नही रहना चाहिए, नही भरना चाहिए। जब पानी नाव म भरना शुरू हो जाता है तब खतरा पैदा हो जाता है। नाव के डूबन का डर रहता है। मरने की स्थिति आ जाती है, क्योकि नाव पानी से भारी हो गई है।

—आचाय श्री जिनकान्तिसागर सूरि
('उठ जाग मुसाफिर भोर भई' पुस्तक से)

卐 卐

जैन शिक्षा : स्वरूप और पद्धति

—डॉ० नरेन्द्र भानावत

विद्वान लेखक, चिन्तक, कवि तथा शोध अधिकारी
(प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय)

शिक्षा का स्वरूप

जिसने राग-द्वेष आदि विकारो पर विजय प्राप्त कर, आत्म-शक्तियो का पूर्ण रूप मे विकास कर, परमात्मस्वरूप प्राप्त कर लिया है, वह "जिन" है। "जिन" के उपासक जैन हैं। इस दृष्टि से जैन शब्द किसी कुल, वर्ण या जाति मे जन्म लेने वाले व्यक्ति का परिचायक न होकर गुणवाचक शब्द है। आत्मविजय के पथ पर बढने वाला साधक जैन कहलाता है। इस परिप्रेक्ष्य मे जैन शिक्षा वह शिक्षा है जो आत्म-विजय की ओर बढने का मार्ग सिखाती है।

शिक्षा का सामान्य अर्थ सीखना-सिखाना है। मानव-विकास का मूल साधन शिक्षा है। इसके द्वारा जन्म-जात शक्तियों का विकास कर, एक ओर लौकिक ज्ञान व कला-कौशल मे वृद्धि कर आजीविका के साधन जुटाने मे दक्षता प्राप्त की जाती है तो दूसरी ओर अपने व्यवहार मे परिष्कार और परिवर्तन लाकर पाशविक वृत्तियो से ऊपर उठते हुए, सभ्य व सुसंस्कृत बन सच्ची मानवता की प्रतिष्ठा की जाती है। इस आधार पर शिक्षा के मुख्यत. दो रूप हमारे समक्ष उभरते हैं —१ जीवन-निर्वाहकारी शिक्षा और २ जीवन-निर्माणकारी शिक्षा।

जीवननिर्वाह के लिये आवश्यक साधन जुटाना और उनके प्रयोग मे प्रावीण्य प्राप्त करना शिक्षा का प्राथमिक उद्देश्य होते हुए भी शिक्षा का अन्तिम लक्ष्य सुषुप्त आत्म-शक्तियो को जागृत कर, आत्मा पर पडे हुए समस्त विकारो को हटाकर, उसकी अनन्त शक्तियो का पूर्ण विकास करना है। सच्ची शिक्षा व्यक्ति को बन्धनो से मुक्त कर उसमे ऐसी क्षमता और सामर्थ्य विकसित करती है कि वह दूसरो को बन्धन से मुक्त करने मे सहायक बन सके। "सा विद्या या विमुक्तये" के मूल में यही उद्देश्य निहित है।

आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदव ने सयस्त होन से पूव असि, मसि, कृषि की शिक्षा देकर लोगा को आत्म निभर और स्वावलम्वी बनाया। विविध प्रकार के कला कौशल का जीवन मे प्रतिष्ठापित किया पर उनका अतिम लक्ष्य आत्म-सयम के माग पर बढकर सम्पूण बन्धना से मुक्त होना ही रहा। सभ्यता के विकास के साथ-साथ जीवन अधिक जटिल बनता गया और शिक्षा जीवन निर्माण के मूल लक्ष्य से हटकर जीवन निर्वाह के साधन जुटान तक सीमित रह गई। आत्मानुशासन को सुदृढ बनाने की बजाय, बाहरी प्रशासन म सहयाग करने वाली मशीनरी तयार करना मात्र उसका उद्देश्य रह गया। रचनात्मक शक्तियो के सिंचन एव सवधन के बजाय, सूचनात्मक ज्ञान का सग्रह और सचयन उसका मुख्य लक्ष्य बन गया। वह जीवन जीन की कला से हटकर आजीविका के जजाल म फस गई। फलस्वरूप न तो वह बाह्य प्रकृति म सन्तुलन स्थापित करने म समथ हा पा रही है और न अन्त प्रकृति के बिखरे सूत्रो का जोड सकी है।

शिक्षा के लिये अंग्रेजी म शब्द है—"Education" यह शब्द लेटिन भाषा के एज्यूकेटम (Educatum) से बना है। एज्यूकेटम म दो शब्द है। ए (इ) तथा डका (Duco) "ए" का अथ है अन्दर से और "डको" का अथ है आगे बढना। इस प्रकार एज्यूकेशन का अथ हुआ—अन्दर स आग बढना। अन्दर से आगे बढने की यह कला और शक्ति ही मनुष्य को पशु जगत् से ऊपर उठाती है। मनुष्य के बाहरी शरीर के बढाव की एक सीमा है। उस सीमा के बाद मनुष्य का शारीरिक विकास रुक जाता है। पर मनुष्य के अन्दर से आग बढन की अनन्त सम्भावनाएँ है। इन सम्भावनाओ का पूण करन का सामर्थ्य शिक्षा के द्वारा अर्जित किया जाता है। पर आज शिक्षा के बहिर्मुखी हो जान से अन्तर्मुखी विकास की प्रक्रिया रुक-सी गई है। जन शिक्षा मनुष्य की अनन्त ज्ञान, दशन, चारित्र और बल के विकास की सम्भावनाओ को पूणता प्रदान करने पर जोर देती है।

ज्ञानसम्पन्न होना मानव जीवन की साथकता की पहली शत है। 'उत्तराध्ययन सूत्र" के २६वें अध्ययन "सम्यक्त्व पराक्रम" मे इन्द्रभूति गौतम स्वामी भगवान महावीर से पूछते हैं—भगवन्! ज्ञान सम्पन्न होन से जीवात्मा का क्या लाभ हाता है?

नाण सम्पन्नयाए ण भते! जीवे किं जणयई?

उत्तर म भगवान् महावीर फरमाते हैं—ज्ञान-सम्पन्न होन से जीवात्मा सब पदार्थो के यथाथ भाव को जान सकती है और चतुगति रूप ससार अटवी म भटकती नही —

नाणसम्पन्नयाए ण जीवे सव्वभावाहिगम जणयइ।
नाण सपन्ने ण जीवे चउरन्ते ससार कान्तारे न विणस्सइ॥

जसे सूत्र (सूत डोरा) सहित सूई गुम नही होती, उसी प्रकार सूत्र (आगम ज्ञान—आत्म ज्ञान) से युक्त ज्ञानी पुरुष ससार म भटकता नही।

जहा सुई ससुत्ता, पडिया वि न विणस्सइ।
तहा जीवे ससुत्ते, ससारे न विणस्सई॥ —उत्तराध्ययन २६/५६

"स्थानाग" सूत्र के पांचवें स्थान म पांच कारणा म श्रुत ज्ञान अर्थात् शास्त्र की शिक्षा आवश्यक बताई है—पचहि ठाणेहि सुत्त सिक्खेज्जा त जहा—णाणटठयाए दसणटठयाए चारित्तटठयाए, वुग्गह विमोयणटठयाए, अहत्थे वा भावे जाणिस्सामी त्ति कट्टु। (४६८)

अर्थात् ज्ञान वृद्धि के लिये, दर्शन शुद्धि के लिये और पदार्थों के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करने के लिये सक्षेप मे ज्ञान-दर्शन और चारित्र के मार्ग पर बढते हुए एक ऐसे व्यक्तित्व का निर्माण करना शिक्षा का लक्ष्य है जो राग-द्वेष से मुक्त हो। "दशवैकालिक सूत्र" के ६वें अध्ययन मे शास्त्रों के स्वाध्याय का लाभ बताते हुए कहा गया है कि शास्त्राध्ययन से सत्य का साक्षात्कार होता है, चचल चित्त एकाग्र होता है, मन स्थिर होता है और स्वय स्थिर होकर दूसरो के अस्थिर मन को स्थिर बनाने की योग्यता अर्जित होती है।

शिक्षा की पद्धति

जैन शास्त्रो मे शिक्षा के मुख्यतः दो प्रकार बताये गये हैं—१ ग्रहण शिक्षा २. आसेवना शिक्षा। ग्रहण शिक्षा मे ज्ञान-संग्रह की प्रमुखता रहती है तो आसेवना शिक्षा मे ग्रहण किये हुए ज्ञान को आचरण मे लाने पर बल दिया जाता है। संक्षेप मे सम्यक् शिक्षा विचार और आचार का समन्वय है। इन दोनो प्रकार की शिक्षाओ की उपलब्धि के लिए "उत्तराध्ययन सूत्र" के ११वे अध्ययन मे स्पष्ट कहा है—

वसे गुरुकुले निच्चं, जोगव उवहाणवं।
पियकरे, पियंवाई से सिक्ख लद्धु मरिहई॥ १४॥

अर्थात् जो सदा गुरुकुल मे (गुरुजनो की सेवा मे) रहता है, जो योग और उपधान (शास्त्राध्ययन से सम्बन्धित विशेष तप) मे निरत है, जो प्रियकर है और प्रियभाषी है, वह शिक्षा प्राप्त करने के योग्य होता है।

उक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि शिक्षा के लिये गुरुसेवा मे रहना आवश्यक माना गया है। गुरु ही शिष्य मे उसकी सुषुप्त शक्तियो को विकसित करने की प्रेरणा फूकता है। गुरु के चरित्र का शिक्षार्थी पर सीधा प्रभाव पड़ता है। गुरु अध्ययन की कला सिखाकर उसे आत्मधर्म में स्थित करता है। ज्ञान नि शक बनकर, चिन्तन-मनन की प्रक्रिया द्वारा अनुभवन में आए इसके लिए स्वाध्याय पर बल दिया गया है। आज तो शिक्षा पद्धति मे अध्ययन-कौशल का इतना विकास हो गया है कि उससे स्वाध्याय-कला का निर्वासन सा हो गया है। बाह्य इन्द्रियो की क्षमता बढने से रग, गन्ध, रस, शब्द, स्पर्श आदि की पहचान और प्रतीति मे विकास हुआ है, विश्व की घटनाओ मे रुचि बढी है और नित्य नवीन तथ्य जानने की जिज्ञासा जगी है पर इसके समानान्तर आत्म-चैतन्य को जानने की जिज्ञासा और उसकी शक्ति को प्रकट करने की क्षमता नही बढी है। फलस्वरूप ज्ञान की आराधना आत्मा के लिये हितकारक, विश्व के लिये कल्याणकारी और वृत्ति-परिष्कारक नही बन पा रही है। ज्ञान के मंथन से अमृत के बजाय विष अधिक निकल रहा है। और उस विष को पचाने के लिये जिस शिव-शक्ति का उदय होना चाहिये, वह नही हो पा रही है।

इस अमृतमयी शिव-शक्ति का उदय स्वाध्याय के माध्यम से ही हो सकता है। स्वाध्याय के तीन अर्थ हैं—स्वस्य अध्ययन—१ अपने आप का अध्ययन, २. स्वेन अध्ययनं—अपने द्वारा अपना अध्ययन, ३. सु+आङ्+अध्याय अर्थात् सद्ज्ञान का मर्यादापूर्वक अध्ययन।

स्वाध्याय प्रक्रिया के पाँच स्तर-सोपान हैं। स्थानांग सूत्र के ५वे स्थान मे कहा है—

पंचविहे सज्झाए पण्णत्ते त जहा—वायणा, पुच्छणा, परियट्टणा, अणुप्पेहा, धम्मकहा।४६५।

अर्थात् वाचना, पृच्छना, परिवर्तना, अनुप्रेक्षा और धर्मकथा।

सर्वप्रथम "वाचना" द्वारा अर्थात् पढ़कर सिद्धान्त के सत्य को जाना जाता है। फिर उसके

सम्बन्ध में रही हुई शंकाओं के लिए प्रश्न प्रतिप्रश्न पूछकर ग्रहण किए हुए ज्ञान को शंकारहित बनाया जाता है। "वाचना" रीडिंग के समकक्ष है तो पृच्छा डिसकशन रूप है। 'परिवर्तना' में ग्रहण किये हुए ज्ञान को परिपुष्ट करने के लिये बार बार उसकी आवृत्ति की जाती है मनन किया जाता है, ज्ञान का परिग्रहण (रिकेपिच्यूलेशन) किया जाता है। 'अनुप्रेक्षा' में अनुभव के स्तर पर सिद्धान्त के सत्य को जाना जाता है। इसमें ग्रहण किए हुए ज्ञान का भावन अर्थात् पाचन होता है। यह रेट्रास्पेक्शन के निकट है। 'धर्मकथा' में ज्ञान रस रूप में परिणत हो जाता है, विचार आचार में ढल जाते हैं। धर्म का अर्थ ही है—धारण करना (रिटेन्शन) इस प्रक्रिया में ज्ञान अलग से जानने की वस्तु नहीं रहता। वह धारणा का अंग बनकर चारित्र का रूप ले लेता है। इसी अर्थ में शिक्षा को चरित्र कहा है।

आज की शिक्षा पद्धति में स्वाध्याय का यह क्रम मात्र यान्त्रिक बनकर रह गया है। वह भीतर की परतों को जोड़ नहीं पाता। अनुप्रेक्षा और धारणा का तत्व वर्तमान शिक्षा पद्धति से ओझल हो गया है। उसे प्रतिष्ठापित करने के लिये शिक्षा के साथ दीक्षा आवश्यक है। दीक्षान्त समारोह आयोजित करने के पीछे शायद यही लक्ष्य रहा है। पर अब तो दीक्षान्त समारोह भी समाप्तप्राय हैं। दीक्षान्त का अर्थ ही है—शिक्षा के अन्त में दीक्षा। दीक्षा का अर्थ है—दिशा का ज्ञान। और उस ज्ञान को प्राप्त कर उस दिशा में चलने की दक्षता का अर्जन। पर आज तो दिशा ही उलट गई है। यही कारण है कि ज्ञान के नाम पर साक्षरता प्रधान हो गई है। सरसता छूट गई है। केवल आंख से बांचना न मन की अनुप्रेक्षा है और न आत्मा की धर्मकथा है। इसीलिये सारी विद्या सरस्वती न बनकर राक्षसी बन गई है। कहा है—

> सरसा विपरीतश्चेत, सरसत्वं न मुञ्चति।
> साक्षरा विपरीताश्चेत् राक्षसा एव निश्चिता॥

सरस्वती के "सरस" में व्यक्ति के मन को जोड़ने का अनूठा सामर्थ्य रहता है। उसमें कथनी और करनी की एकता रहती है। उसको उल्टा सीधा कैसे ही पढ़ो, सरस' सरस ही बना रहता है। पर साक्षरा ज्ञान मानव मन को जोड़ता नहीं तोड़ता है, वह कथनी-करनी में भेद स्थापित करता है। इसी लिये "साक्षरा" उलटने पर 'राक्षसा' बन जाता है।

स्वाध्याय "स्व" में प्रतिष्ठित होने की प्रक्रिया है। इसके लिये आवश्यक है कि स्वाध्यायी पाँच अणुव्रतों—अहिंसा, सत्य अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का पालन करे। इन अणुव्रतों की पुष्टि के लिये ३ गुणव्रतों—दिशाव्रत, उपभोग परिभोग परिमाण व्रत और अनर्थदण्ड विरमण व्रत (निष्प्रयोजन प्रवृत्ति का त्याग) की व्यवस्था की गई है और इन गुणव्रतों के पोषण के लिये चार शिक्षाव्रतों का विधान किया गया है। ये शिक्षाव्रत हैं—सामायिक देशावकासिक, पौषधोपवास एवं अतिथि संविभाग। चारों शिक्षाव्रत भोगवृत्ति पर नियन्त्रण स्थापित करते हुए आत्मविजय की प्रेरणा देते हैं। सामायिक व्रत अर्थात् पक्षपात रहित यथार्थ स्वरूप में रमण, सुख-दुख, लाभ-हानि, यश-अपयश, जन्म मरण में समताभाव, भोग के प्रति अनासक्ति। देशावकासिक व्रत अर्थात् व्यापक दिशाओं की भोगवृत्ति को सीमित कर उसे देश-काल की मर्यादा में बाँधने का नियम, कामनाओं पर नियन्त्रण। पौषधोपवास व्रत अर्थात् भोगवृत्ति से हटकर आत्मवृत्ति के निकट रहना, आत्म गुणों का पोषण करना। अतिथि संविभाग व्रत अर्थात् दूसरों के लिए अपने हिस्से की भोगसामग्री का त्याग करना सेवा की ओर अग्रसर होना सबको आत्मतुल्य समझना, उनके सुख-दुखों में भागीदार होना। इन व्रतों को शिक्षाव्रत कहना इस बात का सूचक है कि शिक्षा का मूल लक्ष्य भोग से त्याग की ओर बढ़ते हुए अपने स्व को सर्व में विलीन कर देना है।

इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए दैनिक कार्यक्रमों मे ६ आवश्यक कार्य सम्पन्न करने पर बल दिया गया है। इन्हे आवश्यक कहा गया है। ये हैं—सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वन्दना, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग और प्रत्याख्यान। सामायिक का मुख्य लक्ष्य आत्म-चिन्तन, आत्म-निरीक्षण है। बिना अहं का विसर्जन किए आत्म-चिन्तन की ओर प्रवृत्ति नहीं होती। अत अहं को गलने के लिये, जो आत्मविजेता बन चुके है ऐसे २४ तीर्थंकरो के गुण-कीर्तन स्तवन और पंच परमेष्ठी अर्थात् अरिहन, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु की वन्दना करने का विधान किया गया है। "प्रतिक्रमण" मे असावधानीवश हुए दोषो का प्रायश्चित्त कर उनसे बचने का सकल्प किया जाता है। "कायोत्सर्ग" मे देहातीन होने का अभ्यास किया जाता है। और "प्रत्याख्यान" मे सम्पूर्ण दोषो के परित्याग का सकल्प लिया जाता है।

श्रमणो को "उत्तराध्ययन" सूत्र के २६वे अध्ययन की १८वी गाथा मे निर्देश दिया गया है कि दिन के प्रथम प्रहर मे स्वाध्याय, दूसरे मे ध्यान अर्थात् अर्थ का चिन्तन, तीसरे मे भिक्षाचरण और चौथे मे पुन स्वाध्याय किया जाय—

पढम पोरिसि सज्झाय, बीय झाण झियायई।
तइयाए भिक्खायरियं पुणो, चउत्थी सज्झाय॥

इसी प्रकार रात्रि के प्रथम पहर मे स्वाध्याय, दूसरे मे ध्यान, तीसरे मे निद्रा और चौथे मे पुन स्वाध्याय करने का विधान है। इससे स्पष्ट है कि दिन-रात के आठ पहरो मे चार पहर केवल स्वाध्याय के लिये नियत किये गये है।

विधिपूर्वक श्रुत की आराधना करने के लिये आठ आचार बताये गये है—

१. जिस शास्त्र का जो काल हो, उसको उसी समय पढना कालाचार है।
२ विनयपूर्वक गुरु की वन्दना कर पढना विनयाचार है।
३. शास्त्र एव ज्ञानदाता के प्रति बहुमान होना बहुमान आचार है।
४. तप, आयम्बिल आदि करके पढना उपधान आचार है।
५ पढाने वाले गुरु के नाम को नही छिपाना अनिह्नवाचार है।
६ शब्दो ह्रस्व-दीर्घ का शुद्ध उच्चारण करना व्यजनाचार है।
७ सम्यक् अर्थ की विचारणा अर्थाचार है।
८ सूत्र और अर्थ दोनो को शुद्ध पढना और समझना तदुभयाचार है।

शिक्षक का स्वरूप

शिक्षक को गुरु कहा गया है। आचार्य और उपाध्याय प्रमुख गुरु हैं। आचार्य का मुख्य कार्य वाचना देना और आचार का पालन करना-करवाना है। उपाध्याय का मुख्य कार्य ज्ञानदान देना है। जो अध्ययन के स्व के निकट ले जाये, वह उपाध्याय है। सामान्य लौकिक शिक्षा पद्धति मे भी आचार्य और उपाध्याय पद समादृत है। जैन शास्त्रकारो ने आचार्य और उपाध्याय को विशेष पूजनीय स्थान देकर उन्हे पच परमेष्ठी महामन्त्र मे प्रतिष्ठित किया है। आचार्य के लिये "आवश्यक सूत्र" मे कहा गया है कि वे पाँच इन्द्रियो के विषय को रोकने वाले, नव वाड सहित ब्रह्मचर्य के धारक, क्रोध, मान, माया, लोभ, कषायो के निवारक, पच महाव्रतो से युक्त, पचविध आचार—ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारि-

आचार, तपाचार, वीर्याचार का पालन करने म समथ, पाँच समितियो और तीन गुप्तिया से युक्त होत हैं। आचाय हेमचन्द्र ने गुरु के लक्षण बताते हुए कहा है—

महाव्रताधरा धीरा भक्ष्यमानोपजीविन ।
सामायिकस्था, धर्मोपदशका गुरवा मता ।

—योगशास्त्र २/८

अर्थात् महाव्रतधारी धयवान, शुद्ध भिक्षामात्र से जीवन निर्वाह करने वाले समताभाव म स्थिर रहने वाले, धर्मोपदेशक महात्मा गुरु माने गये हैं।

शिक्षार्थी की पात्रता

जीवन निर्माणकारी शिक्षा मे आगे बढने के लिये कौन याग्य-अयोग्य है, इसकी शास्त्रा म बडी चर्चा की गई है। भगवान् महावीर ने उत्तराध्ययन सूत्र के ११व अध्ययन मे शिक्षार्थी की पात्रता की चर्चा करते हुए कहा है —

अह अट्ठहि ठाणेहिं सिक्खासीत्ति वुच्चइ।
अहस्सिरे सया दते, ण य मम्ममुदाहरे ॥४॥
णासीले ण विसीले, ण सिया अइलोलुए।
अकोहणे सच्चरए सिक्खासीले त्ति वुच्चई ॥५॥

अर्थात् इन आठ कारणो से व्यक्ति शिक्षा ग्रहण करन के याग्य कहलाता है। १ जा अधिक हँसने वाला न हो, २ सदा इन्द्रिय दमन करता हो, ३ किसी का मम प्रकाशन न करता हो ४ अखण्डित शील वाला हो ५ अति लोलुप न हो, ६ श्रेष्ठ आचार वाला हो ७ क्रोधी न हो और ८ सत्य म रत हो।

उत्तराध्ययन सूत्र के ११व अध्ययन की १२वी गाथा म कहा गया है कि सुशिक्षित व्यक्ति स्खलना होन पर भी किसी पर दोपारोपण नही करता और न कभी मित्रा पर क्रोध करता है। यहाँ तक कि अप्रिय के लिए भी हितकारी बात करता है।

शिक्षार्थी का विनीत और अनुशासनबद्ध होना आवश्यक माना गया है। धम्मस्स विणओ मूल" (दशवैकालिक ९/२/२) अर्थात् विनय को धम का मूल कहा गया है। 'दशवैकालिक सूत्र' के ९वें अध्ययन मे कहा है—

विवत्ती अविणीयस्स, सपत्ती विणियस्स य।
जस्सेय दुहओ नाय सिक्ख से अभिगच्छइ ॥

अर्थात् अविनीत को विपत्ति प्राप्त होती है और सुविनीत को सपत्ति। जिसन य दोना बात जान ली ह, वही शिक्षा प्राप्त कर सकता है। इसी अध्याय म कहा गया है कि जो आचाय और उपाध्याय की सेवा शुश्रूषा तथा उनकी आज्ञा का पालन करता है उसकी शिक्षा उसी प्रकार बढती है जैसे—जल से सीचा हुआ वृक्ष—

जे आयरिय उवज्झायाण सुस्सूसावयणकरा।
तेसि सिक्खा पवड्ढति, जलसित्ता इव पायवा ॥ —९/१२

गुरु की आज्ञा न मानने वाला, गुरु के समीप रहकर भी उनकी शुश्रूषा नही करने वाला, उनके प्रतिकूल काय करने वाला तथा तत्त्वज्ञानरहित अविवेकी अविनीत कहा गया ह। उत्तराध्ययन सूत्र १-३॥

जो विद्यावान होते भी अभिमानी है, अजितेन्द्रिय है, बार-बार असम्बद्ध भाषण करता है वह अबहुश्रुत है। उत्तराध्ययन ११/२।

ऐसे शिक्षार्थी को शिक्षणशाला से बहिर्गमित करने का विधान है। 'उत्तराध्ययन सूत्र' में ऐसे शिक्षार्थी की भर्त्सना करते हुए उसे सडे कानों वाली कुतिया से उपमित किया गया है। और कहा है कि —जैसे सडे कानो वाली कुतिया सब जगह से निकाली जाती है, उसी तरह दुष्ट स्वभाव वाला, गुरुजनों के विरुद्ध आचरण करने वाला वाचाल व्यक्ति संघ अथवा समाज से निकाला जाता है। ऐसा समझ कर अपना हित चाहने वाला अपनी आत्मा को विनय मे स्थापित करे—

विणए ठविज्ज अप्पाणं, इच्छंतो हियमप्पणो। —उत्तराध्ययन सूत्र १/६

शास्त्रों मे विनय का अर्थ सामान्य शिष्टाचार या नम्रता तक ही सीमित नही है अपितु वह भीतरी अनुशासन, आत्मनिग्रह और संयम के रूप मे प्रतिपादित है। जिसका मन अस्थिर और चंचल है वह विनयभाव को नही धारण कर सकता है। मन की अस्थिरता और चंचलता, भोगवृत्ति और आसक्ति का परिणाम है। ऐसा व्यक्ति न अपने शासन मे रहता है और न किसी अन्य के। 'आचारांग सूत्र' में ऐसे व्यक्ति को अनेक चित्त वाला बताया है और कहा है कि वह अपनी अपरिमित इच्छाओं की पूर्ति के लिये दूसरे प्राणियो का वध करता है। उनको शारीरिक और मानसिक कष्ट पहुँचाता है। पदार्थों का संचय करता है और जनपद के वध के लिए सक्रिय बनता है। निश्चय ही ऐसी मानसिकता में जीने वाला सच्ची शिक्षा ग्रहण नही कर सकता। "स्थानांग सूत्र" के चौथे स्थान मे कहा है—

चत्तारि अवायणिज्जा पण्णत्ता तं जहा—
अविणीए, विगइपडिबद्धे अणुवसमिए णाइमाइ ॥३२६॥

अर्थात् चार व्यक्ति शिक्षा ग्रहण के अयोग्य कहे गये हैं—अविनीत, स्वादेन्द्रिय मे गृद्ध, अनुपशांत अर्थात् अति क्रोधी और कपटी। सच्ची शिक्षाप्राप्ति ज्ञान, दर्शन चारित्र और तप मे परस्पर जुड़ाव है। यह जुड़ाव मात्र अध्ययन से संभव नही पर इसके लिये स्वाध्याय की प्रक्रिया से गुजरना होगा। भगवान महावीर ने अहकार, क्रोध, प्रमाद, रोग और आलस्य को शिक्षा-प्राप्ति मे बाधक माना है—

अह पंचहि ठाणेहिं, जेहिं, सिक्खा न लब्भई।
थम्मा कोहा, पमाएण, रोगेणालस्सएण य ॥

—उत्तरा० ११/३

शिक्षार्थी के लिये अप्रमत्तता और जागरूकता अनिवार्य है। इसके अभाव मे व्यक्ति आतरिकता से जुड़ नही पाता और विवाद व मूर्च्छा मे ग्रस्त बना रहता है। आत्म-जागरणा द्वारा ही इस मूर्च्छा को तोड़ा जा सकता है। भगवान महावीर ने जयणा अर्थात् विवेक को इसका साधन बताया है। संक्षेप मे जैन शिक्षा का अर्थ है—अपने आतरिक वीरत्व से जुडना, चेतना के स्तर को ऊर्ध्वमुखी बनाना और प्राणिमात्र के प्रति मैत्री सम्बन्ध स्थापित करना।

पता—सी-२३५ ए, तिलक नगर, जयपुर ४

सम्यक् आचार की आधारशिला सम्यक्त्व : आचारांग के परिप्रेक्ष्य में

—साध्वी सुरेखा श्री जी
(प० पू० प्र० विचक्षण श्री जी म० सा० शिष्या—विदुषी सचिवा)

भारतीय दर्शन की पृष्ठभूमि में आस्तिक दर्शनों में जैनदर्शन जीवात्मा को ही परमात्म स्वरूप होना स्वीकार करता है। आत्मा का अभ्युदय आत्माभिमुखता की ओर अग्रसर हुए बिना नहीं हो सकता। पराभिनिवेश से मुक्त है जिसकी आत्मा वही परमात्म-पद की ओर कदम बढ़ा सकता है। जब तक निश्चित रूप से जीवात्मा स्व-पर भेदविज्ञानी नहीं बन जाता, तब तक मोक्षाभिमुख नहीं हो पाता। यह स्व पर भेदविज्ञान अर्थात् जीव और जगत्, जड़ और चेतन का पृथक्-पृथक् ज्ञान और तदनुसार आचरण हो तब ही पाता है। यही जैनागमों में "सम्यक्त्व" शब्द से अभिप्रेत है। ससार भ्रमण की परिधि को सम्यक्त्व सीमित कर देता है।

हालांकि लौकिक व्यवहार में सम्यक्त्व/समकित यह शब्द जैनधर्म में प्रायः सभी धर्म-स्थानों में श्रवण गोचर होता है। कभी-कभी तो यह भी सुनाई देता है कि मुझे अमुक गुरु की समकित है। मैंने उन गुरु से समकित ली है। तो क्या सम्यक्त्व अथवा समकित लेन-देन की वस्तु है जो कि गुरु अपने अनुयायियों को प्रदान करते हैं। इस प्रथा के रूप में ही सम्यक्त्व है या अनेकान्तवादी जैनदर्शन व जैनागम अन्य अर्थ का द्योतित करता है। व्यवहार और निश्चय इन दो पहलुओं का दृष्टिकोण से प्रत्येक जैनदर्शन हर वस्तु की मीमांसा करता है। उपर्युक्त प्रथा व्यावहारिक हो सकती है पर निश्चय में सम्यक्त्व का मूल्यांकन अनूठे ढंग से किया गया है।

सम्यक् आचार की आधारशिला सम्यक्त्व' किस प्रकार हो सकता है? उससे पूर्व यह जान लें कि सम्यक्त्व है क्या? सम्यक्त्व का अर्थ हो गया है श्रद्धान! पदार्थों पर श्रद्धान! वस्तु तत्व पर श्रद्धान! अन्य दर्शनों ने जिसे श्रद्धा कहा उसी को जैनों ने पारिभाषिक शब्द दिया है सम्यक्त्व अर्थात् सम्यग्दर्शन। वाचकवर्य उमास्वाति ने इसे परिभाषित किया तत्त्वार्थ सूत्र में 'तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्'। यहाँ तत्त्वों पर श्रद्धा ही सम्यक्त्व है, यह निर्देश किया गया है। व्युत्पत्तिपरक अर्थ करें तो सम् पूर्वक अञ्च धातु से क्विप् प्रत्यय करने पर सम्यक् शब्द निष्पन्न होता है। समञ्चति इति सम्यक्" इस प्रकार की व्युत्पत्ति होती है। प्रकृत में इसका अर्थ प्रशंसा है। उमास्वाति ने अपने भाष्य में सम्यग् शब्द का अर्थ करते हुए कहा—'सम्यगिति प्रशंसार्थो निपातः समञ्चतेर्वा भावः' अर्थात् निपात से सम्यक् यह प्रशंसार्थक शब्द है तथा सम्-पूर्वक अञ्च् धातु यह भाव से है। राजवार्तिककार अकलंकदेव के अनुसार प्रशंसार्थक (निपात) के साथ यह प्रशस्त रूप गति, जाति, कुल, आयु

विज्ञान आदि अभ्युदय और निःश्रेयस का प्रधान कारण होता है। अथवा सम्यक् का अर्थ तत्व भी किया जा सकता है, जिसका अर्थ होगा तत्व दर्शन, अथवा यह क्विप् प्रत्ययान्त शब्द है, जिसका अर्थ है—जो पदार्थ जैसा है उसे वैसा ही जानने वाला।

सम्यक् शब्द की व्युत्पत्ति करने के पश्चात् अब 'दर्शन' शब्द की व्युत्पत्ति पूज्यपाद करते है— 'पश्यति दृश्यतेऽनेन दृष्टिमात्र वा दर्शनम्' अर्थात् जो देखना है, जिसके द्वारा देखा जाय या देखना मात्र।

सिद्धसेन के अनुसार 'दर्शनमिति दृशेरव्यभिचारिणी सर्वेन्द्रियानिन्द्रियार्थ प्राप्ति' अव्यभिचारी इन्द्रिय और अनिन्द्रिय अर्थात् मन के सन्निकर्ष से अर्थ प्राप्ति होना दर्शन है। दर्शन शब्द की व्युत्पत्ति 'दृशि' धातु के ल्युट् प्रत्यय करके भाव मे इक् प्रत्यय होने पर जिसके द्वारा देखा जाता है, जिससे देखा जाता है तथा जिसमे देखा जाता है वह दर्शन है। इस प्रकार जीवादि के विषय मे अविपरीत अर्थात् अर्थ को ग्रहण करने मे प्रवृत्त ऐसी दृष्टि सम्यग्दर्शन है। अथवा "प्रशस्त दर्शन सम्यग्दर्शनमिति" अर्थात् जिनेश्वर द्वारा अभिहित अविपरीत अर्थात् यथार्थ द्रव्यो और भावो मे रुचि होना यह प्रशस्त दर्शन है। प्रशस्त इसलिए है कि मोक्ष का हेतु है। व्युत्पत्ति पक्ष के आश्रित अर्थ को लेकर कहते है—सगत वा दर्शन सम्यग्दर्शनम्' अर्थात् जिनप्रवचन के अनुसार सगत विचार करना वह सम्यग्दर्शन है। इस प्रकार जिनोक्त तत्वो पर ज्ञानपरक होने वाली श्रद्धा को सम्यग्दर्शन कहा।

तत्त्वार्थ सूत्र मे तथा टीकाकारो ने श्रद्धापरक अर्थ को लेकर ही सम्यक्त्व की व्युत्पत्ति की। किन्तु आगमो में इसका अर्थ भिन्न है। आगमो मे सर्व प्राचीन व प्रथम अग है आचाराग। आचाराग सूत्र आचारप्रधान है। आचाराग मे सम्यक्त्व नामक अध्ययन होने पर भी सम्यक्त्व का अर्थ श्रद्धापरक नही वरन् सम्यक्आचारपरक है। सम्यक्त्व को स्पष्ट रूप से मुनि आचार कहा गया है। हाँ, सम्यक्आचार श्रद्धापूर्वक होता है। श्रद्धा ।च॑ण मे सम्यक्तता, समीचीनता लाती है, स्थिरता लाती है, शुद्धता लाती है। सम्यक्त्व नामक अध्ययन के अतिरिक्त अन्य अध्ययनो मे भी सम्यक्त्व का उल्लेख तो है पर वहाँ भी सम्यक्त्व को सयम के, मुनित्व के समान माना है। सयमी चारित्रवान् मुनि के आचार को ही सम्यक्त्व से अभिप्रेत किया है। सम्यक्त्व और मुनित्व का एकीकरण करते हुए कहा है कि—

"जो सम्यक्त्व है उसे मुनिधर्म के रूप में देखो और जो मुनिधर्म है उसे सम्यक्त्व के रूप मे देखो।"

हालाँकि चूर्णिकार और वृत्तिकार के अनुसार मौन अर्थात् मुनिधर्म—सयमानुष्ठान है। जहाँ मुनि-धर्म है वहाँ सम्यग्ज्ञान है और सम्यग्ज्ञान जहाँ है वहाँ सम्यक्त्व है। ज्ञान का फल विरति होने से सम्यक्त्व की भी अभिव्यक्ति होती है। इस तरह सम्यक्त्व, ज्ञान और चारित्र मे एकता है।

स्पष्ट है सम्यक्त्व को मुनित्व से अभिप्रेत किया गया है। मुनित्व अर्थात् आचरण की समीचीनता। सम्यक्त्व नामक अध्ययन मे चार उद्देशक है। प्रथम उद्देशक में सम्यग्वाद का अधिकार है। अविपरीत अर्थात् यथार्थ वस्तुतत्व का प्रतिपादन हो, वह सम्यग्वाद है। इस उद्देशक मे हिसा का स्वरूप बताकर उसका निषेधात्मक रूप अहिसा का विधान किया है कि जितने भी तीर्थकर हुए है, हुए थे तथा होगे उन सभी का यह कहना है कि किसी भी प्राणी की हिसा नही करनी चाहिए। यही धर्म शुद्ध है, नित्य है, शाश्वत है और जिन प्रवचन मे प्ररूपित है। इस प्रकार अहिसा तत्व का सम्यक् एवं सूक्ष्म निरूपण के साथ अहिसा की त्रैकालिक एव सार्वभौमिक मान्यता, सार्वजनीनता एव सत्य-तथ्यता का सम्यग्वाद के रूप मे प्रतिपादन किया है। अहिसा व्रत को स्वीकार करने वाले साधक को कहाँ-कहाँ, कैसे-कैसे सावधान रहकर अहिसा व्रत को स्वीकार करने का अहिसा के आचरण के लिए पराक्रम करना चाहिए। इस प्रकार आचाराग के ४—१ मे सम्यग्वाद के परिप्रेक्ष्य मे अहिसा धर्म की चर्चा की गई है। चतुर्थ अध्ययन के दूसरे उद्देशक मे धर्मप्रवादियो की धर्म परीक्षा का निरूपण है। विभिन्न धर्मप्रवादियो के प्रवादो में युक्त-

अयुक्त की विचारणा होने से धर्म की परीक्षा का निरूपण है। इस उद्देशक में हिंसा और अहिंसा म युक्त क्या है और अयुक्त क्या है ? इसकी परीक्षा की जाय। विभिन्न मतावलम्बियों से जो यह कहते हैं कि 'यज्ञ यागादि म होने वाली हिंसा दोषयुक्त नहीं" उनको बुलाकर पूछा जाय कि दुःख सुख रूप है या दुःख रूप है ? तो सत्य तथ्य यही वे कहेंगे कि दुःख तो दुःख रूप ही है। क्योंकि दुःखार्थी कोई प्राणी नहीं, सभी प्राणी सुखार्थी है। अतः हिंसा अनिष्ट एवं दुःख रूप होने से त्याज्य है और अहिंसा इष्ट एवं सुखरूप होने से ग्रहण करने योग्य—उपादेय है। इसी के साथ आस्रव और परिस्रव की परीक्षा के लिए आस्रव म पड़े हुए ज्ञानीजन कैसे परिस्रव (निर्जरा धर्म) म प्रवृत्त हो जाते हैं। तथा परिस्रव (धर्म) का अवसर प्राप्त होने पर भी अज्ञानी जन कैसे आस्रव म फँसे रहते हैं ? इस प्रकार आस्रव मग्न जनों का विभिन्न दुःखों का स्पर्श होता है। फलस्वरूप प्रगाढ़ वेदना होती है। इसमें ज्ञानी और अज्ञानियों की गतिविधियों एवं अनुभव के आधार पर धर्मपरीक्षा की है।

तीसरे उद्देशक मे निर्दोष/अनवद्य तप से ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है न कि बाल-अज्ञान तप से, विश्लेषण किया है। तपस्वी कौन है ? उनके गुण एवं प्रकृति तथा वे किस प्रकार तपश्चर्या कर कर्मक्षय करते हैं उसका विधान किया गया है। *जो अहिंसक हैं, वे ज्ञानी हैं। उनकी वृत्तियों का निरीक्षण* करें तो ज्ञात होगा कि वे धर्म मे विशेषज्ञ होने के साथ सरल व अनासक्त हैं। वे कषायों को भस्मीभूत कर कर्मों का क्षय करते है। ऐसा सम्यग्दृष्टि कहते हैं क्योंकि "दुःख कर्मजनित हैं' वे इस भली भाँति जानते हैं। अतः कर्म-स्वरूप जानकर उसका त्याग करने का उपदेश देते हैं। जो अरिहन्त की आज्ञा के आराधी निस्पृही बुद्धिमान पुरुष हैं वे सर्वात्मदर्शन करके देहासक्ति छोड़ देते हैं। जिस प्रकार जीर्णकाष्ठ को अग्नि शीघ्र जला देती है उसी प्रकार समाहित आत्मवान वीर पुरुष कषाय रूपी कर्म शरीर को तपश्चर्या द्वारा शीघ्र जला देते हैं।

चतुर्थ उद्देशक म संक्षेप म चारित्र का निरूपण किया है। संयत जीवन कैसा ? जो पूर्व सम्बन्धो का त्याग कर विषयासक्ति छोड़ देता है। इस प्रकार पुनर्जन्म को अवरुद्ध कर दिया है जिन्होंने ऐसे वीर पुरुषों का यह संयम मार्ग दुरूह है। स्थिर मन वाला ब्रह्मचर्य से युक्त ऐसा वीर पुरुष संयम म रत सावधान, अप्रमत्त तथा तप द्वारा शरीर को कृश करके कर्मक्षय करने म प्रयत्नशील होता है। जो विषय भोगों म लिप्त हैं उन्हें जानना चाहिए कि मृत्यु अवश्यंभावी है। जो इच्छाओं के वशीभूत है असंयमी है और परिग्रह म गृद्ध हैं, वे ही पुनः जन्म लेते हैं। जो पापकर्मों से निवृत्त हैं, वे ही वस्तुतः वासनारहित हैं। भोगैषणारहित पुरुष की निन्दा प्रवृत्ति कैसे हो सकती है ? जो समितियों म समित ज्ञान सहित संयत शुभाशुभदर्शी हैं, ऐसे ज्ञानियों की क्या उपाधि हो सकती है ? सम्यग्द्रष्टा की कोई उपाधि नहीं होती ऐसा ज्ञानी पुरुष कहते हैं।

इन चारों उद्देशकों म सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्तप और सम्यक्चारित्र का क्रमशः उल्लेख किया है। श्रद्धा अर्थ का यहीं उल्लेख नहीं है। इन चारों ही उद्देशकों पर दृष्टिपात कर तो सम्यक्त्व यहाँ सम्यक् आचरण से ही अभिप्रेत है। अहिंसा, सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह काम-वासना रहित अनासक्ति आदि से युक्त है तदनुसार ही उसका आचरण है उसे सम्यक्त्व हो सकता है। ज्ञान मात्र अपेक्षित नहीं, वरन् यहाँ आचरण को प्रधान बताया है। जो सम्यक्त्वी/सम्यग्दृष्टि है उसके कार्य कम होते हैं, उसका उल्लेख करते हुए कहा है कि तत्ववेत्ता मुनि कल्याणकारी मोक्षमार्ग को जानकर पाप कर्म नहीं करता।

उक्त कथन से स्पष्ट है कि आचरण की विशुद्धता सम्यक्त्व पर आधारित है। सम्यक् आचरण म युक्त जीवों ही चरम लक्ष्य की ओर कदम बढ़ा सकता है। क्योंकि कहा भी है कि जो वीर सम्यक्त्वदर्शी/सम्यग्दृष्टि मुनि है वही संसार को तिरता है।

इस प्रकार आचाराग मे सम्यक्त्व का अर्थ सम्यक्आचरण पर आधारित बताया है। किन्तु अन्य आगमो व आगमेतर साहित्य मे सम्यक्त्व के प्रचलित अर्थ व स्वरूप मे भिन्नता है। अपेक्षाभेद से, निश्चय-व्यवहारनय मे उसमे समानता भी द्योतित होती है । आचाराग मे आत्मोपम्य की भावना से ओतप्रोत, अहिसा, विवेक, अनवद्य तप से युक्त चारित्र को सम्यक्त्व के अर्थ मे व्यापक दृष्टि-कोण से अनुलक्षित किया है। क्योकि उपरोक्त गुणो की सुरक्षा भी पूर्णतया मुनिजीवन मे ही सम्भव है। जबकि सूत्रकृताग के द्वितीय श्रुतस्कन्ध मे सयती मुनि के साथ व्रतधारी श्रावको का भी सम्यग्दृष्टि होना बताया गया है। सयती मुनि व श्रावक श्रद्धापूर्वक धर्मानुष्ठान करते है, यत्र-तत्र उसका भी उल्लेख मिलता है। किन्तु सम्यक्त्व के स्वरूप ने श्रद्धा रूपी बाना यहा धारण नही किया। उत्तराध्ययन सूत्र मे सर्वप्रथम सम्यक्त्व को तत्व श्रद्धा स्वीकार किया व तत्वो का भी निर्देशन किया गया है। अन्य आगमो मे इसके भेद, प्रकार, अति-चार, अग, लक्षण आदि का कथन किया गया।

आगमेतर साहित्य मे तत्त्वार्थ सूत्र मे वाचकवर्य उमास्वाति ने सम्यग्दर्शन का स्वरूप स्पष्ट रूप से निर्धारित किया। उत्तराध्ययन सूत्र की अपेक्षा तत्त्वार्थ सूत्र अधिक प्रकाश मे आया। उसका कारण यह रहा कि यह सभी जैन सम्प्रदायो को ग्राह्य है। तत्त्वार्थ सूत्र के टीकाकारो ने भी इसकी विशद चर्चा की। सम्यक्त्व के पर्यायवाची शब्द सम्यग्दर्शन, श्रद्धा, रुचि, प्रतीति, विश्वास भी व्यवहृत होते है। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान की उत्पत्ति मे किसी ने ज्ञान को पश्चात्वर्ती माना तो किसी ने सहभागी माना। तत्त्वार्थ के पूर्व नदीसूत्र में देववाचक गणि ने कहा कि सम्यग्दृष्टि का श्रुत ही सम्यक्श्रुत है अन्यथा वह मिथ्याश्रुत है। दिगम्बर साहित्य मे भी सम्यक्त्व का यही स्वरूप स्वीकृत किया है।

जैनेतर दर्शनो मे बौद्धदर्शन तो श्रमण भगवान महावीर के समकालीन व सन्निकट रहा है। अत एक दूसरे का प्रतिबिम्ब झलकना स्वाभाविक है। त्रिपिटको मे सम्यग्दृष्टि को सम्मादिट्ठी कहा गया तथा सम्यग्दृष्टि श्रद्धायुक्त होता है। आर्य अष्टागिक मार्ग, शिक्षात्रय, आध्यात्मिक विकास की पाँच शक्तियाँ और पाँच बल सभी मे श्रद्धा का स्थान प्रथम माना है। इसी मोक्षमार्ग के साधन रूप श्रद्धा को सांख्यदर्शन एव योगदर्शन ने विवेकख्याति कह कर सम्बोधित किया है। वेदान्तदर्शन मे ज्ञान मे ही श्रद्धा को अन्तर्निहित किया गया है।

महाभारत मे श्रद्धा को सर्वोपरि माना है तथा श्रद्धा ही सब पापो से मुक्त करने वाली है ऐसा मान्य किया है। गीता मे श्रीकृष्ण ने अर्जुन को श्रद्धा धारण करने का उपदेश दिया और कहा कि श्रद्धावान् ही ज्ञान प्राप्त कर सकता है, वही सयती होता है। तदनन्तर वह आत्मा परब्रह्म को प्राप्त हो सकती है। ईसाई धर्म व इस्लाम धर्म मे भी श्रद्धा को प्राथमिकता दी है। तात्पर्य यह है कि सर्व धर्म दर्शनो ने श्रद्धा/सम्यग्दर्शन को मोक्ष का हेतु समवेत स्वर से स्वीकार किया है।

आध्यात्मिक दृष्टि से तो सम्यग्दर्शन का स्थान महत्वपूर्ण है ही, किन्तु लौकिक जीवन मे भी इसका महत्व कम नही। जैन मान्यतानुसार इसका हम यथार्थ दृष्टिपरक अर्थ करते है तो भी इसका महत्वपूर्ण स्थान सिद्ध होता है। क्योकि यह जीवन के प्रति ही एक दृष्टिकोण हो जाता है। अहिसा अनेकान्त और अनासक्त जीवन जीने की कला इससे प्राप्त होती है। चूँकि जीवनदृष्टि के अनुसार ही व्यक्तित्व व चरित्र का निर्माण होता है, दृष्टि के अनुसार ही जीवन सृष्टि निर्मित होती है। ऐसे उदाहरणो से इतिहास भरा है। अत यह अपने आप पर निर्भर है कि हमको जैसा बनना है उसी के अनुरूप हम अपनी जीवनदृष्टि बनाएँ। क्योकि जैसी दृष्टि होती है, वैसा ही उसके जीवन जीने का ढग होता है और जैसा उसके जीने का ढग होता है, उसी स्तर से उसके चरित्र का निर्माण होता है और चरित्र के अनुसार ही उसके व्यक्तित्व

मे प्रतिमा आती है। इस प्रकार यथार्थ दृष्टिकोण होना जीवन निर्माण की दिशा मे आवश्यकीय है।

सैद्धान्तिक अपेक्षा से आध्यात्मिक विकास मे सम्यक्त्व महत्वपूर्ण है ही किन्तु व्यावहारिक जीवन मे भी सम्यक्त्व अत्यन्त उपयोगी है। सामाजिक क्षेत्र हो या पारिवारिक क्षेत्र हो, राजनतिक क्षेत्र हो या आर्थिक क्षेत्र हो, धार्मिक क्षेत्र हो या नैतिक क्षेत्र हो हर क्षेत्र मे सम्यक्त्व उपयोगी व महत्वपूर्ण है, क्योकि सही दृष्टि सही दिशा की ओर ले जाती है। फलत मजिल तक पहुँचा देती है। गलत राह पर जाने वाला भटक जाता है, सही राह वाला नही।

जीवन के आदर्शो के साथ परस्पर मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाए रखना, सम्यक रीति से जीवन व्यतीत करना है। राजनैतिक व्यवस्था सम्यक न होगी तो राष्ट्र मे भ्रष्टाचार बढता ही जावेगा, फलस्वरूप राष्ट्र का अनैतिकता के कारण पतन हो जायगा। धार्मिक व नैतिक क्षेत्र मे तो स्पष्ट रूप से ही सम्यक्त्व की छाप दृष्टिगोचर होती है। धार्मिक सिद्धान्तो का व्यावहारिक जीवन मे उपयोग होना ही सम्यक्त्व है। जीवन को सुव्यवस्थित रूप से, सुचारु रूप से प्रतिपादन करने मे, उत्तरोत्तर आत्मिक गुणो के विकास मे सम्यक्त्व ही सहायक है।

□ □

卐 भाषा की मधुरता और शिष्टता मे ही व्यक्ति की कुलीनता और सज्जनता छिपी हुई है। भाषा से ही व्यक्ति अपना परिचय दे देता है कि वह किस खानदान से ताल्लुक रखता है। भाषा की शालीनता जहाँ व्यक्ति को सम्मान दिलाती है वही व्यक्ति के प्रथम परिचय मे ही अमिट छाप अकित कर देती है।

卐 इसी जीभ मे अमृत और जहर बसता है। मधुरता भाषा का अमृत है और कटुता जहर है। यह जहर व्यक्ति के स्वय के जीवन मे भी अशान्ति फलाता है और अन्य को भी परेशान करता है। आपको अनुभव भी होगा। अगर किसी बात को स्नेह से कहते हैं तो आपका सारा तनाव काफूर हो जाता है। अगर गुस्से मे कहते हैं—दो-चार गालियाँ सुनाकर कहते है तो तनाव से ग्रस्त रहते हैं ?

—आचार्य श्री जिनकान्ति सागरसूरि

('उठ जाग मुसाफिर भोर भई' पुस्तक से)

卐 卐

नमस्कार महामन्त्र : वैज्ञानिक दृष्टि

—साध्वी श्री राजीमती जी

(योग, ध्यान अध्यात्म—विषयो की प्रख्यात विदुषी,
अनेक भाषाओ की ज्ञाता)

नमस्कार महामन्त्र आकार मे बहुत छोटा है, परन्तु उपलब्धियो तथा सभावनाओ का खजाना है। मौलिकता यह है कि मन्त्र चाहे जो भी हो वह जीवन से जुडना चाहिये। जब तक मन्त्र जीवन से, जीवन की आस्थाओ से नही जुडता तब तक वह "जीवन्त मन्त्र" नही बनता। वह जीवन्त बनता है मनोयोगपूर्वक ध्यानासन मे बैठकर निष्काम भाव से जपने से तथा विशाल आकाश मे चमकते वर्णो मे मन्त्र को लिखकर पढने से। ध्यान और रगो की भाषा शब्द शक्ति से बहुत आगे जाती है।

ध्वनि का भी स्वतन्त्र प्रभाव होता है। मन्द, तेज, मृदु और कठोर सबका अपना हिसाब है। मन्त्र ध्वनि ही एक ऐसा साधन है जो जगत से बँधे मन को काटकर बन्धन मुक्त कर सकता है। वैज्ञानिक परीक्षणो के अनुसार सूक्ष्म ध्वनि तीव्र छेदक होती है।

यह जैनो का सार्वभौम मागलिक मन्त्र, सप्रदायवाद की सभी कट्टरताओ से दूर, जैन—एकता का प्रभावी सूत्र है। यह अलौकिकता की ओर ले जाने वाला मन्त्र है। अगर उससे कोई पुत्र माँगता है, सपत्ति मागता है तो वह महान भूल करता है, मन्त्र की आशातना करता है। इससे करनी चाहिये केवल आत्मोन्नयन की माग क्योकि मन्त्र-जाप की प्रथम उपलब्धि है आत्मशक्ति का सचय जिससे प्राप्त होता है, बुद्धि बल विवेक, हिम्मत तथा व्यवहार का कौशल।

एक दिन स्वामी रामकृष्ण ने विवेकानन्द से कहा—माँ से कुछ माँग क्यो नही लेते ? विवेकानन्द ने कहा—गुरुदेव ! मै जाते समय कुछ जरूर सोचता हूँ, परन्तु प्रार्थना मे बैठने के बाद मागने की बात बिल्कुल भूल जाता हूँ। उस स्तर पर पहुँचने के बाद कोई कामना शेष नही रहती, मगन हो जाता हूँ। भीतर से भर जाता हूँ। रामकृष्ण बोले—वत्स, तेरी प्रार्थना सिद्ध हो गई।

मन्त्र का जाप व्यक्ति को ससार के प्रति, ससार के कर्त्तव्यो के प्रति जागरूक करता है। बिखरी चित्तशक्तियो को एकाग्र करता है। आवश्यक है, हम मन्त्र विज्ञान को समझे। मन्त्र की महिमा गाने से मन्त्र सिद्ध नही होता, मन्त्र सिद्धि के लिए चाहिये—मन्त्र-रचना का, मत्र-शरीर का, मन्त्र की ध्वनि और स्वरो का पूरा ज्ञान।

णमो अरिहन्ताण मे हम वीतरागता की वन्दना करते है, फिर क्रमश अनन्तता, समाधि सम्पन्नता, ज्ञान सम्पन्नता तथा साधुओ की वन्दना करते है। जैन दर्शन व्यक्ति-पूजा का दर्शन नही बल्कि गुण-पूजा का दर्शन है। वन्दना करते समय हमारा ध्यान किसी मूर्ति, अरिहन्त-देह तथा अरिहन्त-पद पर नही होकर "अरिहन्तत्व" पर होना चाहिये।

मन्त्र जप क्यों और कैसे ?

मन्त्र विविध शक्तियों का खजाना है। मनोयोगपूर्वक जाप करने से वे सारी शक्तियाँ जपकर्ता में धीरे धीरे प्रकट होने लगती है। मन्त्र जप के मुख्य लाभ ये हैं—

१—मन्त्र दुर्बल मन को सबल करता है।

२—मन्त्र रोगी मन को स्वस्थ करता है।

३—मन्त्र तेजस् शरीर को सक्रिय एवं आभामण्डल का शोधन करता है।

४—मन्त्र चित्त की अन्तर्मुखता को बढाता है।

५—विराट शक्तियों का नियोजन और दुष्ट शक्तियों का निग्रह करता है।

६—मन्त्र विचारों तथा भावनाओं का यथास्थान सम्प्रेषण करता है।

७—मन्त्र कर्म-संस्कारों, बंधनों का विलय करता है।

यद्यपि समस्या एक है मन की चंचलता की किन्तु इसके समाधान अनेक हैं। आप अपने चरित्र में जिस गुण की कमी अनुभव कर रहे हैं उसे दूर करने के लिए नमस्कार महामन्त्र का जप निम्न स्थानों पर निम्नोक्त विधि से कीजिए—

चैतन्य केन्द्रों पर ध्यान से लाभ

णमो अरिहंताण—तैजस केन्द्र पर—क्रोध क्षय (नाभि)
,, —आनन्द केन्द्र पर—मान क्षय (हृदय)
,, —विशुद्धि केन्द्र पर—माया क्षय (कण्ठ)
,, —शक्ति केन्द्र पर—लोभ क्षय। (नाभि के नीचे)

नवपद ध्यान —

हृदय अथवा नाभि में आठ पंखुडियों वाले कमल दल की कल्पना करें। प्रथम पद कर्णिका में, शेष पंखुडियों पर आठ पदों का जाप करें।

अपराजित मन्त्र ध्यान—

कर्णिका में णमो अरिहन्ताण तथा शेष चार दलों पर चार पदों की धारणा करें। इस मन्त्र का अभ्यास करने से विशेष स्थिरता बनती है।

चैतन्य केन्द्र महामन्त्र जाप

णमो अरिहन्ताण—मस्तक (तालु स्थान)—शान्ति केन्द्र

णमो सिद्धाण —भृकुटि —दर्शन केन्द्र

णमो आयरियाण—हृदय —आनन्द केन्द्र

णमो उवज्झायाण—नाभि —तैजस केन्द्र

णमो लोए सव्व साहूण—पैरों के अंगुष्ठ—ऊर्जा स्थान
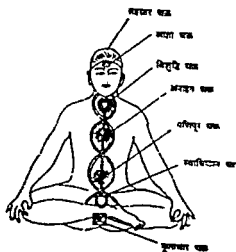
ज्ञानेन्द्रियो पर महामन्त्र जाप.—

णमो अरिहन्ताणं —बाये कान पर
णमो सिद्धाणं —बाये नेत्र पर
णमो आयरियाण —दाये नेत्र पर
णमो उवज्झायाण —दाये कान पर
णमो लोए सव्व साहूण —दोनो होठो पर

श्वास-प्रश्वास : महामन्त्र जप.—

णमो अरिहन्ताण —श्वास भरते समय
णमो सिद्धाण —श्वास छोड़ते समय
णमो आयरियाणं —भरते समय
णमो उवज्झायाण —छोडते समय
णमो लोए सव्व साहूण —भरते समय, छोडते समय

ग्रह-शांति · महामन्त्र जापः—

सूर्य और मंगल —ॐ ह्री णमो सिद्धाण।
चन्द्र और शुक्र —ॐ ह्री णमो अरिहन्ताण।
बुध —ॐ ह्री णमो उवज्झायाण।
गुरु —ॐ ह्री णमो आयरियाण।
शनि, राहु और केतु —ॐ ह्री णमो लोए सव्व साहूण।

सावधानता—

१—माला को दाहिने हाथ मे हृदय के पास रखते हुए धीरे-धीरे जप क्रिया जपे।

२—एकान्त स्थान का ख्याल रखा जाये। यदि कही पॉच-पच्चीस व्यक्ति एक साथ बैठकर एक ही मन्त्र को एक लयपूर्वक जपते हो तो उनके साथ बैठा जा सकता है।

३—मन्त्र को सामान्यतया बदलना नही चाहिये।

४—मन्त्र जप मे निरन्तरता होनी चाहिए, क्योकि लम्बा जप ही शरीर और चेतना के बीच एक नई हलचल पैदा करता है।

५—प्रारम्भिक अभ्यास के दिनो में माला अवश्य रखी जानी चाहिये। इससे मानसिक प्रतिबद्धता रहती है। जैन और बौद्ध दोनो परम्पराओ मे यह उल्लेख मिलता है। माला को यत्र-तत्र नही रखना चाहिए। एक दूसरे के बीच माला का आदान-प्रदान भी न हो। जिस माला से जप करते है उसे गले मे नही पहने।

६—मन्त्र-जप बिना किसी कामना के होना चाहिए।

७—माला फेरते समय सजग रहे, अन्यथा अन्तर्मुखता के बहाने आप शून्य होते चले जायेंगे। सम्भव है एक दिन निष्क्रिय अचेतन मनोभूमि पर ही खड़े रह जाये। इसलिए लम्बे जप अनुष्ठान के समय बीच-बीच मे श्वास-दर्शन करते रहे।

८—जप नियमित व निर्धारित संख्या मे होना चाहिये। बीच-बीच में टूटने वाला जप यह प्रमाणित करता है कि जपकर्ता को अपने मन पर कोई नियन्त्रण नही है। □

स्वरूप-साधना का मार्ग : योग एव भक्ति

—आचार्य मुनिश्री सुशीलकुमार जी

(प्रख्यात धम प्रवक्ता, विश्वधम सम्मेलन क सयोजक,
विश्वों में अहिंसा एव शाकाहार प्रचार म मगन)

जन परम्परा आत्मा मे अनन्त शक्ति मानती है। और उस शक्ति का पूण विकास कर आत्मा से परमात्मा बनन की उसम क्षमता है। श्री हेमचन्द्राचाय न इस आत्मशक्ति क पूण विकास का साधन योग बताया है।

जबकि आचाय हरिभद्रसूरि न सभी दुखा स मुक्त होन के साधन को योग कहा है। आत्मा की सभी दुखा म मुक्ति होकर निज स्वभाव की प्राप्ति योग द्वारा होती है।

सभी धम मनुष्य को दुखो मे मुक्त होन का उपाय बताते हैं क्योकि मनुष्य की सहज प्रेरणा दुख से मुक्त होकर सुख प्राप्ति की होती है। उसम योग एसी प्रक्रिया है जिसस मनुष्य दुख स मुक्त होता है।

वसे मनुष्य सुख प्राप्ति के प्रयत्न करता है पर सुख प्राप्ति के प्रयत्नो क बावजूद अधिकाश लोग सुख प्राप्ति म सफल नही होत बल्कि दुखी पाये जाते हैं। क्योकि वे सुख प्राप्ति का जो माग विविध धर्मों न बताया है, तदनुसार आचरण न कर अपनी कल्पना स सुख प्राप्ति क अन्य प्रयत्न म लगे हुए हैं।

सुख प्राप्ति का माग—जनधम न योग के रूप म बताया है। प्राय सभी धम इसी माग से मनुष्य को दुख स मुक्त होने का उपदेश करते हैं।

मनुष्य के सुख प्राप्ति म बाधक कौनसी बातें हैं जो उसे दुखी बनाती हैं? यह विचार करन पर दिखाई देगा कि राग और द्वेष यह दो इसके सब महान शत्रु हैं जो इसे सुख के माग म भटकाकर दुख म डालते हैं। समस्या का मूल राग-द्वेष-कषाय है। कषाय स मन या चित्त रगा जाता है। राग स रगा हुआ मन प्रीति का अनुभव करता है और प्रीति से लोभ, माया, वासना, और परिग्रह के प्रति मोह जागता है। द्वेष अहकार को जन्म दता है। अहकार से क्रोध घृणा और तिरस्कार उत्पन्न होता है। जिससे दुखो की परम्परा का निर्माण होकर अनन्त सुख जिसका सहज स्वभाव है वह आत्मा दुखी बनती है। उस पर कषायो के कारण विविध आवरण आकर दुख का अनुभव करन लगती है।

आत्मशक्ति को जाग्रत करन के लिये धम क्रिया, दार्शनिक चिन्तन और यौगिक अनुसधान आदि विधाएँ हैं। धम के अभ्यासियो न, दान म आचार्यो न और योग क साधको न जीवन की अनुभूतिया और शक्तियो का इस प्रकार अभिव्यक्त किया है कि सारा विश्व उन उपलब्धियो म अभिभूत है।

कषाय के कारण आत्मशक्ति पर आवरण आ गया है, अत हम दु खी बने बैठे है, उससे मुक्त होने का व्यवस्थित और मनोवैज्ञानिक मार्ग योग है।

वैदिक, जैन, बौद्ध, ईसाई, इस्लाम आदि धर्मों का यदि कही समन्वय होता है तो योग विद्या मे ही होता है। आध्यात्मिक धरातल पर सभी को योग को अपनाना होता है। दु ख-मुक्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन योग है।

जैनधर्म ने सारे दु खो का मूल हिंसा माना है और परम मागल्य अहिंसा को। अहिंसा सभी सुखो की जननी है। अहिंसा की व्याख्या है—प्राणीमात्र के प्रति समता।

बुद्ध ने भी शील, समाधि और प्रज्ञा द्वारा समता लाने को कहा है। और गीता का तो हार्द ही समता है।

योग इस समता को जीवन मे उतारने का अभ्यास है जिसके फलस्वरूप जीवन मे समता आकर मानव जीने की कला सीखता है। दु खी जीवन को सुखी बनाने की कुन्जी उसके हाथ लगती है।

अन्य धर्मो ने भी वही बात दुहराई है। इसलिये योगमार्ग का प्रचार धर्म का प्रचार है और धर्म का प्रचार ही जैनत्व का प्रचार है।

जैनधर्म आचार मे अहिंसा के द्वारा समता और विचार मे अनेकान्त के द्वारा व्यापकता लाने को कहता है, समता को पुष्ट करता है और सबके प्रति आत्मवत् व्यवहार करने के लिये सयम अपनाने को कहता है। समता का प्रारम्भ अपने से करना होता है और उसके लिये योग सर्वोत्कृष्ट साधन है।

जैन धर्म सबको आत्मवत् मानने वाला आत्मधर्म है। उसकी सारी क्रियाएँ—कर्मकांड इसी पर आधारित है। आत्माभिमुख—अन्तर्मु ख बनने के लिये है। प्राधान्य अन्तर्मुखता है, कर्मकाड और क्रियाएँ गौण है। एक अनुभवी योगी ने बताया है कि सभी तीर्थो मे श्रेष्ठ तीर्थ—धमतीर्थ मन है—आत्मा है। अज्ञानी ही बाहर ढू ढते है। मन का मैल धोना है तो उसे अन्तर्मु ख बनाकर अभ्यास करना होगा।

आभ्यन्तर विकास और प्रज्ञा के प्रकर्ष के लिये योग के सिवा कोई दूसरा प्रभावशाली मार्ग नही है। जैनधर्म मे ऋषभदेव से लगाकर महावीर तक २४ तीर्थंकर परमयोगी थे। भगवान महावीर के साधनाकाल का जो वर्णन मिलता है उसमे ध्यान पर अधिक भार दिया गया है। उन्होने समता की ऐसी साधना की कि साधनाकाल मे जो भयानक उपसर्ग लोगो की ओर से दिये गये वे समतापूर्वक सहन किये।

अपने आप की अनुभूति पाना हो तो चित्त को समता मे लगाकर अपने आपको देखो। अपने आप की अनुभूति पाना ही सम्यक्दर्शन है। बिना सम्यक्दर्शन के सम्यक्ज्ञान सम्भव नही और बिना सम्यक्ज्ञान के सम्यक्चारित्र आ नही सकता। और बिना सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के दु ख-विमुक्ति सम्भव नही।

इसीलिये जैन-साधना मे कायोत्सर्ग का अत्यन्त महत्व है। काया—शरीर जिसका क्षण-क्षण मे परिवर्तन होता है। उत्पाद-व्यय का क्रम चल रहा है। उस काया मे जो कुछ चल रहा है, उसे देखना। मन मे चलने वाली प्रत्येक वृत्ति, तरग या सवेदना को देखना, तटस्थतापूर्वक देखना। बाहर से चित्त को अन्तर्मु ख करना सम्यक्दर्शन है। इस देखने में किसी प्रकार का राग-द्वेष न हो, समतापूर्वक देखना यह योग की दूसरी क्रिया है।

पहली कायोत्सर्ग की, जिसमे काया को भूलकर श्वास का ध्यान करना और दूसरी क्रिया में शरीर मे चलने वाली क्रिया को सजग होकर देखना। जब मन को बाहरी दुनियाँ से अपने आप को देखने

म लगाते है तो सहज म वह अपने आप को देखने मे केन्द्रित होता है। और चूंकि वह राग-द्वेष से रगा नही होता है तो ग्रथि बधन नही होता और नई ग्रथि न बँधने से मनुष्य निर्ग्रन्थ बनता है।

न मालूम हम इस राग-द्वेष के कारण कितनी ही ग्रथिया बाधते जाते है। तनाव से बचैन होते हैं। यदि हम बैठकर या खडे रहकर अथवा तो सोकर कायोत्सग द्वारा शरीर का शिथिलीकरण करें और मन को आते और जाते श्वास पर केन्द्रित करें तो कितनी शान्ति और ताजगी पा सकते है।

हम शारीरिक क्रियाओ द्वारा शरीर का प्रकपन करते रहते हैं, मन, विविध विषयो म घूमता है तो उसका प्रकपन होता है और वाणी द्वारा भी प्रकपन होता रहता है। इस शक्ति का यदि हम एक स्थान पर बैठकर, शारीरिक प्रकपनो को, मौन द्वारा वाणी के कारण होने वाले प्रकपनो और श्वास की एकाग्रता द्वारा मानसिक प्रकपनो को रोक सके तो स्वाभाविक ही हमारी उर्जा शक्ति बचेगी और हम अपने आप की अनुभूति लेने का उसे लगायेंगे और स्व के दर्शन का जो ज्ञान होगा वह हम सम्यक आचार की ओर प्रेरित करेगा।

जैन साधना म योगदृष्टि के ८ प्रकार बताये गये है जिससे रागद्वेष घटकर परिणाम शुद्ध बनते जाते है। वे भेद इस प्रकार हैं—

१ मित्रा २ तारा ३ बला ४ दीप्रा
५ स्थिरा ६ काता ७ प्रभा ८ परा।

मित्रा दृष्टि

प्रथम दृष्टि मित्रा है जिसमे राग द्वेष हल्के होते है, किन्तु होते हैं कुछ ही मात्रा म, इसम जो बोध होता है वह चिनगारी की तरह क्षणिक और कम होता है। जिस वस्तु के प्रकाश म अनुभूति स्पष्ट नही होती। वह यह निर्णय नही कर पाता कि क्या अनिष्ट है और क्या इष्ट है? उसके मन म अच्छे विचार तो आते हैं पर वे स्थायी प्रभाव नही डाल सकते। वह धार्मिक क्रियाएँ प्रथा के रूप म करता है पर अहिंसा, सत्य, अस्तेय ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का पालन चित्त की मलिनता कम हो, इसलिये नही करता, पर शुभ कार्यो मे स्वत रुचि होने लगती है। प्राणीमात्र के प्रति मैत्री भाव बढने लगता है। रागद्वेष की ग्रन्थिया घटने लगती हैं चित्त म निर्मलता आने लगती है। अभ्यास बढाने स तारा दृष्टि तक पहुँचा जाता है।

तारा दृष्टि

मित्रा दृष्टि से इसमे राग-द्वेष का प्रभाव कुछ अधिक हल्का होता है। ज्ञान, विचार शक्ति व बोध पहले से अधिक होता है पर स्थायित्व अब भी नही आता। आत्मविकास के लिये वह अधिक प्रयत्नशील रहता है। शौच, सतोष, आत्मानुशासन तथा स्वाध्याय करता है। तथा जिन्होने उच्च स्थिति पाई उनका स्मरण कर उनके विकास पथ का अनुसरण करने लगता है। चित्त अधिक निर्मल होने से उद्वेग कम होता है। विवेक जगने लगता है। अपने दोष और कमियो के लिये खेद तथा आत्मा के उत्थान की जिज्ञासा जागृत होने लगती है।

बला दृष्टि

साधक अभ्यास म ज्यो-ज्यो आगे बढता है त्यो-त्यो उसे आसन का अभ्यास बढाना आवश्यक हो जाता है। शरीर की स्थिरता के बिना चित्त की स्थिरता नही होती इसलिये एक आसन पर अधिक

देर तक बैठने का अभ्यास बढाना आवश्यक हो जाता है। ज्यो ज्यो अभ्यास बढता है, श्रेय का बोध अधिक स्पष्ट होने लगता है। जो चित्त बाहर दौड़ता रहता था उसे स्वभाव में लाने की चेष्टा साधक करता है जिससे अज्ञान के सस्कार कम होकर ज्ञान के सस्कार बढने लगते हैं। कषायो की तीव्रता कम होने लगती है। विषयो का आकर्षण कम होने लगता है। सुख-दुःख, हर्ष, शोक का मन पर प्रभाव कम होने लगता है। निरर्थक बातो मे रस कम होने लगता है। दुःखमुक्ति का उपाय जानने की इच्छा तीव्र होती है। तृष्णा कम होने लगती है। प्राप्त परिस्थिति मे सन्तोष मानने लगता है। प्रतिकूल परिस्थिति से घबराता नही। भागदौड अपने आप कम हो जाती है। कार्य सावधानी व सतर्कता से करने लगता है। नई ग्रन्थियो का बँधना कम हो जाता है इसलिये कर्मक्षय होकर आत्मा पवित्रता के पथ पर अग्रसर होने लगती है।

दीप्रा दृष्टि

अभ्यास बढने से रागद्वेष कम होने जाते है, चित्त अधिक निर्मल होने लगता है। बोध स्पष्ट होने से आचरण भी शुद्ध और पवित्र बनता जाता है। इस भूमिका मे साधक प्राणायाम का अभ्यास बढाता है जिससे चित्त एकाग्र बनने में आसानी होती है। साधक की बाह्य दृष्टि कम होकर अन्दर की ओर अधिक ध्यान देने लगता है। सदाचार के प्रति निष्ठा ही नही, पर वह आचरण मे भी आता है। चित्त की शान्ति बढने लगती है।

स्थिरादृष्टि

साधक अभ्यास आगे बढाता है तो राग-द्वेष की ग्रन्थी टूटने लगती है। साधक का मन यदि विषय-विकारो की तरफ जाता है तो उसे वापिस आत्मानुभूति मे लगाता है। आत्मानुभूति से जो ज्ञान होता है, वह स्वय का होता है जिससे वह सम्यक्ज्ञान होता है। साधक को शरीर की नश्वरता तथा आत्मा की अमरता का बोध होता है। पुद्गल परमाणुओ से बना शरीर नश्वर और क्षण-क्षण मे बदलने वाला है। उसमे उत्पाद और व्यय अखण्ड चल रहा है। नश्वरता का ख्याल कर वह क्षमता को बढ़ाता है। कषायो का उपशमन होने से चित्त की निर्मलता बढती है। चित्त की प्रसन्नता बढ़ती है। दूसरो के साथ के व्यवहार मे सौजन्य बढने से साधक दूसरो की भी शान्ति का कारण बनता है। योग की भाषा मे कहा जाय तो प्रत्याहार यानी विषय-विकारो की तरफ जाने वाले मन को स्वानुभव की ओर साधक आरोपित करता है। चित्त की भ्रान्ति दूर होकर निस्सन्देह मन मे साधक के द्वारा सहजभाव मे निष्ठा के साथ सत्कार्य होने लगते है। आत्मानुभव बढता जाता है।

कांता दृष्टि

ज्यो-ज्यो चित्त की एकाग्रता का अभ्यास बढता है, साधक की दृष्टि अधिक प्रकाशवान गहरी और स्थिर होती जाती है। आत्मानुभूति सम्यकदृष्टि का रूप लेती है। अपने आपकी जानकारी वास्तविकता का रूप लेती है। साधक अधिक सजग होकर अपने मे होने वाली सवेदनाओ को अधिक स्पष्टता से देखता है। अपने द्वारा होने वाली क्रिया को सावधानीपूर्वक देखता है। चित्त अधिक शुद्ध होकर उसके द्वारा सद्गुणो की रुचि बढकर उसके द्वारा सदाचार होने लगता है। साधक के द्वारा होने वाले सदाचार या सत्कर्म मे सहजभाव मे अनासक्ति बढती जाती है। उसे जो बोध होता है वह अनुभव पर आधारित होने से सहजभाव से उसकी आसक्ति कम होने लगती है। स्व-भाव और पर-भाव को गहराई से देखने लगता है। आत्मा व पुद्गल के भेद को जानने से साधक के चित्त मे शाति बढती जाती है। आत्मा को मोह मूर्च्छा से अलग रखता है। कर्म-आश्रव छूटने लगते है, सवर दशा प्रकट होती है। अनासक्ति के कारण राग-द्वेष का उपशम होकर नई ग्रन्थियाँ बँधती नही।

दूसरो के साथ व्यवहार म साधक उदारता का व्यवहार करन लगता है। दूसरा को कष्ट न हो इसलिये सहजभाव से उसमे सयम आता है। वाणी मे मधुरता आती है। साधक जनप्रिय बनन लगता है। योग के 'धारण' नामक अग की प्राप्ति होती है। चित्त को साधक मर्यादित क्षेत्र म सीमित रखता है। जिसमे चित्त की चचलता कम होन लगती है। अब उस बाहरी भौतिक भोगा म अरुचि होकर चित्त को आत्मस्वरूप म लगाता है। अपने भीतर चलन वाली सवेदनाओ स उसके ज्ञान म वृद्धि होती है। आत्म-विकास म वह अधिक सजग बनता है। अपन स्वरूप म लीन होता है। सजग होकर अपने भीतर चलन वाले व्यापारो को देखता है। उसमे सूक्ष्म बोध जगता है। मनोभावो की शुद्धि हो जाती है। उसका मन बाहरी जगत से अतजगत् की ओर रमण करन लगता है। जो राग-द्वेष अहता ममता के कारण आत्मा के शुद्ध स्वभाव पर आवरण आता था, वह दूर होकर निर्मलता बढती है। साधक म समता बढती जाती है। सयम म वृद्धि होती है।

प्रभा दृष्टि

साधक एक आसन पर स्थिर होकर नियमित रूप स सतत ध्यान का अभ्यास बढाता है तो उसम सातवी प्रभा दृष्टि प्रकट होती है। जिससे उसका बोध सूय की प्रभा की तरह प्रकाशमान होता है। मन विकल्परहित होकर ध्यान म अखण्डता आने लगती है। वह अधिक समय तक ध्यान म स्थिर रहन लगता है। जिससे उसे सहज शान्ति मिलन लगती है। प्राप्त परिस्थिति म समतापूवक रहन का अभ्यास इतना अधिक बढ जाता है कि बाहरी सुख की कामना ही लुप्त हो जाती है। जो सुख आत्मा पर आवरणो के कारण ढका हुआ था वह आवरणो के दूर होते ही पूणरूप मे प्रकट होता है जिसम दुख का उस पर लेश मात्र भी प्रभाव नही रहता। यह स्थिति किसी शास्त्रज्ञान पर आधारित नही होती पर चित्त की निमलता के कारण आत्मज्ञान पर—स्वानुभव पर आधारित होती है। राग-द्वेष और कषायो का उपशमन हो जान से नये कर्मो का बध नही होता। पुरान बधे कर्मो की समता के कारण निजरा होन लगती है। दूसरो के साथ समता रखते हुए भी यदि कोई दुर्व्यवहार करता है तो भी साधक उसके प्रति मैत्रीभाव ही रखता है। उस पर आ पडे उन दुखो मे उद्विग्न नही होता। और न ही उसम सुखो की स्पृहा या लालसा ही होती है। जिससे साधक पर सुख-दुखो का प्रभाव नही होता। वह इन आने वाले सुख-दुखो के खेल को देखता रहता है। उसकी प्रज्ञा स्थिर हो जाती है।

योग की भाषा मे यह स्थिति ध्यान कही जा सकती है जिसम ध्यान की साधना कर आत्मानुभव या स्वानुभव की स्थिति का समय अधिक बढान का प्रयास होता है जिसस कि परादृष्टि की प्राप्ति हो सके।

परादृष्टि

इसे योग की भाषा मे समाधि कहा जाता है, जिसम आत्मा की शुद्ध स्थिति प्राप्त होकर ससार को निर्लेप भाव स साधक देखता है। ध्यान की वह अवस्था प्राप्त हो जाती है जिससे सहज भाव म साधक आत्म-समाधि म लीन हो जाता है। इसे जैन-साधना मे शुक्लध्यान कहा जाता है। साधक जीवन मुक्त हो जाता है सभी प्रकार की आसक्तियो स मुक्त रहता है। उसमे केवल आत्मभावना रह जाती है। अपना पराया का भेद मिटाकर प्राणी मात्र को आत्मवत् देखता है और उनके साथ पूण सयम का आचरण करता है। मोहनीय कम का क्षय हो जान से वीतराग बन जाता है जो अन्त्या उसे निर्वाण दशा तक पहुँचा देती है। दुखो से पूण मुक्ति रूप मोक्ष की प्राप्ति होती है।

धर्मध्यान और भक्ति

जैन-दशन म भक्ति का भी महत्वपूण स्थान है। भक्ति का रूप भिन्न है। इसम वीतराग की

भक्ति से साधक सामान्य साधना शुरू कर अन्त मे निरालम्ब ध्यान की उच्च अवस्था में पहुँचता है। जो आलम्बन लिया जाता है वह वीतराग प्रभु का, जो अपने आप पर विजय पाकर पूर्णत्व को पहुँचे। इसी रास्ते से साधक को सिद्धि प्राप्त करनी होती है। भक्तियोग से ज्ञानयोग में प्रवेश करना होता है जिससे समता तक पहुँच सके और वह अवस्था आती है रूपातीत ध्यान से।

सामान्य साधना भक्ति से ही प्रारम्भ होती है। भक्ति के भी अनेक प्रकार है फिर भी मुख्य-रूप से नवधा भक्ति का ही योगदीपिकाकार ने ५६ वे श्लोक मे वर्णन किया है—

श्रवण क्रिया भक्ति—श्रुतश्रवण अन्तरंग वृत्ति
कीर्तन क्रिया भक्ति—आत्मकीर्तन, आत्मघोष
सेवन क्रिया भक्ति—भेदज्ञान से आत्मपरिणति
वचन क्रिया भक्ति--शुद्ध चैतन्य भाव का बारम्बार वन्दन
ध्यान क्रिया भक्ति—धर्मध्यान-शुक्ल ध्यान की परिणति
लघुता क्रिया भक्ति—अहंतानाश—नम्रता की प्राप्ति
एकता क्रिया भक्ति—समत्व भावना
समता क्रिया भक्ति—सभी मे समत्व दर्शन का अभ्यास।

जब साधक भक्ति के द्वारा अन्तःकरण निर्मल कर लेता है तो क्रिया और ज्ञान द्वारा अष्टांग मार्ग पर चलने योग्य हो जाता है। ज्ञान से भक्ति मार्ग का प्रतिपादन इसलिये करना पड़ा कि सर्वप्रथम स्वामी-सेवक भाव भक्ति मे अवश्य रहता है।

वह अपने स्वामी को परमाराध्य की तरह मानता है और अनेक प्रकार से आत्मज्ञान प्राप्ति के लिये स्वामी का अनुग्रह चाहता है। भक्तिमार्गी स्वामी-सेवक भाव मे जब हिलोरें लेता है तो उस प्रेम-अवस्था का भी योगदीपिकाकार ने अलौकिक रूप से वर्णन किया है और उसकी भी चिन्तन-भेद से ६४ अवस्थाएँ बताई हैं।

भक्त, प्रभु के अनन्तरूपों को स्मरण करता हुआ प्रेम-विह्वल होकर प्रार्थना स्वरूप प्रभु से किस-किस प्रकार उपलब्धि चाहता है।

परम प्रभु परमात्मा के अलौकिक स्वरूपों को निहारता हुआ भक्त-साधक तद्‌गुणलब्धि के लिये प्रार्थना करता है।

परमात्मा के अलौकिक शान्त स्वरूप, अनन्त ज्ञान रूप, अनुपम क्षायिक आनन्द निमग्न समरस एवं सहज-स्वरूप का दर्शन तथा अनुभूति कर साधक प्रभुमय होकर गुण चिन्तन करता हुआ अपनी सुध-बुध भूल जाता है और परमात्मस्वरूप हो जाने के लिए विकल हो जाता है, आदि-आदि।

वास्तव मे यह गुण-चिन्तन की साधना ही साधक को प्रभु के साथ तदाकार बनाती है और आत्मा के निजगुणो को चरम उत्कृष्ट तथा प्रकट करने में सहायक होती है। योगमार्ग का प्रारम्भ ऐसे ही आत्मविश्वासी, प्रभुसमर्पित, वीतराग-उपासक तथा विषय-विरक्त आत्मजिज्ञासुओ के लिए हुआ है।

□ □

आत्म-केन्द्रित एव ईश्वर-केन्द्रित धर्म-दर्शन

—डा0 मागीमल कोठारी
(स्वतन्त्र चिन्तक, एसोसियट प्रोफेसर दर्शन विभाग
जोधपुर विश्वविद्यालय)

धर्म और दर्शन के इतिहास म हम प्राचीनकाल म ही दो भिन्न धाराए मिलती है जिन्ह मिलाने के कई प्रयास हुए है जो कई लोगो को शान्ति प्रदान अवश्य करते हैं पर तु उससे जनित मौलिक कठिनाइयो का हल नही कर सकते। एक तो वे धर्म और दर्शन हैं जिनके केन्द्र मे ईश्वर का प्रत्यय है और दूसरे वे जिनके केन्द्र म आत्मा का प्रत्यय है।

ईश्वर केन्द्रित धर्म और दर्शन—

पश्चिम एशिया के सभी धर्म—पारसी यहूदी, ईसाई, इस्लाम ईश्वर-केन्द्रित हैं। उनके लिए ईश्वर और केवल ईश्वर ही अन्तिम प्रत्यय है। जगत की हर वस्तु उसके द्वारा रचित है। ईश्वर सर्वज्ञानी और सर्वशक्तिमान है, अर्थात् उसके लिए असम्भव नाम की कोई चीज नही। वह जगत का कारण है उसका कोई कारण नही है। जड और जीव उसी महान कारण के कार्य हैं। किस प्रकार ? यह पूछने की कोई आवश्यकता नही है। यह सब केवल उसके सकल्प के फल हैं न कि किसी सनातन समानान्तर सत्ता की नई व्यवस्थाएँ। तर्कबुद्धिजनित सभी दार्शनिक कठिनाइयाँ यहा आकर मिट जाती हैं।

पश्चिम एशियाई धर्म अपनी धारणा म स्पष्ट है, एक मत है। चूँकि ईश्वर ने ही सभी जीवो की उत्पत्ति की इसलिए कोई भी जीव किसी भी प्रकार से ईश्वर के समकक्ष नहीं हो सकता। जीव चाहे कितना भी आत्म विकास करले, ईश्वर तक भी पहुँच जाय, उसका ज्ञान ईश्वर से सर्वदा कम ही रहेगा।

भारत म वैदिक युग म प्राकृतिक शक्तियो की पूजा प्रचलित थी और बहुदेववाद म एकेश्वरवाद (monotheism) विकसित होने लगा था। परन्तु उपनिषदो म तत्वमीमांसीय चिन्तन बहुत हुआ जिसके फलस्वरूप सेमेटिक धर्मों की तरह भक्तिमार्ग विकसित नहीं हो सका और ज्ञानमार्ग के द्वारा एकेश्वरवाद की परिणति एकतत्ववाद (monism) मे होने लगी। हालाँकि कुछ उपनिषदो ने एकेश्वरवाद को प्रचलित करने की कोशिश की परन्तु उपनिषदो की मुख्य तत्व मीमासा एकतत्ववाद की रही, जिसे उन्होंने ब्रह्म या आत्मा शब्दो से निर्देशित किया। इस प्रकार ईश्वरकेन्द्रित दर्शन होने के बजाय उपनिषद आत्मकेन्द्रित दर्शन बन गये और जीव और आत्मा को ही ब्रह्म के अर्थ म लेने लगे।

आत्म-केन्द्रित धर्म और दर्शन

भारत के प्राचीनतम धर्मों में जैन धर्म ने ईश्वर की सत्ता को अस्वीकार किया और हर जीव को अपने कर्म का कर्त्ता और भोक्ता होने के विचार को मान्यता दी। अपने पुरुषार्थ से कर्मों के क्षय द्वारा आत्म-विकास करके मोक्ष प्राप्त करने की क्षमता में पूर्ण विश्वास ने इसे ईश्वर-केन्द्रित न होकर आत्म-केन्द्रित वनाया। कर्म का क्या स्वरूप है, और सभी कर्मो का क्षय किस प्रकार हो, यह जैन दर्शन का मुख्य विपय वन गया। आत्मज्ञान की प्राप्ति कर्मो के क्षय होने से ही हो सकती है। कर्म का क्षय कर्म से नही हो सकता। हर कर्म से नया कर्म ही वनता है, चाहे शुभ हो या अशुभ। जव निर्जरा के द्वारा बुरे कर्मो का क्षय होने लगा या लगता है तो वचे हुए शुभ कर्मो की शक्ति जीव को ज्ञान के विकास की ओर अग्रसर करती है। अन्त मे ज्ञान द्वारा वचे हुए कर्मो का नाश उसी प्रकार हो जाता है जिस प्रकार घास के ढेर का एक चिनगारी द्वारा। इस प्रकार मोक्ष-पाप्ति के लिए निर्जरा का महत्व वतलाकर जैन दर्शन ने शुरु से ही एक ऐसी भावना को प्रेरणा दी जिसे लोगो ने कर्म-सन्यास नाम से प्रचलित किया।

मोटे तौर पर इसी तरह का समाधान बुद्ध ने भी प्रस्तुत किया। महावीर और बुद्ध के समय मे देश मे एक ऐसा दार्शनिक वातावरण वन गया जव उपनिपद, जैन और वौद्ध दर्शनो ने पूर्णत ज्ञानमार्ग को वढावा दिया। परन्तु वेदो से प्रेरणा वाले कुछ उपनिपदो ने इस धारणा की ईश्वर-केन्द्रित दर्शनो से समन्वय करने की चेष्टा की। पूर्वमीमासा ने वैदिक धर्म को अपनाया, जवकि उत्तर-मीमासा ने एक-तत्ववादी उपनिषदो को आधार वनाया। वेदो की खुलकर निन्दा न करते हुए भी उपनिपदो मे वैदिक मूल्यो का अवमूल्यन किया गया। शकराचार्य मोटे तौर पर आत्म-केन्द्रित रहे। परन्तु वेदान्त की अन्य सभी शाखाओ के आचार्यो ने ईश्वर-केन्द्रित दर्शनो का प्रतिपादन किया जिसके फलस्वरूप दार्शनिक जगत मे एक ऐसा अन्तर्विरोध वढ गया जिसका समाधान करने का हर प्रयास विफल रहा। यह विरोध केवल सिद्धान्त की दृष्टि तक ही सीमित नही रहा। इसके वहुत महत्वपूर्ण व्यावहारिक परिणाम निकले।

वेदान्त के आचार्यो ने एकेश्वरवाद और एकतत्ववाद का मिश्रण कर दिया। इसने दर्शनशास्त्र को एक अमिट उलझन मे डाल दिया। वेदान्त के आचार्य उस उलझन मे खो गये। जवकि सेमेटिक धर्म पूर्णरूप से ईश्वर-केन्द्रित रहे। वेदान्त पर आधारित सभी धर्म और दर्शन न तो पूर्णरूप से ईश्वर-केन्द्रित रहे, न पूर्णरूप से आत्म-केन्द्रित रहे। उन्होने कर्म के सिद्धान्त में कर्मफल की अनिवार्यता को मानते हुए भी ईश्वर को कर्मफल पर वीटो (Veto) की शक्ति प्रदान की। प्रारब्ध, विधि, कर्मगति मे सव को वॉधकर भी पुरुषार्थ के लिए उचित स्थान वनाये रखा और ईश्वर की सर्वशक्तिमानता मे कमी नही आने दी।

वेदान्त के अनुयायी व्यावहारिक जीवन मे वैदिक कर्मकाण्ड और उस पर आधारित स्मृतियो से प्रेरणा लेते रहे। इस प्रकार भारतीय जीवन मे एक तरफ वैदिक कर्मकाण्ड और दूसरी तरफ जैन प्रेरित निर्जरा के प्रभाव से अधिक से अधिक वचने का विचार, जो जैन और वैदिक धर्म दर्शनों मे निरन्तर विवाद का विषय वना हुआ था, वह अव वेद-वेदान्त के भीतर भी विवाद का विषय वन गया। गीता ने स्पष्ट रूप से उस समय के विचार-द्वन्द्व को "कर्मयोग वनाम कर्म सन्यास" के द्वन्द्व के रूप मे प्रस्तुत किया।

कर्म द्वारा मोक्ष की प्राप्ति या कर्मसन्यास द्वारा मोक्ष की प्राप्ति के विषय पर वहुत लम्बे समय तक विवाद चलता रहा। गीता ने अपने दर्शन को ईश्वर-केन्द्रित वनाकर कर्म के साथ ज्ञान और भक्ति का इस तरह मिश्रण किया कि उससे उलझन वढती ही गई। शकराचार्य ने व्यवहार मे सभी तरह के विरोधा-

भासा को पलन दिया, परन्तु सिद्धान्त रूप से वेदान्त को पुन आत्म-केन्द्रित बनाने की पूरी कोशिश की। लेकिन बाद के कई सन्तो ने गीता को केन्द्र बनाकर भक्ति माग को इस प्रकार बल दिया कि कम और ज्ञान का महत्व गौण होने लगा। हमारा सामाजिक और राजनतिक जीवन भी ईश्वर के भरोसे चलने लगा। हमारी भावनाएँ, शुभ और अशुभ भक्ति-केन्द्रित रही जिसके दुष्परिणाम साम्प्रदायिक तनाव के रूप म उभरने लगे। ईश्वर-केन्द्रित दशनो को अपनाने वाले सेमिटिक धर्मों ने ईश्वर के नाम पर खूब लडाई झगडे किये। यहूदियो न यहोवा के नाम पर, ईसाइयो न ईश्वर के नाम पर और मुसलमानो न अल्लाह के नाम पर "धमयुद्ध" किय और खूब खून बहाया। इन सबका यही विश्वास रहा है कि ईश्वर केवल हमारे साथ है, अन्य धर्मों के लोगो के साथ नही है। वह उनको नरक म भेज दगा।

भारतीय धम और दशन जब तक आत्म-केन्द्रित रहे, यहा का सामाजिक और राजनैतिक जीवन मताधता से लिप्त नही हुआ था। परन्तु इस्लाम के आने के बाद स्थिति बदलनी शुरू हुई। गुलामी के लम्बे युग मे ईश्वर-भक्ति न उन्हें एक अजीब तरह की मस्ती प्रदान की। शकराचाय के बाद वेदान्त पूणरूप म ईश्वर केन्द्रित बन गया। ईश्वर-केन्द्रित बनने पर आत्मज्ञान का अवमूल्यन शुरू हुआ। भक्ति के नाम पर अज्ञान और मताधता बढते गय। रामानुज मध्व और वेदान्त के अन्य आचार्यो ने शकराचाय के विरुद्ध ही नही बल्कि आपस म भी अशोभनीय भाषा म विवाद शुरू कर दिये। ईश्वर के नाम पर धार्मिक वैमनस्य बढने लगा।

जब अग्रेज भारत छोडने को थे, तब मुसलमानो ने पाकिस्तान के लिये जिहाद-सा छेड दिया। उनकी सफलता से इस धारणा को बल मिला कि बड पमाने पर हिंसा के द्वारा राजनैतिक लक्ष्य प्राप्त किये जा सकते है। इससे पजाब के मताध लोगो को प्रेरणा मिली। आज पजाब मे रोज निर्दोष लोगो की हत्याएँ हो रही हैं। वे सब ईश्वर के नाम पर ही हो रही है। हम यह नही कह सकते कि आतकवादियो म भक्ति नही है। वह आवश्यकता से अधिक है। परन्तु आत्म-केन्द्रित दशन के अभाव म वह अज्ञान मे लिप्त है।

आज धार्मिक क्षेत्र मे जिस तरह का वातावरण बना हुआ है, वह भक्ति माग के अनावश्यक महत्व के कारण हुआ है। भक्ति के साथ ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है, वरना उसके परिणाम बहुत खतरनाक हो सकते हैं व्यक्ति के लिये ही नही बल्कि समाज और देश के लिए भी। सिद्धान्त और व्यवहार मे केवल जैन दशन ही आत्मकेन्द्रित रहा है। जैन समाज म जहाँ कही भी बुराई दिखाई द रही है उसका कारण भक्ति की लहर का कुप्रभाव है। कई क्षेत्रो म जैन लोग वैष्णवो की भक्ति की नकल करने म लग हैं। परिणामत जैन समाज म साम्प्रदायिकता की बीमारी कई वर्गों म फल गई है। पुस्तक पूजा, मूर्ति पूजा, व्यक्ति पूजा केवल साधन हैं। वे अपने आप म साध्य नहीं हैं। वे यदि आत्म ज्ञान जाग्रत नहीं कर सकते तो अज्ञान मे दूषित भक्ति ही पनपायेंगे। जो लोग ज्ञानी हैं और मताधता से परे हैं, वे ध्यान के महत्व पर अधिक बल देते हैं। ध्यान व्यक्ति को तुच्छ भावनाओ से परे ले जाता है। यह ध्यान मन्दिर म मूर्ति के सामने किया जा सकता है और स्थानक, आश्रम या गुफाओ के एकान्त म भी किया जा सकता है। इस विषय पर जो विवाद हुए हैं, व आत्मज्ञान की कमी के सूचक हैं। यदि जैन दृष्टिकोण आत्म-केन्द्रित रहता है तो भक्ति के साथ जो अज्ञान घुस गया है, उससे वह मुक्त हो सकता है। जैन-जगत को महत्व इस बात का है कि निरन्तर यह अति आवश्यक है कि वे अपने आत्म-केन्द्रित दशन की शुद्धता को बनाये रखें। □

जैन हिन्दी काव्य में 'सामायिक'

डा० (श्रीमती) अलका प्रचण्डिया 'दीति'
(एम. ए (सस्कृत), एम. ए. (हिन्दी), पी एच. डी.)
सुप्रसिद्ध विदुषी

मोक्षमार्ग के साधन—ज्ञान, दर्शन, चारित्र—सम कहलाते हैं उनमे अयन यानि प्रवृत्ति करना सामायिक है। 'सम' उपसर्गपूर्वक 'आय' धातु मे इक प्रत्यय के योग से सामायिक शब्द निष्पन्न हुआ जिसका अर्थ है—आत्मस्वरूप मे लीन होना। वस्तुत समभाव ही सामायिक है। सब जीवो पर समता—समभाव रखना, पाँच इन्द्रियो का सयम—नियन्त्रण करना, अन्तर्हृदय मे शुभ भावना, शुभ सकल्प रखना, आर्तरौद्र दुर्ध्यानो का त्याग करके धर्मध्यान का चिन्तन करना 'सामायिक' है। 'योगसार' में आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान का त्याग करके तथा पापमय कर्मो का त्याग करके मुहूर्त-पर्यन्त समभाव मे रहना 'सामायिक व्रत' का उल्लेख द्रष्टव्य है—

यथा—

त्यक्तार्त-रौद्रध्यानस्य, त्यक्त सावद्यकर्मण ।
मुहूर्त समता या ता, विदु. सामायिकव्रतम् ॥ —योगसार ३/७२

'आवश्यक अवचूरि' मे सामायिक को सावद्य अर्थात् पापजनक कर्मो का त्याग करना और निरवद्य अर्थात् पापरहित कार्यो को स्वीकारना माना है—यथा—'सामाइय नाम सावज्ज जोग परिवज्जण निरवज्ज जोग पडिसेवण च।' 'भगवती' के अनुसार आत्मा ही सामायिक है और आत्मा ही सामायिक का अर्थफल है—

यथा—

आया सामाइए, आया सामाइयस्स अट्ठे। —भगवती १/६

सामायिक व्रत भलीभाँति ग्रहण कर लेने पर श्रावक भी साधु जैसा हो जाता है, आध्यात्मिक उच्चदशा को पहुँच जाता है। अत श्रावक का कर्तव्य है कि वह अधिक से अधिक सामायिक करे—

यथा—

सामाइयम्मि उ कए, समणो इव सावओ हवइ जम्हा ।
एएण कारणेण, बहुसो सामाइय कुज्जा ॥
—आवश्यक निर्युक्ति ८००/१

चाहे कोई कितना तीव्र तप तपे, जप जपे अथवा मुनि-वेष धारण कर स्थूल क्रियाकाण्ड रूप चारित्र पाले, परन्तु समता भाव रूप सामायिक के विना किसी को मोक्ष की प्राप्ति असम्भव है। सब द्रव्यो मे राग-द्वेष का अभाव तथा आत्मस्वरूप मे लीनता ही सामायिक है—

यत्सर्व द्रव्यसदर्भे राग-द्वेषव्यपोहनम्।
आत्मतत्त्व विनिष्ठत्य तत्सामायिकमुच्यते ॥ (योगसार ५/४७)

संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश जैन वाङ्मय में व्यवहृत 'सामायिक' शब्द अपने इसी अर्थ—अभिप्राय में हिन्दी जैन काव्य में भी गृहीत है। सोलहवीं शती के आध्यात्मिक कवि ब्रह्मजिनदास द्वारा रचित 'आदिपुराणरास' रचना में सामायिक शब्द के अभिदर्शन होते हैं—

तीनो प्रतिमा पाले सीम लेय
सामाइक तीना काल रे। (—छंद ७)

सत्रहवीं शती के कविश्री जिनहर्ष ने 'तेरह काठिया स्वाध्याय' रचना में इस शब्द का व्यवहार किया है—

सामायिक प्रोषध नवकार,
जिनवदन गुरु वन्दन वार। (जिनहर्ष ग्रन्थावली पृष्ठ ४८०)

पंडित बनारसीदास द्वारा विरचित 'नाटक समयसार' में सामायिक शब्द इसी अर्थ में दृष्टिगत है—

दर्शन विशुद्धकारी बारह व्रतधारी,
सामायिक चारी पर्व प्रोषद विधि वहे। (नाटक समयसार पृष्ठ १३८)

अठारहवीं शती में कवि भैया भगवतीदास द्वारा रचित 'द्रव्यसग्रह' रचना में यह शब्द अभिव्यञ्जित है—

व्रत प्रतिमा दूजो भाव,
तीजो मिल्यो सामायिक भाव। —ब्रह्मविलास

कवि दौलतराम द्वारा प्रणीत 'क्रियाकोश' रचना में इस शब्द की अभिव्यक्ति हुई है—

तहा जहाँ सामायिक करे अथवा श्री जिनपूजा धरे,
इतने थानक चदवा होय दीसे श्रावक को घर सोय। —छन्द १८०

उन्नीसवीं शती के कवि वृदावनलाल द्वारा प्रणीत 'प्रवचनसार' रचना सामायिक शब्द के आधार पर ही रची गई है यथा—

रागादिक विनु आपको लखे, सिद्ध समतूल
परम सामायिक दशा तब सो लहै अतूल। —पृष्ठ १७४

बीसवीं शती की कृतियों में भी सामायिक शब्द इसी अर्थ परम्परा को लेकर अवतरित हुआ है। कवि लक्ष्मीचन्द्र द्वारा रचित 'लक्ष्मी विलास' रचना में सामायिक शब्द दृष्टिगत है—यथा—

सो छह विधि सामायिक वदन, स्तवन प्रतिक्रमण स्वाध्याय,
कायोत्सर्ग नाम षट जानो फिर इक इक छह भेद बताय।

जैनधर्म : स्वरूप एवं उपादेयता

—महोपाध्याय चन्द्रप्रभसागर

[सुख्यात तत्त्वचिन्तक तथा यशस्वी कवि,
लेखक एवं प्रवचनकार]

"जैन" शब्द की निष्पत्ति "जिन" से है। "जिन" का तात्पर्य उन महापुरुषो से है, जिन्होने अपने असीम आत्मबल को उद्‌बुद्ध कर राग तथा द्वेष आदि को जीता। उन जिनों द्वारा जो अनुभूत सत्य प्रकट हुआ, जो आचार-दर्शन प्रसृत हुआ, वही जिन-शासन है, जैनधर्म है। "जिनशासन" शब्द अपने-आप मे बडी गुण-निष्पन्नता लिए हुए है। साम्प्रदायिक संकीर्णता के भाव से यह सर्वथा अतीत है। राग-द्वेष आदि अनात्मभावो के विजय को केन्द्र मे रखकर जैन चिन्तनधारा तथा आचार-परम्परा का विकास हुआ है। यह एक ऐसा राजमार्ग है, जो व्यक्ति-मुक्ति से लेकर समाज-मुक्ति तक प्रशस्त रूप मे जाता है। जैनत्व वास्तव मे एक व्यसन-मुक्त, अहिंसक और स्वस्थ-समाज की रचना का जीवन्त तरीका है। यह परम श्रेय के प्रति समर्पित एक नैतिक अनुष्ठान है।

ऐतिहासिकता की दृष्टि से जैन धर्म अत्यन्त प्राचीन है। कुछ समय पूर्व आधुनिक इतिहासज्ञ भगवान् महावीर को जैनधर्म का आविर्भावक मानते रहे थे, किन्तु अब ज्यों-ज्यो समीक्षात्मक, तुलनात्मक अध्ययन का विकास होता जा रहा है, विद्वानो की मान्यताएँ परिवर्तित होती जा रही है। भगवान् पार्श्वनाथ जो जैन-परम्परा के तेईसवे तीर्थंकर थे तथा बाईसवें तीर्थंकर अरिष्टनेमि जो कर्मयोगी कृष्ण के चचेरे भाई थे, ऐतिहासिक पटल पर लगभग स्वीकृत हो चुके हैं[1]। इतना ही नही ऋग्वेद, भागवत् आदि मे प्राप्त वर्तमान अवसर्पिणी कालखण्ड के प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभ की ऐतिहासिकता भी उजागर हो रही है। जैन वाङ्मय तथा वैदिक वाङ्मय मे भगवान् ऋषभ के व्यक्तित्व का जैसा निरूपण हुआ है, वह बहुलांशतया सादृश्य लिये हुए है। ऐतिहासिक खोज ज्यो-ज्यो आगे बढेगी, अनेक अपरिज्ञात तथ्य और प्रकाश में आते जायेंगे, ऐसी आशा है।

जैन दर्शन व्यक्तित्व-निर्माण मे जिन महत्वपूर्ण उपादानो को स्वीकार करता है, उनमें पूर्वार्जित संस्कारो का अत्यन्त महत्व है। उच्च संस्कार प्राप्त व्यक्तियो की एक विशिष्ट परम्परा स्वीकृत रही है। वैसे पुरुष "शलाका-पुरुष" कहे जाते हैं। शलाका-पुरुष का आशय उन व्यक्तियो से है, जो अपने पराक्रम, ओज, तेज, वैभव तथा शक्तिमत्ता के कारण असाधारणता लिये होते हैं। वे त्रेसठ माने गये है—२४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ६ वासुदेव, ६ प्रतिवासुदेव तथा ६ बलदेव। इनमे चौबीस तीर्थंकर धार्मिक एव आध्यात्मिक दृष्टि से चरम प्रकर्ष के प्रतीक है तथा उनके अतिरिक्त ३६ लौकिक वैभव, ऐश्वर्य, शक्ति

तथा भोग प्राचुय के सवाहकत्व के नाते विशिष्ट ह। उनम वैभव आदि की, अपनी-अपनी पुण्य-सचय के अनुसार, न्यूनाधिक्ता है। वभव, शक्ति आदि की दृष्टि से चक्रवर्ती सर्वोपरि है। आध्यात्मिक एव लौकिक सामजस्य का यह एक अद्भुत रूप है, जिसे जैन परम्परा ने बडे समीचीन रूप मे उपस्थित किया है। इन शलाका-पुरुषो/मानव मनीषियो द्वारा ही मानवता के चिराग की धूमिल पडती ज्योति को नयी शक्ति दी जाती है।

जिस प्रकार जगत् अनादि अनन्त है, शलाका-पुरुषो की परम्परा भी अनादि अनन्त है। तीथकर समय-समय पर धार्मिक प्रेरणा देते हैं, धम को सामूहिक या सगठनात्मक रूप प्रदान करते हैं। उसमे श्रमण, श्रमणी, श्रमणोपासक, श्रमणोपासिका के रूप मे चतुर्विध वर्गों का समावेश होता है। जैन परिभाषा म इसे तीथ कहा गया है। यह तीथ शब्द सघ के अथ म प्रयुक्त है। उस तीथ के प्रवतक को ही तीर्थंकर कहते है। धम यद्यपि साधना की दृष्टि से वयक्तिक है, किन्तु वह समूह के साथ, किन्ही विशिष्ट आचार-सहिताओ के साथ जो उसके मूल दशन पर समाश्रित होती है, समुदाय से जुडता है, तब वह सामाजिक या सघीय बन जाता है। वयक्तिक के साथ-साथ धम का सघीय रूप परमावश्यक है। यह धम की सस्कृति, दशन तथा लोकजनीनता को सबल प्रदान करता है। यही वह आधार है, जिस पर किसी भी धम की वैचारिक सम्पदा और साधना का अस्तित्व विस्तार, विकास और सप्रसार टिका रहता है।

किसी भी धम के दाशनिक सिद्धान्त और नैतिक सामाजिक विचार उसके पौष्टिक तत्व होते हैं। प्राय विद्वान यह मानते है कि जैनधम के दाशनिक और नतिक विचार उत्कृष्टतम हैं। दुनिया म जन उन कतिपय धाराओ म है जिनम धम भी है और दशन भी। धम क दृष्टिकोण से वह सदाचार सिखाता है, दशन के दृष्टिकोण मे सदविचार का पाठ पढाता है। जन-दशन तो बडा अनूठा है। वह परम साम्य और परम बौद्ध है। सम्पूण सत्य और रहस्य को शब्दो और अक्षरो मे बिठा देने की बौद्धिक स्पर्धा यदि किसी ने अथक प्रयास से की, तो वह जैन "दशन" न। जन-दशन गणित और विज्ञान की विजय का विस्मयकारी स्मारक है। गणनाबुद्धि की उसमे पराकाष्ठा है।

जन-दशन का अत्यन्त महत्वपूण सिद्धान्त पुरुषाथवाद है। प्रत्येक आत्मा मूलत परमात्मा है। राग-द्वेषजनित क्रोध, मान, माया, आदि कषायजनित कार्मिक आवरणो से इसकी शक्ति, इसका ओज, इसका ज्ञान विविध तरतम्यतापूवक आवृत रहता है। सवर और निजरामूलक साधना द्वारा इन कर्मावरणो क अपचय से आत्मा का शुद्ध स्वरूप अभिव्यक्त होता है। कार्मिक आवरणो का जब सवथा सम्पूणत क्षय हो जाता है, तब आत्मा अपन शुद्ध स्वरूप म आ जाती है। इस परमात्मा, परमेश्वर सिद्ध, बुद्ध मुक्त आदि नामो से अभिहित किया जाता है। जन-दशन मे यही ईश्वर का स्वरूप है। ईश्वर एक नहीं है, सभी मुक्त आत्माएँ परम ज्ञान, परम आनन्द के अधिपति होने के नाते एश्वय या ईश्वरता युक्त हैं।

जन दशन सृष्टि को ईश्वरकृत नही मानता है। वह किसी ईश्वर को [सृष्टि का सजक या उत्पादक नही मानता। आत्मा और कर्मों का सम्बन्ध ही ससार है। जगत् की [सारी गतिविधियाँ इसी पर आश्रित हैं। यह क्रम अनादि काल से चला आ रहा है। इस सम्बन्ध को ध्वस्त एव उन्मूलित करना प्रत्येक जीव का अन्तिम लक्ष्य है।

जैन दशन के अनुसार यह जगत् अनादि-अनन्त है। आशिक विप्लव क रूप म जो ध्वस होता है, वह सामयिक है। मूलत जगत् का सम्पूण रूप म विनाश नही होता। जगत् म जड-चेतनात्मक पदाथ समाविष्ट रहे ह और रहेंगे। जो चेतन, पदाथ या जीव जगत् म हैं, उन्हे ससारी जीव कहा जाता है। अपने-अपने आचीण कर्मों के अनुसार वे गतिशील क्रियाशील हैं। कर्मों का क्रम शृखला रूप मे उत्तरा

तर गतिमान रहता है। इनके अतिरिक्त दूसरे वे जीव हैं, जो मुक्त हैं, सम्पूर्ण रूप से कर्मों का क्षय कर अपनी परम शुद्धावस्था प्राप्त कर चुके हैं। वे लोक के अग्रभाग में, सर्वोच्च भाग में संस्थित हैं; जिसे सिद्ध-स्थान या सिद्धशिला कहा जाता है।

संसार-चक्र में भ्रमण करते रहने का मुख्य कारण सत् तत्त्व के प्रति अनास्था है, जिसे जैन परिभाषा में मिथ्यात्व कहा जाता है। मिथ्यात्व का मूल उत्स एक उलझी हुई गांठ की ज्यों है, जिसे सुलझा पाना, सही स्थिति में ला पाना बहुत कठिन है। इसे मिथ्यात्व-ग्रन्थि या मिथ्यात्व रूप कर्म-ग्रन्थि कहा जाता है। स्वयं तथा अन्तः स्फूर्तिजनित उद्यम के परिणाम-स्वरूप जब मिथ्यात्व की ग्रन्थि खुल जाती है, तब जीव उस नये आलोक का अनुभव करता है, जिसे वह अब तक विस्मृत किये था, दूसरे शब्दों में जो अब तक आवृत था।

यह स्थिति जैन दर्शन में सम्यक्त्व के नाम से अभिहित हुई है। सम्यक्त्व साधना का प्रथम सोपान है। यह उसका मूल है। इसे साधे बिना साधक शुद्ध साधना की दृष्टि से एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकता। इसके न होने से ज्ञान अज्ञान का रूप लिये रहता है, सदाचरण जीवन में यथावत् रूपेण समाहित हो नहीं पाता। अर्थात् ज्ञानाराधना और चारित्र-साधना दोनों असाधित रह जाती हैं।

जैनधर्म का मानना है कि सम्यक्त्व से रिक्त व्यक्ति चलता-फिरता "शव" है। सत्य तो यह है कि सम्यक्त्व ही जैनत्व की पहचान है। यही तो वह पगडंडी है, जो कमल की पंखुड़ी की भाँति निर्लिप्त और आकाश की भाँति स्वाधीन जीवन जीने की एक स्वस्थ जीवन-शैली दर्शाती है।

सम्यक्त्व का दिव्य प्रकाश स्वायत्त हो जाने पर साधक सच्चा परीक्षक बन जाता है। वह देव, गुरु तथा धर्म को भली-भाँति पहचान लेता है कि सच्चे देव वे हैं, जिन्होंने राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, एवं लोभ आदि आत्म-विकारक अवगुणों का सर्वथा नाश कर दिया है, जो परम शुद्ध परमात्म-भाव में संस्थित हैं। गुरु वे हैं, जिनके जीवन में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह का समग्र रूप में क्रियान्वयन है, जो आत्मकल्याण के साथ-साथ लोक-कल्याण में भी अभिरुचिशील हैं। जो संयम, साधना और तपश्चरण से जुड़ा है, जिसमें अहिंसा मौलिक पृष्ठभूमि के रूप में स्वीकृत है। अहिंसा में सहजरूपेण सत्य आदि का समावेश हो जाता है।

संस्कृति और नीति के क्षेत्र में भी जैनत्व विश्व चिन्तन का प्रतिनिधित्व करता है। जैन नीति सिखाती है कि औरों को मत सताओ, सच बोलो, चोरी मत करो, जरूरत से ज्यादा सामान मत रखो, दूसरों की स्त्रियों को या पुरुषों को बुरी नजर से मत देखो। ये वे मील के पत्थर हैं, जो नैतिकता के मार्ग पर चलने वाले को गुमराह नहीं होने देते। संसार का कोई भी चिन्तक या धर्म ऐसा नहीं है, जो जैन-नीति की इन बातों को गलत बता सके।

वस्तुतः जैन धर्म के प्रवर्तकों का लक्ष्य मानवमात्र में आचार-शुद्धि, विचार-शुद्धि, जीवन-शुद्धि की मशाल जलाना रहा है। इसलिए जैनधर्म ने खान-पान में, भोगों में, वाणी में संयम रखने की प्रेरणा दी। साम्यवाद एवं समभाव की स्थापना के लिए ही अहिंसा पर जोर दिया गया। हिंसा और मांसाहार जैसी अशुद्ध परम्पराओं के प्रभाव से ही मनुष्य क्रूर, बेरहम, निर्दय और हृदय-हीन बनता है। जैनधर्म का मानना रहा है कि शाकाहार जीवन-शुद्धि का एक मानवीय गुण है, जो तामसी-वृत्तियों को जन्म लेने में अवरोध पैदा करता है।

जैनधर्म ने विश्व-कल्याण की उदात्त भावना के प्रसार के लिए ही अपरिग्रह को प्रत्येक जैन के

लिए अनिवाय व्रत बनाया। सत्य और अचौय की ओर जन-चेतना को प्रेरित कर जैनधम न न्याय की तुला का जीर्णोद्धार किया।

जैनधम के वतमानकालीन प्रथम तीथकर ऋषभदेव न राजतन्त्र, अथतन्त्र, प्रजातन्त्र और आत्मतन्त्र जसे स्वच्छ शुद्ध तन्त्रों की स्थापना की। यद्यपि जनधम मे उक्त चारो तन्त्रो का अपेक्षित महत्व दिया गया, किन्तु आत्मतन्त्र सच्चिदानन्द स्वरूप म है, सत्य, शिव, सुन्दर रूप है।

सत् तत्व के स्वीकार और साधनगत तत्वा के अवबोध के साथ साथ क्रियान्विति का प्रसग आता है वहा आत्म भाव म अवस्थिति तथा अनात्म भाव या विभाव से पृथक्करण का प्रयत्न गतिशील होता है, जो जनदशन की भाषा मे विरति या व्रत कहा जाता ह। जब सत् को स्वीकार करत हैं सहज रूप म असत् छूटता है। असत् के साथ चिरन्तन लगाव होने के कारण उसे छोड पाना बहुत कठिन होता है। इसलिए उसके छोडने पर विशेष जोर देने हेतु निषेधमुखी या परित्याग-मुखी भाषा का प्रयोग होता है। जसे अमुक अमुक कार्या का त्याग करता हूँ। अपन आप म जाने के अतिरिक्त त्याग और कुछ नही है। अहिंसा या सत्य जो आत्मा के अपन भाव हैं, सस्थित होते ही हिंसा या असत्य का परिहार स्वय हो ही जाता है।

साधना के दो रूप है—समग्र तथा आशिक। समग्र साधना सवथा आत्मामुखी होती है। उसम व्रत स्वीकार निरपवाद होता है। इन साधको द्वारा स्वीकृत व्रत महाव्रत कहे जाते है। वे महान् इसलिए है कि उनकी समग्रता विखण्डित नही है। ऐसे साधक, श्रमण मुनि, अनगार या भिक्षु कहे जाते हैं। सब मे ऐसी आत्म शक्ति नही होती, अत जनधम म आशिक साधना का भी विधान है। वहा व्रतो की स्वीकृति स्वीकर्ता की आत्म-शक्ति और सामथ्य के अनुसार अशत होती है। अपवादपूवक या छूट के साथ वहाँ व्रतो का परिग्रहण होता ह। यह साधना गृहस्थ-जीवन स सम्बद्ध ह। गृहस्थ-साधक श्रमणोपासक या श्रावक कहा जाता है। उसके व्रत अणुव्रत कहे जात है जिनका गुणव्रतो तथा शिक्षा-व्रतो के रूप मे विस्तार है। अणुव्रतादि का पालन करन म व्यक्ति साधना-पथ पर तो बढन की प्रेरणा प्राप्त करता ही है, साथ ही साथ समाज मे नैतिकता के प्रसार म अपनी भूमिका निभाता है।

यद्यपि जैनधम निवृत्तिप्रधान है किन्तु वह प्रवृत्ति माग का निषेध नही करता है। जनधम मानता है कि निवृत्ति को लोक कल्याण की भावना से मुँह नही मोडना चाहिए। निवृत्ति का उद्देश्य अशुभ से हटना होना चाहिए और प्रवृत्ति का उद्देश्य शुभ स जुडना। निवृत्ति को व्यक्ति के आध्यात्मिक विकास के लिए अपनानी चाहिए और प्रवृत्ति म क्रियाओ का सम्पादन विवेकपूवक करना चाहिए।

इस प्रकार निवृत्ति साधना/मुनि साधना और प्रवृत्ति साधना/गृहस्थ साधना के रूप म चारित्रिक आराधना के ये दो क्रम हैं। ये सम्यक् रूप से उत्तरोत्तर प्रगति करते जायें, यह वाछनीय है। किन्तु कुछ ऐसी दुबलताएँ हैं जिनके कारण कदम-कदम पर बाधाएँ आती रहती हैं। य दुबलताएँ क्रोध मान, माया तथा लोभ के रूप मे विभाजित हैं, जिन्हे कषाय कहा जाता है। सम्यक्श्रद्धा सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक् चारित्र प्राप्त कर लेने पर भी ये भीतर ही भीतर उज्जीवित रहते हैं तथा साधक को विचलित करत हैं। अत व्रत-पालन के साथ-साथ इनको क्षीण करने के लिए भी साधक का सतत सयुक्त रहना आवश्यक है। नैतिक प्रगति के लिए कषाय विजय अनिवाय है। कषाय विजय की अपेक्षा ही जैनदशन म गुणस्थानों के रूप म व्याख्यान हुआ ह। गुणस्थान और कुछ नही, मात्र आत्म विकास की उत्तरोत्तर विविध भूमिकाओ का परिचायक है।

साधना मे सबसे बडा बाधक तत्त्व वासना या आसक्ति है। यह चिरकालीन संस्कारजनित है। इसे निर्मूल करने के लिए सबसे पहले मन को परिमार्जित करना अपेक्षित है। मानसिक समार्जन हेतु जैन धर्म मे द्वादश अनुप्रेक्षाओ/भावनाओ का अभ्यास अत्यन्त उपयोगी है। भावना तथा चिन्तना मे एक अन्तर है। चिन्तना किसी विषय को सोचने तक सीमित है, जबकि भावना उसमे पुन-पुन अवगाहन, आवर्तन तथा तदनुरूप अनुभव से सम्पृक्त है। भावनाओ के विधिवत अभ्यास से चिरसचित वासनाएँ ध्वस्त हो सकती है।

जैनधर्म ने मन की वासनादिपरक अशुभ वृत्तियो के परिमार्जन और शुभ वृत्तियो को आत्म-स्वरूप की ओर दिशा प्रदान करने के लिए ही योग और ध्यान जैसे रास्ते बताये। मन, वचन, काया के योगो से उपरत होकर आत्मपथ पर योजित होना ही योग है। ध्यान इस यौगिक सफलता की कुञ्जी है। ध्यान वास्तव मे अन्तर्यात्रा है। मन, वचन, काया के योगो का स्थिरीकरण ही ध्यान है। मानसिक वृत्तियो को बाहरी भटकाव से अन्तरात्मा की ओर मोड़ना ध्यान की सहज प्रक्रिया है। ध्यान अध्यात्म का प्रवेश-द्वार है और अध्यात्म शुद्धात्मा में विशुद्धता का आधारभूत अनुष्ठान है।

जैन धर्म नैतिक जीवन का साध्य मोक्ष मानता है। मोक्ष वास्तव मे सघर्ष का निराकरण एव समत्व का सस्थापन है। इस मच पर पहुँचने के लिए जैनधर्म सोपान है। यह बन्धन से मुक्ति की ओर जाता है। मोक्ष व्यक्ति के व्यक्तित्व की पूर्णता का परिचायक है।

आध्यात्मिक उपासना के लिए तत्वज्ञान तथा तत्वानुशीलन उपादेय है। तत्वानुशीलनपूर्वक आचीर्ण धर्म सचालित क्रिया-प्रक्रिया का अपना असाधारण महत्त्व और प्रभाव होता है। इससे अन्तर्मन विमल और निर्ग्रन्थ बनता है।

यदि हम जिनशासन के तत्वदर्शन पर विचार करे, तो लगेगा कि वह काफी वैज्ञानिक है। जैन दर्शन द्वारा स्वीकृत तत्व, पदार्थ भी अनेक दृष्टियो से विज्ञान-सम्मत तत्त्वो एवं पदार्थो से मेल खाते हैं। विज्ञान का मूल आधार भौतिकवाद है। जैन दर्शन मे भूत (मैटर) के लिए पुदगल शब्द का व्यवहार हुआ है। इसके मूल मे पूरण और गलन, बढना-घटना है, जिसका तात्पर्य उसकी अनेक रूपों मे परिणति है। पुदगल की सबसे छोटी इकाई परमाणु है। परमाणु अविभाज्य है। विज्ञान जिसे एटम कहता है, वह वास्तव मे परमाणु नही है, वह स्कन्ध या वैज्ञानिक भाषा मे मोलीक्यूल है। आज जो परमाणविक ऊर्जा उपलब्ध है, वैज्ञानिक उसे परमाणु विखण्डन से कहते रहे है, जो वास्तव मे स्कन्ध के विखण्डन से प्रगट हुई है। जैन दर्शन परमाणुवाद मे जिस सूक्ष्मता मे गया, विज्ञान उधर गतिशील है, ये दोनो के सुखद समन्वय की दिशा है।

इसी प्रकार अनेकान्त तथा स्याद्वाद जैनधर्म की अनुपम देन है। पदार्थ का स्वरूप अपने मे गुणो की अनेकता समेटे है, जिसे एक साथ प्रकट नही किया जा सकता। इसके आधार पर जैन दर्शन मे तत्त्व को समझने और विवेचित करने मे जिस पद्धति को स्वीकार किया गया है, वही अनेकान्त और वचन-प्रयोग की दृष्टि से स्याद्वाद का रूप लेती है। इसे सात प्रकार से कहा जाता है। जहाँ पदार्थ के अपने स्वरूप के सद्भाव, दूसरे के असद्भाव तथा दोनो एक साथ कहे जाने मे अवक्तव्यता का आधार लिया गया है। यो भेद में अभेद सध जाता है। स्याद्वाद का बोध करने के लिए जैन दर्शन का प्रमाण-वाद व नयवाद सहायक है। इस सिद्धान्त की प्रामाणिकता व उपादेयता विश्व के सबसे बड़े वैज्ञानिक अल्बर्ट

जैन साधक के "षडावश्यक-कर्म"

—महोपाध्याय चन्द्रप्रभसागर

□ सामायिक □

सामायिक में चित्तवृत्ति की,
समता हो, पापो से विरति।
आत्म-रमण के सुन्दर पथ पर,
यात्रा की है सहज स्वीकृति ॥

हम गृहस्थ चाहे साधक है,
पर क्या सामायिक से युत है ?
अगर नही इसकी धारा तो,
कलमष-मने, साधनाच्युत है ॥

समता की पावनता से युत,
अन्तर्-गगा में अवगाहन।
राग-द्वेष का कलुष हटाकर,
सामायिक यो करती पावन ॥

□ स्तवन □

तुम तो वीतराग हो भगवन्!
नही स्तवन से तुम्हे प्रयोजन।
निन्दक हो चाहे तव पूजक,
तेरा सब पर सदा एक मन ॥

तेरा तदपि अनवरत सुमिरण,
नर का पाप-कलक हटाता।
सुप्त चेतना जागृत होती,
निज जिनत्व का बोध कराता ॥

अहकार के हिममय टीले,
तव स्तवन से ढह जाते हैं।
वहाँ महल आदर्श गुणो के,
अपना वैभव दिखलाते हैं।

□ वन्दन □

सयम तथा गुणों से शोभित,
उत्तम गुरुवर कहलाते है।
उन सबको हो शत-शत वन्दन,
मोक्ष-मार्ग जो दिखलाते है ॥

गुरु-वन्दन से बढते रहते,
विद्या, ख्याति और अन्तर्बल,
साधकजन गुरु पर आधृत, ज्यो
भवनो को खम्बे का सम्बल।

वन्दन-विनय धर्म की जड है,
विनयवन्त की लघु अभिव्यक्ति।
लघुता मे बसती है प्रभुता,
गुरु-अनुकम्पा से मिलती शक्ति ॥

□ प्रतिक्रमण □

पख वासना के फैलाकर,
पछी उडता नील गगन में।
सुख का सागर लहराता था,
जब उसके ही अन्तर्मन में ॥

जर्मनी के जैन मनीषी :
जैन दर्शन दिवाकर हेरमान याकोवी (जेकोवी)

—डॉ० पवन सुराणा

[यूरोपीय भाषाओं के अध्ययन-अनुसन्धान मे निरत
विदुषी लेखिका तथा प्राध्यापिका
अध्यक्षा—यूरोपीय भाषा-विभाग, राज. वि. वि. जयपुर]

जैन दर्शन एव साहित्य के गण्यमान जर्मन विद्वानो वेबर, शूब्रिग, व्यूलर ग्लासेनाप्, आर्लसडोर्फ रोथ तथा ब्रुन आदि के नामो के साथ प्रतिभा के धनी हेरमान जेकोवी का नाम प्रमुख रूप से आता है। भारतीय दर्शन एव साहित्य के विविध पक्षो का अध्ययन करने वाले इस जर्मन विद्वान ने जैन दर्शन एव साहित्य का गूढ अध्ययन कर अपनी कृतियो से इस क्षेत्र मे अपना विशिष्ट स्थान बनाया।

लोक-कथाओ एव जर्मन परम्पराओ से जुड़ी प्रसिद्ध राईन नदी के दोनो किनारों पर बसे कलोन शहर मे १ फरवरी १८५० में जेकोवी का जन्म हुआ। स्कूल की शिक्षा उन्होंने कलोन में प्राप्त की। वर्लिन मे उन्होने गणित का अध्ययन प्रारम्भ किया। परन्तु दर्शन, साहित्य एव भाषा के प्रेमी जेकोवी को गणित का अध्ययन इतना रुचिकर न लगा। उन्होंने गणित को छोडकर सस्कृत तथा तुलनात्मक भाषा-विज्ञान का अध्ययन प्रारम्भ किया। १८७२ मे वोन विश्व-विद्यालय से उन्होंने डाक्टरेट को उपाधि प्राप्त की। वोन विश्वविद्यालय को १८१८ मे ही भारतीय विद्या का केन्द्र होने का श्रेय प्राप्त था। अपने अध्ययन के वाद वे एक वर्ष तक इंगलैण्ड मे रहे। १८७३-७४ मे जेकोवी ने भारत की यात्रा की। अपने अध्ययन के लिए हस्तलिखित ग्रन्थ प्राप्त करने के लिए राजस्थान, गुजरात आदि की यात्रा करने वाले प्रसिद्ध जर्मन विद्वान जार्ज व्यूलर[1] के साथ यात्रा करने का जेकोवी को सुअवसर मिला। इनको जैसलमेर की प्राचीन

---

१ भारतीय विद्या के जर्मन विद्वान जार्ज व्युलर (१८३७-१८९८) ने अपने जीवन का आधे से अधिक काल भारत मे ही व्यतीत किया। कई जैन मुनियो, सस्थानो तथा विद्वान श्रावको के सम्पर्क मे आये। बम्बई के एलफिन्स्टन कालेज मे प्रोफेसर रहे। कई कट्टर भारतीय शास्त्री अपने हस्तलिखित पवित्र शास्त्रो को एक विदेशी को नही दिखाना चाहते थे। परन्तु व्युलर के संस्कृत भाषा बोलने के अद्भुत सामर्थ्य ने कट्टर भारतीय धर्मशास्त्रियो के हृदय को द्रवित किया तथा उन्होंने अपने अमूल्य शास्त्र विना हिचक के जेकोवी को दिखाये।

जन हस्तलिपिया आदि का देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यह यात्रा नवयुवक जेकोबी की दिशा निर्धारिक बनी। राजस्थान आदि के विभिन्न प्राचीन जैन सस्थानो, जैन साधु-सता एव विद्वाना से व्यक्तिगत परिचय एव चर्चा ने जैन धम तथा दशन को विदेशी होते हुए भी समझने तथा अनुसधान करने के क्षेत्र म उनको एक नई दिशा दी।

भारत स लौटने के बाद १८७६ म वे म्यूनस्टर विश्व विद्यालय म भारतीय साहित्य के प्राचाय बने। १८८५ मे समुद्री किनारे पर बसे उत्तरी जमनी के कील शहर म वे आचाय (प्रोफेसर) बने। १८८६ म वे अपने जन्म स्थान कलोन वापिस लौट आये।

१९१३-१४ मे जकोबी पुन भारत आये। कलकत्ता विश्व विद्यालय न उन्हे काव्य शास्त्र पर व्याख्यान देने के लिए आमन्त्रित किया एव डाक्टरेट की मानद उपाधि प्रदान की। अपनी द्वितीय भारत यात्रा के दौरान जेकोबी न अपभ्र श की दो कृतिया की महत्वपूण खोज की। उसस पूव अपभ्र श का ज्ञान व्याकरणाचार्यो के उद्धरणो से ही होता था। "भविस्सदत्त कहा' तथा सनतकुमारचरितम्" इन दोनो कृतिया[1] का १९१८ तथा १९२१ मे प्रकाशन किया।

जैकोबी १९२२ म विश्व विद्यालय की सेवाओ स निवृत्त हुए परन्तु इसके बाद भी अपने जीवन के अतिम चरण १९३७ तक व अपने अनुसधान म लगे रहे। जेकोबी न कई जन कृतिया का प्रकाशन तथा उनका अनुवाद जमन भाषा म किया।

इनम से उल्लेखनीय जन कृतिया निम्न हैं —

१—दो जन स्तोत्र

२—भद्रबाहु का कल्पसूत्र[3] भूमिका टिप्पणी तथा प्राकृत-संस्कृत शब्दावलि सहित प्रकाशित

३—कालकाचाय कथानकम्[4]

४—श्वेताम्बर जनो का आय रग सुत्त[5] (आचाराग)

५—हेमचन्द्राचाय की स्थविरावली[6]

६—कल्पसूत्र का अनुवाद[7]

७—उत्तराध्ययन सूत्र तथा सूत्रकृताग सूत्र

८—उपमिति भवप्रपञ्च कथा[8]

९—विमलसूरि का पउमचरिय[9]

१ "Proceedings of the Bavarian Academy" म १९१८ तथा १९२१ म प्रकाशित।

२ १८७९ म "Indische Studien" म प्रकाशित।

३ लाइपत्सिग म १८७९ म प्रकाशित।

४ Journal of the German Oriental Society (ZDMG) म १८८० में प्रकाशित।

५ Pali Text Society द्वारा लन्दन स १८८२ म प्रकाशित।

६ Bibliotheka Indica म १८८३ म प्रथम प्रकाशित तथा १९३२ म पुन प्रकाशन।

७ 'Sacred Books of the East" १८८४ म प्रकाशित। इसी म उत्तराध्ययन सूत्र तथा सूत्रकृताग सूत्र भी १८९५ म प्रकाशित।

८ १९०१ स १४ तक Bibliotheka Indica म प्रकाशित।

९ १९१४ म प्रकाशित।

१०—भविस्सदत्त कहा

जैन कृतियो के सम्पादन एव अनुवाद के अलावा जेकोबी ने कई अनुसन्धान पत्र जैन धर्म तथा दर्शन पर लिखे। अपने गुरु वेवर के साथ ही जेकोबी का नाम भी जैन साहित्य के अग्रणी विद्वानो मे लिया जाता है। जेकोबी ने जैन साहित्य के अलावा गणित तथा विज्ञान आदि अन्य क्षेत्रों में भी अनुसंधान किया। प्राकृत ग्रन्थो के प्रकाशन ने उनको प्राकृत व्याकरण लिखने को भी प्रेरित किया। जेकोबी ने आनन्दवर्धन के ध्वन्यालोक का अनुवाद किया। अपने पेपर भारतीय तर्कशास्त्र में उन्होने तार्किक ढग से अनुमान के विचार को स्पष्ट किया। सामान्य पाठक के लिए उन्होने "पूर्व का प्रकाश" (Light of Orient) नामक पुस्तक की रचना की।

जेकोबी के सम्मान में उनकी ७५वी वर्षगाठ पर किरफेल द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ मे जेकोबी की सभी कृतियो तथा अनुसन्धान पत्रो का उल्लेख है।

जेकोबी विदेशी विद्वानो मे प्रथम विद्वान थे जिन्होंने प्रमाणित किया कि न केवल महावीर वल्कि पार्श्वनाथ भी ऐतिहासिक पुरुष थे तथा जैन धर्म, बौद्ध धर्म से विकसित धर्म न होकर अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखता है। जेन साहित्य पर किए अपने उल्लेखनीय अनुसन्धान के कारण जैन समाज ने उनको "जैन दर्शन दिवाकर" की उपाधि से विभूषित किया।

□ □

पैसा आवश्यक है आवश्यक कार्यों की पूर्ति के लिए, न कि अनावश्यक रूप से पेटियो मे सग्रह के लिए। पेट भरने योग्य पैसा हम न्याय से अर्जित कर सकते है। पेटियो को भरने के लिए तो हमे अन्याय करना ही होगा। न मालूम उस सगृहीत धन मे कितने गरीबो की आहे व हाय-हाय लगी हुई होगी। वह तो एक प्रकार से खून से सना धन है। उस धन से क्या कभी कल्याण होने वाला है? आज खूब शिकायते आती हैं कि हमारा मन, मन्दिर मे नही लगता। हमारा मन सामायिक में नही लगता। हमारा मन ध्यान में नही लगता लगता क्यो नही? इसका कारण कभी जानना चाहते है? अगर जाना है तो उन कारणो को दूर करने का प्रयत्न करो। ख्याल रहे, "जैसा अन्न, वैसा मन" अन्न शुद्ध नही होगा तव तक मन कैसे शुद्ध होगा? मन की शुद्धि के लिए शुद्ध अन्न की नितान्त आवश्यकता है। पेट में अनाज तो अशुद्ध पहुँचे और हम सामायिक करना चाहे, पूजा करना चाहे तो कभी नही होगा।

—आचार्य श्री जिनकान्तिसागर सूरि

('अमर भये, न मरेगे' पुस्तक से)

● ●

सामायिक का स्वरूप व उसकी सम्यक् परिपालना

—प० कन्हैयालाल दक
(जनधम दशन क प्रसिद्ध विद्वान, लेखक, अध्यापक)

सामायिक शब्द जैन धम का एक विशेष प्रकार का पारिभाषिक शब्द है जिसका सीधा व सक्षिप्त अथ है, समभाव की प्राप्ति होना। अथवा ऐसी एक विशेष प्रकार की आत्मिक साधना, जिससे साधक को समभाव की प्राप्ति हो। लेकिन इतना मात्र ही सामायिक का अथ नही है, वास्तव म सामायिक एक विशेष प्रकार की अध्यात्म साधना है, जिससे मानव-जीवन के चरम लक्ष्य 'मोक्ष' की प्राप्ति भी सम्भव है। जनधम ग्रन्था म सामायिक को श्रावक तथा साधु की एक पडिमा' के रूप म स्वीकार किया गया है, और इसके स्वरूप तथा महत्व पर सविशेष प्रकाश डाला गया है, जिसका परिज्ञान होना प्रत्येक सामायिक प्रेमी के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

यह सर्वविदित है कि जन धम एक आचार प्रधान धम है। केवल सिद्धान्ता का ज्ञान हो जाना, दशन शास्त्र का प्रकाण्ड पण्डित हो जाना और शास्त्रा का पारगामी विद्वान हो जाना ही जन धम मे पर्याप्त नही माना गया है, अपितु ज्ञानपक्ष के साथ म क्रिया-पक्ष को भी उतना ही प्रधान माना गया है, क्योकि जहाँ क्रिया है, वहा श्रद्धा है और श्रद्धा के साथ म आचार व सम्यक्दशन का घनिष्ठ सम्बन्ध है। कही-कही तो 'ज्ञान भार क्रिया विना' कहकर क्रियाशून्य ज्ञान को भार तक कह दिया गया है। आचार या क्रिया की प्रधानता बतलाते हुए नीतिशास्त्र म भी विद्वान की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि 'यस्तु क्रियावान पुरुष स विद्वान' अर्थात् ज्ञान होने के साथ-साथ जो व्यक्ति तदनुकूल आचरण करता है वही विद्वान है। आचाय जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण ने अपने प्रामाणिक ग्रन्थ विशेषावश्यक भाष्य' मे कहा गया है कि "नाण किरियाहि मोक्खो' अर्थात् नान-सम्यग्ज्ञान और क्रिया अथात् सम्यक्चारित्र के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति होती है। यहा सम्यक्नान म सम्यक्दशन का भी समावेश हुआ समझ लेना चाहिए।

जन धम के सिद्धान्तानुसार वास्तविक मोक्षमाग की भूमिका का प्रारम्भ चतुथ गुणस्थान (अविरत सम्यकदृष्टि) से होता है। सत्य के प्रति दृढनिष्ठा या लगन का होना सम्यग्दशन है। अनादि कालीन अज्ञान-अन्धकार मे पडा हुआ मानव जब सत्य-सूय के दशन कर लेता है, तब वह अपने आपको कृताथ सा अनुभव करता है। लेकिन मानव जीवन के अतिम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त करने के लिए सत्य

के प्रति अटल विश्वास कर लेना ही पर्याप्त नही है, अपने आपको साधनामार्ग मे समर्पित कर देना और भौतिक साधनो पर से तथा देह सम्वन्धी ममता का सर्वथा त्यागकर पूर्ण समतामय हो जाना साधक के लिये परमावश्यक होता है और इस स्थिति को प्राप्त कराने मे शुद्ध सामायिक का अपना महत्वपूर्ण स्थान है।

जैन धर्म में आत्म-साधक को दो भागो मे विभक्त किया गया है—अनगार तथा आगार। इन दोनो के द्वारा की जाने वाली साधना क्रमश अनगारधर्म तथा आगारधर्म के नाम से प्रसिद्ध है। जो साधक अपने घर-वार, धन-सम्पत्ति, कुटुम्व-परिवार तथा परिग्रह का सर्वथा त्याग करके, सासारिक ममता व मोह का त्याग करके समभाव की प्राप्ति के लिए अपने सम्पूर्ण जीवन का उत्सर्ग कर देता है और यावज्जीवन समता दर्शन के लिए सतत् प्रयत्नशील रहता है उसे 'अनगार' कहते है और उसकी साधना 'यावत्कथिक-सामायिक' कहलाती है। इसके विपरीत जो साधक घर-वार, धन-सम्पत्ति, कुटुम्व-परिवार तथा परिग्रह का स्वामी होकर भी अपने गृहस्थी के व्यस्त समय मे से समय निकालकर समभाव का निरन्तर अभ्यास करता है, अपनी शक्ति अनुसार एक, दो, तीन सामायिके करता है, वह आगार या श्रावक कहलाता है और उसकी समभाव की साधना 'इत्वरिक सामायिक' कहलाती है। इत्वरिक सामायिक (एक सामायिक का) काल २ घडी अर्थात् ४८ मिनट का होता है।

इससे यह स्पप्ट हो जाता है कि केवल घर-गृहस्थी या परिवार का त्याग करके ही सामायिक नही की जा सकती है अपितु गृहस्थाश्रम मे रहकर भी कोई भी साधक, अध्यात्म-साधना एव समभाव का अभ्यास कर सकता है। फिर भी इतना तो नि सन्देह कहा जा सकता है कि 'यावत्कथिक सामायिक' का जीवन मे वहुत वडा महत्व है और वह मानव-समाज के लिए एक अनुकरणीय आदर्श है। उसका अपना 'त्रैकालिक' महत्व है।

हमारे भिन्न-भिन्न शास्त्रो में सामायिक का जो स्वरूप बतलाया गया है, उसका अवलोकन करने के पश्चात उसकी शुद्धि व सम्यक् परिपालना के सम्वन्ध मे विचार करना समीचीन होगा, इस दृष्टि से सर्वप्रथम सामायिक के स्वरूप का विचार कर ले।

आवश्यकनिर्युक्ति मे सामायिक का स्वरूप निम्न प्रकार से बतलाया गया है—

जो समो सव्वभूएसु, तसेसु थावरेसु य।
तस्स सामाइय होई, इह केवलि भासिय ॥

अर्थात् जो ससार के त्रस तथा स्थावर सब प्राणियो पर समभाव रखता है उसी की सामायिक सच्ची सामायिक है, ऐसा केवली भगवान का कथन है। इसका तात्पर्य यह है कि सामायिक के साधक को राग, द्वेप, ममता, मोह आदि का शनै शनै परित्याग करके आत्मस्थ हो जाना पडता है। जिसकी आत्मा यम, नियम, सयम व तप मे सलग्न हो जाती है, वही आत्मा शान्ति व एकाग्रचित्त से इस सामायिक व्रत की साधना कर सकता है। अनवस्थित व चचल चित्त-वृत्ति वाला आत्मा सामायिक व्रत की साधना नही कर सकता है।

समस्त व्रतो मे सामायिक व्रत ही सर्वश्रेष्ठ है, तथा मोक्ष का प्रधान अग माना गया है। तात्त्विक दृष्टि से देखा जाये तो पाँचवे गुणस्थान मे लेकर वारहवे गुणस्थान के अन्तिम समय तक एक मात्र इस सामायिक व्रत की ही उत्तरोत्तर विकसित व उत्कृप्ट साधना की जाती है।

तेरहवे सयोगी केवली गुणस्थान मे आत्मा जव शुद्ध, बुद्ध, निरजन निराकार व परिपूर्ण अवस्था को प्राप्त कर लेती है, तव उसकी समभाव की साधना भी पूर्ण हो जाती है और वह जीव स्वय

सामायिकमय हो जाता है, इसीलिये आवश्यकनियु क्ति म एक स्थान पर कहा गया है कि—'सामाइय भाव परिणइ भावाओ, जीव एव सामाइय' अर्थात् आत्मा की समभाव रूप परिणति हो जाने से जीव (आत्मा) ही सामायिक है। सामायिक को चौदह पूर्वों का तथा द्वादशागी का सार भी कहा गया है। विशेषावश्यक भाष्य की गाथा सख्या २७९६ मे कहा गया है कि—"सामाइय सखेवो चोद्दस्स पुव्वस्स पिंडोत्ति" अर्थात सामायिक नामक व्रत चौदह पूर्वों का सारभूत पिण्ड है। तत्त्वार्थाधिगमभाष्य के स्वोपज्ञ टीकाकार आचार्य उमास्वाति ने सामायिक व्रत की महिमा पर प्रकाश डालते हुए बतलाया है कि मनुष्यता के पूर्ण विकास के लिये सामायिक एक सर्वोच्च साधना है, और द्वादशागी का सार है।

अन्तकृद्दशाग सूत्र म जहा मोक्षगामी आत्माओ के साधना से परिपूर्ण चरित्रो का उल्लेख आता है, वहाँ स्थान-स्थान पर यह उल्लेख पाया जाता है कि 'सामाइयमाइयाइ एक्कारस अगाइ अहिज्जइ" अर्थात् प्रत्येक साधक अपने जीवन के साधनाकाल मे तपस्या करने के साथ-साथ सामायिक आदि ग्यारह अगो का अध्ययन करते थे, तभी उनकी साधना पूर्णता को प्राप्त होती थी। यो देखा जाय तो बारह अगो मे सामायिक नाम का कोई अग है ही नही, फिर भी सूत्र पाठ का आशय यह है कि अध्यात्म-साधना का साधक जितने भी अग या उपाग ग्रन्थो का अध्ययन करता है उस अध्ययन के अनुरूप ही अपने जीवन को वह समता का साकार स्वरूप प्रदान कर देता है। वह शास्त्रो के साथ समरस हो जाता है, शास्त्राकार हो जाता है। और इसलिये जीव और उसकी सामायिक एक है, अभिन्न है। यह तदाकारता ही यथार्थ सामायिक है।

ऊपर सामायिक की सक्षिप्त व्याख्या करते हुए हमने बतलाया था कि समभाव की प्राप्ति करना ही सामायिक है। परन्तु समभाव की प्राप्ति होना आसान नही है। समभाव को प्राप्त करना एक दीर्घकालीन प्रक्रिया है। उसके लिए वर्षों के सतत् अभ्यास की आवश्यकता होती है। रागद्वेष से मुक्त होना, विषय-वासना का परित्याग करना, कर्मबंध के मूल कारण चारो कषायो से दूर रहना ममता और परिग्रह भाव का वर्जन करना और एकान्त स्थान मे ध्यानस्थ अवस्था म आत्म-स्वरूप का चिन्तन करना अर्थात् सभी सावद्य कार्यों से दूर रहते हुए निरतर आत्म साधना म तल्लीन रहना ही सामायिक है। जैसा कि कहा गया है—

सावद्य कर्ममुक्तस्य दुर्ध्यानरहितस्य च।
समभावो मुहूर्तस्तत व्रत सामायिकमाहितम्॥

प्रारम्भ म अपनी चित्तवृत्तियो को अशुभ कार्यों की तरफ जाते हुए रोकना चाहिए, लेकिन मन बहुत चचल है इसे स्थिर करना अति दुष्कर है। यदि अल्प समय के लिए भी इस आश्रव मार्ग म जाते हुए रोका जाय तो वह सवर कहलाता है। अभ्यास करते-करते इस 'मन स्थिरीकरण' की सवर क्रिया को कम से कम ४८ मिनट या दो घडी तक बढाते चले जाना चाहिए, तब एक इत्वरिक सामायिक का काल होता है।

यो देखा जाय तो काल एक अखण्ड द्रव्य है, उसे टुकडो म विभाजित करके सामायिक के काल का निर्धारण नही किया जा सकता है लेकिन व्यावहारिक दृष्टि स चित्तवृत्ति की स्थिरता के लिए साधक के मन सन्तोष के लिए पूर्वाचार्यों ने सामायिक का काल एक मुहूर्त का निश्चित किया है। इस एक मुहूर्त म भी चित्त की एकाग्रता या स्थिरता का होना अति दुष्कर है तो जीवन भर के लिए मन, वचन तथा काया की प्रवृत्तियो को शात स्थिर व समभाव युक्त बना पाना तो वर्तमान युग म एक कल्पना मात्र है।

इत्वरिक सामायिक करने वाला साधक (श्रावक) अन्तरात्मा की साक्षी से सकल्प करता है कि हे प्रभो ! मैं एक मुहूर्त भर के लिए दो करण व तीन योग से सावद्य कार्यो का त्याग करता हूँ और प्राणि-मात्र के साथ समभाव रखते हुए आत्म-साधना के लिए प्रवृत्त होता हूँ। यदि मेरे संकल्प-पूर्ति में किसी प्रकार की त्रुटि हो तो मै इस व्रत-भग स्वरूप पाप की स्वयं निन्दा करता हूँ, गुरु साक्षी से गर्हा करता हूँ और पाप से निवृत्त होता हूँ। सामायिक के स्वरूप को समझे, समझाए विना आज संख्या-पूर्ति की दृष्टि से सामायिको की स्पर्धा हो रही है, वे केवल बाह्य वेष-भूषा मात्र है।

आचार्य अमितगति ने अपनी 'सामायिक द्वात्रिंशिका' में सामायिक के साधक के लिए एक साधना-सूत्र की तरफ सकेत किया है। वह सूत्र (श्लोक) निम्न प्रकार है—

सत्वेषु मैत्रीं, गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपा परत्वम् ।
माध्यस्थ भाव विपरीत वृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव ।।

अर्थात्—हे जिनेश्वर देव ! मै जव तक सामायिक व्रत मे रहूँ, प्राणी मात्र के साथ मेरा मैत्री-भाव बना रहे, गुणीजनो को देखकर आनन्द और उल्लास का भाव जागृत हो, दुःखी प्राणियो को देखते ही मेरे हृदय मे कृपा या दया का भाव उत्पन्न हो जाय, मुझसे शत्रुता का भाव रखने वालो के साथ भी मेरा माध्यस्थ भाव बना रहे, कभी द्वेप का भाव हृदय को स्पर्श कर आत्मा को मलीन न बना दे, ऐसी आत्मिक शक्ति मुझे प्रदान करो।

इस प्रकार का आध्यात्मिक चिन्तन तथा अभ्यास प्रत्येक साधक को करना चाहिए, चाहे वह श्रावक हो या साधु। आज स्थिति विपरीत है। सामायिक की गुणवत्ता की तरफ सवका उपेक्षा भाव है, केवल द्रव्य सामायिक की तरफ ही विशेष भार दिया जाता है, जिसमे आसन तथा मुहपत्ति की प्रधानता है। आत्म-चिन्तन गौण है। सामायिक करने वाला सामायिक मे बोले जाने वाले शव्दो या पाठो का न अर्थ जानता है और न अन्य किसी प्रकार का उसका गम्भीर चिन्तन ही है। सामायिक-काल मे मौन स्वाध्याय का तो कही नामोनिशान भी नही है।

श्रावक के १२ व्रतो मे सामायिक एक शिक्षाव्रत के रूप में जाना जाता है। इसे शिक्षाव्रत इसलिए कहा गया है कि सामायिक द्वारा प्राप्त किया जाने वाला समभाव अभ्यास द्वारा ही प्राप्त किया जाता हूँ। आचार्य माणिक्यशेखर सूरि ने आवश्यकनिर्युक्ति में 'शिक्षा' शव्द का अर्थ निम्न प्रकार से दिया है —

"**शिक्षा नाम पुन· पुनरभ्यास** "— अर्थात् किसी वस्तु का पुन-पुन अभ्यास करना ही शिक्षा है। इस शिक्षा-व्रत मे आत्मा को अन्तर्मुखी वनाने का निरन्तर अभ्यास करना होना है। यह अभ्यास कुछ दिनो या महीनो की साधना से नही, वल्कि वर्षो की और इससे भी आगे कई जन्मो की सतत-साधना और सस्कारो से फलीभूत हो सकता है। कषायो का समूल उच्छेदन करना दुष्कर कार्य है। वडे-वडे ऋषि, महर्षि तथा सन्त-मुनिराज भी राग-द्वेष तथा कपायो से लिप्त हुए पाये जाते है। तेरा-मेरा की भावना वहाँ भी ज्यो की त्यो दिखाई देती है। ऐसी स्थिति मे तीन करण व तीन योग से साध्वाचार का पालन कर पाना या यावज्जीवन शुद्ध सामयिक व्रत का पालन करना कैसे सम्भव है ? सामायिक के साधक को तो अहर्निश निम्न प्रकार से चिन्तन करना चाहिये—

न सन्ति वाह्या मम केचनार्था, भवामि तेषा न कदाचनाऽहम् ।
इत्य विनिश्चित्य विमुच्य वाह्यं, स्वस्थ त्व भव भद्र ! मुक्त्यै ।।

य स्मयते सवमुनीन्द्र वद, य स्तूयत सवनरामरेन्द्र ।
यो गीयते वेद पुराण शास्त्र, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥

अर्थात—हे आत्मा ! जव तूने सामायिक व्रत को ग्रहण कर लिया है, तब तू इस प्रकार का चितन कर कि ससार के जितन भी पर पदाथ है वे मेरे नही हैं और न मैं उनका हूँ। इस प्रकार के विचारा स बाह्य-परपदार्थों के साथ व सम्बन्धो का परित्याग करके तू मुक्ति के माग के लिये तयार हो जा, अर्थात् अपनी आत्मा म स्थिर हो जा। जो वीतराग देव मुनीन्द्र वृदो के द्वारा सदा स्मरण किय जाते हैं, मनुष्य तथा देवता भी जिनकी सदा स्तुति करते है, वद पुराण तथा आगम, शास्त्र जिनकी महिमा का सदा गान करते है एसे परम विशुद्ध देवाधिदेव मेरे आत्म मन्दिर म सदा अधिष्ठित हो, जिससे मेरी आत्मा भी उन जैसी पवित्र बन जाय।

इस प्रकार से साधक की आत्मा मे सतत भक्ति-पूर्ण निमल विचारो का झरना प्रवाहित होते रहने से सामायिक म स्वाभाविक रूप से लगने वाले मानसिक वाचिक व कायिक दोषो से बचा जा सकता है और द्रव्य से तथा भाव से सामायिक शुद्ध और शुद्धतर बनती चली जाती है। इस प्रकार की निर्दोष सामायिक करने से जीवन म अद्भुत आनन्दानुभूति होती है। यह आनन्द अनिवचनीय है केवल अनुभव गम्य है।

किसी भी व्रत या नियम को स्वीकार करने के पश्चात उसका भग न हो या किसी प्रकार की स्खलना न हो, इस ओर व्रती को सदा सचेष्ट रहना चाहिए या यो कहें कि व्रत का पालन करते समय किसी प्रकार के प्रमाद का सेवन न हो इस ओर व्रती का सदा लक्ष्य होना चाहिए। अन्यथा सामायिक व्रत की आशातना या अवहेलना होने के साथ-साथ आत्म वचना भी होगी। कोई भी व्रत या अध्यात्म साधना किसी को दिखाने, प्रसन्न करने, मान सम्मान प्राप्त करने, यश-कीर्ति प्राप्त करने या धन सम्पत्ति प्राप्त करने की अभिलाषा से नही की जाती है व्रत-पालन करने म अन्तस्थ आत्मा का आत्म-सन्तोष ही प्रधान है, क्योंकि उस व्रत का प्रभाव उस आत्मा को ही अनुभव होगा, अन्य को नही। सामायिक व्रत का पालन करते हुए भी मन, वचन तथा काया सम्बन्धी दोषो के लगने की सम्भावना बनी रहती है, अत उनका सावधानीपूर्वक वर्जन हो, आत्मा के परिणाम शुद्ध व निमल बने रहे, इस ओर सदा सचेष्ट रहना चाहिए। 'मैं सामायिक व्रत म हूँ' इस बात की स्मृति साधक को निरन्तर बनाये रखनी चाहिए जिससे दुर्विचार, दुर्ध्यान और मन की चचलता अपने आप समाप्त हो जाय। सामायिक के निर्धारित काल का भी अवश्य ध्यान रखना चाहिए, जिससे व्रती अपने आप यह निश्चय कर सके कि मैंने अपने चचल मन को किस सीमा तक वश म कर लिया है। इसी प्रकार स साधना के क्षेत्र म मै कितना और बढ सकता हूँ?

सामायिक म करने लायक आवश्यक क्रियाओ को मैंने किया है या नही? चतुर्विंशतिस्तव किया है या नही? भगवदाज्ञा की सम्यक प्रकार से आराधना की है या नही? इन बातो का भी चिन्तन सामायिक म किया जाना चाहिए और भविष्य म एसा विशुद्ध चिन्तन करने के लिए सकल्पबद्ध होना चाहिए। जसा कि ऊपर कहा गया है सामायिक के ३२ दोषो म स किसी का भी सेवन न हो, चार प्रकार की विकथाओ म स किसी का कथन न किया जाय, चार प्रकार की सज्ञाओ (इच्छाओ) म स किसी सज्ञा का मानसिक स्पर्श न हो और व्रत भग करने के जो चार प्रकार हैं (अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार और अनाचार) इनम स किसी का भी ज्ञात या अज्ञात अवस्था म सेवन न किया जाय तभी सामायिक की सम्यक परिपालना हुई [illegible] कहा जा सकता है। O

अनेकान्त और स्याद्वाद

डॉ० चेतन प्रकाश पाटनी
(जोधपुर)

(प्रबुद्ध लेखक · विश्वविद्यालय प्राध्यापक)

वीतराग, सर्वज्ञ और हितोपदेशी जिनेन्द्रदेव ने वस्तु-स्वरूप को जानने के लिए लोक को एक मौलिक दिव्य पद्धति प्रदान की है। वस्तु का सर्वांगीण स्वरूप इसी पद्धति से जाना जा सकता है। विचार अनेक हैं, वे बहुत बार परस्पर विरुद्ध प्रतीत होते हैं परन्तु जिनेन्द्र निर्दिष्ट पद्धति से परस्पर का यह विरोध समाप्त हो जाता है। यह पद्धति है—विचारो मे अनेकान्त और वाणी मे स्याद्वाद का अवलम्बन।

अनेकान्त—इस संधिपद मे दो शब्द हैं—अनेक+अन्त। अन्त का अर्थ है—'अन्तः स्वरूपे, निकटे, प्रान्ते, निश्चयनाशयो· अवयवेऽपि' इति हैम। अन्त शब्द स्वरूप मे, निकट मे, प्रान्त मे, निश्चय मे, नाश मे, मरण मे, अवयव मे नाना अर्थो मे आता है। अनेकान्त मे अन्त का अर्थ स्वरूप, स्वभाव अथवा धर्म है।

'अनेके अन्ता धर्मा· सामान्यविशेषपर्यायगुणाः यस्येति सिद्धोऽनेकान्त.।' जिसमे अनेक अन्त अर्थात् धर्म—सामान्य विशेष गुण और पर्याय पाये जाते है, उसे अनेकान्त कहते है। यानी सामान्यादि अनेक धर्म वाले पदार्थ को अनेकान्त कहते हैं।

परस्पर विरोधी विचारो मे अवरोध का आधार, वस्तु का अनेक धर्मात्मक होना है। हम जिस स्वरूप में वस्तु को देख रहे हैं, वस्तु का स्वरूप उतना ही नही है। हमारी दृष्टि सीमित है। जबकि वस्तु का स्वरूप असीम। प्रत्येक वस्तु विराट् है और अनन्तानन्त अशो, धर्मो, गुणो और शक्तियो का पिण्ड है। ये अनन्त अंश उसमे सत् रूप से विद्यमान है। ये वस्तु के सह-भावी धर्म कहलाते है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक वस्तु द्रव्यशक्ति से नित्य होने पर भी पर्यायशक्ति से क्षण-क्षण मे परिवर्तनशील है, यह परिवर्तन अर्थात् पर्याय एक दो नही, सहस्र और लक्ष भी नही, अनन्त हैं और वे भी वस्तु के ही अभिन्न अंश है। ये अंश क्रमभाविधर्म कहलाते है। इस प्रकार अनन्त सहभावी और अनन्त क्रमभाविपर्यायो का समूह ही एक वस्तु है।

किन्तु वस्तु का स्वरूप इतने मे ही परिपूर्ण नही होता क्योकि विधेयात्मक पर्यायो की अपेक्षा भी अनन्तगुणा निषेधात्मक गुण और पर्याय का नास्तित्व भी उसी वस्तु मे है। जैसे—गाय। इस शब्द का

उच्चारण करने से गाय के अस्तित्व का तथा गाय से भिन्न समस्त पदार्थों के नास्तित्व का ज्ञान होता है अर्थात् गाय अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव की अपेक्षा है और भैस, हरिण आदि पर-द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा नही है। इस प्रकार प्रत्येक पदार्थ अस्ति-नास्ति दोनो रूप है।

'गाय' का पूर्ण स्वरूप समझने हेतु उसके सद्भाव (रूप, रस, गध, स्पर्श आदि स्थूल इन्द्रियो से प्रतीत होने वाले गुण तथा इन्द्रियो से नही प्रतीत होने वाले सूक्ष्म अनन्त गुण) तथा असद्भाव रूप (भैस आदि अभाव रूप गुण) अनन्त धर्मो को जानना परमावश्यक है क्योकि अनन्त धर्मों के ज्ञान बिना वस्तु का स्वरूप पूर्ण रूप से जाना नही जा सकता। वस्तु के अस्ति-नास्ति आदि गुण परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं परन्तु अनेकान्तवाद/दर्शन/सिद्धान्त उन सबके विरोध को दूर कर देता है। जैसे—एक मनुष्य किसी का पिता, किसी का पुत्र, किसी का भाई, किसी का पति, श्वसुर देवर, जेठ, मामा, दादा, पोता आदि अनेक नामधारी है तथा ये सम्बन्ध परस्पर विरोधी भी प्रतीत होते हैं कि जो पिता है वह पुत्र/पौत्र कैसे हो सकता है परन्तु अपेक्षाभेद उस विरोध का शमन कर देता है। इसी प्रकार अनेकान्त नित्य, अनित्य, एकत्व, अनेकत्व आदि विरोधी धर्मो का परिहार करता है। जिस प्रकार एक पुरुष मे परस्पर विरुद्ध से प्रतीत होने वाले पितृत्व/पुत्रत्व और पौत्रत्व आदि धर्म विविध अपेक्षाओ से सुसगत होते हैं उसी प्रकार प्रत्येक पदार्थ मे सत्ता, असत्ता, नित्यता अनित्यता एकता, अनेकता आदि धर्म भी विभिन्न नय विवक्षा से सुसगत हो जाते हैं। यथा—द्रव्यार्थिक नय की मुख्यता और पर्यायार्थिक नय की गौणता से द्रव्य नित्य है तथा द्रव्यार्थिक नय की गौणता और पर्यायार्थिक नय की मुख्यता से समस्त पदार्थ अनित्य हैं तथा महासत्ता की अपेक्षा समस्त पदार्थ एक है।

'सद्द्रव्यलक्षणम्' द्रव्य का लक्षण सत् है, इसकी अपेक्षा जीवादि समस्त पदार्थ एक हैं तथा महासत्ता की अपेक्षा वर्णन किया जाये तो एक पदार्थ मे दूसरे पदार्थ का सत्त्व न होने से असत् भी हैं। ऐसा कौन होगा जो प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होने वाले पदार्थों के नानापन को स्वीकार नही करेगा।

आम का फल अपने जीवनकाल मे अनेक रूप पलटता रहता है। कभी कच्चा कभी पक्का कभी हरा कभी पीला, कभी खट्टा, कभी मीठा, कभी कठोर, कभी नरम आदि, ये सब आम की स्थूल अवस्थाएँ हैं। एक अवस्था नष्ट होकर दूसरी की उत्पत्ति मे दीर्घकाल की अपेक्षा होती है परन्तु क्या वह आम उस दीर्घ अवधि मे ज्यो का त्यो बना रहता है तथा अचानक किसी क्षण हरे से पीला, और खट्टे से मीठा बन जाता है। नही, आम प्रतिक्षण अपनी अवस्थाएँ परिवर्तित करता रहता है परन्तु वे क्षण-क्षण मे होने वाली अवस्थाएँ इतने सूक्ष्म अन्तर को लिए हुए होती हैं कि हमारी बुद्धि मे नही आती, जब यह अन्तर स्थूल हो जाता है तब ही वह बुद्धिग्राह्य बनता है। इस प्रकार असख्य क्षणो मे असख्य अवस्थाओ को धारण करने वाला आम आखिर तक आम ही बना रहता है उसी प्रकार पदार्थों की मूल सत्ता एक होने पर भी अनेक रूप धारण करती है। पदार्थ का मूल रूप द्रव्य है और प्रति समय पलटने वाली उसकी अवस्थाएँ पर्याय हैं इसलिए पदार्थ द्रव्य की अपेक्षा नित्य है और पर्याय की अपेक्षा अनित्य।

द्रव्य परस्पर विरुद्ध अनन्त धर्मों का समन्वित पिण्ड है, चाहे अचेतन द्रव्य हो, चाहे चेतन द्रव्य हो, सूक्ष्म हो या स्थूल हो, मूर्तिक हो या अमूर्तिक हो उसमे विरोधी धर्मों का अद्भुत सामजस्य है। इसी सामजस्य पर पदार्थ का अस्तित्व स्थिर है अत वस्तु के किसी एक धर्म को स्वीकार कर दूसरे धर्म का परित्याग करके उसके वास्तविक स्वरूप को जानने का प्रयत्न करना हास्यास्पद है तथा अपूर्णता मे पूर्णता मानकर सन्तोष कर लेना प्रवचना मात्र है।

स्याद्वाद—नयो के द्वारा अनेक धर्मात्मक वस्तु की सिद्धि करना ही स्याद्वाद है। नय वचनाधीन है और वचनो मे वस्तु के स्वरूप का युगपत् वर्णन करने की क्षमता नही है। क्रम से वस्तु का वर्णन करना स्याद्वाद है।

'स्याद्वाद' शब्द स्यात् और वाद इन दो शब्दो के योग से बना है। 'स्यात्' शब्द अव्यय है। इसका अभिप्राय है कथञ्चित् अर्थात् किसी धर्म की अपेक्षा से, किसी दृष्टिकोण विशेष से। 'वाद' शब्द का अर्थ है—कथन करना। अर्थात् किसी धर्म की अपेक्षा से किसी वस्तु का वर्णन करना स्याद्वाद कहलाता है। कोई-कोई 'स्याद्' शब्द का अर्थ शायद अर्थात् भ्रम, अनिश्चय, सन्देह करते है अत स्याद्वाद को सशय-वाद कहते है परन्तु यह उनका भ्रम है। स्याद्वाद से वाच्य जो वस्तु है, वह निश्चित है, उसमें भ्रम या सन्देह की कोई सम्भावना नही।

'अनेकान्तात्मकार्थकथन स्याद्वाद' (लघीयस्त्रय)। अनेक धर्मो वाली वस्तु मे प्रयोजनादि गुणो का कथन करना स्याद्वाद है। विवक्षा, नय अथवा दृष्टिभेद से एक वस्तु मे अनेक विरुद्ध धर्मो का कथन करना स्याद्वाद है।

तत्त्वार्थसूत्र अध्याय पाँच सूत्र बत्तीस 'अर्पितानर्पितसिद्धेः' से नित्य, अनित्य, एकत्व, अनेकत्व, सामान्य, विशेष, सत्, असत्, मूर्तत्व, अमूर्तत्व, हेयत्व, उपादेयत्व आदि अनेक धर्मो की सिद्धि होती है।

स्याद्वाद सर्वथैकान्त-त्यागात् किवृत्तचिद्विधिः।
सप्तभगनयापेक्षो, हेयादेयविशेषकः ॥

सर्वथा एकान्तवाद का त्यागकर, कथचित् विधि से अनेक धर्मात्मक वस्तु का कथन करना स्याद्वाद है। स्याद्वाद के अभाव मे वस्तु की सिद्धि नही हो पाती है। वस्तु के अनेक धर्मो का वर्णन सप्त भगनय की अपेक्षा किया जाता है। स्याद्वाद वस्तु के सर्वांगीण स्वरूप को समझने की एक सापेक्ष भाषा पद्धति है।

जब प्रत्येक पदार्थ मे अनन्त धर्म विद्यमान है और उन समस्त धर्मो का अभिन्न समुदाय ही वस्तु है तब उसे व्यक्त करने के लिए भाषा की भी आवश्यकता होती है। जब हम वस्तु को नित्य कहते है तो हमें किसी ऐसे शब्द का प्रयोग करना चाहिए जिससे उसमे रहने वाली अनित्यता का निषेध न हो जाये। इसी प्रकार जब वस्तु को अनित्य कहते है तब भी ऐसे शब्द का प्रयोग करना चाहिए जिससे नित्यता का विरोध न हो जाय। इसी प्रकार अन्य धर्मो—सत्ता, असत्ता, एकत्व—अनेकत्व आदि का कथन करते समय भी समझ लेना चाहिए। स्यात् शब्द का प्रयोग सब विरोधो को दूर करने वाला है।

'कथञ्चित्' अर्थ मे प्रयुक्त हुआ 'स्यात्' शब्द एक सुनिश्चित दृष्टिकोण का सूचक है, इसमे सन्देह, सशय, भ्रम या अनिश्चय की कोई सम्भावना नही। यह स्याद्वाद सभी सघर्षो को दूर करने का एक अमोघ शस्त्र है। विचारो की भिन्नता ही मतभेद या विद्वेष की उद्भाविका है। इस पारस्परिक मतभेद मे एक दूसरे के विचार और दृष्टि का समादर करते हुए एकरूपता लाना स्याद्वाद की मूल भूमिका है। मतभेद होना स्वाभाविक है परन्तु कदाग्रह छोडकर सहृदयतापूर्वक समन्वय की आधार-शिला पर विचार-विनिमय करना यही स्याद्वाद का मूल तत्व है।

जैनधर्म मे अहिसातत्व जितना रम्य है उतना ही रमणीक जैनदर्शन में स्याद्वाद सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के बिना वस्तु का सही स्वरूप जानना अशक्य है। 'स्याद्वाद सिद्धान्त' एक अभेद्य किला है जिसके भीतर वादी-प्रतिवादियो के मायामयी गोले प्रवेश नही कर सकते। इसी सिद्धान्त के आधार पर सप्तभगो की प्ररूपणा की जाती है—

१ स्यादस्ति—प्रत्येक वस्तु अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा है।

२ स्याद्नास्ति—प्रत्येक वस्तु पर-द्रव्य, क्षेत्र काल और भाव की अपेक्षा नही है।

३ स्याद् अवक्तव्य—प्रत्येक वस्तु अनन्तधर्मात्मक है उसका सम्पूर्ण स्वरूप वचनातीत है। वस्तु का परिपूर्ण स्वरूप किसी भी शब्द के द्वारा व्यक्त नही किया जा सकता अत वस्तु अवक्तव्य है।

ये तीनो भग ही शेष भगो के आधार है।

४ स्यादस्ति नास्ति—यह भग वस्तु का उभयमुखी कथन करता है कि वस्तु किस स्वरूप म है और किस रूप म नही है। प्रथम भग वस्तु के केवल अस्तित्व का द्वितीय भग केवल नास्तित्व का कथन करता है और तीसरा भग अवक्तव्य का कथन करता है परन्तु यह भग अस्तित्व और नास्तित्व इन दोनो का विधान करता है।

५ स्यादस्ति अवक्तव्य—वस्तु अस्ति स्वरूप है तथापि समग्र रूप से अवक्तव्य है।

६ स्याद् नास्ति अवक्तव्य—पर-द्रव्य, क्षेत्र आदि की अपेक्षा वस्तु असत् होते हुए भी सम्पूर्ण रूप मे उसका स्वरूप वचनातीत है।

७ स्यादस्ति नास्ति अवक्तव्य—अपने स्वरूप म सत् और पर रूप मे असत् होने पर भी वस्तु समग्र रूप से अवक्तव्य है।

उपर्युक्त भगो को व्यावहारिक पद्धति मे समझाने के लिए एक उदाहरण दिया है—

हमने किसी व्यापारी से व्यापार सम्बन्धी वार्तालाप करते हुए पूछा कि आपके व्यापार का क्या हाल है ? इस प्रश्न का उत्तर उपर्युक्त सात विकल्पो के माध्यम मे इस प्रकार दिया जा सकता है—

१ व्यापार ठीक चल रहा है। (स्यादस्ति)

२ व्यापार ठीक नही चल रहा है। (स्यादनास्ति)

३ इस समय कुछ नही कह सकते, ठीक चल रहा है या नही। (स्याद अवक्तव्य)

४ गत वर्ष से तो इस समय व्यापार अच्छा है, फिर भी हम भय से मुक्त नही हैं। (स्यादस्ति नास्ति)

५ यद्यपि व्यापार अभी ठीक ठाक चल रहा है परन्तु कह नही सकते आगे क्या होगा। (स्यादस्ति अवक्तव्य)

६ इस समय तो व्यापार की दशा ठीक नही है फिर भी कह नही सकते आगे क्या होगा। (स्याद्नास्ति अवक्तव्य)

७ गत वर्ष की अपेक्षा तो कुछ ठीक है, पूर्णरूप से ठीक नही है तथापि कह नही सकते आगे क्या होगा। (स्यादस्ति नास्ति अवक्तव्य)

जिस प्रकार अस्ति नास्ति अवक्तव्य के सात भग कहे है वैसे ही नित्य, अनित्य, एक, अनेक आदि म भी घटित कर लेने चाहिए।

विश्व की विचारधाराएँ एकान्त के पक म फँसी हैं। कोई वस्तु को एकान्तनित्य मानकर चलता है तो कोई एकान्तअनित्यता का समर्थन करता है। कोई इससे आगे बढकर वस्तु के नित्यानित्य स्वरूप को गडबड समझकर अवक्तव्य कहता है फिर भी ये सब अपने मन्तव्य की पूर्ण सत्यता पर बल देते हैं जिससे सघर्ष का जन्म होता है।

जैनदर्शन स्याद्वाद के रूप मे तत्त्वज्ञान की यथार्थ दृष्टि प्रदान करके सत्य का निदर्शन कराता है तथा दार्शनिक जगत् म समन्वय के लिए सुदृढ आधार तैयार करता है। स्याद्वाद और अनेकान्त म परस्पर वाच्यवाचक सम्बन्ध है। स्याद्वाद अनेक धर्मात्मक वस्तु का वाचक है और अनेक धर्मात्मक वस्तु वाच्य है।

ललित लेख—

हिंसा घृणा का घर : अहिंसा अमृत का निर्झर

—डॉ० आदित्य प्रचण्डिया "दीति"

साहित्यश्री, डी० लिट्०

(कवि तथा लेखक, अपभ्र श भाषा पर विशेष शोध
तथा शब्द कोष का निर्माण)

मैं वस की यात्रा पर था। वस के चलने मे देरी थी। अन्दर मुझे घुटन महसूस हो रही थी, सो मैं वस से उतर कर वाहर चहलकदमी करने लगा। शायद दिल को कुछ राहत महसूस होने लगी थी। तभी यकायक दृष्टि मेरी, वस के पृष्ठ भाग मे अकित पक्ति पर जा पडी कि 'हिसा घृणा का घर है।'·· कन्डक्टर की विसिल वजते ही वस मे अपनी सीट पर जा बैठा। वस चल दी अपनी गतव्य दिशा को। मैं खिडकी के सहारे उन्मन सा वाहरी दृश्यो पर नजर फेकने लगा और मेरा मन-मस्तिष्क उस पक्ति के इर्द-गिर्द घूमने लगा। होठो ने न जाने कितनी वार यह पक्ति दुहरायी होगी और हर वार सोच की गहराई और गहरी होती चली गई। घर पर पहुँचा। स्टडीरूम की मेज पर झुकने से पहले मैं सोच के कई पडाव पार कर चुका था ? वस होना क्या था ? मेरे सोच ने शव्दो की अगवानी की और शव्दो का यह गुलदस्ता इस रूप मे आपके सामने है। लीजिए न, आप भी इसकी खुशवू सूँघिये।

सुख-दु ख की अनुभूति व्यक्ति-व्यक्ति की अपनी होती है। आत्मतुला की भावना का विकास हुए विना व्यक्ति हिसा से उपरत नही हो सकता। कहते है कि हिंसा मे धर्म न तो कभी हुआ है और न कभी होगा। यदि पानी में पत्थर तैर जाय, सूर्य पश्चिम मे उदय हो जाय, अग्नि ठडी हो जाय और कदाचित् यह पृथ्वी जगत के ऊपर हो जाय तो भी हिसा में कभी धर्म नही होगा। इस ससार मे प्राणियो के दु ख, शोक और भय के कारणभूत जो दौर्भाग्य आदि है, उन सवकी जनक हिसा है। हिसा ही दुर्गति का द्वार है। वह पाप का समुद्र है, घोर नरक है और है सघन अन्धकार। वह आठ कर्मो की गाँठ है, मोह है, मिथ्यात्व है। हिसा चण्ड है, रुद्र भी, क्षुद्र भी, अनार्य भी, नृशस भी, निर्घृण भी और है महाभय भी। असत्प्रवृत्ति अर्थात् रागद्वेप एव प्रमादमय चेष्टाओ द्वारा क्रिये जाने वाले प्राणवध को हिसा कहते है। वस्तुत पाँच इन्द्रियाँ—श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रस, स्पर्श, तीन वल—मन, वचन, काय, उच्छ्वास-निश्वास तथा आयु—विभु ने दस प्राण कहे है, इनको नष्ट करना हिसा है।

हिसा का त्याग क्यो ? आत्मा को अहिसक रखने के लिए या किसी को न सताने के लिए। हमारे पैर के नीचे दवी हुई चीटी का हाल वही होगा जो हाथी के पैर तले दवने से हमारा। जहाँ तक हो

सके हमारे द्वारा किसी दिल को भी रज न पहुँचे, क्याकि एक आह मार ससार मे खलवली मचा देती है। सभी प्राणिया को दु ख अप्रिय लगता है अत किसी को नही मारना चाहिए। उन पर हुकूमत भी नही करनी चाहिये। न उन्हे अधीन रखना चाहिए। न ही उनको परिताप देना चाहिए। उद्विग्न भी उन्ह कदापि नही करना चाहिए।

आत्मविमुखता हिंसा है। बाहरी स्थिति आत्मविमुखता की जननी है। सरलता आत्म-पवित्रता की सूचक है। बाह्य पर्यावरणो म जो चाकचिक्य है, बाह्य जगत के लुभावने और मोहक रगा मे जो आकपण है उससे आत्मा मे वक्रता पैदा होती है। सरलता स्वभाव है वक्रता विभाव है। हिंसा से उपरत वही व्यक्ति हो सकता है जो ऋजुसरल है, आत्मस्थ है, धार्मिक है। जो सरल होता है, वह दूसरा के हनन मे अपना हनन देखता है। दूसरो के परवश करने म अपनी परवशता देखता है, दूसरो के परिताप म अपना परिताप देखता है दूसरा के निग्रह म अपना निग्रह देखता है और दूसरो की हिंसा मे अपनी हिंसा देखता है। ये सब अहिंसा के ही तो परिणाम है। धार्मिक वही है जो क्रिया की प्रतिक्रिया का अनुसवेदन करता है। जो जानता है कि जिसे मैं मारना चाहता हूँ वह मैं ही हूँ जिसे मैं ठगना चाहता हूँ वह मैं ही हूँ।

आज व्यक्ति दृश्यदर्शी हो गया है। दृश्य के द्रष्टा से तो वह बेखबर है। वतमान को प्रमाण मान अतीत और अनागत को पर्दा डाल रहा है, झुठला रहा है। वह पुण्य की क्यारी म विष का बीज वपन करने मे सलग्न है। जिससे क्रूरता भी वर्द्धित हुई है। व्यक्ति के भीतर-बाहर वह मुसकाती है। समत्व-बोध लुप्त हो गया है। सबत्र असमत्व भाव आज प्रसर्पित है। एपणाए व्यक्ति मे घर जो कर गई हैं। आकाक्षाओ ने उसको उन्मत्त बना दिया है। आज व्यक्ति कई मीलो को मिनटो मे नाप सकता है, परिधि सिमट आई है लेकिन भीतर से वह कोसो दूर-सुदूर होता जा रहा है।

दूसरो के गुणा को देखकर चिढना या ईर्ष्या करना मैं हिंसा मानता हूँ। जिस प्रकार व्यक्ति को अपने गुण अच्छे लगते हैं उसी प्रकार दूसरो के गुणा की भी कद्र करनी चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति म कुछ न कुछ गुण होते ही हैं, हम उन्ह आगे रखकर चलना चाहिए। उनको कहने मे ईर्ष्या नही होनी चाहिए। गुण चाहे अपने परिचित के हा या अन्य किसी के, उनको अपनाने म हिचकिचाहट क्या ? केवल अपनी ही प्रशसा करना क्या अभिमान का सकेतक नहीं ? दूसरो मे आत्मीयता पदा करने का, दूसरो के हृदय को जीतने का सरलतम उपाय है—दूसरो के गुणा को प्रकाशित करना। दूसरा की चापलूसी भले ही न करें किन्तु वास्तविक बात कहने म भी यदि डरें तो वह निर्भय कहा रहा ? अहिंसा तो निर्भयता का पाठ पढाती है।

विनय आत्मा का स्वभाव है गुण है। जो व्यक्ति इस गुण से मडित है ओतप्रोत है, वह हिंसक नही, अहिंसक होता है। उद्दण्डता या अविनय, घृणा या द्वेष को पैदा करती है। घृणा से दूरी बढती है, एक दूसरे के बीच खाई खुद जाती है। द्वेष से वैर भाव या निन्दा को प्रश्रय मिलता है। व्यक्ति म मृदुता का विकास होना चाहिए। मृदुता का अथ दीनता नही किन्तु उद्दण्डता का अभाव है। दीनता कमजोरी पदा करती है और कमजोरी व्यक्ति को पथभ्रष्ट करती है। मृदुता आत्मविश्वास बढाती है और व्यक्ति को बलवान बनाती है। अतएव हिंसा, प्रतिहिंसा का माग पशुता का माग है। वह पशुबल है। प्रेम और सद्व्यवहार का माग मानवता का माग है, वह मानवीय बल है। व्यक्ति का प्रत्येक वचन और क्रियाकलाप प्रामाणिक होने चाहिए। इसका निकष सहयोग म है, अकेलेपन म नही। सबो साथ

रहकर, सबके बीच रहकर जो प्रामाणिक रहता है वहाँ उसकी परख होती है। विरोधी हो या मित्र किसी के साथ अप्रामाणिक व्यवहार नही होना चाहिए। जहाँ कहनी और करनी मे एकतानता न हो वहाँ हिंसा मुखर होती है। व्यक्ति जो सोचता है वही कहे, जो कहता है वही करे तो निश्चय ही वह अहिंसा के भव्य और दिव्य महल के प्रवेश-द्वार पर पहुँच जायेगा। कहनी और करनी मे असमानता आत्मवंचना है। अहिंसक स्व-पर की भूमिका से ऊपर उठा हुआ होता है। वह अन्याय का पक्षधर नही होता। अनाचारो से समझौता नही करता, वह तो जीवन भर सत्य का उपासक बना रहता है।

हिंसा मारना सिखाती है और अहिंसा मरना। हिंसा बचना सिखाती है और अहिंसा बचाना। मारना क्रूरता है, मरना वीरता। बचना कायरता है, बचाना दयालुता है। अहिंसा हृदय की मृदुता है। मृदुता मे दुर्बलता और विकार न आ जाय इसकी पहरेदारी सत्य को करनी होनी है। हमारे मन में जब तक विचार और आचार के मध्य एक गहरे सामञ्जस्य की दीपशिखा न टिमटिमायेगी तब तक हमारी जीवन बगिया में स्नेह-सद्‌भावना की हरियाली नही लहलहायेगी। अनुकम्पा के अकुर नही फूटेगे। दया के सुरभित सुमन नही खिलेगे और विश्वमैत्री के मधुर फल जन-जन के मन को आकर्षित नही करेंगे। वस्तुत ससार रूप मरुस्थल में अहिंसा ही एक अमृत का निर्झर है। उसमे जीवन का एक मरम सगीत है। अहिंसा मानवता के आगम का जगमगाता आलोक है। वह तो सस्कृति का प्राण है, धर्म और दर्शन का मूलाधार है। उसमे अनन्त प्रेम है और है कष्ट सहने की अनन्त शक्ति। आइए, इस आनन्द के रथ पर आरूढ होकर हम स्वय महके और सबको महकाएँ।

मगलकलश
३९४, सर्वोदयनगर
आगरा रोड, अलीगढ (उ० प्र०)

❋ ❋

☐ अरे! मनुष्य के फूल बडे परिश्रम से खिलते हैं। गुलाब का फूल कितना सघर्ष करके, कितनी निश्चिन्तता से खिलता है और पता नही किस काल मे वह मुरझा जायेगा? फूल खिला है, तो मुरझायेगा जरूर, मगर मुरझाने से पहले हमें फूल की खुशबू ले लेनी है। फूल के मधु का पान कर लेना है। अपने मनुष्य-जन्म को, अपने मनुष्यत्व को, अपने सघर्ष को, अपनी ताकत को सदुपयुक्त कर लेना है। बहुत से लोग ऐसे होते है जो सोये-सोये उस फूल को खो देते है। अरे! भले मानुष! कितना महिमावन्त है यह जीवन! किसी भी अन्य जीवन मे तुम मोक्ष की साधना नही कर सकते। पूर्णरूपेण यही एक जीवन ऐसा है, मनुष्यत्व ही एक ऐसा फूल है जो पूर्णतया खिल सकता है। पूर्णतया सुगन्ध फैला सकता है।

—महोपाध्याय चन्द्रप्रभसागर
('महावीर के महासूत्र' से)

❋ ❋

क्रोध स्वरूप एव निवृत्ति के उपाय

—साध्वी हेमप्रज्ञाश्री

[स्व० प्रवर्तिनी विचक्षणश्री जी महाराज की शिष्या
जन आगमो की विशिष्ट अभ्यासी विदुषी श्रमणी]

●

क्रोध एक ऐसा मनोविकार है, जिसकी अभिव्यक्ति अनेक व्यक्तियो के द्वारा अनेक रूपो मे होती है। किसी का क्रोध ज्वालामुखी के विस्फोट के समान होता है तो किसी का क्रोध उस वडवाग्नि के समान—जो समुद्र के अन्दर ही अन्दर जलती रहती है। किसी का क्रोध दियासलाई की भभक के समान एक क्षण जलकर समाप्त हो जाता है तो किसी का क्रोध कण्डे की अग्नि के समान धीरे धीरे बहुत देर तक सुलगता रहता है। किसी का क्रोध मशाल की उस आग के समान होता है जो जलकर भी राह दिखा देती है तो किसी का क्रोध उस दावाग्नि के समान होता है जो सब कुछ भस्म कर देती है। किसी का क्रोध उस जठराग्नि के समान होता है जो स्वय के लिए हितकारी बन जाता है और किसी का क्रोध उस श्मशान की आग के समान होता है जो शरीर की एक एक बोटी को जला डालती है।

क्रोध प्राय प्रत्येक व्यक्ति म होता है। क्रोध की मात्रा मे अन्तर हो सकता है, क्रोध की अभिव्यक्ति म भिन्नता हो सकती है, क्रोध के काल का प्रमाण अलग हो सकता है किन्तु यदि कोई व्यक्ति क्रोधरहित है तो वह महान सन्त/साधक या वीतराग हो सकता है।

क्रोधी मनुष्य को सर्प की उपमा देते हुए तथागत ने चार प्रकार के सर्प बताए हैं[1]—

(१) विषैला किन्तु घोर विषैला नही।
(२) घोर विषैला, मात्र विषैला नही।
(३) विषैला, घोर विषैला।
(४) न विषैला, न घोर विषैला।

---

१ अगुत्तर निकाय, भाग २ पृ० १०८ १०९।

इसी प्रकार क्रोधी व्यक्ति भी चार प्रकार के होते है—

(१) शीघ्र क्रोधित, किन्तु अधिक देर नही।
(२) शीघ्र क्रोधित नही किन्तु आने पर वहुत देर क्रोध।
(३) शीघ्र क्रोधित एव क्रोध का समय भी लम्बा।
(४) न शीघ्र क्रोधित, न ही अधिक समय तक क्रोध।

जैनागमो में क्रोध के काल की अपेक्षा अनन्तानुवन्धी आदि भेद वताए गए है[1]—

(१) **अनन्तानुवन्धी**—पर्वत की उस दरार के समान[2]—जो दीर्घकालपर्यन्त वनी रहती है। उसी प्रकार जो क्रोध जीवनपर्यन्त वना रहता है—वह अनन्तानुवन्धी क्रोध है। ऐसा क्रोधी कभी आराधक नही हो सकता। इसलिए सावत्सरिक प्रतिक्रमण किया जाता है—जिसमे कम से कम एक वर्ष में तो हम क्रोध के प्रसग की स्मृति को समाप्त कर दे।

(२) **अप्रत्याख्यानी**—पृथ्वी पर वनी रेखा के समान[3] जो काफी समय तक वनी रहती है। इसी प्रकार अप्रत्याख्यानी क्रोध अधिक से अधिक एक वर्ष तक रहता है—उसके पश्चात् तो वह निश्चित समाप्त हो जाता है।

(३) **प्रत्याख्यानावरण**—वालू की रेखा[4]—जिस प्रकार वालू मिट्टी पर वनी रेखा (लकीर) कुछ समय वाद समाप्त हो जाती है। इसी प्रकार प्रत्याख्यानावरण क्रोध अधिक से अधिक चार माह तक रह सकता है। इसलिए चातुर्मासिक प्रतिक्रमण किया जाता है।

(४) **सज्वलन**—जल की रेखा[5]—जिस प्रकार जल मे खीची रेखा तुरन्त समाप्त हो जाती है उसी प्रकार जो क्रोध तुरन्त शान्त हो जाता है—अधिक से अधिक १५ दिन तक रहता है—वह सज्वलन क्रोध है। इस अपेक्षा से पाक्षिक प्रतिक्रमण किया जाता है।

प्रत्येक दिवस और रात्रि को होने वाली भूल के लिए देवसी-राई प्रतिक्रमण होता है।

ये चारो भेद क्रोध की अभिव्यक्ति की अपेक्षा से नही अपितु क्रोध का प्रसग स्मृति में कितने काल तक रहता है—इस अपेक्षा से किये गये है।

स्थानाग सूत्र, प्रज्ञापना सूत्र मे क्रोध की चार अवस्थाएँ वताई गई है[6]—

(१) **आभोग निर्वतित**—बुद्धिपूर्वक किया जाने वाल क्रोध।[7] वृत्तिकार श्री अभयदेव सूरि ने आभोग का अर्थ ज्ञान वताया है।[8] आचार्य मलयगिरि ने प्रज्ञापना सूत्र की टीका मे इसकी व्याख्या इस प्रकार की है।[9] जव एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के द्वारा किए गए अपराध को भली भाँति जान लेता है और विचार करता है कि यह अपराधी व्यक्ति नम्रतापूर्वक कहने से समझने वाला नही है। उसे क्रोधपूर्ण मुद्रा ही पाठ पढा सकती है। इस विचार से वह जानबूझ कर क्रोध करता है।

---

१ ठाणं स्थान-४, उ० ३, सू० ३५४।
२. ठाण स्थान ४, उ० ३, सू० ३५४।
३ ठाण स्थान ४, उ० ३, सू० ३५४।
४ ठाण स्थान ४, उ० ३, सू० ३५४।
५. ठाण स्थान ४, उ० ३, सू० ३५४।
६ (अ) ठाण स्थान ४, उ० १, सू० ८८। (व) प्रज्ञापना, पद १४, मलयगिरि वृत्ति, पत्र २९१।
७ ठाणं, स्थान ४, उ० १, सू० ८८।
८ स्थानाग वृत्ति, पत्र १८२।
९. प्रज्ञापना, पद १४, मलयगिरि वृत्ति, पत्र २९१।

(२) अनाभोग निर्वर्तित—अबुद्धिपूर्वक होने वाला क्रोध। आचाय मलयगिरि के अनुसार[1]—जो मनुष्य किसी विशेप प्रयोजन के बिना, गुणदोप के विचार से शून्य होकर प्रकृति की परवशता से क्रोध करता है—वह अनाभोग निर्वर्तित है।

(३) उपशात —जिस क्रोध के सस्कार ता ह किन्तु उदय मे नही है।

(४) अनुपशात[3]—क्रोध की अभिव्यक्ति।

क्रोध की अभिव्यक्ति, क्रोध की उत्पत्ति अनेक कारणो से होती है। अपन प्रति अन्याय होने पर प्रतिरोध प्रकट करन के लिए, कायक्षमता के अभाव मे कायसलग्न होने पर, शारीरिक दुवलता, रोग आदि की अवस्था म, थकावट मे काय करना पड, काय मे कोई अनावश्यक वाधा डाले तो क्रोध आन लगता है। यह तो प्रकट कारण हैं। वस्तुत जहा जहा अपनी अनुकूलता, प्रियता म बाधा उपस्थित होती है, अपना मान खण्डित होने पर, माया प्रकट होने पर तथा लोभ सन्तुष्ट न होने पर क्रोधोत्पत्ति होती है। मान, माया, लोभ कपाय कारण हैं तथा क्रोध काय है। अपनी इच्छा का अनादर अपेक्षा उपेक्षा म परिवर्तित होने पर, विचारो म सघप होने पर क्रोध प्रकटीभूत होता है।

स्थानाग सूत्र म क्रोधोत्पत्ति के दस कारणो का कथन किया गया है[4]—इष्ट पदार्थों, इष्ट विचारो, इष्ट व्यक्तियो के सयोग म बाधा उपस्थित करन वाले के प्रति क्रोध का उद्‌भव होता है एव अनिष्ट पदार्थों, अनिष्ट विचारो, अनिष्ट व्यक्तियो के सयोग म कारणभूत बनन वाले के प्रति भी क्रोध उभरता है।

क्रोध की उत्पत्ति का कारण बताते हुए गीता मे कहा है[5]—विपयो का चिन्तन करन वाले मनुष्य की उन विपयो मे आसक्ति उत्पन्न हो जाती है, आसक्ति से उन विपयो की प्राप्ति की कामना उत्पन्न होती है, कामना से उनकी प्राप्ति मे विघ्न उपस्थित होन पर क्रोध उत्पन्न होता है। अत क्रोध की उत्पत्ति का मूल कारण विपयो के प्रति आसक्ति है। प्राचीनतम आगम आचाराग सूत्र मे तो विपयो को ही ससार कहा है।[6]

क्रोध का प्रकाशन तीव्र रोप के रूप मे भी हो सकता है और कभी सामान्य खीझ और चिढ के रूप म भी। यह कभी-कभी भय या दुख की भावनाओ से मिश्रित ईर्ष्या मे और कभी भय से मिश्रित घृणा की भावना मे भी पाया जाता है।

क्रोध की अभिव्यक्ति अनेक रूपो मे होती है। सामान्यतया कभी-कभी मनुष्य अपने क्रोध को भी क्रोध नही समझ पाता है। मात्र तीव्र गुस्सा करना ही क्रोध नही है अपितु क्रोध की कई परिणतियाँ हैं जिसे भगवती सूत्र आदि मे क्रोध का पयायवाची बताया है।

क्रोध के पर्याय

समवायाग सूत्र[7] एव भगवती सूत्र[8] म क्रोध के दस पर्यायवाची नामो का कथन किया गया है। जो निम्नलिखित हैं—

---

१ प्रज्ञापना, पद १४, मलयगिरि वृत्ति पत्र २९१
२ ठाण, स्थान ४, उ० १, सू० ८८।
३ ठाण, स्थान ४, उ० १, सू० ८८।
४ ठाण, स्थान १०, सूत्र ७।
५ गीता, अ० २ श्लोक ६२।
६ आयारो, अ० १, उ० ५, सू० ९३।
७ कोहे कोवे रोस दोसे अखमा सजलणे कलहे चडिक्क भडणे विवाए 'समवाओ, समवाय ५२, सूत्र १।
८ भगवती सूत्र, श० १२, उ० ५, सूत्र २।

(१) क्रोध (२) कोप (३) रोष (४) दोप (५) अक्षमा (६) सज्वलन (७) कलह (८) चाण्डिक्य (६) भंडन (१०) विवाद।

भगवती सूत्र के वृत्तिकार ने इनका विवेचन इस प्रकार किया है—

(१) क्रोध—'क्रोध परिणामजनक कर्म तत्र क्रोध'[1] क्रोध परिणामो को उत्पन्न करने वाले कर्म का सामान्य नाम क्रोध है। अन्तरग में क्रोध के कर्मपरमाणुओ का उदय होने पर कभी-कभी व्यक्ति वाह्य निमित्त न होने पर भी अपने भावो में क्रोध का अनुभव करता है और निमित्त मिले तो उस क्रोध को अभिव्यक्त भी कर देता है।

(२) कोप—वृत्तिकार के अनुसार—"कोपादयस्तु तद्विशेपा."[2] विशेप क्रोध ही कोप है। वृत्ति अनुवादक ने कोप का अर्थ इस प्रकार किया है—क्रोध के उदय को अधिक अभिव्यक्त न करना कोप है। कई व्यक्तियो का क्रोध वडवाग्नि के समान होता है—वाह्य दृष्टि से सागरवत् गभीर किन्तु अन्तरंग मे ज्वाला।

अभिधान राजेन्द्र कोप मे 'कोप' शव्द की व्याख्या करते हुए कहा है[3]—कोप कामाग्नि से उत्पन्न होने वाली एक चित्तवृत्ति है। वह प्रणय और ईर्ष्या से उत्पन्न होती है। इसी प्रसग मे कोपकार ने साहित्य-दर्पण की व्याख्या भी प्रस्तुत की है। साहित्यदर्पण के अनुसार प्रेम की कुटिल गति के कारण जो कारण विना होता है वह कोप है।

(३) रोष—भगवती वृत्ति के अनुसार[4]—'रोप क्रोधस्यैवानुवन्धो'—जो क्रोध सतत् चलता रहता है, जिसमे क्रोध की परम्परा वनी रहती है वह रोप है। रोप मे क्रोध का प्रसग समाप्त होने पर भी हृदय मे क्रोध की ज्वाला शान्त नही होती। अत व्यक्ति कार्य करता है किन्तु उसका कार्य ही उसके क्रोधाविष्ट होने का परिचय देता रहता है। कई व्यक्ति जोर-जोर से वस्तु फेंकना, उठाना, पॉव पटक-पटक कर चलना, झनझनाहट आदि क्रियाओ से अपने क्रोध का परिचय देते रहते है।

(४) दोष—वृत्तिकार के अनुसार[5]—'दोष आत्मन· परस्य वा दूषणमेतच्च क्रोधकार्य द्वेपो वा प्रीतिमात्र।' स्वय को अथवा दूसरे को दूषण देना—क्रोध का कार्य है अत दोप क्रोध का समानार्थक नाम है। दोष का अपर नाम द्वेष भी है। अप्रीति परिणाम द्वेष है। क्रोधावेश मे व्यक्ति स्वय पर या दूसरे पर भयकर दूषण/लाछन लगा देता है—यह दोप है।

(५) अक्षमा—'अक्षमा परकृतापराध.'[6]—दूसरे के अपराध को सहन न करना—अक्षमा है। प्राय· व्यक्ति अपने से सत्ता, सम्पत्ति, पद में वडे व्यक्ति के अपराध/क्रोध को चुपचाप सहन कर लेता है क्योकि जानता है कि सहने मे ही लाभ है। किन्तु अपने से निम्न वर्ग पर—वह परिवार हो अथवा भृत्यवर्ग—उनके अपराध को सहन न करके उनके अपराध से भी अधिक दण्ड देता है।

---

१. भगवती सूत्र—अभयदेवसूरिवृत्ति, श १२, उ. ५, सू २
२ भगवती सूत्र—अभयदेवसूरिवृत्ति, श० १२, उ० ५, सू० २
३. अभिधान राजेन्द्र कोष, भाग ७, पृ १०६
४ भगवती सूत्र—अभयदेवसूरिवृत्ति, श. १२, उ. ५, सू. २
५ भगवती सूत्र, श. १२, उ ५, सू २ की वृत्ति
६. भगवती सूत्र—श० १२, उ० ५, सू० २ की वृत्ति।

(६) सञ्ज्वलन—'सज्वलनो मुहुर्मुहु क्रोधाग्निना ज्वलन'[1]—बार-बार क्रोध से प्रज्वलित होना—सज्वलन है। इस प्रसग पर सज्वलन का अर्थ सज्वलन कषाय की अपेक्षा भिन्न है। अनन्तानुबधी आदि भेदो मे सज्वलन का अर्थ अल्प है। यहा सज्वलन का अर्थ क्रोधाग्नि का पुन-पुन भडकना है।

(७) कलह—'कलहो महता शब्देनान्योन्यमसमजस भाषणमेतच्च क्रोधकार्यं ।'[2]—क्रोध मे अत्यधिक एव अनुचित शब्दावली प्रयोग करना। लोक-लाजभय का अभाव, शिष्टता का अभाव, गम्भीरता का अभाव हो तो व्यक्ति कलह करने मे सकोच का अनुभव नही करता। इसे सामान्य रूप से वाक्युद्ध भी कहा जाता है अर्थात् शब्दो की बौछार से जो क्रोध प्रदर्शित किया जाय—वह कलह है।

(८) चाण्डिक्य —'चाण्डिक्य रौद्राकारकरण एतदपि क्रोध-कार्यमेव ।'[3] क्रोध मे भयकर रौद्ररूप धारण करना चाण्डिक्य है। भयकर क्रोध मे कई व्यक्ति इतने रौद्र, क्रूर, नृशस हो जाते हैं कि किसी के प्राण हरण करने मे भी नही हिचकिचाते। ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती जिसने एक ब्राह्मण पर क्रोध आने पर समस्त ब्राह्मणो की आँखे निकालने का आदेश दिया था। परशुराम—जिसने पृथ्वी को क्षत्रियविहीन बनाने के लिए भयकर रक्तपात किया था। इस प्रकार के भयकर क्रोध को चाण्डिक्य कहा गया है।

(९) भडन—'भण्डन दण्डादिभिर्युद्धमेतदपि क्रोधकार्यमेव ।'[4] दण्ड, शस्त्र आदि से युद्ध करना—भडन है।

(१०) विवाद— विवादो विप्रतिपत्तिसमुत्थवचनानि इदमपि तत्कार्यमेवेति ।'[5] परस्पर विरुद्ध वचनो का प्रयोग करना विवाद है।

कषायपाहुड सूत्र मे भी क्रोध के समानार्थक दस नाम दिए गए हैं किन्तु उसमे समवायाग सूत्र के दस पर्यायवाची नामो मे से चाण्डिक्य एव भडन भेद प्राप्त नही होते अपितु वृद्धि एव झझा नाम मिलते हैं। कषायपाहुड मे क्रोध के दस पर्यायवाची नाम इस प्रकार हैं[6]—

(१) क्रोध (२) कोप (३) रोष (४) अक्षमा (५) सज्वलन (६) कलह (७) वृद्धि (८) झझा (९) द्वेष और (१०) विवाद।

इनमे से वृद्धि और झझा के विषय मे कषायपाहुड के वृत्ति अनुवादक का कथन इस प्रकार है[7]—

वृद्धि—वृद्धि शब्द का प्रयोग बढने के अर्थ मे प्रयुक्त होता है।[7] जिससे पाप, अपयश, कलह और वैर आदि वृद्धि को प्राप्त हो वह क्रोधभाव ही वृद्धि है। यहाँ क्रोध के अर्थ मे वृद्धि शब्द इतना सगत प्रतीत नही होता क्योकि वृद्धि शब्द का प्रयोग क्रोध के परिणाम के रूप मे हुआ है क्रोध रूप मे नही।

---

१ भगवती सूत्र, श १२, उ ५, सू २ की वृत्ति
२ भगवती सूत्र, श० १२ उ० ५, सू० २ की वृत्ति
३ भगवती सूत्र, श० १२, उ० ५, सू० २ की वृत्ति
४ भगवती सूत्र, श० १२, उ० ५, सू० २ की वृत्ति
५ भगवती सूत्र, श० १२, उ० ५, सू० २ की वृत्ति
६ कोहो य कोव रोसो य अक्खम संजलण कलह-वड्ढी य।
झझा दोस विवादो दस कोहेयट्ठिया होति ॥
(क० पा०, अ० ९, गा० ८६)
७ क० पा०, अ० ९, गा० ८६ का अनुवाद

झंझा—अत्यन्त तीव्र संक्लेश परिणाम को झझा कहते है ।[1] आचाराग सूत्र मे झंझा शब्द का प्रयोग व्याकुलता के अर्थ में किया है ।[2]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने क्रोध के कुछ अन्य रूपो की भी व्याख्या की है[3]—

(१) चिड़चिड़ाहट—क्रोध का एक सामान्य रूप है—चिडचिडाहट। जिसकी व्यंजना प्राय शब्दों तक ही रहती है। कभी-कभी चित्त व्यग्र रहने, किसी प्रवृत्ति में वाधा पडने पर या किसी वात की मनोनुकूल मुविधा न मिलने के कारण चिड़चिड़ाहट आ जाती है।

स्वय को वुद्धि, सत्ता, सम्पत्ति में अधिक मानने वाला, स्वय को व्यस्त और दूसरे को व्यर्थ मानने वाला भी प्राय' चिडचिडाहट से उत्तर देता है।

(२) अमर्ष—किसी वात का बुरा लगना, उसकी असाध्यता का क्षोभयुक्त और आवेगपूर्ण अनुभव होना अमर्ष कहलाता है। क्रोध की अवस्था मे मनुष्य दु.ख पहुँचाने वाले पात्र की ओर ही उन्मुख रहता है। उसी को भयभीत या पीडित करने की चेष्टा मे प्रवृत्त रहता है। क्रोध एवं भय मे यह अन्तर है[4] कि क्रोध दु.ख के कारण पर प्रभाव डालने के लिए आकुल रहता है और भय उसकी पहुँच से वाहर होने के लिए।

अमर्ष मे दु ख पहुँचाने वाली वात के पक्षो की ओर तथा उसकी असह्यता पर विशेष ध्यान रहता है। झल्लाहट, क्षोभ आदि भी क्रोध के ही रूप हैं। जव किसी की कोई वात या काम पसन्द नही आता है और वह वात वार-वार सामने आती है तो झल्लाहट उत्पन्न हो जाती है—जो क्रोध का ही एक रूप है। अपनी गलती पर मन का परेशान होना भी क्षोभ है।

क्रोध के परिणाम—सर्वप्रथम तो क्रोधी व्यक्ति की आकृति ही भयकर एव वीभत्स हो जाती है। शारीरिक एव मानसिक सन्तुलन अव्यवस्थित हो जाता है। आकृति पर अनेक परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं जैसे मुख तमतमाना, आखे लाल होना, होठ फड़फडाना, नथुने फूलना, जिह्वा लडखड़ाना, वाक्य व्यवस्था अव्यवस्थित होना।

क्रोध को अग्नि की उपमा देते हुए हेमचन्द्राचार्य ने कहा है[5] कि क्रोध सर्वप्रथम अपने आश्रय-स्थान को जलाता है—वाद में अग्नि की तरह दूसरे को जलाए या न जलाए। क्रोध के विपय में ज्ञानार्णव मे शुभचन्द्राचार्य ने भी इसी प्रकार विवेचन किया है।[6] यह निश्चित है कि क्रोधी व्यक्ति दूसरे का अनिष्ट कर सके या नही पर स्वयं के लिए शत्रु सिद्ध होता है। शारीरिक दृष्टि से उसकी शक्ति क्षय होती है और अनेकानेक रोगो का जन्म होता है।

आज मनोविज्ञान और औषधि विज्ञान ने सिद्ध कर दिया है[7] कि क्रोध की स्थिति मे थाइराइड

---

१ क० चू०, अ० ६, गा० ८६ का अनुवाद
२ आयारो, अ० ३, उ० ३, सू० ६९
३ चिन्तामणि, भाग-२, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १३६
४. चिन्तामणि-भाग २, रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १२५
५ योगशास्त्र, हेमचन्द्राचार्य प्रकाश ४, गा० १०
६ ज्ञानार्णव, शुभचन्द्राचार्य, सर्ग १९, गा० ६
७ (अ) शारीरिक मनोविज्ञान, ओझा एव भार्गव, पृ० २१९
(व) सामान्य मनोविज्ञान की रूपरेखा, डा० रामनाथ शर्मा, पृ० २४०-२४१

ग्रथि ठीक से काय नही करती । एड्रीनल मैडयूला ग्रन्थि ऐड्रीननिन हारमोन को रुधिर धारा मे मिलाती है। स्वचालित तन्त्रिका तन्त्र हृदयगति, रक्तप्रवाह, रक्तचाप तथा नाडी की गति म वृद्धि कर देता है, पाचनक्रिया मे विघटन डालता है, रुधिर के दवाव को बढाता है। इस प्रकार क्रोध से पेप्टिक अल्सर, हृदयरोग, उच्च रक्तचाप आदि अनेक रोग होते है।

क्रोधी व्यक्ति का परिवार मे आतक बना रहता है, भयजनक वातावरण रहता है—उसके प्रति स्नेह और प्रेम का ह्रास हो जाता है। परिवार मे अनुशासन आवश्यक है—आतक नही। समाज म क्रोधी व्यक्ति सम्मान का पात्र नही बन पाता। ऐसा व्यक्ति क्रोध करके अपने ही किए कार्यों पर पानी फेर देता है। अत क्रोध शरीर, परिवार और समाज की दृष्टि म उचित नही—यह सत्य है किन्तु विशेष रूप से आत्मिक दृष्टि से वह अत्यन्त हानि को प्राप्त होता है।

हेमचन्द्राचाय ने कहा है[1]—क्रोध शरीर और मन को सताप देता है क्रोध वर का कारण है, क्रोध दुर्गति की पगडण्डी है और क्रोध शम सुख को रोकने के लिए अगला समान है। क्रोध व्यक्ति की शान्ति को भग कर देता है हृदय व्याकुल कर देता है मन क्षुब्ध बना देता है और आत्मा म कम कालुष्य की वृद्धि कर जन्म मरण का कारण बनता है।

क्रोध के प्रसग म क्रोध को न आने देने के लिए कुछ चिन्तन सूत्र उपयोगी है—

(१) क्रोध द्वारा होने वाली हानियो पर दृष्टि
(२) स्वय के दोष देखने का प्रयास
(३) दूसरे के दृष्टिकोण को समझने का प्रयत्न
(४) स्थान परिवतन
(५) चिन्तन शैली मे परिवतन
(६) अल्प अपेक्षाएँ
(७) अहकार को प्रबल होने से रोकना

यदि व्यक्ति प्रयास करे तो वह अपनी वृत्तियो पर नियन्त्रण कर सकता है। ध्यान रखे—

क्रोध प्राणियो के अन्तरग एव बाह्य को अनेक प्रकार से जलाता है अत वह एक अपूव अग्नि है। अग्नि मात्र बाह्य को जलाती है किन्तु यह अन्तरग को भी जलाता है। बुद्धिमानो की भी चक्षु सम्बन्धी और मानसिक दोनो ही दृष्टियो का एक साथ उपघात करने से क्रोध कोई एक अपूव अन्धकार है क्योकि अन्धकार तो केवल बाह्य दृष्टि का ही उपघातक होता है। जन्म-जन्म म निलज्ज होकर अनिष्ट करने वाला होने से क्रोध कोई एक अपूव ग्रह या भूत है क्योकि भूत तो एक ही जन्म म अनिष्ट करता है। उस क्रोध का विनाश करने के लिए क्षमादेवी की आराधना करनी चाहिए[2]।"

卐 卐

---

१ योगशास्त्र, हेमचन्द्राचाय, प्रकाश ४, गा० ६
२ अनगार धर्मामृत, अ० ६, श्लोक ४

जैन कला में तीर्थङ्करों का वीतरागी स्वरूप

—डा. मारुतिनन्दन तिवारी,

—डा. चन्द्रदेव सिंह

[कला इतिहास विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी—२२१००५ (उ० प्र०)]

जैन कला और स्थापत्य पर डा० यू० पी० शाह प्रभृति विद्वानो ने कई महत्वपूर्ण ग्रन्थ एव लेख प्रकाशित किये है, जिनमे जैन कला के विविध पक्षो की सुन्दर विवेचना और वर्णन मिलते है। किन्तु जैन कला मे जैन तीर्थकरो या जिनो के विषय मे अध्ययन मुख्यत लक्षणपरक रहे है। प्रस्तुत लेख मे हम जैन तीर्थंकरो के वीतरागी स्वरूप तथा कला में उनकी अभिव्यक्ति की चर्चा करेंगे।

जैन देवकुल मे वर्तमान अवसर्पिणी युग के २४ तीर्थकरो को सर्वाधिक प्रतिष्ठा प्राप्त है जिन्हे हेमचन्द्र (१२वी शती ई०) ने 'देवाधिदेव' भी कहा है। तीर्थकरो के मुख्य आराध्य देव होने के कारण सर्वप्रथम कला मे तीर्थकरो की ही मूर्तियाँ बनी। कुछ विद्वान हड़प्पा से प्राप्त नग्न कबन्ध (लगभग २३०० ई० पू०) को तीर्थंकर मानते है, जिनमे टी० एन० रामचन्द्रन एव रामप्रसाद चन्दा मुख्य है। सिन्धु सभ्यता की लिपि के अन्तिम रूप से अभी तक न पढे जा सकने की स्थिति मे यद्यपि हड़प्पा की मूर्ति का तीर्थंकर मूर्ति होना सदेहास्पद हो सकता है किन्तु मूर्ति की नग्नता और उसके खडे होने की कायोत्सर्ग-जैसी मुद्रा किसी न किसी रूप मे ऐसे योगी मूर्तियो के निर्माण और पूजन की परम्परा को अवश्य प्रमाणित करती है जो कालान्तर मे केवल तीर्थंकर मूर्तियो की ही अभिन्न विशेषताएँ रही है। पटना के समीप लोहानीपुर से प्राप्त मौर्यकालीन चमकदार आलेप मे युक्त मूर्ति नि सन्देह तीसरी शताब्दी ई० पू० मे तीर्थंकर मूर्तियो के निर्माण और पूजन की स्पष्ट साक्षी है[1]। शुग काल से मथुरा और चौसा (भोजपुर, बिहार) जैसे स्थलो पर तीर्थंकरो की मूर्तियाँ बनी। बौद्ध परम्परा के समान जैनपरम्परा मे महावीर या किसी पूर्ववर्ती तीर्थकर ने अपनी मूर्ति निर्माण का निषेध नही किया था। इससे बुद्ध के पूर्व ही तीर्थकर मूर्तियो के निर्माण का मार्ग जैन धर्मानुयायियो के लिए प्रशस्त था। वसुदेवहिण्डी (छठी शती ई०) तथा अन्य कई प्रारम्भिक जैन ग्रन्थो सहित हेमचन्द्र कृत त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र (१२वी शती ई०) मे हमे महावीर के जीवन काल मे ही जीवन्तस्वामी स्वरूप मे उनकी प्रतिमा के निर्माण और पूजन के स्पष्ट उल्लेख मिलते है। जीवन्तस्वामी मूर्तियो के प्राचीनतम उदाहरण भी गुजरात मे अकोटा से प्राप्त हुए हैं।[2] इन गुप्तकालीन मूर्तियो के पीठिका लेख मे स्पष्टत 'जीवितस्वामी' नाम मिलता है।

महावीर स्वामी की ध्यानस्थ मूर्ति लगभग छठी सदी ई । सम्प्रति भारत कला भवन
वाराणसी B H U (क्रमांक १६१) चित्र भारत कला भवन के सौजन्य से प्राप्त

ऋषभनाथ भगवान (ध्यानस्थ मुद्रा) पश्चिमी देवालय पार्श्वनाथ
मन्दिर खजुराहो (म. प्र.) लगभग १०वी ई. शती।
(चित्र—लेखक के सग्रह से)

कुषाण काल में मथुरा में भागवत सम्प्रदाय के भक्ति आन्दोलन के प्रभाव के कारण पहली बार प्रचुर संख्या में तीर्थंकर मूर्तियों का निर्माण प्रारम्भ हुआ और तीर्थंकर मूर्तियों के कई लक्षण भी सर्वप्रथम स्थिर हुए। कुषाण काल में ऋषभनाथ, सम्भवनाथ मुनिसुव्रत, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर (वर्धमान) की कई मूर्तियाँ बनी। इन मूर्तियों में सर्वप्रथम वक्षस्थल में श्रीवत्स चिन्ह के अंकन की परम्परा प्रारम्भ हुई जिनके आधार पर सरलता से तीर्थंकर और बुद्ध मूर्तियों के बीच अन्तर किया जा सकता है। तीर्थंकर मूर्तियाँ केवल दो ही मुद्राओं—ध्यानस्थ या पद्मासन में बैठी और कायोत्सर्ग या खड्गासन में खड़ी रूप में बनी (चित्र २-३)। ये दोनों ही मुद्रायें योगी की चिन्तन ध्यान की विशिष्ट मुद्रायें हैं। आगे की शताब्दियों में भी तीर्थंकर मूर्तियों का निर्माण इन्हीं दो मुद्राओं में हुआ।

कुषाण काल में तीर्थंकर मूर्तियों में अष्टप्रातिहार्यों में से लगभग सात प्रातिहार्यों (सिंहासन, चामरधारी सेवक, प्रभामण्डल, अशोक वृक्ष, मालाधारी गन्धर्व आदि) का अंकन हुआ। तीर्थंकर मूर्तियों में सभी अष्ट प्रातिहार्यों का अंकन गुप्तकाल में प्रारम्भ हुआ। गुप्तकाल में ही तीर्थंकर मूर्तियों के साथ शासन देवता या उपासक देवों के रूप में यक्ष-यक्षी को सम्मिलित किया गया और तीर्थंकरों के स्वतन्त्र लाछन भी दिखाये गये। मथुरा, अकोटा (ऋषभनाथ के साथ कुबेर यक्ष और अम्बिका यक्षी के साथ) राजगिर, वाराणसी (चित्र १) विदिशा (दुर्जनपुर म० प्र०)[3], चौसा एवं अयहोल (कर्नाटक)[1] से छठी-सातवीं शती ई० की अनेक तीर्थंकर मूर्तियाँ मिली हैं।

आठवीं से तेरहवीं शती ई० के मध्य की अनेक तीर्थंकर मूर्तियाँ श्वेताम्बर एवं दिगम्बर स्थलों—देवगढ़, खजुराहो (चित्र ७), ग्यारसपुर, मथुरा, राजगिर, खण्डगिरि, कुम्भारिया, ओसिया, आबू, तारंगा, घाणेराव, जालोर, हुम्चा, अंसिकेरी, हलेबिड, तिरुमलैतिरुमलम एवं एलोरा आदि से प्राप्त हुई हैं। जिनमें प्रतिमालक्षण की दृष्टि से तीर्थंकर मूर्तियों का पूर्ण विकसित स्वरूप मिलता है। यक्ष-यक्षी, अष्टप्रातिहार्यों एवं स्वतन्त्र लाछनों से युक्त मध्यकालीन तीर्थंकर मूर्तियों में नवग्रह, सरस्वती, लक्ष्मी तथा कुछ अन्य देवी देवताओं का अंकन भी मिलता है।

जैन धर्म प्रारम्भ से ही अत्यन्त उदार और समन्वयवादी रहा है जो न केवल राम और कृष्ण जैसे लोक चरित्रों के जैन देवकुल में समाविष्ट किये जाने से स्पष्ट है वरन् इनसे सम्बन्धित स्वतन्त्र ग्रन्थों की रचना से भी स्पष्ट है जिनमें रामचरित्र से सम्बन्धित पउमचरिय (विमलसूरि कृत ४७३ ई०) एवं कृष्ण चरित्र से सम्बन्धित हरिवंश पुराण (जिनसेनकृत—७८३ ई०) मुख्य हैं। समन्वयवादी प्रवृत्ति के कारण ही जैन धर्माचार्यों ने ६३ शलाका पुरुषों की सूची में २४ तीर्थंकरों के अतिरिक्त बलराम, कृष्ण, राम, भरत चक्रवर्ती, लक्ष्मण, बलि, शिशुपाल, मधुकैटभ, प्रह्लाद, रावण और जरासन्ध को भी चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव और प्रतिवासुदेव के रूप में सम्मिलित किया। तीर्थंकरों के यक्ष यक्षी अधिकांशतः ब्राह्मण देवी-देवताओं से सम्बन्धित हैं जिनके माध्यम से जैनों ने ब्राह्मण देवों पर तीर्थंकरों की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया है। किन्तु यह श्रेष्ठता बौद्ध धर्म के ब्राह्मण देवों के प्रति अपमानजनक स्वरूप से सर्वथा भिन्न रही है। ज्ञातव्य है कि बौद्धों द्वारा ब्राह्मण देवी-देवताओं में से अनेकों ब्रह्मा, शिव, विष्णु, गणेश और शक्ति को अपने पैरों के नीचे अपमानजनक स्थिति में दिखाया गया है। समय के साथ जनजन तक अपने धर्म को लोकप्रिय बनाने की प्रवृत्ति के कारण समन्वयवादी धारणा की पराकाष्ठा जिनसेन कृत हरिवंश पुराण के सन्दर्भ में पूरी तरह स्पष्ट है जिसमें जिनमन्दिर में कामदेव और रति की मूर्तियों के निर्माण की स्तुति की गई है।[5] हरिवंशपुराण में जिनमन्दिरों में सम्पूर्ण प्रजा के कौतुक के लिए कामदेव और रति की मूर्तियाँ बनवाने और मन्दिर कामदेव के नाम से प्रसिद्ध होने के उल्लेख हैं।

ऋषभनाथ के यक्ष-यक्षी गोमुख और चक्रेश्वरी स्पष्टतः शिव और विष्णु की शक्ति वैष्णवी के प्रभाव से युक्त है। श्रेयासनाथ के यक्ष-यक्षी ईश्वर और गौरी है। इनके अतिरिक्त गरुड, वरुण, कुमार, गौरी, काली, महाकाली, नामो वाले यक्ष-यक्षी के साथ ही विष्णु, शिव, ब्रह्मा, इन्द्र, कार्तिकेय जैसे ब्राह्मण देवो का भी स्पष्ट प्रभाव यक्ष-यक्षी के निरूपण मे इनके नामो एव लक्षणो के सन्दर्भ मे देखा जा सकता है।

समन्वयवादी और समय के अनुरूप परिवर्तन को स्वीकार करने की उपर्युक्त प्रवृत्ति के साथ ही जैनधर्म मे कुछ निजी विशेषताएँ भी रही है। एक ओर जैनधर्म मे सभी प्रकार के परिवर्तनो को स्वीकार किया गया, किन्तु दूसरी ओर मुख्य आराध्यदेव तीर्थंकरो के मूल स्वरूप के साथ किसी भी प्रकार के शिथिलन को कभी भी स्वीकार नही किया गया। तीर्थंकर वीतरागी होते हैं जिनकी उपासना से भौतिक समृद्धि की प्राप्ति सम्भव नही थी। सामान्य जनो को जैन धर्म मे बनाये रखने के लिए तथा भौतिक सुख-समृद्धि की प्राप्ति के लिए तीर्थंकरो के साथ शासन देवी-देवताओ के रूप मे यक्ष-यक्षी को सश्लिष्ट किया गया जिनसे सभी प्रकार की भौतिक जगत की इच्छित वस्तुएँ प्राप्त की जा सकती थी। किन्तु तीर्थंकरो के वीतरागी और सासारिक कर्मो के मुक्तिदायी स्वरूप मे किसी भी प्रकार का परिवर्तन नही किया गया। दूसरी ओर जब हम बौद्ध धर्म की ओर दृष्टि डालते है तो बुद्ध का भी प्रारम्भ मे मौलिक स्वरूप तीर्थंकरो के समान ही वीतरागी रहा है, जिन्हे कालान्तर मे विभिन्न भौतिक उपलब्धियो को देने वाले देवता के रूप मे परिवर्तित किया गया। यह बात अभय और वरद मुद्राओ में बुद्ध को दिखाये जाने से पूरी तरह स्पष्ट है, जिसका अभिप्रेत बुद्ध से अभयदान और वरदान प्राप्त करना था। यही नही, बुद्ध ने समय-समय पर अन्य आचार्यो एव देवताओ की भाँति विभिन्न प्रकार के चमत्कारो द्वारा भी अपनी अलौकिक शक्ति का प्रदर्शन किया था।

केवल जैन धर्म मे ही सारे परिवर्तनो की स्वीकृति के बाद भी तीर्थंकरो के मूल वीतरागी स्वरूप को कभी भी नही छेडा गया। यही कारण है कि तीर्थंकरो को न तो कभी अभयदान और न ही वरदान की मुद्रा मे दिखाया गया। साथ ही कमठ (शम्बर) द्वारा पार्श्वनाथ की तपस्या के समय उपस्थित किये गये विभिन्न उपसर्गो (विघ्नो) और महावीर की तपस्या मे शूलपाणि यक्ष और सगमदेव द्वारा उपस्थित उपसर्गो के समय भी इन तीर्थंकरो द्वारा किसी प्रकार का कोई चमत्कार नही किया गया। पार्श्वनाथ और महावीर दोनो ही शान्त भाव से यातनाओ को सहते हुये ध्यानरत रहे। पार्श्वनाथ के उपसर्गो के समय स्वय नागराज धरणेन्द्र को उपस्थित होकर उनकी रक्षा करनी पडी थी। इसका कदापि यह अर्थ नही है कि ये तीर्थंकर अलौकिक शक्तियो या चमत्कारो से रहित थे, बल्कि अपने वीतरागी स्वभाव के कारण ही ये उनसे विरत रहकर शान्त बने रहे। २२वें तीर्थंकर नेमिनाथ के ससार त्याग कर दीक्षा लेने का प्रसग भी जैन धर्म की इसी मूलभूत प्रवृत्ति को उजागर करता है। अपने विवाह के अवसर पर दिये जाने वाले भोज के लिए रखे गये पशुओ को देखकर उनके मन मे विरक्ति का भाव उत्पन्न हुआ और उन्होने बिना विवाह किये ही वापस लौटकर दीक्षा ग्रहण की। यह बात अहिसा के प्रति जैन धर्म की अटूट निष्ठा को व्यक्त करती है। ऋषभनाथ के पुत्रो—भरत चक्रवर्ती और बाहुबली के युद्ध के समय सैन्य युद्ध के स्थान पर अनावश्यक नरसहार को रोकने के लिए उनके द्वन्द्व युद्ध का निर्णय भी अहिसा की मानसिकता का चरम बिन्दु दरशाता है। बाहुबली तीर्थंकर न होते हुए भी विजय के क्षणो मे ससार त्याग कर दीक्षा ग्रहण करते है, और अत्यधिक कठिन साधना और तपश्चर्या द्वारा कैवल्य प्राप्त करते है। तपस्या के समय उनके शरीर से लता-वल्लरि के लिपटने के साथ ही वृश्चिक एव सर्प

जमे जन्तु भी उनके शरीर पर निर्विघ्न बने रहे । इस कठिन साधना के कारण ही जैन धम म उन्हे आग चलकर तीथकर जैसा महत्व दिया गया जो देवगढ एव खजुराहो की मूर्तियो से पूरी तरह स्पष्ट है। भारत की विशालतम धार्मिक प्रतिमा (१०वी शती ई०) के रूप म श्रवणबेलगोल (कर्नाटक) म गोम्मटश्वर बाहुबली की ५७ फुट ऊँची प्रतिमा का निर्माण हुआ जो बाहुबली के प्रवल वीतरागी स्वरूप का प्रतिफल था।

इस प्रकार स्पष्ट है कि जैन धम मे सारे परिवतनो के बावजूद तीथकरो के वीतरागी स्वरूप को पूरी तरह बरकरार रखा गया। यही कारण है कि तीथकर मूर्तिया केवल योग और ध्यान की मुद्राओ —ध्यान एव कायोत्सग म ही बनी। यह विशिषता जन धम की मौलिक विशेषता रही है।

सन्दभ

१ जायसवाल के० पी० जन इमेज आफ मौय पीरियड" जनल आफ बिहार उडीसा रिसच सोसायटी, खण्ड २३ भाग १, १९३७ पृ १३० ३२
२ शाह यू० पी०, अकोटा ब्रोजेज बम्बई १९५९ पृ० २८-२९
३ विदिशा से चौथी शती ई० की चन्द्रप्रभु और पुष्पदन्त के नामो वाली महाराजाधिराज रामगुप्त के काल की मूर्तिया मिली ह।
४ बदामी एव अयहोल स पाश्वनाथ महावीर तथा बाहुबली गोम्मटेश्वर की छठी सातवी शती ई० की मूर्तिया मिली ह।
५ हरिवश पुराण—२९-१ ५

● ●

मोती पाने के लिए तो समुद्र की गहराई म उतरना ही पडता है। लहरो क साथ सतही तौर पर कलाबाजियाँ खाने या गोते लगाने से मोती नही मिल जाते। अन्दर डुबकी लगानी पडती है तब कही जाकर मोती हाथ लगते ह। हम आत्मा के अक्षय खजाने को, आत्मा की स्वच्छ छवि को पाने के लिए तो गहराई म उतरना होगा। जिस क्षण हम वासना और चाह स ऊपर उठ जायगे उसी दिन स सत्य का साक्षात्कार प्रारम्भ हो जायगा।

—आचायश्री जिनकान्तिसागर जी

● ●

स्वात्म–उद्‌बोधन

१ मै सच्चिदानन्द स्वरूपी आत्मा हूँ। मै जड अर्थात् पुद्‌गल रूप नही अपितु चैतन्यमय हूँ। मै स्वय कर्म करता हूँ और उसका फल भी स्वय ही भोगता हूँ। आत्मा का स्वभाव जन्म-मरण करना नही, वह तो अजर, अमर, अखण्ड, अमल, अविचल, अविनाशी है। अपने इसी स्वरूप को प्राप्त करने हेतु मुझे प्रयत्न करना है, उसी की साधना करनी है।

जागरण संकल्प —

२ मै अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तचारित्र रूप रत्नत्रय का स्वामी हूँ, जिसे काम-क्रोधादि लुटेरे लूट रहे है चूँकि आज तक मै मोह की नीद मे सो रहा था पर वीर-वाणी की उदात्त अमृतवर्षी, अलार्म सुनकर जाग्रत हो गया हूँ, अत शम-क्षमादि खड्‌ग हाथ मे ले पूर्ण रूप से इनका सामना करूँगा।

जिन दर्शन महत्व .—

३. देवाधिदेव जिनेश्वर प्रभु के दर्शन, वन्दन, पूजन एव स्मरण जन्म-जन्मान्तरो के सम्पूर्ण पापो का नाश करता है। जिस प्रकार मानसरोवर की शीतल लहरो से ग्रीष्म का ताप शान्त होता है, बावना चन्दन के लेप से शरीर का दाह शमन होता है उसी प्रकार वीतराग देव के दर्शन-वन्दन-पूजन से आत्मा का भव-भव का ताप शान्त हो जाता है।

दृढ सकल्प —

४ इस देव दुर्लभ अमूल्य मानव तन से, आत्मा को परमात्मा बनाने का जो अपूर्व अवसर मुझे सम्प्राप्त हुआ है, उसे कदापि न खोऊँगा और निरन्तर समभाव मे विचरण करता हुआ, जप, तप, त्याग, सयम, प्रभु-भक्ति परोपकार आदि के द्वारा इसे पूर्णत सफल बनाऊँगा। मेरा यही लक्ष्य है।

५ बहुत कठिनता से प्राप्त बहुमूल्य मानव-शरीर की सुरक्षा करना अत्यन्त आवश्यक है क्योकि इस अमूल्य रत्न के द्वारा आत्मा जन्म-मरण से मुक्त हो परमात्म पद को प्राप्त कर सकता है।

अत अनैतिक आचरण द्वारा बहुमूल्य शरीर-रत्न को नष्ट करना भारी मूर्खता है।

६ जैन भागवती दीक्षा एक ऐसा आध्यात्मिक अनुष्ठान है जिसे स्वीकार कर आत्मा बन्धन से मुक्ति की ओर, अन्धकार से प्रकाश की ओर, राग से वीतरागता की ओर, मृत्यु से अमरत्व की ओर गमन करता है और स्वय परमात्मा बनने की साधना करता है।

(पूज्य प्रवर्तिनी सज्जनश्री जी महाराज के प्रवचनाशो से)

खण्ड ५

५. नारी : त्याग, तपस्या, सेवा की सुरसरि

नारी-सृष्टि की आदि शक्ति है, सकल ऋद्धि-सिद्धि, विद्या की अधिष्ठात्री है । जननी के रूप मे वह जीव मात्र के जीवन-धारण की वात्सल्यमयी आधार-शिला है । बहन के रूप में वह स्नेह-सौजन्य-प्रेरणा की प्रवाहिनी है, और पत्नी, भार्या, सहधर्मिणी के रूप में वह मानव के समग्र व्यक्तित्व-विकास की मुख्य धारिका है ।

नारी-वत्सलता, स्नेह, सेवा, प्रेरणा और बलिदान की मूर्ति है, तो तपस्या, त्याग, विद्या और साधना से सिद्धि तक की सतत प्रवाहशील सुरसरि भी है । उसकी शुभ्र-शीतलता ने संपूर्ण मानवता को शान्ति और शक्ति दी है । नारी ने अपना विराट रूप देखा, पर अनदेखा कर दिया है, इसलिए लक्ष्मी आज दरिद्रा बन रही है, शक्ति आज दीना बन रही है, और प्रभुता स्वयं प्रताडित हो रही है ।

"श्रमणी" रूप मे प्रस्तुत यह ग्रन्थ मूलत, त्याग-तपस्या-साधना और शुचिता की मूर्ति नारी-"श्रमणी" का गौरव-ग्रंथ है, अत नारी के अस्मिता—बोध, गौरव तथा अभ्युत्थान की चर्चा इसमें आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है । विचारशील प्रतिभाओं द्वारा नारी के उदात्त रूप को निखारने वाले विचार-मुक्ता यहां संकलित है, विशिष्ट विद्वानो की अनुसधानपरक शैली मे

'सरस'

जैन आगमिक व्याख्या-साहित्य मे नारी की स्थिति का मूल्यांकन

प्रो सागरमल जैन

[अनेक ग्रन्थों के लेखक प्रसिद्ध विद्वान्]

निदेशक

पार्श्वनाथ विद्याश्रम

शोधसंस्थान, वाराणसी

भारतीय सांस्कृतिक परम्पराओं में श्रमण परम्परा निवृत्तिप्रधान एवं शान्तिधर्मी रही है। उसने सदैव ही विषमतावादी और वर्गवादी अवधारणाओं के स्थान पर समतावादी जीवन मूल्यों को स्थापित करने का प्रयास किया। जैन धर्म भी श्रमण परम्परा का ही एक अंग है अतः उसमें भी सदैव ही नारी की समता पर बल दिया गया और स्त्री को पुरुष की दासी या भोग्या स्वरूप न मानकर नारी को पुरुष के समकक्ष ही माना गया है। फिर भी यह सत्य है कि जैन धर्म और संस्कृति का विकास भी भारतीय संस्कृति के पुरुषप्रधान परिवेश में ही हुआ है फलतः शान्तिधर्मी होते हुए भी वह अपनी सहगामी ब्राह्मण परम्परा के व्यापक प्रभाव से अप्रभावित नहीं रह सकी और उसमें भी विभिन्न कालों में नारी की स्थिति में परिवर्तन आये हैं।

प्रस्तुत निबन्ध का विषय आगमिक व्याख्या साहित्य के आधार पर जैनाचार्यों की दृष्टि में नारी की स्थिति का मूल्यांकन करना है किन्तु इसके पूर्व हम इस साहित्य में उपलब्ध सन्दर्भों की प्रकृति को समझ लेना आवश्यक है। प्रथम तो यह कि आगमिक व्याख्या साहित्य मुख्यतः आगम ग्रन्थों पर प्राकृत एवं संस्कृत में लिखी गयी टीकायें हैं अतः इनमें अपने युग के सन्दर्भों के साथ आगम युग के सन्दर्भ भी मिल गये हैं। इसके अतिरिक्त इन आगमिक व्याख्याओं में कुछ ऐसे उल्लेख भी मिलते हैं जिनका मूल स्रोत न तो आगमों में और न व्याख्याकारों के समकालीन समाज में माना जा सकता है किन्तु वे आगमिक व्याख्याकारों की मात्र प्रसूत कल्पना ही रही हो ऐसा भी नहीं लगता है। उदाहरण के रूप में मरुदेवा, ब्राह्मी, सुन्दरी तथा पार्श्वनाथ की परम्परा की [illegible] साध्वियों से सम्बन्धित विस्तृत विवरण जो आगमिक व्याख्या ग्रन्थों में उपलब्ध हैं, वे श्वेताम्बर आगमों में अनुपलब्ध हैं या मात्र संकेत रूप में उपलब्ध हैं किन्तु हम यह मान सकते हैं कि ये आगमिक व्याख्याकारों की मन प्रसूत कल्पना है। वस्तुतः ये विवरण पूर्व साहित्य [illegible] या अनुश्रुति से इन व्याख्याकारों को प्राप्त हुए हैं। अतः आगमिक व्याख्याओं के आधार पर नारी का चित्रण करते हुए हमें यह ध्यान रखना है कि ये सन्दर्भ आगमिक व्याख्याओं के युग के सन्दर्भ हैं अपितु [illegible] साथ विभिन्न कालों के सन्दर्भ [illegible] हैं। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से इन्हें निम्न चार सन्दर्भों में विभाजित किया जा सकता है—

१. पूर्व युग—ईसा पूर्व छठी शताव्दी तक।

२. आगम युग—ईसा पूर्व छठी शताव्दी से लेकर ई० मन् की तीसरी शताव्दी तक।

३. प्राकृत आगमिक व्याख्या युग—ईसा की चौथी शताव्दी से सातवी शताव्दी तक।

४ सस्कृत आगमिक व्याख्या एव पौराणिक कथा साहित्य युग—आठवी से वारहवी शताव्दी तक।

इसी सन्दर्भ मे एक कठिनाई यह भी है कि इन परवर्ती आगमो के रूप मे मान्य ग्रन्थों तथा प्राकृत एव सस्कृत आगमिक व्याख्याओ का काल लगभग एक सहस्राव्दी अर्थात् ईसा की तीसरी व चौथी शताव्दी से लेकर ईसा की वारहवी शताव्दी तक व्याप्त है। पुन इस कालविशेप मे भी सभी जैन विचारको का नारी के सन्दर्भ मे समान दृष्टिकोण नही है। प्रथम तो उत्तर और दक्षिण भारत की सामाजिक परिस्थिति की भिन्नता के कारण और दूसरे श्वेताम्वर और दिगम्वर परम्पराओ के भेद के कारण इस युग के जैन आचार्यो का दृष्टिकोण नारी के सम्वन्ध मे भिन्न-भिन्न रहा है। जहाँ उत्तर भारत के यापनीय एव श्वेताम्वर जैन आचार्य नारी के सम्वन्ध मे अपेक्षाकृत उदार दृष्टिकोण रखते हैं, वही दक्षिण भारत के दिगम्वर जैन आचार्यो का दृष्टिकोण अपेक्षाकृत अनुदार प्रतीत होता है। इसके लिए अचेलता का आग्रह और देशकाल-गत परिस्थितियाँ दोनो ही उत्तरदायी रही है, अत आगमिक व्याख्या साहित्य के आधार पर नारी की स्थिति का चित्रण करते समय हमे वहुत ही सावधानीपूर्वक तथ्यो का विश्लेपण करना होगा। पुन आगमिक व्याख्या साहित्य और जैन पौराणिक कथा साहित्य दोनो मे ही नारी के सम्वन्ध मे जो सन्दर्भ उपलब्ध है, वे सव जैन आचार्यो द्वारा अनुशसित थे, यह मान लेना भी एक भ्रान्त धारणा होगी। जैन आचार्यो ने अनेक ऐसे तथ्यों को भी प्रस्तुत किया है, जो यद्यपि उस युग मे प्रचलित रहे हैं, किन्तु जो जैन धर्म की धार्मिक मान्यताओ के विरोधी है। उदाहरण के रूप मे वहु-विवाह प्रथा, वेश्यावृत्ति, सतीप्रथा, स्त्री के द्वारा गोमांस भक्षण एव मद्यपान आदि के उल्लेख हमे आगमो एव आगमिक व्याख्या साहित्य मे उपलब्ध होते है, किन्तु वे जैन धर्मसम्मत थे, यह नही कहा जा सकता। वस्तुत इस साहित्य मे लौकिक एव धार्मिक दोनो ही प्रकार के सन्दर्भ है, जिन्हे अलग-अलग रूपो मे समझना आवश्यक है।

अत नारी के सम्वन्ध मे जो विवरण हमे आगमिक व्याख्या साहित्य मे उपलब्ध होते है, उन्हे विभिन्न काल खण्डो मे विभाजित करके और उनके परम्परासम्मत और लौकिक स्वरूप का विश्लेपण करके ही विचार करना होगा तथापि उनके गम्भीर विश्लेपण से हमे जैनधर्म मे और भारतीय समाज मे विभिन्न कालो मे नारी की क्या स्थिति थी, इसका एक ऐतिहासिक परिचय प्राप्त हो जाता है।

नारी लक्षण

नारी की सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक स्थिति की चर्चा के पूर्व हमे यह भी विचार कर लेना है कि आगमिक व्याख्याकारो की दृष्टि मे नारी शव्द का तात्पर्य क्या रहा है। सर्वप्रथम सूत्रकृताग निर्युक्ति और चूर्णि मे नारी शव्द के तात्पर्य को स्पष्ट किया गया है। स्त्री को द्रव्यस्त्री और भावस्त्री ऐसे दो विभागो मे वर्गीकृत किया गया है।[1] द्रव्य-स्त्री से जैनाचार्यो का तात्पर्य स्त्री की शारीरिक सरचना (शारीरिक चिन्ह) मे है, जवकि भाव-स्त्री का तात्पर्य नारी स्वभाव (वेद) से है। आगम और आगमिक व्याख्याओ दोनो मे ही स्त्री-पुरुप के वर्गीकरण का आधार लिग और वेद माने जाते रहे है। जैन परम्परा मे स्त्री की शारीरिक सरचना को लिग कहा गया है। रोमरहित मुख, स्तन, योनि,

१. दव्वाभिलावचिन्धे वेए भावे य इत्थिणिक्खेवो।
अहिलावे जह सिद्धी भावे वेयम्मि उवउत्तो॥

—सूत्रकृताग निर्युक्ति ५४.

गर्भाशय आदि से युक्त शारीरिक सरचना स्त्रीलिंग है, यही द्रव्य-स्त्री है, जबकि पुरुष के साथ सहवास की कामना को अर्थात् स्त्रियोचित काम वासना का वेद कहा गया है। वही वासना की वृत्ति भाव-स्त्री है।[1] जैन आगमिक व्याख्या साहित्य म स्त्री की कामवासना के स्वरूप का चित्रित करते हुए उसे उपलअग्निवत् बताया गया है। जिस प्रकार उपल अग्नि के प्रज्वलित होन म समय लगता है किन्तु प्रज्वलित होने पर चालना करने पर बढती जाती है, अधिक काल तक स्थायी रहती है उसी प्रकार स्त्री की कामवासना जागृत होने मे समय लगता है, किन्तु जागृत होने पर चालना करने से बढती जाती है और अधिक स्थायी होती है। जैनाचार्यो का यह कथन एक मनोवैज्ञानिक सत्य लिय हुए है। यद्यपि लिंग और वेद अर्थात् शारीरिक सरचना और तत्सम्बन्धी कामवासना सहगामी मान गय हैं फिर भी सामान्यतया जहा लिंग शरीर पर्यन्त रहता है, वहा वेद (कामवासना) आध्यात्मिक विकास की एक विशेष अवस्था म समाप्त हो जाता है।[3] जन कर्म सिद्धान्त म लिंग का कारण नाम कर्म (शारीरिक सरचना के कारक तत्व) और वेद का कारण मोहनीय कर्म (मनोवत्तिया) माना गया है।[4] इस प्रकार लिंग शारीरिक सरचना का और वेद मनोवैज्ञानिक स्वभाव और वासना का सूचक है तथा शारीरिक परिवर्तन म लिंग म और मनोभावा के परिवर्तन से वेद मे परिवर्तन सम्भव है। निशीथचूर्णि के अनुसार लिंग परिवर्तन से वेद (वासना) मे भी परिवर्तन हो जाता है (गाथा ३५९)। इस सम्बन्ध म सम्पूर्ण कथा द्रष्टव्य है। जिसम शारीरिक सरचना और स्वभाव की दृष्टि से स्त्रीत्व हो, उसे ही स्त्री कहा जाता है। सूत्रकृताग नियुक्ति मे स्त्रीत्व के नाम स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, प्रजनन, कर्म भोग, गुण और भाव ये दस निक्षेप या आधार मान गये हैं अर्थात् किसी वस्तु के स्त्री कहे जाने के लिए उसे निम्न एक या एकाधिक लक्षणो स युक्त होना आवश्यक है, यथा—

(१) स्त्रीवाचक नाम से युक्त होना जसे—रमा, श्यामा आदि।

(२) स्त्री रूप म स्थापित होना जसे शीतला आदि की स्त्री आकृति स युक्त या रहित प्रतिमा।

(३) द्रव्य—अर्थात् शारीरिक सरचना का स्त्री रूप होना।

(४) क्षेत्र—देश विशेष की परम्परानुसार स्त्री की वेशभूषा से युक्त होन पर उस देश म उसे स्त्रीरूप म समझा जाता है।

(५) काल—जिसने भूत, भविष्य या वर्तमान म स किसी भी काल म स्त्री-पर्याय धारण की हो उसे काल की अपेक्षा से स्त्री कहा जाता है।

---

१ अभिधान राजेन्द्र भाग २, पृ० ६२३

२ यद्वशात् स्त्रिया पुरुष प्रत्यभिलापो भवति, यथा पित्तवशान मधुरद्रव्य प्रति स फुफुमादाहसम, यथा यथा चाल्यते तथा तथा ज्वलति बृहति च। एवम् बलाऽपि यथा यथा सस्पृश्यते पुरुषेण तथा तथा अस्या अधिक तरोऽभिलापो जायते, भुज्यमानाया तु छनकरीषदाहतुल्योऽभिलापो, मन्द इत्यय इति स्त्रीवेदोदय।

—वही, भाग ६, पृष्ठ १४३०

३ समत्त निमसधयण तियगच्छेओ बि सत्तरि अपुव्वे।
हापान्छक्कअता छसटिठ अनियटिटवेयतिग॥

४ देखे—कर्मप्रकृतियों का विवरण। —१५ १८

(६) प्रजनन क्षमता से युक्त होना।

(७) स्त्रियोचित्त कार्य करना।

(८) स्त्री रूप में भोगी जाने में समर्थ होना।

(९) स्त्रियोचित्त गुण होना और

(१०) स्त्री सम्बन्धी वासना का होना।[1]

जैनाचार्यों की दृष्टि में नारी चरित्र का विकृत पक्ष

जैनाचार्यों ने नारी-चरित्र का गम्भीर विश्लेषण किया। नारी-स्वभाव का चित्रण करते हुए तन्दुल वैचारिक प्रकरण में नारी की स्वभावगत निम्न ९४ विशेषताएँ वर्णित हैं[2]—

नारी स्वभाव से विषम, मधुर वचन की वल्लरी, कपट-प्रेम रूपी पर्वत, सहस्रों अपराधों का घर, शोक की उद्गमस्थली पुरुष के बल के विनाश का कारण, पुरुषों की वधस्थली अर्थात् उनकी हत्या का कारण, लज्जा-नाशिका, अशिष्टता का पुञ्ज, कपट का घर, शत्रुता की खान, शोक की ढेर, मर्यादा की नाशिका, कामराग की आश्रय स्थली, दुराचरणों का आवास सम्मोह की जननी, ज्ञान का स्खलन करने वाली, शील को विचलित करने वाली, धर्मयाग में बाधा रूप मोक्षपथ साधकों की शत्रु, ब्रह्मचर्यादि आचार मार्ग का अनुसरण करने वालों के लिए दूषण रूप, कामी की वाटिका, मोक्षपथ की अर्गला, दरिद्रता का घर, विषधर सर्प की भाँति कुपित होने वाली, मदमत्त हाथी की भाँति कामविह्वला, व्याघ्री की भाँति दुष्ट हृदय वाली, ढके हुए कूप की भाँति अप्रकाशित हृदय वाली, मायावी की भाँति मधुर वचन बोलकर स्वपाश में आबद्ध करने वाली, आचार्य की वाणी के समान अनेक पुरुषों द्वारा एक साथ ग्राह्य, शुष्क कण्डे की अग्नि की भाँति पुरुषों के अन्तःकरण में ज्वाला प्रज्वलित करने वाली, विषम पर्वतमार्ग की भाँति असमतल अन्तःकरण वाली, अन्तर्दूषित घाव की भाँति दुर्गन्धित हृदय वाली, कृष्ण सर्प की तरह अविश्वसनीय, संहार (भैरव) के समान मायावी, सन्ध्या की लालिमा की भाँति क्षणिक प्रेम वाली, समुद्र की लहरों की भाँति चंचल स्वभाव वाली, मछलियों की भाँति दुष्परिवर्तनीय स्वभाव वाली, बन्दरों के समान चपल स्वभाव वाली मृत्यु की भाँति निर्विशेष, काल के समान दयाहीन, वरुण के समान पाशयुक्त अर्थात् पुरुषों को कामपाश में बाँधने वाली जल के समान अधोगामिनी, कृपण के समान रिक्त हस्त वाली, नरक के समान दारुणत्रासदायिका, गर्दभ के सदृश दुष्टाचार वाली, कुलक्षणयुक्त घोड़े के समान लज्जारहित व्यवहार वाली, बाल स्वभाव के समान चंचल अनुराग वाली, अन्धकारवत् दुष्प्रविश्य, विष-बेल की भाँति संसर्ग वर्जित, भयंकर मकर आदि से युक्त वापी के समान दुष्प्रवेश्य, साधुजनों की प्रशंसा के अयोग्य, विष-वृक्ष के फल की तरह प्रारम्भ में मधुर किन्तु दारुण अन्त वाली, खाली मुट्ठी से जिस प्रकार बालकों को लुभाया जाता है उसी प्रकार पुरुषों को लुभाने वाली, जिस प्रकार एक पक्षी के द्वारा मांस खण्ड ग्रहण करने पर अन्य पक्षी उसे विविध कष्ट देते हैं उसी प्रकार दारुण कष्ट स्त्री को ग्रहण करने पर पुरुषों को होते हैं, प्रदीप्त तृणराशि की भाँति ज्वलन स्वभाव को न छोड़ने वाली, घोर पाप के समान दुर्लंघ्य, कूट कार्षापण की भाँति अकालचारिणी, तीव्र

---

१. णाम ठवणादविए खेत्ते काले य पज्जणणकम्मे।
भोगे गुणे य भावे दस एए इत्थीणिक्खेवो॥ —सूत्रकृतांग निर्युक्ति गाथा ५४

२. तन्दुलवैचारिक सावचूरि सूत्र १९ (देवचन्द लालभाई पुस्तकोद्धार, ग्रन्थमाला)।

क्रोध की भांति दुरक्ष्य, दारुण दुखदायिका, घृणा की पात्र, दुष्टोपचारा, चपला, अविश्वसनीया, एक पुरुष से बधकर न रहने वाली यौवनावस्था में कष्ट से रक्षणीय, बाल्यावस्था में दुख से पाल्य, उद्वेगशीला, कर्कशा दारुण वैर का कारण, रूप स्वभाव गर्विता, भुजग के समान कुटिल गति वाली, दुष्ट घोड़े के पदचिह्न से युक्त महाजंगल की भांति दुगम्य कुल, स्वजन और मित्रों से विग्रह कराने वाली, परदोष प्रकाशिका, कृतघ्ना, वीर्यनाशिका, शूकरवत जिस प्रकार शूकर खाद्य-पदार्थ को एकान्त में ले जाकर खाता है उसी प्रकार भोग हेतु पुरुष को एकान्त में ले जाने वाली, अस्थिर स्वभाव वाली, जिस प्रकार अग्निपात्र का मुख आरम्भ में रक्त हो जाता है किन्तु अन्ततोगत्वा काला हो जाता है उसी प्रकार नारी आरम्भ में राग उत्पन्न करती है परन्तु अन्तत उसमें विरक्ति ही उत्पन्न होती है, पुरुषों के मैत्री विनाशादि की जड़, बिना रस्सी की पाश काष्ठरहित वन की भांति पाप करके पश्चात्ताप में जलती नहीं है। कुत्सित कार्य में सदैव तत्पर अधार्मिक कृत्या की वैतरणी असाध्य व्याधि वियोग पर तीव्र दुखी न होने वाली, रोगरहित उपसर्ग या पीड़ा, रतिमान के लिए मनोभ्रम कारण, शरीर-व्यापी दाह का कारण बिना बादल बिजली के समान, बिना जल के प्रवाहमान और समुद्रवेग की भांति नियन्त्रण से परे कही गई है। तन्दुल वैचारिक की वृत्ति में इनमें से अधिकांश गुणों के सम्बन्ध में एक एक कथा भी दी गई।[1]

उत्तराध्ययनचूर्णि में भी स्त्री को समुद्र की तरंग के समान चपल स्वभाव वाली, सन्ध्याकालीन आभा के समान क्षणिक प्रेम वाली और अपना स्वार्थ सिद्ध हो जाने पर पुरुष का परित्याग कर देने वाली कहा गया है। आवश्यक भाष्य और निशीथचूर्णी में भी नारी के चपल स्वभाव और शिथिल चरित्र का उल्लेख हुआ है।[3] निशीथचूर्णि में यह भी कहा गया है कि स्त्रियां थोड़े से उपहारों से ही वशीभूत की जा सकती है और पुरुषों को विचलित करने में सक्षम होती हैं।[4] आचारांगचूर्णि एवं वृत्ति में उसे शीतपरिषह कहा गया है अर्थात् अनुकूल लगते हुए भी त्रासदायी होती है।[5]

सूत्रकृतांग में कहा गया है कि स्त्रियां पापकर्म नहीं करने का वचन देकर भी पुन अपकार्य में लग जाती हैं।[6] इसकी टीका में टीकाकार ने कामशास्त्र का उदाहरण देकर कहा है कि जैसे दर्पण पर पड़ी हुई छाया दुर्ग्राह्य होती है वैसे ही स्त्रियों के हृदय दुर्ग्राह्य होते हैं। पर्वत के दुर्गम मार्ग के समान

---

१ तन्दुल वैचारिक सावचूरि सूत्र १६, (देवचन्द लालभाई पुस्तकोद्धार ग्रन्थमाला)

२ समुद्रवीचीचपलस्वभावा सध्याभ्रमरेखा व मुहूर्तरागा ।
स्त्रिय कृतार्था पुरुष निरर्थक निपीडितालक्तकवद् त्यजन्ति ।
उत्तराध्ययनचूर्णि, पृ० ६५, ऋषभदेवजी, केशरीमल संस्था रतनपुर (रतलाम) १६३३ ई०

३ पगइत्ति सभावो । स्वभावेन च इत्थी अलसत्वा भवति । —निशीथचूर्णि, भाग ३, पृ० ५८४, आगरा १६५७ ५८ ।

४ सा य अप्पसत्तत्तणओ जण वातेण वत्थमादिणा ।
अप्पणावि लोभिज्जति, दाणलोभिया य अकज्ज पि करोति ।। —वही, भाग ३, पृ० ५८४ ।

५ आचरागचूर्णि पृ० ३१५

६ एव पि ता वन्तित्तावि अदुवा कम्मुणा अवकरेंति । —सूत्रकृताग, १/४/२३

७ दुर्ग्राह्य हृदय यथैव वदन यद्दर्पणान्तर्गतम्,
भाव पर्वतमार्गदुर्गविषम स्त्रीणा न विज्ञायते ।
—सूत्रकृतांग विवरण १/४/२३, प्र० सेठ छगनलाल, मूथा बगलौर १६३०

ही उनके हृदय का भाव सहसा ज्ञात नही होता। सूत्रकृताग वृत्ति मे नारी चरित्र के विपय में कहा गया है अच्छी तरह जीती हुई, प्रसन्न की हुई और अच्छी तरह परिचित अटवी और स्त्री का विश्वास नही करना चाहिए। क्या इस समस्त जीवलोक मे कोई अगुलि उठाकर कह सकता है, जिसने स्त्री की कामना करके दु ख न पाया हो ? उसके स्वभाव के सम्बन्ध मे यही कहा गया कि स्त्रियाँ मन से कुछ और सोचती है, वचन से कुछ और कहती है तथा कर्म से कुछ और करती है।[1]

स्त्रियो का पुरुषो के प्रति व्यवहार

स्त्रियाँ पुरुपो को अपने जाल मे फँसाकर फिर किस प्रकार उसकी दुर्गति करती हैं उसका सुन्दर एव सजीव चित्रण सूत्रकृताग और उसकी वृत्ति में उपलब्ध होता है। उस चित्रण का सक्षिप्त रूप निम्न है[2]—

जव वे पुरुप पर अपना अधिकार जमा लेती है तो फिर उसके साथ आदेश की भापा मे वात करती है। वे पुरुप से वाजार जाकर अच्छे-अच्छे फल, छुरी, भोजन वनाने हेतु ईधन तथा प्रकाश करने हेतु तेल लाने को कहती है। फिर पास बुलाकर महावर आदि से पैर रगने और शरीर में दर्द होने पर उसे मलने को कहती है। फिर आदेश देती है कि मेरे कपडे जीर्ण हो गये है, नये कपडे लाओ, तथा भोजन-पेय पदार्थादि लाओ। वह अनुरक्त पुरुप की दुर्वलता जानकर अपने लिए आभूषण, विशेष प्रकार के पुप्प, वाँसुरी तथा चिरयुवा वने रहने के लिए पौप्टिक औषधि की गोली माँगती हैं। तो कभी अगरु, तगर आदि सुगन्धित द्रव्य, अपनी प्रसाधन सामग्री रखने हेतु पेटी, ओप्ट रगने हेतु चूर्ण, छाता, जूता आदि माँगती है। वह अपने वस्त्रो को रगवाने का आदेश देती है तथा नाक के केशो को उखाड़ने के लिए चिमटी, केशो के लिए कघी, मुख शुद्धि हेतु दातौन आदि लाने को कहती है। पुन. वह अपने प्रियतम से पान-सुपारी, सुई-धागा, मूत्रविसर्जन पात्र, सूप, ऊखल आदि तथा देव-पूजा हेतु ताम्रपात्र और मद्यपान हेतु मद्य-पात्र माँगती है। कभी वह अपने वच्चो के खेलने हेतु मिट्टी की गुडिया, वाजा, झुनझुना, गेद आदि मगवाती है और गर्भवती होने पर दोहद-पूर्ति के लिए विभिन्न वस्तुएँ लाने का आदेश देती है। कभी वह उसे वस्त्र धोने का आदेश देती है, कभी रोते हुए वालक को चुप करने के लिए कहती है।

इस प्रकार कामिनियाँ दास की तरह वशवर्ती पुरुषो पर अपनी आज्ञा चलाती है। वह उनसे गधे के समान काम करवाती है और काम न करने पर झिड़कती है, आँखे दिखाती है तो कभी झूठी प्रशसा कर उससे अपना काम निकालती है।

नारी-स्वभाव का यह चित्रण वस्तुत. उसके घृणित पक्ष का ही चित्रण करता है किन्तु इसकी आनुभविक सत्यता से इन्कार भी नही किया जा सकता। किन्तु इस आधार पर यह मान लेना कि नारी के प्रति जैनाचार्यो का दृप्टिकोण अनुदार ही था, उचित नही होगा। जैन धर्म मूलत. एक निवृत्तिपरक

---

१. सुट्ठुवि जियासु सुट्ठुवि पियासु सुट्ठुवि लद्धपरासु।
अडईसु महिलियासु य वीसभो नेव कायव्वो।
उव्भेउ अगुली सो पुरिसो सयलमि जीवलोयम्मि।
कामं तएण नारी जेण न पत्ताइ दुक्खाइ॥ —वही, विवरण १/४/२३

२ वही, १/४/२

धर्म रहा है, निवृत्तिपरक होने के कारण उसमें संन्यास और वैराग्य पर विशेष बल दिया गया है। संन्यास और वैराग्य के लिए यह आवश्यक था कि पुरुष के सामने नारी का ऐसा चित्र प्रस्तुत किया जाय जिसके फलस्वरूप उसमें विरक्ति का भाव प्रस्फुटित हो। यही कारण था कि जैनाचार्यों ने आगमों और आगमिक व्याख्याओं और इतर साहित्य में कठोर शब्दों में नारी-चरित्र की निन्दा की किन्तु इसका यह अर्थ नहीं रहा कि जैनाचार्यों ने सामने नारी-चरित्र का उज्ज्वलतम पक्ष नहीं रहा है। सूत्रकृताग नियुक्ति में स्पष्ट रूप से यह कहा गया है कि जो शील प्रध्वंसक चरित्रगत दोष नारी में पाये जाते हैं वे पुरुषों में भी पाये जाते हैं इसलिए वैराग्य मार्ग में प्रवर्तित स्त्रियों को भी पुरुषों से उसी प्रकार बचना चाहिए जिस प्रकार स्त्रियों से पुरुषों को बचने का उपदेश दिया गया है।[1] इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जैनाचार्यों ने नारी चरित्र का जो विवरण प्रस्तुत किया है, वह मात्र पुरुषों में वैराग्य भावना जागृत करने के लिए ही है। भगवती आराधना में भी स्पष्ट रूप से यह कहा गया है—स्त्रियों में जो दोष होते हैं वे दोष नीच पुरुषों में भी होते हैं अथवा मनुष्यों में जो बल और शक्ति से युक्त होते हैं उनमें स्त्रियों से भी अधिक दोष होते हैं। जैसे अपने शील की रक्षा करने वाले पुरुषों के लिए स्त्रियाँ निन्दनीय हैं, वैसे ही अपने शील की रक्षा करने वाली स्त्रियों के लिए पुरुष निन्दनीय हैं। सब जीव मोह के उदय से कुशील से मलिन होते हैं और वह मोह का उदय स्त्री-पुरुषों में समान रूप से होता है। अतः ऊपर जो स्त्रियों के दोषों का वर्णन किया है वह स्त्री सामान्य की दृष्टि से किया है। शीलवती स्त्रियों में ऊपर कहे दोष कम हो सकते हैं ?[2]

जैनाचार्यों की दृष्टि से नारी चरित्र का उज्ज्वल पक्ष—

स्त्रियों की प्रशंसा करते हुए कहा गया है जो गुणसहित स्त्रियाँ हैं जिनका यश लोक में फैला हुआ है तथा जो मनुष्य लोक में देवता समान हैं और देवों से पूजनीय हैं उनकी जितनी प्रशंसा की जाये कम है। तीर्थंकर, चक्रवर्ती, वासुदेव बलदेव और श्रेष्ठ गणधरों को जन्म देने वाली महिलायें श्रेष्ठ देवों और उत्तम पुरुषों के द्वारा पूजनीय होती हैं। कितनी ही महिलाएँ एक पतिव्रत और कौमार ब्रह्मचर्य व्रत धारण करती हैं, कितनी ही जीवनपर्यन्त वैधव्य का तीव्र दुःख भोगती हैं। ऐसी भी कितनी शीलवती स्त्रियाँ सुनी जाती हैं जिन्हें देवों के द्वारा सम्मान आदि प्राप्त हुआ तथा जो शील के प्रभाव से शाप देने और अनुग्रह करने में समर्थ थीं। कितनी ही शीलवती स्त्रियाँ महानदी के जल प्रवाह में भी नहीं डूब सकीं और प्रज्वलित घोर आग में भी नहीं जल सकीं तथा सर्प, व्याघ्र आदि भी उनका कुछ नहीं कर सके। कितनी ही स्त्रियाँ सर्वगुणों से सम्पन्न साधुओं और पुरुषों में श्रेष्ठ चरमशरीरी पुरुषों को जन्म देने वाली माताएँ हुई हैं।[3] अन्तकृतदशा और उसकी वृत्ति में कृष्ण द्वारा प्रतिदिन अपनी माताओं के पाद वन्दन हेतु जाने का उल्लेख है।[4] आवश्यकचूर्णि और कल्पसूत्र टीका में उल्लेख है कि महावीर ने अपनी माता को दुःख न हो, इस हेतु उनके जीवित रहते संसार त्याग नहीं करने का निर्णय

---

१ एए चेव य भासा पुरिससमाय वि इत्थियाण पि। —सूत्रकृतागनियुक्ति गाथा ६१

२ भगवती आराधना गाथा ९८७-८८ व ९९८-९९

३ वही गाथा, ९८९-९४

४ तए ण से कण्हे वासुदेवे ण्हाए जाव विभूसिए देवईए देवीए पायवंदाए हव्वमागच्छइ।

—अन्तकृद्दशा सूत्र १८

अपने गर्भकाल मे ले लिया था ।[1] इस प्रकार नारी वासुदेव और तीर्थंकर द्वारा भी पूज्य मानी गयी है। महानिशीथ मे कहा गया है कि जो स्त्री भय, लोकलज्जा, कुलांकुश एव धर्मश्रद्धा के कारण कामाग्नि के वशीभूत नही होती है, वह धन्य है, पुण्य है, वदनीय है, दर्शनीय है, वह लक्षणो से युक्त है, वह सर्वकल्याण-कारक है, वह सर्वोत्तम मगल है, (अधिक क्या) वह (तो साक्षात्) श्रुत देवता है, सरस्वती है, अच्युता है" परम पवित्र सिद्धि, मुक्ति, शाश्वत शिवगति है। (महानिशथि ७/ सूत्र २३ पृ० ३६)

जैनधर्म मे तीर्थंकर का पद सर्वोच्च माना जाता है और श्वेताम्बर परम्परा मे मल्ली कुमारी को तीर्थंकर माना गया है।[2] इसिमण्डलत्थू (ऋषिमण्डल स्तवन) मे ब्राह्मी, सुन्दरी, चन्दना आदि को वन्दनीय माना गया है।[3] तीर्थंकरो की अधिष्ठायक देवियो के रूप मे चक्रेश्वरी, अम्बिका, पद्मावती, सिद्धायिका आदि देवियो को पूजनीय माना गया है[4] और उनकी स्तुति मे परवर्ती काल मे अनेक स्तोत्र रचे गये है। यद्यपि यह स्पष्ट है कि जैनधर्म मे यह देवी-पूजा की पद्धति लगभग गुप्त काल मे हिन्दू परम्परा के प्रभाव से आई है। उत्तराध्ययन एव दशवैकालिक की चूर्णि मे राजीमति द्वारा मुनि रथनेमि को[5] तथा आवश्यक चूर्णि मे ब्राह्मी और सुन्दरी द्वारा मुनि बाहुबली को प्रतिबोधित करने के उल्लेख है[6] न केवल भिक्षुणियाँ अपितु गृहस्थ उपासिकाएँ भी पुरुष को सन्मार्ग पर लाने हेतु प्रतिबोधित करती थी। उत्तराध्ययन मे रानी कमलावती राजा इषुकार को सन्मार्ग दिखाती है,[7] इसी प्रकार उपासिका जयन्ती भरी सभा मे महावीर से प्रश्नोत्तर करती है[8] तो कोशावेश्या अपने आवास मे स्थित मुनि को सन्मार्ग

---

१ नो खलु मे कप्पइ अम्मापितीहिं जीवतेहि मुण्डे भवित्ता अगारवासाओ अणगारिय पव्वइए।

—कल्पसूत्र ९१

(एव) गब्भत्थो चेव अभिग्गहे गेण्हति णाहं समणे होक्खामि जाव एताणि एत्थ जीवंतित्ति।

—आवश्यकचूर्णि प्रथम भाग, पृ० २४२, प्र० ऋषभदेव जी केशरीमल श्वेताम्बर स० रतलाम १९२८

२ तए ण मल्ली अरहा केवलनाणदसणे समुप्पन्ने। —ज्ञाताधर्मकथा ८/१८६

३. अज्जा वि बभि-सुन्दरि-राइमई चन्दणा पमुक्खाओ।
कालतए वि जाओ ताओ य नमामि भावेणं ।। —ऋषिमण्डलस्तव २०८

४. देवीओ चक्केसरी अजिया दुरियारि कालि महाकाली। अच्चुय सता जाला सुतारया असोय सिरिवच्छा।।
पवर विजयं कुसा पण्णत्ती निव्वाणि अच्चुया धरणी। वइरोट्टऽच्छुत्त ग धारि अव पउमावई सिद्धा।।
—प्रवचनसारोद्धार, भाग १, पृ० ३७५-७६; देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार सस्था सन् १९२२

५ तीसे सो वयण सोच्चा सजयाए सुभासियं।
अकुसेण जहा नागो धम्मे सपडिवाइयो ।। —उत्तराध्ययन सूत्र २२, ४८
(तथा) दशवैकालिकचूर्णि, पृ० ८७-८८ मणिविजय सिरीज भावनगर।

६ भगवं बभी-सुन्दरीओ पत्थवेति "इमं व भणितो। ण किर हत्थि विलग्गस्स केवलनाण उप्पज्जइ।
—आवश्यक चूर्णि भाग १, पृष्ठ २११

७ वतासी पुरिसो रायं, न सो होइ पससिओ। माहणेणं परिचत्तं धण आदाउमिच्छसि ।।
—उत्तराध्ययन सूत्र १४, ३८ एव उत्तराध्ययनचूर्णि, पृ० २३० (ऋषभदेव केशरीमल संस्था रतलाम, सन् १९३३)

८. भगवती १२/२।

दिखाती है,[1] ये तथ्य इस बात के प्रमाण हैं कि जैनधर्म में नारी की अवमानना नहीं की गई। चतुर्विध धर्मसंघ में भिक्षुणीसंघ और श्राविकासंघ का स्थान देकर निर्ग्रन्थ परम्परा ने स्त्री और पुरुष की समकक्षता को ही प्रमाणित किया। पार्श्व और महावीर के द्वारा बिना किसी हिचकिचाहट के भिक्षुणी संघ की स्थापना की गई जबकि बुद्ध को इस सम्बन्ध में संकोच रहा—यह भी इसी तथ्य का द्योतक है कि जैनसंघ का दृष्टिकोण नारी के प्रति अपेक्षाकृत उदार रहा है।

जैनसंघ में नारी का कितना महत्वपूर्ण स्थान था इसका सबसे बड़ा प्रमाण तो यही है कि उसमें प्रागैतिहासिक काल से वर्तमान काल तक सदैव ही भिक्षुओं की अपेक्षा भिक्षुणियों की और गृहस्थ उपासकों की अपेक्षा उपासिकाओं की संख्या अधिक रही है। समवायांग, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, कल्पसूत्र एवं आवश्यकनिर्युक्ति आदि में तीर्थंकर की भिक्षुणियाँ एवं गृहस्थ उपासिकाओं की संख्या उपलब्ध होती है।[2] इन संख्यासूचक आँकड़ों में ऐतिहासिक सत्यता कितनी है यह एक अलग प्रश्न है किन्तु इससे इतना तो फलित होता ही है कि जैनाचार्यों की दृष्टि में नारी जैनधर्म संघ का महत्वपूर्ण घटक थी। भिक्षुणियों की संख्या सम्बन्धी ऐतिहासिक सत्यता को भी पूरी तरह नकारा नहीं जा सकता। आज भी जैनसंघ में लगभग नौ हजार दो सौ भिक्षु भिक्षुणियों में दो हजार तीन सौ भिक्षु और छह हजार नौ सौ भिक्षुणियाँ हैं।[3] भिक्षुणियों का यह अनुपात उस अनुपात से अधिक ही है जो पार्श्व और महावीर के युग में माना गया है।

धर्मसाधना के क्षेत्र में स्त्री और पुरुष की समकक्षता के प्रश्न पर ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करें तो अनेक महत्वपूर्ण तथ्य हमारे समक्ष उपस्थित होते हैं। सर्वप्रथम उत्तराध्ययन, ज्ञाताधर्मकथा, अन्तकृद्दशा आदि आगमों में स्पष्ट रूप से स्त्री और पुरुष दोनों को ही साधना के सर्वोच्च लक्ष्य मुक्ति प्राप्ति के लिए सक्षम माना गया है। उत्तराध्ययन में स्त्रीलिंग सिद्ध का उल्लेख है।[4] ज्ञाता अन्त

---

१ जइ वि परिचित्तसंगो तहा वि परिवडइ।
महिलासंसग्गीए कोसाभवणूसिय व्व रिसी॥ —भत्तपरिन्ना, गा० १२८

(तथा)

तुम एत सोयसि अप्पाण णवि, तम एरिसभावं होहिसि उवसामति मंदबुद्धी, इच्छामि खमासमणो पुणोवि आलोवेत्ता विहरति॥ —आवश्यक चूर्णि २ पृ० १८१

ण दुक्कर तोडिय अम्बपिंडी, ण दुक्कर णच्चिउं सिक्खियाए।
त दुक्कर त च महाणुभाग, ज सो मुणी पमयवणंमि वुच्छो॥ —वही १ पृ० ५५४

२ कल्पसूत्र क्रमांक १५७, १६७, १७७ व १३८, प्राकृत भारती, जयपुर, १९७७ ई०

३ चातुर्मास सूची, पृ० ८७ प्र० ... श्री जैन पार्श्वनाथ सूची प्रकाशन परिषद बम्बई १९८७।

४ इत्थी पुरिससिद्धा य, तहेव य नपुंसगा।
सलिंगे अन्नलिंगे य, गिहिलिंगे तहेव य॥ —उत्तराध्ययन सूत्र ३६, ५०

५ ज्ञाताधर्मकथा—मल्लि और द्रौपदी अध्ययन।

कृत्दशा[1] एव आवश्यक चूर्णि मे भी अनेक स्त्रियो के मुक्त होने का उल्लेख है। इस प्रकार श्वेताम्बर परम्परा आगमिक काल से लेकर वर्तमान तक स्त्री मुक्ति की अवधारणा को स्वीकार कर साधना के क्षेत्र मे दोनो को समान स्थान देती है। मात्र इतना ही नही यापनीय परम्परा के ग्रन्थ षट्खण्डागम और मूलाचार मे भी स्त्री-पुरुष दोनो मे क्रमश आध्यात्मिक विकास की पूर्णता और मुक्ति की सम्भावना को स्वीकार किया गया है।[2] हमे आगमो और आगमिक व्याख्याओ यथा निर्युक्ति, भाष्य और चूर्णि साहित्य मे कही भी ऐसा सकेत नही मिलता है जिसमे स्त्री - मुक्ति का निषेध किया गया हो अथवा किसी ऐसे जैन सम्प्रदाय की सूचना दी गई हो जो स्त्रीमुक्ति को अस्वीकार करता है। सर्वप्रथम दक्षिण भारत मे कुन्दकुन्द आदि कुछ दिगम्बर आचार्य लगभग पाँचवी-छठी शताब्दी मे स्त्री-मुक्ति आदि का निषेध करते है। कुन्दकुन्द सुत्तपाहुड मे कहते है कि स्त्री अचेल (नग्न) होकर धर्मसाधना नही कर सकती, और सचेल चाहे तीर्थंकर भी हो मुक्त नही हो सकता।[3] इसका तात्पर्य यह भी है कि कुन्दकुन्द स्त्री-तीर्थंकर की यापनीय (उत्तर भारत के दिगम्बर सघो एव श्वेताम्बर परम्परा मे प्रचलित) अवधारणा से परिचित थे। यह स्पष्ट है कि पहले स्त्री तीर्थंकर की अवधारणा बनी, फिर उस विरोध मे स्त्रीमुक्ति का निषेध किया गया। सम्भवत सबसे पहले जैनपरम्परा मे स्त्रीमुक्ति-निषेध की अवधारणा का विकास दक्षिण भारत मे दिगम्बर सम्प्रदाय द्वारा हुआ। क्योकि सातवी-आठवी शताब्दी तक उत्तर भारत के श्वेताम्बर आचार्य जहाँ सचेलता और अचेलता को लेकर विस्तार से चर्चा करते है वहाँ स्त्रीमुक्ति के पक्ष-विपक्ष मे कोई भी चर्चा नही करते है। इसका तात्पर्य है कि उत्तर भारत के जैन सम्प्रदायो मे लगभग सातवी-आठवी शताब्दी तक स्त्रीमुक्ति सम्बन्धी विवाद उत्पन्न ही नही हुआ था। इस सन्दर्भ मे विस्तृत चर्चा प० बेचरदास स्मृति ग्रन्थ मे प० दलमुखभाई, प्रो० ढाकी और मैने अपने लेख

---

१ (अ) तत्थेव हत्थिखधवरगताए केवलनाण, सिद्धाए इमाए ओसप्पिणीए पढमसिद्धो मरुदेवा। एव आराहणं प्रनियोगसगहो कायव्वो। —आ० चूर्णि भाग २, पृ० २१२

द्रष्टव्य, वही भाग १, पृ० १८१ व ४८८।

(ब) अन्तकृद्दशा के वर्ग ५ मे १०, वर्ग ७ मे १३, वर्ग ८ मे १०। इस प्रकार कुल ३३ मुक्त नारियो का उल्लेख प्राप्त होता है।

२ (अ) मणुस्सिणीसु मिच्छाइट्ठि सासणसम्माइट्टि-ट्ठाणे सिया पज्जत्तियाओ सिया अपज्जत्तियाओ—
संजदासजदसंजदट्ठाणे णियमा पज्जत्तियाओ ॥ —षट्खण्डागम, १,१, ९२-९३

(ब) एवं विधाणचरिय चरितं जे साधवो य अज्जावो।
ते जंगपुज्जं किंत्ति सुह च लद्धूण सिज्झति ॥ —मूलाचार ४/१९६

३ लिंग इत्थीणं हवदि भुंजइ पिंडं सुएयकालम्मि।
अज्जिय वि एकवत्था वत्थावरणेण भुंजेइ ॥
णवि सिज्झइ वत्थधरो जिणसासणे जइवि होइ तित्थयरो।
णग्गो विमोक्खमग्गो सेसा उमग्गया सव्वे ॥ ---सूत्रप्राभृत, २२, २३

(तथा) सुणहाण गद्दहाण य गोपसुमहिलाण दीसदे मोक्खो।
जे सोधंति चउत्थ पिच्छिज्जंता जणेहि सव्वेहिं ॥ —शीलप्राभृत २९

मे की है।[1] यहा केवल हमारा प्रतिपाद्य इतना ही है कि स्त्रीमुक्ति का निषेध दक्षिण भारत म पहले और उत्तर भारत मे बाद म प्रारम्भ हुआ है, क्योकि श्वेताम्बर और यापनीय सम्प्रदाय के ग्रथो म लगभग आठवी-नौवी शताब्दी से स्त्री-मुक्ति के प्रश्न को विवाद के विषय के रूप म प्रस्तुत किया गया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि जैनपरम्परा मे भी धमसाधना के क्षेत्र म स्त्री समकक्षता किस प्रकार कम होती गयी। सवप्रथम सब स्त्री की मुक्ति की सम्भावना को अस्वीकार किया गया है फिर नग्नता को ही साधना का सवस्व मानकर उसे पाच महाव्रतो के पालन करने के अयोग्य मान लिया गया और उसमे यथाख्यात चारित्र (सच्चरित्रता की उच्चतम अवस्था) को भी असम्भव बता दिया गया। सुत्त पाहुड ने तो स्पष्ट रूप से स्त्री के लिए प्रव्रज्या का निषेध कर दिया गया। दिगम्बर परम्परा म स्त्री को जिन कारणो से प्रव्रज्या और मोक्ष के अयोग्य बताया गया है, वे निम्न ह—

(१) स्त्री की शरीर-रचना ही ऐसी है कि उससे रक्तस्राव होता है उस पर बलात्कार सम्भव है अत वह अचेल या नग्न नही रह सकती। चूँकि स्त्री अचेल या नग्न नही हो सकती दूसरे शब्दो म वह पूण परिग्रह का त्याग नही कर सकती और पूण परिग्रह का त्याग किये बिना उसके द्वारा महाव्रतो का ग्रहण एव मुक्ति प्राप्ति सम्भव नही हो सकती।

(२) स्त्री करुणा प्रधान है उसम तीव्र या क्रूर अध्यवसायो का अभाव होता है अत निम्नतम गति सातवी नरक म जाने के अयोग्य होती है। जनाचार्यों की इस उदार और मनोवैज्ञानिक मान्यता के आधार पर दिगम्बर परम्परा ने यह मान लिया कि तीव्र पुरुषाथ के अभाव म जो निम्नतम गति म नही जा सकती वह उच्चतम गति मे भी नही जा सकती। अत स्त्री की मुक्ति सम्भव नही।

(३) यह भी कहा गया है कि चचल स्वभाव के कारण स्त्रियो म ध्यान की स्थिरता नही होती है अत व आध्यात्मिक विकास की पूणता को प्राप्त नही कर सकती।

(४) एक अन्य तक यह भी दिया गया है कि स्त्री म वाद सामथ्य एव तीव्र बुद्धि के अभाव के कारण ये दृष्टिवाद के अध्ययन म अयोग्य होती है अत वे मुक्ति प्राप्त नही कर सकती। यद्यपि श्वेताम्बर परम्परा ने उन्ह बौद्धिक क्षमता के अभाव के कारण दृष्टिवाद, अरुणोपपात, निशीथ आदि के अध्ययन के अयोग्य अवश्य माना फिर भी उनम मोक्षप्राप्ति की क्षमता को स्वीकार किया गया। चाहे शारीरिक सरचना के कारण उसके लिए सयम-साधना के उपकरण के रूप म वस्त्र आवश्यक हो किन्तु आसक्ति के अभाव के कारण वह परिग्रह नही हैं अत इसम प्रव्रजित होने एव मुक्त होने की सामथ्य है।[3]

---

१ Aspects of Jainology Vol 2, Pt Bechardas Doshi Commemoration Vol page 105-110

२ इस सम्बन्ध म श्वेताम्बर दृष्टिकोण के लिए देखिए—अभिधान राजेन्द्र भाग ७, पृ० ६१८-६२१

(तथा) इत्थीसु ण पावया भणिया। —सूत्र प्राभृत, पृ० २४ २६

एव

णवि सिज्झइ वत्थधरो जिणसासणे जइवि होइ तित्थयरो॥ —वही २३

३ इस सम्बन्ध म दिगम्बर पक्ष के विस्तृत विवरण के लिए देखें—जैनेन्द्र सिद्धान्त कोष, भाग ३, पृ० ५६६ ५६८ एव श्वेताम्बर पक्ष के लिए देखें—अभिधान राजेन्द्र, भाग ७, पृ० ६१८ ६२१।

यह निश्चित ही सत्य है कि आगमिक काल के जैनाचार्यों ने मल्लि को स्त्री तीर्थंकर के रूप मे स्वीकार करके यह उद्घोषित किया कि आध्यात्मिक विकास के सर्वोच्च पद की अधिकारी नारी भी हो सकती है। स्त्री तीर्थंकर की अवधारणा जैनधर्म की अपनी एक विशिष्ट अवधारणा है, जो नारी की गरिमा को महिमामण्डित करती है। यद्यपि हिन्दू धर्म मे शक्ति के रूप में स्त्री को महत्त्व दिया गया है, किन्तु जैनधर्म मे तीर्थंकर की जो अवधारणा है, उसकी अपनी एक विशेषता है। वह यह सूचित करती है कि विश्व का सर्वोच्च गरिमामय पद पुरुष और स्त्री दोनो ही समान रूप से प्राप्त कर सकते है। यद्यपि परवर्ती आगमो एव आगमिक व्याख्या साहित्य मे उसे एक आश्चर्यजनक घटना कहकर पुरुष के प्राधान्य को स्थापित करने का प्रयत्न अवश्य किया गया (स्थानाग १०/१६०)। यद्यपि आगमिक व्याख्याओ के काल मे पुरुष की महत्ता बढी और व्रत ज्येष्ठ कल्प को पुरुष ज्येष्ठकल्प के रूप मे व्याख्यायित किया गया। अग आगमो मे मुझे एक भी ऐसा उदाहरण नही मिला जिसमे साध्वी अपनी प्रवर्तिनी, आचार्य या तीर्थंकर के अतिरिक्त दीक्षा मे कनिष्ठ भिक्षु को वन्दन या नमस्कार करती हो, किन्तु परवर्ती आगम एव आगमिक व्याख्या साहित्य मे स्पष्ट रूप मे कहा गया है कि सौ वर्ष की दीक्षित साध्वी के लिए भी सद्य दीक्षित मुनि वन्दनीय है (बृहत्कल्पभाष्य भाग ६ गाथा ६३६९ एव कल्पसूत्र कल्पलता टीका)।

फिर भी जैनधर्म सघ में नारी की महत्ता को यथासम्भव सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया गया है। मथुरा मे उपलब्ध अभिलेखो से यह स्पष्ट होता है कि धर्मकार्यों मे पुरुषों के समान नारियाँ भी समान रूप से भाग लेती थी। वे न केवल पुरुषो के समान पूजा, उपासना कर सकती थी, अपितु वे स्वेच्छानुसार दान भी करती थी और मन्दिर आदि बनवाने मे समान रूप मे भागीदार होती थी। जैन परम्परा मे मूर्तियो पर जो प्राचीन अभिलेख उपलब्ध होते हे उनमे सामान्य रूप से पुरुषो के साथ साथ स्त्रियों के नाम भी उपलब्ध होते है जो इस तथ्य के स्पष्ट प्रमाण है।[1] यद्यपि दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनो परम्पराओ मे कुछ लोग आज भी यह मानते है कि स्त्री को जिन-प्रतिमा के पूजन एव अभिषेक का अधिकार नही है।

आगमिक व्याख्याकाल मे हम देखते है कि यद्यपि सघ के प्रमुख के रूप मे आचार्य का पद पुरुषो के अधिकार मे था, किसी स्त्री आचार्य का कोई उल्लेख नही है, किन्तु गणिनी, प्रवर्तिनी, गणावच्छेदिनी, अभिषेका आदि पद स्त्रियो को प्रदान किये जाते थे।[2] और वे अपने भिक्षुणी सघ की स्वतन्त्र रूप से आन्तरिक व्यवस्था देखती थी। यद्यपि तरुणी भिक्षुणियो की सुरक्षा का दायित्व भिक्षु सघ को सौपा गया था किन्तु सामान्यतया भिक्षुणियाँ अपनी सुरक्षा की व्यवस्था स्वय रखती थी, क्योकि रात्रि मे एव पदयात्रा मे भिक्षु और भिक्षुणियो का एक ही स्थान पर रहना वर्जित था। इस सुरक्षा के लिए भिक्षुणी सघ मे प्रतिहारी आदि के पद भी निर्मित किये गये थे। इस प्रकार हम देखते है कि साधना के क्षेत्र मे स्त्री की गरिमा को यथासम्भव सुरक्षित रखा गया—फिर भी तथ्यो के अवलोकन से यह निश्चित है आगमिक व्याख्याओ के युग मे स्त्री की अपेक्षा पुरुष को महत्ता दी जाने लगी थी।

नारी की स्वतन्त्रता

नारी की स्वतन्त्रता को लेकर प्रारम्भ मे जैनधर्म का दृष्टिकोण उदार था। यौगलिक काल मे

---

१ जैन शिलालेख सग्रह, भाग २।

२. (क) बृहत्कल्पभाष्य, भाग ३, २४११, २४०७, (ख) बृहत्कल्पभाष्य भाग ४, ४३३९। (ग) व्यवहारसूत्र ५/१-१६।

स्त्री-पुरुष सहभागी होकर जीवन जीते थे। आगम ग्रन्थ ज्ञाताधर्मकथा[1] में राजा द्रुपद द्रौपदी से कहते हैं कि मेरे द्वारा विवाह किये जाने पर तुम्हें सुख-दुःख हो सकता है अतः अच्छा हो अपना वर स्वयं ही चुनो। यहाँ ग्रन्थकार के ये विचार वैवाहिक जीवन के लिए नारी - स्वातन्त्र्य का समर्थक है। इसी प्रकार हम देखते हैं कि उपासकदशांग में महाशतक अपनी पत्नी रेवती के धार्मिक विश्वास खान पान और आचार-व्यवहार पर कोई जबरदस्ती नहीं करता है। जहाँ रेवती अपनी मायके से मँगाकर मद्य मांस का सेवन करती है वहाँ महाशतक पूर्ण साधनात्मक जीवन व्यतीत करता है।[2] इससे ऐसा लगता है कि आगम युग तक नारी को अधिक स्वातन्त्र्य था किन्तु आगमिक व्याख्या साहित्य में हम पाते हैं कि पति या पत्नी अपने धार्मिक विश्वासों को एक दूसरे पर लादने का प्रयास करते हैं। चूर्णि साहित्य में ऐसी अनेक कथाएँ हैं जिनमें पुरुष स्त्री को अपने धार्मिक विश्वासों की स्वतन्त्रता नहीं देता है।

इसी प्रकार धर्मसंघ में भी आगम युग में भिक्षुणी संघ की व्यवस्था को भिक्षुसंघ से अधिक नियन्त्रित नहीं पाते हैं। भिक्षुणी संघ अपने आन्तरिक मामलों में पूर्णतया आत्मनिर्भर था गणधर अथवा आचार्य का उस पर बहुत अधिक अंकुश नहीं था किन्तु छेदसूत्र एवं आगमिक व्याख्या साहित्य के काल में यह नियन्त्रण क्रमशः बढ़ता जाता है। इन ग्रन्थों में चातुर्मास प्रायश्चित्त शिक्षा, सुरक्षा आदि सभी क्षेत्रों में आचार्य का प्रभुत्व रहता हुआ प्रतीत होता है। फिर भी बौद्ध भिक्षुणी संघ की अपेक्षा जैन भिक्षुणी संघ में स्वायत्तता अधिक थी। किन्हीं विशेष परिस्थितियों को छोड़कर वे दीक्षा, प्रायश्चित्त शिक्षा और सुरक्षा की अपनी व्यवस्था करती थी और भिक्षु संघ से स्वतन्त्र विचरण करते हुए धर्मोपदेश देती हैं जबकि बौद्धधर्मसंघ में भिक्षुणी को उपासथ, वर्षावास आदि भिक्षुसंघ के अधीन करने होते थे।

यद्यपि जहाँ तक व्यावहारिक जीवन का प्रश्न था जैनाचार्य हिन्दू परम्परा के चिन्तन से प्रभावित हो रहे थे। मनुस्मृति के समान व्यवहारभाष्य में भी कहा गया है—

जाया पितिव्वसा नारी दत्ता नारी पतिव्वसा।
विहवा पुत्तवसा नारी नत्थि नारी सयवसा॥ ३/२३३

अर्थात् जन्म के पश्चात् स्त्री पिता के अधीन विवाहित होने पर पति के अधीन और विधवा होने पर पुत्र के अधीन होती है अतः वह कभी स्वाधीन नहीं है। इस प्रकार आगमिक व्याख्या साहित्य में स्त्री की स्वाधीनता सीमित की गयी है।

पुत्र पुत्री की समानता का प्रश्न

चाहे प्रारम्भिक वैदिक धर्म में पुत्र और पुत्री की समकक्षता स्वीकार की गई हो किन्तु परवर्ती हिन्दू धर्म में अर्थोपार्जन और धार्मिक कर्मकाण्ड दोनों ही क्षेत्रों में पुरुष की प्रधानता के परिणामस्वरूप

---

१ जस्स णं अहं पुत्ता ! रायस्स वा जुवरायस्स वा भारियत्ताए सयमेव दलइस्सामि, तत्थ णं तुमं सुहिया वा दुक्खिया वा भविज्जासि। णायाधम्मकहा १६/८८

२ तए णं सा रेवई गाहावइणी तेहिं गोणमंसेहिं सोल्लेहि य ४ सुरं च ५ आसाएमाणी ४ विहरइ।
—उवासगदसाओ २४४

तए णं तस्स महासयगस्स समणोवासगस्स बहूहिं सील वाय भावेमाणस्स चोद्दस संवच्छरा वइक्कंता। एवं तहेव जेट्ठ पुत्तं ठवेइ जाव पोसहसालाए धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ।
—उवासगदसाओ, २४५

पुत्र का स्थान महत्त्वपूर्ण हो गया और यह उद्घोष किया गया कि पुत्र के बिना पूर्वजो की सुगति/मुक्ति सम्भव नही ।[1] फलत आगे चलकर हिन्दू परम्परा मे कन्या की उत्पत्ति को अत्यन्त हीनदृष्टि से देखा जाने लगा। इस प्रकार वैदिक हिन्दू परम्परा मे पुत्र-पुत्री की समकक्षता को अस्वीकार कर पुत्र को अधिक महनीयता प्रदान की गई किन्तु इसके विपरीत जैन आगमो में हम देखते है कि उपासक और उपासिकाएँ पुत्र-पुत्री हेतु समान रूप से कामना करते हैं ।[2] चाहे अर्थोपार्जन और पारिवारिक व्यवस्था की दृष्टि से जैनधर्मानुयायियो मे भी पुत्र की प्रधानता रही हो किन्तु जहाँ तक धार्मिक जीवन और साधना का प्रश्न था, जैन धर्म मे पुत्र की महत्ता का कोई स्थान नही था। जैन कर्म सिद्धान्त ने स्पष्ट रूप से यह उद्घोषित किया कि व्यक्ति अपने कर्मो के अनुसार ही सुगति या दुर्गति मे जाकर सुख-दु ख का भोग करता है। सन्तान के द्वारा सम्पन्न किए गये कर्मकाण्ड पूर्वजो को किसी भी प्रकार प्रभावित नही करते[3] इस प्रकार उसमे धार्मिक आधार पर पुत्र की महत्ता को अस्वीकार कर दिया। फलत आगमिक युग मे पुत्र-पुत्री के प्रति समानता की भावना प्रदर्शित की गई किन्तु अर्थोपार्जन और पारिवारिक व्यवस्था मे पुरुष की प्रधानता के कारण पुत्रोत्पत्ति को ही अधिक सुखद माना जाने लगा। यद्यपि ज्ञाताधर्मकथा मे मल्लि आदि के जन्मोत्सव के उल्लेख उपलब्ध है,[4] किन्तु इन उल्लेखो के आधार पर यह मान लेना कि जैन सघ मे पुत्र और पुत्री की स्थिति सदैव ही समकक्षता की रही, उचित नही होगा। आगमिक व्याख्या साहित्य एव पौराणिक साहित्य मे उपर्युक्त आगमिक अपवादो को छोडकर जैनसंघ में भी पुत्री की अपेक्षा पुत्र को जो अधिक सम्मान मिला उसका आधार धार्मिक मान्यताये न होकर सामाजिक परिस्थितियाँ थी। यद्यपि भिक्षुणी सघ की व्यवस्था के कारण पुत्री पिता को उतनी अधिक भारस्वरूप कभी नही मानी गयी जितनी उसे हिन्दू परम्परा में माना गया था।

इस प्रकार जैन आगमिक व्याख्या साहित्य से जो सूचनाएँ उपलब्ध हैं उनके आधार पर कहा जा सकता है कि यौगलिक काल अर्थात् पूर्व युग मे और आगम युग मे पुत्र और पुत्री दोनो की ही उत्पत्ति सुखद थी किन्तु आगमिक व्याख्याओ के युग में वाह्य सामाजिक एव आर्थिक प्रभावो के कारण स्थिति मे परिवर्तन आया और पुत्री की अपेक्षा पुत्र को अधिक महत्व दिया जाने लगा।

विवाह सस्था और नर-नारी की समकक्षता का प्रश्न

विवाह-व्यवस्था प्राचीन काल से लेकर आज तक मानवीय समाज व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण अग रही है। यह सत्य है कि जैनधर्म के अनुयायियो में भी प्राचीनकाल से विवाह व्यवस्था प्रचलित रही है किन्तु हमे यह भी स्मरण रखना होगा कि निवृत्तिप्रधान होने के कारण जैनधर्म मे विवाह-व्यवस्था को कोई विशेष महत्व नही दिया गया। धार्मिक दृष्टि से वे स्वपत्नी या स्वपति सन्तोषव्रत की व्यवस्था करते है जिसका तात्पर्य है व्यक्ति को अपनी काम-वासना को स्वपति या स्वपत्नी तक ही सीमित रखना

---

१. अपुत्रस्य गतिर्नास्ति।

२. जइ णं अहं दारग वा दारिग वा पयायामि तो णं अह जाय य जाव अणुवड्ढेमित्ति।
ज्ञाताधर्मकथा, १, २, १६

३. न तस्स दुक्ख विभयति नाइओ, न मित्तवग्गा न सुया न बंधवा।
एक्को सयं पच्चणु होइ दुक्ख, कत्तारमेव अणुजाइ कम्मं ॥ —उत्तराध्ययन १३, २३

४. ज्ञाताधर्मकथा अध्ययन ८, सूत्र ३०, ३१।

चाहिए। तात्पय यह है कि यदि ब्रह्मचय का पालन सम्भव न हो तो विवाह कर लेना चाहिए। विवाह विधि के सम्बध मे जनाचार्यों की स्पष्ट धारणा क्या थी, इसकी सूचना हम आगमो और आगमिक व्याख्याओ मे नही प्राप्त होती है। जन विवाह विधि का प्रचलन पर्याप्त रूप म परवर्ती है और दक्षिण मे दिगम्बर आचार्यो की ही देन है जो हिदू विवाह विधि का जनीकरण मात्र है। उत्तर भारत के श्वेताम्बर जना म तो विवाह विधि को हिन्दू धम के अनुसार ही सम्पादित किया जाता है। आज भी श्वेताम्बर जनो म अपनी कोई विवाह पद्धति नही है। जन आगमा और आगमिक व्याख्याओ से जो सूचना हमे मिलती है उसके अनुसार यौगलिक काल मे युगल रूप म उत्पन्न होन वाले भाई बहन ही युवावस्था म पति पत्नी का रूप ले लेत थे। जैन पुराणा के अनुसार सवप्रथम ऋषभदेव से ही विवाह प्रथा का आरम्भ हुआ।[1] उन्होन भाई बहना के बीच होने वाली विवाह प्रणाली को अस्वीकार कर दिया। उनकी दोना पुत्रियो ब्राह्मी और सुदरी ने आजावन ब्रह्मचारिणी रहन का निणय किया। फलत भरत और बहुबलि का विवाह अय वशो की कयाओ स किया गया। जैन साहित्य के अध्ययन मे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि आगमिक काल तक स्त्री विवाह सम्बधी निणयो का लेन म स्वतत्र थी और अधिकाश विवाह उसकी सम्मति से ही किय जात थ जसाकि नाता म मल्लि और द्रौपदी क कथानको से ज्ञात होता है।

आगम ग्रथा मे जा सूचना मिलती है उसके आधार पर हम इतना ही कह सकते है कि प्राग तिहासिक युग और आगम युग म सामायतया स्त्री को अपने पति का चयन करन मे स्वतत्रता थी। यह भी उसकी इच्छा पर निभर था कि वह विवाह करे या न कर। पूवयुग म ब्राह्मी, सुदरी, मल्लि, आगमिक युग म चदनबाला जयती आदि एसी अनक स्त्रिया के उल्लख प्राप्त होते है जिन्होन आजीवन ब्रह्मचयपालन स्वीकार किया और विवाह अस्वीकार कर दिया। आगमिक व्याख्याओ मे हम विवाह के अनक रूप उपलब्ध होते ह। डा० जगदीशचन्द्र जैन ने जन आगमो और आगमिक व्याख्याओ मे उपलब्ध विवाह के विविध रूपा का विवरण प्रस्तुत किया है यथा—स्वयवर माता पिता द्वारा आयोजित विवाह, गधव विवाह (प्रेमविवाह), कया को बलपूवक ग्रहण करके विवाह करना, पारस्परिक आकषण या प्रेम के आधार पर विवाह, वर या कया की योग्यता देखकर विवाह, कयापक्ष को शुल्क देकर विवाह और भविष्यवाणी के आधार पर विवाह।[3] किन्तु हम आगम एव आगमिक व्याख्याओ म कही भी ऐसा उल्लेख नही मिल सका जहा जनाचार्यो न गुण-दोषो के आधार पर इनम से किसी का समथन या निषेध किया हो या यह कहा हो कि यह विवाह-पद्धति उचित है या अनुचित है। यद्यपि विवाह क सम्बध मे जैनो का अपना कोई स्वतत्र दृष्टिकोण नही था पर इतना अवश्य माना जाता था कि यदि कोई ब्रह्मचय पालन करने म असफल हो तो उसे विवाह न धन मान लेना चाहिए। जहा तक स्वयवर विधि का प्रश्न है निश्चित ही नारी स्वातत्र्य की दृष्टि से यह विधि महत्त्वपूण थी। किन्तु जनसामान्य म जिस विधि का प्रचलन था वह माता पिता क द्वारा आयोजित विधि ही थी। यद्यपि इस विधि म स्त्री और पुरुष दोनो की स्वतत्रता खण्डित होती थी। जैनकथा साहित्य म ऐसे अनक उल्लेख उपलब्ध है जहा बलपूवक अपहरण करके विवाह सम्पन्न हुआ। इस विधि म नारी की स्वतत्रता पूणतया खण्डित हो जाती थी,

---

१ आवश्यकचूर्णि, भाग १, पृष्ठ १५२।

२ आवश्यकचूर्णि भाग १, पृ० १४२ ४३।

३ जनागम म भारतीय समाज, —डा जगदीशचद्र जन, पृ० २५३ २६६।

क्योकि अपहरण करके विवाह करने का अर्थ मात्र स्त्री को चयन की स्वतन्त्रता का अभाव ही नही है यह तो लूट की सम्पत्ति है।

जहाँ तक आगमिक व्याख्याओ का प्रश्न है उनमे अधिकांश विवाह माता-पिता के द्वारा आयोजित विवाह ही है केवल कुछ प्रसगो मे ही स्वयवर एव गन्धर्व विवाह के उल्लेख मिलते है जो आगम युग एव पूर्व काल के है। माता-पिता के द्वारा आयोजित इस विवाह-विधि मे स्त्री-पुरुषो की समकक्षता पर कोई प्रभाव नही पडता है। यद्यपि जैनाचार्यो ने विवाह-विधि के सम्बन्ध मे गम्भीरता से चिन्तन नही किया किन्तु यह सत्य है कि उन्होने स्त्री को गरिमाहीन बनाने का प्रयास भी नही किया। जहाँ हिन्दू-परम्परा मे विवाह स्त्री के लिए बाध्यता थी। वही जैन-परम्परा मे ऐसा नही माना गया। प्राचीनकाल से लेकर अद्यावधि विवाह करने न करने के प्रश्न को स्त्री-विवेक पर छोड दिया गया। जो स्त्रियाँ यह समझती थी कि वे अविवाहित रहकर अपनी साधना कर सकेंगी उन्हे बिना विवाह किये ही दीक्षित होने का अधिकार था। विवाह-सस्था जैनो के लिये ब्रह्मचर्य की साधना मे सहायक होने के रूप में ही स्वीकार की गई। जैनो के लिए विवाह का अर्थ था अपनी वासना को नयमित करना। केवल उन्ही लोगो के लिए विवाह सस्था मे प्रवेश आवश्यक माना गया था जो पूर्ण रूप से ब्रह्मचर्य का पालन करने मे असमर्थ पाते हो, अथवा विवाह के पूर्व पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन का व्रत नही ले चुके है। अत हम कह सकते है कि जैनो ने ब्रह्मचर्य की आशिक साधना के अग के रूप मे विवाह सस्था को स्वीकार करके भी नारी की स्वतन्त्र निर्णय शक्ति को मान्य करके उसकी गरिमा को खण्डित नही होने दिया।

वहुपति और वहुपत्नी प्रथा

विवाह सस्था के सन्दर्भ में एक महत्वपूर्ण प्रश्न वहुविवाह का भी है। इसके दो रूप हैं वहुपत्नी प्रथा और वहुपति प्रथा। यह स्पष्ट है कि द्रौपदी के एक अपवाद को छोड़कर हिन्दू और जैन दोनो ही परम्पराओ ने नारी के सम्बन्ध मे एक-पति प्रथा की अवधारणा को ही स्वीकार किया और वहुपति प्रथा को धार्मिक दृष्टि मे अनुचित माना गया। जैनाचार्यो ने द्रौपदी के वहुपति होने की अवधारणा को इस आधार पर औचित्यपूर्ण वताने का प्रयास किया है कि सुकमालिका आर्या के भव मे उसने अपने तप के प्रताप से पाँच पति प्राप्त करने का निदान (निश्चय कर) लिया था।[1] अत इसे पूर्वकर्म का फल मानकर सन्तोष किया गया। किन्तु दूसरी ओर पुरुष के सम्बन्ध मे वहुपत्नी प्रथा की स्पष्ट अवधारणा आगमो और आगमिक व्याख्या साहित्य मे मिलती है। इनमे ऐसे अनेक सन्दर्भ है जहाँ पुरुषो को वहु-विवाह करते दिखाया गया है। दुःख तो यह है कि उनकी इस प्रवृत्ति की समालोचना भी नही की गई है। अत उस युग मे जैनाचार्य इस सम्बन्ध मे तटस्थ भाव रखते थे यही कहा जा सकता है। क्योंकि किसी जैनाचार्य ने वहुविवाह को अच्छा कहा हो, ऐसा भी कोई सन्दर्भ नही मिलता है।

वहुपत्नी प्रथा के आविर्भाव पर विचार करे तो हम पाते है कि यौगलिक काल तक वहुपत्नी प्रथा प्रचलित नही थी। आवश्यकचूर्णि के अनुसार सर्वप्रथम ऋषभदेव ने दो विवाह किये थे। उनके लिये दूसरा विवाह इसलिये आवश्यक हो गया था कि एक युगल मे पुरुष की अकाल मृत्यु हो जाने के कारण उस स्त्री को सुरक्षा प्रदान करने की दृष्टि से यह आवश्यक था। किन्तु जब आगे चलकर स्त्री को एक सम्पत्ति के रूप मे देखा जाने लगा तो स्वाभाविक रूप से स्त्री के प्रति अनुग्रह की भावना के

१. ज्ञाताधर्मकथा अध्याय १६, सूत्र ७२-७४।

आधार पर नही अपितु अपनी कामवासना और प्रतिष्ठा के लिए बहुविवाह की प्रथा आरम्भ हो गयी। यहा हम यह स्मरण रखना चाहिए कि यद्यपि समाज म बहुविवाह की प्रथा प्रचलित थी किन्तु उसे जन धम सम्मत एक आचार मानना अनुचित होगा। क्योकि जब जना में विवाह को ही एक अनिवाय धार्मिक कतव्य के रूप म स्वीकार नही किया गया तो बहुविवाह को धार्मिक कतव्य के रूप म स्वीकार करने का प्रश्न ही नही उठता। जैन आगम और आगमिक व्याख्या साहित्य मे यद्यपि पुरुष के द्वारा बहुविवाह के अनेक सन्दभ उपलब्ध होते हैं किन्तु हमे एक भी ऐसा सन्दभ नही मिलता जहाँ कोई व्यक्ति गृहस्थोपासक के व्रतो को स्वीकार करने के पश्चात् बहुविवाह करता है। यद्यपि ऐसे सन्दभ तो हैं कि मुनिव्रत या श्रावकव्रत स्वीकार करने के पूव अनेक गृहस्थोपासको की एक स अधिक पत्निया थी। किन्तु व्रत स्वीकार करने के पश्चात् किसी ने अपनी पत्निया की सख्या म वृद्धि की हो, ऐसा एक भी सन्दभ मुझे नही मिला। आदश स्थिति तो एक-पत्नी प्रथा को ही माना जाता था। उपासकदशा म १० प्रमुख उपासको म केवल एक की ही अधिक पत्निया थी। साथ ही उस म श्रावको के व्रतो के जो अतिचार बताये गये हैं उनम स्वपत्नी सतोष व्रत का एक अतिचार पर विवाहकरण है।[1] यद्यपि कुछ जैनाचार्यो ने पर विवाहकरण का अथ स्व सन्तान के अतिरिक्त अन्यो की सन्तानो का विवाह सम्बन्ध करवाना माना है किन्तु उपासकदशाग की टीका म आचाय अभयदेव न इसका अथ एक से अधिक विवाह करना माना है। अत हम यह कह सकते है कि धार्मिक आधार पर जनधम बहुपत्नी प्रथा का समथक नही है। बहुपत्नी प्रथा का उद्देश्य तो वासना से आवण्ठ उजना है और निवृत्तिप्रधान जैनधम की मूल भावना के अनुकूल नही है। जन ग्रथो म जो बहुपत्नी प्रथा की उपस्थिति के सकेत मिलते है वे उस युग की सामाजिक स्थिति के सूचक है। आगम साहित्य मे पाश्व, महावीर एव महावीर के नौ प्रमुख उपासको की एक पत्नी मानी गई है।

विधवा विवाह एव नियोग—

यद्यपि आगमिक व्याख्या साहित्य म नियोग और विधवा विवाह के कुछ सन्दभ उपलब्ध हो जाते है किन्तु हमे यह स्मरण रखना चाहिए कि ये भी जनाचार्यो द्वारा समर्थित नही है। निशीथचूर्णि म एक राजा को अपनी पत्नी स नियोग के द्वारा सन्तान उत्पन्न करवाने के सन्दभ मे यह कहा गया है कि *जिस प्रकार खेत मे बीज किसी न भी डाला हो फसल का अधिकारी भूस्वामी ही होता है। उसी प्रकार स्वस्त्री से उत्पन्न सन्तान का अधिकारी उसका पति ही होता है।*[3] यह सत्य है कि एक युग मे भारत म नियोग की परम्परा प्रचलित रही किन्तु निवृत्तिप्रधान जनधम न न तो नियोग का समथन किया न ही विधवा विवाह का। क्योकि उसकी मूलभूत प्रेरणा यही रही कि जब भी किसी स्त्री या पुरुष को काम वासना स मुक्त होने का अवसर प्राप्त हो वह उससे मुक्त हो। जन आगम एव आगमिक व्याख्याओ म हजारो सन्दभ प्राप्त हैं जहा पति की मृत्यु के पश्चात् विधवायें भिक्षुणी बनकर सघ की शरण म चली जाती थी। जैन सघ म भिक्षुणियो की सख्या के अधिक होने का एक कारण यह भी था कि भिक्षुणी सघ विधवाओ के सम्मानपूण एव सुरक्षित जीवन जीने का आश्रयस्थल था। यद्यपि कुछ लोगो द्वारा यह कहा जाता है कि ऋषभदेव ने मत युगल की पत्नी से विवाह करके विधवा विवाह की परम्परा को स्थापित

---

१ उवासकदसा १, ४८। २ उवासकदसा, अभयदेवकृत वृत्ति पृ० ४३

३ निशीथचूर्णि, भाग २, ३८१।

किया था। किन्तु आवश्यक चूर्णि से स्पष्ट होता है कि वह स्त्री मृत युगल की बहन थी, पत्नी नही। क्योकि उस युगल मे पुरुष की मृत्यु बालदशा में हो चुकी थी। अत. इस आधार पर विधवा विवाह का समर्थन नही होता है। जैनधर्म जैसे निवृत्तिप्रधान धर्म मे विधवा-विवाह को मान्यता प्राप्त नही थी।

विधुर-विवाह

जब समाज मे बहु-विवाह को समर्थन हो तो विधुर-विवाह को मान्य करने में कोई आपत्ति नही होगी। किन्तु इसे भी जैनधर्म मे धार्मिक दृष्टि से समर्थन प्राप्त था, यह नही कहा जा सकता। पत्नी की मृत्यु के पश्चात् आदर्श स्थिति तो यही मानी गई थी कि व्यक्ति वैराग्य ले ले। मात्र यही नही अनेक स्थितियो मे पति, पत्नी के भिक्षुणी बनने पर स्वय भी भिक्षु बन जाता है। यद्यपि सामाजिक जीवन में विधुर-विवाह के अनेक प्रसग उपलब्ध होते है।

विवाहेतर यौन सम्बन्ध

जैनधर्म मे पति-पत्नी के अतिरिक्त अन्यत्र यौन सम्बन्ध स्थापित करना धार्मिक दृष्टि से अनुचित माना गया। वेश्यागमन और परस्त्रीगमन दोनो को ही अनैतिक कर्म माना गया। फिर भी न केवल गृहस्थ स्त्री-पुरुष अपितु भिक्षु-भिक्षुणियाँ भी अनैतिक यौन सम्बन्ध स्थापित कर लेते थे। आगमिक व्याख्या साहित्य मे ऐसे सैकडो प्रसग उल्लिखित है जिनमें ऐसे सम्बन्ध हो जाते थे। जैन आगमो और उनकी टीकाओ आदि मे ऐसी अनेक स्त्रियो का उल्लेख मिलता है जो अपने साधना-मार्ग से पतित होकर स्वेच्छाचारी बन गयी थी। ज्ञाताधर्मकथा उसकी टीका, आवश्यकचूर्णि आदि मे पार्श्वपत्थ परम्परा की अनेक शिथिलाचारी साध्वियो के उल्लेख मिलते है।[1] ज्ञाताधर्मकथा में द्रौपदी का पूर्व जीवन भी इसी रूप में वर्णित है। साधना काल में वह वेश्या को पाच पुरुषो से सेवित देखकर स्वयं पाँच पतियो की पत्नी बनने का निदान कर लेती है।[2] निशीथचूर्णि में पुत्रियो और पुत्रवधू के जार अथवा धूर्त व्यक्तियो के साथ भागने के उल्लेख है। आगमिक व्याख्याओ मे मुख्यत निशीथचूर्णि, बृहत्कल्पभाष्य, व्यवहार-भाष्य आदि में ऐसे भी उल्लेख मिलते है जहाँ स्त्रियाँ अवैध सन्तानो को भिक्षुओ के निवास स्थानों पर छोड जाती थी।[3] आगम और आगमिक व्याख्याये इस बात की साक्षी है कि स्त्रियाँ सम्भोग के लिए भिक्षुओ को उत्तेजित करती थी[4] उन्हे इस हेतु विवश करती थी और उनके द्वारा इन्कार किये जाने पर उन्हे बदनाम किये जाने का भय दिखाती थी। आगमिक व्याख्याओ मे इन उपरिस्थितियो मे भिक्षु को क्या करना चाहिए इस सम्बन्ध मे अनेक आपवादिक नियमो का उल्लेख मिलता है। यद्यपि शीलभग सम्बन्धी अपराधो के विविध रूपो एव सम्भावनाओ के उल्लेख जैन परम्परा मे विस्तार से मिलते है किन्तु इस चर्चा का उद्देश्य साधक को वासना सम्बन्धी अपराधो से विमुख बनाना ही रहा है। यह जीवन का यथार्थ तो था किन्तु जैनाचार्य उसे विकृतपक्ष मानते थे और उस आदर्श समाज की कल्पना करते है, जहाँ इनका अभाव हो।

---

१ ज्ञाताधर्मकथा, द्वितीयश्रुत स्कन्ध, प्रथम वर्ग, अध्याय २-५
द्वितीय वर्ग, अध्याय, ५ तृतीय वर्ग, अध्याय १-५४

२ ज्ञाताधर्मकथा, प्रथमश्रुतस्कन्ध, अध्याय १६, सूत्र ७२-७४।

३ निशीथचूर्णि, भाग ३ पृ० २६७।

४. निशीथचूर्णि भाग २, पृ० १७३।

आगमिक व्याख्याओ म उन घटनाओ का भी उल्लेख है जिनके कारण स्त्रियो का पुरुषो की वासना का शिकार होना पडा था। पुरुषो की वासना का शिकार होने से बचने के लिए भिक्षुणियो को अपनी शील सुरक्षा मे कौन-कौन-सी सतकता बरतनी होती थी यह भी उल्लेख निशीथ और बृहत्कल्प दोनो मे ही विस्तार मे मिलता है। रूपवती भिक्षुणियो को मनचले युवको और राजपुरुषो की कुदृष्टि से बचने के लिए इस प्रकार का वेश धारण करना पडता था ताकि वे कुरूप प्रतीत हो। भिक्षुणियो को सोते समय क्या व्यवस्था करनी चाहिए इसका भी बृहत्कल्पभाष्य मे विस्तार से वणन है। भिक्षुणी सघ म प्रवेश करने वालो की पूरी जाँच की जाती थी। प्रतिहारी भिक्षुणी उपाश्रय के बाहर दण्ड लेकर बैठती थी। शील सुरक्षा के जो विस्तृत विवरण हम आगमिक व्याख्याओ मे मिलते हैं उनसे स्पष्ट हो जाता है कि पुरुष वग स्त्रियो एव भिक्षुणियो को अपनी वासना का शिकार बनाने म कोई कमी नही रखता था। पुरुष द्वारा बलात्कार किये जाने पर और ऐसी स्थिति म गभ रह जाने पर सघ उस भिक्षुणी के प्रति सद्भावनापूवक व्यवहार करता था तथा उसके गभ की सुरक्षा के प्रयत्न भी किय जाते थे। प्रसूत बालक को जब वह उस स्थिति म आ जाता था कि वह माता के बिना रह सके तो उसे उपासक को सौंपकर अथवा भिक्षु सघ को सौंपकर ऐसी भिक्षुणी पुन भिक्षुणी सघ म प्रवेश पा सकती थी।[1] ये तथ्य इस बात के सूचक हैं कि सदाचारी नारियो के सरक्षण म जनसघ सदव सजग था।

नारी रक्षा

बलात्कार किये जाने पर किसी भिक्षुणी की आलोचना का अधिकार नही था। इसके विपरीत जो व्यक्ति ऐसी भिक्षुणी की आलोचना करता उसे ही दण्ड का पात्र माना जाता था। नारी की मर्यादा की रक्षा के लिए जनसघ सदैव ही तत्पर रहता था। निशीथचूर्णि म उल्लेखित कालकाचाय की कथा इस बात का प्रमाण है कि अहिंसा का प्राणपण म पालन करने वाला भिक्षु सघ भी नारी की गरिमा को खण्डित होने की स्थिति मे दुराचारियो को दण्ड देने के लिए शस्त्र पकडकर सामने आ जाता था। निशीथचूर्णि में कालकाचाय की कथा इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि आचाय ने भिक्षुणी एव बहन सरस्वती की शील-सुरक्षा के लिये गदभिल्ल के विरुद्ध शको की सहायता लेकर पूरा सघष किया था। निशीथ, बृहत्कल्प, भाष्य आदि में स्पष्ट रूप से ऐसे उल्लेख हैं कि यदि सघस्थ भिक्षुणियो की शील-सुरक्षा का प्रश्न है और उसके लिए दुराचारी की हत्या करने का भी प्रश्न उपस्थित हो जाय तो ऐसी हत्या का भी समथन किया गया था और ऐसे भिक्षु को सघ म सम्मानित ही किया जाता था। बृहत्कल्प भाष्य मे कहा गया है कि जल, अग्नि चोर और दुष्काल की स्थिति म सवप्रथम स्त्री की रक्षा करनी चाहिए। इसी प्रकार डूबते हुए श्रमण और भिक्षुणी म पहले भिक्षुणी को और क्षुल्लक और क्षुल्लिका म से क्षुल्लिका की रक्षा करनी चाहिए।

सती प्रथा और जनधम

उत्तरमध्य युग मे नारी उत्पीडन का सबसे वीभत्स रूप सती प्रथा बन गया था यदि हम सती प्रथा के सन्दभ म जन आगम और व्याख्या साहित्य को देखे तो स्पष्ट रूप से हम एक भी ऐसी घटना का उल्लेख नही मिलता जहाँ पत्नी पति के शव के साथ जली हो या जला दी गयी हो। यद्यपि निशीथचूर्णि म एक ऐसा उल्लेख मिलता है जिसके अनुसार सोपारक के पाँच सौ व्यापारियो का कर न देने के कारण राजा ने जला देने का आदेश दे दिया था और उक्त उल्लेख के अनुसार उन व्यापारियो की पत्नियो ने भी

१ निशीथचूर्णि, भाग १ पृ० १ ६। २ निशीथचूर्णि, भाग २ पृ० २३४।

उनकी चिताओ मे जल गयी थी ।[1] लेकिन जैनाचार्य इसका समर्थन नही करते है। पुन इस आपवादिक उल्लेख के अतिरिक्त हमे जैन साहित्य मे इस प्रकार के उल्लेख उपलव्ध नही होते है, महानिशीथ मे इससे भिन्न यह उल्लेख भी मिलता है कि किसी राजा की विधवा कन्या सती होना चाहती थी किन्तु उसके पितृकुल मे यह रिवाज नही था अत उसने अपना विचार त्याग दिया ।[2] इससे लगता है कि जैनाचार्यो ने पति की मृत्यूपरान्त स्वेच्छा से भी अपने देह-त्याग को अनुचित ही माना है और इस प्रकार के मरण को वाल-मरण या मूर्खता ही कहा है। सती प्रथा का धार्मिक समर्थन जैन आगम साहित्य और उसकी व्याख्याओ मे हमे कही नही मिलता।

यद्यपि आगमिक व्याख्याओ मे दधिवाहन की पत्नी एव चन्दना की माता धारिणी आदि के कुछ ऐसे उल्लेख अवश्य है जिनमे ब्रह्मचर्य की रक्षा के निमित्त देह-त्याग किया गया है[3] किन्तु यह अवधारणा सती प्रथा की अवधारणा से भिन्न है। जैन धर्म और दर्शन यह नही मानता है कि मृत्यु के वाद पति का अनुगमन करने से अर्थात् जीवित चिता मे जल मरने से पुन स्वर्गलोक मे उसी पति की प्राप्ति होती हैं। इसके विपरीत जैनधर्म अपनी कर्म सिद्धान्त के प्रति आस्था के कारण यह मानता है कि पति-पत्नी अपने-अपने कर्मो और मनोभावो के अनुसार ही विभिन्न योनियो मे जन्म लेते है। यद्यपि परवर्ती जैन कथा साहित्य मे हमे ऐसे उल्लेख मिलते है जहाँ एक भव के पति-पत्नी आगामी अनेक भवो मे जीवनसाथी बने, किन्तु इसके विरुद्ध भी उदाहरणो की जैन कथा साहित्य मे कमी नही है।

अत यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि धार्मिक आधार पर जैन धर्म सतीप्रथा का समर्थन नही करता। यद्यपि जैन धर्म के सती प्रथा के समर्थक न होने के कुछ सामाजिक कारण भी है। व्याख्या साहित्य मे ऐसी अनेक कथाएँ वर्णित है जिनके अनुसार पति की मृत्यु के पश्चात् पत्नी न केवल पारिवारिक दायित्व का निर्वाह करती थी अपितु पति के व्यवसाय का सचालन करती थी। शालिभद्र की माता भद्रा को राजगृह की एक महत्वपूर्ण श्रेष्ठी और व्यापारी निरूपित किया गया है जिसके वैभव को देखने के लिये श्रेणिक भी उसके घर आया था। आगमो और आगमिक व्याख्याओ मे ऐसे अनेक उल्लेख हैं जहाँ कि स्त्री पति की मृत्यु के पश्चात् विरक्त होकर भिक्षुणी वन जाती थी। यह सत्य है कि जैन भिक्षुणी सघ विधवाओ, कुमारियो और परित्यक्ताओ का आश्रय-स्थल था। यद्यपि जैन आगम साहित्य एव व्याख्या साहित्य दोनो मे हमे ऐसे उल्लेख मिलते है जहाँ पति और पुत्रो के जीवित रहते हुए भी पत्नी या माता भिक्षुणी वन जाती थी। ज्ञाताधर्मकथा मे द्रौपदी पति और पुत्रो की सम्मति से दीक्षित हुई थी किन्तु इनके अलावा ऐसे उदाहरणो की भी विपुलता देखी जाती है जहाँ पत्नियाँ पति के साथ अथवा पति एव पुत्रो की मृत्यु के उपरान्त विरक्त होकर सन्यास ग्रहण कर लेती थी। कुछ ऐसे उल्लेख भी मिले है जहाँ स्त्री आजीवन ब्रह्मचर्य को धारण करके या तो पितृगृह मे ही रह जाती थी अथवा दीक्षित हो जाती थी। जैन परम्परा मे भिक्षुणी सस्था एक ऐसा आधार रही है जिसने हमेशा नारी को सकट से उवारकर आश्रय दिया है।

जैन भिक्षुणी सघ, उन सभी स्त्रियो के लिये जो विधवा, परित्यक्ता अथवा आश्रयहीन होती थी, शरणदाता होता था। अत जैन धर्म मे सती प्रथा को कोई प्रश्रय नही मिला। जव-जव भी नारी पर

---

१ (अ) निशीथचूर्णि, भाग २, पृ० ५९-६०।
(व) तेसिं पच महिलसताइ, ताणि वि अग्गिं पावट्ठाणि। —निशीथचूर्णि, भाग ४, पृ० १४।

२ महानिशीथ पृ० २९। देखे, जैनागम साहित्य मे भारतीय समाज, पृ० २७१।

३ आवश्यकचूर्णि, भाग १, पृ० ३१८।

कोई अत्याचार किये गये, जैन भिक्षुणी संघ उनके लिए रक्षाकवच बना क्योंकि भिक्षुणी संघ में प्रवेश करने के बाद न केवल वह पारिवारिक उत्पीडन से बच सकती थी अपितु एक सम्मानपूर्ण जीवन भी जी सकती थी। आज भी विधवाओं, परित्यक्ताओं, पिता के पास दहेज के अभाव के कारण अथवा कुरूपता आदि किन्हीं कारणों से अविवाहित रहने के लिये विवश कुमारियों के लिये जैन भिक्षुणी संघ आश्रय-स्थल है। जैन भिक्षुणी संघ ने नारी की गरिमा और उसके सतीत्व दोनों की रक्षा की। यही कारण था कि सती प्रथा जैसी कुत्सित प्रथा जैन धर्म में कभी भी नहीं रही।

महानिशीथ में एक स्त्री का सती होने का मानस बनाने पर भी अपनी कुल परम्परा में सती प्रथा का प्रचलन नहीं होने के कारण अपने निर्णय को बदलता हुआ देखते हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि जैनाचार्यों की दृष्टि सतीप्रथा विरोधी थी। जैन परम्परा में ब्राह्मी, सुन्दरी और चन्दना आदि को सती कहा गया है और तीर्थंकरों के नाम-स्मरण के साथ साथ आज भी १६ सतियों का नाम स्मरण किया जाता है, किन्तु इन्हें सती इसलिये कहा गया कि ये अपने शील की रक्षा हेतु या तो अविवाहित रहीं या पति की मृत्यु के पश्चात् इन्होंने अपने चरित्र एवं शील को सुरक्षित रखा। आज जैन साध्वियों के लिये एक बहुप्रचलित नाम महासती है उसका आधार शील का पालन ही है। जैन परम्परा में आगमिक व्याख्याओं और पौराणिक रचनाओं के पश्चात् जो प्रबन्ध साहित्य लिखा गया, उसमें सर्वप्रथम सती प्रथा का ही जैनीकरण किया हुआ एक रूप हमें देखने को मिलता है। तेजपाल—वस्तुपाल प्रबन्ध में बताया गया है कि तेजपाल और वस्तुपाल की मृत्यु के पश्चात् उनकी पत्नियों ने अनशन करके अपने प्राण त्याग दिये।[1] यहाँ पति की मृत्यु के पश्चात् शरीर त्यागने का उपक्रम तो है किन्तु उसका स्वरूप सौम्य बना लिया गया है। वस्तुतः यह उस युग में प्रचलित सती प्रथा की जैनधर्म में क्या प्रतिक्रिया हुई थी, उसका सूचक है।

गणिकाओं की स्थिति

गणिकायें और वेश्यायें भारतीय समाज का आवश्यक घटक रही हैं। उन्हें अपरिगृहीता माना जाये या परिगृहीता, इसे लेकर जैन आचार्यों में विवाद रहा है। क्योंकि आगमिक काल से उपासक के लिये हम अपरिगृहीता गमन का निषेध देखते हैं। भ० महावीर के पूर्व पार्श्वापत्य परम्परा के शिथिलाचारी श्रमण यहां तक कहने लगे थे कि बिना विवाह किये अर्थात् परिगृहीत किये यदि कोई स्त्री कामवासना की आकांक्षा करती है तो उसके साथ सम्भोग करने में कोई पाप नहीं है। ज्ञातव्य है कि पार्श्व की परम्परा में ब्रह्मचर्य व्रत अपरिग्रह के अधीन माना गया था क्योंकि उस युग में नारी को भी सम्पत्ति माना जाता था, चूँकि ऐसी स्थिति में अपरिग्रह के व्रत का भंग नहीं था इसलिये शिथिलाचारी श्रमण उसका विरोध कर रहे थे। यही कारण था कि भ० महावीर ने ब्रह्मचर्य को जोड़ा था।

चूँकि वेश्या या गणिका परस्त्री नहीं थी, अतः परस्त्री निषेध के साथ स्वपत्नी सन्तोषव्रत को जोड़ा गया और उसके अतिचारों में अपरिगृहीतागमन को भी सम्मिलित किया गया और कहा गया कि गृहस्थ उपासक को अपरिगृहीत (अपने से अविवाहित) स्त्री से सम्भोग नहीं करना चाहिये। पुनः जब

---

१ मन्त्रिण्यौ ललितादेवी सौख्वौ अनशनतः मन्त्रतु। —प्रबन्धकोश, पृष्ठ १२६

२ एवमेगे उ पासत्था, पन्नवंति अणारिया।
इत्थीवसगया बाला, जिणसासणपरम्मुहा॥
जहा गंड पिलागं वा, परिपीलेज्ज मुहुत्तगं।
एवं विन्नवणित्थीसु, दोसो तत्थ कओ सिया॥ —सूत्रकृतांग, १/३/४/९ १०

यह माना गया कि परिग्रहण के बिना सम्भोग सम्भव नहीं, साथ ही इस हेतु कुछ समय के लिये गृहीत अत वेश्या भी परिगृहीत की कोटि में आ जाती है, परिणामस्वरूप [illegible] के लिए गृहीत स्त्री (इत्वरिका)[1] के साथ भी सम्भोग का निषेध किया गया और प्रत्येक उपासक के लिए [illegible] हेतु गृहीत अर्थात् विवाहित स्त्री के अतिरिक्त सभी प्रकार के यौन सम्बन्ध निषिद्ध माने गये।

यद्यपि आगमों एवं आगमिक व्याख्याओं में प्राप्त सूचनाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अन्य सभी लोगों के साथ जैनधर्म के प्रति आस्थावान् सामान्यजन भी किसी न किसी रूप में गणिकाओं से सम्बद्ध रहा। कृष्ण वासुदेव की द्वारिका नगरी में अनंगसेना प्रमुख अनेक गणिकाएँ भी थी।[2] स्वयं ऋषभदेव के नीलांजना का नृत्य देखते समय उनकी सभा में उपस्थित होने की कथा दिगम्बर परम्परा में सुविश्रुत है।[3] कुछ विद्वान् मथुरा के [illegible] को भी स्वीकार करते हैं। ज्ञाता आदि में देवदत्ता आदि गणिकाओं की समाज में सम्मानपूर्ण स्थिति की सूचना मिलती है।[4] समाज के सम्पन्न परिवारों के लोगों के वेश्याओं से सम्बन्ध थे, इसकी सूचना आगम, आगमिक व्याख्या साहित्य और जैन पौराणिक साहित्य में विपुल मात्रा में उपलब्ध है। [illegible] सुविश्रुत है, किन्तु इन सब उल्लेखों से यह मान लेना कि [illegible] या जैनाचार्य इसके प्रति उदासीन भाव रखते थे सबसे बड़ी भ्रान्ति होगी। हम पूर्व में कह चुके हैं कि जैनाचार्य इस सम्बन्ध में सजग थे और किसी भी स्थिति में इसे औचित्यपूर्ण नहीं मानते थे। [illegible] में तो जैनधर्म का अनुयायी बनने की प्रथम शर्त यही थी कि व्यक्ति सप्त दुर्व्यसन का त्याग करे। इसमें परस्त्रीगमन और वेश्यागमन दोनों निषिद्ध माने गये थे।[5] उपासकदशा में "असतीजन पोषण" श्रावक के लिये निषिद्ध था।[6]

आगमिक व्याख्याओं में प्राप्त उल्लेखों से ज्ञात होता है कि अनेक वेश्याओं और गणिकाओं की अपनी नैतिक मर्यादाएँ थी, वे उनका कभी उल्लंघन नहीं करती थी। [illegible] और स्थूलिभद्र के आख्यान इसके प्रमाण है।[6] ऐसी वेश्याओं और गणिकाओं के प्रति जैनाचार्य अनुदार नहीं थे, उनके लिये धर्मसंघ में प्रवेश के द्वार खुले थे, वे श्राविकाएँ बन जाती थी। कोशा ऐसी वेश्या थी, जिसकी शाला में जैन मुनियों को निःसकोच भाव से चातुर्मास व्यतीत करने की अनुज्ञा आचार्य दे देते थे। मथुरा के अभिलेख इस बात के साक्षी है कि गणिकाएँ जिनमन्दिर और आयागपट्ट (पूजापट्ट) बनवाती थी।[8] यह जैनाचार्यों का उदार दृष्टिकोण था, जो इस पतित वर्ग का उद्धार कर उसे प्रतिष्ठा प्रदान करता था।

नारी-शिक्षा

नारी-शिक्षा के सम्बन्ध में जैन आगमों और आगमिक व्याख्याओं में हमें जो सूचना मिलती है,

---

१. उपासकदशा १, ८८।

२. अणगसेणा पामोक्खाणं अणेगाण गणियासाहस्सीण''' ''''। —आवश्यकचूर्णि भाग १, पृ० ३५६

३. आदिपुराण, पृ० १२५, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, १९१९।

४ अड्ढा जाव''' ''सामित्त भट्टित्त महत्तरगत आणा ईसर सेणावच्च कारेमाणी''''''।

५ देखें, जैन, बौद्ध और गीता का आचार दर्शन, भाग २, डा० सागरमल जैन, पृ० २६८।

६ '''' असईजणपोसणया। —उपासकदशा १/५१

७. साविका जाया अवमस्स पच्चक्खाइ णण्णत्थ रायाभियोगेण। —आवश्यकचूर्णि, भाग १, पृ० ५५४-५५

८. जैनशिलालेख संग्रह।

उसके आधार पर कहा जा सकता है कि प्रागैतिहासिक काल मे नारी को समुचित शिक्षा प्रदान की जाती थी। अपेक्षाकृत परवर्ती आगम जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, आवश्यकचूर्णि व आदिपुराण आदि मे उल्लेख है कि ऋषभदेव ने अपनी पुत्रियां ब्राह्मी और सुन्दरी को गणित और लिपि विज्ञान की शिक्षा दी थी। मात्र यही नही ज्ञाताधर्मकथा और जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति मे स्त्री की चौंसठ कलाओ का उल्लेख मिलता है यद्यपि यहा इनके नाम नही दिये गये हैं। सर्वप्रथम जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति की टीका मे इनका विवरण उपलब्ध होता है।[1] आश्चर्यजनक यह है कि जहा ज्ञाताधर्मकथा मे पुरुष की ७२ कलाओ का वर्णन है वहाँ नारी की चौंसठ कला होने का निर्देशमात्र है। फिर भी इतना निश्चित है कि भारतीय समाज मे यह अवधारणा बन चुकी थी। ज्ञाताधर्मकथा मे देवदत्ता गणिका को चौसठ कलाओ मे पण्डित, चौसठ गणिका गुण (कामकला) मे उपपेत, उनतीस प्रकार से रमण करने मे प्रवीण, इक्कीस रतिगुणो मे प्रधान, बत्तीस पुरुषोपचार मे कुशल, नवाङ्गसुप्त प्रतिबोधित और अठारह देशी भाषाओ मे विशारद कहा है।[2] इन सूचियो को देखकर स्पष्ट रूप से ऐसा लगता है कि स्त्रियो को उनकी प्रकृति और दायित्व के अनुसार भाषा, गणित, लेखनकला आदि के साथ साथ स्त्रियोचित नृत्य सगीत और ललितकलाओ तथा पाक शास्त्र आदि मे शिक्षित किया जाता था।

यद्यपि आगम और आगमिक व्याख्याएँ इस सम्बन्ध मे स्पष्ट नही हैं कि ये शिक्षा उन्हे घर पर ही दी जाती थी अथवा वे गुरुकुल मे जाकर इनका अध्ययन करती थी। स्त्री-गुरुकुल के सन्दर्भ के अभाव से ऐसा प्रतीत होता है कि उनकी शिक्षा की व्यवस्था घर पर ही की जाती थी। सम्भवत परिवार की प्रौढ महिलाएँ ही उनकी शिक्षा की व्यवस्था करती थी किन्तु सम्पन्न परिवारो मे इस हेतु विभिन्न देशो की दासियो एव गणिकाओ की भी नियुक्ति की जाती थी, जो उन्हे इन कलाओ मे पारगत बनाती थी। आगमिक व्याख्याओ मे हमे कोई भी ऐसा सन्दर्भ उपलब्ध नही हुआ जो सहशिक्षा का निर्देश करता हो। नारी की गृहस्थ जीवन सम्बन्धी इन शिक्षाओ के प्राप्त करने के अधिकार मे प्रागतिहासिक काल मे लेकर आगमिक व्याख्याओ के काल तक कोई विशेष परिवर्तन हुआ हो ऐसा भी हमे ज्ञात नही होता मात्र विषयवस्तु मे क्रमिक विकास हुआ होगा। यद्यपि लौकिक शिक्षा मे स्त्री और पुरुष की प्रकृति एव कार्य आधार पर अन्तर किया गया था किन्तु इसका यह अर्थ नही है कि स्त्री और पुरुष मे कोई भेद-भाव किया जाता था।

जहा तक धार्मिक आध्यात्मिक शिक्षा का प्रश्न है वह उन्हे भिक्षुणियो के द्वारा प्रदान की जाती थी। सूत्रकृताग से ज्ञात होता है कि जैन-परम्परा मे भिक्षु को स्त्रियो को शिक्षा देने का अधिकार नही था।[3] वह केवल स्त्रियो और पुरुषो की सयुक्त सभा मे उपदेश दे सकता था। सामान्यतया भिक्षुणियो और गृहस्थ उपासिकाओ दोनो को ही स्थविरा भिक्षुणियो के द्वारा ही शिक्षा दी जाती थी। यद्यपि आगमो एव आगमिक व्याख्याओ मे हमे कुछ सूचनायें उपलब्ध होती हैं जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि आचार्य और उपाध्याय भी कभी-कभी उन्हे शिक्षा प्रदान करते थे। व्यवहारसूत्र मे उल्लेख है कि तीन वर्ष की पर्याय वाला निर्ग्रन्थ, तीस वर्ष की पर्याय वाली भिक्षुणी का उपाध्याय तथा पाँच वर्ष का पर्याय वाला निर्ग्रन्थ साठ वर्ष की पर्याय वाली श्रमणी का आचार्य हो सकता था।[4] जहाँ

---

१ जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति शान्तिसूरीय वृत्ति अधिकार २, ३०। २ ज्ञाताधर्मकथा ८/६।

३ तम्हा उ वज्जए इत्थी आघात ण सवि णिग्गथ। —सूत्रकृताग १, ४, १, ११

४ कप्पइ निग्गथीण तिवासपरियाए समणे निग्गथे उवज्झायत्ताए उद्दिसित्तए।

(तथा) पचवासपरियाए समणे निग्गथे, सट्ठिवास परियाए समणीए निग्गंथीए कप्पइ आयरिय उवज्झायत्ताए उद्दिसित्तए। —व्यवहारसूत्र ७, १५ व २०

तक स्त्रियो के द्वारा धर्मग्रन्थो के अध्ययन का प्रश्न है प्रागैतिहासिककाल मे इस प्रकार का कोई बन्धन रहा हो हमे ज्ञात नही होता। अन्तकृद्दशा आदि आगम ग्रन्थो मे ऐसे अनेक उल्लेख मिलते है जहाँ भिक्षुणियो के द्वारा सामायिक आदि ११ अगो का अध्ययन किया जाता था। यद्यपि आगमो मे न कही ऐसा कोई स्पष्ट उल्लेख है कि स्त्री दृष्टिवाद का अध्ययन नही कर सकती थी और न ही ऐसा कोई विधायक सन्दर्भ उपलब्ध होता है जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि स्त्री दृष्टिवाद का अध्ययन करती थी। किन्तु आगमिक व्याख्याओ मे स्पष्ट रूप से दृष्टिवाद का अध्ययन स्त्रियो के लिए निषिद्ध मान लिया गया। भिक्षुणियो के लिए दृष्टिवाद का निषेध करते हुए कहा गया कि स्वभाव की चचलता, बुद्धि प्रकर्ष मे कमी के कारण उसके लिए दृष्टिवाद का अध्ययन निषिद्ध बताया गया। जब एक ओर यह मान लिया गया कि स्त्री को सर्वोच्च केवलज्ञान की प्राप्ति हो सकती है तो यह कहना गलत होगा कि उनमे बुद्धि प्रकर्ष की कमी है। मुझे ऐसा लगता है जब हिन्दू परम्परा मे उस नारी को, जो वैदिक ऋचाओ की निर्मात्री थी वेदो के अध्ययन से वचित कर दिया गया तो उसी के प्रभाव मे आकर नारी को जो तीर्थंकर के रूप मे अग और मूल साहित्य का मूलस्रोत थी, दृष्टिवाद के अध्ययन मे वचित कर दिया गया। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि दृष्टिवाद का मुख्य विषय मूलत दार्शनिक और तार्किक था और ऐसे जटिल विषय के अध्ययन को उनके लिए उपयुक्त न समझकर उनका अध्ययन-निषेध कर दिया गया हो। बृहत्कल्पभाष्य और व्यवहारभाष्य की पीठिका मे उनके लिए महापरिज्ञा, अरुणोपपात और दृष्टि-वाद के अध्ययन का निषेध किया गया है। किन्तु आगे चलकर निशीथ आदि अपराध और प्रायश्चित्त सम्बन्धी ग्रन्थो के अध्ययन से भी उसे वचित कर दिया गया। यद्यपि निशीथ आदि के अध्ययन के निषेध करने का मूल कारण यह था कि अपराधो की जानकारी से या तो वह अपराधो की ओर प्रवृत्त हो सकती थी या तो दण्ड देने का अधिकार पुरुष अपने पास सुरक्षित रखना चाहता था। किन्तु निषेध का यह क्रम आगे बढता ही गया। बारहवी-तेरहवी शती के पश्चात् एक युग ऐसा भी आया जब उससे आगमो के अध्ययन का मात्र अधिकार ही नही छीना गया अपितु उपदेश देने का अधिकार भी समाप्त कर दिया गया। आज भी श्वेताम्बर मूर्ति-पूजक परम्परा के तपागच्छ मे भिक्षुणियो को इस अधिकार से वचित ही रखा गया है। यद्यपि पुनर्जागृति के प्रभाव से आज अधिकाश जैन सम्प्रदायो मे साध्वियाँ आगमो के अध्ययन और प्रवचन का कार्य कर रही है।

निष्कर्ष के रूप मे हम यह कह सकते है कि प्रागैतिहासिक काल और आगम युग की अपेक्षा आगमिक व्याख्या युग मे किसी सीमा तक नारी के शिक्षा के अधिकार को सीमित किया गया था। तुलनात्मक दृष्टि से यहाँ यह भी द्रष्टव्य है कि नारी-शिक्षा के प्रश्न पर वैदिक और जैन परम्परा मे किस प्रकार समानान्तर परिवर्तन होता गया। आगमिक व्याख्या साहित्य के युग मे न केवल शिक्षा के क्षेत्र में अपितु धर्मसघ मे और सामाजिक जीवन मे भी स्त्री की गरिमा और अधिकार सीमित होते गये। इसका मुख्य कारण तो अपनी सहगामी हिन्दू परम्परा का प्रभाव ही था किन्तु इसके साथ ही अचेलता के अति आग्रह ने भी एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। यद्यपि श्वेताम्बर परम्परा अपेक्षाकृत उदार रही, किन्तु समय के प्रभाव से वह भी नही बच सकी और उसमे भी शिक्षा, समाज और धर्मसाधना के क्षेत्र मे आगम युग की अपेक्षा व्याख्या युग मे नारी के अधिकार सीमित किये गये।

तो स्त्री क्या समझे, राजनीति को स्त्री क्या समझे, यह कहकर पुरुष ने उसको घर की चहार-दीवारी तक सीमित कर दिया। पति अपनी आय व सम्पत्ति भी पत्नी को नही वताता, यह कहकर कि उसके पेट में वात पचेगी नही। गृह, समाज, व्यापार आदि मे स्त्रियो का परामर्श हास्यास्पद वना दिया गया। समाज मे यह मान्यता वन गई, स्त्रियो के परामर्श पर चलने वाला परिवार, समाज या राज्य नष्ट ही हो जायेगा। पुरुष ने नही सोचा, नारी इतनी अयोग्य या अक्षम क्यो है तथा वह योग्य सक्षम कैसे वन सकती है ? ऐसा होना प्रकृतिगत मानकर वह उससे वैसे ही वर्तता रहा। परिणाम हुआ, नारी अक्षम वनती गई और उसी आधार पर पुरुष उसकी अधिकाधिक उपेक्षा करता गया। उपेक्षा से अक्षमता की एक शृखला वन गई। उपेक्षा से अक्षमता और अक्षमता से उपेक्षा इस चक्र-व्यूह मे नारी शताब्दियो और सहस्राब्दियो तक फँसी रही।

आध्यात्मिक क्षेत्र मे भी हेयता

इस प्रकार नारी सामाजिक जीवन मे तो उपेक्षित थी ही, आध्यात्मिक जगत् मे भी वह हेय वताई जाती रही। ऋषियो ने, महर्षियो ने, सन्तो ने, साधको ने पुरुष के पतन का हेतु स्त्रियो को ही वनाया। उसे कूट-कपट की खान कहा, पुरुष को नरक-कुण्ड मे डाल देने वाली कहा। और न जाने क्या-क्या कहा ? वस्तुस्थिति यह थी कि विकार—हेतु पुरुष के लिए स्त्री थी और स्त्री के लिए पुरुष था। पता नही, स्त्री ने ही पुरुष को कैसे डुवोया ? अधिक यथार्थ तो यह रहा कि पुरुष ही नारी को पथ-भ्रष्ट करने मे अगुआ रहे है। पुरुप स्त्रियो को वलात् उठाकर ले भागे, ये उदाहरण तो इतिहास के पृष्ठो पर व धर्म-ग्रन्थो मे अनगिनत मिलेगे, पर स्त्री पुरुषो पर वलात्कार करती प्राय न देखी गई है, न सुनी गई है।

ऋषि-महर्षि और साधु-मुनि विरक्त वृत्ति मे थे। अन्य पुरुषो को भी वे विरक्त देखना चाहते थे। उनकी निरकुश काम-वृत्ति को सीमित करने के लिये उन्होने स्त्री की गर्हा की, पर, समाज ने यही समझा, ज्ञानी पुरुषो ने कहा है अत स्त्री ही ऐसी है, पुरुप ऐसा नही।

अध्यात्म की अन्य अनेक दिशाओ मे भी नारी तर्जित ही रही। नारी होना भी पाप माना गया। किसी ने कहा – यह मोक्ष की अधिकारिणी नही है। किसी ने कहा—यह सन्यास और दीक्षा की अधिकारिणी नही है। अध्यात्म मे और शिक्षा मे स्त्री के पिछडेपन का कितना सबल उदाहरण है कि वैदिक, वौद्ध, जैन परम्परा के असीम वाङ्मय में एक भी ऐसा आधारभूत ग्रन्थ नही है, जो किसी विदुषी साधिका के द्वारा लिखा गया हो।

भारती का, या ऐसे कुछ एक अन्य नाम लेकर समस्त नारी समाज को शिक्षा के क्षेत्र मे समुन्नत वताया जाता है। शताब्दियो और सहस्राब्दियो के इतिहास मे दो-चार नामो का मिल जाना नारी समाज की शिक्षित दशा का मान-दण्ड नही वन जाता। उन नामो का उपयोग तो केवल इसी सन्दर्भ में सगत हो सकता है कि अविद्या के उस युग मे भी नारी ऐसी हो सकती है, तो आज के विद्या-वहुल-युग मे वह अशिक्षित व अपढ रहे, यह लज्जा की वात है।

बुद्ध व महावीर के युग मे

नारी युग-युग के अकन मे इतनी पिछडती गई कि उसे पर्याप्त रूप से उठा लेना किसी एक ही युग-पुरुष के वश की वात नही रही। नारी के प्रति अनेक कुण्ठित लोक-धारणाएँ प्रचलित हो गई थी। किसी भी क्षेत्र मे उसे आगे लाने मे सामाजिक विरोध से लोहा लेना पडता था। बुद्ध के सामने प्रश्न था, सघ मे पुरुषों की तरह स्त्रियो को भी दीक्षित किया जाये। बुद्ध इस पक्ष मे नही थे। स्त्रियो को

भिक्षु-संघ में लेना उन्हें सामाजिक दृष्टि से व संघीय दृष्टि में उचित नहीं लगता था। बुद्ध की मौसी मां प्रजापति गौतमी ने आग्रह किया। वह अनेक शाक्य स्त्रियों के साथ भिक्षुणी का वेश धारण कर बुद्ध के सम्मुख आ गई। निडरतापूर्वक उसने बुद्ध से कहा—"यह आपका कैसा धर्म-संघ है जिसमें स्त्रियों को आत्म-साधना का अधिकार नहीं है।' बुद्ध के अग्रणी शिष्य आनन्द ने भी गौतमी की दीक्षा का आग्रह किया। बुद्ध ने कहा—"यह कैसा लगेगा की शाक्य कुल की स्त्रियां विभिन्न कुलों में भिक्षार्थ भ्रमण करेंगी ?"

आनन्द—'भन्ते! जिस गौतमी ने मातृ-अभाव में आपका लालन पालन किया, उसे आप संघ में प्रविष्ट होने की अनुज्ञा न दें, यह भी तो कैसा लगेगा ?"

बुद्ध—"आवुस आनन्द! मैं तुम्हारे आग्रह पर गौमती को उपसम्पदा (दीक्षा) की अनुज्ञा देता हूँ, पर साथ साथ यह भी घोषणा करता हूँ कि मेरा धर्म-संघ मेरे पश्चात् जितने समय तक चलता अब उससे आधे समय तक चलेगा। क्योंकि संघ में स्त्रियों का प्रवेश हो गया है।'

इस घटना प्रसंग से पता चलता है, नारी विषयक हीन भावनाएँ पुरुष के मस्तिष्क में कहां तक घर किये हुए थी? युगपुरुष भी उसके अपवाद नहीं थे। बुद्ध ने इसी प्रसंग में इतना और जोड़ा नव-दीक्षित भिक्षु चिरदीक्षित भिक्षु को नमस्कार करता है, पर, जो भिक्षुणी चिरदीक्षिता होगी वह भी नवदीक्षित भिक्षु को ही नमस्कार करेगी। गौतमी ने दीक्षा प्रसंग पर तो मूक भाव से बुद्ध की उस आज्ञा को शिरोधार्य किया, पर कुछ ही दिनों पश्चात् प्रश्न उठाया—"भन्ते! ऐसा क्यों कि चिरदीक्षिता भिक्षुणी नवदीक्षित भिक्षु को नमस्कार करे? नवदीक्षित भिक्षु यदि चिरदीक्षिता भिक्षुणी को नमस्कार करे तो क्या हानि है ?"

"गौतमी! इतर धर्म-संघों में भी ऐसा नहीं होता कि पुरुष स्त्री को अर्थात् भिक्षु-भिक्षुणी को नमस्कार करें। अपना धर्म-संघ तो उन सबसे श्रेष्ठ है इसमें तो ऐसा हो ही कैसे सकता है ?"

गौतमी का यह प्रश्न अब तक ढाई हजार वर्षों के बाद भी निरुत्तर खड़ा है। स्त्री पुरुष की श्रेष्ठता को चुनौती नहीं दे सकी, न पुरुष ने ही इस विषय में अपना औचित्य बदला। बौद्ध और जैन दोनों धर्म-संघों में अब तक यही परम्परा चल रही है।

जैन परम्परा में सदा से ही स्त्री और पुरुष दोनों समान रूप से दीक्षित होते रहे हैं। महावीर के सामने प्रश्न आया—क्या भिक्षु की तरह भिक्षुणी भी आचार्य व गुरुतर पद पर आरूढ़ हो सकती है? समाधान रहा, संघ में एक भी भिक्षु इस योग्य हो, तब तक भिक्षु ही आचार्य बनेगा, भिक्षुणी नहीं। योग्य भिक्षु के अभाव में भी वही भिक्षुणी आचार्य पद पर आरूढ़ हो सकती है, जिसकी दीक्षा-पर्याय कम से कम साठ वर्ष की हो चली हो जबकि भिक्षु तरुण भी आचार्य पद पर आसीन हो सकता है। प्रस्तुत विधान भी यही बात व्यक्त करता है—श्रेष्ठता से, योग्यता से क्षमता से नारी को बहुत न्यून समझा जाता रहा है। पर, कहा जा सकता है महावीर और बुद्ध के युग में नारी जहां थी वहां से बहुत कुछ आगे बढ़ी है।

बुद्ध की पत्नी यशोदा अवगुंठन नहीं रखती थी। राजकुल की वृद्ध महिलाएँ उसे ऐसा करने के लिये विवश करती, तो वह कहती—ऐसा क्या आवश्यक है, मेरी समझ में नहीं आता अतः अवगुंठन नहीं करूंगी। गौतमी और यशोदा सम्भवतः इतिहास की प्रथम महिलाएँ होंगी जिन्होंने नारी जाति के पक्ष में प्रश्न खड़े किये।

लगता है, नारी के प्रति रहा हीनता और उपेक्षा का भाव गोस्वामी तुलसीदासजी के समय तक तो बना ही रहा। उन्होंने स्वयं जो नारी को तर्जना के योग्य कहा, उसमें उस युग तक की सामाजिक धारणाएँ ही प्रतिबिम्बित होती हैं। तुलसीदासजी के पश्चात् भी बहुत समय तक भारतीय संस्कारों में वही धारणाएँ पनपती रहीं। लोक-धारणाएँ थी—एक घर में दो रत्न नहीं चलते अर्थात् पत्नी का पढ़ना पति के लिये शुभ नहीं है। स्त्री के मानस में इतना भय भर दिया जाये, तो उसके पढ़ने का प्रश्न ही समाप्त हो जाता है। बिना शिक्षा के अन्य विकास स्वयं कुण्ठित रह ही जाते हैं।

नये युग में कारायें टूटीं

नया युग आया। विज्ञान ने उक्त प्रकार के अन्धविश्वासों को रौंदो दूर धकेल दिया। सामाजिक व राजनैतिक क्षेत्र में ज्यों ही समानता और व्यक्ति-स्वातन्त्र्य के विचार उभरे, नारी की बहुत सारी काराएँ एक साथ टूटीं। शिक्षा, साहित्य, राजनीति और सार्वजनिक क्षेत्रों के द्वार प्रथम बार नारी के लिये खुले। युग-युग से सामाजिक घुटन में रही नारी मुक्त गगन का वातावरण मिलते ही अप्रत्याशित रूप से आगे बढ़ गई। अब वह प्रधानमन्त्री के पद पर भी देखी जाती है और अन्य शीर्षस्थ पदों पर भी। सार्वजनिक क्षेत्र में भी वह पुरुष से पीछे नहीं है, उसने चन्द दिनों में यह प्रमाणित कर दिया कि अक्षमता और अयोग्यता परिस्थितिजन्य थी, न कि नैसर्गिक।

स्वाधीनता के लिये नारी ने कोई विप्लव नहीं किया था। युग की करवट के साथ पुरुष का चिन्तन ही उदार और विकसित हुआ। उसने ही सोचा, समाज का एक अंग इस प्रकार प्रताड़ना से पीड़ित रहे, यह किसी भी स्थिति में श्रेयस्कर नहीं है। वह नारी के साथ न्याय भी नहीं है। पुरुष की युगीन चेतना ने श्रमिकों को अवसर दिया, किसान को अवसर दिया, अछूत को अवसर दिया, इसी प्रकार नारी को भी अपने पैरों पर खड़ा होने का एवं अपनी सुषुप्त शक्तियों को विकसित करने का भी अवसर दिया है।

हेय और उपादेय का मापदण्ड

वर्तमान युग ने भारतीय नारी को संक्रान्ति रेखा पर खड़ा कर दिया है, एक ओर उसके सामने सीता, सावित्री, आदि के शील व सेवा के आदर्श हैं, एक ओर उसके सामने अपने समानाधिकार के उपयोग का प्रश्न है। दूसरे शब्दों में एक ओर संस्कृति का प्रश्न है तथा एक ओर आधुनिक प्रगति का प्रश्न है। वर्तमान में संस्कृति विकृति मिश्रित हो रही है। उसके नाम पर नाना अन्धविश्वास, नाना रूढ़ियाँ चल रही हैं। नारी को अपनी हंस मनीषा से संस्कृति और विकृति का पृथक्करण करना होगा। प्रगति भी आज अन्धानुकरण से पीडित है। उसे भी अपनी स्वस्थ दशा में लाना होगा। इस प्रकार प्राचीन व अर्वाचीन की समन्वित रूप-रेखा पर भारतीय नारी का नया दर्शन खड़ा होगा।

भारतीय नारी को अपनी बद्धमूल धारणा का विसर्जन कर देना होगा कि प्राचीन है, वही श्रेष्ठ है। जो पूर्वपुरुषों ने कहा है, वही श्रेष्ठ है। प्राचीन में भी श्रेष्ठ-अश्रेष्ठ दोनों रहे हैं। राम था, उसी युग में रावण था। सीता थी उसी युग में शूर्पणखा थी। कृष्ण था, उसी युग में कंस और युधिष्ठिर था, उसी युग में दुर्योधन था। पूर्वपुरुषों ने जो कहा, अपनी समझ से अपने देश काल में कहा। आज नारी को अपनी समझ से अपने देश-काल में सोचना है। बुद्ध ने अपने शिष्यों से कहा—"भिक्षुओ! तुम इसलिए किसी बात को स्वीकार न करो, कि वह तथागत (बुद्ध) की कही हुई है। तुम वही बात स्वीकार करो, जिसके लिए तुम्हारा विवेक तुम्हें प्रेरित करता है।" अस्तु हेय या उपादेय का मानदण्ड नवीनता या प्राचीनता नहीं, मनुष्य का प्रबुद्ध विवेक ही उसका अन्तिम मानदण्ड है। भारतीय नारी

पूव पुरुषा की बात को विनयपूवक स्वीकार करे, तो वह नवीन युग के स्रष्टाओ का भी आँख मूदकर अनुसरण न करे, भले ही वे डार्विन, मार्क्स या फ्रायड हो।

विभिन्न काय क्षेत्र

क्रमागत भारतीय समाज-व्यवस्था का स्वरूप रहा है—नारी घर को सम्भाले, भोजन पानी की व्यवस्था करे, बच्चो की सार सम्भाल करे। शेष सब पुरुष करें। इस व्यवस्था म स्त्री के पल्ले बहुत ही सीमित दायित्व रहता है। सीमित दायित्व म नारी का विकास भी सीमित ही रह जाता है। वतमान युग का मानदण्ड बन गया है, स्त्री पुरुष के सभी प्रकार के दायित्व म हाथ बटाएँ और उसे बल दे। शिक्षा साहित्य, राजनीति वाणिज्य और सावजनिक क्षेत्र म पुरुष जितना ही दायित्व वह अपना समझे। प्रश्न आता है इसम गृह-व्यवस्था भग हो जायेगी। पारिवारिक जीवन अस्त-व्यस्त हो जायेगा। यह प्रश्न यथाथ नही है। गृहकाय का सामजस्य बिठाकर भी महिला अन्य किसी भी क्षेत्र म सुगमता से काय कर सकती है। एक वकील अपनी वकालत भी चलाता है सावजनिक क्षेत्र व राजनीति म भी सुगमता से काय करता है। देखा जाता है, वह अपने दोनो क्षेत्रो म शीषस्थ स्थिति तक पहुँचता है। अन्य अनेक लोग बडे-बडे विभिन्न दायित्व एक साथ सभालते हैं। नारी के लिये ही ऐसा क्यो सोचा जाये कि वह अन्य क्षेत्रो म आइ, तो घर चौपट हो जायगा।

आर्थिक दायित्व

भारत म ऐसी परम्परा भी व्यापक रूप से रही है कि परिवार म एक कमाये और दस व्यक्ति बैठे-बैठे खायें। धनिको, उद्योगपतियो एव बडी नौकरीवालो के ऐसा निभता भी रहा है। युग समाजीकरण की ओर बढ रहा है। कानून और व्यवस्थाएँ निम्न वग के पक्ष म जा रही हैं। अधिक सग्रह विभिन्न प्रकार से रोके जा रहे ह। इस स्थिति म कुछ उद्योगपतियो को छोडकर कोटि-कोटि मध्यम वर्गीय लोगो के लिय तो यह असम्भव ही होता जा रहा है कि एक कमाये और परिवार के अन्य दस बैठे बठे खायें। अस्तु, नारी के लिय चिन्तनीय विषय इतना ही है कि किस प्रकार की आजीविका या व्यवसाय को अपनाय जिसस उसके गृह दायित्व एव आचरण पर कोई आच न आये।

कला और सामाजिक श्लाघ्यता

अभिनेता और अभिनेत्री, य दो शब्द समाज म बहुचर्चित हो चले हैं। युवक और युवतियाँ इस ओर कटिबद्ध हो रह हैं। माता पिता के चाहे-अनचाहे वे इस ओर बढ ही जा रहे है। भारत मे जब चलचित्रो का निर्माण शुरू हुआ तब निर्माताओ को अभिनय के लिये युवतियाँ सुगमता स मिलती ही नही थी। समाज म इस काय को अश्रेष्ठ माना जाता था अत लडकियो इस ओर आने का साहस ही नही करती। अब अभिनेत्रियो की बाढ-सी आ गई है। इस प्रकार के व्यवसाय देश म पहले भी किसी रूप म चलत थे। पर समाज मे वे उच्चता की भावना से नही देखे जात थ। अब इस पहलू को चारो ओर से उभार मिल रहा है। प्रशासन उन्ह सम्मानित करता है। समाज कुछ-कुछ ऊँची निगाहो म देखने लगा है। साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओ न भी उनके लिये स्वतन्त्र पृष्ठ खोल दिय हैं। व्यावसायिक लोगो के विज्ञापन का निरुपम प्रतीक अभिनेत्री ही बन गई है। अभिनेता और अभिनेत्रियो के साक्षात् मात्र के लिये लाखो लोग एकत्रित हो जाते हैं। समाज म सभी प्रकार के व्यवसाय चलत हैं। श्रेष्ठता की छाप इस पर जब लगाई जाय, तब यह अवश्य सोचना चाहिये, यह हमारी संस्कृति के अनुरूप है या नही। किसी युवती का किसी पुरुष के साथ सावजनिक रूप से अभिनय करना श्लाघ्य नही है। समाज म उसे प्रतिष्ठित करने का तात्पय है, समाज की युवतियाँ सामूहिक रूप से इस ओर प्रवृत्त हो। यह

सस्कृति के लिये एक बडा धक्का होता है। ऐसे व्यवसायो में कला का सम्बन्ध अवश्य है, पर उन कलाओ का समाज मे सीमित महत्व ही रहना चाहिए, जो जीवन को श्रेय की ओर प्रेरित करने वाली न हो। कलाकारो के लिये भी यह चिन्तन का विषय है, उनकी कला का समाज के लिये रचनात्मक उपयोग क्या हो ? मनोविनोद तक ही सीमित रहने वाली कलाएँ असामान्य नही होती।

सौन्दर्य प्रतियोगिता

सौन्दर्य प्रतियोगिता का ढर्रा भी देश मे वल पकड रहा है। प्रतिवर्ष एक भारतसुन्दरी व एक विश्वसुन्दरी सामने आती है। सौन्दर्य प्रतियोगिता एक पश्चिमी प्रवाह है। उसका सृजनात्मक पक्ष कोई है ही नही। फिर भी युवतियो के लिये यह एक गड्डुरी-प्रवाह वन रहा है। उसका कारण है पत्र-पत्रिकाओ के द्वारा इसको महत्व दिया जाना। भारतसुन्दरी या विश्वसुन्दरी चुने जाते ही एक अन-जाना व्यक्तित्व पत्र-पत्रिकाओ के मुखपृष्ठ पर आ जाता है। एक "नोवल प्राइज" पाने वाले को जितनी ख्याति नही मिलती उतनी एक विश्वसुन्दरी को मिल जाती है। कार्य उपयोगिता और निरुपयोगिता के अकन मे कोई अन्तर न हो, तो समझना चाहिये, समाज का वौद्धिक स्तर वहुत न्यून है। यही स्थिति सौन्दर्य प्रतियोगिता के सम्वन्ध मे समाज मे वन रही है।

सौन्दर्य प्रतियोगिता के निर्णायक पुरुष होते है, उनके निर्णय का प्रकार भारतीय सभ्यता से वहुत ही परे का होता है। 'भारतसुन्दरी' और 'विश्वसुन्दरी' ये नाम भी यथार्थ नही है। प्रतियोगिता मे भाग लेने वाली कुछ एक महिलाओ मे जो सर्वाधिक सुन्दर है, उसे भारत मे या विश्व मे सवसे सुन्दर ख्यात कर देना कैसे यथार्थ हो सकता है ? अस्तु, सौन्दर्य प्रतियोगिता का वढता हुआ प्रवाह पश्चिम के अन्धानुकरण का एक ज्वलन्त उदाहरण माना जा सकता है।

पर्दा-प्रथा

इसी प्रकार भारत में प्रचलित पर्दा-प्रथा सस्कृति के नाम पर होने वाली विकृति की उपासना का ज्वलन्त उदाहरण है। युग के पैने प्रहारो ने पर्दा-प्रथा की जडे खोखली कर दी है, फिर भी अन्ध-विश्वासो का यह जर्जर वृक्ष धडाम से गिर नही गया है। कहा जाता है, यह प्रथा यवन-युग की देन है। हो सकता है, यवन-युग मे इसने विशेष वल पकडा हो, पर इसके विरल पद-चिह्न तो वहुत प्राचीनकाल में भी देखे जाते है। महाकवि कालिदास ने अपने विख्यात नाटक 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' मे अयोध्या-नरेश दुष्यन्त की पत्नी व भरत की माता शकुन्तला के अवगुठित होने का वर्णन किया है। महाकवि माघ ने अपने 'शिशुपाल वध' काव्य मे श्रीकृष्ण की रानियो के अवगुठन वताया है। बुद्ध की पत्नी यशोदा ने जो घूघट न रखने का आग्रह लिया, उससे घूघट प्रथा की प्राचीनता ही सिद्ध होती है। प्रश्न प्राचीनता का नही, उपयोगिता का है। प्राचीनकाल मे वह चाहे सदा से ही क्यो न रही हो, आज हमे उसकी कोई उपयोगिता नही लग रही है, तो वह त्याज्य ही है। उसे भारतीय सस्कृति या भारतीय सभ्यता का अग मानकर पुष्ट करते रहना नितान्त हास्यास्पद ही है।

आकर्षक वेशभूषा

नारी समाज में सौन्दर्य प्रसाधनो का उपयोग पहले भी था, प्रकारान्तर से आज भी है। वहु-मूल्य और जगमगाते आभूषणो से, रग-रगीली साडियो से उसकी मजूषाएँ पहले भी भरी मिलती थी, आज भी भरी मिलती है। पहले स्त्रियो की तरह पुरुष भी चाकचिक्य के समीप था। वह भी रग-रगीले वस्त्रो व वहुमूल्य और विविध आभूषणो मे सजा रहता था। आधुनिक सभ्यता ने उसको वदल दिया।

आभूषण तो उसके शरीर से हट ही गये, वेशभूषा भी एक मान्य स्तर पर आने लगी है। आज बाजार जितना साड़िया पर चलता है, उतना धोती और पटा पर नही चलता। घर म भी देख, ता पुरुष और स्त्री के व्यक्तिगत व्यय और सग्रह म बहुत अतर मिलेगा। नारी को इस दिशा म पुरुष की तरह ही सुधार लान की अपेक्षा है। भारतीय सस्कृति के अनुसार नारी के लिय शील ही शृगार है, इस आदश को वह जीवन में चरिताथ क्यो नही करती ? स्त्री और पुरुष के बीच एक दूसरे का आकपण समान है, तो साज सज्जा का अनहोना भार केवल नारी ही अपन सिर क्या ले लनी है? उस भी अपनी वेष भूषा के स्तर को पुरुष की तरह सयत और सादा बनाना चाहिये।

आधुनिक वातावरण मे नारी पहले से भी अधिक कृत्रिम होती जा रही है। लिपिस्टिक, पाउडर, विचित्र केशविन्यास कृत्रिमता क सजीव उदाहरण हैं। अनावरण की मानो प्रतियोगिता चल पडी है। सभ्यता के नाम पर नग्नता बढ रही है। आवरण और अनावरण की जस कोई रखा ही नही रही है। एक सभ्य पुरुष धोती म या कुर्ते मे, कोट, बुशशर्ट और पट म आवृत रहता है। सिर पर भी कुछ लोग टोपी या पगडी रख लते हैं। स्त्रियो का आवरण मुख स गया, सिर से गया और अब पट व पीठ से भी जा रहा है।

यह निम्नता की प्रगति अश्लाघ्य है। नारी को स्वय प्रबुद्ध होकर अपनी वेश भूषा की सयत रेखाएँ स्थिर करनी चाहिये। उसके पक्ष म जनमत जागृत करना चाहिये ताकि सीमातीत अनावरण सामाजिक मान्यता न पा सक। अस्तु, कुल मिलाकर यही कहा जा सकता है, नारी प्रगति पाये पर सत्य, सयम और सदाचार की पृष्ठभूमि पर।

□□

नारी का मोह पाश

पासेण पजरेण य बज्झति चउपयाय पक्खीइ।
इय जुवइ पजरेण य बद्धा पुरिसा किलिस्सति॥

—इन्द्रिय पराजयशतक ५२

जैसे रस्सी से बँधे हुए चतुष्पाद—गाय, भैंस आदि एव पिंजरे में बन्द पक्षी क्लेश को पाते है उसी प्रकार स्त्री रूपी पिंजरे में फँसा हुआ व्यक्ति भी क्लेश को पाता है।

● ●

सज्जन वाणी —

१ धर्म हमे सदाचरण सिखाता है और दुराचरण पर अकुश लगाता है ?
२ धर्म का चिन्तन चरित्र और व्यवहार म उत्कृष्टता और नैतिकता लाता है।
३ शालीनता, कारुण्य भावना, साम्य भावना और आदशवादिता धार्मिक शिक्षा की ही देन हैं।
४ धर्म नीति की निष्ठा और मर्यादाओ मे रहना सिखाता है जिससे मानव जीवन सुखी बनता है।

जैन आगमों में वर्णित ध्यान-साधिकाएँ

—डॉ० शान्ता भानावत

[प्रिन्सीपल, श्री वीर बालिका महा-विद्यालय, जयपुर।

जैन धर्म एवं दर्शन की विदुषी लेखिका]

जैन आगमों में भगवान महावीर का तत्त्व-चिन्तन एवं उसे आत्मसात कर साधना पथ पर बढ़ने वाले श्रमण-श्रमणियों और श्रावक-श्राविकाओं का वर्णन है। ध्यान, मन को इन्द्रिय-विषयों से हटाकर आत्म-स्वरूप की ओर अभिमुख करना है। इससे बाहरी वृत्तियाँ अन्तर्मुखी बनती हैं। ध्यान आत्मिक ऊर्जा का स्रोत है। इससे आत्मा निर्मल, शक्तिसम्पन्न और शुद्ध बनती है। जीवन में पवित्रता, विचारों में विशुद्धि और व्यवहार में प्रेम, करुणा, मैत्री व विश्व-वत्सलता का भाव जागृत होता है। कर्म-निर्जरा में ध्यान सहायक होता है। यह आभ्यन्तर तप है। इससे कर्म अर्थात् पाप दग्ध होकर नष्ट हो जाते हैं। कर्मों के नष्ट होने से आत्मा की सुषुप्त शक्तियाँ जाग उठती हैं। आत्मा परमात्मा बन जाती है। आत्मा के इस चरम आध्यात्मिक विकास में जैन दर्शन में स्त्री और पुरुष में किसी प्रकार का भेद नहीं किया गया है।

मानव सृष्टि के मंगल रथ के दो चक्र हैं—पुरुष और नारी। रथ का एक चक्र दुर्बल अथवा क्षत-विक्षत रहने से जिस प्रकार रथ की गति में अवरोध पैदा हो जाता है, उसी प्रकार मानव सृष्टि का कोई एक चक्र उपेक्षित, दुर्बल व अशक्त रहने से उसकी गति भी लड़खड़ा जाती है। इसलिये भारतीय मनीषियों ने मानव सृष्टि के इन दोनों अंगों को समान महत्व दिया। उपादेयता एवं उपकारिता में कोई भी अंग किसी से कम नहीं है।

वेद, उपनिषद् एवं आगम ग्रन्थों के अनुशीलन से यह बात और स्पष्ट हो जाती है कि नारी भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता की आदि शक्ति रही है। मानव सभ्यता के विकास में ही नहीं किन्तु उसके निर्माण में भी नारी का योगदान पुरुष से कई गुना अधिक है। भारतीय नारी का समूचा इतिहास नारी के ज्वलन्त त्याग-प्रेम-निष्ठा-सेवा-तप और आत्मविश्वास के दिव्य आलोक से जगमगा रहा है। आत्मा की दृष्टि से श्रमण संस्कृति ने नारी और पुरुष में कोई तात्त्विक भेद नहीं माना। उसने पुरुषों की भाँति स्त्रियों को भी तमाम अधिकार दिये। आत्म-विकास की श्रेष्ठतम स्थिति मोक्ष है। मोक्ष के द्वार तक पुरुष भी पहुँचा है और नारी भी पहुँची है। श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार सर्वप्रथम मोक्ष जाने वाली (वर्तमान कालचक्र की अपेक्षा) स्त्री ही थी। वह थी भगवान ऋषभदेव की माता मरुदेवी। जिन्होंने हाथी पर बैठे-बैठे ही निर्मोह दशा में कैवल्य प्राप्त कर लिया।

जैन श्रुतिया इसका साक्ष्य हैं कि प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव से लेकर चरम तीथकर भगवान महावीर के शासन तक मे साधुओ की अपेक्षा साध्वियो तथा श्रावको की अपेक्षा श्राविकाओ की सख्या अधिक रही है। स्त्री स्वभावत ही धर्मप्रिय करुणाशील एव कष्टसहिष्णु होती है। धार्मिक साधना म उसकी रुचि तीव्र होती है। तपस्या एव कष्टसहिष्णुता म भी वह पुरुष से आगे रहती है। जैन शास्त्रों मे ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जिनम किसी तीर्थंकर या आचाय आदि की एक ही देशना मे हजारो स्त्रियाँ एक साथ प्रबुद्ध हो उठती और वे एक साथ ही अपने समस्त भोग, ऐश्वय एव सुखा का परित्याग कर रमणी से श्रमणी बन जाती।

अन्तकृतदशाग सूत्र म वासुदेव श्रीकृष्ण की रानियो की चर्चा आती है, जिन्हान भगवान अरिष्टनेमि के दशन कर धमदेशना सुनी और एक प्रवचन म प्रबुद्ध होकर पद्मावती आदि रानिया ने ससार त्याग कर दीक्षा ग्रहण कर ली। दीक्षा ग्रहण कर ग्यारह अगो का अध्ययन किया। बहुत से उपवास, बेले, तेले, चोले, पचोले मासखमण आदि विविध तपस्याओ से आत्मा को भावित करते हुए जीवन पयन्त चारित्रधम का पालन करते हुए सलखनापूवक समता सहन करते हुए अंतिम श्वास से सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हुई। इन रानियो म मुख्य है—पद्मावती गौरी गाधारी लक्ष्मणा सुसीमा, जाम्बवती, सत्यभामा, रुक्मिणी आदि।

जैनधम दशन म नारी के भोग्या स्वरूप की सवत्र भत्सना की गई है और साध्वी स्वरूप की सवत्र वदना, स्तवना। 'अतकृतदशाग' सूत्र म मगध के सम्राट श्रेणिक की काली, सुकाली, महाकाली, कृष्णा, सुकृष्णा, महाकृष्णा वीरकृष्णा, पितृसेनकृष्णा और महासेनकृष्णा आदि दस रानियो का वणन है। जिन्होने श्रमण भगवान महावीर के उपदेश स प्रतिबोध पाकर सयम पथ स्वीकार किया। जो महारानियाँ राजप्रासादा म रहकर विभिन्न प्रकार के रत्नो के हार एव आभूषणा स अपने शरीर को विभूषित करती थी वे जब साधनापथ पर चली तो कनकावली रत्नावली आदि विविध प्रकार की तपश्चर्या के हारो को धारण कर अपनी आत्म-ज्योति को चमकाया।

उन्नीसवें तीथकर भगवती मल्लीनाथ का नाम जैन इतिहास म स्वर्णाक्षरो स अकित हैं। नारी भी आध्यात्मिक विभूतियो एव ऋद्धि सिद्धियो की स्वामिनी होकर उसी प्रकार तीथकर पद को प्राप्त कर सकती है जिस प्रकार पुरुष। भगवती मल्ली का जन्म मिथिला के राजा इक्ष्वाकुवशीय महाराज कुम्भ की महारानी प्रभावती की कुक्षि से हुआ। जन्म से ही विशिष्ट ज्ञान की धारिका होने के कारण इनके पिता ने इनका नाम मल्ली भगवती रखा।

मल्लीकुमारी रूप गुण, लावण्य म अत्यत उत्कृष्ट थी। इनकी उत्कृष्टता की चर्चा देश देशान्तरो म फैल चुकी थी। अनेक देशो के बडे बडे महिपाल मल्ली पर मुग्ध हो रहे थे। मल्लीकुमारी की याचना के लिए विभिन्न देशो के राजा महाराजा कुम्भ के पास अपने-अपने दूत भेज रह थे। इस घटना से राजा चिन्तित हो रहे थे। मल्लीकुमारी ने अपने पिता की चिन्ता दूर करते हुए विभिन्न देशो के भूपतियो को सम्बोधित करते हुए शरीर की क्षणभगुरता और निस्सारता का बोध कराया। मल्ली भगवती का उद्बोधन सुन सभी को उनके वचना पर श्रद्धा हो गई और सभी अध्यात्म माग पर अग्रसर होने के भाव व्यक्त करने लगे। मल्ली भगवती ने तपपूवक सावद्य कर्मों की निजरा कर दीक्षा ग्रहण की। आपके साथ तीन सौ स्त्रियाँ और तीन सौ राजकुमार दीक्षित हुए। मल्ली भगवती जिस दिन दीक्षित हुई उसी दिन अशोक वृक्ष के नीचे पृथ्वी शिला पट्ट पर सुखासन स ध्यान स्थित हो गई। अपने शुद्ध भावो म रमण करते हुए उसी दिन केवलज्ञान की उपलब्धि कर ली।

नारी उच्चकोटि की शिक्षिका और उपदेशिका रही है। उसके उपदेशों मे हृदय की मधुरिमा के साथ मार्मिकता भी छिपी रहती है। तपस्या मे लीन बाहुबली के अभिमान को चूर करने वाली उनकी बहने भगवान ऋषभदेव की दो पुत्रियाँ—ब्राह्मी और सुन्दरी ही थी। उनकी देशना में अहंकार एव अभिमान मे मदोन्मत्त बने मानव को निरहकारी बनने की प्रेरणा थी। उनका स्वर था—

वीरा म्हारा ! गज थकी नीचे उतरो,
गज चढ्या केवली न होसी रे।

बहनो के वचन सुन बाहुबली बाहर मे भीतर की ओर मुडे। घोर तपस्वी बाहुबली की अन्तश्चेतना स्फुटित हुई, अहकार चूर-चूर हो गया। लघु बन्धुओ को वन्दना के लिए उनके चरण भूमि से उठे। बस तभी केवली बाहुबली की जय से दिग-दिगन्त गूँज उठा।

शिक्षा जगत् मे ब्राह्मी और सुन्दरी का नाम स्वर्ण-रत्न की भाँति जाज्वल्यमान है। 'ब्राह्मी लिपि' ब्राह्मी की अलौकिक प्रतिभा का परिचायक है तो अकविद्या का आदिस्रोत सुन्दरी द्वारा प्रवाहित किया गया।

श्रमण सस्कृति ने नारी जाति के आध्यात्मिक उत्कर्ष को ही महत्त्व दिया हो ऐसी बात नही है। किन्तु उसके साहस, उदारता एव बलिदान को भी महत्त्व दिया है। राजीमती, मृगावती, धारिणी, चेलणा आदि नारियों की ऐसी परम्परा मिलती है जो अपने आदर्शो की रक्षा के लिए नारी-सुलभ सुकुमारता को छोडकर कठोर साहस, बौद्धिक कौशल एव आत्मउत्सर्ग के मार्ग पर चल पडी। राजीमती से विवाह करने के लिए बरात सजाकर आने वाले नेमिनाथ जब बाडे मे बंधे पशुओ का करुण-क्रन्दन सुनकर मुह मोड लेते है, दूल्हे का वेश त्यागकर साधु वेश पहनकर गिरनार की ओर चल पडते है, तब परिणयोत्सुक राजुल विरह-विदग्ध होकर विभ्रान्त नही बनती, प्रत्युत विवेकपूर्वक अपना गन्तव्य निश्चित कर सयममार्ग पर अग्रसर हो जाती है। जब नेमिनाथ के छोटे भाई मुनि रथनेमि उस पर आसक्त होकर सयमपथ से विचलित होते है तो वह सती साध्वी राजीमती उन्हे उद्बोधन देकर पुन चारित्रधर्म मे स्थिर करती है। महासती धारिणी आर्या चन्दनबाला की माता थी। जिन्होने अपने शील धर्म की रक्षा के लिए अपने प्राणो का उत्सर्ग कर दिया। धन्य है वह माँ ! सचमुच नारी अबला नही, सबला है। मृगी-सी भोली नही, सिंहनी-सी प्रचंड भी है।

आर्या चन्दनबाला की कहानी भारतीय नारी की कष्टसहिष्णुता, परदु:खकातरता, समभाव, शासन कौशल की कहानी है। राजसी वैभव में जन्मी, पली-पुसी राजकुमारी एक दिन रथी द्वारा गुलामो के बाजार मे वेश्या के हाथो बेची गई। माँ की तरह ही 'प्राण जाय पर शील न जाय' की दृढप्रतिज्ञ चन्दना जब वेश्या के इरादे को पूरा न कर सकी तो एक सदाचारी सेठ को बेची गई। पितृछाया मे भी दासी की तरह यत्रणा। ईर्ष्यालु सेठानी ने उसके लम्बे-लम्बे बाल कैंची से काट दिये। हाथो मे हथकडियाँ, पैरो मे बेडियाँ पहनाकर भूमिगृह में डाल दिया घोर अपराधी की तरह। तीन दिन की भूखी-प्यासी बाला को खाने के लिए दिये गये उडद के बाकले।

सकटो और यत्रणाओ की इस घडी मे चन्दना के धैर्य एव साहस का प्रकाश क्षीण नही हुआ। उसकी शान्ति एव समता का सरोवर नही सूखा। वह अपने हृदय मे निरन्तर एक दिव्य-भावना सजोए अज्ञानग्रस्त आत्माओ के मगल-कल्याण की कामना करती रही।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अवला कही जाने वाली नारी मे जो शील, सयम और शक्ति का विकास हुआ है, उसके मूल में ध्यान साधना से फलित एकाग्रता, जागरूकता और मानसिक पवित्रता का विशेप योगदान रहा है।

उपर्युक्त ध्यान साधिकाओ का जीवन हमारे वर्तमान जीवन के लिये विशेप प्रेरणादायक है। आज स्त्री-शिक्षा के क्षेत्र मे पहले की अपेक्षा काफी प्रगति हुई है। पर इस वहिर्मुखी ज्ञान से जीवन में इन्द्रिय भोगो के प्रति विशेष आकर्पण और पारिवारिक जीवन में इर्ष्या-द्वेष-कलह, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कापायिक वृतियो से उत्पन्न तनाव अधिक वढा है। मन अधिक चंचल और अशांत वना है। फैशन-परस्ती, दिखावा और धार्मिक आडम्वरो मे भी विशेप वृद्धि हुई है। इसका मुख्य कारण ध्यान-साधना की कमी है।

तप के नाम पर भी लम्बे ममय तक भूखे रहने पर अधिक वल दिया जाता है। भूखे रहने से इन्द्रियो की उत्तेजना कम होती है, शरीर के प्रति ममत्व भाव में कमी आती है पर इस लाभ का उपयोग अन्तर्मुखी वनकर कषायो को उपशात करने, किये हुए पापो का सच्चे हृदय से प्रायश्चित्त कर उन्हे पुनः न करने, दीन-दुखियो की सेवा करने तथा सत्-साहित्य के अध्ययन-मनन और चिन्तन मे नही किया जाता। इसका परिणाम यह होता है कि तप ताप वनकर रह जाता है। उससे आत्मा को विशेप शक्ति और प्रकाश नही मिल पाता। आवश्यकता इस वात की है कि तप के साथ ध्यान साधना को विशेष रूप से जोडा जाय तभी व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक एव राष्ट्रीय तनावो से मुक्त हुआ जा सकता है और सच्चे अर्थो मे वास्तविक शाति का अनुभव किया जा सकता है।

○ ○

नारी रूप नदी

सिगार तरगाए, विलासवेलाइ जुव्वणजलाए।
के के जयम्मि पुरिसा, नारी नइए न बुड्डन्ति॥

—इन्द्रिय पराजयशतक ३६

श्रृगार रूप तरगो वाली, विलासरूप प्रवाह वाली और यौवन रूप जल वाली नारी रूपी नदी में इस ससार मे कौन पुरुष नही डूबता ?

—.❀.—

प्राकृत साहित्य मे वर्णित शील-सुरक्षा के उपाय

डॉ हुकमचन्द जैन
(सहायक आचार्य,
जैन विद्या एव प्राकृत विभाग,
सुखाडिया विश्वविद्यालय, उदयपुर,
राजस्थान।)

भारतीय सस्कृति म नारी परम लावण्य एव सौन्दय की प्रतिमूर्ति रही है। परिणामत वह पुरुषा का आकपण केन्द्र बनी रही। प्राकृत साहित्य मे वर्णित नारिया भी परमलावण्य एव सौन्दय की खान रही हैं। यौवन अवस्था की देहली पर आरूढ होकर तरुणियाँ रति की तरह रूपवती दिखाई देन लगती हैं। ऐसी अनिन्द्य सुन्दरिया पर पुरुषा का आकर्षित होना स्वाभाविक है। किन्तु भारतीय नारिया ऐसे कामुक पुरुषो से सघर्ष करती हुई अपन शील को बचान का प्रयत्न करती रही है। ऐसे उल्लेख आगमसाहित्य से लगाकर प्राकृत के स्वतन्त्र कथा ग्रन्था तक मे प्राप्त हैं। उनम से शील रक्षा के कतिपय प्रमुख उपाय इस प्रकार है—

१ दृष्टान्त उद्बोधन द्वारा।
२ रौद्र रूप प्रदशन द्वारा।
३ रूप परिवतन द्वारा।
४ पागलपन के अभिनय द्वारा।
५ किसी विशेष युक्ति द्वारा।
६ समय-अन्तराल द्वारा।
७ आत्म घात द्वारा।
८ लोक निन्दा का भय दिखाकर।
९ पुरुषा द्वारा शील रक्षा के उपाय।

(१) दृष्टान्त उद्बोधन द्वारा—नाताधम कथा के मल्ली अध्ययन मे विवाह के लिए आये हुए साता राजकुमारा को एक साथ एकत्रित कर मल्ली स्वणमय प्रतिमा के दृष्टान्त द्वारा उद्बोधन करती है। उसकी सक्षिप्त कथा इस प्रकार है—

(क) विदेह राजकुमार मल्ली के रूप यौवन पर मुग्ध होकर अत्यन्त लालायित होकर अनिमेष दृष्टि से उसे देखन लगे। वे सब उससे विवाह करना चाहते थ। इसके लिये व युद्ध करन के लिए तयार थे। तब मल्ली अपने को असहाय एव विकट परिस्थितिया म पा स्वण प्रतिमा मे एकत्रित सडे हुए भोजन की दुगन्ध का उदाहरण प्रस्तुत कर उन्हे सम्बोधित करती हुई कहती है कि—हे देवानुप्रिया! इस स्वणमयी प्रतिमा म प्रतिदिन अशन, पान, खादिम, स्वादिम आहार म से एक-एक पिण्ड डालते रहने से अशुभ पुद्गला का परिणमन हुआ।

इमस्स पुण ओरालिय सरीरस्स खेलासवस्स वंतासवस्स पित्तासवस्स सुक्कसोणियपूयासवस्स दुरूवऊसासनीसासस्स दुरूवमुत्तपूतियपुरीसपुण्णस्स सडण जाव धम्मस्स ।[1]

अर्थात् यह एक औदारिक शरीर है, कफ को बनाने वाला है, खराब उच्छ्वास एवं निश्वास को निकालने वाला है, मूत्र एवं दुर्गन्धित मल से परिपूर्ण है, सडना इसका स्वभाव है । अतः हे देवानुप्रियो ! आप ऐसे काम-भोगो से राग मत करो । इस उद्बोधन से राजकुमारो को वैराग्य हो गया । अशुचि पदार्थो के दृष्टान्त उद्बोधन देकर शीलरक्षा की कथा प्राकृत के स्वतन्त्र कथा-ग्रन्थो में भी मिलती है ।

(ख) आचार्य नेमिचन्द्र सूरि कृत रयणचूडरायचरिय में कुलवर्द्धन सेठ की पत्नी अपने शील रक्षा का कोई उपाय नहीं देखकर दृष्टान्त उद्बोधन के लिए राजा रामपाल एवं मदनश्री की कथा सुनाती है । मदनश्री पर राजा विक्रमसेन आसक्त हो गया । उसने अपना प्रणय प्रस्ताव मदनश्री के पास भेजा । मदनश्री ने बडी कुशलता से काम लिया और राजा को अपने भवन मे बुलवा लिया ।

जब राजा भोजन करने के लिए बैठा और मनोहर वस्त्रो से ढकी हुई बहुत-सी थालियो को उसने देखा तो उसने सोचा—अहो ! मुझे प्रसन्न करने के लिए मदनश्री ने अनेक प्रकार की रसोई तैयार की है । इससे राजा खुश हो गया । मदनश्री ने सभी थालियो से थोडा-थोड़ा भोजन राजा को दिया । तब कौतूहल से राजा ने पूछा—अनेक थालियो मे से एक ही प्रकार का भोजन रखने का क्या प्रयोजन ? तब मदनश्री ने कहा—'ऊपर से ढके हुए रेशमी वस्त्रो को दिखाने का प्रयोजन था ।' तो राजा ने कहा कि इस प्रकार की व्यर्थ मेहनत करने मे क्या लाभ ? जबकि भोजन एक ही था । तब मदनश्री ने कहा—जिस प्रकार से एक ही भोजन अलग-अलग थालियो मे विचित्र दिखाई देता है उसी प्रकार बाहर के वेश से युवतियों का शरीर अलग-अलग दिखाई देता है किन्तु भीतर चर्बी, मांस, मज्जा, शुक्र, फिप्पिस, रुधिर, हड्डी आदि से युक्त अपवित्र वस्तुओ का भण्डार रूप सभी स्त्रियो का शरीर एक जैसा है । फिर भी पुरुष बाहरी रूप-सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाता है । जैसे सभी भोजन का स्वाद एक जैसा है वैसे ही सभी स्त्रियो से एक जैसा ही आनन्द है । अतः अपनी पत्नी से ही सन्तोष कर लेना चाहिए । इस दृष्टान्त से राजा प्रतिबोधित हो जाता है ।[2]

(ग) आचार्य नेमिचन्द्रसूरि ने अपने प्रसिद्ध कथाग्रन्थ आख्यानकमणिकोश मे रोहिणी कथा मे भी इसी तरह की कथा दी है । इसमें रोहिणी का पति धनावह सेठ धनार्जन के लिए विदेश चला जाता है । वहाँ का राजा रोहिणी पर मुग्ध हो उससे काम-याचना करता है । रोहिणी अपने शील रक्षा का अन्य उपाय न देखकर राजा को स्वय अपने यहाँ बुलवा लेती है तथा राजा को मर्मस्पर्शी शब्दो मे उपदेश देती है—

हे राजन ! अनीति में लगे हुए दूसरो को आप शिक्षा देते है किन्तु अनीति में लगे हुए आपको कौन शिक्षा देगा ? हे राजन् ! अनुराग के वश से थोडे से किये गये अनुचित कार्य का भारी परिणाम जीवो को भोगना पडता है । यौवन की मदहोशी से विना विचारे जो कार्य किये जाते है उन कार्यों के परिणाम हृदय को पीडा पहुँचाने वाले होते है । आपकी पीव, वसा, माँस, रुधिर, हड्डी (अशुचि पदार्थो) से भरी हुई इन महिलाओ के प्रति इतनी आसक्ति क्यो है और आप अपने कुल को कलंकित क्यो कर रहे है ? आप प्रजा के लिए पिता के समान हो । आपको ऐसा अनुचित कार्य नही करना चाहिए ।

---

१ नायाधम्मकहा (मल्ली अध्ययन) पाथर्डी, १९६४

२ जैन, हुकमचद, रयणचूडरायचरिय का आलोचनात्मक सम्पादन एवं अध्ययन—थीसिस १९८३ पृ० ५०६

बहु-पूय-असुइ-रस मय रुहिर-परिपुरियाण महिलाण।
कज्जे कि कुणसि नरिंद असरिम नियकुल-कलक ॥

तब वह राजा इस उपदेश से प्रतिबोधित हो जाता।[1]

(घ) दृष्टान्त उद्बोधन से प्रतिबोधित नही होने की स्थिति म नारी एक कदम और आगे बढकर अर्थात अशुचि पदार्थो को दिखाकर शील रक्षा करती हुई दिखाई देती है। उत्तराध्ययनसूत्र म राजीमती एव रथनमि की कथा वर्णित है। इस कथा मे राजीमती पानी से भीगी हुई गुफा म प्रवेश करती है। उसके पूव ही रथनमि वहा साधना कर रहे होते हैं। ऐसी अवस्था म राजीमती को देखकर उनकी आसक्ति तीव्र हो उठती है। तब वे राजीमती का कहते हैं —

हे भद्र! हे कल्याणकारिणी! हे सुन्दर रूप वाली! हे मनोहर बोलन वाली! हे सुन्दर शरीर वाली! मैं रथनमि हूँ। तू मुझे सेवन कर। तुझ किसी प्रकार की पीडा नही होगी। निश्चय ही मनुष्य जन्म का मिलना अत्यन्त दुलभ है। इसलिए हे भद्रे! इधर आओ। हम दोनो भोगो का उपभोग करें। फिर मुक्तभागी होकर बाद म जिनेन्द्र के माग का अनुसरण करेंगे।

यह सुनकर राजमती हतप्रभ रह जाती है। वह रथनेमि को फटकारती हुई कहती है कि—

यदि तू रूप मे वैश्रमण देव के समान और लीला विलास मे नलकूबर देव के समान हो। अधिक तो क्या यदि साक्षात् इन्द्र भी हो तो भी मै तेरी इच्छा नही करती। अन्त म राजीमती रथनेमि को अपना वमन पात्र बताती हुई कहती है कि तुम इसे पी लो। तब रथनमि कहता है कि यह अशुचि पदाथ है।

इस पर राजीमती कहती है कि तब मुनि दशा को छोडकर काम वासना रूपी ससार मे घृणित पदाथ रूपी वमन का तुम क्या पीना चाहते हो? सयम से विचलित मनुष्य का जीवन उस हरड वृक्ष के समान है जो हवा के एक छोटे से झोके से उखड कर नदी म बह जाता है। वैसे ही सयम स शिथिल होकर तुम्हारी आत्मा भी उच्च पद से नीचे गिर जायगी और ससार समुद्र म परिभ्रमण करती रहेगी।

जइ त काहिसि भाव जा जा दिच्छसि नारीओ।
वाया इद्धो व हडो, अट्ठिअप्पाभविस्ससि ॥

—उत्तराध्ययन सूत्र, अध्ययन २२ सलाना, १९७४

यह कथा अन्य प्राकृत ग्रन्थो म भी कुछ हेर-फेर के साथ मिलती है।[3]

(२) रौद्ररूप प्रदशन द्वारा—उपदेश एव दृष्टान्त उद्बोधन द्वारा भी यदि कामी पुरुष नही मानता है और बलात् शील खण्डन करना चाहता है। उस समय नारी अपना विकट रूप धारणकर गजना करती है और तब कामी पुरुष डरकर हट जाता है। ऐसी एक कथा आवश्यक नियुक्ति म मिलती है।

चण्डप्रद्योत राजा की शिवा रानी पर उसका मन्त्री भूतदव मोहित हो जाता है। एक बार

---

१ जन, प्रेम सुमन, "रोहिणी कथानक" साहित्य सस्थान, उदयपुर १९८६ पृ० ७४ स ७७

२ (क) उत्तराध्ययन सूत्र, अध्ययन २२ सलाना, १९७४
(ख) जैन, जगदीश चन्द्र, जन आगम साहित्य म भारतीय समाज, चौखम्बा, वाराणसी, १९६५, पृ० २५१

३ (क) दशवकालिक सूत्र—२, ७ ११
(ख) दशवकालिकचूर्णी २ पृ० ८७

एकान्त अवसर एवं राजा की अनुपस्थिति देखकर, रनिवास मे प्रवेश कर वह रानी से काम-याचना करता है। रानी पहले उसे उद्बोधन देती है। तब भी वह काम के लिए लपकता है। तब शिवा रानी मे अद्भुत शक्ति एव साहस का सचार हो जाता है। वह बिजली की तरह त्वरितगति मे कुछ चरण पीछे हटी एवं प्रलयंकर मेघो के समान गर्जना करती हुई उस मन्त्री पर बरस पडी। वह बोली—कामी-कुत्ते! वही ठहर जा। खबरदार जो एक चरण भी आगे बढा। तू तो है ही क्या? इन्द्र स्वयं भी प्रयत्न करे तो भी मुझे शील से खण्डित नही कर सकता। अवन्ती नरेश का मित्र होने का तू दावा करता है और उन्ही से यह भयकर छल करते हुए तुझे लज्जा नही आती। ऐसे चण्डी रूप को देखकर वह मन्त्री डरकर भाग खडा होता है और शिवारानी अपने शील की रक्षा कर लेती है।[1]

(३) रूप परिवर्तन द्वारा—नारी विचित्र औषधि प्रयोग एवं रूप परिवर्तन से भी अपने शील की सुरक्षा कर लेती है। ऐसी ही एक कथा रूपवती तारा की है। चन्द्र एव उनकी पत्नी तारा को घर छोडने के लिए कहा गया। वे ताम्रलिप्ती नगर मे एक माली के घर रहने लगे। तारा को एक दिन परिव्राजिका के दर्शन हुए। परिव्राजिका ने उसे एक गोली दी जिसके प्रभाव से स्त्री पुरुष और पुरुष स्त्री बन जाय। एक बार वहाँ का राजा तारा पर मोहित हो गया और कहने लगा—प्रिये! तेरे विरह की अग्नि मे मेरा अग-अग झुलस रहा है, अपने संगम-सुख से उसे शान्त कर। ऐसा कहकर राजा ने ज्योंही उसे आलिंगन-पाश मे बाँधना चाहा, उसने तुरन्त दूर होकर कहा—महाराज! यह क्या? राजा अपने सामने एक पुरुष को खडा देखकर लज्जित हो जाता है और वह रूप-परिवर्तन द्वारा अपने शील की रक्षा करती है। नारियाँ अपने को असहाय अनाथ समझकर, कोई बहाना बनाकर, नाटकीय ढंग से अपनी शील रक्षा करती हुई देखी गयी हैं।[2]

(४) पागलपन के अभिनय द्वारा—नर्मदासुन्दरी उसके चाचा वीरदास की अंगूठी के बहाने बुलाकर कैद कर ली जाती है और वेश्या बनाने के लिए उसे कितनी ही पीडाएँ सहनी पडती हैं किन्तु वह वेश्या नही बनती। तब उसे रसोईघर मे काम मिल जाता है। लेकिन शील खण्डन का सकट पुन. खडा हो जाता है। अत्यन्त रूपवती होने के कारण राजा उसे बहुत चाहने लगता है। राजा दण्डरक्षक को भेजकर नर्मदासुन्दरी को बुलाता है। तब रास्ते मे ही पानी की एक बावडी देखकर नर्मदा को पालकी से उतार दिया। लेकिन बावडी के पास पहुँचते ही वह फिसल कर गिर पडती है। उसके बाद वह अट्टहासपूर्वक चिल्लाकर कहने लगी—क्या राजा ने मेरे लिए यही आभूषण भेजा है? उसने अपने शरीर पर कीचड लपेट लिया। दण्डरक्षक ने कहा—अरी स्वामिनी! यह क्या? वह उसकी ओर बढा। नर्मदा ने उत्तर दिया—अरे तू राजा की रानी को अपनी रानी बनाना चाहता है? यह कहकर दण्डरक्षक के मुह पर कीचड़ फेकने लगी। भूतनी-भूतनी का शोर मच गया। नर्मदा नेत्रो को फाड़, जीभ निकाल, गीदड़ की

---

१ (क) शास्त्री, राजेन्द्र मुनि "सत्य-शील की अमर साधिकाएँ", उदयपुर १९७९, पृ० १३०
(ख) आवश्यक निर्युक्ति, गा० १२८४ पृ० १३०

२. (अ) जैन जगदीश चन्द्र, रमणी के रूप, वाराणसी, पृ० २१-२५
(ब) जैन, जगदीशचन्द्र, "नारी के विविध रूप" वाराणसी, १९७८, पृ० ६०
(स) वसुदेव हिण्डी, (सघदासगणि), भावनगर, २३३
(द) जैन, जगदीश चन्द्र, प्राकृत जैन कथा साहित्य, अहमदाबाद, १९७१, पृ० ४८

योनी बोलती हुई भीड की ओर दौडी। दण्डरक्षक ने राजा के पास पहुँचकर सब हाल सुनाया। राजा उसे पागल मानकर छोड देता है। और इस प्रकार नमदा अपने शील को बचा लेती है।[1]

(५) किसी विशेष युक्ति द्वारा – किसी विचित्र युक्ति द्वारा भी प्राकृत साहित्य म शील रक्षा के उपाय वाले दृष्टान्त मिलते हैं। युक्तिपूर्ण तरीके से शील सुरक्षा करने की कथा कुमारपाल प्रतिबोध नामक ग्रथ मे मिलती है। कथा इस प्रकार है—

एक बार अजितसेन की पत्नी शीलवती की राजा ने परीक्षा लेनी चाही। उसने एक एक करके चार युवकों को उसके पास भेजा। उन चारो युवको ने शीलवती स काम-भोग की प्रार्थना की। नही मानने पर उन चारो ने शीलवती को धमकाया। जब उसे यह अनुमान हुआ कि यह पूर्वनियोजित योजना है। इससे कभी भी शील भग हो सकता है। तब उसने एक युक्ति का सहारा लिया। वह सहसा अपने व्यवहार म कोमल हो गयी। उसके वार्तालाप म सहज अनुराग का स्वर आ गया। उसने उन चारो युवको को पृथक-पृथक रूप से अपनी स्वीकृति दे दी। उसने सन्ध्या के समय एक उद्यान में चारो को बुलाया गया। पूर्ण नियोजित ढग से उसने उन चारो को एक कुए म धकेल कर बन्दी बना लिया। इस प्रकार विशेष युक्ति द्वारा उसने अपने शील की रक्षा कर ली।

(६) समय-अन्तराल द्वारा—युक्ति, अभिनय, रूप परिवर्तन एव अन्य उपायो द्वारा शील रक्षा का कोई उपाय नही दिखाई देने पर नारियो द्वारा कामुक व्यक्तियो की प्रणय याचना को स्वीकार कर उनसे कुछ समय का अवकाश मागकर अपनी शील रक्षा की जाती थी। इस प्रकार की कथा इस प्रकार है। ज्ञाताधर्म कथा म, द्रौपदी की कथा वर्णित है जिसमे द्रौपदी राजा पद्मनाभ द्वारा अपहरण कर ली जाती है। राजा उसे अन्त पुर म लाकर उससे कामना प्रार्थना करता है। तब द्रौपदी पद्मनाभ स इस प्रकार कहती है—

हे देवानुप्रिय! द्वारवती नगरी मे कृष्ण नामक वासुदेव मेरे स्वामी के भ्राता रहते हैं। यदि वे छ महीने तक लेने के लिए यहाँ नही आयेंगे तो हे देवानुप्रिय! आप जो कहेंगे वही मैं करूँगी।[3]

इस प्रकार समय मांगने की कथाएँ परवर्ती प्राकृत साहित्य म भी मिलती है यथा—

(१) सती मृगावती एव चण्डप्रद्योत की कथा।[4]

(२) तिलकसुन्दरी एव मदनकेशरी की कथा।

(३) जयलक्ष्मी एव विजयसेन की कथा।[6]

(४) रत्नवती एव रुद्रमत्री की कथा।[7]

---

१ (अ) जैन जगदीश चन्द्र, नारी के विविध रूप, पृ० २६ २७
(ब) शास्त्री, नेमिचन्द्र, वाराणसी, १९६६, पृ० ४६४

२ शास्त्री राजेन्द्र मुनि, सत्यशील की अमर साधिकाए, पृष्ठ २२६।

३ (अ) णायाधम्मकहा (१६ वाँ अध्ययन) पाथर्डी, पृ० ४९९ ५००
(ब) शास्त्री, राजेन्द्र मुनि, सत्यशील की अमर साधिकाए, पृ० ७३ ७६।

४ वही, पृ० ११०, पर उद्धृत, आवश्यक नियुक्ति, गा०, १०४८ एव स्थानकाचित्र नियुक्ति अ० १ गा० ७

५ जैन, हुकुमचन्द, "रयणचूडरायचरिय का आलोचनात्मक सम्पादन एव अध्ययन" थीसिस १९८३ अनु० ९६ पृ० ७३।

६ प्राकृत कथा सग्रह, सूरत, १९५२, पृ० १७, गा० ६० ६५

७ वही पृ० २ गा० ५० ६०

(७) आत्मघात द्वारा—शील रक्षा का कोई उपाय नहीं दिखाई देने पर शीलवती नारियाँ आत्मघात करने के लिए प्रवृत्त हो जाती हैं किन्तु शील खण्डित नहीं होने देती। ऐसी कथाओं में सती चन्दना की कथा प्रसिद्ध है।[1]

कभी-कभी कोई कामी व्यक्ति अपने घर में ही अपने छोटे भाई की पत्नी के साथ उदाहरणार्थ—राजा मणिरथ अपने छोटे भाई की पत्नी, तो कभी पुत्रवधु तो कभी निकटतम सम्बन्धियों की स्त्रियों के साथ अपनी काम-भावना व्यक्त करने लगते हैं। ऐसी विकट परिस्थितियों में भी नारी ने अपने शील की रक्षा की है। ऐसी ही एक कथा सत्य शील की अमर साधिकाएँ नामक पुस्तक में वर्णित है।

(८) लोक-निन्दा का भय दिखाकर—राजा मणिरथ अपने छोटे युगवाहु की पत्नी मदनरेखा पर आसक्त था किन्तु मदनरेखा इस बात से अनभिज्ञ थी। वह बड़े भाई (राजा) को पिता की तरह मानती थी किन्तु कामाभिभूत राजा कई प्रकार के उपहार उसे भेजता रहता था। उसे राजा के प्रति किंचित मात्र शंका नहीं थी। एक दिन राजा उसे अकेली समझकर उसके भवन में चला गया और और काम-भावना दर्शाने लगा। तब मदनरेखा उस बात को भाँप गयी। उसने राजा को ललकार कर भगा दिया। राजा उसे कई बार प्राप्त करने का प्रयत्न करता है किन्तु लोक-निन्दा का भय दिखाने पर वह विफल हो जाता है।[2]

(९) पुरुषों द्वारा शील-सुरक्षा—प्राकृत साहित्य में ऐसी कथाएं भी मिलती हैं जिसमें स्त्री पुरुषों से काम-याचना करती है। पुरुष उपदेश द्वारा या अन्य उपायों द्वारा अपनी शील वृत्ति का पालन करते हैं। यथा—

(क) 'समराइच्चकहा' के पंचम भव में ऐसी ही एक कथा वर्णित है जिसमें सनत्कुमार अपने पिता से रुष्ट होकर घर से चला गया। एक बार ताम्रलिप्ति में विलासवती के भवन के समीप से निकला दोनों एक-दूसरे पर मोहित हो गये। ये प्रेम-प्रसंग चल ही रहा था कि एक दिन प्रेमिका की सौतेली माता रानी अनंगवती ने सनत्कुमार को अपने पास बुलाया और स्वयं उससे प्रेम याचना की किन्तु सनत्कुमार ने उसकी बात को अस्वीकार करके अपने शीलव्रत का पालन किया।[3]

(ख) ऐसी ही एक कथा समराइच्च कहा के अष्टम भव में भी आयी है जिसमें रत्नवती की को अज्ञान चेष्टा के फल के उदाहरण में गजिनी रत्नावती के पूर्व भव की कथा कही गयी है।[4]

(ग) ऐसी ही एक कथा आख्यानक मणिकोश में भी मिलती है जिसमें सुदर्शन अपने को नपुंसक बताकर अपने शील की सुरक्षा कर लेता है।

एक बार कपिल घर पर नहीं थे तब उसकी पत्नी कपिला ने अवसर देखकर सुदर्शन सेठ से काम भोग की प्रार्थना की। तब सुदर्शन सेठ अपने शील की सुरक्षा करता हुआ- कहता है—मैं तुम्हें चाहता हुआ भी नपुंसक हूँ। ऐसा कहता हुआ वह वहाँ से भाग निकला। यथा.—

---

१ आख्यानकमणिकोश (नेमिचन्द्र) पृ० ३६, गा० ६-७

२. शास्त्री, राजेन्द्र मुनि, "सत्य-शील की अमर साधिकाएँ", पृ० १५६-१५७

३ वही पृ० १८४-१९१

४ जैन रमेश चन्द्र, समराइच्चकहा (अष्टम भव), मेरठ १९८०, पृ० ६०

भणिय मविसाएण सुयणु समीहेमि सगय तुज्ञ ।
नितु नियदुस्यिकम्मेण निमिया पभो अह्य ॥

—आ म नो पृ १८२

डा० हीरालाल जैन ने "सुदसणचरिउ" की भूमिका म पुरुष द्वारा शील रक्षा के उपायो के कई सन्दर्भ भारतीय साहित्य से खोज कर प्रस्तुत किये हैं ।[1]

प्राकृत साहित्य म उपलब्ध शील रक्षा के उपयुक्त उपायो के प्रसगो से स्पष्ट है कि भारतीय समाज मे शील का पालन करना एक महत्वपूर्ण जीवन मूल्य रहा है । भारतीय नारी का शील एक ऐसा आभूषण माना गया है जो उसे भौतिक आभूषणो मे अधिक सुशोभित करता है । नैतिक शील की महिमा सर्वत्र गायी गयी है । इस विवरण से यह भी प्रकट होता है कि भारतीय नारी तपशीला रही है । वह सकटो मे घबडाती नहीं है । ये प्रसग इस बात की शिक्षा देते हैं कि नारी केवल भोग्या नहीं है । उसका भी अपना सम्मान एव स्वतन्त्र व्यक्तित्व है । पुरुषो को उसकी रक्षा करनी चाहिए । यही बात नारी को भी सोचनी चाहिए कि वह भौतिक सुख म ऊपर उठे । प्राकृत साहित्य का शील सदाचार, पुरुषार्थ आत्मनिर्भरता आदि जीवनमूल्यो की दृष्टि से अध्ययन किया जाना चाहिए ।

---

1 जैन हीरालाल, सुदसणचरिउ, वशाली—१९७० भूमिका प ० १८ २

OO

नारी के विविध रूप

गाहा कुला सुदिव्वा व भावका मधुरोल्ला ।
पुल्ला व पउमिणि रम्मा वालवाला व मालवी ॥
हेमा गुहा ससीहा वा माला वा वज्जवप्पिता ।
सविसा गधजुत्ती वा अत्ता दुट्ठा व वारुणी ॥
सरता मन्दिरा वा वि आसकण्णा व सालिणी ।
नारी लोगम्मि विण्णेया जा होज्जा सगुणोदया ॥

—इसिभासियाइ २२ २ ३ ४

नारी सुदिव्य कुल की गाथा के सदृश है, वह सुवासित मधुर जल के समान है, विकसित रम्य पद्मिनी (कमलिनी) के समान है और व्याल से लिपटी मालती के समान है ।

वह स्वर्ण की गुफा है पर उसमे सिंह बैठा हुआ है । वह पुष्पो की माला है पर विष पुष्प की बनी हुई है । दूसरो के सहार के लिए वह विष मिश्रित गंध गुटिका है । यह नदी की निर्मल जल धारा है किन्तु उसके बीच मे भयकर भँवर है या प्राणापहारक है ।

यह मस्त बना देने वाली मदिरा है । सुन्दर यानवाहनो के सदृश है । यह नारी है, स्वगुण के प्रकाश म यथार्थ नारी है ।

—●—

भगवान् महावीर की दृष्टि में—नारी

विमला मेहता
(चिन्तनशील लेखिका, सामाजिक कार्यकर्त्री)

ईसा के लगभग पाँच सदी पूर्व समाज की प्रचलित सभी दूषित मान्यताओ को अहिंसा के माध्यम मे बदल देने वाले महावीर वर्द्धमान थे। उनके सघ मे एक ओर हरिकेशी और मैतार्य जैसे शूद्र थे तो दूसरी ओर महाराजा अजातशत्रु व वैशालीपति राजा चेटक जैसे सम्राट् भी थे। विनम्र परन्तु सशक्त शब्दो मे महावीर ने घोषणा की कि समस्त विराट् विश्व मे सचराचर समस्त प्राणी वर्ग मे एक शाश्वत स्वभाव है—जीवन की आकाक्षा। इसलिये "मा हणो"। न कष्ट ही पहुचाओ, न किसी अत्याचारी को प्रोत्साहन ही दो। अहिंसा के इस विराट स्वरूप का प्रतिपादन करने का ही यह परिणाम है कि आज भ० महावीर, अहिंसा, जैन धर्म, तीनो शब्द एक दूसरे के पर्याय बन चुके है।

क्रान्तिकारी कदम

युग-पुरुष भ० महावीर जिन्होने मनुष्य का भाग्य ईश्वर के हाथो मे न देकर मनुष्य मात्र को भाग्य-निर्माता बनने का स्वप्न दिया, जिन्होने शास्त्रो, कर्मकाण्डो और जन समुदाय की मान्यताएँ ही बदल दी, उन महावीर की दृष्टि मे मानव जगत् के अर्धभाग नारी का क्या स्थान है ?

यदि उस समय के सामाजिक परिवेश मे देखा जाये तो यह दृष्टिगोचर होता है कि जिन परिस्थितियो मे महावीर का आविर्भाव हुआ, वह समय नारी के महापतन का समय था। 'अस्वतन्त्रता स्त्री पुरुष-प्रधाना" तथा "स्त्रिया वेश्यास्तथा शूद्रा. येपि स्यु पापयोनय" जैसे वचनो की समाज में मान्यता थी। ऐसे समय महावीर द्वारा नारी का खोया सम्मान दिलाना एक क्रातिकारी कदम था। जहाँ स्त्री वर्ग मे इस परिवर्तन का स्वागत हुआ होगा, वहाँ सम्भवतः पुरुष वर्ग विशेषकर तथाकथित उच्च वर्ग को ये परिवर्तन सहन न हुए होगे।

नारी को खोया सम्मान मिला

बचपन से निर्वाण प्राप्ति तक का भ० महावीर का जीवन-चरित्र एक खुली पुस्तक के समान है। उनके जीवन की घटनाओ और विचारोत्तेजक वचनो का अध्ययन किया जाय तो उसके पीछे छिपी एकमात्र भावना, नारी को उसका खोया सम्मान दिलाने का सतत् प्रयत्न, का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

जनो की दिगम्बर परम्परा के अनुमार व ब्रह्मचारी व अविवाहित रहे। श्वेताम्ब‍ परम्परा की शाखा के अनुसार वे भोगा के प्रति आसक्त नही हुए। एतिहासिक तथ्यो व जन आगमो के अनुसार समरवीर नामक महासामन्त की सुपुत्री व तत्कालीन समय की सवश्रेष्ठ सुन्दरी यशोदा के साथ उनका विवाह हुआ और प्रियदशना नामक एक कन्या उत्पन्न हुई।

तो भ० महावीर ने नारी को पत्नी के रूप म जाना। वहन सुदशना के रूप म वहन का स्नेह पाया और माता त्रिशला का अपार वात्सल्य का सुख देखा। अट्ठाइस वप की उम्र म भ्राता से दीक्षा की अनुमति मागी, अनुमति न मिलन पर वहन, पत्नी व अवोध पुत्री की मूक भावनाआ का आदर कर व गृहस्थी मे ही रह। दो वप तक या यागी की भाँति निर्लिप्त जीवन जीते देख पत्नी को अनुमति देनी पडी।

महावीर व बुद्ध

महावीर व बुद्ध मे यहा असमानता है। महावीर अपने वराग्य को पत्नी, मां, वहन व पुत्री पर थोप कर चुपचाप गृह-त्याग नही कर गये। गौतम बुद्ध तो अपनी पत्नी यशोधरा व पुत्र राहुल को आधी रात के समय सोया हुआ छोडकर चले गये थे। सम्भवत व पत्नी व पुत्र के आसुआ का सामना करने मे असमथ रहे हो। पर बुद्ध ने मन म यह नही विचार किया कि प्रात नीद खुलते ही पत्नी व पुत्र की क्या दशा होगी? इसके विपरीत महावीर दो वप तक सबके बीच रहे। परिवार की अनुमति से मागशीप कृष्णा दशमी को वे दीक्षित हो गये। दीक्षा लेने के उपरान्त महावीर न नारी जाति का मातृ जाति के नाम से सम्बोधित किया। उस समय की प्रचलित लोकभाषा अधमागधी प्राकृत मे उन्होने कहा कि पुरुप के समान नारी को धार्मिक व सामाजिक क्षेत्र मे समान अधिकार प्राप्त होन चाहिये। उन्होने बताया कि नारी अपने असीम मातृ प्रेम मे पुरुप को प्रेरणा एव शक्ति प्रदान कर समाज का सर्वाधिक हित साधन कर सकती है।

विकास की पूण स्व न्त्रता

उन्होने समझाया कि पुरुप व नारी का आत्मा एक है। अत पुरुपा की तरह स्त्रिया को भी विकास के लिए पूण स्वतन्त्रता मिलनी ही चाहिये। पुरुप व नारी की आत्मा म भिन्नता का कोई प्रमाण नही मिलता। अत नारी को पुरुप स हेय समझना अज्ञान, अधम व अतार्किक है।

गृहस्थाश्रम म रहते हुए भी स्वेच्छा से ब्रह्मचय पालन करने वाले पति पत्नी के लिए महावीर ने उत्कृष्ट विधान रखा। महावीर ने कहा कि एसे दम्पत्ति का पृथक शैय्या पर ही नही अपितु पृथक शयन-कक्ष म शयन करना चाहिय। किन्तु जब पत्नी पति के सम्मुख जाय तब पति को मधुर एव आदर पूण शब्दो म स्वागत करते हुए उसे बैठने को भद्रासन प्रदान करना चाहिये। क्योकि जनागमा मे पत्नी को "धम्मसहाया" अर्थात् धम की सहायिका माना गया है।

वासना, विकार और कमजाल को काट कर मोक्ष प्राप्ति के दोनो ही समान भाव से अधिकारी हैं। इसी प्रकार समवसरण, उपदेश, सभा, धार्मिक पर्वो मे नारियाँ निस्सकोच भाग लेंगी। मध्य सभा मे खुले रूप मे प्रश्न पूछकर अपने सशया का समाधान कर सकती हैं। एसे अवसर पर उन्हे अपमानित व तिरस्कृत नही किया जायेगा।

दासी प्रथा का विरोध

उन्होंने दासी प्रथा, स्त्रिया का व्यापार अ [illegible] ार म अपने कार्यकाल

मे कई प्रकार की दासियो जैसे धाय, क्रीतदासी, कुलदासी, ज्ञातिदासी आदि की सेवा प्राप्त की थी व उनके जीवन से भी परिचित थे। इस प्रथा का प्रचलन न केवल सुविधा की खातिर था, बल्कि दासियाँ रखना वैभव व प्रतिष्ठा की निशानी समझा जाता था। जब मेघकुमार की सेवा-सुश्रूषा के लिए नाना देशो से दासियो का क्रय-विक्रय हुआ तो महावीर ने खुलकर विरोध किया और धर्म-सभाओ में इसके विरुद्ध आवाज बुलन्द की।

बौद्ध आगमो के अनुसार आम्रपाली वैशाली गणराज्य की प्रधान नगरवधू थी। राजगृह के नैगम नरेश ने भी सालवती नाम की सुन्दरी कन्या को गणिका रखा। इसका जनता पर कुप्रभाव पडा और सामान्य जनता की प्रवृत्ति इसी ओर झुक गई। फलस्वरूप गणिकाएँ एक ओर तो पनपने लगी, दूसरी ओर नारी वर्ग निन्दनीय होता गया।

भिक्षुणी का आदर

जब महावीर ने भिक्षुणी सघ की स्थापना की तो इसमें राजघराने की महिलाओ के साथ दासियो व गणिकाओ-वेश्याओ को भी पूरे सम्मान के साथ दीक्षा देने का विधान रखा। दूसरे शब्दो मे महावीर के जीवन-काल मे जो स्त्री गणिका, वेश्या, दासी के रूप मे पुरुष वर्ग द्वारा हेय दृष्टि से देखी जाती थी, भिक्षुणी सघ मे दीक्षित हो जाने के पश्चात् वह स्त्री समाज की दृष्टि मे वन्दनीय हो जाती थी। नारी के प्रति पुरुष का यह विचार परिवर्तन युग-पुरुष महावीर की देन है।

भगवान बुद्ध ने भी भिक्षुणी सघ की स्थापना की थी, परन्तु स्वयमेव नही आनन्द के आग्रह से और गौतमी पर अनुग्रह करके। पर भगवान् महावीर ने समय की माँग समझ कर परम्परागत मान्यताओ को बदलने के ठोस उद्देश्य से सघ की स्थापना की। जैन शासन-सत्ता की बागडोर भिक्षु-भिक्षुणी, श्रावक-श्राविका इस चतुर्विध रूप में विकेन्द्रित कर तथा पूर्ववर्ती परम्परा को व्यवस्थित कर महावीर ने दुहरा कार्य किया।

इस सघ मे कुल चौदह हजार भिक्षु, तथा छत्तीस हजार भिक्षुणियाँ थी। एक लाख उनसठ हजार श्रावक और तीन लाख अठारह हजार श्राविकाएँ थी। भिक्षु सघ का नेतृत्व इन्द्रभूति के हाथो मे था तो भिक्षुणी सघ का नेतृत्व राजकुमारी चन्दनबाला के हाथ मे था।

पुरुष की अपेक्षा नारी सदस्यो की सख्या अधिक होना इस बात का सूचक है कि महावीर ने नारी जागृति की दिशा मे सतत् प्रयास ही नही किया, उसमे उन्हे सफलता भी मिली थी। चन्दनबाला, काली, सुकाली, महाकाली, कृष्णा, महाकृष्णा आदि क्षत्राणियाँ थी तो देवानन्दा आदि ब्राह्मण कन्याएँ भी संघ मे प्रविष्ट हुई।

"भगवती-सूत्र" के अनुसार जयन्ती नामक राजकुमारी ने महावीर के पास जाकर गम्भीर तात्त्विक एव धार्मिक चर्चा की थी। स्त्री जाति के लिए भगवान् महावीर के प्रवचनो मे कितना महान् आकर्षण था, यह निर्णय भिक्षुणी व श्राविकाओं की संख्या से किया जा सकता है।

नारी जागरण विविध आयाम

गृहस्थाश्रम मे भी पत्नी का सम्मान होने लगा तथा शीलवती पत्नी के हित का ध्यान रखकर कार्य करने वाले पुरुष को महावीर ने सत्पुरुष बताया। सप्पुरिसो "...पुत्तदारस्स अत्थाए हिताय सुखाय होति"...... विधवाओ की स्थिति मे सुधार हुआ। फलस्वरूप विधवा होने पर बालो का काटना आवश्यक

नही रहा । विधवाएँ रगीन वस्त्र भी पहनने लगी जो पहले वर्जित थे । महावीर की समकालीन थावच्चा साथवाही नामक स्त्री ने मृत पति का सारा धन ले लिया था जो उस समय के प्रचलित नियमो के विरुद्ध था । "तत्थण बारवईए थावच्चा नाम गाहावइणी परिवसई अड्ढा जाव ।

महावीर के समय मे सती प्रथा बहुत कम हो गई थी । जो छुटपुट घटनाएँ होती थी वे जीव हिंसा के विरोधी महावीर के प्रयत्नो से समाप्त हो गइ । यह सत्य है कि सदियो पश्चात् व फिर आरम्भ हो गयी ।

बुद्ध के अनुसार स्त्री सम्यक सम्बुद्ध नही हो सकती थी, किन्तु महावीर के अनुसार मातृजाति तीर्थकर भी बन सकती थी । मल्ली ने स्त्री होते हुए भी तीर्थकर की पदवी प्राप्त की थी ।

महावीर की नारी के प्रति उदार दृष्टि के कारण परिव्राजिका को पूर्ण सम्मान मिलने लगा । राज्य एव समाज का सबसे पूज्य व्यक्ति भी अपना काम छोडकर उन्हे नमन करता व सम्मान प्रदर्शित करता था । 'नायधम्मकहा" आगम मे कहा है —

तए ण से जियसत्तु चोक्ख परिव्वाइय एज्जमाण पासइ सीहासणाओ अब्भुटठेई सक्कारेई आसणेण उवनिमन्तेई ।

इसी प्रकार बौद्ध—युग की अपेक्षा महावीर युग मे भिक्षुणी सघ अधिक सुरक्षित था । महावीर ने भिक्षुणी सघ की रक्षा की ओर समाज को ध्यान आकर्षित किया ।

यह सामयिक व अत्यन्त महत्वपूर्ण होगा कि महावीर स्वामी के उन प्रवचनो का विशेष रूप से स्मरण किया जाये जो पच्चीस सदी पहले नारी को पुरुष के समकक्ष खडा करने के प्रयास मे उनके मुख से उच्चरित हुए थे ।

○○

सज्जन वाणी —

१ जो व्यक्ति धार्मिकता, और नैतिकता तथा मर्यादाओ का परित्याग कर देता है, वह मनुष्य कहलाने का अधिकार खो देता है ।

२ धर्म से ही व्यक्तिगत जीवन मे अनुशासन, सामाजिक जीवन मे समानता सेवा और श्रद्धा का सुयोग मिलता है जिससे व्यावहारिक जीवन भी सुखमय बनता है ।

३ स्वभाव की नम्रता से जो प्रतिष्ठा प्राप्त होती है, वह सत्ता और धन से नही मिल सकती न कोरी विद्वा से मिलती है ।

४ जिन्होंने मन, वचन काया से अहिंसा व्रत का आचरण किया है उनके आस-पास का वातावरण अत्यन्त पवित्र बन जाता है । और पशु भी अपना वैर भाव भूल जाते हैं । —पू० प्र० सज्जनश्री जी म०

卐 卐

सती प्रथा और जैनधर्म

रज्जन कुमार
(शोधछात्र पार्श्वनाथ . विद्याश्रम शोध-संस्थान, वाराणसी)

सती होने का अर्थ है विधवा स्त्री का अपने पति की चिता मे जीवित जल जाना। इसे सहमरण, सहगमन, अनुमरण या अन्वारोहन आदि नामो से भी जाना जाता है। इस प्रक्रिया मे दो स्थितियाँ उत्पन्न हो सकती हैं—पहली स्थिति मे विधवा को उसकी इच्छा के विरुद्ध चिता मे प्रवेश करने के लिए विवश किया जाता हो और दूसरी स्थिति मे विधवा स्वेच्छापूर्वक सती होती हो। प्राचीनकाल मे सती प्रथा को साधारण सी घटना माना गया था। जहाँ हिन्दू-धर्म मे सती प्रथा से सम्बन्धित घटनाओ का उल्लेख बहुतायत से है, वही जैन धर्म मे यह आपवादिक घटनाओ के रूप मे उल्लिखित हुआ है।

अगर हम हिन्दू धर्म-ग्रथो पर दृष्टिपात करे तो हमारे समक्ष सती प्रथा का वर्णन करने वाले तीन तरह के ग्रन्थ प्रस्तुत होते हैं।

(क) प्रथम कोटि मे वे हिन्दू-धर्मग्रन्थ आते है जो सती प्रथा का समर्थन नही करते है।[1]

(ख) दूसरी कोटि में सती-प्रथा का अस्पष्ट ढग से समर्थन करने वाले हिन्दू-धर्म-ग्रन्थ आते हे।[2]

(ग) तीसरी कोटि मे सती-प्रथा का स्पष्ट रूप से समर्थन करने वाले ग्रन्थ आते है।[3]

लेकिन सती-प्रथा के सम्बन्ध में जैनधर्म से सम्बन्धित ग्रन्थो मे इस तरह का विभेद नही मिलता है। पहली बात तो यह कि जैनागमो मे इस प्रथा का अभाव ही है, लेकिन अगर कुछ है भी तो उसे अपवाद के तौर पर ही लिया जा सकता है।

'निशीथचूर्णि' मे लिखा गया है कि सोपारक के पाँच सौ व्यापारियो को कर नही देने के कारण राजा ने उन्हे जीवित जला देने का आदेश दिया। उक्त आदेशानुसार उन पाच-सौ व्यापारियो को जिन्दा जला दिया गया था और उन व्यापारियो की पत्नियाँ भी उनकी चिताओ मे जल गई थी।[4] इसी प्रकार का एक विवरण 'प्रश्नव्याकरण' मे भी मिलता है। इस ग्रन्थ के अनुसार "चालुक्य देश की नारिया पति की मृत्यु के बाद आत्मदाह करती थी।"[5] परन्तु जैनाचार्य इसका समर्थन नही करते है।

---

१ भारद्वाज गृह्यसूत्र १, २

२. अथर्ववेद १८, ३, १, २ कौशिक गृह्यसूत्र ५, ३, ६ विष्णु धर्मसूत्र, २५/१४, बृहस्पति स्मृति, २५/११, व्यास स्मृति

३ मिताक्षरा, ८६, बृहत्पाराशर स्मृति, दक्षस्मृति, पाराशर स्मृति, ३२, ३३ जीवानन्द, १, पृ० ३९५

४ निशीथचूर्णि, भाग २ पृ० ५९-६०, निशीथचूर्णि, भाग ४ पृ० १४, ५ प्रश्नव्याकरण २/४/७

पुन इस आपवादिक उल्लेख के अतिरिक्त हमें जैन साहित्य में इस प्रकार के उल्लेख नहीं मिलते हैं। 'महानिशीथ' में एक विवरण मिलता है जिसके अनुसार किसी राजा की विधवा कन्या सती होना चाहती थी, किन्तु उसके पितकुल में इस प्रथा का प्रचलन नहीं था। अत अंत में उसने अपना यह विचार त्याग दिया।[1] इस विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि जैनाचार्यों ने पति की मृत्यु के बाद स्वेच्छापूर्वक देहत्याग को अनुचित माना है और इस प्रकार के मरण को 'बाल मरण' या 'लोकमूढता' कहा है। सती प्रथा का धार्मिक समर्थन जैन आगम साहित्य और उसकी व्याख्याओं में कहीं नहीं मिलता है।

'आवश्यक चूर्णि' में दधिवाहन की पत्नी एवं चन्दना की माता आदि के कुछ ऐसे उदाहरण अवश्य मिलते हैं जिनमें ब्रह्मचर्य की रक्षा के निमित्त देह त्याग किया गया है। परन्तु यह देह त्याग सती प्रथा की अवधारणा से अलग है। जैनधर्म यह नहीं मानता है कि मृत्यु के बाद पति का अनुगमन करने से अर्थात जीवित चिता में जल जाने से पुन स्वर्गलोक में उसी पति की प्राप्ति होती है[3] लेकिन हिन्दू धर्म में ऐसा विश्वास किया जाता है। जैन धर्म अपने कर्म सिद्धान्त के प्रति आस्था रखता है और यह मानता है कि पति-पत्नी अपने-अपने कर्मों और मनोभावों के अनुसार ही विभिन्न योनियों में जन्म लेते हैं। यद्यपि परवर्ती जैन-कथा-साहित्य में हमें ऐसे उल्लेख मिलते हैं जहाँ एक भव के पति पत्नी आगामी भवों में जीवन-साथी बने, किन्तु इसके विरुद्ध भी उदाहरणों की जैन-कथा साहित्य में कमी नहीं है।

अत यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि धार्मिक आधार पर जैन धर्म सती प्रथा का समर्थन नहीं करता। जैन धर्म के सती प्रथा के समर्थक न होने के कुछ सामाजिक कारण भी हैं। व्याख्या साहित्य में ऐसी अनेक कथाएँ वर्णित हैं जिनके अनुसार पति की मृत्यु के पश्चात् पत्नी न केवल पारिवारिक दायित्व का निर्वाह करती थी, अपितु पति के व्यवसाय का संचालन भी करती थी। अनुत्तरोपपातिक में एक उल्लेख मिलता है जिसके अनुसार एक सार्थवाह की पत्नी विधवा होने पर स्वयं व्यापार का संचालन करती थी।[4] उत्तराध्ययन में लिखा हुआ है कि पुत्रहीना अथवा पुत्र के वयस्क न होने की स्थिति में विधवा रानी मंत्री के माध्यम से राज्य कार्य का संचालन करती थी।[5]

इसके अतिरिक्त जैनागमों और उसकी व्याख्याओं में ऐसे अनेक सन्दर्भ मिलते हैं जहाँ कि विधवा भिक्षुणी बन जाती थी। उदाहरणस्वरूप मदनरेखा के पति की हत्या उसके भाई ने कर दी। इस घटना से दुःखी होकर वह भिक्षुणी बन गई।[6] इसी तरह दुःखी या किसी तरह की विरक्ति के कारण विधवाएँ सती न होकर भिक्षुणी बन जाती थीं। मदनरेखा की ही तरह यशभद्रा,[7] पद्मावती[8] आदि स्त्रियों का उदाहरण हमारे सामने प्रस्तुत होता है। ज्ञाताधर्म कथा' में पोट्टिला[9] तथा सुकुमालिका[10] के भिक्षुणी बनने के प्रसंग का वर्णन मिलता है।

यद्यपि जैन परम्परा में ब्राह्मी,[11] सुन्दरी[12] वसुमती[13] राजमती[14] द्रौपदी[15] पद्मावती[16] आदि

---

१ महानिशीथ, पृ० २६, वि० द० जैनागम साहित्य में भारतीय समाज पृ० २६६
२ आवश्यकचूर्णि, भाग १, पृ० ३१८
३ पाराशरस्मृति ३२, ३३
४ अनुत्तरोपपातिक, ३१६
५ उत्तराध्ययनसूत्र, १३
६ उत्तराध्ययन नियुक्ति, पृ० १३६ १४०
७ आवश्यक नियुक्ति, १२८३
८ आवश्यक चूर्णि भाग २, पृ० १८३
९ ज्ञाता धर्मकथा, १/१४
१० ज्ञाताधर्मकथा, १/१६
११ श्री सोलह सती, पृ० १ ५
१२ श्री सोलह सती पृ० ६ १२
१३ श्री सोलह सती पृ० १३ ६४
१४ श्री सोलह सती पृ० ६५-९१
१५ श्री सोलह सती पृ० १८२
१६ श्री सोलह सती

सोलह स्त्रियो को सती कहा गया है और तीर्थकरो के नाम स्मरण के साथ-साथ इन सोलह सतियो का स्मरण किया जाता है। अव यहाँ प्रश्न यह है कि जव जैनधर्म मे सती प्रथा को प्रश्रय नही दिया गया, तो इन सतियो को इतना आदरणीय स्थान क्यो प्रदान किया जाता है ? प्रत्युत्तर में यही कहा जा सकता है कि उनका आचरण एव शीलरक्षण के जिन उपायो का इन्होने आलम्बन लिया, उसी के कारण इन्हें इतना आदरणीय स्थान प्रदान किया जाता है। इन्हे सती इसीलिए भी कहा जाता है क्योकि इन स्त्रियो ने अपने शील की रक्षा हेतु आजीवन अविवाहित जीवन विताया था, पति की मृत्यु के पश्चात् भी अपने शील को सुरक्षित रख सकी। वर्तमान मे जैन साध्वियो के लिए 'महासती' शब्द का प्रयोग किया जाता है, उसका मुख्य आधार शील का पालन है।

जैन आगमिक व्याख्याओ और पौराणिक रचनाओ के पश्चात् जो प्रवन्ध-साहित्य लिखा गया उसमे सर्वप्रथम सती-प्रथा का जैनीकरण रूप हमे देखने को मिलता है। 'तेजपाल-वस्तुपाल-प्रवन्धकोश' मे उल्लिखित है कि तेजपाल और वस्तुपाल की मृत्यु के उपरान्त उनकी पत्नियो ने अनशनपूर्वक अपने प्राण का त्याग किया था।[1] यहाँ पति की मृत्यु के पश्चात् शरीर-त्यागने का उपक्रम तो है, किन्तु उसका स्वरूप सौम्य वना दिया गया है। वस्तुत यह उस युग मे प्रचलित सती-प्रथा की जैनधर्म मे क्या प्रतिक्रिया हुई थी, उसका सूचक है।

अव यहाँ एक विचारणीय प्रश्न है कि सती जैसी प्रथा का इतना कम प्रचलन जैनधर्म मे क्यो रहा ? इस वारे मे तो यही कहा जा सकता है कि जैन भिक्षुणी सघ इसके लिए उत्तरदायी रहा। क्योकि भिक्षुणी वनी स्त्रियाँ भिक्षुणी सघ को अपना आश्रयस्थल समझती थी। जैन भिक्षुणी सघ उन सभी स्त्रियो के लिए शरणस्थल होता था जो विधवा, परित्यक्ता अथवा आश्रयहीना होती थी। जव कभी भी ऐसी नारी पर किसी तरह का अत्याचार किया जाता था जैन भिक्षुणी संघ उनके लिए कवच वन जाता था। क्योकि भिक्षुणी सघ में प्रवेश करने के वाद स्त्रियाँ पारिवारिक उत्पीडन मे वचने के साथ ही साथ एक सम्मानपूर्ण जीवन व्यतीत करती थी। आज भी ऐसी वहुत सी अवलाएँ है जो कुरूपता, धनाभाव तथा इसी तरह की अन्य समस्याओ के कारण अविवाहित रहने पर विवश है ऐसी कुमारी, अवलाओ के लिए जैन भिक्षुणी सघ आश्रय स्थल है। जैन भिक्षुणी सघ ने नारी गरिमा और उसके सतीत्व की रक्षा की जिसके कारण सती-प्रथा जैसी एक कुत्सित परम्परा का जैनधर्म मे अभाव रहा।

इसी सन्दर्भ मे यह विचार कर लेना भी उपयुक्त जान पडता है कि सती जैसी प्रथा का प्रचलन हिन्दू धर्म मे क्यो इतने व्यापक पैमाने पर चलता रहा। यहाँ यही कहा जा सकता है कि हिन्दू धर्म मे जैनधर्म की तरह कोई भिक्षुणी सघ नही रहा होगा ? क्योकि अगर इस तरह की सस्था हिन्दू धर्म मे भी कायम रहती तो निस्सदेह इतने अधिक सती के उदाहरण हिन्दू परम्परा मे नही मिलते।

○○

अहिसा-अपरिग्रह के सन्दर्भ मे, नारी की भूमिका

श्रीमती सरोज जैन,
एम० ए०
श्री जवाहर जन शिक्षण संस्था,
उदयपुर ।

विश्व म शान्ति और सद्भाव तभी स्थापित हो सकता है जब मानव का विकास सही ढग से हो। मानव-जीवन के विकास मे नारी की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। मानव का विकास उन चारित्रिक गुणो से होता है जिनकी शिक्षा व्यक्ति को माता के रूप मे सबप्रथम नारी से ही मिलती है। इसी तरह गृहस्थ-जीवन को सयमित बनान म भी नारी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। इतिहास साक्षी है कि नारी ने घर, परिवार, समाज और देश के उत्थान म हमेशा पुरुष को सहयोग प्रदान किया है। महासती चदना, चेलना राजीमती, मल्लीकुमारी, अजना, सीता आदि कितनी ही नारियो के आदश हमारे सामने ह, जिन्होने पुरुष को चरित्र के पथ मे विचलित नही होने दिया। चरित्र की सुरक्षा के लिये व्यक्ति का अपरिग्रही और अहिसक होना अनिवाय है। सतोष और करुणा के सरोवर म ही सुख के कमल खिलते हैं। अत नारी पुरुष को परिग्रही और क्रूर बनने से रोकने म महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती है।

जन शास्त्रो मे पाच व्रतो के अन्तगत पाँचवा व्रत अपरिग्रह व्रत बतलाया गया है। जन गृहस्थ जब अपने जीवन म अहिसा सत्य अचौय व ब्रह्मचय का मर्यादा पूवक पालन करता है तब उसके मन मे जीवन के प्रति सतोष जाग्रत होता है। तब वह अपरिग्रही बनता है। अत व्यक्ति को अपरिग्रही बनाने के लिये आवश्यक ह कि परिवार की महिलाएँ पुरुषो को पहले इन चार व्रतो को पालन करने की प्रेरणा दें और उसम सहयोग करें।

व्यक्ति को परिग्रही बनाने म अति और अनुचित इच्छाओ का प्रमुख हाथ होता है। ससार की वस्तुओ का आकषण हमारे मन मे *तरह-तरह की इच्छाएँ पदा कर देता है। इन इच्छाओ की पूर्ति करने* के लिये व्यक्ति अच्छे-बुरे साधनो का ध्यान नही रखता। वह अनुचित साधनो से वस्तुओ का सग्रह करने मे जुट जाता है। व्यक्ति को इस काय म लगाने म महिलाओ का विशेष हाथ होता है। वे एक दूसरे की देखा-देखी गहना, फर्नीचर, प्रसाधन सामग्री कीमती कपडा आदि के लिये पुरुषो पर अनुचित दबाव डालती रहती हैं। अपनी आर्थिक स्थिति का ध्यान नही रखतीं। इससे पुरुष मजबूरन गलत साधनो के द्वारा महिलाओ की इच्छाओ की पूर्ति करते हैं। इससे पूरा परिवार सकट मे पड जाता है। अत महिलाओ की यह भूमिका

होनी चाहिये कि वे अनुचित और असीम इच्छाओ पर स्वयं सयम रखे और घर के पुरुषो पर भी अनुचित प्रभाव न डाले ।

उत्तराध्ययन सूत्र की कपिल ब्राह्मण की कथा मे हम सब परिचित है कि वह अपनी प्रेमिका की प्रेरणा से दो मासे सोने की प्राप्ति के फेर मे करोडो स्वर्ण - मुद्राओ का लालची बन बैठा था। अत. महिलाओ को इच्छा और आवश्यकता इन दोनो के अन्तर को समझकर ही किसी वस्तु के प्रति आग्रह करना चाहिये । इसीलिए भगवान् महावीर ने अपरिग्रह को इच्छा-परिमाण व्रत भी कहा है ।

जैनशास्त्रो में परिग्रह को पाप वध का मूल कारण कहा है । भगवती सूत्र मे कहा गया है कि परिग्रह, क्रोध, मान, माया और लोभ इन सब पापो का केन्द्र है । प्रश्नव्याकरण सूत्र मे भी स्पष्ट किया गया है कि परिग्रह के लिये ही लोग हिसा करते है, झूठ बोलते है, बेईमानी करते है और विषयो का सेवन करते है । वर्तमान मे भी हम परिग्रह के कारण इन घटनाओ को देखते रहते हैं । परिग्रह के मूल में वस्तुओ का प्रदर्शन आज सबसे बडा कारण है । आज हम अपने बैठक कक्ष मे इतनी कीमती वस्तुएँ सजाने की होड मे लगे है कि हमारा रसोईगृह खाली रहने लगा है । हम पहनने-ओढने मे इतना खर्च करने लगे है कि हमारे भीतरी गुण रिक्त हो गये है । इसी बाहरी प्रदर्शन के कारण ही हमारी समाज मे दहेज प्रथा का कोढ व्याप्त हो गया है । प्रदर्शन के लिये ही हम अपनी बहुओ के प्राण लेने मे भी नही हिचकते । इस सबको बन्द करने मे महिलाओ को आगे आना होगा । यदि वे प्रदर्शन और सजावट की फिजूलखर्ची कम करदे तो समाज मे परिग्रह का रोग नही फैल सकता । परिग्रह मिटेगा तो उससे होने वाले अन्य पाप अपने आप कम होने लगेगे ।

अपरिग्रह के वातावरण को विकसित करने के लिये यह आवश्यक है कि महिलाये अधिक से अधिक जैनदर्शन की मूलभूत बातो से स्वय परिचित हो और अपने सम्पर्क मे आने वाली अन्य बहिनो को भी उनसे परिचित कराये । जैनधर्म अपरिग्रही होने के लिये कहता है, निर्धन होने के लिये नही । अत गृहस्थ जीवन मे रहते हुए हर व्यक्ति उचित साधनो द्वारा इतना धनार्जन कर सकता है कि जिससे वह अपने परिवार का भरण-पोषण कर सके । तथा अपनी जाति, धर्म और देश की उन्नति मे सहयोग प्रदान कर सके । अत महिलाओ का यह कर्तव्य है कि वे बचपन से ही अपने बच्चो को स्वावलम्बी बनाये । इससे यह परिणाम निकलेगा कि परिवार का हर सदस्य अपनी जीविका के लिये उचित साधन जुटा सकेगा । ऐसा होने पर परिवार के अकेले मुखिया को ही बेईमानी और अनुचित साधनो के सारे कुटुम्ब के लिये धन नही जोडना पडेगा । जब हम अपने परिवार की पीढियो की सुख-सुविधा को ध्यान मे रखते है तब हमे जिस किसी प्रकार से धन जोडने और वस्तुओ के सग्रह करने के लिये विवश होना पडता है । यदि परिवार का हर सदस्य स्वावलम्बी हो, पुरुषार्थी हो, शिक्षित हो, तो अपने आप उनके लिए परिग्रह जोडने की जरूरत नही रहेगी ।

परिग्रह के दुष्परिणाम से भी महिलाओ को अच्छी तरह परिचित होना चाहिये । आज जो समाज मे अनाप-सनाप परिग्रह एकत्र हुआ है उससे मुख्य-रूप से तीन बुराइयो ने जन्म लिया है— १—विषमता, २—विलासिता और ३— क्रूरता । जब वस्तुओ का सग्रह एक स्थान पर हो जाता है तब दूसरे लोग उन वस्तुओ के अभाव मे दु खी हो जाते है । गरीबी-अमीरी, ऊँच-नीच आदि समस्याएँ इसी के परिणाम है । इस विषमता को रोकने के लिये जैनदर्शन मे त्याग और दान के उपदेश दिये गये है । महिलाओ को चाहिये कि वे बिना किसी दिखावे के और घमन्ड के जरूरतमन्द व्यक्तियो की मदद के लिये दान और सेवा के कार्य मे आगे आये ।

परिग्रह की दूसरी बुराई विलासिता है। धन जिन गलत रास्तो से एकत्र हुआ है उसका खर्च भी उसी तरह के व्यसनो की पूर्ति म होता है। परिवार के सदस्य यदि इस परिग्रह क कारण व्यसना क आदी हो गये तो एक दिन महिलाओ को इज्जत से जीना भी मुश्किल हो जायगा। अत यदि परिवार और समाज को परिग्रह के दुष्परिणामो से बचाना है तो महिलाओ का यह प्रथम कर्तव्य है कि वे परिवार के सदस्यो को व्यसना से मुक्त रहने की प्रेरणा द। मा बच्चे की पहली पाठशाला होती है। यदि वह स्वय सादगीपूर्ण जीवन जियेगी तो वह अपनी सतान को व्यसना में फँसने से रोक सकती है। पहले जन समाज व्यसनो से सर्वथा मुक्त था इसीलिये वह आज समृद्ध और धनी समाज बन सका है। किन्तु यदि जन समाज भी खर्चील व्यसनो म लिप्त हो गया तो उसे दरिद्र बनने म समय नही लगेगा।

परिग्रह का तीसरा परिणाम है—क्रूरता। असीमित इच्छाओ की पूर्ति क लिये व्यक्ति अपने धर्म व कर्तव्य मे अधा होकर धन कमाता है। इसमे वह इतना क्रूर हो जाता है कि छोटे बडे प्राणियो की हिंसा और मनुष्य का शोषण करने में भी वह नही हिचकता। विषैली गैस, दवाओ आदि क बड़े-बड़े कारखाना का जमाव इसके उदाहरण ह। सौन्दर्य प्रसाधनो के निर्माण म कितनी हिंसा होती है यह किसी से छिपा नही है। धन कमाने म जितनी क्रूरता व्याप्त है उतनी ही क्रूरता धन का खर्च करने में भी जाती है। सौन्दर्य प्रसाधनो का सबसे अधिक उपयोग महिला समाज म होता है। यदि महिलाओ म जागरूकता हो जाय तो वे इस क्रूरता को रोक सकती हैं। इसके लिये महिलाओ को चाहिये कि वे हिंसक सौन्दर्य प्रसाधनो के विरोध म एक जागृति पैदा कर। वे चाहे तो अपने परिवार व पुरुषो को भी उन धधो म फँसने से रोक सकती हैं जो हिंसा व क्रूरता से भरे हुए हैं। जन समाज को उन्ही व्यवसायो क द्वारा धन कमाना चाहिये जो उनके धर्म और मान्यताओ का हनन करने वाला न हो। व्यवसाय की क्रूरता को बचाने से जीवन म अहिंसा को उतारा जा सकता है।

अहिंसा की प्रतिष्ठा से ही विश्वशान्ति सम्भव है। अत अहिंसा को सम्बन्ध व्यवसाय एव घरेलू जीवन से जोडना होगा। घरेलू जीवन म महिलाओ का साम्राज्य होता है। अत नारियो को स्वय अपने जीवन म अहिंसक होना होगा। इसके लिये आवश्यक है कि वे सर्वप्रथम घर-बाहर के प्रदर्शन मे क्रूर साधनो का उपयोग न करें, न दूसरो को करने दें।

हम सब परिचित हैं कि आज की प्रमुख समस्या दिखावटी प्रदर्शन है। चाहे वह सौन्दर्य का प्रदर्शन हो, चाहे शादी व्याह के अवसरो पर फालतू सजावट का प्रदर्शन हो अथवा हिंसक दवाइयो को खाकर अपनी बनावटी जवानी का प्रदर्शन हो। इस प्रदर्शन की आसक्ति ने ही मनुष्य को क्रूर बना दिया है।

महिला समाज म प्रदर्शन के इस कैंसर ने पूरी मानव जाति को खोखला कर दिया है। सौन्दर्य प्रसाधनो मे तो केवल प्राणियो की हिंसा ही की जाती है किन्तु इस प्रदर्शन और सजावट की बीमारी ने तो कई नई नवेली दुल्हनो के प्राण ले लिये हैं। हिंसा की क्रूरता तो सामने दिखती है किन्तु प्रदर्शन की क्रूरता हम महिलाओ के भीतर छिपी रहती है। एक तरफ हम छोटे से छोटे जीवो की हिंसा से बचने का दिखावा करती है और दूसरी ओर जब हमारी बहू सगाई अथवा शादी के दहेज म सौन्दर्य प्रसाधन म सजा हुआ थाल नही लाती तब ताने दे देकर हम उसके मन की हत्या कर देती हैं। इसी तरह कपडा गहनो और फर्नीचर आदि के प्रदर्शन में भी हम क्रूर से क्रूर व्यवहार करती हैं। अत हम एक ओर सौन्दर्य प्रसाधनो की द्रव्यहिंसा से बचना है तो दूसरी ओर प्रदर्शन की भाव हिंसा से भी बचना होगा। तभी हम समाज म फैली क्रूरता को कम कर सकेंगे।

हमारी बहिनो के मन मे यह प्रश्न आ सकता है कि मेरे अकेले द्वारा सौन्दर्य प्रसाधन का प्रयोग न करने से जीवो की हिंसा कैसे रुक जायेगी ? अथवा मुझ अकेले द्वारा दहेज न लेने अथवा उसका प्रदर्शन न करने से मन की क्रूरता कैसे कम होगी, कैसे रुक जायेगी ? ये प्रश्न स्वाभाविक है। किन्तु किसी अच्छे कार्य का प्रारम्भ थोडे ही लोगो द्वारा होता है। जब धीरे-धीरे सौन्दर्य प्रसाधनो की माँग और उपयोग कम हो जायेगा तो उनका निर्माण भी कम होने लगेगा। जब हम दहेज के प्रदर्शन के स्थान पर बहू के गुणो और उसके कुल के सस्कारो को प्रदर्शित करने लगेंगे तो अपने आप दहेज के प्रदर्शन का मूल्य कम हो जायेगा। किन्तु इस सबके लिये साहित्य प्रचार द्वारा, चर्चाओ के द्वारा, फिल्म प्रदर्शन के द्वारा महिलाओ के भीतर सौन्दर्य प्रसाधन के प्रति घृणा पैदा करनी होगी। विदेशो में यह कार्य प्रारम्भ हो गया है। वहाँ सौन्दर्य प्रसाधन बनते हुए दिखलाये जाते हैं। उनमे पशुओ की क्रूर हत्या के दृश्य देखकर महिलाएँ अपने प्रसाधन कूडे मे फैकने लगी है। मासाहार की क्रूरता देखकर हजारो लोग शाकाहारी बनने लगे है। अमेरिका मे अब हर प्रकार की क्रूरता को रोकने के लिये अहिंसक सस्थाएँ कार्यरत है। अभी हाल मे वहाँ "साइलैण्ट स्क्रीन" नामक ३८ मिनट की फिल्म दिखाकर महिलाओ को भ्रूण-हत्या (गर्भपात) की क्रूरता से रोका जा रहा है। जब इतनी बड़ी-बडी हिंसाएँ रोकी जा रही है तो प्रसाधन मे हिंसा और क्रूरता को क्यो स्थान दिया जाय ? विदेशी महिलाएं जब अहिंसा का अनुकरण कर रही हैं तब भारत की नारियाँ इसमे पीछे क्यो रहे ? आइये, आज हम अपने धार्मिक जीवन को सार्थक करने के लिये और विश्व मे सभी प्राणियो को जीने का अधिकार देने के लिये यह प्रण करे कि हम किसी भी प्रकार की क्रूरता मे सम्मिलित नही होगी।

हम सब पर्यूषण मे सुगन्ध दशमी का व्रत करती है। उसके भीतर जो मूल भावना छिपी है कि हम ऐसी बनावटी और हिंसक सुगन्धी का त्याग करे जो हमारे अहिंसा धर्म की विरोधी हो। तभी हम "जिओ और जीने दो" के सिद्धान्त को अमल मे ला सकेंगे। सभी "परस्परोपग्रहो जीवानम्" के सूत्र को जीवन मे उतार सकेंगे। मैं आपको यही कहना चाहूँगी कि हम दिखावटी सुखो को छोड़कर सच्ची मानवता की सेवा करे। महाकवि दिनकर ने ठीक ही कहा है—

जब तक नित्य नवीन सुखो की प्यासी बनी रहेगी।
मानवता तब तक मशीन की दासी बनी रहेगी ॥

अत मशीनो द्वारा हिंसक पदार्थों से बने हुए सौन्दर्य प्रसाधनो का प्रयोग अहिंसा मे विश्वास रखने वाली जैन महिलाओ को नही करना चाहिये। यदि उन्हे अपना श्रृंगार करना ही है तो ऐसी वस्तुओं का वे प्रयोग करे जो प्राकृतिक साधनो से बनी हो। भारत जडी-बूटियो का देश है। अत यहाँ पर देशी वस्तुओ से भी ऐसे प्रसाधन बनते है, जो कि न हिंसक है और न नुकसानदायक। उनका प्रयोग करके महिलाएँ अनावश्यक क्रूरता से बच सकती है। फैशनपरस्त महिलाओ के अन्धानुकरण से सदाचारी महिलाओ को बचना चाहिये। सादा जीवन और उच्च विचार को जीवन मे अपनाने से महिलाओ के व्यक्तित्व की स्थायी छाप लोगो मे पडती है। इससे भारतीय सस्कृति का नाम उजागर होता है। अत प्रदर्शन की क्रूरता को रोकने मे महिलाओ की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। यदि घरेलू जीवन मे क्रूरता न हो और परिग्रह के परिणामो की सही जानकारी हो तो विश्व-शान्ति की स्थापना मे मदद मिल सकती है।

●●

नारी :

मानवता का भविष्य

सुरेन्द्र बोथरा

[हिन्दी-अंग्रेजी आदि भाषाओं के विशेषज्ञ—प्रस्तुत ग्रन्थ के सह-सम्पादक]

●

जन धम मूलत आत्मिक विकास का धम है। वहा आत्मशुद्धि गन्तव्य है, ज्ञान उसका प्रशस्त पथ है और अहिंसा का अनुशासन है पाथेय। जैनदशन म कर्त्ता व भोक्ता आत्मा है। जीव शब्द भी अधिकाशत आत्मा क पर्यायवाची के रूप म ही प्रयुक्त हुआ है।

महावीर ने ज्ञान की पराकाष्ठा पर पहुँच कर पाया कि आत्मा एक ऐसा तत्व है जो शक्ति की अनन्त सभावनाओ से युक्त है। साथ ही उन्होने यह भी अनुभूत किया कि परिणति म अनन्तरूपी होने पर भी सभावनाओ मे समस्त ब्रह्माण्ड की प्रत्यक आत्मा समान है। कम के फलस्वरूप ज्ञान के विकास और ह्रास के अनुरूप आत्मा का उत्थान और पतन अवश्यम्भावी है। कोई भी आत्मा सम्पूण आत्म शुद्धि से पूव, इस नियम स परे नही है। समानता क इसी मूलभूत सिद्धान्त की नींव पर ही निर्माण हुआ उस चतुर्विध सामाजिक परम्परा का जिसके नियम इसी सिद्धान्त भूमि से समय काल और परिस्थिति के अनुरूप प्रस्फुटित होते रह।

इस एक उद्घोष के पश्चात क्या इस प्रश्न का कोई स्थान रह जाता है कि "नारी का जन धम मे क्या स्थान है ?" फिर भी यदि यह प्रश्न उठा है तो महत्व इस प्रश्न का नही है। महत्व है उसके उठने के कारणो का चाहे वह आज की बात हो अथवा सकडो-हजारो वष पूव की, चाहे वह सामान्य नागरिक की बात हो अथवा सामर्थ्य वान या चिन्तक की।

जैन आगमो म आत्मिक विकास के माग पर स्त्री और पुरुष म भेद होने के सकेत नही मिलते। यह तथ्य जैन समुदाय की तत्कालीन सामाजिक मान्यताओ को भी परिलक्षित करता है। जन परम्परा म नारी को अपने स्थान स च्युत करने की प्रक्रिया सवप्रथम आत्मिक विकास को अचेलत्व (नग्नतत्व) के साथ आवश्यक रूप से जोडने के आग्रह से आरम्भ हुई। यह था पाँचवी शताब्दि के पश्चात का युग अथवा आगमिक।

'सौ वष की दीक्षिता साध्वी के लिये भी सद्य दीक्षित साधु वन्द-नीय है।" आगमिक व्याख्याओ के युग म जन समानता पर लगा यह धब्बा आज भी विद्यमान है। पुरुष वर्ग का यह आग्रह अति साधारण व आधारहीन तर्कों पर टिका था और इसे कभी का समाप्त हो जाना

चाहिये था। आगमिक प्रतिपादनो से विपरीत होने पर भी इतनी लम्बी अवधि तक टिक रह जाना पुरुष वर्ग की दुरभिसन्धि का द्योतक है।

स्त्री के आत्मिक विकास की सम्भावना के विरुद्ध प्रथम तर्क है कि स्त्रीशरीर की सरचना ऐसी है कि उसमे रक्तस्राव एक नियमित प्राकृतिक प्रक्रिया है। रक्तस्राव का आत्मिक विकास से क्या सम्बन्ध है, यह समझना कठिन है। और फिर रक्तस्राव तो एक आयु विशेष तक ही होता है, उसके बाद ? ऐसा ही दूसरा तर्क है कि स्त्री पर बलात्कार हो सकता है इसलिये वह अचेल नही रह सकती। क्या सचेल रहने पर बलात्कार नही हो सकता ? क्या पुरुष पर बलात्कार नही हो सकता ? क्या उस पर होने वाले बलात्कार को परीषह कहकर गौरवान्वित कर देने से वह मोक्ष का अधिकारी हो गया ?

अन्य तर्क बताया गया है कि स्त्री करुणा प्रधान है—तीव्र पुरुषार्थ नही कर सकती। यह तर्क अपने आप मे ही आधारहीन है क्योकि यथार्थ सत्य के विपरीत है। जहाँ तक तीव्र पुरुषार्थ का प्रश्न है स्त्री पुरुष से कही अधिक तीव्र पुरुषार्थ की सभावना रखती है और पुरुष से कही अधिक निर्दय हो सकती है। इतिहास को देखे तो अनगिनत उदाहरण मिल जायेगे जहाँ स्त्री ने इन दोनो में पुरुष को बहुत पीछे छोड दिया है। आगे कहा है कि चचल स्वभावी होने के कारण स्त्री मे ध्यान व स्थिरता का अभाव होता है। तथ्य यह है कि स्त्री की तुलना मे पुरुष अधिक क्षेत्रो मे चचल स्वभावी है। ठीक वैसे ही यथार्थ मे परे है यह तर्क कि स्त्री मे वाद सामर्थ्य और तीव्र बुद्धि का अभाव होता है।

आत्मिक विकास के क्षेत्र की ये आधारहीन धारणाएँ पुरुष ने ही बनाई। वहाँ से यही धारणाएँ नियम बनकर धर्म के क्षेत्र से होती हुई समाज के क्षेत्र मे आ गई। पुरुष को नारी-दासता के लिये बड़ी सशक्त बेड़ियाँ मिल गई और आरम्भ हो गया उस दमन-चक्र का जिसमे भिन्न परम्पराओ के भेद भूल समस्त पुरुष वर्ग एक हो गया, चाहे वह वैदिक परम्परा का हो, बौद्ध परम्परा का, जैन परम्परा का या अन्य किसी परम्परा का।

दायित्वो का सन्तुलन स्वस्थ परिवार व समाज के लिये अत्यन्त आवश्यक है। परिवार व समाज के बिखराव का कारण इस सन्तुलन का बिगडना ही है। पुरुष वर्ग ने जब अपनी व्यक्तिगत महत्वाकाक्षाओ के लिये नारी-दमन का चक्र आरम्भ किया तभी से यह सन्तुलन बिगडता चला गया। आधारहीन तर्क और भी विकसित होकर कुतर्कों में ढल गये। कुछ उदाहरण है वे तर्क जो स्त्री के लिये उपयोग मे लाये गये है पर उपयुक्त है पुरुष के लिये। "स्त्रियाँ थोड़े से उपहारो से ही वशीभूत की जा सकती है और पुरुषो को विचलित होने में सशक्त होती है।" "सन्ध्याकालीन आभा के समान क्षणिक प्रेम वाली और अपना स्वार्थ सिद्ध हो जाने पर पुरुष का परित्याग करने वाली।" "पाप कर्म नही करने का वचन देकर भी पुन अपकार्य मे लग जाती है।"

स्त्री की दासता की यह परम्परा जो मूलभूत दार्शनिक सिद्धान्तो के विपरीत थी, निर्बाध चलती गई। विदेशी आक्रमणो की शृखला ने भी उसके अधिक पुष्ट होने मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। मानव समाज का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अग सामाजिक अनुशासन के नाम पर दासता के दलदल मे धँसता चला गया। उसकी चरम परिणति हुई स्त्री को अबला, ताडना के योग्य, नरक का द्वार आदि गर्हित नामो से सम्बोधित करने में।

स्थिति की दयनीयता यह है कि स्वय नारी का सोचने का तरीका वैसा ही हो गया है जैसा पुरुषप्रधान समाज चाहता है। युगो के दबाव ने उसे अपने आपको पुरुष का सहभोगी मात्र समझने का आदी बना दिया है। वह भूल-सी गई है कि नैसर्गिक यथार्थ यह है कि पुरुष और नारी परस्पर एक-

दूसरे के सहयोगी है। ऐसा नहीं है कि मात्र स्त्री ही पुरुष की सहभोगी है और पुरुष ऐसे किसी भी दायित्व से मुक्त है।

पुरुष ने साम, दाम, दण्ड, भेद सभी प्रकार के उपायों से स्त्री को दासता की ओर धकेला है। आवश्यकता पड़ने पर उसे पूजा भी, सोने से लादा भी, सहलाया भी। अन्तत नारी अपनी पहचान ही भूल गई। पुरुष ने कहा नारी बुद्धिहीन है और वह मान गई। पुरुष ने कहा कि वह आत्मिक विकास के पथ पर चलने की योग्य नहीं है और वह मान गई। पुरुष ने कहा कि वह जन्म जन्मान्तर में पुरुष की दासी है और वह मान गई। पुरुष ने कहा कि उसके विकास की चरम परिणति पुरुष के नाम पर बलि दी जाने में है और वह मान कर सहर्ष चिता पर चढ़ गई। पुरुष ने कहा कि वह अबला है और वह मानकर समर्पित होने में ही अपने को धन्य समझने लगी।

नारी जब जब भी उसे निरन्तर जकड़ते धर्म, राज्य तथा समाज के शासन के विरोध में आवाज उठाती है, एक अजीब सी प्रतिक्रिया सामने आती है— नारी स्वतन्त्र होने के नाम पर स्वच्छन्द होने की चेष्टा करती है।" स्वतन्त्रता और स्वच्छन्दता के बीच की सीमा रेखा कौन तय करेगा। स्वच्छन्द न होने के नियम क्या केवल नारी के लिये ही हैं ? सामाजिक तथा नैतिक विधानों का पुरुष के द्वारा उल्लंघन क्या स्वच्छन्दता नहीं है ? काल के परिप्रेक्ष्य में देखें तो क्या पिछले पचास वर्षों में पुरुष समुदाय ने सभी सीमा रेखाएँ पार नहीं कर दी है ? फिर स्त्री पर ही स्वच्छन्दता की ओर बढ़ने का आरोप क्यों ?

सन्त्रस्त नारी के भीतर का ज्वालामुखी यदि फूट पड़ता है तब उसके भटक जाने का दोष नारी पर नहीं उसी वर्ग पर है जिसने त्रास ने उसे ज्वालामुखी बना दिया। और यह त्रास मात्र भौतिक या शारीरिक नहीं है। कोई क्षेत्र ऐसा नहीं छोड़ा गया जहां नारी को पीड़ित न किया गया हो।

तब उसने समय रहते प्रतिकार क्यों नहीं किया ? क्या स्त्री सचमुच अबला है ? क्या वह शारीरिक तथा मानसिक रूप से वास्तव में पुरुष की तुलना में हेय है ? नहीं ? यथार्थता पारम्परिक मान्यताओं से सर्वथा विपरीत है। पिछले दशक के खेल रिकार्डों को देखें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि स्त्री ने पुरुष को अनेक क्षेत्रों में पीछे छोड़ दिया है। शरीर के वजन के अनुपात से पता चलता है, वह शरीर सौष्ठव (बाडी बिल्डिंग) के हर अंग में पुरुष से स्पर्धा जीत सकती है। दौड़ तैराकी तथा अन्य व्यायामों में उसकी स्पर्धा की क्षमता पुरुष के समान पाई गई है।

बीस वर्ष पूर्व स्त्रियों को डेढ़ मील से अधिक दूरी की दौड़ में भाग नहीं लेने दिया जाता था, यह सोचकर कि इससे उनके शरीर को हानि पहुँचेगी। पाँच वर्ष पूर्व महिलाओं की मेराथन दौड़ ओलम्पिक खेलों में प्रथम बार शामिल हुई। दौड़ने की गति में विकास को देखें तो पाते हैं कि पिछले पन्द्रह वर्षों में महिलाओं ने अपने मेराथन दौड़ के समय में ४० मिनिट की कमी की है जबकि उसी दौरान पुरुष धावक केवल ७ मिनिट ही कम कर पाये।

पिछले वर्ष ही बर्फीली हवाओं में हिमांक से ८० डिग्री नीचे के तापमान में ३३ वर्षीय महिला सूसर बुचर ने १०४९ मील कुत्तागाड़ी दौड़ लगातार तीसरी बार जीती थी। इस दौड़ में विश्व के सर्वश्रेष्ठ पुरुष प्रतियोगी भी शामिल होते हैं। सैन चिकित्सकों तथा मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि स्त्री में लम्बी अवधि तथा दूरी के खेलों के लिए स्वाभाविक शारीरिक व मानसिक अभिरुचि तथा क्षमता होती है।

स्त्री शरीर की सरचना मे चर्बी की मात्रा अधिक होती है । इस चर्बी का सर्वाधिक अश उसके नितम्बो मे केन्द्रित होता है । उससे उसका शारीरिक सन्तुलन पुरुष की अपेक्षा श्रेष्ठ होता है । स्त्री की मासपेशियाँ दीर्घ सहनशक्ति की क्षमता लिये होती है तथा शक्ति के लिए वात-कारागिन पर निर्भर करती है । उसकी मासपेशियो के ततु पतले होते है जिससे पोषक तत्वो तथा आक्सीजन की स्नान तथा कोशिकाओ के बीच स्थानान्तर की गति तीव्र होती है । अपेक्षाकृत कम शारीरिक वजन तथा कम ऑक्सीजन की आवश्यकता के कारण उसमें दीर्घकालीन क्रियाशीलता की क्षमता होती है । मासपेशियो के जोड वाले ततुओ मे अधिक लचीलापन होने के कारण उनको चोटग्रस्त होने के प्रति अधिक प्रतिरोधकता होती है । पुरुष की तुलना मे स्त्री अभ्यास के दौरान कम थकती है तथा अधिक एकाग्रता बनाये रखती है ।

ये सब गुण उसे शारीरिक खेलो के क्षेत्र मे अधिक सतुलित प्रगति की ओर ले जा रहे है । हाँ पुरुष के मुकाबले उनमे विस्फोटक शक्ति की कमी अवश्य होती है । जिससे कम समय व दूरी तथा विशुद्ध शारीरिक शक्ति वाले खेलो मे वह पुरुष से पीछे रह सकती है ।

मानसिक व बौद्धिक क्षेत्रो मे भी अनेक स्थानो पर स्त्री पुरुष से अधिक सक्षम पाई गई है । विपरीत परिस्थितियो में सतुलन बनाये रखने की क्षमता स्त्री मे पुरुष से अधिक होती है । मानसिक तनाव के जिस बिन्दु पर पुरुष टूट जाता है, स्त्री सहजता से पार कर लेती है । तकनीकी कार्यो मे भी वे सभी क्षेत्र जिनमें सूक्ष्म, कलात्मक तथा सवेदनशील कार्य प्रणालियाँ होती है, स्त्री पुरुष से अधिक कुशलता प्राप्त कर लेती है ।

किसी भी क्षेत्र का अध्ययन करे तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि प्रकृति ने स्त्री को क्षमता मे पुरुष से किसी भी भाँति निर्बल या हेय नही बनाया है । सामाजिक विकृतियो तथा पुरुष की दुरभिसंधियो ने उसे निर्बल बना दिया है ।

इसमे कोई सदेह नही कि पिछले पचास वर्षो मे नारी की स्थिति मे निरन्तर सुधार हुआ है । किन्तु यह सुधार अपेक्षानुसार व्यापक और स्वस्थ है या नही इसमे सन्देह है । आज भी स्त्री पर पुरुष की अपेक्षा अत्यधिक अत्याचार होते है । आज भी वह अपने आपको असुरक्षित पाती है । आज भी उसे हर कदम पर अपने आपको तैयार करना पडता है पुरुष द्वारा नियन्त्रित समाज के विरोध का सामना करने को । आज भी दहेज का दाह और वैधव्य की विडम्बना उसका पीछा नही छोडते । और ऐसे ही अनेको कारणो से आज भी उसके जन्म को कोसा जाता है । इतनी भी प्रगति हो गई है कि यह सब खुलेआम कम होता है चुपके-चुपके अधिक । और वह भी इसलिए नही कि नारी का वर्चस्व किसी मात्रा मे स्थापित हो गया है अपितु इसलिए कि पुरुष की सभ्रान्तता की परिभाषा कुछ बदल गई है ।

नारी विकास की इस मथरगति के पीछे है हमारी सामूहिक कुण्ठित मानसिकता । पराधीनता के सैकडो वर्षो ने हमारी सस्कृति के अनेक स्वस्थ अशो को नष्टप्राय कर दिया था । स्वाधीनता के बाद हम उन्हे पुन जीवन्त कर पाने की ओर एक कदम भी नही बढ पाये । कारण है कि आज भी शासन, समाज, शिक्षा आदि सभी महत्वपूर्ण क्षेत्रो पर नियन्त्रण उसी समुदाय या उसके उत्तराधिकारियों का है जिसकी रचना विदेशी शासन ने शासित समुदाय के शोषण के लिये की थी । इस समुदाय मे स्त्री और पुरुष दोनो ही शामिल है ।

तनिक गहराई मे उतरे तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि हमारे सर्वांगीण विकास मे बाधारूपी यह समर्थ समुदाय अन्य सभी क्षेत्रो के समान नारी वर्ग को भी पूर्णतया अपने नियन्त्रण से रखने की चेष्टा निरन्तर जुटा रहता है । यह चतुर समुदाय भलीभाँति समझता है कि स्वस्थ समाज की रचना स्त्री

जानि को उसका उचित स्थान दने पर ही हो सक्ती है। स्वस्थ समाज की रचना से सर्वाधिक हानि निहित स्वार्थों वाले नियन्त्रक समुदाय की ही होगी। अपने ही स्वार्थों के विरोध मे स्वय ही कौन कदम उठायेगा। और यो ये गुत्थी सुलझने की जगह उलझती चली जाती है। इसका सारा उत्तरदायित्व है उस वग का जो वही शासन की बागडोर थामे है ता वही धम की, वही शिक्षा की नीति निर्धारक बना बैठा है तो वही सामाजिक रीति रिवाजो का।

सचमुच यदि नारी की स्थिति सुधारनी है ता समथ तत्वा का स्वाथ त्याग करना होगा और सामान्य तत्वो का अपनी कुठित मानसिकता का दूर करना होगा। इस कुठा से पुरुष और स्त्री दोनो ही पीडित हैं। कोई भी एकागी उपाय समस्या को जटिल ही करेगा। नारी मुक्ति का अथ यदि उसे मानवीय समाज मे उसके अपने स्वाभाविक स्थान पर पुनर्स्थापित करना है तब तो उसकी दिशा स्वस्थ है। किन्तु यदि उसका अथ मात्र घर से निकलकर सडक पर आ जाना है तो वह एक कुठा मे निकल कर दूसरी कुठा मे फस जाने से अधिक कुछ नही है।

मातत्व स्त्री की प्राकृतिक क्रिया है। पुरुष ने उसके इस प्राकृतिक गुण को उसकी निबलता के रूप म स्थापित कर दिया और वह आज भी उस मानसिकता से उबर नही पा रही है। इसका समाधान खोजने के लिये यदि वह मातत्व से घृणा कर उससे परे हटेगी अथवा उसे गौण करेगी तो मात्र उसकी ही नही समस्त मानवता की हानि होगी। उसे यह समझना होगा कि जिसे वह अपनी सबसे बडी निबलता का स्रोत समझ बठी है वह है उसकी सबसे बडी शक्ति जो प्रकृति ने उसे दी है।

प्रजनन की प्रक्रिया मे नारी का अश अत्यधिक महत्वपूण है। सामाजिक दृष्टिकाण स देखे तो भविष्य के समाज का भार अधिकाशत नारी पर है। सजनात्मक प्रक्रियाओ के अन्त के साथ समाज के भविष्य का अन्त होना निश्चित है। मा के बिना सतान नही, सतान के बिना वश नही और वश के बिना भविष्य का समाज नही। इस सजन का उत्तरदायित्व मात्र मौलिक क्रिया-कलाप तक ही सीमित नही है। माँ सतान को जन्म ही नही देती, उसकी सवप्रथम और सर्वाधिक महत्वपूण शिक्षिका भी होती है। इतिहास उठाकर देखें और निराग्रह विश्लेषण करे तो प्रतीत होगा कि नारी के अपने नसर्गिक स्थान मे धकेल दिये जाने के साथ-साथ आरम्भ हुआ है, मानव जाति म मानवीयता के ह्रास का इतिवृत्त।

मानवता को निरन्तर जटिल होती आतकवाद, नशीली दवाओ के सेवन, पर्यावरण आदि की समस्याओ से यदि कोई उबार सकता है तो वह है नारी। आज का समाज तो अपने विकृत आग्रहो से मुक्त हो सकेगा यह कठिन लगता है। कल के नागरिको से ही आशा की जा सकती है कि वे विश्व को विकास की सम्यक दिशा दें। और कल के नागरिक का निर्माण करने वाली है केवल स्वस्थ मानसिकता व आत्म विश्वास लिये सुशिक्षित, सुसस्कारी व साहसिक नारी।

वह नारी जो न तो अपने पारिवारिक उत्तरदायित्व का बलिदान व्यक्तिगत महत्वाकाक्षाओ के लिए करती है और न परिवार के लिये अपनी महत्वाकाक्षाओ का गला घोटती है। वह नारी जिसके नारीत्व म तो कोई कमी नही है किन्तु जो निबल नही है। वह नारी जो स्वाभिमानिनी है किन्तु हीन भावना से प्रेरित मिथ्याभिमान के आग्रह से ग्रसित नही है। वह नारी जो न तो पुरुष की दासी है न उसे उगुलियो पर नचाने वाली नायिका अपितु है कधे से कधा मिला मानवीय विकास के पथ पर बराबर के कदम उठा चलने वाली सहधर्मी।

जनागमो ने मूल प्रतिपादन इसम महत्वपूण भूमिका निभा सकते हैं, क्योकि वे उन कतिपय विचारधाराओ के प्रतिनिधि है जिन्होने नारी को सहज समानता की दृष्टि से देखा है।

जैनधर्म को जनधर्म बनाने में महिलाओं का योगदान

आर्या प्रियदर्शनाश्री

(पूज्य प्रवर्तिनी सज्जनश्री जी म०
की विदुषी सुशिष्या)

वात्सल्यमूर्ति तुम रणचण्डी, तुम कोमल परम कठोर अति।
तुम शान्तिमन्त्र तुम युद्धतन्त्र, तुम मानव की गिरमौर मति ॥

जैनधर्म मे महिलाओं को भी वही स्थान प्राप्त है जो पुरुषो को है। आद्यतीर्थंकर ऋषभदेव से लेकर महाप्रभु भगवान महावीर वर्द्धमान ने दोनो को ही साधना के समान अधिकार व अवसर प्रदान किये थे। जब हम इतिहास का अनुशीलन करते हैं, तो ज्ञात होता है कि महिलाएँ कई गुणो मे पुरुषो से भी अग्रगामिनी रही हैं। उनका महत्व कई स्थानो पर पुरुषो से विशेष विवृद्ध हो गया है। शिक्षा मे, संयम मे, व्रतपालन में, सतीत्वरक्षा मे, सेवा मे, सहनशीलता और स्वार्थ त्याग मे से सदा ही आगे रही और रहती है। सहनशीलता, लज्जा और सेवा तो उनके जन्मजात गुण हैं जो किसी मे कम और किसी मे अधिक प्रमाण मे रहते ही हैं। दूसरे विशिष्ट गुण सस्कार व परिस्थिति पर अवलम्बित हैं। सतीत्वरक्षा के लिए भारत की नारियो का "जौहर" तो ससार को आज भी चकित कर रहा है।

अत्यन्त प्राचीन समय की ओर दृष्टिपात करे तो भगवान युगादिदेव ऋषभ महाप्रभु की दोनो पुत्रियो—ब्राह्मी व सुन्दरी के दर्शन होते है। जो विद्या, शील और त्याग की जीती-जागती प्रतिमाएँ थी, ब्राह्मी ने तो ऋषभदेव भगवान को केवलज्ञान होने पर ही दीक्षा धारण कर ली थी। किन्तु चक्रवर्ती भरत ने तत्कालीन प्रथानुसार सुन्दरी को अपनी पत्नी बनाने की अभिलाषा से त्यागमार्ग के अनुसरण मे रोक लिया था। पर वे तो अपने पूज्य पिता के पद-चिह्नो पर चलने का दृढ सकल्प कर चुकी थी। चक्रवर्ती उन्हे राज्य सम्पत्ति और ससार के भोगविलासो की ओर आकृष्ट करने मे असफल रहे। सुन्दरी ने साठ हजार वर्ष तक आयबिल तप करके अपने शरीर को सुखा डाला। चक्रवर्ती भरत को इस तप व त्याग की साक्षात् ज्वलन्त मूर्ति के आगे नतमस्तक होना ही पडा। भरत ने उसे सहर्ष साध्वी जीवन स्वीकार कर लेने की अनुमति दे दी। कुमारी "मल्लि" तो तीर्थंकर के सर्वोच्च पद पर प्रतिष्ठित हुई थी।

जब हम प्रात. स्मरणीया, अद्भुत प्रेमिका, सती शिरोमणी राजीमती का जीवन, जो शास्त्रो के स्वर्ण पृष्ठो पर अंकित है, अवलोकन करते हैं तो मस्तक श्रद्धा से अपने आप झुक जाता है। उन्होने पुनीत सयम के पथ पर चलते हुए रथनेमि को अस्थिर-विचलित होते हुए, उसकी वासना की दबी हुई चिनगारियो को उभरते हुए

अवलोकन किया तो तत्काल ही अपने पवित्र उपदेशामृत की वर्षा से ऐसा शान्त किया कि फिर वे कभी न उभरी न चमकी। यही तो उस महासती की विशिष्टता वह महत्ता थी, जो आज भी प्रत्येक स्त्री के लिए अनुकरणीय व आदरणीय है। उनमें सयम का वह तीव्र तेज था, जो रथनमि को पुन सयम के पवित्र पथ पर दृढ़ता से आरूढ कर सका। पतिदेव के मार्ग का अनुसरण करने वाली सतियो म वे अग्रगण्या थी, अद्भुत पातिव्रत्य था उनका, उपदेश शक्ति भी अलौकिक थी। इसी प्रकार आबाल ब्रह्मचारिणी राजकुमारी चन्दनबाला के जीवनवृत्त पर दृष्टिपात करते है तो विस्मय और करुणा से अभिभूत हो जाना पड़ता है। सचमुच ही वह महाशक्तिस्वरूपा थी। राजकुल म जन्म लेकर भी बाल्यावस्था मे ही वे मातृ पितृ विहीना हो गई, मातृ भूमि से तथा माता स बलात् पृथक कर दी गई। उसने अपनी जननी का सतीत्व रक्षार्थ प्राणोत्सर्ग करते देखा था, आततायी के पजे म आकर वे सरे बाजार बेची गई, उन पर कष्टो, उपसर्गों के पर्वत टूट पड़े फिर भी उस वीर बालिका ने अद्भुत सहनशीलता का परिचय देकर सबको अवाक कर दिया।

उस जमाने म स्त्रिया को चाँदी के चन्द टुकड़ो के लिये क्रय विक्रय होता था। पुरुष अपने सर्वाधिकार सुरक्षित रखकर महिलाओ को पाव की जूती से अधिक महत्व नही देता था। धर्मानुष्ठानो मे भी उनका कोई अधिकार स्वीकृत न था। वे केवल पुरुषों की विलास सामग्री समझी जाती थी। उनका अपना कोई स्वत्व या सत्ता नही थी। कुमारी चन्दना को भी इस दशा का भाग्य बनना पड़ा था। उन्होने स्वय इस दयनीय अवस्था का अनुभव किया था। अत उन्होने इसे सुधारने की प्राण पण स चेष्टा की। ससार के भौतिक सुखो को लात मारकर वे नारी जाति का उद्धार करने के लिए भगवान महावीर के सघ म सम्मिलित हो गई। चतुर्विध सघ म समस्त आर्याओ की आप नेत्री बनी।

हम शास्त्रो मे लोगो के चरित्रो को पढ़ते हैं तो पता लगता है कि कमल कोमला असूर्यपश्या व राजरानिया भी कि जिनके एक सकेत मात्र पर सहस्रो सेवक सेविकाएँ अपने प्राण तक न्यौछावर करने को प्रस्तुत रहते थे। भगवान् महावीर प्रभु के धर्म की शरण म आकर चन्दनबाला की अनुगामिनी बन आत्मकल्याण के साथ साथ पर-कल्याण करती हुई राजवैभव म पले हुए कोमल शरीर के सुख-दुःख की परवाह न करके तीव्र तप द्वारा कर्ममल को नष्ट करती थी। भगवान् का पवित्र सन्देश देने गाँव गाव नगर नगर पादविहार करती। भयकर अटविया, विषम पर्वत घाटिया को पार करती मात्र भिक्षा वृत्ति से सयम के साधनरूप शरीर का निर्वाह करती थी। वे श्रेष्ठी-पत्नियाँ, महाराज-कन्याएँ भी जिनके ऐश्वर्य को देखकर बड़े-बड़े सम्राट चकित हो जाते थे, तप-त्याग-सयम के पुनीत पथ की पथिकाएँ बन शीत, ताप, क्षुधा, पिपासा, अपमान, अनादर मे निरपेक्ष, आत्मस्वरूप म तन्मय हो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यग्चारित्र की आराधना करती हुई अपने अमूल्य दुर्लभ मानव जीवन को सार्थक करती थी।

भगवान् वर्द्धमान महाप्रभु के श्राविका सघ की मुख्याएँ, महाश्रद्धावती, उदात्त विचारा व गगनांगण मे विचरण करने वाली रहस्यरमणियाँ—जयन्ती, रेवती, सुलसा आदि श्राविकायें क्या कम विदुषियाँ थी? "भगवती सूत्र" मे इनकी विद्वत्ता, श्रद्धा व भक्ति का अच्छा वर्णन मिलता है। श्राविका शिरोमणी जयन्ती ने भगवान् से कैसे गम्भीर प्रश्न किये थे। रेवती की भक्ति देवो की भक्ति का भी अतिक्रमण करने वाली थी। सुलसा की अडिग श्रद्धा देखकर मस्तक श्रद्धावनत हो जाता है।

श्रमणोपासिका सुलसा की सम्यक्ता एव अडिग श्रद्धा के विषय म भी हम विस्मित रह जाना पड़ता है। अम्बड ने उसकी कई प्रकार स परीक्षा की। ब्रह्मा, विष्णु महेश या तीर्थकर का रूप धारण कर समवसरण की लीला रच डाली, किन्तु सुलसा को आकृष्ट न कर सका।

उस युग मे महिलाये कितनी शिक्षित थी, उनकी विचार शक्ति कितनी प्रबल थी, इनका अनुमान हम ऊपर लिखे उदाहरणो मे भलीभाँति लगा सकते है। स्त्रियो की जागृति का प्रधान कारण भगवान् महावीर का वैदिक धर्म (जातिवाद वा यज्ञाश्रयाहिंसा, स्त्री-शूद्र का धर्म मे, वेद मे अनधिकार, एक पतिव्रत धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्माचरण का निषेध) के विरुद्ध वह आन्दोलन था, जो उन्होंने अपनी कैवल्यप्राप्ति के बाद आरम्भ किया था। उन्होने स्पष्ट शब्दो मे घोषणा की थी कि सब जीव समान है, जाति कर्मानुसार होती है, यज्ञ की हिंसा नरक में जाने से नही बचा सकती, धर्म करने का अधिकार, शास्त्र पढने का अधिकार, स्त्री हो चाहे पुरुष, ब्राह्मण हो या शूद्र सभी को है। मुक्ति प्राप्त करने का अधिकार प्रत्येक प्राणी को है, स्त्रीत्व या नपुंसकत्व अथवा पुरुषत्व उसमे बाधक नही। आत्मा को मुक्त करने की साधना सभी करते हैं। उन्होंने अपने चतुर्विध संघ में जातिवाद को स्थान नही दिया। स्त्रियो का उन्होने साध्वी सघ और श्राविका सघ बनाया। स्त्रियों की संख्या पुरुषो से बहुत अधिक थी। उनके सघ मे साधु तो १४००० ही थे, साध्वियाँ ३६,००० हजार थी। इस तरह श्रावको की संख्या १,५९,००० तो श्राविकाओ की ३ १८,००० तक पहुँच गई थी।

यो हम देखते है कि अबला कहलाने वाली वे नारियां मानवीरूप मे साक्षात् भवानी थी, देवियाँ थी। उनकी पुण्य गाथाओ से भारतीय शोभा मे चार चाद लग हुए है। ऐसे ही सयमी जीवन को अपने ज्ञानालोक से आलोकित करने वाली महान प्रभावशाली खरतरगच्छीय साध्वी शिरोमणि पुण्यश्लोकश्री पुण्यश्री जी म सा आध्यात्म ज्ञान निमग्ना पूज्या प्र श्री स्वर्णश्री जी म सा, ज्ञानगायण स्वनामधन्या पू. प्र. श्री ज्ञानश्री जी म सा एव समन्वय साधिका जैनकोकिला पू प्र श्री विचक्षणश्री जी म. सा. थी। जो त्याग-तप सयम की अनुपम आराधिका व शासन की प्रबल शक्तियां थी। जिनशासन की जाहो जलाली के लिए व उसकी सतत् अभिवृद्धि के लिए उन्होंने ऐसे-ऐसे अद्भुत कार्य कर दिखाये जिन्हे सुन-पढ व देखकर न केवल जैन समाज अपितु सर्व मानव समाज दग रह जाता है। उनके उदात्त तेजस्वी व यशस्वी जीवन से जिनशासन का अणु-अशु आलोकित है।

ऐसी ही वर्तमान मे अनुपम गुणो से युक्त जैनशासन की जगमगाती ज्योतिर्मय दिव्य तारिका के रूप मे है हमारी परमाराध्या प्रतिपल स्मरणीया, वन्दनीया, पूजनीया खरतरगच्छ के पुण्य श्रमणी वृन्द की प्रभावशाली प्रवर्तिका परम श्रद्धेया गुरुवर्या श्री सज्जनश्री जी म. सा। जिनकी सरलता, सहजता, उदारकार्यक्षमता, निर्मल समता, निश्छलता, निस्पृहता, विशालहृदयता, अद्भुत प्रतिभा मानव मात्र को सहज ही आकर्षित करती है। जिन्होंने कई प्राचीन आचार्यो द्वारा रचित संस्कृतनिष्ठ विशिष्ट कृतियो का परिष्कृत, परमार्जित व प्राजल हिन्दी भाषा मे अनुवाद कर जैन साहित्य शोभा की अभिवृद्धि मे चार चाँद लगाये है। वे जिनशासन के साध्वी वृन्द की मुकुटमणि हैं तथा त्याग, तप, वैदुष्य व वाग्मिता की जीवत प्रतिमा है। आपश्री के अनुपम गुणयुक्त जीवन से तथा अद्भुत कार्यकलापो से न केवल गच्छ व समाज अपितु सम्पूर्ण जैन शासन गौरवान्वित है।

जैन जगत की अनुपम थाती, आगमज्ञान की ज्योति है।
मृदु मधुर अमृतवाणी से, जनमन पावन करती है।
त्याग-तप-सयम की त्रिवेणी, तव अन्तर् मे बहती है।
उसी सरित की अजस्रधार मे, हम भी पावन होती हैं॥